

मणवानु ठेकायुं

श्री अ. सा. श्रे. स्थानडेवारी
 वन शास्त्रोद्धार मभिति
 ठे गरेडिया कृषारोड, श्रीन लोअ
 पासे, राजकोट. (मौराष्ट्र)

★

णीछ आवृत्ति प्रत १०००
 वीर मंवल २४८४
 विक्रम भवल २०१४
 धि दयी सन १८५८

★

• सुद्रक

मणिलाल छगनलाल शाड
 धी नवप्रभात प्रिन्टींग प्रेम
 धीकाटा रोड : अमदावाद.

₹ १०,०००) आपनार आप सुरभी समितिन प्रमुअ;
दानवीर सेठनी,



सेठ गान्तिदास भजनदासबाई
अमदावाद.

श्री-वर्धमान-मन्मथ-सधना आचार्यश्री

पूज्य आत्मारामल महाराजश्रीये

आपेक्ष

सम्भतिपत्र —

*

उपरांत

पूज्य श्री वासीदासल महाराज-रचित

जीव सूत्रानी टीका भाटे तेजोश्रीना भवन्थे।

*

तेमज

कन्य महात्माणे, महाशयलीलणे, कपटन-पद्धतिवाणा हेतुवना प्रीतिवरी

तेमज

शास्त्रज्ञ आचरुना कविभाषी

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लब्धसपर्याचार्यवर्यघासीलालजिल्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकन्येनोपयोगितापूर्वक कर्णकुह-
रीकृता, वृत्तिरिय न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव,
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण
प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-
रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-
सिद्धान्तपीयूषं पायं पायं मनोमोद विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन
चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया
एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानक-
वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति - लुधियानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-
रूपाध्याय आत्मारामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

જૈનાગમવારિધિ-જૈનધર્મદિશાકર પ્રધાનાચાર્ય પવિત્ર-
મુનિશ્રી આત્મારામજી મહારાજ (પબ્લ) ના જો
આચારામસ્વની આચારચિ તામલિુ ટીકા પર આપેલ

સમતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ

મે પૂર્વ આચાર્યવર્ષ ઘાસીલાલજી (મહારાજ) ની જનાવેલ શ્રીમદ્ આચારાંજ સૂત્રના પ્રથમ અધ્યયનની આચારચિતામલિુ ટીકા સમ્પૂર્ણ ઉપયોગ પૂર્વક સાંભળી.

આ ટીકા ન્યાય સિદ્ધાંતથી મુક્ત, આકસ્વના નિયમથી નિજદ છે તથા જોમા પ્રસંગે પ્રસંગે કમથી અન્ય સિદ્ધાંતોનો સંબંધ પણ ઉચિતરૂપથી જણાઈ આવે છે

ટીકાકારે અન્ય તમામ વિષયો સમ્યક્ પ્રકાશથી સ્પષ્ટ કરેલ છે તેમજ પ્રોદ વિષયોનો વિશેષરૂપથી સસ્કૃત-આચાર્ય સ્પષ્ટતાપૂર્વક પ્રતિપાદન અતિ મનોરજક છે જો માટે આચાર્ય મહોદય જરૂર જાનવાડને ખાતર છે

હું આચાર્ય શાયુ હુ કે જિજ્ઞાસુ મહોદયો જોતા સારી રીતે પઠન પઠન દ્વારા જૈનાગમ સિદ્ધાંતરૂપ અમૂત પીઠ પીયને મનને આનંદિત કરે અને તેના મનનથી દક્ષજનો વાર અનુયોગોતુ સ્વરૂપજ્ઞાન મેળવે.

તથા આચાર્યવર્ષ આવી જ રીતે ધીબ પલુ જૈનાગમોના સ્પષ્ટતાપૂર્વક વિવેચન દ્વારા શ્રેવેતાંજર સ્વાનકવાસી શમાજ પર મહાન ઉપકાર કરીને ઘસસ્વી બને.

વિ. સ ૨૦૦૨
માગસર સુદી ૧

જૈનમુનિ-ઉપાધ્યાય આત્મારામ
હુધિયાના (પબ્લ)
શુભમસ્તુ

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-प्रधानाचार्य-पण्डित-मुनि-
श्रीमदात्मरामजीमहाराजानाम् आचाराङ्गसूत्रस्याचार-
चिन्तामणिटीकायां

सम्मतिपत्रम्

श्रीमल्लव्धसपर्य्याचार्यवर्य्यघासीलालजिल्कृता श्रीमदाचाराङ्गसूत्र-
प्रथमाध्ययनस्याचारचिन्तामणिवृत्तिः साकल्येनोपयोगितापूर्वकं कर्णकुट-
रीकृता, वृत्तिरियं न्यायसिद्धान्तोपेता व्याकरणनियमोपनिबद्धा, तथा च
प्रासङ्गिकरीत्या अन्यसिद्धान्तसङ्ग्रहोऽप्यस्यां याथातथ्येनाभासत एव,
अपि च निखिला अपि विषयाः सम्यग् व्यक्तीकृता लेखकेन, विशेषण
प्रौढविषयाणां स्फुटतया गीर्वाणवाण्यां प्रतिपादनम् अधिकतरं मनो-
रञ्जकम् । अत आचार्यमहोदयो धन्यवादमर्हतीति ।

आशासे जिज्ञासुमहोदया अस्याः सम्यग् अध्ययनेन जैनागम-
सिद्धान्तपीयूषं पायं पाय मनोमोदं विधास्यन्तीति । अस्याः परिशीलनेन
चतुर्णामनुयोगानां परिचयं प्राप्तुवन्तु सज्जनाः । अथ आचार्यमहोदया
एवमेवान्येषामपि जैनागमानां विशदव्याख्यानेन श्वेताम्बराणां स्थानक-
वासिनां महोपकृतिं विधाय यशस्विनो भविष्यन्तीति ।

पञ्चनदप्रान्तान्तर्वर्ति - लुधियानामण्डल-स्थानकवास्तव्यो जैनमुनि-
रूपाध्याय आत्मरामः ।

विक्रमाब्दः २००२, मार्गशीर्षशुक्ला प्रतिपत्, शुभमस्तु ॥

सम्मतिपत्र

(मापान्तर)

श्रीश्रीरनिर्वाण स० २४५८ आसेत्र

शुक्ल १५ (पूर्णिमा) शुक्रवार छविपाना

मैंने और पंडितमणि हेमचन्द्रजीने पंडितरत्नमणिश्री घासीलाल जीकी रबी हुई अपासकदशांग सूत्रकी गृह्यधर्मसंजीवनी नामक टीका पंडित मूलचन्द्रजी व्याससे आद्योपात्त सुनी है। यह वृत्ति यथानाम तथागुणवाली-अच्छी घनी-है। सब यह गृहस्थोंके तो जीवनदात्री-सयमरूप जीवनको देनेवाली-ही है। टीकाकार ने मूलसूत्र के भाषको सरल रीतिसे वर्णन किया है, तथा भाषकका सामान्य धर्म क्या है ? और विशेष धर्म क्या है ? इसका खुलासा हम टीकामें अच्छे ढंगसे बतलाया है। स्यादादका स्वल्प, कर्म-पुरुषार्थ-वात् और भाषकोंकी धर्मके अन्दर इतना किस प्रकार रचना, इत्यादि विषयोंका निरूपण इसमें मलीभालि किया है। इससे टीकाकारकी प्रतिभा स्पष्ट झलकती है। ऐतिहासिक दृष्टिसे अरण्य भगवान महावीरके समय जैनधर्म किस जाहोजहाली पर था और वर्तमान समय जैनधर्म किस स्थितिमें पहुंचा इस विषयका तो ठीक चित्र ही चित्रित कर दिया है। फिर संस्कृत जाननेवालोंको तथा हिन्दीभाषाके जाननेवालोंको भी पूरा लाभ होगा क्योंकि टीका संस्कृत है, उसकी सरल हिन्दी कर दी गई है। इसके पढ़नेसे कर्माकी योग्यताका पता लगता है कि वृत्तिकारने समझानेका कैसा अच्छा प्रयत्न किया है। टीकाकारका यह काय परम प्रशंसनीय है। इस सूत्रको मध्यस्थ भाषसे पढ़ने वालोंको परम लाभकी प्राप्ति होगी। क्या कहें ! भाषकों (गृहस्थों) का तो यह सूत्र भवस्व ही है अतः टीकाकारको कोटिशः धन्यवाद दिया जाता है, जिन्होंने अत्यन्त परिश्रमसे जैनजनताके ऊपर असीम उपकार किया है। इसमें भाषक के पारह नियम प्रत्येक पुरुषके पढ़ने योग्य हैं, जिनके प्रभावसे अथवा यथायोग्य ग्रहण करनेसे आत्मा मोक्षका अधिकारी होता है, तथा अहितध्यातायाद् और पुरुषकार

जैनागमवेत्ता जैनधर्मदिवाकर उपाध्याय श्री १००८ श्री आत्मारामी
 महाराज तथा न्यायन्याकरणके ज्ञाता परम पण्डित मुनिश्री १००७
 श्री हेमचन्द्रजी महाराज, इन दोनों महात्माओंका दिया हुआ
 श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रका प्रमाण पत्र निम्न प्रकार है—

सम्मइवत्तं

सिरि-वीरनिव्वाण-सवच्छर २४५८ आसोई
 (पुण्णमासी) १५ सुक्कारो लुट्टियाणाओ ।

मए मुण्णिहेमचंदेण य पंडियरयणमुणिसिरि-वासीलालविणिम्मिया सिरिउवा-
 सगमुत्तस्स अगारधम्मसंजीवणीनामिया वित्ती पंडियमूलचन्द्रवासाओ अज्जोवत्त
 सुया, समीईणं, इयं वित्ती जहाणामं तहा गुणेवि धारेइ, सच्चं अगाराणं तु इमा
 जीवण (संजमजीवण) दाई एव अत्थि । वित्तिकत्तुणा मूलमुत्तस्स भावो उज्जु-
 सेलीओ फुडोकोओ, अहय उवासयस्स सामण्विसेसधम्मो, णयसियवायवाओ,
 कम्मपुरिसद्वत्ताओ, समणोवासयस्स धम्मदहया य, इच्चाइविसया अस्सि फुडरीइओ
 वण्णिया, जेण कत्तुणो पडिहाए सुदुट्टप्पयारेण परिचओ होइ, तह इइहासदिट्ठिओवि
 सिरिसमणस्स भगवओ महावीरस्स समए वट्टमाणभरहवासस्स य कत्तुणा विसय-
 प्पयारेण चित्त चित्थिय, पुणो सकयपाठीणं, वट्टमाणकाले हिन्दीणामियाए भासाए
 भासीग य परमोवयारो कडो, इमेण कत्तुणो अरिहत्ता दीसइ, कत्तुणो एयं कज्जं
 परमप्पससणिज्जमत्थि । पत्तेयजणस्स मज्झत्थभावाओ अस्स सुत्तस्स अवलोयणमईव
 लाहप्पयं, अवि उ सावयस्स तु (उ) इमं सत्थं सव्वस्समेव अत्थि, अओ कत्तुणो
 अणेगकोडिसो धन्नवाओ अत्थि, जेहिं अच्चंतपरिस्समेण जहणजणतोवरि असीमो-
 वयारो कडो, अह य सावयस्स वारस नियमा उ पत्तेयजणस्स पढणिज्जा अत्थि,
 जेसिं पहावओ वा गहणाओ आया निव्वाणाहिगारी भवइ, तहा भवियव्वयावाओ
 पुरिसकारपरकमवाओ य अवस्समेव दसणिज्जो, किंचहुणा इमोए वित्तीए पत्तेय-
 विसयस्स फुडसद्देहिं वण्णणं कयं, जइअन्नोवि एवं अम्हाणं पमुत्तप्पाए समाजे विज्जं
 भवेज्जा तथा नाणस्स चरित्तस्स तहा सधस्स य खिप्पं उदयो भविस्सइ, एवं ह मन्ने॥

भवईओ-

उवज्झाय-जइणमुणि-आयाराम-पंचनईओ,

ક્ર. નં ૦૦) આપનાર આપ સુરજીભી



શ્રી કશ્ચય દ ઠાળીદાસ વાડીયા
ભાણુવંદ.

पराक्रमवाद हरएकको अवश्य देखना चाहिये। कहां तक कहें, इस टीकामें प्रत्येक विषय सम्यक् प्रकारसे बताये गये हैं। हमारी सुसंप्राय (सोई हुई सी) समाजमें अगर आप जैसे योग्य विद्वान फिर भी कोई होंगे तो ज्ञान, चारित्र तथा श्रीसधका शीघ्र उदय होगा, ऐसा मैं मानता हूँ।

आपका

उपाध्याय जैनमुनि आत्माराम पंजाबी.



इसी प्रकार लाहोरमें विराजते हुए पण्डितवर्य विद्वान् मुनिश्री १००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा पं० मुनिश्री त्रिलोकचन्दजी महाराजके दिये हुए, श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रके प्रमाणपत्रका हिन्दी सारांश निम्न प्रकार है—

श्री श्री स्वामी घासीलालजी महाराज-कृत श्री उपासकदशाङ्ग सूत्रकी संस्कृत टीका व भाषाका अवलोकन किया, यह टीका अतिरमणीय व मनोरञ्जक है, इसे आपने बड़े परिश्रम व पुरुपार्थसे तय्यार किया है, सो आप धन्यवादके पात्र हैं। आप जैसे व्यक्ति-योकी समाजमें पूर्ण आवश्यकता है। आपकी इस लेखनीसे समाजके विद्वान् साधुवर्ग पढ़ कर पूर्ण लाभ उठावेंगे, टीकाके पढ़नेसे हमको अत्यानन्द हुआ, और मनमें ऐसे विचार उत्पन्न हुए कि हमारी समाजमें भी ऐसे २ सुयोग्य रत्न उत्पन्न होने लगे—यह एक हमारे लिये बड़े गौरवकी बात है।

वि. सं. १९८९ मा. आश्विन
कृष्णा १३ वार भौम लाहोर.



श्री हाताधर्मकबाहूस्त्र की 'अनगारधर्माऽपृतवर्षिणी' टीका पर
 नैनदिवाकर साहित्यरत्न नैनागमरत्नाकर परमपूज्य भद्रेय
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म० द्वारा निर्मित 'अनगार-धर्माऽपृत-वर्षिणी'
 टीका वाले श्री हाताधर्मकबाहू सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त
 भ्रम किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी
 म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक छन्दका प्रमाधिक अर्थ और कठिन
 स्थलों पर सार-पूर्व विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को
 सरल बनानेमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी
 संस्कृत पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे हृत्किारके परिश्रम
 को सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने भीष्मको शिक्षित
 करते हुए परमस्वास्थ्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयधीर

आपकी सेवामें पोष्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीजी की
 जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचने पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठामे ६ सुन्धान्तिसे विराजते हैं।
 पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठामे ४ को हमारी ओरसे बन्दना बर्जकर
 सुन्दराता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका छित्वा हुआ (विपाकसूत्र) महाराजश्रीजी
 बेस्तरना चाहत हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस
 भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहाँसे मिले वहाँसे १ कापी बल्कि मित्र
 वामे का कष्ट करें, ठपर बन्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

श्री हातापर्यंकपात्रसूत्र की 'अनगारभर्माऽमृतवर्षिणी' टीका पर
 जैनविवाकर साहित्यरत्न जैनगमरत्नाकर परमपूज्य भद्रेश्वर
 जैनाचार्य श्री आत्मारामजी महाराजका
 सम्मतिपत्र

लुधियाना, ता ४-८-५१

मैंने आचार्यश्री घासीलालजी म० द्वारा निर्मित 'अनगार-भर्माऽमृत-वर्षिणी'
 टीका वाले श्री हातापर्यंकपात्र सूत्रका मुनिश्री रत्नचन्द्रजीसे आद्योपान्त
 भ्रमण किया।

यह निःसन्देह कहना पड़ता है कि यह टीका आचार्यश्री घासीलालजी
 म० ने बड़े परिश्रम से लिखी है। इसमें प्रत्येक शब्दका प्रमाणिक अर्थ और कठिन
 स्थलों पर सार-पूर्ण विवेचन आदि कई एक विशेषतायें हैं। मूल स्थलों को
 सरल बनानमें काफी प्रयत्न किया गया है, इससे साधारण तथा असाधारण सभी
 संस्कृत पाठकोंको लाभ होगा ऐसा मेरा विचार है।

मैं स्वाध्यायप्रेमी सज्जनों से यह आशा करूंगा कि वे हृदिकारके परिश्रम
 का सफल बना कर शास्त्रमें दी गई अनमोल शिक्षाओं से अपने जीवनको शिक्षित
 करते हुए परमसाध्य मोक्षको प्राप्त करेंगे।



श्रीमान्जी जयश्रीर

आपकी सेवामें पोस्टद्वारा पुस्तक भेज रहे हैं और इस पर आचार्यश्रीनी की
 जो सम्मति है वह इस पत्रके साथ भेज रहे हैं, पहुंचन पर समाचार दें।

श्री आचार्यश्री आत्मारामजी म० ठाने ६ सुलशान्तिसे विराभते हैं।
 पूज्य श्री घासीलालजी म० सा० ठाने ४ को हमारी ओरसे कन्दना अर्जकर
 सुगंधाता पूछें।

पूज्यश्री घासीलालजी म० जीका लिखा हुआ (शिपाकसूत्र) महाराजश्रीनी
 देखना चाहते हैं। इसलिये १ कापी आप भेजनेकी कृपा करें; फिर आपको वापिस
 भेज देंगे। आपके पास नहीं हो तो जहाँसे मिले वहाँसे १ कापी जरूर भिन्न
 बाने का कट करे, ठपर जन्द देनेकी कृपा करें। योग्य सेवा लिखते रहें।

लुधियाना ता ४-८-५१

निवेदक

प्यारेलाल जैन

जैनागमवारिधि-जैनधर्मदिवाकर-उपाध्याय-पण्डित-मुनि
श्रीआत्मारामजी महाराज (पंजाब) का आचाराङ्गसूत्र की
आचारचिन्तामणि टीका पर

सम्मतिपत्र

मैंने पूज्य आचार्यवर्य श्री घासीलालजी (महाराज)की बनाई
हुई श्रीमद् आचाराङ्गसूत्रके प्रथम अध्ययन की आचारचिन्तामणि टीका
सम्पूर्ण उपयोगपूर्वक सुनी ।

यह टीका, न्यायसिद्धान्त से युक्त, व्याकरण के नियम से निबद्ध
है । तथा इसमें प्रसङ्ग २ पर क्रमसे अन्य सिद्धान्त का संग्रह भी उचित
रूप से मालूम होता है ।

टीकाकारने अन्य सभी विषय सम्यक् प्रकार से स्पष्ट किये हैं,
तथा प्रौढ विषयोंका विशेषरूप से संस्कृत भाषा में स्पष्टतापूर्वक
प्रतिपादन अधिक मनोरंजक है, एतदर्थ आचार्य महोदय धन्यवादके
पात्र हैं ।

मैं आशा करता हूँ कि जिज्ञासु महोदय इसका भलीभांति
पठन-द्वारा जैनागमसिद्धान्तरूप अमृत पी-पी कर मन को
हर्षित करेंगे, और इसके मनन से, दक्ष जन चार अनुयोगों का
स्वरूपज्ञान पावेंगे । तथा आचार्यवर्य इसी प्रकार दूसरे भी जैनागमोंके
विशद विवेचन द्वारा श्वेताम्बर-स्थानकवासी समाज पर महान उप-
कार कर यशस्वी बनेंगे ।

वि. स. २००२

शुक्रवार सुदि १

जैनमुनि-उपाध्याय आत्माराम

लुधियाना (पंजाब). शुभमस्तु ॥

*

वीकानेरवासी समाजभूषण शास्त्रज्ञ भेरूदानजी शेठियाका अभिप्राय-

*

आप जो शास्त्रका कार्य कर रहे हैं यह बड़ा उपकारका कार्य है ।
इससे जैनजनताको काफी लाभ पहुँचेगा ।

(ता २८-३-५६ के पत्रमेंसे)

॥ श्रीः ॥

जैनागमदारिधि-जैनपर्यदिवाकर-जैनाचार्य-पूज्यश्री आत्मारामजी-
महाराजानां पञ्चनद-(पंचाष) स्थानामनुचरोपपातिकसूत्राणा-
मर्थयोधिनीनामकटीकायामिदम्-

सम्मतिपत्रम्

भाचार्यवर्यैः श्री घासीलालमुनिभिः सङ्कलिता अनुचरोपपातिकसूत्राणामर्थ
बोधिनीनाम्नी सङ्कलितवृत्तिरूपयोगपूर्वकं सफलाऽपि स्वच्छिष्यमुत्तेनाऽप्रापि मया, इयं
दि वृत्तिर्मुनिवरस्य वैदुष्यं प्रकटयति । श्रीमन्निर्मुनिभिः सूत्राणामर्थान् स्पष्टयितुं
याः प्रयत्नो व्यधायि तदर्थमनेकशो पयत्रदानंरन्ति त । यथा धेयं वृत्तिः
सरला मुषोधिनी च तथा सारकस्यपि । अस्या स्वाध्यायेन निर्वाणपदममीप्सु-
मिर्निर्वाणपदमनुसरन्निर्वाण-दर्शन-चारिष्ये प्रयतमानैर्मुनिभिः भाषकैश्च ज्ञान-
दर्शन-चारिष्याणि सम्यक् सम्प्राप्याऽन्येऽप्यात्मानस्तत्र प्रवर्धयिष्यन्ते ।

भाशासे श्रीमदाशुक्रविर्मुनिवरो गीर्वाणबागीशुपां विदुषां मनस्तोपाय
जैनागमसूत्राणां सारावबोधाय च अन्येषामपि जैनागमानामिस्थं सरलाः
सुस्पष्टाश्च वृत्तीर्विनाय तांस्तान् सूत्रग्रन्थान् देशगिरा सुस्पष्टयिष्यति ।

अन्ते च “ मुनिवरस्य परिभ्रमं सकलयितुं सरलां मुषोधिनीं चेमां
सूत्रवृत्तिं स्वाध्यायेन सनायपिष्यन्त्येष्यं सुयोग्या ईसनिमाः पाठका ”
इत्याशास्ते—

विक्रमाब्द २००२ }
भाषणकृप्या प्रतिपदा }
छापियाना }

उपाध्याय आत्मारामो जैममुनिः

(श्री दशकैकालिकसूत्रका सम्मतिपत्र)

॥श्री वीरगौतमाय नमः ॥

सम्मतिपत्रम्

मए पंडितमुणि-हेमचंदेण य पंडिय-मूलचन्द्रवासवारा पत्ता पंडिय-रयण-मुणि-घासीलालेण विरइया सक्कय-हिन्दी-भापाहिं जुत्ता सिरि-दसवेयालिय-नामसुत्तस्स आयारमणिमजूसा वित्ती अवलो-इया, इमा मणोहरा अत्थि, एत्थ सदाणं अइसयजुत्तो अत्थो वण्णिओ, विउजणाणं पाययजणाण य परमोवयारिया इमा वित्ती दीसइ। आयारविसए वित्तीकत्तारेण अइसयपुच्चं उल्लेहो कडो, तहा अहिंसाए सरुवं जे जहा-तहा न जाणति तेसिं इमाण वित्तीए परमलाहो भविस्सइ, कत्तुणा पत्तेयविसयाणं फुडरुवेण वण्णणं कडं, तहा मुणिणो अरहत्ता इमाए वित्तीए अवलोयणाओ अइसय-जुत्ता सिज्जइ। सक्कयइया सुत्तपयाणं पयच्छेओ य सुवोहदायगो अत्थि, पत्तेयजिण्णासुणो इमा वित्ती दइव्वा। अम्हाणं समाजे एरिसविज्ज-मुणिरयणाणं सम्भावो समाजस्स अहोभग्गं अत्थि, किं उत्तविज्जमुणिरयणाणं कारणाओ, जो अम्हाण समाजो सुत्तप्पाओ अम्हकेर साहिच्च च लुत्तप्पायं अत्थि, तेसिं पुणोवि उदओ भविस्सइ ? जस्स कारणाओ भवियप्पा मोक्खस्स जोग्गो भवित्ता पुणो निव्वाण पाविहिइ। अओह आयारमणिमजूसाए कत्तुणो पुणो पुणो धन्नवायं देमि-॥

वि स. १९९० फाल्गुन	} इह-	उवज्जाय जइण-मुणी, आयारामो (पंचनईओ)
शुक्लत्रयोदशी मङ्गले		
(अलवरस्टेट)		

ऐसे ही :—

मध्यभारत सैलाना-निवासी श्रीमान् रतनलालजी डोसी श्रमणोपासक जैन लिखते हैं कि—

श्रीमान् की की हुई टीकावाला उपासकदशांग सेवक के दृष्टि-गत हुआ, सेवक अभी उसका मनन कर रहा है, यह ग्रन्थ सर्वाङ्ग-सुन्दर एवम् उच्च कोटि का उपकारक है।

૩૧ પરપુ જ્ઞાપનાર જ્ઞાણ સુરભીલી



કોમડી હરજોવિંદભાઈ જેવા હ
રાજકોટ.

निरयावलिकासूत्रका सम्मतिपत्र
 भागमबाराधि-सर्वप्रन्त्रस्वतन्त्र-जैनाचार्य पूज्यश्री
 आत्मारामश्री महाराजकी तरफका भाषा हुआ
 सम्मतिपत्र

शुधियान्ता ता ११ नवम्बर ४८

श्रीयुत् गुलाबन्दजी पानाबंदजी ! भाद्वर जयजिनेन्द्र ॥

पत्र आपका मिला, निरयावलिका विषय पूज्यश्रीका स्वास्थ्य
 ठीक न होनेसे उनके शिष्य पं श्री हेमचन्द्रजी महाराजने सम्मतिपत्र
 लिख दिया है, आपको भेज रहे हैं, कृपया एक कोपी निरयावलिका की
 और भेज दीजिये, और कोई योग्य सेवा कार्य लिखते रहें ।।

भवदीय
 गूजरमल-बख्ततराय जैन

॥ सम्मति ॥

(लेखक जैनमुनि पण्डित श्री हेमचंद्रजी महाराज)

सुन्दरयोचिनीटीकया समलङ्कित हिन्दी-गुर्जर-भाषानुयादमहितं च
 श्रीनिरयावलिकासूत्र मेधाविनामन्यमेषसां शोपकारकं भविष्यतीति
 सुदृढ मेजमिमन्तम्, संस्कृतटीकयं सरला सुषोभा सुललिता चात एव
 अन्वर्थनाम्नी आप्यस्ति । सुविशदत्वात् सुगमत्वात् प्रत्येकदुर्बोधपद-
 व्याख्यायुतत्वात् तैस्त्रैषां सकृत्समाधारणज्ञानयतामप्युपयोगिनी
 भाषिनीत्यभिप्रैमि । हिन्दी-गुर्जरभाषानुयादावपि एतद्भाषाविज्ञानां
 महीयसे ह्यभाय भवेतामिति सम्यक् संभावयामि ।

जैनाचार्य-जैनधर्मविधाकर-पूज्यश्री-घासीलालजी-महाराजानां
 परिभ्रमोज्य प्रणामनीयो, धन्यवादाद्वाङ्मते मुनिमसमा । एवमेव श्री-
 समीरमह्वजी-श्रीक हूलालजी-मुनियरेण्ययोर्मियोजनकार्यमपि श्लाघ्यं,
 तावपि च मुनियरौ धन्यवादाहो म्मः ।

सुन्दरप्रस्तावनायियपानुक्तमादिना समलङ्किते सूत्ररत्नोऽस्मिन् यदि
 शब्दकोषोऽपि दत्त स्यात्सहिं परतर स्यात् । यतोऽस्यावश्यकतां
 सर्वेऽप्यन्वयकविर्गामोऽनुभवन्ति ।

पाठका सूत्रम्याप्यगनाप्यापनेन खेत्तकनियोजकमदोद्यानां परि-
 भ्रम सकलपिप्यन्तीत्याशाम्भवे । इति ।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाँचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है, वारतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्रकाशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई । दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

શ્રી ૫૦૦૧૫ આપનાર આદિ સુરજીભી



(૨૧.) શ્રી ૬ આરસીભાઈ જીવજીભાઈ
સોલાપુર

श्री उपासकदशाङ्ग सूत्र परत्वे जैनसमाजना अग्रगण्य जैनधर्मभूषण
महान् विद्वान् संतोष तेमज विद्वान् श्रावकोए सम्मतिओ समर्पी
छे, तेमना नामो नीचे प्रमाणे छे-

- (१) लुधियाना-संवत् १९८९, आश्विन पूर्णिमाका पत्र, श्रुतज्ञान के
भंडार आगमरत्नाकर जैनधर्मदिवाकर श्री १००८ श्री उपाध्याय श्री
आत्मारामजी महाराज, तथा न्यायव्याकरणवेत्ता श्री १००७ तच्छिष्य
श्री मुनि हेमचन्द्रजी महाराज.
- (२) लाहौर-वि० सं० १९८९ आश्विन वदि १३ का पत्र, पण्डित श्री
१००८ श्री भागचन्दजी महाराज तथा तच्छिष्य पण्डितरत्न श्री १००७
श्री त्रिलोकचंदजी महाराज.
- (३) खीचन-से ता. ९-११-३६ का पत्र, क्रियापात्र स्थविर श्री १००८
श्री भारतरत्न श्री समरथमलजी महाराज.
- (४) बालाचोर-ता १४-११-३६ का पत्र, परमप्रसिद्ध भारतरत्न श्री
१००८ श्री शतावधानी श्री रत्नचंदजी महाराज.
- (५) बम्बई-ता. १६-११-३६ का पत्र, प्रसिद्ध कवीन्द्र श्री १००८ श्री
कवि नानचंद्रजी महाराज.
- (६) आगरा-ता. १८-१२-३६, जगत्-बल्लभ श्री १००८ जैनदिवाकर
श्री चौथमलजी महाराज, गुणवन्त गणीजी श्री १००७ श्री साहित्यप्रेमी
श्री प्यारचन्दजी महाराज.
- (७) हैद्राबाद-(दक्षिण) ता. २५-११-३६ का पत्र, स्थविरपदभूषित
भाग्यवान् पुरुष श्री ताराचंदजी महाराज, तथा प्रसिद्धवक्ता श्री १००७
श्री सोभागमलजी महाराज.
- (८) जयपुर-ता. २७-११-३६ का पत्र, संप्रदाय के गौरववर्धक शांत-
स्वभावी श्री १००८ श्री खूबचन्दजी महाराज.
- (९) अम्बाला-ता. २९-११-३६ का पत्र, परमप्रतापी पंजाबकेशरी श्री
१००८ श्री पूज्य श्री काशीरामजी महाराज.

- (१०) सेखाना-ठा २९-११-३६ का पत्र, शास्त्रोके ज्ञाता श्रीमान्
रतनलालजी बोसी
- (११) स्वीचन-ठा ९-११-३६ का पत्र, पंडितरत्न न्यायतीर्थ मुभाबक
श्रीयुग् माषकलालजी

सादर जय जिनेन्द्र

आपका भेजा हुआ उपासकदर्शांग सूत्र तथा पत्र मिला यहाँ विरा
जित प्रवर्तक धयोदृष्ट भी १००८ श्री ताराचंदजी महाराज पण्डित भी
किशनलालजी महाराज आदि ठाणा १४ सुख शांति में विराजमान हैं
आपके यहाँ विराजित जैनशास्त्राचार्य पूज्यपाद भी १००८ श्री
घासीलालजी महाराज आदि ठाणा नथ से हमारी धन्ना भज कर
सुख शांति पूछें, आपने उपासकदर्शांग सूत्र के विषय में यहाँ
विराजित मुनिवरों की सम्मति मंगाई, उसके विषय में वक्ता
भी सोभागमलजी महाराजने फरमाया है कि वर्तमानमें स्थानकवासी
समाजमें अनेकानेक विद्वान् मुनि महाराज मौजूद हैं मगर जैनशास्त्र
की वृत्ति रचनेका साहम जैसा घासीलालजी महाराजने किया है वैसा
अपने किया हो ऐसा नजर नहीं आता। दूसरा यह शास्त्र अत्यन्त
उपयोगी तो यों है ही, संस्कृत प्राकृत हिंदी और गुजराती भाषा होने से
चारों भाषा घाले एक ही पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं। जैनसमाज
में ऐसे विद्वानों का गौरव पड़े, यही शुभ कामना है। आशा है कि
स्थानकवासी सब विद्वानों की कदर करना सीखेगा।

योग्य लिम्बें शेष शुभ

मधवीप

जमनालाल रामलाल कीमती

आगरा से—

श्री अैनदियाकर प्रसिद्ध यक्षा जगद्वल्लभ मुनि श्री बोधमलजी
महाराज व पंडितरत्न मुष्यागप्यानी गणीजी श्री प्यारचण्ड जी
महाराज ने इस पुस्तक को अतीव पसन्द की है।

श्रीमान् न्यायतीर्थ पण्डित

माधवलालजी खाँचनसे लिखते हैं कि—

उन पंडितरत्न महाभाग्यवंत पुरुषों के सामने उनकी अगाध-
तत्त्वगवेषणा के विषय में मैं नगण्य क्या सम्मति दे सकता हूँ ।

परन्तु—

मेरे दो मित्रों ने जिन्होंने इसको कुछ पढ़ा है बहुत सराहना की है,
वारतव में ऐसे उत्तम व सबके समझने योग्य ग्रन्थों की बहुत
आवश्यकता है, और इस समाज का तो ऐसे ग्रन्थ ही गौरव बढ़ा
सकते हैं । ये दोनों ग्रन्थ वास्तव में अनुपम हैं । ऐसे ग्रन्थरत्नों के सुप्र-
काशसे यह समाज अमावास्या के घोर अन्धकारमें दीपावली का अनुभव
करती हुई, महावीर के अमूल्य वचनों का पान करती हुई अपनी उन्नति
में अग्रसर होती रहेगी ।



ता. २९-११-३६

अम्बाला (पंजाब)

पत्र आपका मिला । श्री श्री १००८ पंजाबकेसरी पूज्य श्री काशी-
रामजी महाराज की सेवा में पढ़ कर सुना दिया । आपकी भेजी हुई
उपासदशाङ्गसूत्र तथा गृहिधर्मकल्पतरुकी एक २ प्रति भी प्राप्त हुई ।
दोनों पुस्तकें अति उपयोगी तथा अत्यधिक परिश्रम से लिखी हुई हैं ।
ऐसे ग्रन्थरत्नों के प्रकाशित करवानेकी बड़ी आवश्यकता है । इन पुस्तकों
से जैन तथा अजैन सबका उपकार हो सकता है । आपका यह पुरुषार्थ
सराहनीय है ।

आपका

शशिभूषण शास्त्री

अध्यापक जैन हाईस्कूल

अम्बाला शहर

શ્રી ૫૦૦૧૭ આપનાર આદ્ય સુરભીશ્રી



(સ્વ.) શ્રી ધાર્મીભાઈ શંભુભાઈ
સોલાપુર



शान्तस्वभावी बैराम्यमूर्ति तत्वचारिणि, वैर्यधान भी जैनाचार्य पूज्यवर भी श्री १००८ श्री स्वयंभोजी महाराज साहेबने सध भी जपासकदशाही को देखा । आपने फरमाया कि पंडित मुनि भी घासीलासही महाराज ने ठपासक-दशाही छपकी टीका छिन्नेमें बडा ही परिभय किया है । इस समय इस प्रकार मरयेक सुभोंकी संशोधनपूर्वक सरल टीका और शुद्ध हिन्दी अनुवाद होनेसे मगवान निर्ग्रन्थों के प्रबचनों के अपूर्व रसका साम मिल सकता है ।



बासापोर से मास्तरत्न दयावधानी पंडित मुनि श्री १००८ श्री रतनचन्दजी महाराज फरमाते हैं कि—

उत्तरोत्तर जोतां मूल्मूर्तनी संस्कृत टीकाओ रचबामां टीकाकारे स्तुत्य प्रयास क्योँ छे, जे स्थानक्यासी समान माटे मगरूरी लेबा जेहुँ छे, बळी करानीना भी संजे सारा कागळ्मां अने सारा टाईपमां पुस्तक जपावी प्रगट क्युँ छे जे एक प्रकारनी साहित्य सेवा बनावी छे



बम्बई शहरमें विराजमान कवि मुनि श्री मानचन्दजी महाराजने फरमाया है कि पुस्तक सुन्दर है मयास बण्छा है ।



सीजन से स्वधिर क्रियात्पत्र मुनि भी रतनचन्दजी महाराज और पंडित रत्न मुनि श्री समर्थमज्जी फरमाते हैं कि—विद्वान् महात्मा पुरुषों का प्रयत्न सराहनीय है, जैनागम भीमद ठपासकदशाहीकी टीका, एवं उसकी सरल सुबोधिनी शुद्ध हिन्दी भाषा बडी ही सुंदरता से छिन्नी है ।



श्री वीतरागाय नमः ।

श्री श्री श्री १००८ जैनधर्मदिवाकर जैनागमरत्नाकर श्रीमज्जै-
नाचार्य श्री पूज्य घासीलालजी महाराज चरणवन्दन स्वीकार हो ।

अपरञ्च समाचार यह है कि आपके भेजे हुए ९ शास्त्र मास्टर
शोभालालजी के द्वारा प्राप्त हुए, एतदर्थ धन्यवाद ! आपश्रीजीने तो ऐसा
कार्य किया है जो कि हजारों वर्षों से किसी भी स्थानकवासी जैनाचार्यने
नहीं किया ।

आपने स्थानकवासीजैनसमाज के ऊपर जो उपकार किया है वह
कदापि भुलाया नहीं जा सकता और नहीं भुलाया जा सकेगा ।

हम तीनों मुनि भगवान महावीर से अथवा शासनदेव से प्रार्थना
करते हैं कि आपकी इस वज्रमयी लेखनीको उत्तरोत्तर शक्तिप्रदान
करें ता कि आप जैनसमाज से ऊपर और भी उपकार करते रहें, और
आप चिरञ्जीवी हों ।

हम हैं आपके मुनि तीन
मुनि सत्येन्द्रदेव, मुनि लखपतराय, मुनि पद्मसेन,

इतपारी बाजार

भागपुर ता १९-१२-५९

प्रबन्ध विद्वान् जैनाचार्य मुनिराज श्री घासीलालजी महाराजद्वारा जो आगमोद्धार हुआ और हो रहा है सम्बन्ध महाराम श्री का यह स्तुत्य कार्य है। हमने प्रचारकनी के द्वारा नौ सूत्रोंका सेट देखा और कई मार्मिक स्थलोंको पढ़ा, पढ़ कर विद्वान् मुनिराजश्री की शुद्ध भद्रा तथा छेखनीके प्रति हार्दिक प्रसन्नता फूट पड़ी।

वास्तवमें मुनिराज श्री जैन समाज पर ही नहीं इतर समाज पर भी गहरा छापकार कर रहे हैं। ज्ञान किसी एक समाजका नहीं होता वह सभी समाज की अनमोल निधि है जिसे कठिन परिश्रम से तैयार कर जनता के सम्मुख रखना ना रहा है, जिसका एक एक सेट हर शहर गांव और घर घरमें होना आनन्द्यक है।

साहित्यरत्न

मोहनशुनि सोहनशुनि जैन



શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રનું સમ્મતિપત્ર

શ્રમણ સઘના મહાન આચાર્ય આગમ વારિધિ સર્વતન્ત્રસ્વતંત્ર જૈનાચાર્ય પૂજ્યશ્રી આત્મારામજી મહારાજે આપેલા સમ્મતિપત્રનો ગુજરાતી અનુવાદ.

*

મે તથા પડિત મુનિ હેમચંદ્રજીએ પડિત મુલચંદ વ્યાસ (નામૌર મારવાઢવાલા) દ્વારા મળેલી પડિત રત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મુનિ વિરચિત સંસ્કૃત અને હિન્દી ભાષા સહિત શ્રી દશવૈકલિક સૂત્રની આચારમણિમંજૂષા ટીકાનું અવલોકન કર્યું આ ટીકા સુદર બની છે તેમા પ્રત્યેક શબ્દોનો અર્થ સારી રીતે વિશેષભાવ લઈને સમજાવવામા આવેલ છે

તેથી તે વિદ્વાનો અને સાધારણ બુદ્ધિવાળાઓ માટે ઉપકાર કરવાવાળી છે ટીકાકારે મુનિના આચાર વિષયનો ઉલ્લેખ સારો કરેલ છે. જે આધુનિક-મતાવલખી અહિંસાના સ્વરૂપને નથી જાણુતા, ક્યામાં પાપ સમજે છે તેમને માટે 'અહિંસા શું વસ્તુ છે' તેનું સારી રીતે પ્રતિપાદન કરેલ છે. વૃત્તિકારે સૂત્રના પ્રત્યેક વિષયને સારી રીતે સમજાવેલ છે. આ વૃત્તિના અવલોકનથી વૃત્તિકારની અતિશય યોગ્યતા સિદ્ધ થાય છે

આ વૃત્તિમા એક બીજી વિશેષતા એ છે કે મૂલસૂત્રની સંસ્કૃત છાયા હોવાથી સૂત્ર, સૂત્રના પદ અને પદચ્છેદ સુબોધદાયક બનેલ છે

પ્રત્યેક જ્ઞાસુએ આ ટીકાનું અવલોકન અવશ્ય કરવું જોઈએ. વધારે શું કહેવું? અમારી સમાજમા આવા પ્રકારના વિદ્વાન મુનિરત્નનું હોવું એ સમાજનું અહોભાગ્ય છે આવા વિદ્વાન મુનિરત્નોના કારણે સુમપ્રાય-સુતેલો સમાજ અને હુમપ્રાય એટલે લોપ પામેલું સાહિત્ય એ બન્નેનો ફરીથી ઉદય થશે અને વૃત્તિકારને વારવાર ધન્યવાદ આપીએ છીએ

વિક્રમ સવત ૧૯૬૦ ફાલ્ગુન શુકલ
તેરસ મગળવાર
(અલવર સ્ટેટ)

} ઈતિ
ઉપાધ્યાયજૈનમુનિ આત્મારામ
(પંજબી)

બ્રમણ સમના પ્રચારમત્રી પબ્લબકેશરી મહારાજ શ્રી પ્રેમચંદલ
મહારાજ એએમ્સી રાજકોટમાં પધારલ હતા ત્યારે તેઓના તરફથી શાઓને
માટે બનેલો અભિપ્રાય.



શાઓદારશ્રમિતિ તરફથી પૂબ્લપાઠ શાસ્ત્રનારિષિ પંડિતરાજ સ્વામીશ્રી
વાલીલાલ મહારાજ દ્વારા શાઓદારશ્રી જે કાર્ય ચર્ચરહુ છે તે કાર્ય જ્ઞેનસમાજ
તેમાં ખાસ કરીને સ્થાનાકવાસીજ્ઞેનસમાજને માટે મૂળભૂત મૌલિક સંસ્કૃતની
જડને મજબુત કરવાપણુ છે

જેટલા ખાતર આ કાર્ય જ્ઞતિ પ્રશસનીય છે માઠે દરેક અભિવ્યજે તેમાં
વશાસ્કૃત સોજ રેવાની ખાસ આવરવજતા છે અને તેથી જ્ઞે સર્ગીરમ કાર્ય જલ્દીથી
જલ્દી સ પૂર્ણપણે પાર પાડી શકાય અને જનતા સુતર્યાનનો લાભ મેળવી શકે



દરીયાપુર સંપ્રદાયના પૂબ્લ અધ્યાર્ય શ્રી ઈશ્વરલાલ મહારાજ સાહેબના

સૂત્રો સખ ઘે વિચારો

નમામિ વીર જિસ્સારખીર

પૂબ્લપાઠ સાનિખર શ્રી વાલીલાલ મહારાજ તથા પંડિતશ્રી કનેવાલાલ
મહારાજ આદિ શાશ્રી જ્ઞી સેવામાં—

અમદાવાદ શાકપુર લખામળી સુનિ દવાનદલના ૧૦૮ પ્રજિપાત.

આપ સવે શાશ્રીઓ સુખ સમાધિમાં હશે નિરતર ધર્મધ્યાન ધર્મસ-
ધનામા લીન હશે

સુત પ્રકાશન કાર્ય ત્વસ્તિ શાવ જોવી ભાવના છે દરરેકાલિક તથા
આચારાંજ જોકે જોકે લાજ અહી છે, ટીકા સુખ સુદર, સરજ અને અર્થ શાધે પ્રકા-
શન શાવ તે આવજગણ તેનો વિશેષ લાભ લઈ શકે, અને પૂબ્લ અધ્યાર્ય સુદરેવને
આંજે મોતીધા ઉતરાઓ છે અને આરૂ છે જ્ઞેજ

અસો સુદ ૧૦, મગજવાર, તા. ૨૫-૧૦-૪૫

પુનઃ પુનઃ શાતા ઈશ્વરો,
દવાસુનિયા પ્રજિપાત.



દરિયાપુર સંપ્રદાયના પંડિતરત્ન ભાઈચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય
શ્રી

ગાગુપુર તા. ૧૯-૧૨-૧૯૫૫

પૂજ્યપાદ જ્ઞાનિવર પંડિતરત્ન પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ આદિ
મુનિવરોની મેવામા, આપ સર્વ સુખસમાધીગા હશે.

સૂત્રપ્રકાશનનું કામ સુદર ધર્ષ રહ્યું છે તે વાજી અત્યંત આનંદ આપના
પ્રકાશિત થયેલાં કેટલાક સૂત્રો મેં જોયા. સુદર અને મગ્લ મિદ્ધાનના ન્યાયને પુષ્ટિ
કરતી ટીકા પંડિતરત્નોને મુપ્રિય ધર્ષ પડે તેવી છે મૂત્રપ્રકાશનનું કામ
ત્વરિત પૂર્ણ થાય અને ભવિ આત્માઓને આત્મકલ્યાણ કરવામા આધનભૂત
થાય એજ અભ્યર્થના

લી. પંડિતરત્ન બાળપ્રદાયારી
૫૦ શ્રી ભાઈચંદ્ર મહારાજની
આજ્ઞાનુચાર શાન્તિમુનીના
પાયવદન સ્વીકારશે

*

તા. ૧૧-૫-૫૬
વિરમગામ

ગરુડાધિપતિ પૂજ્ય મહારાજ શ્રી જ્ઞાનચંદ્રજી મહારાજના સંપ્રદાયના
આત્માર્થી, ક્રિયાપાત્ર, પંડિતરત્ન, મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજનો અભિપ્રાય.

ખીચનથી આવેલ તા ૧૨-૨-૫૬ના પત્રથી ઉદ્ભૂત.

પૂજ્ય આચાર્ય ઘાસીલાલજી મહારાજના હસ્તક જે સૂત્રોનું લખાણ સુદર
અને સરળ ભાષામા થાય છે તે સાહિત્ય, પંડિત મુનિશ્રી સમરથમલજી મહારાજ
સમય જોછો મળવાને કારણે સંપૂર્ણ જોઈ શક્યા નથા છતા જેટલું સાહિત્ય
જોયું છે, તે બહુ જ સારૂ અને મનન સાથે લખાયેલું છે, તે લખાણ શાસ્ત્ર-આજ્ઞાને
અનુરૂપ લાગે છે આ સાહિત્ય દરેક શ્રદ્ધાળુ જીવોને વાચવા યોગ્ય છે આમા
સ્થાનકવાસી સમાજની શ્રદ્ધા, પ્રરૂપણા અને ફરસણાની દૃઢતા શાસ્ત્રાનુરૂપ છે.
આચાર્યશ્રી અપૂર્વ પરિશ્રમ લઈ સમાજ ઉપર મહાન ઉપકાર કરે છે

લી. કિશનલાલ પૃથ્વીરાજ માલુ.
સુ ખીચન

*

શ્રીજીવી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી છોટાલાલજી

મહારાજનો અભિપ્રાય

શ્રી વીતરાજદેવે જ્ઞાનપ્રચારને તીર્થંકર-વ્રમ-જોત્ર વાંધવાનું નિમિત્ત રહેલ છે જ્ઞાનપ્રચાર કરનાર, કરવામાં સહાય કરનાર અને તેને જનુમોહન આપનાર, જ્ઞાનાવરણીય કર્મોના ક્ષય કરી ઠેવળ જ્ઞાનને પ્રાપ્ત કરી પરમપદના અધિકારી બને છે. શાસ્ત્ર પરમ શાન્ત અને અપ્રમાદી પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે અવિશ્વાન્તપણે જ્ઞાન્તી ઉપાસના અને તેની પ્રભાવના અનેક વિકટ પ્રસંગોમાં પણ કરી રહ્યા છે તે માટે તેઓશ્રી અનેકશઃ ખન્યવાદના અધિકારી છે વદનીય છે તેમની રાષ્ટ્રપ્રભાવનાની ધગશ ઘણા પ્રમાદિઓને જનુકરણીય છે જેમ પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ પોતે જ્ઞાન પ્રચાર માટે અવિશ્વાન્ત પ્રયત્ન કરે છે. તેમજ-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના કાર્યવાહકો પણ જેમાં સહાય કરીને જે પવિત્ર સેવા કરી રહેલ છે તે પણ ખરેખર ખન્યવાદના પૂર્ણ અધિકારી છે.

જે સમિતિના કાર્યકરોને મારી જેક સુચના છે કે—

શાસ્ત્રોદ્ધાર પ્રવર પદ્ધિ અપ્રમાદી સત ઘાસીલાલજી મહારાજ જે શાસ્ત્રોદ્ધારકનું કામ કરી રહેલ છે. તેમાં સહાય કરવા માટે-પદ્ધિ વિચેરના માટે જે જાણી થઈ રહેલ છે તેને પહોંચીવળવા માટે શાસ્ત્ર અરજી રૂક બેઈજે. જેના માટે મારી જે સુચના છે કે-શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિના મુખ્ય કાર્યવાહકો-જે બની શકે તે પ્રયુજ પોતે અને બીજા બે ત્રણ જણાઓ સુખસત, સૌરાષ્ટ્ર અને કચ્છમાં પ્રવાસ કરી મેળવે જતાવે અને અર્થિક સહાય મેળવે.

જે કે અલ્પારની પરિસ્થિતિ વિષમ છે બ્યારીઓ, ખંધારીઓને પિતાના અવધાર સાબવવા પણ ટુરફેલ જન્મા છે. છતાં જે સભાવિત યુદ્ધસ્થે મનાસે નીકળે તે જરૂર કાર્ય શાસ્ત્ર કરે જેવી મને શ્રદ્ધા છે.

આર્થિક અનુકૂળતા વધારી શાસ્ત્રોદ્ધારક કામ પણ વધુ સરલતાથી થઈ શકે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ નાં મુખી આ વરક વિચરે છે ત્યાં મુખીમાં જેમની જ્ઞાનશક્તિને જેટલો લાભ લેવાય તેટલો લઈ લેવો, કદાચ સૌરાષ્ટ્રમાં વધુ વળત રહેવાથી તેમને હવે વધાર વિહરવાની ઈચ્છા થતી હોય તેા શાન્તિભાઈ શેઠ જેવાજે વિનંતિ કરી અમદાવાદ પધરાવવા, અને ત્યાં જનુકૂળતા મુજબ બે-ત્રણ વર્ષની સ્થિતિ કરાવીને તેમની પાસે શાસ્ત્રોદ્ધારક કામ પણ કરાવી લેવું બેઈજે.

થોડા વળતમાં અમલોધારમાં શાસ્ત્રોદ્ધારકમીટી મળવાની છે, તે વળતે ઉપરની સુચના વિચારવા તે ઠીક.

ક્રી શાસ્ત્રોદ્ધારક પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજને એમની આ સેવા અને પરમ કલ્યાણકારક પ્રવૃત્તિને માટે વારંવાર અભિનંદન છે. શાસનનાયક દેવ તેમના શરીરાદિને સશકત અને દીર્ઘાયુ રાખે જેથી સમાજ ધર્મની વધુ ને વધુ સેવા કરી શકે ૐ અસ્તુ.

ચાતુર્માસ સ્થળ લીખડી } લી.
સ. ૨૦૧૦ શ્રાવણ વદ ૧૩ ગુરૂ } સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

*

શ્રી વર્ધમાન સંપ્રદાયના પૂજ્યશ્રી પુનમચંદ્રજી મહારાજનો અભિપ્રાય

શાસ્ત્રવિશાદ પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ જૈન આગમો ઉપર જે સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચેલ છે તે માટે તેઓશ્રી ધન્યવાદને પાત્ર છે તેમણે આગમો ઉપરની સ્વતંત્ર ટીકા રચીને સ્થાનકવાસી જૈન સમાજનું ગૌરવ વધાર્યું છે, આગમો ઉપરની તેમની સસ્કૃત ટીકા ભાષા અને ભાવની દૃષ્ટિએ ધણી જ સુદર છે સસ્કૃતરચના માધુર્ય તેમજ અલંકાર વગેરે ગુણોથી યુક્ત છે વિદ્વાનોએ તેમજ જૈન સમાજના આચાર્યો, ઉપાધ્યાયો વગેરે એ શાસ્ત્રો ઉપર રચેલી આ સસ્કૃતરચનાની કદર કરવી જોઈએ અને દરેક પ્રકારનો સહકાર આપવો જોઈએ.

આ મહાન કાર્યમા પરિતરત્ન પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જે પ્રયત્ન કરી રહ્યા છે તે અલૌકિક છે. તેમનું આગમ ઉપરની સસ્કૃત ટીકા વગેરે રચવાનું ભગીરથકાર્ય શીઘ્ર સફળ થાય એજ શુભેચ્છા સાથે

અમદાવાદ }
તા ૨૨-૪-૫૬ રવીવાર } મુનિ પુનમચંદ્રજી
મહાવીર ન્યાંતિ }

*

ખંભાત સંપ્રદાયના મહાસતી શારદાબાઈ સ્વામીનો અભિપ્રાય
લખતર તા ૨૫-૪-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાતીલાલબાઈ મગળદાસબાઈ.

પ્રમુખ સાહેબ અખિલ ભારત પ્રવેં સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ

મુ અમદાવાદ

અમો અત્રે દેવગુરૂની કૃપાએ સુખરૂપ છીએ. વિ. મા આપની સમિતિદ્વારા પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ સાહેબ જે સૂત્રોનું કાર્ય કરે છે તે પૈકીના સૂત્રોમાંથી ઉપાસકદશાંગસૂત્ર, આચારાગસૂત્ર, અનુત્તરોપપતિકસૂત્ર

દશવૈકલિકસૂત્ર વિગેરે સૂત્રો જોમાં તે સૂત્રો અસ્તુત દિન્દી અને સુલ્યાવી
ભાષાઓમાં હોવાને કારણે વિદ્વાન અને સામાન્ય જનોને ઘણું જ લાભદાયક
છે તે વાંચન ઘણું જ સુદર અને મનોરંજન છે આ કાર્યમાં પૂજ્ય બાબા
યશી જે આપણે પુરુષાય કાય કરે છે તે માટે વારંવાર ખન્નવાદને પાત્ર છે
આ સૂત્રોથી સમાજને ઘણો લાભ થવા સંભવ છે

હવે સમાન બુદ્ધિવાળા આત્માઓ સ્વપસ્ના લેઈથી નિખાલસ ભાવનાઓ
જાવડોક કરશે તો આ સંહિત્ય સ્થાનકવાસી સમગ્ર માટે અપૂર્વ અને ઝોસ્વ
લેવા જેવું છે હરેક જાન આત્માઓને સૂચન કરૂ છું કે આ સૂત્રો પોત-
પોતાના ઘરમાં વસાવવાની સુદર તકને ચૂકસો નહિ. કારણ આવા શુદ્ધ પવિત્ર
અને સ્વપરપરાને પુષ્ટિરૂપ સૂત્રો મળવાં બહુ મુશ્કેલ છે આ કાર્યમાં આપણી
વધા સમિતિના અન્ય કાર્યકરો જે શ્રમ લઈ રહ્યા છે તેમાં મહાન નિર્ભરાનુ
કારણ જોવામાં આવે છે તે બદલ ખન્નવાદ જો જ

લી શાસ્ત્રાખ્યાઈ સ્વામી
ખલાત સમદાય



બસ્વાળા સમ્રહામના વિદુષી મહાસતીજી મેઘીબાઈ
સ્વામીનેા અભિગ્રાથ

ધ્રુકા વા ૨૭-૧-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તીલાલ મજળદાસબાઈ
પ્રમુખ અ. ભા. પ્રવે. સ્વા બૈનશાસ્ત્રોદાર સમિતિ
મુ રાજકોટ

અત્રે બીરાજતા મુ. બુ ના બહાર મહાસતીજી વિદુષી મેઘીબાઈ સ્વામી
વધા હીરાજાઈ સ્વામી આદિશ્રીનાં જન્ને સુખશાવતાં બીરાજે છે આપને સૂચન છે
કે અપ્રમત્ત જાવસ્થામાં રહી નિવૃત્તિ ભાવને મેળવી ખર્મખાન કરશે જોજ આશા છે

વિશેષમાં અમને પૂજ્ય બાબાઈ મહારાજ શ્રી ઘાચીલાલજી મહારાજના
સ્નેહાં સૂત્રો ભાઈ પોપટ બનજીભાઈ વરહુષી લેટ વરીકે મળેલાં તે સૂત્રો વખામ
આયોધાન્ત વાંચ્યાં મનન કર્યાં અને વિચાર્યાં છે તે સૂત્રો સ્થાનકવાસી સમાજને
અને બીતરાત્રમાત્રને ખુબ જ ઉન્નવ બનાવનાર છે તેમાં આપણી મહા બેટલી
આયરૂષથી બરેલી છે તે આપણા સમાજ માટે ઝોસ્વ લેવા જેવું છે હવે સમાન

આત્માઓ જ્ઞાનઝરણાઓથી આત્મરૂપવાડીને વિકસિત કરશે, ધન્ય છે આપને અને સમિતિના કાર્યકરોને જે સમાજ ઉત્થાન માટે કોઈની પણ પરવા કર્યા વગર જ્ઞાનનું દાન લેવ્યું આત્માઓને આપવા નિમિત્તરૂપ થઈ રહ્યા છો આવા સમર્થ વિક્ષાન પાસેથી સંપૂર્ણ કાર્ય પુરૂ કરાવશે તેવી આશા છે.

એજ લિ. બરવાળા સંપ્રદાયના વિદુષી

મહાસતીજી મોંઘીબાઈ સ્વામી

ના ફરમાનથી લી. ખોડીદાસ ગણેશભાઈ—ધધુકા

સ્થાનકવાસી જૈન સઘના પ્રમુખ

*

અદ્યતન પદ્ધતિને અપનાવનાર વડોદરા કોલેજના એક વિક્ષાન પ્રોફેસરનો અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ જૈનશાસ્ત્રોના સંસ્કૃત ટીકાબદ્ધ, ગુજરાતીમાં અને હિન્દીમાં ભાષાંતરો કરવાના ઘણા વિકટ કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. શાસ્ત્રો પૈકી જે શાસ્ત્રો પ્રસિદ્ધ થયા છે તે હું જોઈ શક્યો છું, મુનિશ્રી પોતે સંસ્કૃત, અર્ધભાગથી હિંદી ભાષાઓના નિષ્ણાત છે એ એમનો ટુક પરિચય કરતા સહજ જણાઈ આવે છે શાસ્ત્રોનું સંપાદન કરવામાં તેમને પોતાના શિષ્ય વર્ગનો અને વિશેષમા ત્રણ પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે તે જોઈ મને આનંદ થયો સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયના અગ્રેસરોએ પડિતોનો સહકાર મેળવી આપી, મુનિશ્રીના કાર્યને સરળ અને શિષ્ટ બનાવ્યું છે સ્થાનકવાસી સમાજમા વિક્ષાતા, ઘણી ઓછી છે, તે દિગંબર મૂર્તિપૂજક પ્રવેતાબર વગેરે જૈનદર્શનના પ્રતિનિધિઓના ઘણા સમયથી પરિચયમાં આવતા હું વિરોધના ભય વગર કહી શકું પૂં મહારાજને આ પ્રયાસ સ્થાનકવાસી સંપ્રદાયમા પ્રથમ છે એવી મારી માન્યતા છે સંસ્કૃત સ્પષ્ટીકરણો સારા આપવામા આવ્યા છે, ભાષા શુદ્ધ છે એમ ચોક્કસ કહી શકું છું ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ શુદ્ધ અને સરળ થયેલા છે મને વિશ્વાસ છે કે મહારાજશ્રીના આ સ્તુત્ય પ્રયાસને જૈનસમાજ ઉત્તેજન આપશે અને શાસ્ત્રોના ભાષાંતરોને વાચનાલયમા અને કુટુંબોમા વસાવી શકાય તે પ્રમાણે વ્યવસ્થા કરશે

પ્રતાપગજ, વડોદરા

કામદાર કેશવલાલ હિંમનરામ

તા. ૨૭-૨-૧૯૫૬

સુબધની બે ઠોલેબેના પ્રોફિસરોનો અભિપ્રાય

સુબધ વા ૩૧-૩-૫૬

શ્રીમાન શેઠ શાન્તિલાલ મગજલાલ

પ્રમુખ : શ્રી અખિલ ભારત ગ્રે. સ્થા. બૈનશાસ્ત્રોદારસમિતિ,

રાજકોટ

પૂજ્યાર્ય શ્રી ઘાસીલાલ મહાશયે તેવાર કરેલાં આવ્યાસમ, દર્શવેકા લિંક આપસમક, ઉપાસકમહાશય વગેરે સૂત્રો અને બ્લેયાં. આ સૂત્રો ઉપર સંસ્કૃતમાં ટીકા આપવામાં આવી છે, અને સાથે હિંદી અને ગુજરાતી ભાષાંતરો પણ આપવામાં આવ્યા છે. સંસ્કૃતટીકા અને ગુજરાતી તથા હિંદી ભાષાંતરો બોલતાં આવ્યાંશ્રીના આ ત્રણે ભાગા પરના બેક સરખા અસાધારણ પ્રયુત્વની સમોટ અને મુરેખ છાપ વટે છે. આ સૂત્ર જ્યોમા પાને પાને પ્રગટ થતી આવ્યાંશ્રીની અપ્રતિમ વિદ્વત્તા મુગ્ધ કરી હે તેવી છે. ગુજરાતી તથા હિંદીમાં કયેલાં ભાષાંતરમાં ભાષાની શુદ્ધિ અને સરળતા નોખવાત છે. બેકી વિદ્વજન અને સાધારણ માણસ ઉભયને સતોષ આપે બેવી બેમની હેમનીની પ્રતીતિ થાય છે. ૩૨ સૂત્રોમાંથી હેનુ ૧૩ સૂત્રો પ્રગટ થયા છે. બીજા ૭ સૂત્રો લખાઈને તેવાય થઈ ગયાં છે. આ બધાં જ સૂત્રો ત્યારે બેમને હાથે તેવાર થઈને પ્રગટ થયે ત્યારે બૈન સૂત્ર-સાહિત્યમાં અમૂલ્ય અપત્તિરૂપ ગણાયે બેમાં સથય નથી. આવ્યાંશ્રીના આ મહાન કર્મને બૈનસમાજનો વિશેષત સ્થાનકવાસી સમાજનો સપૂણ સહકાર સાપરી રહેયે બેવી અને આવ્યા સખીબે છીબે.

પ્રો. રમણલાલ શ્રીમનલાલ શાહ

સેટ ગેવિયસ ઠોલેજ, સુબાઈ

પ્રો. તારા રમણલાલ શાહ

સોફીયા, કલોજ સુબાઈ

*

રાજકોટ ધર્મેન્દ્રસિંહલ ઠોલેજના પ્રોફિસર સાહેબનો અભિપ્રાય

જયમહાલ

બત્રનાથ પ્લોટ

રાજકોટ, વા. ૧૮-૪-૫૬

પૂજ્યાર્ય પ મુનિશ્રી ઘાસીલાલ મહાશય આને બૈનસમાજ માટે બેક બેવા કાર્યમાં વ્યાસ થયેલા છે. હે ને સમાજ માટે બહુ ઉચ્ચોગી થઈ પડયે. મુનિશ્રીબે તેવાર કરેલાં આવ્યાંશ્રી, દર્શવેકાલિક, શ્રી વિપકમુત વિ. મે બ્લેયાં

આ સૂત્રો જોતા પહેલી જ નજરે મહારાજશ્રીનો સંસ્કૃત, અર્ધભાગધી, હિન્દી તથા ગુજરાતી ભાષાઓ ઉપરનો અસાધારણ કાબુ જણાઈ આવે છે એક પછી ભાષા મહારાજશ્રીથી અબણી નથી આપણે જોઈએ છીએ કે એ મૂત્રો ઉચ્ચ અને પ્રથમ કોટીના છે તેની વસ્તુ ગભીર, આપક અને જીવનને તલસ્પર્શી છે, એટલા ગહન અને સર્વશ્રાહ્ય સૂત્રોનું ભાષાતર પૂઠ ઘાસીલાલજી મહારાજ જેવા ઉચ્ચ કોટીના મુનિરાજને હાથે થાય છે તે આપણા અહોભાગ્ય છે યત્રવાદ અને ભૌતિકવાદના આ જમાનામાં ન્યારે ધર્મભાવના ઓમરતી નય છે એવે વખતે આવા તત્ત્વજ્ઞાન આધ્યાત્મિકતાથી ભરેલા મૂત્રોનું સરળ ભાષામાં ભાષાતર દરેક જિજ્ઞાસુ, મુમુક્ષુ અને સાધકને માર્ગદર્શક થઈ પડે તેમ છે જૈન અને જૈનેતર, વિદ્વાન અને સાધારણ માણસ સાધુ અને શ્રાવક દરેકને સમજણ પડે તેવી સ્પષ્ટ સરળ અને શુદ્ધ ભાષામાં સૂત્રો લખવામાં આવ્યા છે મહારાજશ્રીને ન્યારે જોઈએ ત્યારે તેમના આ કાર્યમાં સકળાયેલા જોઈએ છીએ એ ઉપરથી મુનિશ્રીના પરિશ્રમ અને ધગશની કદવના કરી શકાય તેમ છે તેમનું જીવન સૂત્રોમાં વણાઈ ગયું છે.

મુનિશ્રીના આ અસાધારણ કાર્યમાં પોતાના શિષ્યોનો તથા પડિતોનો સહકાર મળ્યો છે અને આશા છે કે જો દરેક મુમુક્ષુ આ યુસ્તકોને પોતાના ધરમાં વસાવશે અને પોતાના જીવનને સાચા સુખને માર્ગે વાળશે તો મહારાજશ્રીએ ઉઠાવેલો શ્રમ સંપૂર્ણપણે સફળ થશે

પ્રો રસીકલાલ કેસ્તુરચંદ ગાંધી
એમ એ એલ. એલ ખી
ધર્મેન્દ્રસિંહજી કોલેજ
રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર)

*

મુંબઈ અને ઘાટકોપરમાં મળેલી સભાએ બિનાસર કોન્ફેરન્સ તથા સાધુસંમેલનમાં મોકલાવેલ ઠરાવ

હાલ જે વખત શ્રી શ્વેતાખર સ્થાનકવાસી જૈન સઘ માટે આગમ સંશોધન અને સ્વતંત્ર ટીકાવાળા શાસ્ત્રોદ્ધારની અતિ આવશ્યકતા છે અને જે મહાનુંભાવોએ આ વાત દીર્ઘ દૃષ્ટિથી પહેલી પોતાના મગજમાં લઈ તે પાર પાડવા મહેનત લઈ રહ્યા છે તેવા મુનિ મહારાજ પડિતરત્ન શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ કે જેઓને સાદરી અધિવેશનમાં સર્વાનુમતે સાહિત્યમત્રી નીમ્યા છે, તેઓશ્રીની દેખરેખ નીચે આ ભા. શ્વે. સ્થા. જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ જે એક મોટી વગવાળી કમિટી છે તેની મારફતે કામ થઈ રહ્યું છે જેને પ્રધાનાચાર્યશ્રી તથા પ્રચારમત્રીશ્રી

તથા અનેક અનુભવી મહાનુભાવોએ પોતાની પસંદગીની મહોર છાપ આપી છે અને છેલ્લામાં છેલ્લા વડોદરા મુનિવર્ધાનીના પ્રિન્સિપલ કેશવલાલ કામદાર એમ. એ. પોતાનું સવિસ્તર પ્રમાણપત્ર આપ્યું છે તે શાસ્ત્રોદાર કમિટીના કામને આ સમિલન તથા ફેલોશિપ્સ હાર્દિક અભિનંદન આપે છે અને તેમના કામને બધા બધા અને જે જે જરૂર પડે-પડિતોની અને નાણાંની તે તે પોતાની પાસેના ફઠમથી અને બહુર જનતા પાસથી મદદ મળે તેવી ઈચ્છા ધરાવે છે

આ શાસ્ત્રો અને ટીકાઓને બધારે આટલી જખી પ્રશંસાપૂર્વક પસંદગી મળી છે ત્યારે તે કામને મદદ કરવાની આ ઠેા ઠોરણ પોતાની ફરજ માને છે અને જે કોઈ તુટી હોય તે પ ર શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજની સનિધ્યમાં જઈ બતાવીને સુધારવા પ્રયત્ન કરવો આ કામને ટકાવવા જેવું કોઈ પણ કામ સત્તા ઉપસ્થા અધિકારીઓના વાણી કે વર્તનથી ન થાય તે બેવા પ્રયુજ સાહેબને બહામણુ કરે છે

(૨૪૫ જૈન પત્ર તા ૪-૫-૫૬)



સ્વતંત્રવિચારક અને નિહર લેખક ‘જૈનસિદ્ધાંત’ના તત્ત્વી
શેઠ નજીનદાસ ઝીરધરલાલનો અભિપ્રાય

શ્રી સ્થાનકવાસી શાસ્ત્રોદાર સમિતિ સ્થાપીને પૂ. ઘાસીલાલજી મહારાજને સૌરાષ્ટ્રમાં બાલાવી તેમની પાસે જતીસે સૂત્રો તૈયાર કરવાની દિલચાલ બાલવી હતી ત્યારે તે દિલચાલ કરનાર શાસ્ત્રજ્ઞ શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ સાથે મારે પત્રબંધાર ચાલેલો ત્યારે શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈએ તેમના એક પત્રમાં મને લખેલું કે—

આપણા સૂત્રોના મૂળ પાઠ તપાસી શુદ્ધ કરી સસ્કૃત સાથે તૈયાર કરી શકે તેવા સ્થાનકવાસી સપ્રદાયમાં મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મ. સિવાય મને કોઈ વિશેષ વિદ્વાન મુનિ બેવામાં આપવા નથી હાંખી તપાસને જતે મે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીને પસંદ કરેલા છે

શેઠ શ્રી દામોદરદાસભાઈ પિતે વિદ્વાન હતા. શાસ્ત્રજ્ઞ હતા તેમ વિચારક પણ હતા. આપણે તેમજ મુનિઓ પણ તેમની પાસેથી શિક્ષા વાંચના હોતા, તેમ શાળયર્થા પણ કરતા. બેવા વિદ્વાન શેઠશ્રીની પસંદગી વધાય જ હોય એમાં

નવાઈ નથી અને પૂ શ્રી ઘાસીલાલજીના ખનાવેલા સૂત્રો જોતા સૌ કોઈને ખાત્રી થાય તેમ તે કે દામોદરદાસભાઈએ તેમજ સ્થાનકવાસી સમાજે જેવી આશા શ્રી ઘાસીલાલજી મ પાસેથી રાખેલી તે ખરાખર ફળીભૂત થયેલ છે

શ્રી વર્ધમાન શ્રમણસઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજે શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના સૂત્રો માટે ખાસ પ્રશંસા કરી અનુમતિ આપેલ છે તે ઉપરથી જ શ્રી ઘાસીલાલજી મ ના સૂત્રોની ઉપયોગિતાની ખાત્રી થશે.

આ સૂત્રો વિદ્યાર્થીને, અભ્યાસીને તેમજ સામાન્ય વાચકોને સર્વને એક સરખી રીતે ઉપયોગી થઈ પડે છે વિદ્યાર્થીને તેમજ અભ્યાસીને મૂળ તથા સંસ્કૃત ટીકા વિશેષ કરીને ઉપયોગી થાય તેમ છે ત્યારે સામાન્ય હિંદી વાચકને હિંદી અનુવાદ અને ગુજરાતી વાચકને ગુજરાતી અનુવાદથી આખું સૂત્ર સરળતાથી સમજાય છે.

કેટલાકનો એવો ભ્રમ છે કે સૂત્રો વાચવાનું કામ આપણું નહિ, સૂત્રો આપણને સમજાય નહિ આ ભ્રમ તદ્દન ખોટો છે ખીજા કોઈ પણ શાસ્ત્રીય પુસ્તક કરતા આ સૂત્રો સામાન્ય વાચકને પણ ઘણી સરળતાથી સમજાઈ જાય છે. સામાન્ય માણસ પણ સમજી શકે તેટલા માટે જ ભગવાન મહાવીરે તે વખતની લોકભાષામા (અર્ધમાગધી ભાષામા) સૂત્રો ખનાવેલાં છે એટલે સૂત્રો વાચવા તેમજ સમજવામા ઘણા સરળ છે.

માટે કોઈ પણ વાચકને એનો ભ્રમ હોય તો તે કાઢી નાંખવો અને ધર્મનું તેમજ ધર્મના સિદ્ધાંતોનું સાચું જ્ઞાન મેળવવા માટે સૂત્રો વાચવાને ચૂકવું નહિ એટલું જ નહિ પણ જરૂરથી પહેલાં સૂત્રો જ વાચવા

સ્થાનકવાસીઓમા આ શ્રી સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ જે કામ કર્યું છે અને કરી રહી છે તેવું કોઈ પણ સંસ્થાએ આજ સુધી કર્યું નથી. સ્થાં જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના છેડલા રિપોર્ટ પ્રમાણે ખીજા છ સૂત્રો લખાયેલ પડ્યા છે, જે સૂત્રો-અનુયોગદ્ધાર અને ઠાણાગ સૂત્ર-લખાય છે તે પણ થોડા વખતમા તૈયાર થઈ જશે તે પછી ખાકીના સૂત્રો હાથ ધરવામા આવશે

તૈયાર સૂત્રો જલ્દી છપાઈ જાય એમ ઈચ્છીએ છીએ અને સ્થાં બધુઓ સમિતિને ઉત્તેજન અને સહાયતા આપીને તેમના સૂત્રો ધરમા વસાવે એમ ઈચ્છીએ છીએ

‘જૈન સિદ્ધાંત’ પત્ર-મે ૧૯૫૫

શ્રુત-મઠિત

(૫૦ આચાર્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મં સા ની આગ્રા અનુસાર લખનાર)

દ. સ. ના જૈન મુનિ શ્રી દયાનંદજી મહારાજ

તા ૨૩-૬-૫૬ શાહપુર, અમદાવાદ

આજે લગભગ ૨૦ વર્ષથી અદ્યેષ પરમપૂજ્ય. જ્ઞાનદિવાકર ૫૦ મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મં સરમ તીર્થંકર ભગવાન મહાવીરના અનુત્તર, અનુપમ ન્યાય મુક્ત પૂર્ણપર અવિરોધસ્વરૂપ કલ્યાણકારક, સરમ શીતળ વાણીના ઘોતક જેવા શ્રી જિનાગમ પર પ્રકાશ પાડે છે તેઓશ્રી પ્રાચીન, પૌરાણિક સંસ્કૃત્યક્રિ અનેક ભાષાના પ્રચર પઠિત છે અને જિનવાણીનો પ્રકાશ સંસ્કૃત, શુભરાવી અને હિંદીમાં મૂળ શબ્દો, ટીકા, વિસ્તૃત વિવરણ સાથે પ્રકાશમાં લાવે છે. જે જૈન સમાજ માટે અતિ ઝોરવ અને આનંદનો વિષય છે

૭૦ મહાવીર અત્યારે આપણી ધાસે વિદ્યમાન નથી. પરંતુ તેમની વાણી રૂપે અક્ષરરેકંડે જલુધર મહારાજોએ શ્રુતપરપરાએ સાક્ષી સખ્યેા શ્રુતપર પરાધી સખવાતુ જ્ઞાન અત્યારે વિશ્રુત થવાનો સમય ઉપસ્થિત થવા લાગ્યો ત્યારે શ્રી દેવદિગ્ગજિ સમાજમણે વસ્તીપુસ્તકગ્રામાં તે આગમોને પુસ્તકો રૂપે આરૂંક કર્યો. આજે આ સિદ્ધિ આપણી ધાસે છે તે અર્ધમાગધી ભાષામાં છે અત્યારે આ ભાષા ભગવાનની, દેવોની તથા જનજલુની ધર્મભાષા છે તેને આપણા અમણે અને અમણીઓ તથા પ્રમુખ આલક આનિકાઓ મુખપાઠ કરે છે પરંતુ તેનો અર્થ અને ભાવ ઘણા યોગ્યો સમજે છે

જિનાગમ જે આપણાં અદ્યેષ પવિત્ર ધર્મસૂત્રો છે જે આપણી આજે છે તેનો અભ્યાસ કરવો જે આપણી ધોની-જૈન માત્રની ફરજ છે તેને સત્ય સ્વરૂપે સમજાવવા માટે આપણા સજ્જાઓ જ્ઞાનદિવાકર શ્રી ઘાસીલાલ મહારાજને સત્ સહય કર્યો છે અને તે લિખિત સૂત્રોને પ્રચટાવી શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિદ્વારા જ્ઞાન પરજ બહેલી કરી છે આવા અનુપમ કાર્યમાં સહજ જોનોને સહકાર અવસ્થ ઢાવો ઘટે અને તેનો વધારેમા વધારે પ્રચાર થાય તે માટે પ્રયત્નો કરવા ઘટે

૭૦ મહાવીરને જલુધર ઝોતમ પૂછે છે કે હે ભગવાન, સૂત્રની આરાધના કરવાથી શું ફળ પ્રાપ્ત થાય ? ભગવાન તેનો પ્રતિ ઉત્તર અપે છે કે મતની આરાધનાથી જીવોના અજ્ઞાનનો નાશ થાય છે અને તેઓ સચ્ચારના કલેશોથી નિવૃત્તિ મેળવે છે અને અસાર કલેશોથી નિવૃત્તિ અને અજ્ઞાનનો નાશ થતાં મેલની ફળની પ્રાપ્તિ થાય છે

આવા ગાનકાર્યમાં મૂર્તિપૂજક જોનો, દિગ્ગજિ અને અન્ય ધર્મિઓ હજારો અને લાખો ફીલા ખર્ચે છે હિંદુ ધર્મમાં પવિત્ર મનાતા જલુ ઝીનાના સેક્રો નદિ પલુ હજારો ટીકા કર્યો. દુનિયની લગભગ સર જાણજોમાં પ્રચટ થયા છે ઈસાઈ ધર્મના પ્રચારકો તેમના પવિત્ર ધર્મ અન્ય વ્યર્થજલના પ્રથાકાર્યો તેનું જનવની સર્વ

ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી તેને પડતર કૃત્તા પણ ઘણી ઓછી કિંમતે વેચી ધર્મ-
સૂત્રોનો પ્રચાર કરે છે મુન્દિલમ લોકો પણ તેમના પવિત્ર મનાતા ગ્રન્થ કુરાનનું
અનેક ભાષાઓમા ભાષાંતર કરી સમાજમા પ્રચાર કરે છે આપણે પૈસા પરનો મોહ
ઉતારી ભગવાનના સિદ્ધાંતોનો પ્રચાર કરવા માટે તન, મન, ધન સમર્પણ કરવા
નેહ્યો અને સૂત્ર પ્રકાશનના કાર્યને વધુ ને વધુ વેગ મળે તે માટે સક્રિય પ્રયત્નો
કરવા નેહ્યો આવા પવિત્ર કાર્યમા સાપ્રદાયિક મતભેદો સૌએ ભૂલી જવા નેહ્યો
અને શુદ્ધ આશયથી થતા શુદ્ધ કાર્યને અપનાવી લેવું નેહ્યો સમિતિના નિયમા-
નુસાર ૩ ૨૫૧) ભરી સમિતિના સભ્ય બનવું નેહ્યો ધાર્મિક અનેક ખાતાઓના
મૂકાબલે સૂત્ર પ્રકાશનનું-જ્ઞાનપ્રચારનું આ ખાતું સર્વશ્રેષ્ઠ ગણવું નેહ્યો
આ કાર્યને વેગ આપવાની સાથે સાથે એ આગમો-ભગવાનની એ
મહાવાણીનું પાન કરવા પણ આપણે હરહ મેશ તત્પર રહેવું નેહ્યો જેથી
પરમ શાંતિ અને જીવનસિદ્ધિ મેળવી શકાય (સ્થા જૈન તા ૫-૭-૫૬)

*

શ્રી અ ભા ૨વે સ્થા જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના પ્રમુખ શ્રી વગેરે રાણુપુર
પરમ પવિત્ર સૌરાષ્ટ્રની પુણ્ય ભૂમિ પર ન્યારથી શાંત-શાસ્ત્રવિશારદ અપ્રમાદિ
પૂજ્ય આચાર્ય મહારાજ શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના પુનીત પગલા થયાં છે ત્યારથી
ઘણા લાંબા કાળથી લાગુ પડેલ જ્ઞાનાવરણીય કર્મના પડળ ઉતારવાનો શુભ પ્રયાસ
થઈ રહ્યો છે અને જે પ્રવચનની પ્રલાવના તેઓશ્રી કરી રહ્યા છે તે અન ત ઉપકારક
કાર્યમા તમે જે અપૂર્વ સહાય આપી રહ્યા છો તે માટે તમે સર્વને ધન્ય છે અને
એ શુભ પ્રવૃત્તિના શુભ પરિણામોનો જનતા લાભ લે છે, મને તો સમજાય છે કે
સાધુજી છઠે ગુણસ્થાનકે હોય છે પણ પૂજ્ય શ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજ તો બહુધા
સાતમે અપ્રમત્ત ગુણસ્થાનકે જ રહે છે એવા અપ્રમત્ત માત્ર પાત્ર-સાત સાધુઓ જે
સ્થાનકવાસી જૈનસમાજમા હોય તો સમાજનું શ્રેય થતાં જરાએ વાર ન લાગે સમાજ
કાશમા સ્થા જૈન સપ્રદાયનો દિવ્ય પ્રભાકર જળહળી નીકળે પણ વો દિન

શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિને મારી એક નમ્ર સુચના છે કે-પૂજ્યશ્રીની વૃદ્ધા-
વસ્થા છે, અને કાર્યપ્રણાલિકા યુવાનોને શરમાશે તેવી છે તેમને ગામેગામ
વિહાર કરવું અને શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય કરવું તેમા ઘણા શારીરિક માનસિક અને
વ્યવહારિક મુશ્કેલી વેઠવી પડે છે, તો કોઈ યોગ્ય સ્થળ કે ન્યાના શ્રાવકો ભક્તિ
વાળા હોય વાડાના રાગના વિષથી અલિપ્ત હોય એવા કોઈ સ્થળે શાસ્ત્રોદ્ધારનું
કાર્ય પૂર્ણ થાય ત્યાં સુધી સ્થિરતા કરી શકે એના માટે પ્રબંધ કરવો નેહ્યો
ખીજ કોઈ એવા સ્થળની અનુકૂળતા ન મળે તો છેવટ અમદાવાદમા યોગ્ય સ્થળે
રહેવાની સગવડ કરી અપાય તો વધુ સારૂ મહારી આ સુચના પર ધ્યાન આપવા
કરી યાદ આપુ છું ફરીવાર પૂજ્ય આચાર્યશ્રીને અને તેમના સત્કાર્યના સહાયકોને
મારા અભિનંદન પાઠવું છું તે સ્વીકારશે લી સદાનંદી જૈનમુનિ છોટાલાલજી

“જૈનસિદ્ધાંતના” ત્રીજીનીના અભિપ્રાય

સ્થાનકવાસીઓમાં પ્રમાણભૂત સૂત્રો જહાર પાઠનારી આ જોકની જોક સસ્થા છે, અને જોના આ ઉચ્ચારિપિદા ઉપરથી જણાય છે કે—તેણે ઘણી સારી પ્રગતી કરી છે તે જોઈ આનંદ થાય છે.

મૂળ પાઠ, ટીકા, ઢિંદી તથા સુજ્જારાલી અનુવાદ સહિત સૂત્રો જહાર પઠવાં જો કાંઈ સહેજું કામ નથી જો જોક મહાભારત કામ છે અને તે કામ આ શાસ્ત્રોદાર સમિતિ ઘણી સફળતાથી ચાર પાડી સ્ત્રી છે તે સ્થાનકવાસી સમાજ માટે ઘણા જોરબનો વિષય છે અને સમિતિ ધન્યવાદને પાત્ર છે

સમિતિ તરફથી નવસૂત્રો જહાર પડી ચુક્યાં છે, હાલમાં ત્રણ સૂત્રો છપાય છે નવ સૂત્રો લખાઈ ગયાં છે અને જબૂદીવપ્રગતિ તથા નદીસૂત્ર તેવાર ચર્ચ રહ્યાં છે

હાલમાં મત્રી શ્રી શકેશ્વર આર્યિદ સમિતિના કામમાં જ તેમનો આજો વખત બાજે છે અને સમિતિના કામકાજને ઘણો વેગ આપી રહ્યા છે તેમના ખવ માટે ધન્યવાદ.

અને આ મહાભારત કામના મુખ્ય કાર્યકર્તા તે છે વચોવદ પદિત મુનિશ્રી પાસીલાલજી મહારાજ મૂળ પાઠનુ સંશોધન તથા સસ્કૃત ટીકા તેજોશ્રી જ તેવાર કરે છે મુનિશ્રીના આ ઉપકાર આબાજ સ્થા. જૈન સમાજ ઉપર ઘણો મહાન છે. જો ઉપકારનો જહારો તે ઘણી શકાય તેમજ નથી.

પરંતુ આ સમિતિના મેમ્બર બની તેના જહાર પહેલાં સૂત્રો ધરમા વસાવી તેનુ અધ્યયન કરવામાં આવે તે જ મહારાજશ્રીનુ ઘોડુ તથા આઠ કમુ જણાય.

જમવાને કમુ છે કે પદ્યમં વાવ તમો જ્યા પહેલુ જ્ઞાન પછી જ્યા જ્યા ધર્મ ઘણાઈ સમજવો હોય તે જમવાનની વાચીકૃપ આપણા સૂત્રો વાંચવાં જ જોઈએ તેનુ અધ્યયન કરવું જોઈએ અને તેનો આવાઈ સમજવો જોઈએ.

જેટલા માટે શાસ્ત્રોદારસમિતિના સર્વ સૂત્રો જરૂર સ્થા જૈને પોતાના જરમાં વસાવવાં જ જોઈએ સર્વ ધર્મજ્ઞાન આપણા સૂત્રોમાંજ સમાયેલુ છે અને સૂત્રો સહેલાઈથી વાંચીને સમજ શકાય છે, માટે જરૂર સ્થા. જૈન આ સૂત્રો વાંચે જો ખાસ જરૂર છે.

શ્રી ઉપાસકદશાંગસૂત્રને માટે અભિપ્રાય

મૂળ સૂત્ર તથા પૂજ્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજે બનાવેલ સંસ્કૃત છાયા તથા ટીકા અને હિંદી તથા ગુજરાતી-અનુવાદ સહિત

પ્રકાશક-અ ભા પ્રવે સ્થાનકવાસી જૈનશાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ, ગરેડીઆ કુવા રોડ, શ્રીન લોજ પાસે, રાજકોટ (સૌરાષ્ટ્ર) પૃષ્ઠ ૬૧૬ ખીજી આવૃત્તિ બેવડું (મોટું) કદ પાકુ પુઠું, બેકેટ સાથે સને ૧૯૫૬ કિમત રૂ. ૮-૮-૦

આપણા મૂળ ખાર અગ સૂત્રોમાનું ઉપાસકદશાંગ એ સાતસું અંગ સૂત્ર છે. એમા ભગવાન મહાવીરના દશ ઉપાસકો-શ્રાવકોના જીવનચરિત્રો આપેલા છે, તેમા પહેલું ચારિત્ર આનંદ શ્રાવકનું આવે છે

આનંદ શ્રાવકે જૈનધર્મ અંગીકાર કર્યો અને ખાર વ્રત લગવાન મહાવીર પાસે અંગીકાર કરી પ્રતિજ્ઞા (પ્રત્યાખ્યાન) લીધા તેનું સવિસ્તર વર્ણન આવે છે, તેની અતર્ગત અનેક વિષયો જેવા કે, અભિગમ, લોકાલોકસ્વરૂપ, નવતત્ત્વ નરક, દેવલોક વગેરેનું વર્ણન પણ આવે છે.

આનંદ શ્રાવકે ખાર વ્રત લીધા તે ખાર વ્રતની વિગત અતિચારની વિગત વગેરે બધું આપેલું છે તેજ પ્રમાણે ખીજા નવ શ્રાવકોની પણ વિગત આપેલ છે

આનંદ શ્રાવકની પ્રતિજ્ઞામા અરિહત્ત્વેદ્યાઈ શબ્દ આવે છે મૂર્તિપૂજકો મૂર્તિપૂજા સિદ્ધ કરવા માટે તેનો અર્થ અરિહંતનું એત્ય (પ્રતિમા) એવો કરે છે. પણ તે અર્થ તદ્દન ખોટો છે અને તે જગ્યાએ આગળ પાછળના સબધ પ્રમાણે તેનો એ ખોટો અર્થ બંધ બેસતો જ નથી તે મુનિશ્રી ઘાસીલાલજીએ તેમની ટીકામા અનેક રીતે પ્રમાણ આપી સાબિત કરેલ છે અને અરિહત્ત્વેદ્યાઈનો અર્થ સાધુ થાય છે તે બતાવી આપેલ છે

આ પ્રમાણે આ સૂત્રમાંથી શ્રાવકના શુદ્ધ ધર્મની માહિતી મળે છે તે ઉપરાત તે શ્રાવકોની ઋદ્ધિ, રહેઠાણ નગરી વગેરેના વર્ણનો ઉપરથી તે વખતની સામાજિક સ્થિતિ, રીતરિવાજ રાજવ્યવસ્થા વગેરે બાબતોની માહિતી મળે છે

એટલે આ સૂત્ર દરેક શ્રાવકે અવશ્ય વાચ્યુ જોઈએ, એટલું જ નહિ પણ વારવાર અધ્યયન કરવા માટે ઘરમા વસાવ્યુ જોઈએ

પુસ્તકની શરૂઆતમા વર્ધમાન શ્રમણસંઘના આચાર્ય શ્રી આત્મારામજી મહારાજનું સમતિપત્ર તથા ખીજા સાધુઓ તેમજ શ્રાવકોના સમતિપત્રો આપેલ છે, તે સૂત્રની પ્રમાણબૂતતાની ખાત્રી આપે છે

“જૈનસિદ્ધાંત” બા-ચુઆરી-૫૭

એ કંટો સર્ટીફિકેટો ઉપરાંત હાલમાં મળેલ
કેટલાક તાબા અભિપ્રાયો.

શાસ્ત્રોદ્ધારના કાર્યને વેગ આપો

ત્રીસ્થાનેથી (જૈનજ્યોતિ) તા ૧૫-૬-૫૭

પૂજ્ય શ્રી ધાસીલાલજી મહારાજ ધ્રુવ ૪ હાલમાં જમણાવાદ મુકામે
સરસપુત્રા સ્થા જૈન ઉપાસ્યમાં બિરાજમાન છે તેઓ શ્રી શાસ્ત્રોદ્ધારનું કાર્ય
પૂજ્ય જ ખત બને ઉત્સાહથી વૃદ્ધવયે પણ કરી રહ્યા છે તેઓશ્રી વૃદ્ધ છે છતાં
પણ જાણો દિવસ શાસ્ત્રની ટીકાઓ લખી રહ્યા છે બાજુ મુખીમાં તેમણે લગ
ભગ ૨૦ જેટલા શાસ્ત્રાની ટીકાઓ લખી નાખી છે અને બાકીનાં સૂત્રોની ટીકા
જેમ બને તેમ જલદી પૂર્ણ કરવી તેવા મનોરમ સેવી રહેલ છે સ્વા જૈન
સમાજમાં શાસ્ત્રો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવાનો આ પ્રથમ જ પ્રયાસ છે બને
તે પ્રયાસ સંપૂર્ણ બને જોઈ અમે યાસનદેવ પ્રત્યે પ્રાર્થના કરીએ છીએ બાજુ
મુખી ધણા મુનિવરોએ શાસ્ત્રોનું કામ ચરૂ કરેલ છે પણ કોઈએ પૂણ કરેલ
નથી. પૂજ્યશ્રી જમણાજીજી મહારાજને બત્રીસ ચાલો ઉપર દિંદી અનુવાદ
કરેલ અને સંપૂર્ણ બનેલ, ત્યારબાદ બાબાશ્રી શ્રી આત્મારામજી મહારાજશ્રીએ
દિંદી ટીકા કેટલાક ચાલો ઉપર લખેલ પણ ધણાં શાસ્ત્રો બાકી રહી ગયાં.
પૂજ્ય હસ્તિમલજી મહારાજને એક બે ચાલો ઉપરની ટીકાઓના અનુવાદો કરેલ
પૂજ્ય શ્રી જ્વાહરલાલ મહારાજશ્રીએ સૂચકાજસૂત્ર ટીકા સહિત દિંદી
અનુવાદ સાથે કરેલ. શ્રી સોબાજીમલજી મહારાજને આચારાંગની દિંદી ટીકા
લખેલ. પણ સંપૂર્ણ ચાલો ઉપર સસ્કૃત ટીકા હજી મુખી સ્થા જૈન સાધુઓ
વરફથી થયેલ નથી. બપારે પૂજ્યશ્રી ધાસીલાલજી મહારાજશ્રીએ ૨૦ ચાલો ઉપર
સસ્કૃત ટીકા તેનો દિંદી બુજરાવી અનુવાદ કરાવેલ છે આથી હવે આશા
બધાય છે કે તેઓશ્રી બત્રીસ બત્રીસ ચાલો ઉપર સસ્કૃત ટીકા લખવામાં
સફળ થશે અને શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિએ બાજુ મુખી ૧૦ થી ૧૨ ચાલો છપાવી
પણ દીધાં છે બને હજી પણ તે ચાલો વિશેષ જલદી છપાવ તે માટે શાસ્ત્રો
દ્ધાર સમિતિ સંપૂર્ણ પ્રયત્ન કરી રહેલ છે તે ધન્યવાદને પાત્ર છે

જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિના શ. ૨૨૧૭ ભરીને લાઈફ મેમ્બર થનારને વધારા
શાસ્ત્રો શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ વરફથી સેટ મળે છે આ રીતે એક પણ બને ઠો
કાજ બને રીતે લાભ થાય તેમ છે શ. ૨૨૧૧ માં ૫૦૦ રૂપિયાની કિંમતમાં
શાસ્ત્રો મળે એ પણ મોટો લાભ છે અને પ્રવચનની પ્રમાવના કરવાનો ધર્મ
લાભ પણ મળે છે

આ સાથે પૂજ્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજના મુશિધ્ય પં મિત્રશ્રી કનૈયા-
લાલજી મહારાજ મલાડ મુકામે ચાતુર્માસ બિરાલે છે અને તેઓશ્રી શાસ્ત્રોના
મેમ્બરો કરવા માટે અઘાગ પ્રયત્ન કરીને પ્રવચનની સેવા બનવી રહ્યા છે અને
અત્યાર સુધીમા મુબઈ તેમજ પરાઓના લગભગ ૪૦ જેટલા ગૃહસ્થો લાઈફ
મેમ્બર બની ગયા છે અને મુબઈમા લગભગ ૩૦૦ જેટલા મેમ્બરો થાય તે
ઈચ્છવા યોગ્ય છે શ્રીમત ગૃહસ્થો હજારો રૂપિયા પોતાના ઘર ખર્ચમા તેમજ
મોજશોખના કામોમા તેમજ વ્યવહારિત કામોમા વાપરી રહ્યા છે તો આવા
શાસ્ત્રોદ્ધાર જેવા પવિત્ર કાર્યમા રૂપિયા વાપરશે તો ધર્મની સેવા કરી ગણાયે.
અને બદલામા ઉત્તમ આગમસાહિત્યની એક લાયબ્રેરી બની જશે જેનું વાચન
કરવાથી આત્માને શાંતિ મળશે અને શાસ્ત્રાના પ્રમાણે વર્તવાથી છવન સફળ થશે.

શતાવધાની મુનિશ્રી ન્ય તિલાલભ મહારાજશ્રીનો અમદાવાદનો
પત્ર “ સ્થાનકવાસી જૈન ” તા ૫-૬-૫૭ ના અંકમાં છપાએલ છે જે
નીચે મુજબ છે

સૂત્રોના મૂળ પાઠોમાં ફેરફાર હોઈ શકે ખરો ?

તા ૭-૮-૫૭ના રોજ અત્રે ગિરજાતા શાસ્ત્રોદ્ધારક આચાર્ય મહારાજશ્રી
વાસીલાલભ મહારાજ પાસે, મારા ઉપર આવેલ એક પત્ર હાઈને હું જવો
હતો, તે સમયે મારે પૂ. મ. શા. સાથે જે વાતચીત થઈતે સમાજને બાધ
કરાવા સારૂ લખ્યું છે

શાસ્ત્રોત્તુ કામ એક જઠન વસ્તુ છે અપ્રમાદી થઈ તેમાં અચિરત પ્રયત્નો
કરવા એકજો. સ પૂર્ણ શાસ્ત્રોત્તુ જ્ઞાન તેમજ ફરેક પ્રકારની ખાસ ભાષાઓનું જ્ઞાન
હોમ તોજ આજમોદ્ધારકતુ કાર્ય સફળતાથી થાય છે આ પ્રકારનો પ્રયત્ન હાલ
અમદાવાદ ખાતે સરસપુર જૈન સ્થાનકમા ગિરજાતા પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલભ
મહારાજ કરી રહ્યા છે શાસ્ત્રોદ્ધારકતુ આ મર્મ થઈ રહ્યું છે, તેમાં અનેક
અહિતઓને અનેક પ્રકારની શકાઓ થાય છે તેમાં શાસ્ત્રોના મૂળ પાઠમાં ફેરફાર
થાય છે ? કરવામાં આવે છે ? એવો પ્રશ્ન પણ કેટલાકને થાય છે અને તેવો
પ્રશ્ન થાય ને સ્વાભાવિક છે, કેમકે અમુક મુનિશાસ્ત્રો તરફથી પ્રગટ થયેલ સૂત્રોના
મૂળ પાઠમાં ફેરફાર થયેલા છે એવી આ કાર્યમાં પણ સમાજને શકા થાય.

પણ ખરી રીતે જોતાં, અભારે જે શાસ્ત્રોદ્ધારક કામ બાલી રહ્યું છે તે
વિષે સમાજને ખાત્રિ આપવામાં આવે છે કે, શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિ તરફથી
અભાર મુખીમાં પ્રગટ થયેલાં આજમોના મૂળ પાઠમાં જરાપણ ફેરફાર કરવામાં
આવેલ નથી અને ભવિષ્યમાં જે સૂત્રો પ્રગટ થશે તેમાં ફેરફાર થશે નહિ તેની
અમાજ નોંધ લે.

લી

શતાવધાની શ્રી અવત મુનિ-અમદાવાદ

શ્રી અખિલ ભારત શ્વેતામ્બર સ્થાનકવાસી જૈન શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિનો ટુંક પરિચય

સ્થાનકવાસી સમાજની આ એકની એક સર્યા છે કે જેણે અત્યાર સુધીમા તેર સૂત્રો છપાવી બહાર પાડી દીધા છે સાત સૂત્રો છપાય છે અને બીજા કેટલાક છાપવા માટે તૈયાર થઈ ચૂક્યા છે

આ પ્રમાણે આ સર્યાએ મહાન્ પ્રગતિ સાધી છે તેનો ટુંક પરિચય આ પત્રિકામા આપેલ છે તે વાચી જઈ સર્વ સ્થા જૈન ભાઈબહેનોએ આ સર્યાને યથાશક્તિ મદદ કરી તેના કાર્યને હલ્લુ વિશેષ વેગવાન બનાવવાની જરૂર છે

ખાત્રી ઘડો વાગે ઘણો એમ સ્થા કેન્દ્ર-સ જેમ ખોટા બહુગઃ કુકનારી સસ્થાની કિંમત નથી, ત્યારે નહર કામ કરનારી આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને દરેક પ્રકારે ઉત્તેજન આપવાની દરેક સ્થાનકવાસી જૈનની અનિવાર્ય દરજ છે

અને આ સર્વ સૂત્રો તૈયાર કરનાર પૂન્ય મુનિશ્રી ઘાસીલાલજી મહા-ગજનો સ્થાનકવાસી સમાજ ઉપર ઘણો મહાન ઉપકાર છે વયોવૃદ્ધ હોવા છતા તેઓશ્રી જે મહેનત લઈ સૂત્રો તૈયાર કરાવે છે તેવુ કામ હલ્લુ સુધી બીજા કોઈ એ કયું નથી અને બીજુ કોઈ કરી શકશે કે નહિ તે પણ શકા ભયું છે પૂન્ય મુનિશ્રીના આ મહાન્ ઉપકારનો ઝિચિત બદલો સમાજે આ શાસ્ત્રોદ્ધાર સમિતિને બની શકતી સહાય કરીને વાળવાનો છે સ્થાનકવાસી સમાજ જ્ઞાનની કદર કરવામા પાછો હાથે તેમ નથી એવી અમે આશા રાખીએ છીએ

“જૈનસિદ્ધાંત પત્ર” એક્ટોમ્બર ૧૯૫૭

*

શ્રી દશવૈકાલિક તથા ઉગ્રસહદશાંગ સૂત્રો

સુજરાતી ભાષામાં જનુવાદ શ્રેણી પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલભાઈ મહારાજ વિરચિત શ્રી ઉપરોક્ત બે સૂત્રો જૈન ધર્મ પાળતા દરેક ઘરમાં હોવા જોઈએ તે વાંચવાથી આવક ધર્મ અને અમલ્ય ધર્મના આચારનું ગાન પ્રાપ્ત થઈ શકે છે અને આવકો પોતાની નિસ્વલ અને એવલિય સેવા અમલ્ય પ્રત્યે જલાવી શકે છે વર્તમાનકાળે આવકોમાં તે ગાન નહિ હોવાને લીધે અધ્યક્ષાએ અમલ્ય વગની વૈશાલ્ય તો કરી રહેલ છે પરંતુ 'કલ્પ શુ અને જલ્કલ્પ શુ' એનું ગાન નહિ હોવાને લીધે પોતે સાવધ સેવા જર્ણી પોતાના સ્વાર્થને ખાતર અમલ્ય વર્જને પોતાને સહાયક થવામાં ધસડી રહ્યા છે, અને અમલ્ય વગની પ્રાપ્તિ કુસેવા કરી રહ્યા છે તેમાંથી જાણી લાભનું કારણ થાય અને અમલ્યને યજ્ઞાત્મ્ય સેવા જર્ણી તેમને ધણ જ્ઞાનદર્શન આસ્ત્રિની આરાધના કરવામાં સહાયક થઈ પોતાના જ્ઞાનદર્શન આસ્ત્રિની આરાધના કરી મુક્તિ મેળવી શકે અમલ્યની યજ્ઞાત્મ્ય સેવા કરવી તે જવસ્થા બૃહસ્પતિની કૃત્ય છે

પૂજ્ય શ્રી વાસીલાલભાઈ મ. શાસ્ત્રોદારનું જનુવાદન ત્રણ ભાષામાં ફરી રીતે કરી રહ્યા છે અને ફીપીલા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર ઘનારતે રૂા ૪૦-૫૦૦ ની લગભગ કીમતના બત્રીસે આગમો ફરી મળી શકે છે તો તે રૂા ૨૫૧૭ ભરી મેમ્બર ચર્ચ બત્રીસે આગમો દરેક આવક ઘર મેળવવા જોઈએ બત્રીસે શાસ્ત્રોના લગભગ ૪૮ પુસ્તકો મળશે. તો તે લાભ પોતાની નિર્લક્ષ માટે પુન્યાનુ જાણી પુન્ય માટે જરૂર મેળવે ઉપરોક્ત બે સૂત્રોની કીમત અમિતિ કઈક જોઈથી રાખે તો હરકોઈ જામમાં કીમત હોય તે સૂત્રો લાવી જરૂરી કીમતે, મક્ત જાણવા પૂરી કીમતે લેનારની સ્થિતિ જોઈ દરેક ઘરમાં વસાવી શકે

—બ્રહ્મચર્ય

નેધિ-ઉપરની મુજ્જનાને અમે આવકારીએ છીએ. આવાં સૂત્રો દરેક ઘરમાં વસાવવા ચોખ્ખા તેમજ દરેક આવકે વાંચવા ચોખ્ખા છે ત ત્રી-

૨૦૧૦-૧૧ વત્ર

તા. ૧-૧૦-૫૭

પૂજ્ય આચાર્યશ્રી ઘાસીલાલજી મહારાજનાં

બનાવેલાં સૂત્રો

કાશ્મીર...થી .. કન્યાકુમારી

તેમજ કરાંચી.....થી.....કલકત્તા

સુધી

દરેક સ્થળે હોંશથી વંચાય છે.

કારણ કે

આવી રીતે શાસ્ત્રો તૈયાર કરવાનું અનોખું કાર્ય

હજી સુધી કોઈ કરી શક્યું નથી

* * *

શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સમાજ

ઉપરાંત

શ્રી દેરાવાસી સંપ્રદાયના મહાન આચાર્યશ્રી રામવિજયસૂરીજી

તથા અન્ય સુનિવરોએ

તેમજ

તેરાપંથી મહાસભા કલકત્તાવાળાએ આ સૂત્રો અપનાવ્યાં છે

* * *

દેશ-પરદેશના મેમ્બરો સૂત્રો વાંચી જૈન ધર્મના શ્રુતજ્ઞાનનો અણમોલો

લાલ લઈ રહ્યા છે

હમણાજ લડનની ઈન્ડિયા એક્ઝીસ લાયબ્રેરીએ આ સૂત્રો મગાવ્યા છે

* * *

આપ રૂપીઆ ૨૫૧-૦-૦ મોકલી મેમ્બર તરીકે નામ નોધાવી હપ્તે હપ્તે લગભગ રૂપીઆ પાચમે સુધીની કિંમતના શાસ્ત્રો વિના મૂલ્યે મેળવી શકો છો

વધુ વિગત માટે લખો

૪ શ્રીન લોજ પાસે,

ગરેડીઆકુવા રોડ

રાજકોટ

મત્રી

શ્રી અખિલ ભારત પ્રવે સ્થા જૈન

શાસ્ત્રોદ્ધારસમિતિ

भी आचाराङ्गसूत्र प्रथमश्रुतस्फुञ्च प्रथम अध्यायनका

विषयानुक्रम

विषय—	पृष्ठाङ्क—
मङ्गलाचरण	१-३
अवतरणा	३-१५९
(१) भगवान् के वचनों में कस्यवृत्त के फुलों के पच्चीस (२५) गुणोंकी उपमा	४-१३
(२) भगवान् की वाणी के ३५ अतिशय	१४-१९
(३) अनुयोग (४)	२०-१५८
(१) धरणकरानुयोग	२०-२३
(२) धमकयानुयोग	२३-२४
(१) आक्षेपाप्यादिधर्मकथा (४)	२५-३१
(२) धर्ममहिमा	३२-३४
(३) गञ्जितानुयोग	३५-५३
प्रब्रन्यादानसमपनिर्णय	३६-५३
(१) मातृविचार	३७
(२) पृथुविचार	३८
(३) त्रिपुत्रविचार	३८
(४) वारविचार	३९
(५) नक्षत्रविचार	३९
(६) यागविचार	४१
(७) करणविचार	४१
(८) लग्नविचार	४६
(९) ग्रहविचार	४६
(१०) शीघ्रमयङ्ग्यासमपनिरूपण	४७

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(११) केशलुञ्चन	५१
(१२) प्रथमगोचरीविचार	५२
(१३) नूतनपात्रव्यापारण	५३
(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमय	५३
(४) द्रव्यानुयोग	५३-१५९
द्रव्यलक्षण	५४
पर्यायलक्षण	५८
द्रव्यविभाग (भेद-६)	६१
[१] धर्मास्तिकायस्वरूप	६३
[२] अधर्मास्तिकायस्वरूप	६७
[३] आकाशास्तिकायस्वरूप	७२
[४] कालनिरूपण	८२
कालशब्दव्युत्पत्ति	८२
कालसिद्धि	८३
काललक्षण	८४
कालस्वरूप	८८
[५] पुद्गलास्तिकाय	९६
पुद्गलशब्दार्थ	९६
पुद्गललक्षण	९७
पुद्गलप्रदेशसंख्या	९८
पुद्गलक्षेत्रस्थिति	९८
पुद्गलभेद	१०४
परमाणुस्वरूप	१०५
स्कन्धस्वरूप और उसके भेद	१०८
परमाणुवन्धकारण	११२
परमाणुवन्धव्यवस्था-कोष्टक	१२१

विषय—	पृष्ठाङ्क—
[६] जीवास्तिकाय	१२२
जीवसंख्यार्थ	१२२
जीव स्वरूप माप और उसके भेद—५	१२४
(१) औपश्रमिक माप	१२५
(२) सायिक माप	१२६
(३) सायोपश्रमिक माप	१२७
(४) शौद्यिक माप	१२७
(५) पारिणामिक माप	१२८
जीव का स्थितिदोष	१३०
जीव की प्रास-वृद्धि	१३२
जीव की ऊर्ध्वगति	१३४
जीवलक्षण	१३५
इति जीवास्तिकाय	१४०
पद्मद्रव्य विचार	१४१
जीवस्कन्ध विचार	१४३
पद्मद्रव्यों का सक्रिय- मिथिक्रिय विचार—	१४५
व्यवहारनय को लेकर पद्मद्रव्य विचार—	१४७
पद्मद्रव्यों के विषय में— कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपण	१४७
व्यवहार नय—(३)	१४८
(१) शुद्धव्यवहार नय	१४८
(२) अशुद्धव्यवहार नय	१५०
(३) शुभव्यवहार नय	१५१
(४) अशुभव्यवहार नय	१५३

विषय-	पृष्ठाङ्क
(५) उपचरितव्यवहार नय	१५२
(६) अनुपचरितव्यवहार नय	१५४
जीव के स्वरूप में सदृश- विसदृश विचार	१५६
इति अवतरण सम्पूर्ण	१५९
सूत्र का उपक्रम	१५९
सूत्र प्रथम	१६०
'भग' शब्दार्थ	१६१
सूत्र द्वितीय (संज्ञा)	१६४-१९५
संज्ञा के भेद (१६)	१६६
(१) आहारसंज्ञा	१६७
(२) भयसंज्ञा	१६९
(३) मैथुनसंज्ञा	१६९-१७०
(४) परिग्रहसंज्ञा	१७०
(५) क्रोधसंज्ञा	१७१
(६) मानसंज्ञा	१७१
(७) मायासंज्ञा	१७२
(८) लोभसंज्ञा	१७२
(९) लोकसंज्ञा	१७२-१७३
(१०) ओघसंज्ञा	१७३
(११) सुखसंज्ञा	१७३
(१२) दुःखसंज्ञा	१७४
(१३) मोहसंज्ञा	१७४
(१४) विचिकित्सासंज्ञा	१७४-१७५
(१५) शोकसंज्ञा	१७५
(१६) धर्मसंज्ञा	१७५-१७६
ज्ञानसंज्ञा के भेद-(५)	१७६

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(१) मतिज्ञान	१७६
(२) भ्रुतज्ञान	१७७
(३) अपघिज्ञान	१७९
(४) मन-पर्ययज्ञान	१८१
(५) फलज्ञान	१८४
मतिज्ञान के भेद (५)	१८५-१९०
ईहा	१८५-१८६
अपोह	१८६-१८७
मीमांसा	१८७
मार्गणा	१८७
गवपणा	१८८
सद्वा	१८८
स्मृति	१८८-१८९
मति	१९०
मद्वा	१९०
सूत्र तृतीय (संज्ञा)	१९५-२००
तीन प्रकार का जन्म	१९८
(१) समूर्च्छनजन्म	१९८-१९९
(२) गर्भजन्म	१९९-२००
(३) उपपातजन्म	२०१
सूत्र चतुर्थ (सद्वा)	२०२-२०८
सूत्र पञ्चम	२०९-२१७
आत्मवादिप्रकरण	२१०-२३८
आत्मदण्डाय	२११
आत्मान्तरिमिद्धि	२१३
भाग्य का द्रव्यत्व	२२८
आत्माका स्वरूप (१३)	२३१

विषय-	पृष्ठाङ्क-
(१) जीवत्वनिरूपण	२३३
(२) नित्यत्वनिरूपण	२३७
(३) चेतनावृत्तनिरूपण	२४३
(४) उपयोगवृत्तनिरूपण	२४४
(५) परिणामित्वनिरूपण	२४७
(६) प्रभुत्वनिरूपण	२४८
(७) कर्तृत्वनिरूपण	२५०
(८) भोक्तृत्वसिद्धि	२५३
(९) शरीरपरिणामत्वसिद्धि	२५५
(१०) अमूर्त्तत्वनिरूपण	२५९
(११) प्रतिशरीरभिन्नत्वसिद्धि	२६३
(१२) पौद्गलिककर्मसयुक्तत्वसिद्धि	२६३
(१३) ऊर्ध्वगतिस्वभावत्वसिद्धि	२६८
इति आत्मवादि प्रकरण	२६८
लोकवादिप्रकरण	२६९-२९९
षड्जीवनिकाय	२७०-२७१
(१) पृथिवीकायभेद	२७१
(२) अप्कायभेद	२७३
(३) तेजस्कायभेद	२७४
(४) वायुकायभेद	२७४-२७५
(५) वनस्पतिकायभेद	२७५-२७६
(६) त्रसकायभेद	२७६
(१-४) द्वित्रिचतुरिन्द्रियभेद	२७७-२७८
(६) पञ्चेन्द्रियभेद (४)	२७९
मनुष्यभेद	२८०
अकर्मभूमि	२८२
देवनिकाय (४)	२८३

विषय	पृष्ठसङ्ख्या
(१) मदनपतिदेवमेव	२८४
(२) व्यन्तरदेवमेव	२८६
(३) ज्योतिष्कदेवमेव	२८७
(४) पैमानिकदेवमेव	२८८
कल्पातीत	२९४
पद्मीवनिकायमेवसंकल्प	२९५
मीवसंख्या	२९८
कर्मवादिप्रकरण	२९९
(१) कर्मस्वरूप	३००
(२) कर्मसिद्धि	३०१
(३) कर्म का मूर्च्छा	३१२
(४) बीज और कर्म का सम्बन्ध	३१३
(५) कर्म का अनादित्व	३१७
(६) अकर्मवादिमतनिराकरण	३१८
(७) बन्धस्वरूपनिरूपण	३२०
(८) बन्धकारणनिरूपण	३२५
(१) प्रकृतिबन्ध	३३२
बाठ कर्मों के सम्बन्ध	३३३
(२) स्थितिबन्ध	३३४
स्थितिबन्धकोष्ठक	३३५-३३७
(३) अनुमापबन्ध	३३८
पुण्यपापकर्मनिरूपण	३४४
सर्वपाति प्रकृतिर्या (२०)	३४७
द्वेषपाति प्रकृतिर्या (२५)	३५२
अपाति प्रकृतिर्या (७५)	३५६
उत्तरप्रकृतिसंख्या (१४८)	३५८-३७४

विषय-	पृष्ठाङ्क
कर्मक्षयविचार	३७४
इति कर्मवादिप्रकरण	३८३
क्रियावादिप्रकरण	३८३-३९७
प्राणातिपातक्रिया	३८६
मृगवध में उद्यत की क्रिया	३८८
कुसूल में लोह डालने वाले की क्रिया	३८९
धनुष से वींघने वाले की क्रिया	३९०
वृष्टिज्ञान के लिये हस्तादि-	
फैलाने वाले की क्रिया	३९१
ताड पर चढ़ कर उसके फल तोड़नेवाले	
की क्रिया	३९२
अठारह पापस्थान	३९२-३९७
(१) प्राणातिपात	३९२
(२) मृषावाद	३९४
(३) अदत्तादान	३९४
(४) मैथुन	३९४-३९५
(५) परिग्रह	३९६
(६-१८) क्रोध से मिथ्यादर्शनशल्यतक	३९६-३९७
इति क्रियावादि प्रकरण	३९७
छठा सूत्र (कर्मसमारम्भ)	३९७-४०१
सूत्र सप्तम (अपरिज्ञात कर्मजीव)	४०२-४०३
सूत्र अष्टम (जीव का योनिसधान)	४०३-४०९
योनिभेद (९)	४०४
चौरासी लाख योनियाँ	४०७
सूत्र नवम (परिज्ञा)	४०९
सूत्र दशम (कर्मसमारम्भ)	४११
सूत्र एकादश (उपसंहार)	४१५
सूत्रद्वादश (उपसंहार)	४१६

विषय-	पृष्ठाङ्क-
प्रथम अध्यायन के प्रथम उद्देशकी समाप्ति	४१७
दूसरे उद्देशका उपक्रम	४१८
जीव के विशिष्ट ज्ञानके अभावका कारण	४२०
पृथिवीकाय की हिंसा में तदाभित	
जीवों की हिंसा	४२३
पृथिवीकायसंज्ञा	४२५
पृथिवीकायप्रकृति	४३३
पृथिवीकायजीवपरिणाम	४३७
पृथिवीकायव्यवहार-श्रद्धाधार	४४०
पृथिवीकाय का उपभोग	४४१
पृथिवीकायसमारम्भप्रयोजन	४४२
पृथिवीकायसमारम्भफल	४४९
दृष्टान्तद्वारा पृथिवीजीवसिद्धि	४५५
पृथिवीकायसमारम्भनिवृत्ति	४६१
उपसंहार-उद्देशसमाप्ति-	४६३
तृतीय उद्देश	४६४
उपक्रम और दृष्टान्त	४६४-४६८
अनगारलक्षण	४६९
अनगारकर्तृत्व	४७३
भद्रास्वरूप	४७४-४९८
(१) यथाप्रवृत्तिकारण	४८५
(२) अपूर्णकरण	४८९
(३) अनिवृत्तिकारण	४९२
(४) अपिगमभद्रा	४९४
अण्कायभद्रोपदेश	४९९-५०३
अण्काय की हिंसा में	
तदाभित अन्य जीवों की हिंसा	५०४
अण्कायसंज्ञा	५५
अण्कायरसोपदेश	५०९
अण्कायभोग-	५१२

विषय-	पृष्ठाङ्क-
अष्कायसचित्ता	५१४
अष्कायजीवलक्षण	५१९
अष्कायप्ररूपणा	५२०
अष्कायजीवपरिमाण	५२२
अष्कायशस्त्र	५२४
धावनजल-धावनपानी-(२१)	५२८
अष्कायविराधनादोष	५३०
अष्काय के विषय में अन्य- मत समीक्षा	५३२
अन्यमतागमविरोध	५३४
उपसंहार	४३७
चतुर्थोद्देशक	५३८
उपक्रम	५३८
अग्निकाय के अभ्याख्यान में आत्मा का अभ्याख्यान	५३९
अग्निकायलक्षण	५४१
अग्निकायसचित्ता	५४२
अग्निकायप्ररूपणा	५४३
अग्निकायजीवपरिणाम	५४६
अग्निकायापलाप	५४८
दीर्घलोकशस्त्र (अग्निकाय) का- खेदज्ञ	५६०
दीर्घलोकशब्दार्थ	५५३
अग्निकायशस्त्र	५६५
अग्निकायसमारम्भनिवृत्तिप्रतिज्ञा	५६०
अग्निविराधनादोष	५६२
अग्निकायोपभोग	५६७
अग्निसमारम्भदोष	६७०
अग्निसमारम्भ में उसके आश्रित अन्य जीवों की हिंसा उपसंहार	५७३ ५७९

विषय—	पृष्ठ—
उद्देशकसमाप्ति	५८१
पञ्चमोद्देशक (वनस्पति)	५८२
उपक्रम	५८२
अनगारसंज्ञा	५८४
वनस्पतिकायसचिच्छता (सप्तपद्वार)	५८६
वनस्पतिप्ररूपणा (मेद्)	५९१
वनस्पतिपरिमाण	६०९
वनस्पतिकायोपमर्दन संसार का हेतु है—	६१२
रूपादि गुण में मूर्च्छा संसार का कारण है—	६१७
स्पादिगुणमूर्च्छादोष	६२१
वनस्पतिद्वयसमारम्भ में तदाभित्त अनेक जीवहिंसा—	६२२
वनस्पतिविराषक साध्याभास उपमोगद्वार	६२६
वनस्पतिविराषनाफल	६३०
मनुष्यद्वीर के साथ वनस्पति- की सचिच्छता की सिद्धि—	६३२
उपसंहार	६३६
उद्देशकसमाप्ति	६४१
षष्ठोद्देश (असकाय)	६४३
उपक्रम	६४४
असों के मेद्	६४५
असकायसंज्ञा	६५०
असकायप्ररूपणा	६५१
असकायपरिमाण	६५२
प्रत्येक अस जीवों के सुख दुःख अलग अलग है—	६५४

विषय-

पृष्ठाङ्क-

प्रत्येक दिशा चिदिशा में पृथिवी आदि आश्रित त्रसजीवों को परिताप देने से संसार भ्रमण- त्रसकाय के समारम्भ में अन्य प्राणियों की हिंसा त्रसकाय की हिंसा में परिज्ञा (त्रसकायसमारंभदोष)	६५७ ६५९ ६६३
उपभोगद्वार	६६४
वेदनाद्वार	६६६
त्रसजीवविराधनाफल	६६७
त्रसजीवहिंसाप्रयोजन	६७०
उपसहार	६७३
उद्देशसमाप्ति	६७५
सप्तम उद्देश (वायुकाय)	६७६
वायुकायविराधनविवेक	६७७
वायुकायलक्षण	६८३
वायुकायप्ररूपणा	६८४
वायुकायपरिमाण	६८५
वायुकायशस्त्र	६८६
वायुकाय की हिंसा में षड्जीव- निकायरूप लोक की हिंसा	६८९
द्रव्यलिङ्गिकृत वायुकायविराधना	६९०
वायुकायोपभोग	६९३
वायुविराधनादोष	६९६
वायुविराधनापरिहार	७००
मुखवस्त्रिकाविचार	७०४
षड्निकायारम्भदोष	७१२
षड्जीवविराधनापरिहार	७१७
प्रथम अध्ययन समाप्ति	७२०

श्रीबीतरागाय नमः



श्रीनारायण-श्रीनर्मदाविद्याकर-पूज्यश्री-शास्त्रीसाठवीमहाराजविरचिता-
ऽऽचारभिनतामणिटीकासमलङ्कृतम्

आचाराङ्गसूत्रम् ।

[प्रथमः श्रुतस्कन्धः]

मङ्गलाचरणम्

अर्धमद् भीरुबिन प्रथम्य,
लम्बेधरं गौतम-मातृशक्तिम् ।
गणेश्वरं पूर्वधरं च शिष्ये,
सन्धाय त्रैनी गिरमुञ्च्यसन्तीम् ॥ १ ॥

आचाराङ्गसूत्रकी

आचारभिनतामणिटीका का हिन्दीभाषानुवाद ।

मङ्गलाचरण

(१)

मम्य बीरुबि मन्तरव पूण करते सो बुवा

उन बीतरागा त्रिन्द्र के परणाम्बुओं मे मति सदा ।

आचारसूत्रे मुनिघासिलालः,

प्रयत्नतः साधुजनेष्टसिद्धयै ।

आचारचिन्तामणिमादधेऽहं,

भव्याः सदैवं हृदि धारयन्तु ॥ २ ॥

अनेक लब्धिप्राहि चौदह पूर्वधारक जो तथा,

अध्यात्मशक्ति विभूतियुक्त विराजते है जिन यथा ॥

(२)

आचार्य गणधर लोक हित गौतमपदाम्बुज में नती,

मेरी विराजे सर्वदा देवे विमल मति शुभ गती ।

निर्दोषतत्त्वनिरूपिणी उनकी समुज्ज्वल भारती,

घरते उसे हिय में सदा जो भव्यजन को तारती ॥

(३)

विनीत 'घासीलाल' मुनि जनता तथा मुनि के लिये,

भगवत्सुभाषितरत्न 'आचाराङ्ग गुणगुफित किये ।

मणिमालिका के रूपमें करते प्रकाशित है अभी,

आचारचिन्तामणि हृदयगृह में रखे जनता सभी ॥

(४)

जड द्रव्य चिन्तामणि हृदयपै बाहिरे जाते घरे,

'आचारचिन्तामणि' (टीका) हृदयमें वारिता तमको हरे ॥

सब भव्यजन ससार वन में घूमते इसको गहे,

जिससे प्रकाशित मार्ग हो निज लक्ष्य पद सत्वर लहे ॥

इह सार्द्धतवीयद्रीपाम्पन्तरे पञ्चदशश्लोत्रात्मकनन्दनकानने सम्यक्त्वालवालमध्ये
आत्मरूपा कस्मिन्ना विश्रुतिस्थानकपुनःपुनःसमाराधनसंस्थितेन सत्यद्विताः सत
स्तीयङ्गस्वरूपा अमिनवकल्पपादपा प्रादुमन्ति ।

सम्पत्ति के समस्त मनोरथ पूर्ण करने बाल श्री वीर भगवान् को प्रणाम करके,
तथा विविध प्रकार की लम्बिया के धारक चौखू १ २ पूर्वी के ज्ञाता आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न
श्री गौतम गगधर को नमस्कार करके समस्त दोषों से रहित होने के कारण तथा वास्तविक
वस्तुस्वरूप को प्रकाशित करने के कारण उम्बल बिनवाणीको हृदय में धारण करके—

मैं 'घासीलास' मुनि प्रकलन करके भय्य पुरुषों को तथा मुनिजनों को इष्टसिद्धि के लिये
आचाराज्ञ रूप सूत्र (दोः) में गण्यज्ञातित विविध आचाररूप मणियां मास्मरूपमें पिरोता
हूँ । मन्थबन इसे सदैव अपने हृदयमें धारण करे । अष्टद्वय रूप चिन्तामणि हृदय पर
अर्थात् बस स्थल पर धारण किया जाता है किन्तु यह आचारविन्तामणि (टीका) हृदय में
धारण करने योग्य है ॥ २ ॥

इस अर्थात् शीघ्र के भीतर पन्द्रह कर्ममूमि रूप नन्दनवन में सम्यक्स्वरूप क्यारीमें
आत्मारूपी कस्मन् तीर्थहर गोत्र बांधने के कारणमूल बिस त्पाना की बारबार आराधना रूपी
कल्पे वृष्टिको प्राप्त होकर तीर्थहररूप नूतन कल्पवृक्ष उत्पन्न होते हैं ।

आचारराग सूत्रनी आचारविन्तामण्डि टीकानो गुजराती अनुवाद.

अभलायरथु

अथ लोचना तमाम मनोरथ पूज्य कस्वावाण श्री वीर भगवानने प्रणाम करीने,
तथा विविध प्रकारनी लम्बिज्जोना धारक चौखू पूर्वीना ज्ञाता आध्यात्मिक शक्तिशी सम्पन्न
श्री गौतम अजधरने नमस्कार करीने सकल दोषोशी रहित होवना कारणे तथा वास्तविक
वस्तुस्वरूपने प्रकाशित करवाना कारणे उम्बल बिनवाणीने हृदयमा धारण करीने—

हूँ घासीलास मुनि प्रकलन करीने, अथ पुरुषो-लोचानी तथा मुनिज्जोनी छंष्ट
सिद्धि भाटे श्री आचाररूप सूत्र (दोः)मां अत्रनद्वैकामित-विविध आचार रूप
मण्डिधेने आत्मारूपमा परोवुं हूँ अथ अनुभवेने हृदयमां हृदयमां धारण करे. अष्टद्वय
रूप चिन्तामण्डि हृदय पर अर्थात् वक्षस्थल उपर धारण करवा छे किन्तु आ
आचारविन्तामण्डि (टीका) हृदयमां धारण करवा योग्य छे २

आ श्री वीरनी अथर, पदर कर्मभूमिशी नन्दन-वनमां सम्यक्स्वरूप
क्यारीमा अत्रनद्वैपी कल्प-कलम (अणी) तीर्थहरगोत्र बांधवामा कारणमूल वीस
स्थानोनी बारबार आराधनद्वैपी अलशी वृद्धि अर्थांनि तीर्थहररूप नूतन-नवन
कल्पवृक्ष उत्पन्न थाय छे.

तद्वचनेषु हि कल्पतरुकुसुमगतसौन्दर्यादिगुणाः समुपलभ्यन्ते । यथा—

(१)—सौन्दर्यम्, (२)—सुगन्धः, (३)—त्रिदोषनाशकत्वम्, (४)—सप्तधातु-
पौष्टिकत्वम्, (५)—त्वग्रोमवलकत्वम्, (६)—हृदयाह्लादकत्वम्, (७)—तापशमनत्वम्,
(८) शोभाकारित्वम्, (९) उत्साहकत्वम्, (१०) स्फूर्तिकारकत्वम्, (११) वीर्य-
वर्धकत्वम्, (१२)—श्रमहारित्वम्, (१३)—मधुरत्वम्, (१४)—स्निग्धत्वम्, (१५)—
बहुदलत्वम्, (१६)—विषविनाशकत्वम्, (१७)—मकरन्दधारित्वम्, (१८)—
व्याधिनाशकत्वम्, (१९)—विकसनशीलत्वम्, (२०)—तृष्णानिवारकत्वम्,

जैसे कल्प वृक्षों के फूलों में सौन्दर्य आदि गुण पाये जाते हैं उसी प्रकार तीर्थङ्करोंके वचनोंमें भी सौन्दर्य आदि सभी गुण पाये जाते हैं । दोनोंमें समान रूपसे पाये जाने वाले गुण इस प्रकार हैं—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगन्ध, (३)—त्रिदोषनाशकता, (४)—सप्तधातुपुष्टिकरता,
(५)—त्वक्-रोम-बलकारित्व, (६) हृदयाह्लादकत्व, (७) तापशमनत्व, (८) शोभाकारित्व,
(९)—उत्साहकता, (१०)—स्फूर्तिजनकता, (११)—वीर्यवर्धकता, (१२)—श्रमहारित्व, (१३)—
मधुरता, (१४)—स्निग्धता, (१५)—बहुदलता, (१६)—विषविनाशकता, (१७)—मकरन्द-
(पुष्परस) धारित्व, (१८)—व्याधिनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णा-

जैसी रीते कल्पवृक्षोना कुलोभा सौन्दर्य आदि गुणो देभाय छे, ते प्रमाणो तीर्थङ्करोना वचनोभा पणु सौन्दर्य आदि तभाभ गुणो देभाय छे अन्नेभा समान रूपथी देभाता गुणो आ प्रकारना छे—

(१)—सौन्दर्य, (२)—सुगन्ध, (३)—त्रिदोषनाशकपणु, (४)—सात धातुनी पुष्टि
करना, (५)—आमडी, वाण-अणकारीपणु, (६)—हृदयने आनदकारक, (७)—तापतु शमन
करवापणु, (८)—शोभाकारीपणु, (९)—उत्साहकपणु, (१०)—स्फूर्तिजनकपणु, (११)—
वीर्यवर्धकपणु, (१२)—श्रमनिवारणुपणु, (१३)—मधुरता (१४)—स्निग्धता-चिक्छा-
पणु, (१५)—अहुदलता, (१६)—विषविनाशकपणु, (१७)—मकरन्द-पुष्परस-धारकता,
(१८)—व्याधिनाशकता, (१९)—विकसनशीलता, (२०)—तृष्णानिवारकता,

(२१) मूर्च्छाहारकत्वम्, (२२) पथ्यत्वम्, (२३) मेध्यत्वम्, (२४) उत्कृष्ट
मावोत्पादकत्वम्, (२५) अवयवसन्निवेशविशेषत्वम् ।

तत्र सौन्दर्यादिकं यथा कल्पतरुस्तुमेपु भगवद्रश्मिषु च विद्यत, तथा
प्रदर्शयामः—

१ गुणाः	कल्पतरुस्तुमपक्ष	भगवद्रश्मिपक्ष
१ सौन्दर्यम्	मनोहराकृतिमत्त्वम्,	माधुर्यप्रसादगुणवत्त्वम्,
२ सुगन्ध	प्राणोन्द्रियवृत्तिमनकत्वम् ।	दिव्यध्वनिरूपत्वेन भगवद्रश्मि स्वार्थानार्थद्विपदव्युत्पत्त्यादीनां

निवारकता, (२१)—मूर्च्छाहारिण, (२२)—पथ्यता (२३) मेध्यता (२४)—उत्कृष्टमावो-
त्पादकता, (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्व ।

ये पचीस गुण कल्प वृक्षके फूलों में तथा भगवान् के बचनों में किस प्रकार समानरूप
से पाये जाते हैं वह बतलाते हैं

सं गुण	कल्पवृक्षके फूलोंके पक्षमें	भगवानके बचनोंके पक्षमें ।
(१) सौन्दर्य	मनोहर भावति बासा	माधुर्य और प्रसाद गुण बासा
(२) सुगन्ध	प्राणोन्द्रियको उत्पन्न करने बासा	दिव्यध्वनिरूप होने के कारण आर्थ, अनार्थ, द्विपद, तथा

(२१)—मूर्च्छानिवारकता, (२२)—पथ्यता, (२३)—मेध्यता, (२४)—उत्कृष्ट मावोनु
उत्पादकत्वम् अने (२५)—अवयवसन्निवेशविशेषत्वम्

आ पचीस शब्दों कल्पवृक्षना वृक्षोंमें तथा भगवानना बचनोंमें देवी रीते
समानपक्षे देणाय छे ते बतावे छे—

स. गुण	कल्पवृक्षना वृक्षोंना पक्षमा	भगवानना बचनोंना पक्षमा
(१) सौन्दर्य	मनोहर आभूतिवाण,	माधुर्य अने प्रसाद शब्द सौन्दर्य
(२) सुगन्ध	नासिकाने वृत्त करणार	दिव्यध्वनिरूप देखावा आर्थ अनार्थ जे पञ्चवाणां तथा चार पञ्चवाणा

स्वस्वभावापरिणतत्वेन तृप्ति-
जनकत्वम् ।

३ त्रिदोषनाशकत्वम्, वात-पित्त-कफ नाश-
कत्वम्,

मिथ्यात्वमिश्रसम्पकत्वमोहनीय
दोषनाशकत्वम् ।

४ सप्तधातुपोष्टिक-
त्वम्,

रसासृङ्-मासमेदोऽस्थिम-
ज्जाशुक्र-वर्द्धकत्वम्,

द्रव्यार्थिक-पर्यायार्थिक-नया-
भ्यां म्यादस्त्यादिमत्तभङ्गाना
पुष्टिकरत्वम् ।

चतुष्पद आदि की अपनी २ भाषा
मे परिणत होजानेके कारण
तृप्तिकारक ।

(३) त्रिदोषनाशकत्व, वात पित्त और कफ इन तीन
दोषों को दूर करने वाला ।

मिथ्यात्व, मिश्र और सम्पक्व
मोहनीय इन तीन कर्मों को नष्ट
करने वाला ।

(४) सप्तधातुपोष्टि-
कत्व, रस, रक्त, मास, मेद, हड्डी
और वीर्य, इन सात धातुओं
को बढ़ाने वाला ।

द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक
नय की अपेक्षा कथञ्चित्
अनित्यता आदि सात भगो
का पोषक ।

एवमेव चोत चोतानी लापाभा
पश्चिमत होवाना कारणे
तृप्तिकारक

(३) त्रिदोषनाशकत्व, वात, पित्त अने कफ, आ त्रिषु
दोषोने दूर करवा वाणा

मिथ्यात्व, मिश्र अने सम्भ-
कत्व-मोहनीय, आ त्रिषु कर्मोना
नाश करनार

(४) सातधातुने पुष्ट,
करवापणु रस, रक्त मास, मेद, हड्डिका
मज्जा अने वीर्य, आ सात
धातुने बढ़वान करनार

द्रव्यार्थिक अने पर्यायार्थिक-
नयनी अपेक्षाके कथञ्चित्
अनित्यता कथञ्चित् अनित्यता
आदि सात लक्षणोना पोषक

५ त्वग्रोमबलकत्वम्,	धारीरिक्विकारहारकत्वम्	आत्मवर्तिन आचरौद्रघ्यानात्मकविकारस्य निवारकत्वम्।
६ हृदयाहादकत्वम्,	बध्ननमात्रेण हृदयसुखबध्नकत्वम्	श्रवणमात्रेण सर्वेषां माभिनाममन्दानन्दजनकत्वम्।
७ तापशमनत्वम्,	द्वैत्यगुणपत्त्वेन तापहारकत्वम्,	शान्तरसवत्त्वेन कषायानलश्यापहारकत्वम्।
८ शोभाकारित्वम्,	भूषणरूपेण पुतिर्द्धकत्वम्,	मिथ्यात्वादिकालुष्यापहरणपूर्वकमारमतजःप्रकाशकत्वम्।

(५) त्वग् रोमकत्वम्	शरीरसंबन्धी विकार दूर करने वाला।	अपमा के आतप्यान और रौद्रप्यानरूप विकाररूप नाशक।
(६) हृदयाहादकत्वम्,	इष्टि पढते ही हृदयको आनन्दित करने वाला।	कानमें पढतेही प्रागिमान को अत्यंत आनन्द देने वाला।
(७) तापशमनत्वम्	शीतल होने से सन्ताप हरने वाला।	शान्तरसमय होने के कारण कषायजनित सन्तापको मष्ट करने वाला।
(८) शोभाकारित्वम्	भूषणरूप होने के कारण शोभा बढाने वाला।	मिथ्यात्व आदि की मर्षान्ना दूर करके आभाका तेज बढाने वाला।

(५) आभरी होने वालीने अंगारक	शरीरसंबन्धी विकार दूर करने वाला	आत्माना अथवा ध्यान करने से अंधारिक विकारोत्पत्ति नाश करने वाला
(६) हृदयने आनंदकारी	इष्टि पढने पर हृदयने आनंद आने वाला	कानमात्रेण प्रागिमान अथवा अत्यन्त आनंद आने वाला
(७) तापनिवारण करने वाला	शीतल होनासे सन्ताप दूरने वाला	शान्तरसमय होने के कारण कषायजनित सन्तापने नाश करने वाला
(८) शोभाकारीपत्त्य	परिष्कारण होनेसे शोभा बढाने वाला	मिथ्यात्व आदिनी भक्तिनाश कर देने से आत्माना तेजने प्रकाशित करने वाला

- ९ उत्साहकत्वम्, उत्साहजनकत्वम्, प्रमादपञ्चकनिवारकत्वेन धर्मा-
राधने योगत्रयोत्तेजकत्वम् ।
- १० स्फूर्तिकारकत्वम्, हर्षोत्पादकत्वेन स्वेष्टला- मोक्षाय पराक्रमस्फोटनत्वम् ।
भाय प्रवृत्तिजनकत्वम्,
- ११ वीर्यवर्द्धकत्वम्, सकलेन्द्रियशक्तिदायकत्वम्, तपःसंयमाभ्यामात्मबलोत्कर्ष
कत्वम् ।

- (९) उत्साहकत्व, उत्साह उत्पन्न करने वाला । पाच प्रमादों का निवारण
करके धर्म की आराधना में
तीनों योगों को उत्तेजित
करने वाला ।
- (१०) स्फूर्तिकारकत्व, हर्षजनक होने के कारण मोक्ष के लिये पराक्रम फोड़ने
अपनी इष्ट सिद्धि के लिये प्रवृत्ति की प्रेरणा करने वाला ।
कराने वाला ।
- (११) वीर्यवर्धकत्व सब इन्द्रियों को शक्ति देने तप, और संयम द्वारा आध्या-
त्मिक बल बढ़ाने वाला ।

- (९) उत्साहकत्व उत्साह उत्पन्न करना उत्साह प्रमादों का निवारण
करने धर्म की आराधना में
तीनों योगों को उत्तेजित
करने वाला ।
- (१०) स्फूर्ति उत्पन्न हर्ष उत्पन्न करना जो वादी मोक्ष माटे पराक्रम करवानी
करवायेगा योतानी धर्मनुसार सिद्धि प्रेरणा करना
माटे प्रवृत्ति करवाना
- (११) वीर्यवर्धकत्व तमाम इन्द्रियों को शक्ति तप अने संयम द्वारा आध्या-
त्मिक बल बढ़ाना

१२ भ्रमहारिस्वम्,	सौमन्ध्यादिविषिषणुबोक्त पेयं त्वदिन्द्रियाणां द्वैधि स्यनिवारकत्वम्,	चतुर्गतिपरिभ्रमण्येन भ्रान्तानां भवभ्रमभोवरमेव खेदास्यन्तिक विच्यंसकत्वम् ।
१३ मधुरस्वम्,	मधुररसवस्त्रम्,	अपूर्वाक्षयशिवसुम्नानुमथात्मक रसत्वम् ।
१४ स्निग्धस्वम्,	सुम्नवस्पर्शकत्वम्,	भवभ्रमात्रेणाऽऽत्मनः मतिप्रदेशं धर्मानुरागमनकत्वम् ।

(१२) भ्रमहारिस्व	सुगन्ध आदि कमक गुणा की अधिकता होनेस उससे इन्द्रियो की शक्तिरता दूर करने बाह्य ।	चार गतियों में भ्रमण करके बके हुए प्राणियों का भ्रम- भ्रमण मिटाकर उनके खेदको सर्वथा नाश करने बाह्य ।
(१३) मधुरस्व	मधुर रस बाह्य ।	अपूर्व अविनाशी मोक्षसुखकी- अनुमति रस बाह्य ।
(१४) स्निग्ध	चिकनापन ।	ज्ञान में पड़ते ही अज्ञान के प्रत्येक प्रदेश में धर्मानुराग अज्ञान धारण ।

(१२) भ्रमनिवारण कल्याणम्	सुगन्ध आदि अनेक श्रेयणी विशेषता होवाची ते ते धर्माश्रेयणी शिथिलता दूर करनाह.	चार गतिओरों में भ्रमण करीने बाह्य जमेला श्रेयणी बच अभयने निवारण करीने तेना अज्ञानो सुवधा नाश करनाह
(१३) मधुरस्वम्	मधुर रसवस्त्रम्.	अपूर्व अविनाशी मोक्ष सुखना अनुभव हुए रसवाणी
(१४) स्निग्धता	चिकित्सापणम्	ज्ञानमें पड़ता अज्ञाना दरक-दरक अज्ञाना धर्मानु- राग अज्ञानाह

- १५ बहुदलत्वम्, शतपत्रमहस्रपत्रादिरूपेणा- स्वपत्रमयस्वरूपप्रदर्शकबहुवि-
ऽधिकपत्रवत्त्वम्, धप्रमाणनयनिक्षेपादिवत्त्वम् ।
- १६ विषविनाशकत्वम्, स्थावरजङ्गमविषहारकत्वम्, विषयवासनाऽपहागरुत्वम् ।
- १७ मकरन्दधारित्वम्, परागवत्त्वम्, अनित्यादिभायनाजनितवैरा-
ग्यवत्त्वम् । (१)

- (१५) बहुदलत्व, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि रूपसे स्वसमय और पत्रसमय के
बहुत पत्तोंवाला । स्वरूपका प्रकाशक होने के
कारण भाति-भाति के प्रमाण,
नय, निक्षेप, आदि से युक्त ।
- (१६) विषविनाशकत्व, स्थावर और जङ्गम विष का नाश विषय वासनारूप विषका नाश
करने वाला । करने वाला ।
- (१७) मकरन्दधारित्व, पुष्परसवाला । अनित्य आदि वारह भावनाओं
से उत्पन्न वैराग्यजनित शान्त
रस वाला ।

- (१५) बहुदलता सो पत्र, डुलर पत्र आदि स्वसमय अने परसमयना
रूपथी धल्ला पत्रो (पादडा) स्वरूपना प्रकाशक होवाना
वाणा कारणे नूरी नूरी नतना
प्रभाए, नय, निक्षेप आदिथी
युक्त
- (१६) विषनाशकत्व. स्थावर अने ज गम विषने विषयवासनारूप विषने-अरने
नाश करनार नाश करनार
- (१७) मकरन्द-धारित्व कुलोना रस वाणा अनित्य आदि आर भावना-
ओथी उत्पन्न वैराग्यजनित
शातरस प्रगटावनार

१. वैराग्यवत्त्वम्-प्रतिपाद्यप्रतिपादकभावसम्बन्धेन ।

१८ व्याधिनाशकत्वम्, क्षतधयादिसक्लातङ्गनिवारकत्वम्,	सर्वपातिप्रभृतिसकलकर्मनाशकत्वम् ।
१९ विकसनशीलत्वम्, सुकुलितपत्रस्फुटन स्वभावत्वम्,	अनन्तकालप्रसृप्तात्मगुणविक्रसित्वम् ।
२० तृष्णानिवारकत्वम्, अभिसापापहारकत्वम्,	विषयामिकापनिर्बन्धकत्वम् ।
२१ मूर्छाहारकत्वम्, नष्पेषणानिवारकत्वम्,	मोहविनाशकत्वम् ।

(१८) व्याधिनाशकत्वम् मय आदि समस्त व्याधियांको इत्यनेनात्म । सर्वपाति आदि समस्त कर्मोका नारा करने बाह्य ।

(१९) विकसनशीलत्वम् कर्मशा विकसित इति जानेनात्म । अन्यदिकल्लसे सोये पडे आत्मा के गुणांका विकास करनेनात्म ।

(२०) तृष्णानिवारकत्वम् स्वल्पा इत्यनेनात्म । विषयां की भूमिकाया पूर करने बाह्य ।

(२१) मूर्छाहारकत्वम् मूर्छा (बिहोरी) मित्यने बाह्य । मोह का नाराक ।

(१८) व्याधि विनाशकत्वम् बाह्य व्याधितभास व्याधिजोने निवारणु इत्यने । सर्वपाति प्रभृति आदि तभास कर्मोने नारा इत्यने ।

(१९) विकासशीलत्वम् कर्मशा विकास धमबावाण । अन्यादि कास्यी सुता पडेला आत्माना शुभोने विकास इत्यने ।

(२०) तृष्णानिवारकत्वम् लास्य इर इत्यने । विषयोनी अभिवाया इर इत्यने ।

(२१) मूर्छाहारकत्वम् मोहनाशकत्वम् । मोह का नाराक ।

२२ पथ्यत्वम्	हितकरत्वम् ,	पेहिकपारत्रिकमुद्योन्पादकत्वे- नात्मनो नितान्तोपकारित्वम् ।
२३ मेध्यत्वम् ,	पवित्रत्वम् ,	मिथ्यात्वमलाभावेन नैर्मल्यम् ।
२४ उत्कृष्टभावोत्पा- दकत्वम्	दैन्यशोकादिजनितदुश्चिन्त- नापनयेन विशुद्धविचारा- ऽऽविष्कारकत्वम् ।	विभावपरिणामजन्यदुर्वासनाप- नयनेन तीर्थङ्करगोत्रोपाज्जन- योग्यविशिष्टभावनाजनकत्वम् ।

(२२) पथ्यत्व, हितकर । उल्लोक और पल्लोक सम्प्रन्धी
मुग्यजनक होनेसे आमा का
अचन्त उपकारी ।

(२३) मेध्यत्व, पवित्रता वाला । मिथ्यावादि पाच आश्रव रूपा
मल स रहित होने के कारण
निर्मल ।

(२४) उत्कृष्टभावोत्पा- दैन्यशोक आदि से उत्पन्न
दकत्व, हुई चिन्ता को दूर करके
विशुद्ध विचार उत्पन्न
करने वाला । विभाव परिणति द्वारा जनित
दुर्वासना को दूर करके तीर्थङ्कर
गोत्र वाघन के योग्य विशिष्ट
भावनाको उत्पन्न करने वाला ।

(२२) पथ्यता उचितकर आ लोक अने परलोक स भ धी
सुभ उत्पन्न करनार होवाथी
आत्माने अत्यन्त उपकारी.

(२३) मेध्यता पवित्रता करनार मिथ्यात्व आदि पाच आश्रव
रूपा भणथी रहित होवाना
कारणो निर्मल

(२४) उत्कृष्ट भावो उत्पन्न दैन्यशोक आदिथी उत्पन्न विभाव परिणति द्वारा उत्पन्न
करवापणुं थिताने दूर करीने थयेली दुर्वासनाने दूर करीने
विशुद्ध विचार उत्पन्न करनार तीर्थ कर गोत्र भाषवा योग्य
विशिष्ट भावना उत्पन्न
करनार

२५ अवयवसन्निवेश- सकलावयवपूर्णत्वम्, सकलाङ्गनेपाङ्गपूर्णत्वम् ।
विशेषत्वम्

तीर्थहररूपपादपानां वचनप्रमूनानि गणधराः भद्रामृते संग्रह्य गद्य
पद्यात्मकविविधाहोपाङ्गरूपा मात्मा व्यगिरचन्द्र । अथ सा माता इदं निषाय तत्त-
द्गतमहर्ष स्वस्मनि भावयन्तो भावितात्मान सन्तो ज्ञानक्रियाम्यां कर्मरजोऽप-
नीय बाधापीडाऽवजितमपुनरावृत्तिं सिद्धिगतिनामधेयं शिवपदं समाभयन्ति,
भवमीहन् मन्थानपि तत्पदं प्रापयन्ति ।

(२५) अवयवसन्निवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण । सब अङ्गों और उपाङ्गों से युक्त ।
विशेषत्वम्

तीर्थहररूपी कल्पवृक्षा के वचनरूपी पुष्पां को गणधराने भद्रारूपी सूतमं गुंथकर गद्य-
पद्यरूप विविध अङ्गउपाङ्गमय मातापै रानी उन माताओं को भाग्य करके उनका महत्ता
का अन्तःकरण में बिचार करते हुए भावितरमा पुरुष ज्ञान और क्रिया के द्वारा कर्मरजको
हटाते हैं । तथा सब प्रकार की बाधा और पीडासे रहित, जिन्हें पाकर फिर कमी आमा नहीं
पडता ऐसे सिद्धिगतिरूप शिवपद प्राप्त करते हैं साथ ही भवभीक अन्य मन्थ बाधा का
भी उसी पद की प्राप्ति कराते हैं ।

(२५) अवयवसन्निवेश- सब अवयवों से परिपूर्ण । सब अङ्गों और उपाङ्गों से युक्त
विशेषत्वम्

तीर्थहररूपी कल्पवृक्षोन्म वचनरूप पुष्पोने, अङ्गधराजने भद्रारूपी सूतमं दोशमां
शुधी करी अद्य-पद्यरूप विविध अङ्ग-उपाङ्गमय माताजने रानी ते भागाजने लुंभवमां
भास्य करीने तेनी भद्रत्ताने अत्ताकस्वभां विचार करनार भावितरमा पुरुषज्ञान अने
क्रिया द्वारा कर्मरजको हने इर करे छ तथा सब प्रकारनी उपाधि अने पीडाधी रहित,
जने प्राप्त करीने करीनी कोठ वपय अद्यवपु पडत नधी कोवी सिद्धिअतिरूप शिवपदने
प्राप्त करे छ तेमज कवलीदे अन्य कव्य लोवोने यद्य ते पर (शिवपद)नी अस्ति
कसवे छे ।

કલ્પપાદપા હિ એહિકમેવાધ્રુવ ક્ષણમદ્ધુરં સુખં પ્રદાતુમીશતે, ઇમે તુ લોકોત્તર-
મક્ષયં શાશ્વતં સુખ વિતરન્તિ । લૌકિકસુખં તુ સુતરાં સિદ્ધમેવ, ન પુનસ્તત્ર
પ્રદાનાપેક્ષેતિ ભાવઃ ।

મગવદ્વચનેષુ પશ્ચત્રિંશદ્ અતિશયા લોકોત્તરાઃ સર્વેરનુભૂયન્તે, પશ્ચત્રિંશતો-
ડતિશયાનાં સમવાયાદ્ગમ્ત્રે નિર્દેશાત્ । તથા ચ સૂત્રમ્—“પળતીસ સચ્ચવયળાડ્સેસા
પન્નત્તા” ઇતિ । પશ્ચત્રિંશત્ સત્યવચનાતિશેપાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઇતિ ચ્છાયા । સત્ય-
વચનં — મગવદ્વચન સકલહિતકરત્વાત્, તસ્ય અતિશેપાઃ = અતિશયાઃ પશ્ચ-
ત્રિંશત્ પ્રજ્ઞપ્તાઃ કથિતાઃ, ઇત્યર્થઃ । તત્રૈતે પશ્ચત્રિંશદતિશયાઃ—પરંપરયાડ્વગમ્યન્તે—

કલ્પવૃક્ષ તો ડસી લોકસમ્બન્ધી સુખ દે સકતે હૈ ઓર વહ સુખ મી અધ્રુવ ઓર
ક્ષણમદ્ધુર હોતા હૈ, ફિન્તુ તીર્થદ્ધુર મગવાન્ લોકોત્તર અક્ષય ઓર શાશ્વત સુખ પ્રદાન કરતે હૈ ।
લૌકિક સુખ તો ફિસાન કે લિયે મૂસે કે સમગન સ્વત સિદ્ધ હૈ હી—વહ આનુપદ્ધિક હૈ ।

મગવાન્ કે વચનો મે પૈતીસ લોકોત્તર અતિશયો કા સમી પ્રાણિયો કો અનુભવ હોતા
હૈ । શ્રી સમવાયાદ્ગમ્ત્રે મે પૈતીસ અતિશયો કા ઉલ્લેખ પાયા જાતા હૈ । મૂલ પાઠ ડસ પ્રકાર
હૈ—“પળતીસં સચ્ચવયળાડ્સેસા પળ્ણત્તા ।”

અર્થાત્ સત્ય વચન કે પૈતીસ અતિશય—ગુણ કહે ગયે હૈ ।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સમ્બન્ધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ
અને ક્ષણભુગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થ કર ભગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત—નિત્ય
સુખ આપે છે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાના ક્ષેતરા) સમાન
સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે

ભગવાનના વચનોમા પાત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ
થાય છે, શ્રી સમવાયાગ સૂત્રમા એ પાત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે
મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— “ પળતીસ સચ્ચવયળાડ્સેસા પળ્ણત્તા ”

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આન્યા છે અહિં સત્ય-
વચનનો અર્થ છે—ભગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય
અર્થાત્ ગુણ પાત્રીશ છે પરપરાના નિયમ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે
માનવામા આન્યા છે—

(१) सस्कारवस्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययस्मिन्नवचननादियुक्तत्वम् । (२) उदात्त-
त्वम् = भोत्वसुबोधत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राङ्मनमापाकदस्तीलादि
दोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मेघबद् गम्भीरनादवस्त्वम् । (५)
अनुनादित्वम् = प्रतिध्वन्योपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = श्रुत्यम् ।
(७) उपनीतरागत्वम् = मालकोशरागशृणवत्वम्, यथा मालकोशरागः
प्रस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनचेतसोऽपि जनान् मगबद्धवन
द्रावयतीति इत्यद्रावकत्वमिति भावः । (८) महायत्वम् = मोक्षमार्ग-

यहाँ सत्य वचन का अर्थ है—मगवान के वचन, क्योंकि वे सच्चे हित करने वाले
हैं । उन वचनों के—बाणोंके अतिशय अर्थात् गुण पैतृस हैं । परम्परा के अनुसार बाणोंके
पैतृस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) सस्कारवत्व—प्रकृति प्रथम स्मिन्न वचन आदि स युक्त होना (२)
उदात्ता—भोताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपिता—उपचारों की भाषा में पाये
जाने वाले अस्वीकृता आदि दोषों से रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व—मेघकी समास गम्भीर नाद
होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनिस युक्त होना । (६) दक्षिणता—सस्मृता । (७)
उपनीतरागवत्व—मालकोश राग सरीला गुण होना, अर्थात् बैस— मालकोश राग पापाण
को भी पिच्छ्र देता है, उसी प्रकार मगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिच्छ्र
देते हैं । तात्पर्य यह है कि—मगवान के वचन बड़े ही इत्यद्रावक होते हैं ।
(८) महायता—मगवान् के वचन मोक्ष—मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्वपूर्ण और अर्थ

(१) सस्कारवत्व—प्रकृति, प्रथम सिंग, वचन आदिषु युक्त वचन (२) उदात्ता—
भोताओं भाटे सुगम (३) उपचारोपिता—भूषण—ए गवी भाषासेनी भाषाभा ज्येष्ठाभा
अवत्य अस्वीकृत—असत, शरम आवे तेवा भाषाना दोषे रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व मेघना
ज्येष्ठा गभीर शब्द । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनि युक्त होतु (पदमात्र पद्य) (६) दक्षिणता
सरसता (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग ज्येष्ठा शृणु ज्येष्ठा अर्थात्—ज्येष्ठा शीते
मालकोश राग पश्चरने पञ्च पितृगवी दे छे ते प्रभाज्ये अगवानना वचने कठोर हृदय
व्यथा भाषुसने पञ्च पितृगवी दे छे त्वापय ज्येष्ठा छे छे—अत्रवानना वचन महान हृदय
द्रावक होष छे (८) महायता—अत्रवानना वचन मोक्षमार्गनु प्रतिपादन इत्यन्त छे
तेषा महत्वपूर्ण होने अर्थषु युक्त होष छे (९) अन्वयतपोर्वापर्य—भूर्वापर

કલ્પપાદપા હિ ણેહિકમેવાધ્રુવ ક્ષણમહ્નુરં સુખં પ્રદાતુમીશતે, ઇમે તુ લોકોત્તર-
મક્ષય શાશ્વતં સુખ વીતરન્તિ । લૌકિકસુખં તુ મૃતરાં સિદ્ધમેવ, ન પુનસ્તત્ર
પ્રદાનાપેક્ષેતિ ભાવઃ ।

મગવદ્વચનેષુ પશ્ચત્રિશદ્ અતિશયા લોકોત્તરાઃ સર્વેરનુભૂયન્તે, પશ્ચત્રિશતો-
તિશયાનાં સમવાયાદ્ગમ્ત્રે નિર્દેશાત્ । તથા ચ સૂત્રમ્—“પણતીસં સચ્ચવયણાઈસેસા
પણ્ત્તા” ઇતિ । પશ્ચત્રિશદ્ સત્યવચનાતિશેપાઃ પ્રજ્ઞપ્તાઃ, ઇતિ ચ્છાયા । સત્ય-
વચનં — મગવદ્વચન સકલહિતકરત્વાત્, તસ્ય અતિશેપાઃ = અતિશયાઃ પશ્ચ-
ત્રિશદ્ પ્રજ્ઞપ્તાઃ કથિતાઃ, ઇત્યર્થઃ । તત્રૈતે પશ્ચત્રિશદતિશયાઃ—પરંપરયાઽવગમ્યન્તે—

કલ્પવૃક્ષ તો ડસી લોકસમ્બન્ધી સુખ દે સકતે હૈ ઓર વહ સુખ મી અધ્રુવ ઓર
ક્ષણમહ્નુર હોતા હૈ, કિન્તુ તીર્થદ્ધર મગવાન્ લોકોત્તર અક્ષય ઓર ઝાશ્વત સુખ પ્રદાન કરતે હૈ ।
લૌકિક સુખ તો કિસાન કે લિયે મૂસે કે સમાન સ્વત સિદ્ધ હૈ હી—વહ ધાનુપદ્ધિક હૈ ।

મગવાન્ કે વચનોં મે પૈતીસ લોકોત્તર અતિશયોં કા સમી પ્રાણિયોં કો અનુભવ હોતા
હૈ । શ્રી સમવાયાદ્ગમ્ત્રે મેં પૈતીસ અતિશયોં કા ઉલ્લેખ પાયા જાતા હૈ । મૂલ પાઠ ઇસ પ્રકાર
હૈ—“પણતીસં સચ્ચવયણાઈસેસા પણ્ત્તા ।”

અર્થાત્ સત્ય વચન કે પૈતીસ અતિશય—ગુણ કહે ગયે હૈ ।

કલ્પવૃક્ષ તો આ લોક સમ્બન્ધી સુખ આપી શકે છે અને તે સુખ પણ અધ્રુવ
અને ક્ષણભુલ ગુર હોય છે, પરન્તુ તીર્થ કર લગવાન લોકોત્તર અક્ષય અને શાશ્વત—નિત્ય
સુખ આપેછે, લૌકિક સુખ તો ખેડુત માટે ભુશકા (અનાજ વિનાના ક્ષેતરા) સમાન
સ્વાભાવિક સિદ્ધજ છે

લગવાનના વચનોમા પાત્રીશ લોકોત્તર અતિશયોનો સર્વ પ્રાણીઓને અનુભવ
થાય છે, શ્રી સમવાયાગ સૂત્રમા એ પાત્રીશ અતિશયોનો ઉલ્લેખ જોવામા આવે છે
મૂલ પાઠ આ પ્રકારે છે— “ પણતીસ સચ્ચવયણાઈસેસા પણ્ત્તા ”

અર્થાત્—સત્ય વચનના પાત્રીશ અતિશય ગુણ કહેવામા આવ્યા છે અહિં સત્ય-
વચનનો અર્થ છે—લગવાનના વચન, કેમકે તે સર્વ હિત કરનારા છે તે વચનોનો અતિશય
અર્થાત્ ગુણ પાત્રીશ છે પરપરાના નિયમ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય આ પ્રમાણે
માનવામા આવ્યા છે—

(१) संस्कारवत्त्वम् = प्रकृतिप्रत्ययच्छिन्नवचनावियुक्तत्वम् । (२) उदात्तत्वम् = भोक्तृमुवेद्यत्वम् (३) उपचारोपेतत्वम् = अप्राज्ञमनमाषाषदस्त्रीलादिदोषरहितत्वम् । (४) गम्भीरध्वनित्वम् = मधक्त्वं गम्भीरनादवत्त्वम् । (५) अनुनादित्वम् = प्रतिध्वन्दोपेतत्वम् । (६) दक्षिणत्वम् = श्चमुत्त्वम् । (७) उपनीतरागत्वम् = मालकोत्तरागगुणवत्त्वम्, यथा मालकोत्तरागमस्तरानपि द्रावयति, तथा कठिनवेतसोऽपि जनान् ममवद्वचनद्रावयतीति हृदयद्रावकत्वमिति भावः । (८) महार्थत्वम् = मोक्षमार्ग

ब्रह्म सब वचन का अर्थ है—मगवान के वचन क्योंकि वे सबके हित करने वाले हैं । उन वचनों के—बाणीके अतिशय अर्थान् गुण पैंतीस हैं । परम्परा के अनुसार बाणीके पैंतीस गुण इस प्रकार माने जाते हैं—

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति प्रत्यय, छिन्न वचन आदि से युक्त होना (२) उदात्तता—अंताओं के लिये सुगम । (३) उपचारोपेतता—व्यंजनों की भाषा में पाये जाने वाले बन्धुमृता आदि दोषों से रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व—मधक्की समान गम्भीर नाद होना । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनित से युक्त होना । (६) दक्षिणता—सस्मृता । (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग सरिता गुण होना, अर्थात् जैसे—मालकोश राग वाषाण को भी पिपला देता है, उसी प्रकार मगवान् के वचन कठोर हृदय को भी पिपला देते हैं । तात्पर्य यह है कि—मगवान् के वचन बड़े ही हृदयद्रावक होते हैं । (८) महार्थता—मगवान् के वचन मोक्ष-मार्ग के प्रतिपादक होने से महत्त्वपूर्ण और अर्थ

(१) संस्कारवत्त्व—प्रकृति, प्रत्यय विंग, वचन आदिशी युक्त वचन (२) उदात्तता—भोक्तृमुवेद्य भावे सुगम (३) उपचारोपेतता—मूल-व गवी मालकोशनी भाषाया ज्ञेयाया ज्ञेयता अत्रहीन—असज, शरभ आवे तेवा भाषाया होये रहित । (४) गम्भीरध्वनित्व मेघना ज्ञेयात्र शीर शब्द । (५) अनुनादित्व—प्रतिध्वनित युक्त होय (५ भाष्य वचु) (६) दक्षिणता अस्मृतता (७) उपनीतरागत्व—मालकोश राग ज्ञेयात्र युक्त होय अर्थात्—जैसी शीते मालकोश राग प्रथमने पद्य पिपलायी दे छे ते प्रगल्भे अजवानना वचने कठोर हृदय वाग्य भाषुसने पद्य पिपलायी दे छे तात्पर्य ज्ञे छे के—अजवानना वचन महान हृदय द्रावक होय छे (८) महार्थता—अजवानना वचन मोक्षमार्गनु प्रतिपादन कलास छे तेही महत्त्वपूर्ण अने अर्थशी युक्त होय छे (९) अनुनादित्वोपात्त—पूर्वपर

प्रतिपादकत्वेन महत्वविशिष्टार्थकत्वम् (९) अव्याहृतपौर्वापर्यत्वम् । = पूर्वापर-
विरोधराहित्यम् । (१०) शिष्टत्वम् = शिष्टाभिमततत्त्वबोधकत्वम् । (११) असं-
दिग्धत्वम् = अभिधेयार्थानां स्फुटतया प्रतिपादनेन संशयाजनकत्वम् । (१२)
अपहृतान्योत्तरत्वम् = सकलगुणपूर्णत्वेन परकृतदोषान्वेषणाऽविषयत्वम् । (१३)
हृदयग्राहित्वम् = सर्वेषां प्राणिनां श्रवणमात्रेण हृदयहारित्वम् । (१४) देशकाला-
व्यतीतत्वम् = द्रव्यक्षेत्रकालभावानुकूलत्वम् । (१५) तत्त्वानुरूपत्वम् = विवक्षित
वस्तुद्रव्यपर्यायस्वरूपप्रकाशकत्वम् । (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्वम् = प्रसङ्ग विना-
न विस्तीर्णत्वं नातिसंक्षिप्तत्वम् (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्वम् = पदानामर्थानां वा

से युक्त होते हैं । (९) अव्याहृतपौर्वापर्य-पूर्वापर विरोध से रहित होते हैं । (१०)
शिष्टता-शिष्ट पुरुषों द्वारा स्वीकृत तत्त्व का बोध कराते हैं । (११) असंदिग्धता-अभिधेय
अर्थ का स्पष्ट रूप से प्रतिपादन करने के कारण संशयजनक नहीं होते । (१२) अपहृता-
न्योत्तरत्व-समस्त गुणों से युक्त होने के कारण दूसरे वादी उनमें कोई दोष नहीं निकाल
सकते । (१३) हृदयग्राहित्व-समस्त श्रोतागणों के हृदय को हरण करने वाले । (१४) देशकाल-
लाव्यतीतत्व-द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुकूल । (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित
वस्तुके द्रव्य और पर्याय का स्वरूप प्रकाशित करने वाले (१६) अप्रकीर्णप्रसृतत्व-

विशेषार्थी रक्षित होय छे (१०) शिष्ट पुत्रयो द्वारा स्वीकारेला तत्त्वने बोध करावे छे
(११) असंदिग्धता-अभिधेय-वाक्यार्थनु स्पष्ट रूपी प्रतिपादन करवाना कारणे स शय
उत्पन्न थतो नथी (१२) अपहृतान्योत्तरत्व-समस्त गुणोथी युक्त होवाथी पीन पक्षना
वादीनेमा कोर्ष पणु प्रकरने दोष काढी शकता नथी (१३) हृदयग्राहित्व-समाप्त श्रोता
वर्गना हृदयने उरुणु क-वावाणा (१४) देशकालाव्यतीतत्व-द्रव्य, क्षेत्र काल अने
भावने अनुकूल (१५) तत्त्वानुरूपत्व-विवक्षित-वस्तु अटके जोलवा माटे मनमा नक्षी
करेणु, तेना द्रव्य अने पर्यायना स्वरूपने प्रकाशित करवावाणा (१६) अप्रकीर्ण-प्रसृतत्व
प्रसंग विना विस्तार रक्षित नडि कडेवु, तथा संक्षेपमा नडि कडेवु (१७) अन्योन्य
प्रगृहीतत्व-पूर्वापर पदोनी अने अर्थोनी अपेक्षा राधवा वाणा, अर्थोर्त प्रकरण सगत

पूर्वापरसापेक्षत्वम् । (१८) - अभिजातत्वम् = सूक्ष्मस्यापि भीषादिस्वरूपस्य वाक्षुष
प्रत्यक्षीकरत्वमवत्प्रतिपादकत्वम् । (१९) - अतिस्निग्धमधुरत्वम् = अमृतत्वचुष्टिमनकत्वम् ।
(२०) - अपरमर्मवेधित्वम् = परममोहाटनरहितत्वम् । (२१) - अर्धधर्माभ्यासान-
पेतत्वम् = पारमार्थिकार्थमबोधकत्वम् (२२) - उदारत्वम् = सर्वप्राणिकल्याणकारित्वं,
तुच्छार्थानभिधायकत्वं वा । (२३) - परनिन्दात्मोत्कर्षविप्रमुक्तत्वम् = परोत्क्षेपात्म-
प्रशंसाहीनत्वम् (२४) - उपगतस्त्रापत्वम् = सकलद्वितकरत्वेन समादतत्वम् (२५) -

प्रसङ्ग के बिना न कहना, न विस्तारयुक्त और न संक्षिप्त कहना (१७) अन्योन्यप्रगृहीतत्व
पूर्वापर पदों की और अर्थ की अपेक्षा रखनेवाले अर्थात् प्रकरणसङ्गत, (१८) अभि-
जातता - भीष आदि के अत्यन्त सूक्ष्मस्वरूपको भी इतना स्पष्ट निरूपण करने वाले
जैसे कि बालों से देख रहे हों (१९) अतिस्निग्धमधुरता - अमृत के समान
सुसिकारक, (२०) अपरमर्मवेधित्व - दूसरों के मर्म को न प्रगट करने वाले, अथवा
प्रतिपक्षियों के मर्म (हेतुओं एवं युक्तियों) का मिराकरण करने वाले, (२१) अर्ध-
धर्माभ्यासानपेतता - परमात्म अर्थात् मोक्ष तथा मोक्ष के साधनरूप धर्म का बोध
कराने वाले, (२२) उदारता - प्राणिमात्र का कल्याण करने वाले अथवा तुच्छ अर्थों का
प्रतिपादन न करने वाले (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता - परनिन्दा और
आत्मप्रशंसा रहित (२४) उपगतस्त्रापत्व - सर्वद्वितकारी होने के कारण सभी

(१८) अभिजातता - लघु आदि तत्त्वेना अत्यन्त सूक्ष्म स्वरूपनुं पक्ष ज्येष्ठ रूप
निर्हपक्ष ३९वावाण्य जेभडे नेत्रधी जेठ रक्षा डोष (१६) अतिस्निग्धमधुरता - अमृत
समान वृत्ति करवा वाण्य (२) अपरमर्मवेधित्व - जीवना मर्मने प्रगट नहि
करवा वाण्य अथवा प्रतिपक्षीज्येना मर्म (हेतुज्ये-मुक्तिज्ये) नुं निराकरण-करवा
वाण्य (२१) अर्धधर्माभ्यासानपेतता - परमार्थ-अर्थात् धीक्ष तथा मोक्षना साधनरूप
धर्मने बोध करवावाण्य (२२) उदारता - प्राणिमात्रनुं कस्यापुं करवा करवावाण्य, अथवा
तुच्छ अर्थेनुं प्रतिपादन नहि करवा वाण्य (२३) परनिन्दाऽऽत्मोत्कर्षविप्रमुक्तता - पर
निन्दा अने आत्मप्रशंसाधी रहित (२४) उपगतस्त्रापत्व - सर्वद्वितकारी होवाने

अनपनीतत्वम् = श्रुतिकदुत्वादिवचनदोषापेतत्वम् (२६)-उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्वम् = नवनवार्थप्रतिपादकत्वेन पुनः पुनः श्रवणाभिलाषजनकत्वम् । (२७)-अद्भुतत्वम् = शीघ्रतारहितत्वम् । (२८)-अनतिविलम्बितत्वम्=वाक्यापरिसमाप्तौ विश्रामरहितत्वम् । (२९)-विभ्रमविक्षेपरोषावेशादिराहित्यम् = विभ्रमो=भ्रान्तिः, विक्षेपः=विक्षिप्तार्थं प्रत्यनासक्तता, रोषावेशः=क्रोधावैगस्तैर्विमुक्तत्वम् । (३०)-विचित्रत्वम् = वर्णनीयवस्तुस्वरूपप्रकाशनेन लोकोत्तरत्वम् । (३१)-आहितविशेषत्वम् =द्रव्य-पर्याय-विशेषप्रतिपादकत्वम् । (३२)-साकारत्वम्=हेतुकारणादिभिः स्फुटतया

के लिये उपादेय, (२५) अनपनीतत्व - कर्णकटुकता आदि दोषों से रहित, (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व - नूतन नूतन अर्थ का निरूपण करने के कारण वार वार सुनने की अभिलाषा उत्पन्न करनेवाले, अर्थात्-भगवानके वचनोंको वार वार सुनने की इच्छा होती है । (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रता से रहित, (२८) अनतिविलम्बितत्व-बहुत विलम्ब से उच्चारण न किये जाने वाले, अर्थात् वाक्य समाप्त होने से पहले विश्राम लिए बिना ही बोले जाने वाले । (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषाऽऽवेशादिराहित्य, विभ्रम अर्थात् भ्रान्ति, विक्षेप अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु के प्रति असावधानी, रोष अर्थात् क्रोध, के आवेश से रहित, (३०) विचित्रता वर्णन की जाने वाली वस्तु का स्वरूप प्रकाशित करने के कारण लोकोत्तर, (३१) आहितविशेषता - द्रव्य और पर्याय की विशेषता का प्रतिपादन करने वाले,

अरथे सर्वने माटे उपादेय-अद्भुत करवा योग्य. (२५) अनपनीतत्व-ज्ञानने अप्रिय लागे अथवा दोषाधी रहित (२६) उत्पादिताच्छिन्नकौतूहलत्व-नवानवा अर्थनु निरूपण करवाना अरथे वार वार सांख्यवाणी अलिखाषा उत्पन्न करवावाणा, अर्थात् भगवानना चयनेने वार वार सांख्यवा अलिखाषा-अच्छा थाय छे, (२७) अद्भुतत्व-शीघ्रताधी रहित (२८) अनतिविलम्बितत्व-अद्भुत विल अथी उच्यारण नहि करवावाणा, अर्थात्-वाक्य समाप्त थया पडेला विश्राम लीधा बिना अलिखावावाणा (२९) विभ्रम-विक्षेप-रोषा-वेशादिरहितत्व-विभ्रम अर्थात्-भ्रान्ति, विक्षेप-अर्थात् प्रतिपाद्य वस्तु तरङ्ग गइलत, रोष-अर्थात् क्रोधना आवेशधी रहित (३०) विचित्रता-वर्णन करवा योग्य वस्तुना स्वइपने प्रकाशित करवाना अरथे लोकोत्तर (३१) आहितविशेषता-द्रव्य अने पर्यायनी

प्रकाशनेनार्थानां साक्षात्कारजनकत्वम् । (३३)—सत्त्वपरिवृत्तत्वम्—उत्पादव्ययघौष्य-
युक्तसत्त्वयार्थप्रकाशकत्वम् । (३४)—अपरिखेदितत्वम् = स्वपरस्वेदानुत्पादकत्वम् ।
(३५)—अभ्युच्छेदित्वम् = वर्धनीयपदार्थनिर्णयं यावदभिच्छिन्नत्वम् ।

द्वसप्तदायविद्विरप्युक्तम्—

(१)—सकारणं, (२)—उदचर्चं, (३)—उदयारोषेयं (४)—गमीरञ्जयिषं,
(५)—अजुष्यादिचं, (६)—दक्षिणच, (७)—उष्णीषरागचं, (८)—महत्त्वचं, (९)—
अम्बाहयपुष्पावज्जचं, (१०)—सिद्धचं, (११)—असदिदचं, (१२)—अवहरियमसुचरचं,
(१३)—हिययगाहिचं, (१४)—देसकालमर्धयचं, (१५)—उत्ताणुस्वचं, (१६)—
अण्यपण्यसरियचं, (१७)—अन्नुमप्यमाहीयचं, (१८)—अहिजायचं, (१९)—अहपिद्ध
महुरचं, (२०)—अबरमम्मयेहिचं, (२१)—अत्यपम्ममासाप्येयचं, (२२)—उपारचं,
(२३)—परनिदाअप्युकरिसबिप्युत्तच, (२४)—उषगपसिठापचं, (२५)—अण्यकीयचं,
(२६)—उप्यादयच्छिन्नकोउदसचं, (२७)—अदुयचं, (२८)—अण्यबिलेपियचं, (२९)—
बिम्ममविक्लेदरोसावेसाइराहिचं, (३०)—विचिचं, (३१)—आडियविसेसचं, (३२)—
सागारचं, (३३)—सत्त्वपरिग्गहीयचं, (३४)—अपरिखेदयचं, (३५)—अभ्युच्छेदचं ।

(३२) साकारता—हेतु कारण आदि के द्वारा स्पष्ट रूप से प्रकाशित करके पदार्थों का
साक्षात्कार करने वाले (३३) सत्त्वपरिवृत्तत्व—उत्पाद व्यय और धौम्यमय सत्ता
के रूपमें अर्थ के प्रकाशक (३४) अपरिखेदितत्व—एक को और पर को सेव म
पूर्ण करने वाले (३५) अभ्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषय का निर्णय हुए बिना न करने वाले,
अर्थात् विवक्षित वस्तु का पूर्ण निर्णय करने वाले ।

विशेषतानु पतिपादन इत्या वाग्य (३२) साकारता—हेतु कारण आदि वदे स्पष्ट
रूपसे प्रकाशित करने के लिये साक्षात्कार कलपवा वाग्य (३३) सत्त्वपरिवृत्तत्व—
उत्पाद, व्यय, अने धौम्य-मय सत्त्वाना रूपमा अर्थाना प्रकाशक (३४) अपरिखेदित्व
प्राप्ताने अने धारणने जेह नहि छेत्वादनार (३५) अभ्युच्छेदित्व—प्रतिपाद्य विषयने
निर्णय कवा बिना नहि अटकनार, अर्थात् विवक्षित वस्तुने पूर्ण निर्णय कवा वाग्य ;

મગવદ્વચનાનિ ચતુર્વિધેઽનુયોગે પ્રવિમક્તાનિ, સ ચેત્થમ્—

(૧)—ચરણકરણાનુયોગઃ, (૨)—ધર્મકથાનુયોગઃ, (૩)—ગણિતાનુયોગઃ, (૪)—દ્રવ્યાનુયોગશ્ચ ।

ગુજ્યતે=સંવધ્યતે મગવદુક્તાર્થેન સહેતિ યોગઃ = ગણધરકથનરૂપઃ, અનુ = અનુકૂલો યોગોઽનુયોગઃ । મગવદ્વચનાનુરૂપા ગણધરોક્તિરિત્યર્થઃ । (૧)

(૧) અથ ચરણકરણાનુયોગ—

(૧) ચર્યતે = ગમ્યતે = પ્રાપ્યતે મવોદધેઃ પર કૂલં ચતુર્દશગુણસ્થાના-

મગવાન્ કે વચનો મેં ચે પૈતીસ અતિશય અર્થાત્ ગુણ હોતે હૈં । પ્રાચીન આચાર્યો ને મી કહા હૈ — ‘સક્કારવત્તં’ ઇત્યાદિ ૩૫ ।

(વાણી કે પૈતીસ ગુણ પહેલે કહ ચુકે હૈ અત યહૌં ઇનકા અર્થ કહને કી આવશ્યકતા નહીં ।

મગવાન્ કે વચન ચાર અનુયોગો મેં વિમક્ત હૈં । ચાર અનુયોગ ચે હૈં —

૧ ચરણકરણાનુયોગ, ૨ ધર્મકથાનુયોગ, ૩ ગણિતાનુયોગ, ઔર ૪ દ્રવ્યાનુયોગ ।

મગવાનકે વચનો કે અનુકૂલ ગણધરોં કા વ્યાખ્યાન અનુયોગ કહલાતા હૈ ।

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

નિસકે દ્વારા મવ-સાગર કા કિનારા અર્થાત્ ચૌદહવૌં ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત ક્રિયા જાય

મગવાનના વચનોમા આ પ્રમાણે પાત્રીશ અતિશય અર્થાત્—ગુણ હોય છે પ્રાચીન આચાર્યોએ પણ કહ્યુ છે:— “સક્કારવત્તં” ઇત્યાદિ ઉપ. (પાત્રીશ વાણીના ગુણો પહેલા કહી ગયા છીએ જેથી અહિં એનો અર્થ કહેવાની આવશ્યકતા નથી.)

મગવાનના વચન ચાર અનુયોગોમા વહે ચાચેલા છે ચાર અનુયોગ આ છે— (૧) ચરણકરણાનુયોગ (૨) ધર્મકથાનુયોગ, (૩) ગણિતાનુયોગ અને (૪) દ્રવ્યાનુયોગ

મગવાન-દ્વારા પ્રરૂપિત અર્થની સાથે ગણધરના વચનનો યોગ હોય તે અનુયોગ કહેવાય છે, તાત્પર્ય એ છે કે —મગવાનના વચનોને અનુકૂળ ગણધરોએ કરેલુ વ્યાખ્યાન તે અનુયોગ કહેવાય છે

(૧) ચરણકરણાનુયોગ—

જેનાથી મવસાગરનો કિનારો અર્થાત્ ચૌદમુ ગુણસ્થાન પ્રાપ્ત કરી શકાય, તેને અર્થાત્ મૂલગુણને ‘ચરણ’ કહે છે, અથવા ત્રત આદિ ચરણ કહેવાય છે તે સિત્તેર (૭૦) છે કહ્યુ પણ છે—

पस्वास्वरूपमनेनेति चरमं = मूल्गुणरूपम् । यद्वा चरणं=व्रतादि, तच्च सप्तवि-
संस्पर्कम्, उक्तम्—

“ वयं समजपम्म१० संभम१७, वेयावर्ष१० च बंमगुत्तीओ ९ ।
भाणाइविर्प३ तव१२ कोहनिग्गाहाई३ चरणमेये ॥ १ ॥ ” इति ।

क्रियते पस्वस्य पुष्टिरनेनेति करणम् = उत्तरगुणरूपम् । यद्वा करणं=
पिण्डविशुद्ध्यादि, एतदपि सप्तविसंस्पर्कम्, उक्तम्—

उत्ते बर्वात् मूल्गुणको चरण' कहते हैं । अथवा अत्र आदि 'चरण' कहलते हैं । वे
७० सत्तर हैं । कहा भी है —

पंच महाजत दश अण्णवर्षं सत्रह संयम, दश वैसावृत्य, नौ ब्रह्मचर्यं की
गुप्तिमां स्तत्रय — (सम्भग्ज्ञान, दर्शन, चारित्र), बारह प्रकारका तप, चार कोषादि
विषय—(कोषविषय, मायाविषय, मानविषय, सोमविषय), यह ७० सत्तर प्रकारका 'चरण'
कहलता है ।

चरण की पुष्टि करने बाबा 'करण' कहलता है । करण का अभिप्राय है—
उत्तर गुण । अथवा पिण्डविशुद्धि आदिको करण कहते हैं । इसके भी सत्तर ७० भेद
हैं । कहा भी है —

पचि महाजत, दस अमणुवर्षं, सत्तर संयम, दश वैसावृत्य, नव ब्रह्मचर्यनी
गुप्तिमां, स्तत्रय—(सम्भग्ज्ञान दर्शन अने चारित्र) चार अण्णवर्षे तप, बार
कोषादिविषय,—(कोषविषय, मानविषय, मायाविषय, सोमविषय) आ अण्णवर्षे
सित्तेर (७०) प्रकल्पत अरु कहलवय छे ॥ १ ॥

अरुणनी पुष्टि करवा बाणा अरुण कहलवय छे । अरुणनी अतिप्रसन्न छे—उत्तर गुण,
अथवा पिण्डविशुद्धि आदिने अरुण कहल छे । तेना पचु सित्तेर भेद छे । कहुं पचु छे —

“पिंडविसोही४ समिई५, भावण१२ पडिमा१२ य इदियनिरोहो५ ।
पडिलेहण२५ गुत्तीओ३, अभिग्गहा४ चैव करणं तु ॥ १ ॥” इति ।

तयोरनुयोगश्चरणकरणानुयोगः (१) ।

धर्मकथानुयोगादयश्चरणकरणयोर्भव्यजीवान् प्रवर्तयन्तीति तेषां चरण-
करणाङ्गतया प्राधान्यमेतस्यानुयोगस्य, अत एवास्य प्राथम्यम् । उक्तञ्च—
आत्मन् ! जानीहि पूर्वं चरणकरणयोराश्रये यन्महत्त्वं,
मोहं दूरीकरोति प्रकटयति परं निश्चयात्मस्वरूपम् ।

“चार पिण्डविशुद्धि, पाच समितिया, वारह भावना, वारह पडिमा, पाच
इन्द्रियनिरोध, पचीस प्रतिलेखना, तीन गुप्तिया, चार अभिग्रह, यह सत्तर ७० प्रकारका करण
कहलाता है ।

इस तरह चरण और करण के अनुयोग को, अर्थात् भगवान् की वाणी के अनुकूल
व्याख्यान को चरणकरणानुयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिस शास्त्र में चारित्र
सम्बन्धी निरूपण है, वह चरणकरणानुयोग समझना चाहिए ।

धर्मकथानुयोग आदि शेष तीन अनुयोग भव्यजीवों को चरण और करण में
प्रवृत्त करते हैं, अत वे इसी अनुयोग के अङ्ग हैं । इस प्रकार चारों अनुयोगों में
चरणकरणानुयोग ही प्रधान है । प्रधान होने के कारण ही इस की गणना सर्वप्रथम की गई
है । कहा भी है—

हे आत्मन् ! चरण और करण में जो महत्त्व है, उसे पहले समझ ले । वह मोह को
निवारण करता है, आत्मा के निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वरूप को प्रकट करता है, वह सब

“आर पिंडविशुद्धि, पाच समितिओ, आर भावना, आर पडिमा, पाच इन्द्रिय
निरोध, पचीस प्रतिलेखना, त्रयु गुप्तिओ, आर अभिग्रह, आ सर्व करण
कहेवाय छे” ॥ १ ॥

आ प्रभाणु अरणु अने करणना अनुयोगने अर्थात् भगवान् की वाणीने अनुकूल
व्याख्यानने अरणुकरणानुयोग कहे छे तात्पर्य अे छे के—ने शास्त्रमा चारित्रसम्बन्धी
निर्णय छे ते अरणुकरणानुयोग समजवु नेछअे

धर्मकथानुयोग आदि आकीना त्रयु अनुयोग लव्य एवोने अरणु अने करणमा
प्रवृत्त करे छे; तेदला माटे ते पणु अे अनुयोगनु अग छे आ प्रकारे आरय अनुयो-
गोमा अरणुकरणानुयोग प्रधान—मुअ्य छे

मुअ्य होवाना कारणे न तेनी गणना सौथी प्रथम करी छे कहुँ पणु छे —

“हे आत्मन् ! अरणु अने करणमा ने महत्त्व छे, तेने प्रथम समज ले, ते

आचारोऽयं सुमानामपनयति सदाऽनादिमिध्यात्कदोष,
 हेतुर्योऽयं विदुर्देवमयति नितरामिन्द्रियाणि मुतं य ॥ १ ॥
 सम्यक्ज्ञानस्य दाता शिवसुखजनकः कर्मभूलेभ इती,
 कर्त्ता विद्योत्पन्नस्याऽऽत्मनि सकलभुजस्याऽद्वितीया प्रकाशः ।
 आत्मन्नेवात्मनीनिभरत्नकरणयोरामयः काऽप्र सङ्गा १,
 सङ्कारो मेव लोकः परिणतिविरसः किं सुखाशां करोषि ? ॥ २ ॥

(२) अथ धर्मकमानुयोगः—

मन्मथनिधौ निपठ्यन्तं मन्मथजातं धारयति—धरिरीष तास्यति सुमस्थाने
 पापयतीति धर्मः, तस्य कृपा मगभदेसुनासुसजो वाक्यमन्त्रः धर्मकृपा । अद्वितीया
 दिप्रकृपा वा धर्मकृपा । अथवा भुतधारिभुतसुखधर्मप्रधानकृपा-धर्मकृपा । यथा

गुणों का आधार है, और अन्यविकाकीन मिथ्यात्व दोष को दूर करता है, विदुषि का कारण
 है, और इन्द्रियों को शीघ्र ही दमन करने वाला है ॥ १ ॥

सम्पन्नान का दाता है, मोक्षसुख उत्पन्न करने वाला है कर्मरूपी भूको दूर
 करने वाला है, आत्मामें उद्योत-प्रकाश करने वाला है और समस्त गुणों का अद्वितीय
 प्रकाशक है, हे आत्मन् ! करण और कर्त्तृ का आश्रय समकारी है, इस विषयमें संका को
 स्थान ही नहीं है ! अर्थात् निश्चितरूपसे ही वह कर्ममात्र करने वाला है, यह लोक (संसार)
 जो परिणाम में एकत्र नही रहता है, तू इस से सुख की अमिच्छा क्यों करता है ॥ २ ॥

(२) धर्मकमानुयोग

संसाररूपी सागरमें डूबते हुए मन्मथ जीवों को धारण करनेवाला—मीका के समान

शोकनु निवारण करे छे आत्माना निश्चय अर्थात् वास्तविक स्वयं अपने प्रगट करे छे, ते
 सर्व सुखोने आधार अने अन्तहि कालना मिथ्यात्व दोषने दूर करे छे, विदुषिनु अरुण
 अने धन्त्रियोना शीघ्र दमन आटे ते सदायक छे ॥ १ ॥

सम्पन्नान देनाए छे अने शोकसुख उत्पन्न करवावा छे कर्मरूपी भुजने
 दूर करवावा छे आत्माभा उद्योत-प्रकाश करवा वा छे अने समस्त सुखोने
 अद्वितीय प्रकाशक छे हे आत्मन् ! अरुण अने करणने आश्रय ठहरवावारी छे,
 आ विषयमां संकाने स्थान क क्या छे ? अर्थात् निश्चित रूपसे क ते कस्यायु करवा
 वा छे, आ लोक (संसार) तो पत्थिमाये अकेदम नीरस-स्वच्छिद छे, तू तेमां
 सुखनी अलिखाया था आटे करे छे ? ॥ २ ॥

(२) धर्मकमानुयोग

संसाररूपी सागरमां डुबता मन्मथ जीवोंने धारण करवावाणी, वदाय प्रमाणे

શુભાશુભકર્મવિપાકોપદર્શનં ધર્મકથા । કિञ્ચ - તીર્થદ્ધરચક્રવર્ત્યાદિચારિત્રવર્ણનં ધર્મકથા । તસ્યા અનુયોગઃ ધર્મકથાનુયોગઃ ।

ધર્મકથા ચતુર્વિધા—(૧)—આક્ષેપણી—(૨)—વિક્ષેપણી— (૩)—સવેદની— (૪)—નિર્વેદનીભેદાત્ ।

આક્ષેપણ્યાદિધર્મકથાભિરાક્ષિપ્તાઃ વિક્ષિપ્તાઃ સવેદિતા નિર્વેદિતાઃ સન્તો ભવ્યપ્રાણિનશ્ચારિત્ર પ્રાપ્નુવન્તિ ।

કિનારે લગાદેને વાલા, અર્થાત્ શુભસ્થાનમેં પહુચા દેનેવાલા ધર્મ કહલાતા હૈ ।
 ઉસ ધર્મ કી કથા અર્થાત્ ભગવાન કી દેશના જિસમેં પાઈ જાય ઉસે ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા
 અહિંસા આદિ કી પ્રરૂપણા ધર્મકથા કહલાતી હૈ । અથવા શ્રુત ઓર ચારિત્ર કી પ્રધાનતા
 વાલી કથા કો ધર્મકથા કહતે હૈં । અથવા શુભ ઓર અશુભ કર્મફલ કો પ્રકાશ કરના
 ધર્મકથા હૈ । યા તીર્થદ્ધર ચક્રવર્તી આદિ મહાપુરુષોં કા ચરિત્ર વર્ણન કરના ધર્મકથા હૈ ।
 ઉસકે અનુયોગ—વ્યાખ્યાન કો ધર્મકથાનુયોગ કહતે હૈં ।

ધર્મકથા ચાર પ્રકાર કી હૈ —(૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સવેદની ઓર
 (૪) નિર્વેદની ।

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓ સે આક્ષિપ્ત સવેદિત ઓર નિર્વેદિત (વિરક્ત) હુઇ ભવ્ય
 જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરતે હૈ ।

કિનારે લઈ જનારી, અર્થાત્ શુભ સ્થાનમા પહોચ્યાહી દેવા વાળી વસ્તુને ધર્મ કહેવામા
 આવે છે તે ધર્મની કથા અર્થાત્ ભગવાનનો ઉપદેશ જેમા જોવામા આવે છે. તેને
 ધર્મકથા કહે છે અથવા અહિંસા આદિની પ્રરૂપણા તે ધર્મકથા કહેવાય છે અથવા
 તે શ્રુત અને ચારિત્રની પ્રધાનતાવાળી કથાને ધર્મકથા કહે છે, અથવા શુભ અને
 અશુભ કર્મ—ફલને પ્રગટ કરવુ તે ધર્મકથા છે અથવા તીર્થકર, ચક્રવર્તી આદિ
 મહાપુરુષોના ચરિત્રનુ વર્ણન કરવુ તે ધર્મકથા છે તેના અનુયોગ—વ્યાખ્યાનને
 ધર્મકથાનુયોગ કહે છે

ધર્મકથા ચાર પ્રકારની છે (૧) આક્ષેપણી (૨) વિક્ષેપણી (૩) સવેદની અને
 (૪) નિર્વેદની

આક્ષેપણી આદિ ધર્મકથાઓથી આક્ષિપ્ત, વિક્ષિપ્ત, સવેદિત અને નિર્વેદિત
 (વિરક્ત) થયેલા ભવ્ય જીવ ચારિત્ર પ્રાપ્ત કરે છે

(१) आक्षेपणी—

आक्षेप्यते=मोहं निराहृत्य चारित्रं प्रति समाकृष्यते भोत्राऽनयति-आक्षेपणी,

उक्तम्—

“स्याप्यते सत्ये भोत्रा, यथा साऽऽक्षेपणी कथा ।
यथेष्टकारं कर्मणा,—स्ती धर्मे व्यतिष्ठितम् ॥ १ ॥”

वास्तवस्यतनयद्वयसमन्वितः सपत्नीको मृगपुरोहितः सर्वस्व परिहाय वीक्षार्यं
सदनाभिर्ययौ । तदोर्यं सकलं वसु परिगृहीतं पत्येति विदित्वा कमलावती राज्ञी
वैराग्यमपमता स्वपतिमिष्टकारं नृपतिं प्रत्यबोधयत् । ‘राजम् ! किं पान्थासिनम्’

(१) आक्षेपणी

जिस कथा के द्वारा भोत्रा मोह से हटकर चारित्र के प्रति आकर्षित होते हैं, वह
आक्षेपणी धर्मकथा कहलाती है, कथा भी है—

“ जिस के द्वारा भोत्रा सम्मार्ग में स्थापित किये जाते हैं, उसे आक्षेपणी कथा कहते
हैं । जैसे कमलावतीने इष्टकार को धर्म में स्थिर किया ॥ १ ॥ ”

छोटी उम्र वाले अपने दो बालकों के साथ पत्नीसहित मृग पुरोहित सर्वस्व त्याग
कर वीक्षार्य ग्रहण करने के लिये अपने घर से निकला । उस पुरोहित का समस्त धन मेरे
पति (राजा) मे ले लिया है, ऐसा जान करके रानी कमलावती को वैराग्य हो गया और
उसने अपने पति राजा इष्टकार को समझाया—“ महाराज ! जिस धनका मृग पुरोहित मे

(१) आक्षेपणी—

ये कथाद्वारा भोत्रा मोहभी हटी जधने चारित्र तरक्ष आकर्षित थाव से ते
आक्षेपणी धर्मकथा कहेवाच छे कहुं यहु छे—

जेनाभी भोत्राने सन्मार्गमा स्थापित करी शक्य छे तेने आक्षेपणी कथा
कहे छे जेवी रीते कमलावतीने इष्टकारने धर्ममा स्थिर कथे ॥ १ ॥

नानी उमरवाणा पीताना से आजाकेनी साथे तथा पत्नी सहित मृग पुरोहित
सर्वस्व त्याग करीने वीक्षार्य ग्रहण करवा भाटे पीताना वैरधी नीकन्या, ते पुरोहितनु
तथाय धन भास पति (राजा) से लब्ध वीक्षु छे जेजुं जखीने राजी कमलावतीने
वैराग्य उपपन्न धर्म जथे जने तेजे पीताना पति राजा इष्टकारने समझन्या—

भोगमाशंससे ?' इत्यादि । अथ कमलावतीवचनश्रवणक्षणसंजातप्रतिबोध इपुकारः कमलावती च दीप्तार्थं सदैव निष्क्रान्ती ।

(२) विक्षेपणी—

विक्षिप्यते=सम्यग्वादगुणोत्कर्षप्रदर्शनेन मिथ्यावादादपसार्यते श्रोताऽनयेति
विक्षेपणी । उक्तञ्च—

“सम्यग्वादप्रकर्षेण, मिथ्यावादस्य खण्डनम् ।
यया विक्षेपणी सैव, यथा केशी मदेशिनम्” ॥ २ ॥

मिथ्यावादादपसारयामासेति शेषः ।

वमन कर दिया, वह धन भोगोगे ? आप वमन का सेवन करने वालों की तरह भोग की लालसा क्यों करते हैं ?” इत्यादि । इपुकार को कमलावती के वचन सुनते ही वैराग्य हो आया और राजा तथा रानी दोनों साथ-साथ दीक्षा ग्रहण कर ली ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद या सिद्धान्त के गुणों का दिग्दर्शन कराकर श्रोताओं को मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवाद से हटाने वाली कथा विक्षेपणी कहलाती हैं । कहा भी है —

“भङ्गाराज ! जे धनने लृशु पुरोहिते वमन करी नाभ्यु छे ते धनने आप भोगवशे ? आप वमननुं सेवन करवावाणानी पैठे भोगनी लालसा शा भाटे करे छे ?” इत्यादि

राज धंधुकार पोते कमलावतीना वचन साभणतां ज वैराग्य पाभ्या अने राज तथा राणी अने साथे-साथे दीक्षा ग्रहण करी ॥ १ ॥

(२) विक्षेपणी

सम्यग्वाद अर्थात् अनेकान्तवाद, अथवा सत्यसिद्धातना शुद्धानु दिग्दर्शन करावने श्रोताओंने मिथ्यावाद अर्थात् एकान्तवादथी दूर करावनारी कथा ते विक्षेपणी कथा कहवाय छे कहु पद्य छे —

केचिन्नमणतः कल्याणरसपरिपूर्णमास्तिकतावादमाकर्ण्य प्रदेशी नाम भूपालो नास्तिकतावादं परित्यज्य द्वादशप्रतपारी भावको भूत्वा भूत्या च प्रथमरूप सूर्याम नामा देवो बभूव ।

(३) संवेदनी—

संवेद्यते = संसारसारताप्रदर्शनेन मोक्षामिलाप उत्पाद्यतेऽनयेति संवेदनी ।

उक्तम्—

“यस्याः भक्षणमात्रेण, मुक्तिनाच्छा प्रजापते ।

संवेदनी यथा मल्ली, पद् नृपान् प्रत्यबोधयत् ॥३॥”

“सम्यग्वाद का उत्कर्ष दिक्कम कर मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्यामायता का स्फुटन करने वाली विद्येपनी कथा है। जैसे—केशी भ्रमणने प्रदेशी राजा को मिथ्यावाद से हटाया था” ॥ २ ॥

श्री केशी भ्रमण के श्रीमुस्तसे कल्याण—रस से परिपूर्ण नास्तिकवाद सुन कर प्रदेशी नामक राजा नास्तिकवाद त्याग कर बारह प्रतपारी भावक हो कर मरकर प्रथम सौर्षम रूपमें सूर्याम नामक देव हुआ ।

(३) संवेदनी

जो धर्मकथा ससार की असारता प्रदर्शित करके मग्य धीशों में मोक्षकी अभिलाषा जागृत करती है, वह संवेदनी धर्मकथा है। कथा भी है—

“सम्यग्वादनो उक्तं ज्ञतानीने मिथ्यावाद अर्थात् मिथ्या मान्यतानु पञ्च कल्याणानी विशेषणो कथा छे जेनी रीते केशी भ्रमणने प्रदेशी राजने मिथ्यावादीनी मुक्त कथा कथा ॥ २ ॥”

श्री केशी भ्रमणना श्रीमुपधी कल्याणरसधी परिपूर्ण नास्तिकवाद आलगीने प्रदेशी नामना राजने नास्तिकवाद त्याग कथे, बार प्रतपारी भावक यधने भरीने प्रथम सौषम रूपमा सूर्याम नामना देव यथा.

(३) संवेदनी

जे कथा ससारनी असारता ज्ञतानीने लभ्यतेयथां मोक्षनी अभिलाषा ज्ञतनी करे छे, ते संवेदनी धर्मकथा छे. कहु पलु छे:—

मल्लीकुमारी पद् भूमिपालान् स्वस्मिन्ननुरक्तान् विज्ञाय, तेभ्यः संसारा-
सारतां प्रदर्श्य मोक्षाभिलाषं जनयामास ।

(४) निर्वेदनी—

निर्वेद्यते=विषयभोगेभ्यो विरज्यते श्रोताऽनयेति निर्वेदनी, उक्तञ्च—

“ यदाऽऽकर्णनमात्रेण, वैराग्यमुपजायते ।

निर्वेदनी यथा शालि,—भद्रो वीरेण बोधितः ” ॥ ४ ॥

“ जिस कथा को श्रवण करने मात्र से ही मोक्ष की आकाङ्क्षा उत्पन्न होती है, वह सवेदनी धर्मकथा है । जैसे—मल्ली नामक राजकन्याने छह राजाओं को बोध दिया ” ॥ ३ ॥

छह राजा मेरे उपर अनुरक्त हैं, यह जानकर मल्लीकुमारीने उन्हें ससारकी नि सारता समझाई और उन में मुक्ति की अभिलाषा उत्पन्न कर दी । मल्ली कुमारी का वह उपदेश सवेदनी धर्मकथा है ॥ ३ ॥

(४) निर्वेदनी

जो कथा श्रोताओं को विषयभोगसे विरक्त बनाती है, वह निर्वेदनी धर्मकथा कहलाती है । कहा भी है —

“ जिसका श्रवण करते ही वैराग्य उत्पन्न होता है, वह निर्वेदनी धर्मकथा है । जैसे भगवान् महावीरने शालिभद्र को प्रतिबोध दिया ” ॥ ४ ॥

“ जे कथा साभणवामात्रथी ज मोक्षनी छच्छा उत्पन्न थाय छे ते सवेदनी धर्मकथा छे जेवी रीते मल्ली नामनी राजकन्याजे छ राजाज्योने बोध आप्यो ॥ ३ ॥ ”

छ राजा भारा उपर आसकत-प्रेमवाणा छे जेवु जाण्णीने मल्ली कुमारीजे तेज्योने स सारनी नि सारता समजवी जने तेज्योभा मुक्तिनी अभिलाषा उत्पन्न करी, मल्लीकुमारीने ते उपदेश सवेदनी धर्मकथा छे

(४) निर्वेदनी

जे कथा श्रोताज्योने विषय भोगथी विरक्त जनावे छे ते निर्वेदनी कडेवाय छे कथुं पद्य छे —

“ जेनुं श्रवण करता ज वैराग्य उत्पन्न थाय छे, ते निर्वेदनी धर्मकथा छे जेवी रीते भगवान् महावीरे शालिभद्रने प्रतिबोध आप्यो ॥ ४ ॥ ”

કમલકોમલકાન્વાકારઃ શાલિમદ્રકુમારઃ શ્રીમદ્દાવીરવીરકવિતર્મદેવના
અવતરણમનન્તરં ત્વરયા વૈરામ્યમુપગતધારિણં પ્રાપ । ઉક્તચ્ચ—

“મયસ્ય સર્વં ઘ્નમકુરં મુલં,
ક્લિન્તિ યે ધર્મક્રમાલુરાગિણ્યઃ ।
વિદાય તે મોગમનન્તદુઃસ્વદં,
ચરન્તિ ધારિભવને વિરાગિણ્યઃ” ॥ ૪ ॥

ઉત્તરાખ્યનમૂષ્ણસ્યૈકોનમિન્નેઽપ્યયને ધર્મક્રમાફલમાહ—

“ધર્મક્રમાદ ઈ મંતે ! જીવે કિં બળયદ્ ? । ધર્મક્રમાદ જં જીવે નિઝમરં
બળયદ્ । ધર્મક્રમાદ ઈ પશ્યન્ પમાવેદ્ । પસ્યણપમાનણેર્ણ જીવે ભાગમેસસ્ત
મદધાપ કમ્મં નિર્વંશ્ચ ।”

કમલ કે સમાન કમલ ધૌર કલ્પિતમાન શાલ્કિ શાલ્કિમદ્ર કુમાર શ્રી મદ્દાવીર
મગલાન્ કો ધર્મદેવના મુન્તે હી વૈરામ્ય કો પ્રાપ્ત કુમ્બ, ધૌર ઉસને ચારિત્ર ધારણ કર કિમ્મા ।
જ્ઞા મી હૈ —

“ધર્મક્રમા મેં અનુભવ રક્તને બાલે જો પુરુષ સંસાર કે મુલ ઘ્નમકુર સંમગ્ન કેતે
હૈ વે અન્ત દુઃસ દેને બાલે મોગકા ત્યાગ કરકે, વિરાગી હો કર ધારિત્રકમી બગીષે મેં
વિહાર કરતે હૈ” ॥ ૧ ॥

ઉત્તરાખ્યન સૂત્ર કે ઉન્તીસર્વે અપ્યયન મેં ધર્મક્રમા કા ફલ વતલમા ગવા હૈ । વદ્
હસ માતિ હૈ —

કમલના જેવા કોમલ અને કલ્પિતમાન શાલ્કિશાલ્કિમદ્રકુમાર શ્રી મદ્દાવીર
મગલાનની ધર્મદેવના સાંભળતાં જ વૈરામ્યને પ્રાપ્ત થયા અને ધારિત્ર ધારણ કરું
કહું પણ છે:—

“ધર્મક્રમામાં પ્રીતિ સમવાચાણા જે પુરુષ સસારના મુખને અલુભણુર સમલ
લે છે તે અન્ત દુઃખ આપવાવાળા ભોગને ત્યાગ કરીને વૈરામ્ય ધારણ કરી
ધારિત્રકમી બગીષમાં વિહાર કરે છે ॥ ૧ ॥”

ઉત્તરાખ્યન સૂત્રના બોધવ્યગ્રીક્ષમાં અખ્યયનમાં ધર્મક્રમાનું ફલ બતાવ્યું છે, તે
જા પ્રભવે છે:—

आक्षेपण्यादिचतुर्विधधर्मकथासंचारोद्भाषितानन्दधारातरङ्गसमुल्लसितस्वान्तप्र-
भूतभव्यभावितात्मा धर्मकथी जन्मजरामरणादिभीषणपीनपाठीनमीनमकर-
गणसंक्रमणप्रियवियोगाप्रियसंयोगवडवानलाकुलितापारसंसारसागरात् स्वयं तरति,
परानपि तारयति ।

स च प्रभूतभव्यान् प्रवाजयन् भवकूपपतत्प्राणत्राणसमाश्वसनजिनशासन-
महिमानमुपवृहयन् समस्तमेव जगत् जिनशासनरसिकं कुर्वन्, मिथ्यात्वमुत्थापयन्,

“ भगवन् ! धर्मकथा से जीव को क्या लाभ होता है ? उत्तर—धर्मकथा से जीव को
निर्वाण की प्राप्ति होती है । धर्मकथा से जीव प्रवचन की प्रभावना करता है । प्रवचन की
प्रभावना से आगे के लिये भद्र (शुभ) कर्मों का बन्ध करता है ” ॥ ४ ॥

आक्षेपणी आदि चार प्रकार की धर्मकथा से उत्पन्न होने वाली आनन्द की धाराओं
की तरङ्गों से जिन का अन्त करण उल्लास को प्राप्त हुआ है, ऐसे अनेक भावितात्मा भव्य
धर्मकथा करने वाले पुरुष जन्म जरा और मरण रूपी भयानक और विशाल मगरमच्छोंसे
व्याप्त, एव दृष्ट-वियोग और अनिष्ट-संयोग रूपी वडवानल से आकुल-व्याप्त अपार
ससार सागर से स्वयं भी पार होते हैं और दूसरों को भी पार करते हैं ।

वह धर्मकथाकार अनेकानेक भव्य जीवों को दीक्षित करता हुआ, संसाररूपी कूप में
पडनेवाले प्राणियों को त्राण करने का आश्वासन देने वाले जिनशासन की महिमा बढ़ाता
हुआ समस्त जगत् को जिनशासन का रसिक-अनुरागी बनाता हुआ मिथ्यात्व की उत्थापना

“ भगवन् ! धर्मकथाथी लुपने शुं लाभ थाय छे ?

उत्तर—धर्मकथाथी लुपने नन्दनानी प्राप्ति थाय छे, धर्मकथाथी लुप
प्रवचननी प्रभावना करे छे, प्रवचननी प्रभावनाथी आगण शुभ कर्मोना प्य ध करे छे ”

आक्षेपणी आदि चार प्रकारनी धर्मकथाथी उत्पन्न थनारा आनन्दनी धाराओना
तरंगोथी जेतु अत करण उल्लासने प्राप्त थयुं छे, जेवा अनेक भावितात्मा लव्य-
धर्मकथा करवावाणा पुरुष जन्म जरा अने मरणरूपी भयानक अने विशाल मगर-
मच्छोथी व्याप्त जे प्रभाणु दृष्ट-वियोग अने अनिष्ट-संयोगरूपी वडवानलथी
सहित अपार ससारसागरथी पोते पणु पार उतरे छे, अने धीजने पणु पार
उतारे छे,

सम्यक्त्वमुपस्थापयन्, कर्मकोटिं क्षपयति । उत्कृष्टरसायनपरिणाममसौ समेत
चेत्, त्रैलोक्यपवित्रं तीर्थद्वारनामगोत्रं समुपार्जयति ।

अपि चासौ स्वताम्रकाष्ठस्वभावस्यापि जिनशासनस्य मिथ्यात्वादि
विमिराहृतदक्षकालादिषु यथोचितमपचारलक्षणाराधनतः प्रमादकपदं विमर्ति ।
उक्तम्—

“ प्रावपणी धम्मकरी, वार्हं सद्धीसरो तवस्सी य ।

विज्जासिद्धो य कवी, अद्भुव पमापगा भणिया ॥ १ ”

और सम्यक्त्व को उपस्थापना करता हुआ कर्मकोटि को क्षपता है । अत्रापित् परिणाम में
उत्कृष्ट रसायन आ आद्य तो वह त्रैलोक्य में पवित्र तीर्थद्वार गोत्र का भी उपार्जन करता है ।

जिन भगवान का शासन स्वतः उत्कृष्ट है, तथापि जिस देशविशेष और काल
विशेष में मिथ्यात्व का अन्वकार फैल जाता है, वहां भगवान के शासन का प्रचाररूप
आराधन करके धर्मकथाकार प्रमादक पद प्राप्त करता है । क्या भी है —

“प्रमादक आठ प्रकार के हैं — (१) प्रावपणिक, (२) धर्मकवी, (३) वार्ह,
(४) सधिया का स्वामी, (५) उपत्वी, (६) विद्यावान्-रोहिणी प्रकृति आदि विद्या के
धारक, (७) सिद्ध-वचनसिद्धि आदि सिद्धियों वाक्य (८) कवि” ।

ते धर्मकथा कहनेवाले अनेक-अनेक लज्ज लोचने से शिक्षित करे छे अने सहाय
हूथी कुचार्थं पक्षपातण्य प्रवृत्तिने रक्षय्युं करवानुं आश्रयन देवाण्यण्य जिनशासनने
भक्तिभा बभारता बडा समस्त जगतने जिनशासनभां प्रीतिवाण्य जनाथी मिथ्यात्व
निवारण्य अने सम्यक्त्वनी स्थापना करी कर्मकोटीने जपाने छे कदाचित् परिक्रमभां
उत्कृष्ट रसायन आषी लज्ज तो त्रिलोकभां पवित्र तीर्थद्वार ज्येत्तनी पण्य प्रकृति
करे छे

जिन भगवाननुं शासन पीते उत्कृष्ट छे तो पण्य ने देशविशेष अने काल
विशेषभां मिथ्यात्वने अंधकार हेलाछे लज्ज छे त्वां भगवानना शासनअन्वकाररूप
आराधन करीने धर्मकथाकार ‘प्रमादक’नुं पद प्राप्त करे छे कहुं पण्य छे:-

“प्रमादक आठ प्रकारना छे (१) प्रावपणिक, (२) धर्मकथाकार (३) वार्ह,
(४) सधियाज्येने पत्नी, (५) उपत्वी, (६) विद्यावान्-रोहिणी-प्रकृति आदि विद्याना
धारक, (७) सिद्ध-वचनसिद्धि आदिसिद्धिज्येवाण्य, (८) कवि” ॥ १ ७

अथ धर्ममहिमोच्यते—

“जन्मन्तरेऽपि सुलहा, पिउभाउसुयाड्या ।

परन्तु सुयचारित्त, - धम्मो णो सुलहो भुवि ॥ १ ॥

वारसंगावणे धम्म, णिच्छयव्ववहारिणो ।

लहंते संजया भव्वा, भत्तिपण्णेण नन्नहा ॥ २ ॥

सस्कृतच्छाया—

जन्मान्तरेऽपि सुलभा, - पितृ-भ्रातृ-सृतादयः ।

परन्तु श्रुतचारित्र, - धर्मो न सुलभो भुवि ॥ १ ॥

द्वादशाङ्गापणे धर्म्म, निश्चयव्यवहारिणः ।

लभन्ते संयता भव्या, - भक्तिपण्येन नान्यथा ॥ २ ॥

तथा-विना सिद्धाञ्जनं भूमि, - निधानं नैव लभ्यते

धर्म-महिमा —

“पिता, भ्राता और पुत्र आदि तो जन्मान्तर में-आगामी भव में-भी सुलभ हैं किन्तु ससार में श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नहीं है” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकान में निश्चयनय और व व्यवहारनय को जानने वाले सयमी पुरुष भक्तिरूपी मूल्य चुकाकर धर्म प्राप्त कर सकते हैं, ऐसे किये विना धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती” ॥ २ ॥

धर्म-महिमा—

“पिता भाई अने पुत्र वगैरे तो आगला भवमा-हवे पछीना भवमां पण सुलभ छे, परन्तु ससारमा श्रुत-चारित्र धर्म सुलभ नथी” ॥ १ ॥

“द्वादशाङ्गीरूपी दुकानमा निश्चयनय अने व्यवहारनयने लक्षुवावाणा सयमी पुरुष लक्षितरूपी मूल्य आपीने धर्म प्राप्त करी शके छे अेभ कर्या विना धर्मनी प्राप्ति थती नथी.” ॥ २ ॥

विद्या सिद्धेर्जनं भूमि,—गिराण षेव सम्मद् ।
 ध्रुवधारिचर्मणे, विद्या णो षाणमप्युगो ॥ ३ ॥
 अप्युगो विद्या षेव, तत्तावत्तविनिष्कृतो ।
 तं विद्या षेव मन्त्राब्, भायत्तमियमाश्रया ॥ ४ ॥
 विमुद्धन्नाजसंपत्ती, शतराऽमियमाश्रयं ।
 विद्या विमुद्धन्नाज षो, स्वगस्सेगिरिप्यर्ह ॥ ५ ॥
 मन्योपायं केनापि,—स्वगस्सेगिना विद्या ।
 द्वितीयपादो दुकम्भ, श्वाभस्म नहि सम्मद् ॥ ६ ॥

छाया—

ध्रुवधारिचर्मणे, विद्या नो ज्ञानमात्मन ॥ ३ ॥
 आत्मज्ञानं विद्या नैव, तत्त्वाऽतत्त्वविनिर्घयः ।
 तं विद्या नैव मन्यानां, भायतेऽभूतमाश्रया ॥ ४ ॥
 विमुद्धन्नाजसंपत्ति, — नान्तराऽभूतमाश्रयाम् ।
 विद्या विमुद्धन्नाजं नो, क्षपकभेगिराप्यते ॥ ५ ॥
 मन्योपायेन केनापि, क्षपकभेगिना विद्या ।
 द्वितीयपादः दुकम्भ, ध्यानस्य नहि सम्मते ॥ ६ ॥

सिद्धबन्धन के अभाव में पृथ्वी के भीतर का सत्राना नहीं प्राप्त किया जा सकता इसी प्रकार ध्रुव धारि के विना आत्मा को सम्बन्धन नहीं होता ॥ ३ ॥

आत्मज्ञान के अभाव में तत्त्व—अतत्त्व का निश्चय नहीं हो सकता और तत्त्व अतत्त्व का निश्चय हुए विना मन्य बौधों को अभूतमाश्रया नहीं हो सकती ॥ ४ ॥

अभूतमाश्रया के अभाव में विमुद्धन्नाज की प्राप्ति नहीं होती और विमुद्धन्नाज के विना क्षपकभेगी पर व्यरोहण नहीं हो सकता ॥ ५ ॥

क्षपक भेगी के सिद्धय किसी अन्य उपाय से दुकम्भ—ध्यान का पक्षवितर्क अविचार नामक दूसरा पाया नहीं प्राप्त किया जा सकता ॥ ६ ॥

सिद्धबन्धन विना पृथ्वीनी अन्तरने ज्ञानेना भास कथी शकते नहीं खेवी कथीते ध्रुव—आश्रि विना व्यरभरण धतु नहीं ॥ ३ ॥

आत्मज्ञानना अभावधी तत्त्व—अतत्त्वने निश्चय यर्क शकते नहीं अने तत्त्व—अतत्त्वने निश्चय कर्षा विना अन्य लयेने अभूतभावनया भती नहीं ॥ ४ ॥

अभूतभावनया अभावधी विमुद्धन्नाज ध्याननी प्राप्ति भती नहीं; अने विमुद्धन्नाज

सुकज्ज्ञाणस्स पायं च, वितीयं पप्प संजमी ।
 केवलण्णाणलाहेण, केवलित्ति णिगज्जई ॥ ७ ॥
 अवत्था णहि सेलेसी, केवलण्णाणमतरा ।
 भवई समर्णिदस्स, सव्वकम्मक्खओ तओ ॥ ८ ॥
 सव्वकम्मक्खए सिद्धी, -तओ सिद्धो हि सासओ ।
 मोक्खट्ठी सुयचारित्त, - धम्मं तम्हा समायरे ॥ ९ ॥

ज्या—

शुक्लध्यानस्य पादं च, द्वितीयं प्राप्य संयमी ।
 केवलज्ञानलाभेन, केवलीति निगद्यते ॥ ७ ॥
 अवस्था नहि शैलेशी, केवलज्ञानमन्तरा ।
 भवति भ्रमणेन्द्रस्य, सर्वकर्मक्षयस्ततः ॥ ८ ॥
 सर्वकर्मक्षये सिद्धि, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ।
 मोक्षार्थी श्रुतचारित्र, - धर्मं तस्मात्समाचरेत् ॥ ९ ॥

सयमी पुरुष शुक्ल ध्यान का दूसरा पाया प्राप्त करके, केवल ज्ञान प्राप्त करता है और केवली कहलाता है । ॥ ७ ॥

केवल ज्ञान के विना शैलेशी अवस्था प्राप्त नहीं होती । शैलेशी अवस्था जब प्राप्ति हो जाती है तो मुनिगज समस्त कर्मों का क्षय कर डालता है ॥ ८ ॥

समस्त कर्मों का क्षय होने पर सिद्धि प्राप्त होती है । सिद्धि लाभ होने पर शाश्वत सिद्ध होजाता है, अत मोक्षार्थी पुरुष को श्रुत-चारित्ररूप धर्म का आचरण करना चाहिये ॥ ९ ॥

ध्यान विना क्षपकश्रेष्ठी उपर आरौढेषु थर्ध शकतु नथी ॥ ५ ॥

क्षपकश्रेष्ठी विना भीष्म डेर्ध उपायथी शुक्ल ध्याननो ओकत्व-वितर्क-अविचार नामक भीष्म पाये प्राप्त करी शकतो नथी ॥ ६ ॥

सयमी पुरुष शुक्ल ध्याननो भीष्म पाये प्राप्त करीने डेवलज्ञान प्राप्त करे छे, अने डेवली छडेवाय छे ॥ ७ ॥

डेवलज्ञान विना शैलेशी अवस्था प्राप्त थती नथी, शैलेशी अवस्था न्यारे प्राप्त थर्ध नथ छे, त्यारे मुनिराज सकल कर्मोने क्षय करी नाये छे ॥ ८ ॥

मकल कर्मोने क्षय थया पछी सिद्धि प्राप्त थाय छे, सिद्धि लाभ थया पछी शाश्वत सिद्ध थाय छे, अे भाटे मुक्षार्थी पुरुषोअे श्रुत-चारित्ररूप धर्मनु आचरण करतु नेधअे ॥ ९ ॥

અથ ગણિતાનુયોગઃ—

ગણિતં = સંસ્થાનાં ઠસ્યાનુયોગો-ગણિતાનુયોગઃ—

જીવાઽઽગ્રીવાદિવદ્દ્રવ્યતત્પર્યાપપરિગમનં ગણિતાનુયોગસાધ્યમ્ ।

તેન ચિનોક્તપદાર્થાનાં યથાચસ્થિતં પરિગમનાત્ સમ્યક્સ્વશુદ્ધિસ્તથાચારિશુદ્ધિઃ ।

પૂર્વાનુપૂર્વ્યાદીનાં મજ્જાસાક્ષીનાં ચ પરિગમનયા ચિત્તસ્થેર્યમ્, તત્તથ કપાપાનસપ્રસ્રમનમ્, તેન ચારિત્રનૈર્મલ્યમ્ ।

અપિ ચ ગણિતાનુયોગેન મગધતઃ કેત્સજ્ઞાનાદિશુભપર્યાયાપ્યામાનન્ત્યમાષે વ્યવતિ । સંસ્થાનમતિક્રાન્તાનાં તપાં સંસ્થાનુમસ્રખ્યતા સંસ્થાજ્ઞાનં પિના નૈશ

(૧) ગણિતાનુયોગ—

ગણિત અર્થાત્ સંસ્થાકા અનુયોગ ગણિતાનુયોગ કહી શકતા હૈ ।

જીવ પુરુષ આદિ ઇદ્ર દ્રવ્યોં કી ગણના કરને કે સ્થિત તથા દ્રવ્યોં કી પર્યાયાં કી મિત્તી કરને કે સ્થિત ગણિતાનુયોગ કી આવશ્યકતા હોતી હૈ । ગણિતાનુયોગસે ચિન મગધાન્ પ્રાપ્ત ઉપવિષ્ટ પદાર્થોં કી ટીક-ટીક ગણના હોને સે સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ હોતી હૈ, યૌર સમ્યક્ત્વ કી શુદ્ધિ સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ।

પૂર્વાનુપૂર્વા પશ્ચાનુપૂર્વા તથા અનાનુપૂર્વા આદિ સે તથા મજ્જા-સાક્ષી કી ગણના કરનેસે ચિત્તમે સ્થિરતા આતી હૈ, યૌર ચિત્તકી સ્થિરતા સે કપાપરૂપી અગ્નિ વાપ્ત હોતી હૈ યૌર ડસસે ચારિત્ર નિર્મલ હોતા હૈ ।

ગણિતાનુયોગ હી મગધાન કે કેત્સજ્ઞાન અદ્ધિ ગુણ એવ પર્યાયાંકોં અમલતા કો પ્રગટ કરતા હૈ, સંસ્થાતૈત્ત ગુણાં ય્વં પર્યાયાં કી સંસ્થા કા જ્ઞાન મુક્તિક્ષ હૈ' યદ્ વાત

(૨) અધિતાનુયોગ—

અધિત્ત અર્થાત્ સંસ્થાને અનુયોગ તે અધિતાનુયોગ કહેવાય છે. એવ પુરુષલ આદિ ઇ દ્રવ્યોંની અણુના કરવા માટે, તથા દ્રવ્યોંના પર્યાયોંની અણુવરી કરવા માટે અધિતાનુયોગની આવશ્યકતા હોય છે. અધિતાનુયોગથી જિન ભગવાન દ્વારા કહેલા પદાર્થોંની ઠીક ઠીક અણુના અર્થ શકતી હોવાથી સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિ થાય છે અને સમ્યક્ત્વની શુદ્ધિથી ચારિત્રની શુદ્ધિ થાય છે.

પૂર્વાનુપૂર્વા પશ્ચાનુપૂર્વા તથા અનાનુપૂર્વા આદિથી, અને ભગવતોંની અણુના કરવાથી ચિત્તમા સ્થિરતા આવે છે અને ચિત્તની સ્થિરતાથી કપાપરૂપી અગ્નિ થાય થાય છે અને તેથી ચારિત્ર નિર્મલ થાય છે.

મુક્તજ્ઞાણસ્ત પાયં ચ, વિતીયં પપ્પ સંજમી ।
 કેવલજ્ઞાણલાહેણ, કેવલિત્તિ ણિગજ્જઈ ॥ ૭ ॥
 અવત્થા ણહિ સેલેસી, કેવલજ્ઞાણમતરા ।
 ભવઈ સમર્ણિદસ્સ, સવ્વકમ્મવ્વઓ તઓ ॥ ૮ ॥
 સવ્વકમ્મવ્વણ સિદ્ધી, -તઓ સિદ્ધો હિ સાસઓ ।
 મોક્કવટ્ટી મુચચારિત્ત, - ધમ્મં તમ્હા સમાયરે ॥ ૯ ॥

જ્ઞાયા—

શુક્લધ્યાનસ્ય પાદં ચ, દ્વિતીયં પ્રાપ્ય સંયમી ।
 કેવલજ્ઞાણલાભેન, કેવલીતિ નિગદ્યતે ॥ ૭ ॥
 અવસ્થા નહિ શૈલેશી, કેવલજ્ઞાણમન્તરા ।
 ભવતિ શ્રમણેન્દ્રસ્ય, સર્વકર્મક્ષયસ્તતઃ ॥ ૮ ॥
 સર્વકર્મક્ષયે સિદ્ધિ, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ।
 મોક્ષાર્થી શ્રુતચારિત્ર, - ધર્મં તસ્માત્સમાચરેત્ ॥ ૯ ॥

સયમી પુરુષ શુક્લ વ્યાન કા દૂસરા પાયા પ્રાપ્ત કરકે, કેવલ જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરતા હૈ
 ઔર કેવલી કહલાતા હૈ । ॥ ૭ ॥

કેવલ જ્ઞાન કે વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત નહીં હોતી । શૈલેશી અવસ્થા જવ પ્રાપ્તિ
 હો જાતી હૈ તો મુનિગજ સમસ્ત કર્મો કા ક્ષય કર ઢાલતા હૈ ॥ ૮ ॥

સમસ્ત કર્મો કા ક્ષય હોને પર સિદ્ધિ પ્રાપ્ત હોતી હૈ । સિદ્ધિ લાભ હોને પર જાશ્વત
 સિદ્ધ હોજાતા હૈ, અત મોક્ષાર્થી પુરુષ કો શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મ કા આચરણ કરના ચાહિયે ॥ ૯ ॥

ધ્યાન વિના ક્ષપકશ્રેણી ઉપર આશૈહણ્ય થઈ શકતુ નથી ॥ ૫ ॥

ક્ષપકશ્રેણી વિના ખીબ્બ કોઈ ઉપાયથી શુક્લ ધ્યાનનો એકત્વ-વિતર્ક-અવિચાર
 નામક ખીબ્બે પાયો પ્રાપ્ત કરી શકતો નથી ॥ ૬ ॥

સયમી પુરુષ શુક્લ ધ્યાનનો ખીબ્બે પાયો પ્રાપ્ત કરીને કેવલજ્ઞાન પ્રાપ્ત કરે
 છે, અને કેવલી કહેવાય છે ॥ ૭ ॥

કેવલજ્ઞાન વિના શૈલેશી અવસ્થા પ્રાપ્ત થતી નથી, શૈલેશી અવસ્થા ન્યારે
 પ્રાપ્ત થઈ જાય છે, ત્યારે મુનિરાજ સકલ કર્મોનો ક્ષય કરી નાખે છે. ॥ ૮ ॥

સકલ કર્મોનો ક્ષય થયા પછી સિદ્ધિ પ્રાપ્ત થાય છે, સિદ્ધિ લાભ થયા પછી
 શાશ્વત સિદ્ધ થાય છે, એ માટે મુક્ષાર્થી પુરુષોએ શ્રુત-ચારિત્રરૂપ ધર્મનું આચરણ
 કરવુ જોઈએ. ॥ ૯ ॥

(१) सप्त मासविचारः

पौष-चैत्र-ज्येष्ठ-पाद-भासात् पित्राय श्रेया मासाः मङ्गस्ता ।

विशेषतो मासफल्गमाह-

- | | |
|------------------------------|--|
| (१) भावणे-शुभम् । | (७) माध-ज्ञानवृद्धिः । |
| (२) मात्रपद-शिव्याल्पता । | (८) फल्गुने-सुख-सौभाग्य-यज्ञोद्दिः । |
| (३) आश्विने-सुखम् । | (९) चैत्रे-अल्पसुखम् । |
| (४) कार्तिके-विद्यावृद्धिः । | (१०) वैशाखे-रत्नत्रयसाम । |
| (५) मार्गशीर्षे-शुभम् । | (११) ज्येष्ठे-सामान्यम्, तथा अन्यमस्तपवे शुभम् । |
| (६) पौषे-विद्यावृद्धयभावः । | (१२) आषाढे-गुरुबन्धुना सह प्रेमास्पता । |

(१) मास-विचार

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आषाढ मास को छोड़कर शेष महीना में दीक्षा देना प्रशस्त है ।

विशेष मास-विचार

- | | |
|--------------------------------|---|
| (१) अक्षय - शुभ । | (७) माघ - ज्ञान की वृद्धि |
| (२) मात्रपद - शिव्या कमी । | (८) फल्गुन-सुख-सौभाग्य और यश की वृद्धि |
| (३) आश्विन - सुख । | (९) चैत्र - अल्प सुख |
| (४) कार्तिक - विद्यावृद्धि । | (१०) वैशाख - रत्नत्रय का काम |
| (५) मार्गशीर्ष - शुभ । | (११) ज्येष्ठ - साधारण मह मास बूतर नक्षत्र भाद्रि का बल हो तो शुभ है । |
| (६) पौष-विद्यावृद्धि का अभाव । | (१२) आषाढ-गुरुमादया के साथ प्रेम की कमी । |

(१) मास-विचार-

पौष, चैत्र, ज्येष्ठ और आषाढ मासने त्यजने जाकीना जील महीनाज्जे दीक्षा आपवा भाटे उत्तम छे

विशेष मास-विचार-

- | | |
|-------------------------------|--|
| (१) आपषु-शुभ । | (७) माघ-ज्ञानकी वृद्धि । |
| (२) मात्रपद-शिव्याकी कमी । | (८) फल्गुन-सुख सौभाग्य और यशकी वृद्धि । |
| (३) आश्वि-सुख । | (९) चैत्र-अल्प सुख । |
| (४) कार्तिक-विद्यावृद्धि । | (१०) वैशाख-रत्नत्रयने काम । |
| (५) मार्गशीर्ष-शुभ । | (११) ज्येष्ठ-साधारण आभासमां जील नक्षत्र वगेरेनु जल होय तो शुभ छे |
| (६) पौष-विद्यावृद्धिने अभाव । | (१२) आषाढ-गुरुमादयाकी साथे प्रेमकी कमी । |

વિજ્ઞાતું શક્યતે, તદ્દિ ગણિતાનુયોગમ્યમ્ । ભગવદ્ગુણાનુસ્મરણેન ભગવતઃ
સ્તુતિઃ સંપદ્યતે, તથા ચ દર્શનશુદ્ધિસ્તત્ત્વાચારિત્રશુદ્ધિઃ ।

પત્રજ્યાપ્રદાનાદયોઽપિ શોભનતિથિનક્ષત્રાદિયુક્તસમય એવ વિધેયા ઇતિ
તાદૃશસમયાવબોધકતયા ગણિતાનુયોગસ્યાપિ ચરણપ્રાપ્તિ પ્રતિ સાધનતા સિદ્ધયતિ ।
તથા ચાસ્યાપિ ફલ ચારિત્રરક્ષણમેવ ।

અથ પ્રસન્નાજ્જ્યોતિષ્કવિષયઃ કિન્ચિત્પ્રદર્શ્યતે—

તત્ર પૂર્વ પ્રત્રજ્યાપ્રદાનસમયો નિર્ણયતે—

મી સહ્યા કા જ્ઞાન ક્રિયે વિના જાની નહીં જા સકતી હૈ । ભગવાન કૈ ગુણો કા વારવાર
સ્મરણ કરને સે ભગવાન કી સ્તુતિ હોતી હૈ, ઉસસે દર્શન-શુદ્ધિ હોતી હૈ, દર્શન-શુદ્ધિ કૈ
હોને સે ચારિત્ર કી શુદ્ધિ હોતી હૈ ॥

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્ર સે યુક્ત સમય મેં હી દીક્ષા આદિ દેના ચાહિણ, ઇસ
પ્રકાર કૈ સમય કા બોધ કરાને વાલા હોને સે ગણિતાનુયોગ મી ચારિત્રની પ્રાપ્તિ કા કારણ
હૈ, ઇસા સિદ્ધ હોતા હૈ, ઉસસે ગણિતાનુયોગ કા ફલ મી ચારિત્ર કી રક્ષા કરના હી હૈ ।

યહાં પ્રસન્ન હોનેસે કુલ જ્યોતિષ કા વિષય દિઝલાયા જાતા હૈ—

દીક્ષાદાનસમયકા નિર્ણય—

ગણિતાનુયોગ જ ભગવાનના કેવલજ્ઞાન આદિ એ ગુણો એ પ્રમાણે પર્યાયોની
અનતતા પ્રગટ કરે છે 'સખ્યાતીત ગુણો અને પર્યાયોની સખ્યા બાણવી અશક્ય
છે' તે વાત પણ સખ્યાનુ જ્ઞાન કર્યા વિના બાણી શકાતી નથી, તે ગણિતાનુયોગ
દ્વારા બાણી શકાય છે ભગવાનના ગુણોનુ વારવાર સ્મરણ કરવાથી ભગવાનની સ્તુતિ
થાય છે, અને તેથી દર્શન-શુદ્ધિ થઈ શકે છે, અને દર્શન વિશુદ્ધ થવાથી ચારિત્રની
શુદ્ધિ થાય છે

શુભ તિથિ તથા શુભ નક્ષત્રથી યુક્ત સમયમા જ દીક્ષા આદિ આપવી બેઈએ,
આ પ્રકારના સમયનુ જ્ઞાન કરાવવાવાળો હોવાથી ગણિતાનુયોગ પણ ચારિત્રની પ્રાપ્તિનું
કારણ છે એમ સિદ્ધ થાય છે તેથી ગણિતાયોગનુ ફલ પણ ચારિત્રની રક્ષા કરવી એજ છે.
અહી પ્રસંગથી થોડો જ્યોતિષનો વિષય બતાવવામાં આવે છે—

દીક્ષા આપવાના સમયનો નિર્ણય—

नव तिथयश्च वर्जनीयाः—

(१) शुक्ल चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा ।
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) षष्ठी, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि - क्त्र - बुध - गुरु - वाराः प्रशस्ता

(५) नक्षत्र-विचार —

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि प्रशस्तानि—(१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्तः (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अमिजित्, (११) भवणम्, (१२) उत्तरमात्र पदा, (१३) रेवती ।

मी तिथियां त्पान्य हैं—

(१)—शुक्ल चतुर्दशी, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो कर,
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—षष्ठी (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) वार-विचार—

रवि सोम बुध गुरु, और शनिवार प्रशस्त है ।

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा के विषय में तेरह १३ नक्षत्र प्रशस्त हैं । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—
मृगशिरा, (४)—पुष्य (५)—उत्तरफाल्गुनी (६)—हस्त (७)—अनुराधा (८)—ज्येष्ठा (९)—
उत्तराषाढा (१०)—अमिजित् (११)—भवण (१२)—उत्तरमात्रपदा, (१३)—रेवती ।

नव तिथिभ्यो त्पान्य छ—

(१) शुक्ल चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) ये तिथिमां सूर्य-संक्रमण माय
ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी (६) षष्ठी, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी
(४) वार विचार—

रवि सोम, बुध, गुरु और शनिवार उत्तम छे

(५) नक्षत्र-विचार—

दीक्षा विषयमां तेर नक्षत्र उत्तम छे—(१) अश्विनी, (२) रोहिणी,
(३) मृगशीरा (४) पुष्य, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) हस्त (७) अनुराधा (८)
ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढा, (१०) अमिजित् (११) भवण (१२) उत्तरमात्रपदा, (१३) रेवती

(૨) પક્ષ-વિચાર:—

કૃષ્ણપક્ષે-પ્રતિપદ આરમ્બ પશ્ચમી યાવત્તિથય: શુભાઃ । ષષ્ઠીતઃ સમારમ્બ દશમી યાવત્તિથયો મધ્યમાઃ । એકાદશીતઃ પ્રારમ્બામાવાસ્યાં યાવદશુભાઃ ।

શુક્રપક્ષે તુ પ્રતિપત્તિથિતઃ પશ્ચમી પર્યન્તમશુભાઃ । ષષ્ઠીતો દશમી યાવન્મધ્યમાઃ । એકાદશીતઃ સમારમ્બ પૂર્ણિમાન્તાસ્તિથયઃ શુભાઃ ।

(૪) તિથિ-વિચાર:—

દીક્ષાયાં પ્રતિપત્ (૧), તૃતીયા (૩), પશ્ચમી (૫), સપ્તમી (૭), એકાદશી (૧૧), ત્રયોદશી (૧૩) ચ પ્રશસ્તા ।

(૨) પક્ષ-વિચાર—

કૃષ્ણ પક્ષ મેં પ્રતિપદા સે લેકર પશ્ચમી પર્યન્ત તિથિયાં શુભ હૈ । ષષ્ઠી સે લેકર દશમી તક કી તિથિયા મધ્યમ હૈ, ઓર એકાદશીસે લેકર અમાવાસ્યા તક અશુભ તિથિયા હૈ ।

શુક્ર પક્ષ મેં પ્રતિપદા સે લગાકર પશ્ચમી તક અશુભ હૈ, ષષ્ઠી સે દશમી તક મધ્યમ હૈ ઓર એકાદશી સે પૂર્ણિમા તક કી તિથિયા શુભ હૈ ।

(૩) તિથિ-વિચાર—

દીક્ષા કે વિષયમેં પ્રતિપદા, તૃતીયા, પશ્ચમી, સપ્તમી, એકાદશી ઓર ત્રયોદશી પ્રશસ્ત હૈ ।

(૨) પક્ષ-વિચાર—

કૃષ્ણ પક્ષમા પડવેથી પાચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠી લઈને દશમ સુધીની તિથિઓ મધ્યમ છે, અને એકાદશી-અગીયારસથી લઈને અમાવાસ્યા સુધીની તિથિઓ અશુભ છે

શુક્ર પક્ષમા-પડવેથી લઈને પાચમ સુધીની તિથિઓ અશુભ છે છઠ્ઠી દશમી સુધી મધ્યમ છે, અને એકાદશીથી પુનમ સુધીની તિથિઓ શુભ છે

(૩) તિથિ-વિચાર—

દીક્ષાના વિષયમા પડવે, ત્રીજ, પાચમ, સાતમ, એકાદશી અને તેરસ, આ તિથિઓ ઉત્તમ છે

नव त्रिषयस्य वर्जनीयाः—

(१) शुक्रा चतुर्दशी (२) अमावास्या (३) यस्यां तिथौ रविसंक्रमणं, सा ।
(४) द्वितीया, (५) चतुर्थी, (६) पञ्ची, (७) अष्टमी, (८) नवमी, (९) द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि - चन्द्र - बुध - गुरु - शाराः मङ्गलाः

(५) नक्षत्र-विचार —

दीक्षायां त्रयोदश नक्षत्राणि मङ्गलानि— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी, (३) मृगशिरा, (४) पुष्यम्, (५) उत्तरफाल्गुनी, (६) इस्त (७) अनुराधा, (८) ज्येष्ठा, (९) उत्तराषाढा, (१०) अमिन्त्रिन्, (११) भवजम्, (१२) उत्तरभाद्र पदा, (१३) रेवती ।

नौ त्रिषियां त्याज्ये—

(१)—शुक्रा चतुर्दशी, (२)—अमावास्या (३)—जिस तिथि में सूर्य-संक्रमण हो वह,
(४)—द्वितीया (५)—चतुर्थी (६)—पञ्ची (७)—अष्टमी (८)—नवमी (९)—द्वादशी ।

(४) वार-विचारः—

रवि सोम बुध गुरु, शौच शनिवार प्रशस्त है ।

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षा के विषय में तैत्ति ११ नक्षत्र प्रशस्त हैं । (१)—अश्विनी, (२)—रोहिणी, (३)—मृगशिरा, (४)—पुष्य (५)—उत्तरफाल्गुनी (६)—इस्त (७)—अनुराधा (८)—ज्येष्ठा (९)—उत्तराषाढा (१०)—अमिन्त्रिन् (११)—भवज, (१२)—उत्तरभाद्रपदा, (१३)—रेवती ।

नव त्रिषियां त्याज्ये—

(१) शुक्रे चतुर्दशी, (२) अमावास्या (३) नौ त्रिषिमां सूर्य-संक्रमणं सा ते, (४) द्वितीया, (५) चतुर्थी (६) पञ्ची, (७) अष्टमी (८) नवमी (९) द्वादशी

(४) वार-विचारः—

रवि सोम, बुध, गुरु अने शनिवार उत्तम है

(५) नक्षत्र-विचारः—

दीक्षान्त विषयमां तैत्ति नक्षत्र उत्तम है— (१) अश्विनी, (२) रोहिणी (३) मृगशिरा (४) पुष्य, (५) उत्तरफाल्गुनी (६) इस्त (७) अनुराधा (८) ज्येष्ठा (९) उत्तराषाढा, (१०) अमिन्त्रिन् (११) भवज (१२) उत्तरभाद्रपदा, (१३) रेवती.

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्णपक्षे-प्रतिपदा आरभ्य पञ्चमी यावत्तिथयः शुभाः । पष्ठीतः समारभ्य दशमी यावत्तिथयो मध्यमाः । एकादशीतः प्रारभ्यामावास्यां यावदशुभाः ।

शुक्लपक्षे तु प्रतिपत्तिथितः पञ्चमी पर्यन्तमशुभाः । पष्ठीतो दशमी यावन्मध्यमाः । एकादशीतः समारभ्य पूर्णिमान्तास्तिथयः शुभाः ।

(४) तिथि-विचारः—

दीक्षायां प्रतिपत् (१), तृतीया (३), पञ्चमी (५), सप्तमी (७), एकादशी (११), त्रयोदशी (१३) च प्रशस्ता ।

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्ष में प्रतिपदा से लेकर पञ्चमी पर्यन्त तिथियाँ शुभ हैं । पष्ठी से लेकर दशमी तक की तिथिया मध्यम हैं, और एकादशीसे लेकर अमावास्या तक अशुभ तिथिया हैं ।

शुक्ल पक्ष में प्रतिपदा से लगाकर पञ्चमी तक अशुभ है, पष्ठी से दशमी तक मध्यम हैं और एकादशी से पूर्णिमा तक की तिथिया शुभ हैं ।

(३) तिथि-विचारः—

दीक्षा के विषयमें प्रतिपदा, तृतीया, पञ्चमी, सप्तमी, एकादशी और त्रयोदशी प्रशस्त हैं ।

(२) पक्ष-विचारः—

कृष्ण पक्षमा पडवेथी पांचम सुधीनी तिथियो अशुल छे छठ्ठी लधने दशम सुधीनी तिथियो मध्यम छे, अने ऐकादशी-अगीयारसथी लधने अभावास्या सुधीनी तिथियो अशुल छे

शुक्ल पक्षमा-पडवेथी लधने पांचम सुधीनी तिथियो अशुल छे छठ्ठी दशमी सुधी मध्यम छे, अने ऐकादशीथी पुनम सुधीनी तिथियो शुभ छे

(३) तिथि-विचारः—

दीक्षाना विषयमा पडवे, त्रीज, पांचम, सातम, ऐकादशी अने तेरस, अ तिथियो उत्तम छे.

(७) ग्रहभिसम्-यत्र त्रयो ग्रहास्तिष्ठन्ति साध्य नक्षत्रम् ।

(६) योग-विचारः—

योगास्तु नाम्नेव छुमाशुमफलाः, यथा-विष्कम्मादिषु दैनिकयोगेषु मीत्यादयः शुभफलाः, विष्कम्मादयोऽशुभफलाः । आनन्दादिषु सांयोगिकेषु वारनक्षत्र-संयोगजनितेषु योगेषु आनन्दादयः शुभा, काळदण्डादयोऽशुभा ।

(७) अथ करण-विचारः—

करणानि एकादश सन्ति; यथा-(१) वक्म्, (२) बालवम्, (३) कौळवम्,

(७) षड्-मिन्नक्षि में तीन षड् हों ऐसा नक्षत्र ।

(६) योग-विचार—

योगों के नामसे ही शुभ अशुभ फल प्रतीत हो पाता है । जैसे-विष्कम्भ, आदि दैनिक योगों में से प्रीति आदि योग शुभफल बाँधे, और विष्कम्भ आदि योग अशुभ फल बाँधे हैं । आनन्द आदि सांयोगिक (वार नक्षत्र के संयोग से बनने वाले) योगों में से आनन्द आदि योग शुभफलदाता हैं और काळदण्ड आदि अशुभफलदायक हैं ।

(७) करण-विचार

करण ११ ग्यारह होते हैं जैसे—(१) वक् (२) बालव, (३) कौळव,

(७) षड्भित्त-नेमां तस्य षडो षोड, जेतुं नक्षत्र.

(६) योग-विचार—

योगेभ्य नामधी न शुभ-अशुभ इत्यनी प्रतीति कर्ष भाव छे. नेमहो-विभक्त आदि दैनिक योगेभांशी प्रीति आदि शुभ इत्यवस्था छे अने विभक्त आदि योग ते अशुभ इत्य आपनारा छे आनन्द आदिक सांयोगिक (वार-नक्षत्रना संयोगधी जनवावाणा) योगेभां आनन्द आदि योग शुभ इत्य देवस छे अने कागदक आदि अशुभ इत्य आपनारा छे

(७) करण विचार—

करण अविचार होय छे (१) वक् (२) बालव (३) कौळव (४) श्रीविद्योत्थन
प्र भा-९

નક્ષત્રેષુ સાત દોષાઃ સન્તિ, યથા-

- (૧) સંધ્યાગતમ્-યત્ર નક્ષત્રે સૂર્યોઽનન્તર સ્થાસ્યતિ તાદૃશં નક્ષત્રમ્ । યથા હસ્તે રવિર્વર્ત્તે ચેત્ તદા દૈનિક ચિત્રાનક્ષત્ર સંધ્યાગત યોધ્યમ્ ।
- (૨) રવિગતમ્- યત્ર રવિસ્તિષ્ઠતિ તાદૃગ દૈનિકં નક્ષત્રં રવિગતં યોધ્યમ્ ।
- (૩) દુર્ગતમ્-યત્રોન્માર્ગગામી-ચક્રી ગ્રહો ભવતિ, તાદૃશં નક્ષત્રમ્ ।
- (૪) સગ્રહમ્-યત્ર ક્રૂરો ગ્રહસ્તિષ્ઠતિ, તાદૃશ નક્ષત્રમ્ ।
- (૫) વિલમ્બિતમ્-સૂર્યેણ પરિશુજ્ય મુક્ત નક્ષત્રમ્ ।
- (૬) રાહુગતમ્-યત્ર ચન્દ્ર-સૂર્યોપરાગઃ સજાતમ્તાદૃશં નક્ષત્રમ્ । ઈદૃશે નક્ષત્રે ષ્ણમાસાન્ યાવત્ પ્રવ્રજ્યા ન દેયા ।

નક્ષત્રોં મેં સાત દોષ

- (૧) સન્ધ્યાગત-જિસ નક્ષત્ર મે સૂર્ય આગે જાને વાલા હૈ વહ નક્ષત્ર ।
જૈસે-અગર હસ્ત નક્ષત્ર મેં સૂર્ય હો તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સન્ધ્યાગત કહલાતા હૈ ।
- (૨) રવિગત-જિસ નક્ષત્ર મં રવિ હો, વહ દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત જાનના ચાહિય ।
- (૩) દુર્ગત-જિસ મેં ઉન્માર્ગગામી-ચક્ર ગ્રહ હો વહ નક્ષત્ર દુર્ગત કહલાતા હૈ ।
- (૪) સગ્રહ-જિસ નક્ષત્ર મેં ક્રૂર ગ્રહ હો ।
- (૫) વિલમ્બિત-સૂર્ય-દ્વારા ભોગ કર છોડા હુઆ નક્ષત્ર ।
- (૬) રાહુગત-જિસ નક્ષત્ર મેં ચન્દ્ર-ગ્રહણ યા સૂર્ય-ગ્રહણ હુઆ હો । ઈસે નક્ષત્ર મેં છહ માસ તક દીક્ષા દેના વર્જનીય હૈ ।

નક્ષત્રમા સાત દોષ-

- (૧) સંધ્યાગત-જે નક્ષત્રમા સૂર્ય આગળ આવવાવાળો છે તે નક્ષત્ર, જેવી રીતે કે હસ્ત નક્ષત્રમા સૂર્ય હોય તો દૈનિક ચિત્રા નક્ષત્ર સંધ્યાગત કહેવાય છે
- (૨) રવિગત-જે નક્ષત્રમાં રવિ હોય તે દૈનિક નક્ષત્ર રવિગત બાલુલુ બોધ્યે
- (૩) દુર્ગત-જેમા ઉન્માર્ગગામી-ચક્ર-ગ્રહ હોય તે નક્ષત્ર દુર્ગત કહેવાય છે.
- (૪) સગ્રહ-જે નક્ષત્રમા ક્રૂર ગ્રહ હોય
- (૫) વિલમ્બિત-સૂર્ય-દ્વારા ભોગવીને છુટુ કરાયેલુ નક્ષત્ર
- (૬) રાહુગત-જે નક્ષત્રમા ચ દ્રગ્રહણ અથવા સૂર્યગ્રહણ થયુ હોય એવ નક્ષત્રમા છ માસ સુધી દીક્ષા આપવી વર્જનીય છે

क्य करमा स्थिरा पण्णात्ता १, गीयमा सच करणा चरा, चचारि करमा यिरा पण्णात्ता ।” इत्यादि ।

तत्र दिवाङ्गमेव तिथेः पूर्वाह्णभागः, रात्रिङ्गमेव तिथरुत्तराह्णभागो गम्यते ।

एकादशसु करणेषु बभम्, बाह्वम्, कौलबम्, बणिजम्, एतानि चत्वारि द्वाभफलानि ।

विष्टिकरणस्य नामान्तरं मद्रा । इयं वीक्षादौ बर्मेनीया । उक्तञ्च—

“यदि मद्राकृतं कार्यं, प्रमादेनापि सिद्ध्यति ।

गमा है । कहां कहा है —

‘हे मद्रा ! इन चारह करणों में कितने करण भर और कितने करण रिक्त कर गये हैं’, हे गौतम ! सप्त करण भर और चार करण रिक्त कहे गये हैं ।” इत्यादि ।

यहां दिन शब्द का अर्थ है—तिथिका पूर्वाह्ण भाग और रात्रि शब्द का अर्थ है—तिथि का उत्तरार्ध भाग ।

इन चारह करणों में से बभ, बाह्व, कौलब, और बणिज, ये चार करण शुभ फलदायक है ।

विष्टि करण का दूसरा नाम मद्रा है । वीक्षा आदि कार्यों में यह बर्मेनीय है । कहा भी है —

इयमी अरुत्तु उ तथा अरुत्तु उ —

हे मद्रा ! आ अचार अरुत्तुओं केटला अरुत्तु भर जाने केटला अरुत्तु रिक्त अरुत्तुओं अरुत्तु उ ! हे गौतम ! सप्त अरुत्तु भर जाने चार अरुत्तु रिक्त अरुत्तुओं अरुत्तु उ इत्यादि ।

आ अरुत्तु दिन शब्दने अर्थ उ है—तिथिने पूर्वाह्ण भाग जाने रात्री शब्दने अर्थ उ है—तिथिने उत्तरार्ध भाग ।

ये अरुत्तु अरुत्तुओंकी बभ, बाह्व, कौलब, और बणिज, आ चार अरुत्तु शुभफलदायक है ।

विष्टिकरणस्य वीक्ष्य नाम मद्रा उ वीक्षा आदि कार्यों में यह बर्मेनीय है । कहा भी है —

(४) स्त्रीविलोचनम्, इदं तैतिलमिति, कोचदाहुः, (५) गगादि, इदं गरमित्या-
हुरन्ये, (६) वणिजम्, (७) विष्टिः, (८) शकुनिः, (९) चतुष्पदं, (१०) नागम्,
(११) किंस्तुघ्नम्, इति ।

अत्र ववादिविष्टयन्तानि सप्त करणानि चराणि, शकुन्यादीनि चत्वारि स्थिराणि
वेदितव्यानि ।

ववादिविष्टयन्तानां सप्तानां कस्याश्चिदेकस्यां तिथौ नियमतः स्थित्यभावात्तानि
सप्त चराणि, शकुन्यादीना कृष्णपक्षीयचतुर्दश्यमावस्याशुक्रप्रतिपत्तिथिषु नियत-
स्थित्या तानि चत्वारि स्थिराणि प्रोच्यन्ते । स्पष्ट चेद जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ती सप्तमवक्ष-
स्कारे । उक्तञ्च तत्र—“एएसिणं भंते ! एकारसणं करणाण कइ करणा चरा ?

(४) स्त्रीविलोचन (कोई कोई इसे 'तैतिल' भी नहते हैं), (५) गगादि ('गर' नाम भी है),
(६) वणिज, (७) विष्टि, (८) शकुनि, (९) चतुष्पद, (१०) नाग, (११) किंस्तुघ्न ।

इन ग्यारह करणों में वव से लेकर विष्टि तक सात करण चर हैं, और अन्त के
शकुनि आदि चार स्थिर हैं ।

वव से लेकर विष्टि तक सात करण किसी एक तिथि में नियम से नहीं रहते इस
कारण ये चर कहलाते हैं, शकुनि आदि अन्तिम चार करण कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी,
अमावास्या तथा शुक्रपक्ष की प्रतिपदा तिथि में नियम से होते हैं, अतः एव ये स्थिर कहलाते
हैं । इस विषय का जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के सातवें वक्षस्कार में स्पष्ट रूप से विवेचन किया

(क्वाथं क्वाथं अने ' तैतिल ' पणु कडे छे) (५) गगादि (तेनु ' गर ' नाम पणु छे)
(६) वणिज (७) विष्टि (८) शकुनि (९) चतुष्पद (१०) नाग (११) किंस्तुघ्न

आ अगियार करणोभा अवथी लधने विष्टि सुधी सात करणु थर छे, अने
छेदला शकुनि आदि चार स्थिर छे

अवथी लधने विष्टि सुधीना सात करणु क्वाथं अक तिथिमा नियमित रहता
नथी ते करणुथी तेने थर कडे छे, शकुनि आदि छेदला चार, कृष्ण पक्षनी चौदस,
अमावास्या तथा शुक्र पक्षनी प्रतिपदा-पडवा तिथिमा नियमित रहे छे अत्रे ते
स्थिर कडेवाथ छे आ विषयनु विवेचनं जम्बूद्वीपप्रज्ञप्तिना सातमा वक्षस्कारमा स्पष्ट

शकुनि-चतुष्पद-नाग-किंस्तुप्रनामानि करणानि तु कृष्णचतुर्वर्ष्यमावास्या
शुक्रप्रतिपद्योगमाधित्वास्याज्यानि । अशुक्रिष्ट द्वे करणे श्रीविद्योचनगरादिसठ्ठके
सामान्य, इति साम्प्रदायिकाः ।

यत्तु गणिविद्याप्रकीर्णककारने वीक्षा के नियम में चतुष्पद और नाग नामक दो करण
प्रशस्त माने हैं उनका जो कहे है कि—“नागे चतुष्पद यावि सेहनिष्कर्मणं करे” अर्थात्
नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्कर्मण करना चाहिये अर्थात् शिष्यको वीक्षा देना चाहिये,
उनका यह कथन समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्कर्मण में अमावास्या निषिद्ध
मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से माहित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना
असम्भव है ।

तत्र समीचीनम्, निष्कर्मणेऽमावास्यायाः प्रतिषिद्धत्वेन नियमस्तद्योग-
माविनास्तयोः प्राशस्त्याऽसंभवात् ।

शकुनि चतुष्पद नाग और किंस्तुप्र नामक करण कृष्ण पक्षकी चतुर्विंशती, अमावास्या,
शुक्रप्रतिपदा के योगसे माहित होने के कारण त्याज्य हो जाते हैं । शेष दो करण
श्रीविद्योचन और गरादि नामक साधारण हैं । परम्परा को जानने वालों का यह मत है ।

गणिविद्याप्रकीर्णककारने वीक्षा के नियम में चतुष्पद और नाग नामक दो करण
प्रशस्त माने हैं उनका जो कहे है कि—“नागे चतुष्पद यावि सेहनिष्कर्मणं करे” अर्थात्
नाग और चतुष्पद नक्षत्र में निष्कर्मण करना चाहिये अर्थात् शिष्यको वीक्षा देना चाहिये,
उनका यह कथन समीचीन नहीं है, कारण यह है कि निष्कर्मण में अमावास्या निषिद्ध
मानी गई है, इसीलिये अमावास्या के योग से माहित उक्त दोनों करणों का प्रशस्त होना
असम्भव है ।

शकुनि, चतुष्पद, नाग और किंस्तुप्र नामक करण कृष्ण पक्षकी चौदस,
अमावास्या, शुक्र प्रतिपदा पक्षान्ता योगशी भावित होवानी त्याज्य जनी जाय छे
जाही जे करण श्रीविद्योचन और अशुक्रि नामक साधारण छे परम्परा अनुसार
व्यक्तो आ प्रमाणे मत छे

अणिविद्याप्रकीर्णककारने वीक्षणानि नियमार्थं चतुष्पद और नाग नामक दो
करणोंने उक्तम मान्या छे तेषु उक्तु छे के—“नागे चतुष्पद यावि सेहनिष्कर्मणं करे”
नाग और चतुष्पद नक्षत्रमा निष्कर्मण करणु अर्थजे अर्थात् शिष्यने वीक्षा आपनी
अर्थजे, तेमनु आ कथन असत्य नहीं, कारण जे छे के—निष्कर्मणमा—वीक्षाभां-
अमावास्या निषिद्ध मानी छे अथवा माटे अमावास्याया योगशी भावित उपर
होवा जने करणो उक्तम होय ते वात असत्य छे

प्राप्ते तु षोडशे मासे, समूलं तद्विनश्यति ॥ १ ॥” इति ।

शुक्रपक्षे भद्रा चतुर्थ्यामेकादश्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, अष्टम्यां पूर्णिमायां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति, कृष्णपक्षे तु सा तृतीयायां दशम्यां च तिथिपरार्द्धभागस्थायिनी, सप्तम्यां चतुर्दश्यां च तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी भवति ।

तत्र तिथिपश्चार्द्धभागस्थायिनी भद्रा दिवसं व्याप्नोति, तथा तिथिपूर्वार्द्धभागस्थायिनी रात्रिं व्याप्नोति चेत्तदा न दोषावहा ।

भद्रायान्त्रिंशद्घटिकामानेन पश्चिमं घटिकात्रयं पुच्छमित्यभिधीयते । तद् भद्रापुच्छं शुभम् ।

“भद्रा करण में किया हुआ कार्य प्रथम तो सिद्ध ही नहीं होता, कदाचित् सिद्ध भी होजाय तो सोलहवाँ महीना आने पर उसका समूल विनाश हो जाता है” ॥१॥

भद्रा शुक्रपक्ष में चौथ तथा एकादशी तिथि के उत्तरार्ध में रहती है, और अष्टमी तथा पूर्णिमा के दिन तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

कृष्णपक्ष में तृतीया और दशमी के दिन तिथि के उत्तरार्ध में और सप्तमी एवं चतुर्दशी को तिथि के पूर्वार्ध में रहती है ।

तिथि के उत्तरार्ध में रहने वाली भद्रा दिनको व्याप्त करती हो और पूर्वार्धभाग में रहने वाली रात्रिको व्याप्त करती हो तो कोई दोष नहीं है ।

तीस घड़ीकी भद्रा की अन्तिम तीन घड़ियाँ पूछ कहलाती है । भद्राकी यह पूछ शुभ है ।

“भद्रा करणमा करेलु काम प्रथम तो सिद्ध थतु नथी, कदाचित् सिद्ध पणु थाय तो सोणमे भडिने आवता तेना समूल विनाश थाय छे” ॥ १ ॥

भद्रा शुक्रल पक्षमा चोथ तथा ऐकादशी तिथिना उत्तरार्धमा रडे छे, अने आठम तथा पूनमना दिवसे तिथिना पूर्वार्धमा रडे छे

कृष्णपक्षमा त्रीन अने दशमीना दिन तिथिना उत्तरार्धमा अने सातम तथा चौदशना दिन तिथिना पूर्वार्धमा रडे छे

तिथिना उत्तरार्धमा रडेवावाणी भद्रा दिवसने व्याप्त करती होय, अने पूर्वार्ध लागमा रडेवावाणी रात्रीने व्याप्त करती होय तो कोछ दोष नथी

तीस घडीनी भद्रानी छेली त्रणु घडीओ पूछ कडेवाय छे, अने भद्रानी ते पूछ शुभ छे

चन्द्रतो स्मृतम् सप्तमे स्थानं रश्मिह्रमार्गवास्यान्याः, तत्र प्रयाणां सगमे दीप्तनीयः प्रतिपाती भवति । एष त्रिषु द्वापन्यसमो वा तत्र क्विवि चेत्तदा ह्यधीलः क्रोमादिवशम् भवति । यदि सप्तमं स्थानं रिक्तं, चन्द्रश्च ग्रहान्तरवर्धितस्तदा दीप्ता शुभा । यदि चन्द्रस्य गुरु-शुभपौरुषवरेण सगमस्त्वर्हि शुभम् ।

(१०) अथ त्वरितकर्कशदीप्तासमयनिरूपणम् ।

(क) सिद्धच्छायात्मम् ।

चन्द्रमासे तथा सप्त से सातवें स्थान पर सूर्य, बुध (मङ्गल) मार्ग, (शुक्र) हो चोखाय्य है । अगर इन तीनों का सङ्गम हो तो दीप्ता होने वाला प्रतिपाती (पडिवाई) हो जाता है । अगर इन तीनों में से दो कम्पा कोई भी एक बर्दा हो तो दीप्ता होने वाला कुशील और क्रोम आदि दुर्गुणा का चारक होता है । अगर चन्द्र दूसरे ग्रहों से वर्धित हो तो दीप्ता सप्त समझनी चाहिये । अगर गुरु और शुभ में से किसी एक के साथ चन्द्रमाका सङ्गम हो तो शुभ है ।

(१०) तुरन्त दीप्ता देनेका समय—

(क) सिद्धच्छाया—सम—

त्रील, छद्म, नवमा अने अजिआरमा स्थानमा स्थित शुक्रं निलल होय छे, तेथी करी शुक्रं अस्त होय तो पक्ष दीक्षा अकषु करनी ते उत्तम मानवामा आण्यु छे जेवो देठ आचार्यने भव छे

अद्रभाथी तथा अजधी सातमा स्थानमा शुभं मजल शुक्रं होय तो त्वालय छे अथवा जे त्रयेपने सजम होय तो दीक्षा देनार प्रतिपाती (पडिवाई) अर्ध अथ छे अथवा जे त्रयभाथी जे अथवा देठ पक्ष जेक त्या होय तो दीक्षा देवापनी कुशील अने क्रोम आदि दुर्गुणोने चारक करनार अने छे अथवा चन्द्र तथा अजधी सातमु स्थान आती होय अथवा अद्रभा वील अद्रोधी वर्धित होय ते दीक्षा शुभ समझनी जेठ जे अथवा अद्र अने शुभभाथी देठ पक्ष जेकनी साथे अद्रने सजम होय तो शुभ छे

(१०) तुरंत दीक्षा आपवाने समय—

(क) सिद्धच्छाया—

अथ लग्नविचारः—

निष्क्रमणे मिथुन-सिंह-कन्या-वृश्चिक-धनु-मकर-कुम्भ-मीनानि लग्नानि शुभानि । अन्यानि चत्वारि वर्जनीयानि ।

(९) ग्रहविचारः—

दीक्षालगने शनश्चर मध्यमबलं, गुरुं बलीयासं, शुक्रं बलहीनं विधाय दीक्षा देया । द्वितीये, पञ्चमे, षष्ठे, सप्तमे, एकादशे स्थाने शनिर्मध्यमबली भवति । त्रिकोणे केन्द्रे एकादशे च स्थानेऽवस्थितो गुरुर्वलीयान् भवति । तृतीये, षष्ठे, नवमे, द्वादशे च स्थाने स्थितः शुक्रो बलहीनो भवति, अत एव शुक्रास्तेऽपि दीक्षा ग्राह्येति संप्रदायविदः ।

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करने में—मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन, लग्न शुभ हैं । शेष चार वर्जनीय हैं ।

(९) ग्रह-विचार—

दीक्षालग्न में शनैश्चर मध्यम बल वाला, गुरु बलशाली और शुक्र बलहीन हो तो दीक्षा देनी चाहिए । दूसरे पांचवें, छठे, सातवें और ग्यारहवें स्थान में शनि मध्यम बल वाला होता है । त्रिकोण में केन्द्र में और ग्यारहवें स्थान में रहा हुआ गुरु (बृहस्पति) बलशाली समझा जाता है । तीसरे, छठे, नौवें और ग्यारहवें स्थान में स्थित शुक्र निर्बल होता है । अत एव शुक्र का अस्त होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना प्रशस्त माना गया है, ऐसा कई आचार्यों का कथन है ।

(८) लग्न-विचार—

दीक्षा अङ्गीकार करने में मिथुन, सिंह, कन्या, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ और मीन—लग्न शुभ हैं । शेष चार वर्जनीय हैं ।

(९) ग्रह-विचार—

दीक्षालग्न में शनैश्चर मध्यम बलवाली और शुक्र बलहीन हो तो दीक्षा देनी चाहिए । दूसरे पांचवें, छठे, सातवें और ग्यारहवें स्थान में शनि मध्यम बलवाली भवति । त्रिकोण में केन्द्र में और ग्यारहवें स्थान में रहा हुआ गुरु (बृहस्पति) बलशाली समझा जाता है । अत एव शुक्र का अस्त होने पर भी दीक्षा ग्रहण करना प्रशस्त माना गया है, ऐसा कई आचार्यों का कथन है ।

नक्षत्राणि तिथिर्बारा-स्तारायन्त्रबर्षं प्रहा ।
दुष्टान्यपि धुमं भाव, मन्वन्ते सिद्धछायया ॥ १ ॥

न तिथिर्न च नक्षत्र, न बारा न च चन्द्रमाः ।
प्रहा नोपग्रहाभैष, छायाछन्नं प्रवृत्स्यते ॥ २ ॥

न योगिनी न विष्टिष, न छल्लं न च चन्द्रमाः ।
एषा वज्रमयी सिद्धि, -रमेया त्रिदशैरपि ॥ ३ ॥

“सिद्धछाया छन्न हो तो दूफित तिथि नक्षत्र, बार, चरा, चन्द्र तथा दूफित प्रह भी दुष्प्रकारायक हो जाते हैं, जबकि सिद्धछायाछन्न की विद्यमानता में नक्षत्र भाषि का दोष नहीं माना जाता है ॥ १ ॥

एक मात्र छाया छन्न ही उत्तम है, उसकी समानता न तिथि कर सकती है, न नक्षत्र कर सकता है, न बार कर सकता है, न चन्द्रमा, न प्रह कर सकते हैं और न उपग्रह ही कर सकते हैं ॥ २ ॥

योगिनी उसके सामने कुछ नहीं है, विष्टि (मन्दा) कोई भी नहीं है, छल्ल और चन्द्रमा भी उस की विद्यमानता में कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता । सिद्धछाया छन्न एक देवी वज्रमयी सिद्धि है, जिसे देवता भी नहीं मेव सकते ॥ ३ ॥

‘सिद्धछायाछन्न होय तो दूफित नक्षत्र, तिथि, बार, चरा, चन्द्र तथा दूफित बर्ष पञ्च शुभ भाषं भाष छे अर्थात् सिद्धछायाछन्नी छायाछन्नी नक्षत्र अर्थात् होय मानवामां अस्तमेव नथी ॥ १ ॥’

कोई मात्र छायाछन्न ही उत्तम छे तेनो शुभाशुभो तिथि, नक्षत्र, बार, चन्द्रमा बर्ष अने उपग्रह होय पञ्च करी शकता नथी ॥ २ ॥

योगिनीतु तेनो सामे जग नथी, विष्टितु पञ्च जग नथी, शुभ अने चन्द्र पञ्च छायाछन्नी छायाछन्नी होय प्रकारे होय पञ्च जगती शकता नथी, सिद्ध छायाछन्न को कोई वज्रमयी सिद्धि छे अने देवता पञ्च सेवी शकता नथी ॥ ३ ॥’

शुभतिथिवारनक्षत्रलग्नादीनामभावे त्वरितकर्त्तव्येषु कार्येषु सिद्धच्छायालग्न-
मुपादेयम् । यदि समतलभूमौ स्वशरीरच्छाया चन्द्र-शुक्र-शनि-वासरेषु सार्द्धाऽष्टपद-
प्रमाणा, भौमे नवपदप्रमाणा, बुधेऽष्टपदप्रमाणा, रवावेकादशपदप्रमाणा, गुरौ सप्त-
पदप्रमाणा भवेत्तदा सा सिद्धच्छायाख्यं लग्नं प्रोच्यते । तत्र दीक्षादिशुभकार्यं
विधेयम् । अस्मिन् सिद्धच्छायालग्ने संप्राप्ते तिथिवारनक्षत्रभद्रालग्नादिचिन्तनमनाव-
श्यकम् । उक्तञ्च-

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र और लग्न आदि के अभाव में तुरन्त करने योग्य कार्यों में
सिद्धच्छायालग्न ही उपादेय है ।

समतल भूमि पर अपने शरीर की छाया सोमवार, शुक्रवार, और शनिवार, के दिन
साढ़े आठ पैर बराबर हो, मङ्गलवार को नौ पैर बराबर हो, बुधवार को आठ पद प्रमाण हो,
रविवार को ग्यारह पद प्रमाण हो, और गुरुवार को सात पैर छाया हो तो उसे सिद्धच्छाया
लग्न कहते हैं, उस में दीक्षा आदि शुभ कार्य किये जा सकते हैं । यह सिद्धच्छायालग्न प्राप्त
हो तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा और लग्न आदि का विचार करने की आवश्यकता नहीं है ।
कहा भी है —

शुभ तिथि, वार, नक्षत्र अने लग्न आदिना अभावमा तुरत करवा योग्य
कार्योमा सिद्धछायालग्न न अह्यु करवा योग्य छे

समतल भूमि उपर चोताना शरीरनी छाया, सोमवार शुक्रवार अने शनिवारना
दिवसे साडा आठ पग प्रमाणु होय, मंगलवारना दिवसे नव पग प्रमाणु होय,
बुधवारे आठ पग प्रमाणु, रविवारे अगिआर पग, गुरुवारे सात पगला छाया
होय तो तेने सिद्ध छायालग्न कहे छे आ लग्नमा दीक्षा आदि शुभ कार्य
करी शक्य छे आ सिद्धछायालग्न प्राप्त होय तो तिथि, वार, नक्षत्र, भद्रा अने
लग्न आदिना विचार करवानी आवश्यकता नथी कहु पद्यु छे—

नसबलितान्तमातुरः सन् निस्तरङ्गमहोदधिकल्पं ध्वान्तरसार्षिं द्रव्यक्षेत्रकालमावधिर्द
निर्द्वन्द्वप्रवचनमर्मज्ञं गुह्यं दीक्षादानार्थं प्रार्थयते तदा तस्मै तदानीमेव प्रवक्ष्यामिदानं
शुभम्, नहि तत्र तिथिवारनक्षत्रादीनां विचारापत्ता ।

(११) मय केवलज्ञानम्—

दीक्षाग्रहणानन्तरं यदा कदापि केवलज्ञानं कर्तुमिच्छेत्तदा छनिमङ्गल विषयी
स्यान्यौ, कृत्तिका, विशाखा, मघा, मरणी, एतानि चत्वारि नक्षत्राणि च बर्मेनीयानि ।

आत्मरक्षा का अर्थ उपाय न देखकर एकमात्र दीक्षा को ही कारण समझने वाला ही
वैतन्य की प्रगा से चमकता हुआ मोक्षाभिलाषी शिष्य रोम-रोम में जिस के भाग सगी हो
पैसे पुरष की मति अत्यन्त आतुर होकर तरङ्गरहित समुद्र के समान शान्त रस के सगर
द्रव्य-क्षेत्र-काल-माव के हाता और निर्द्वन्द्व प्रवचन क मर्मज्ञ गुह्यसे दीक्षा देने के स्मिये
प्रार्थना करे वा उसको उही समय दीक्षा दे देना शुभ है, पेश प्रसंग पर तिथि, वार, नक्षत्र
आदि के विचार की आवश्यकता नहीं है ।

(१२) केवलज्ञानम्—

दीक्षा धारण करने के पश्चात् केवलज्ञान करने में शनिवार और मंगल वार त्वम्य है
तथा कृत्तिका विशाखा मघा, और मरणी, ये चार नक्षत्र बर्मेनीय हैं ।

कर्म गुरु छे जेवा पुरुषनी जेम आत्मरक्षाने अन्य केछ उपाय नहि देजवाधी
कोछ भाव दीक्षाने व शरवु-आत्म्य समजवावाजा, तीव्र देशजनी प्रकान्तेकधी
बभकती मोक्षाभिलाषी शिष्य शम-शमभा जेने अजि वाजी छे, जेवा पुरुषनी
जेम अत्यन्त आतुर अनीने तरजरहित समुद्र प्रभाज्जे शान्त रसनां साजद,
द्रव्य, क्षेत्र, काल अने जावनवा अजुनार अने निर्द्वन्द्व प्रवचनवा मर्मज्ञ शुभधी
दीक्षा देवा माटे प्रार्थना करे तो तने तेक वजते दीक्षा आपवी शुभ छे जेवा
प्रसंगे तिथि वार नक्षत्र आदिने विचार करवानी जरूर नहीं.

(१३) देशज्ञानम्

दीक्षा धारण कर्था पानी देशज्ञान करवाय शनिवार अने मजणवार त्याग्य छे
तथा कृत्तिका, विशाखा, मघा, अने मरणी, ये चार नक्षत्र त्यजवा योग्य छे.

(રવ) શકુચ્છાયાલગ્ન—

દ્વાદશાઙ્ગુલપરિમિતશકુચ્છાયા રવિ-સોમ-મૌમ-બુધ-ગુરુ-શુક્ર-શનિ-વાસરેષુ ક્રમેણ વિંશતિ-ષોડશ-પચ્ચદશ-ચતુર્દશ-ત્રયોદશ-દ્વાદશ-દ્વાદશાઙ્ગુલપરિમિતા, તથા શનિવાસરે દ્વાદશાઙ્ગુલપ્રમાણા ચેત્તર્હિ સા શકુચ્છાયાલગ્ન્યં લગ્નં પ્રોચ્યતે । તત્ર દીક્ષાદિ કાર્યં શુભમ્ ।

(ગ) અત્યુત્ક્રાંતિતયોગ્યશિષ્યાર્થં દીક્ષાસમયઃ—

વિષયાટવીદાવદહનજ્વાલામાલાકલિતસ્થાન્તોઽનન્તજન્મજરામરણાદિભયોદ્વિગ્નિઃ સમન્તતઃ પ્રજ્વલિતે સન્નિ સુપ્તમિવાદીપ્તપ્રદીપ્તસંસારાન્તઃ સરન્તમાત્મનં રક્ષિતુમ્પાયાન્તરમનવલોક્ય પ્રવ્રજ્યામાત્રશરણદર્શી તીવ્રવૈરાગ્યપ્રભાભાસમાનઃ પ્રતિરોમોજ્જ્વલિતા-

(રવ) શકુચ્છાયાલગ્ન—

બારહ અઙ્ગુલ લગ્ની કીલી કી પરછાઈ અગર રવિવાર કો વીસ અગુલ, સોમવાર કો સૌલહ અગુલ, મંગલવાર કો પન્દ્રહ અગુલ, બુધવાર કો ચૌદહ અગુલ, ગુરુવાર કો તેરહ અગુલ, શુક્રવાર કો બારહ અગુલ, તથા શનિવાર કો મી બારહ અંગુલ હો ઉસે શકુચ્છાયા લગ્ન કહતે હૈં । ઇસ લગ્ન મેં દીક્ષા આદિ કાર્યં શુભ હૈં ।

(ગ) તીવ્ર ઉત્ક્રાંઠા વાલે દીક્ષાર્થી કા દીક્ષાસમય—

વિષયવાસના કી વિષય અટવી મેં વ્યાપ્ત દાવાનલ કી વિકટ જ્વાલાઓંસે જિસકા અન્ત-કરણ છુલસ ગયા હૈ, ઓર જો અનન્ત જન્મ જરા મરણ આદિ કે ભય સે ઉદ્વિગ્ન હૈ, ચારોં ઓર સે મકાન મેં આગ લગ જાને પર જિસ કા સર્વસ્વ ભસ્મ હો ગયા હૈ ઇસે પુરુષ કી ભાતિ

(સ્ત્ર) શકુચ્છાયાલગ્ન—

બાર આગળ લાખી ખીલીનેા પડછાયો રવિવારે વીશ આગળ, સોમવારે સોળ આગળ, મંગળવારે પદર આગળ, બુધવારે ચૌદ આગળ, ગુરુવારે તેર આગળ, શુક્રવારે બાર આગળ, તથા શનિવારે પણ બાર આગળ હોય તો તેને શકુચ્છાયાલગ્ન કહે છે તે લગ્નમા દીક્ષા આદિ કાર્યં શુભ છે

(ગ) તીવ્ર ઉત્ક્રાંઠાવાલા દીક્ષાર્થીનેા સમય—

વિષયવાસનાની વિષય અટવી (વન)મા વ્યાપ્ત દાવાનલની વિકટ જ્વાલાઓથી જેતુ અતઃકરણ ખળી ગયું છે, અને જે અનન્ત જન્મ, જરા, મરણ વગેરેના ભયથી ચિંતાતુર છે, આરે બાબુથી મકાનમા આગ લાગવાથી જેતુ સર્વસ્વ ભસ્મ

(१३) अथ नूतनपात्रव्यापृतिः—

गोक्षर्यादिनिमित्तं नूतनपात्रव्यापृतिम्, मृगशिरःपुष्याश्विनीहस्तानुराधा
षिषारेवतीषु, सोमशुक्रासुर्योश्च शुभदा ।

(१४) आचार्यादिपदप्रदानसमयः—

आचार्यादिपदप्रदाने—भ्रवर्ण, ज्येष्ठा, पुष्यम्, अमिन्त्रि, हस्ता, अश्विनी,
रोहिणी, उत्तराश्रय, मृगशिरः, अनुराधा, रेवती, एतानि नक्षत्राणि शुभानि
क्षोभनतिषिचाराद्योऽपि द्रष्टव्याः ।

अथ (४) द्रव्यानुयोगः—

द्रवति=गच्छति प्राप्नोति मुञ्चति वा तांस्तान् पर्यायानिति द्रव्यम् । अथवा—

(१३) नूतन पात्र का प्रयोग

गोक्षरी आदि के छिप नवीन पात्र का उपयोग मृगशिर, पुष्य अश्विनी, हस्त,
अनुराधा, चित्रा और रेवती नक्षत्रों में, तथा सोमवार और शुक्रवार के दिन करना शुभ है ।

(१४) आचार्य आदि पदवीदान का समय

आचार्य आदि पदवी देने में भ्रवर्ण ज्येष्ठा पुष्य, अमिन्त्रि, अश्विनी, रोहिणी,
उत्तराश्रय, (उत्तराश्रय उत्तरामासक्या उत्तराश्रयगुनी) मृगशिर, अनुराधा और रेवती, ये
नक्षत्र शुभ हैं । इस प्रसङ्ग पर छह तिथि और छह बार आदि मी देखना चाहिए ।

(४) द्रव्यानुयोग—

आगे की पर्याय प्राप्त करने बाह्य और पूर्व पर्यायों का त्याग करने बाह्य द्रव्य

(१३) नया पात्रने उपयोग

गोक्षरी आदि आठे नया पात्रने उपयोग भुजशीर्ष पुष्य, अश्विनी, हस्त,
अनुराधा, चित्रा, जने रेवती नक्षत्रोर्मा, तथा सोमवार जने शुक्रवारना दिनसे करवो
ते शुभ छे

(१४) आचार्य आदि पदवीदानने समय—

आचार्य आदि पदवी आपवामां भ्रवर्ण, ज्येष्ठा, पुष्य, अमिन्त्रि, हस्त,
अश्विनी रोहिणी, उत्तराश्रय (उत्तरा-मास, उत्तरा-मासपद, उत्तरा-शश्वुनी)
भुजशीर्ष, अनुराधा जने रेवती, आ नक्षत्रो शुभ छे आ प्रसज उपर शुभ तिथि
जने शुभ पार वजेरे भवु जेवु जेधजे

(४) द्रव्यानुयोग—

आजगनी पर्याय अष्ट हस्तश जने प्रभमनी पर्यायने त्याग करवावायाने

(१२) अथ नवदीक्षितस्य प्रथमगोचरीविचारः—

प्रथमगोचरीविषये तीक्ष्णोग्रमिश्रनक्षत्राणि शनिमङ्गलदिवसौ च वर्जयेत् ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, मूलम्, एतानि चत्वारि तीक्ष्णनक्षत्राणि । भरणी, पूर्वात्रयं, मघा, एतानि पञ्चोग्रनक्षत्राणि । कृत्तिका, विशाखा, इमे द्वे मिश्रनक्षत्रे ।

रिक्ताऽभावास्याक्षयतिथयस्त्याज्याः । शनिमङ्गलवारयोगे रिक्ताऽपि प्रशस्ता विज्ञेया ।

• (१२) नव दीक्षित की प्रथम गोचरी—

पहली वार गोचरी के विषय में तीक्ष्ण उग्र और मिश्र नक्षत्र एवं शनि तथा मङ्गल वार त्याज्य हैं ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और मूल, ये चार नक्षत्र तीक्ष्ण हैं । भरणी, पूर्वात्रय— (पूर्वाषाढा पूर्वभाद्रपदा और पूर्वाफाल्गुनी) और मघा, ये पाँच उग्र नक्षत्र हैं । कृत्तिका और विशाखा, ये दो नक्षत्र मिश्र कहलाते हैं ।

रिक्ता तिथि, अभावास्या और क्षय तिथि त्याज्य है, हँ यदि शनि और मंगल वार का योग हो तो रिक्ता तिथि भी प्रशस्त है ।

(१२) नवदीक्षितानी प्रथम गोचरी—

पहलेदीवार गोचरीना विषयमा तीक्ष्ण, उग्र अने मिश्र नक्षत्र तथा शनि अने मंगलवार त्याज्य छे ।

आर्द्रा, अश्लेषा, ज्येष्ठा, अने मूल, आ चार नक्षत्र तीक्ष्ण छे, भरणी, त्रय पूर्वा (पूर्वाषाढा, पूर्वाभाद्रपद, अने पूर्वाफाल्गुनी) अने मघा अने पाच नक्षत्र उग्र नक्षत्र छे । कृत्तिका अने विशाखा, आ ये नक्षत्र मिश्र कहलाय छे ।

रिक्ता तिथि, अभावास्या अने क्षय तिथि त्याज्य छे, परन्तु जे शनि अने मंगलवारने योग होय तो रिक्ता तिथि पद्य उत्तम छे ।

वयः सामान्यगुणाः सन्ति । एवं गतिहेतुत्व धर्मं, स्थितिहेतुत्वधर्मं, अवकाश-
दानहेतुत्वमाकाशे, वर्तनहेतुत्वं काले, रूपादिमत्त्वं पुत्रले विशेषगुणाः सन्तीति
द्रव्यलक्षणसम्बन्धः ।

कश्चिद् 'सद् द्रव्यलक्षणम्' इति सूत्रयित्वा 'उत्पादव्ययधौम्ययुक्तं
सत्' इति सूत्रेण सत्त्वव्यविकरणं कुर्वन् द्रव्यसामान्यलक्षणमुच्यते विशेष-
विज्ञानजननाय विशेषलक्षणमवोचत्-'गुणपर्यायवत्त्वम्' इति । तदुपि प्रकृत-

अस्ति च (जिस शक्ति के निमित्त से द्रव्य का कमी बिनाश न हो) वस्तुत्व-द्रव्यत्व
(जिस शक्ति के निमित्त से पर्याय सर्वैव बदलती रहे) और प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व (जिस शक्ति के
निमित्त से द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो) आदि सामान्य गुण हैं । इसीप्रकार
धर्मास्तिकाय में गतिहेतुत्व (गतिकारणता) अधर्मास्तिकाय में स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता)
आकाश में अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायिता) काल में वर्तनाहेतुत्व, (नवपुराण-
कारणता) आदि, और पुत्रल में रूपादिमत्त्व विशेष गुण हैं । अतः इन सब में द्रव्य के लक्षण
की संगति होयती है ।

किसी आचार्य ने 'सद् द्रव्यलक्षणम्' ऐसा सूत्र रचकर 'उत्पाद-व्यय-धौम्य-युक्तं
सत्' अर्थात् जिस में उत्पाद बिनाश और धौम्य युगपत् पाये धर्म बह सत् है, इस सूत्र
के द्वारा सत् की व्याख्या करते हुए सामान्य द्रव्य का स्वरूप बतला कर विशेष बोध

अस्तित्व (जे शक्तिना निमित्तधी द्रव्यने क्यारैय पद्य नाश न होय) वस्तुत्व
द्रव्यत्व (जे शक्तिना निमित्तधी पर्याय बदलती रहे) अने प्रमेयत्व-ज्ञेयत्व
(जे शक्तिना निमित्तधी द्रव्य कोठि न कोठि ज्ञानने विषय होय) आदि सामान्य
गुण छे जे प्रमाद्ये धर्मास्तिकायमां अतिहेतुत्व (अतिकारणता) अधर्मास्तिकायमां
स्थितिहेतुत्व (स्थितिकारणता) आकाशमां अवकाशदानहेतुत्व (अवकाशदायित्व)
कालमां वर्तनाहेतुत्व (नवपुराणकारणता) आदि अने पुत्रलमां रूपादिमत्त्व विशेष
गुण छे तेही जे सर्वमां द्रव्यना लक्षणनी संगति भए अथ छे

कोई आचार्य " सद् द्रव्यलक्षणम् " जेवु सूत्र रचीने " उत्पाद व्यय धौम्य युक्तं
सत् " अर्थात् जेमां उत्पाद, बिनाश अने धौम्य जेठ जाजे जेधामां आवे ते " सत् "
छे ज्य सूत्र द्वारा सत् की व्याख्या करते वक सामान्य द्रव्यनु स्वरूप बतावोने

द्रव्यते = पाप्यते मुच्यते वा तैस्तैः पर्यायैरिति द्रव्यम् । द्रव्यस्य - अनुयोगः
द्रव्यानुयोगः ।

द्रव्यानुयोगो हि द्रव्याणां यथावस्थितस्वरूपावबोधने समीचीनयुक्तिं प्रदर्शयति । तथा दर्शनस्य नैर्मल्यम् । ततश्च सम्यक् चारित्रं संपद्यते । तथा चायमपि चरणकरणानुयोग पोषयतीति बोध्यम् ।

द्रव्यलक्षणम्—

अथ किं तावद् द्रव्यम् ? उच्यते— “गुणाश्रयो द्रव्यम्” । यथा जीवे ज्ञानदर्शनचारित्रसुखोपयोगादयो विशेषगुणा, अस्तित्व-द्रव्यत्व-ज्ञेयत्वा

कहलाता है । अथवा जो पर्यायों के द्वारा प्राप्त हो, अथवा पर्यायों से मुक्त हो उसे द्रव्य कहते हैं । ऐसे द्रव्य के अनुयोग को द्रव्यानुयोग कहते हैं ।

द्रव्यानुयोग द्रव्यों का यथार्थ स्वरूप समझाने के लिए समीचीन मार्ग प्रदर्शित करता है । उस से सम्यग्दर्शन निर्मल होता है, और सम्यग्दर्शन की निर्मलता से सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होती है । इस प्रकार यह अनुयोग भी चरणकरणानुयोग का पोषक है ।

द्रव्य का लक्षण—

द्रव्य किसे कहते हैं ? इस प्रश्न का उत्तर इस प्रकार है—जो गुणों का आधार हो वह द्रव्य है, जैसे जीवन में ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख और उपयोग आदि विशेष गुण हैं । द्रव्य कहे छे, अथवा जे पर्यायो द्वारा प्राप्त होय अथवा पर्यायोधी युक्त होय तेने द्रव्य कहे छे अथवा द्रव्यना अनुयोगने द्रव्यानुयोग कहे छे

द्रव्यानुयोग द्रव्येना यथार्थ स्वरूपने समझववा भाटे परापर साधो मार्ग प्रदर्शित करे छे, तेथी सम्यग्दर्शन निर्मल थाय छे, अने सम्यग्दर्शनी निर्मलताधी सम्यक् चारित्रनी प्राप्ति थाय छे अे प्रभावे या अनुयोग पद्य चरखु करणानुयोगने पोषक छे

द्रव्यनु लक्षणम्—

द्रव्य केने कहे छे ? अे प्रश्नने उत्तर या प्रभावे छे—जे गुणेने आधार होय ते द्रव्य छे, जे प्रभावे एवमा ज्ञान, दर्शन, चारित्र सुख अने उपयोग आदि विशेष गुण छे.

सुखवीर्याद्याः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शादयो गुणाः । 'मात्र'—शब्दोपादनं पर्यायेतिप्रसङ्गवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'—मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धघाताप्रघातादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व—परिणामित्व—वस्तुत्व—ज्ञेयत्व—प्रमेयत्व—प्रवेश्यत्व—प्रवेश्यत्व—स्थितिहेतुत्व—स्थितिहेतुत्वा—अवकाशदानहेतुत्व—वर्तनाहेतुत्व—वर्ण—रस—गन्ध—स्पर्श—

स्पर्श हे जैसे-बीज के गुण-ज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श आदि हैं । उपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । अर्थात् गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे मूल, स्कन्ध घाता और प्रघाता आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व, वस्तुत्व ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रवेश्यत्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व वर्ण—रस—गन्ध—स्पर्शवत्त्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । यहाँ यह समझ रखना चाहिए कि—विभिन्न द्रव्यों के

संबंधों से गुणों वृक्षत्व से जैसी शीते-गुण-ज्ञान, दर्शन, सुख आने वीर्य आदि से तथा पुद्गलवत्त्व गुण-वर्ण, रस और स्पर्श आदि से उपर जो 'मात्र' शब्दों प्रयोग किये हैं ते पर्यायमा अतिप्रसङ्ग निवारण करने भाटे से अर्थात् गुण केवल द्रव्यमां होय से, पर्यायमां होय नहीं.

द्रव्यमा स्वरूप पर विचार करनेवाली व्याख्या से ही लक्ष्येणो समुदाय का द्रव्य से ही शीते-मूल रस, गंध, आभा आने प्रशान्ता आदिना समूह से वृक्ष से जैसी प्रभावे अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व, प्रवेश्यत्व आदि सामान्य लक्ष्येणो, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्तनाहेतुत्व, वर्ण रस, रस, रस, स्पर्शवत्त्व आदि विशेष लक्ष्येणो समूह से द्रव्य से अर्थात् जो याद प्र का C

लक्षणे समाविष्टमेवेति गुस्तरलक्षणं नावश्यकमिति ज्ञेयम् ।

परमार्थतस्तु पर्याया न गुणतो भिन्नाः कार्यकारणयोरभेदात् । यथा कटककुण्डलादीनि कनकतो न भिन्नानि, घटशरावादीनि मृदो नातिरिक्तानि, तथा गुणजन्मनां पर्यायाणां न भेदो गुणेभ्य इति द्रव्यलक्षणे पर्यायशब्दप्रवेशो नावश्यक इत्यवसेयम् ।

गुणलक्षणम्—

द्रव्यस्याऽऽश्रयाश्रयिभावेन नित्यसहवर्तिनो धर्मा गुणाः, ते द्रव्यस्य शक्तिविशेषाः । द्रव्यमात्राश्रितं गुणस्य लक्षणम् । यथा जीवस्य ज्ञानदर्शन-

कराने के लिये विशेष लक्षण यह बतलाया है—‘गुणपर्यायवद् द्रव्यम्’ यह लक्षण भी प्रकृत लक्षण ‘गुणाश्रयो द्रव्यम्’ में समाविष्ट है, इस लिये उनका बड़ा लक्षण करने की आवश्यकता नहीं है ।

वास्तव में तो पर्याय, गुण से भिन्न नहीं है, क्योंकि कार्य और कारण में भेद नहीं होता । जैसे—कटक, कुण्डल आदि पर्याय सुवर्ण से भिन्न नहीं है, अतः गुणों से उत्पन्न होने वाले गुणों से भिन्न नहीं हैं । ऐसी अवस्था में द्रव्य के लक्षण में पर्याय शब्द डालना आवश्यक नहीं है ।

गुण का लक्षण—

द्रव्य के आश्रय आश्रयी रूपसे, अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपसे नित्य सहवर्ती धर्म, ‘गुण’ कहलाते हैं । ‘गुण’ द्रव्य की शक्तिविशेष है । सिर्फ द्रव्याश्रित होना गुण का

विशेष बोध करावना माटे विशेष लक्षण से भिन्न है—“गुणपर्यायवद् द्रव्यम्” का लक्षण पक्ष प्रकृत (यावद्) लक्षण (गुणाश्रयो द्रव्यम्) भा समाविष्ट है तभी विशेष लक्षण करवानी आवश्यकता नहीं

वास्तवमा तो पर्याय, शुद्धी भिन्न नहीं, कारण है कार्य अने कारणमां बंध नहीं, जेवी रीते कडा अने कुडल आदि पर्याय सुवर्णथी भिन्न नहीं घट अने शंकोर आदि पर्याय मृत्तिका—माटीथी भिन्न नहीं, कारण है शुद्धी उत्पन्न थवा वाण पर्याय, शुद्धी भिन्न नहीं, जेवी अवस्थामा द्रव्यना लक्षणमा पर्याय शब्द नाभवो ते जरूरी नहीं.

शुद्धना लक्षणम्—

द्रव्यना आश्रय—आश्रयी—रूपथी अथवा कथञ्चित् तादात्म्यरूपथी नित्य सहवर्ती धर्म शुद्ध कहेवाय है शुद्ध से द्रव्यनी शक्तिविशेष है मात्र द्रव्याश्रित

सुखवीर्यादयः, पुद्गलस्य वर्णगन्धरसस्पर्शद्वयो गुणा । 'मात्र'—शब्दोपादानं पर्यायेतिप्रसङ्गनिवारणाय ।

द्रव्यस्वरूपविचारेण 'गुणसमुदायो द्रव्य'—मिति प्रतीयते, यथा मूलस्कन्धशास्त्राप्रशास्त्रादीनां समुदायो वृक्षः, तथैवास्तित्व-परिणामित्व-वस्तुत्व - ज्ञेयत्व - प्रमेयत्व - प्रदेशत्वत्वाविसामान्यगुणानां चेतनत्व-गतिहेतुत्व-स्थितिहेतुत्वा - अवकाशदानहेतुत्व - वर्णनाहेतुत्व - वर्ण - गन्ध - रस - स्पर्श-

लक्षण है जैसे-धीव के गुण-ज्ञान, वर्णन, सुख और वीर्य आदि हैं, तथा पुद्गल के गुण वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श आदि हैं । ऊपर जो 'मात्र' (सिर्फ) शब्द का प्रयोग किया गया है, वह पर्याय में अतिप्रसङ्ग निवारण करते के लिए है । क्योंकि गुण केवल द्रव्य में होते हैं, पर्याय में नहीं होते ।

द्रव्य के स्वरूप पर विचार करने से प्रतीत होता है कि गुणोंका समुदाय ही द्रव्य है । जैसे मूल स्कन्ध शास्त्रा और प्रशास्त्रा आदि का समूह ही वृक्ष है, उसी प्रकार अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व, ज्ञेयत्व प्रमेयत्व, प्रदेशत्वत्व आदि सामान्य गुणों का, तथा चेतना, गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व अवकाशदानहेतुत्व वर्णनाहेतुत्व वर्ण-रस-गन्ध-स्पर्शत्व आदि विशेष गुणों का समूह ही द्रव्य है । वही यह स्मरण रखना चाहिए कि-विभिन्न द्रव्यों के

संबन्धों के अन्तर्गत लक्षण हैं जैसी रीति अथवा अथवा-ज्ञान, वर्णन, सुख आने वीर्य आदि हैं तथा पुद्गलका अथवा-वर्ण, गंध, रस आने स्पर्श आदि हैं ऊपर जो 'मात्र' शब्दों प्रयोग किये हैं तो पर्यायमा अतिप्रसङ्ग निवारण करने भाटे हैं क्योंकि अथवा केवल द्रव्योंमा होय हैं पर्यायमा होय नहीं।

द्रव्यका स्वरूप पर विचार कर्वाही कर्वाय हैं के अन्तर्गत समुदाय का द्रव्य हैं के रीति-मूल संबंध, शास्त्रा आने प्रशास्त्रा आदिने समूहों के वृक्ष हैं जो प्रभावे अस्तित्व, परिणामित्व वस्तुत्व ज्ञेयत्व, प्रमेयत्व प्रदेशत्वत्व आदि सामान्य अन्तर्गत, तथा चेतना गतिहेतुत्व, स्थितिहेतुत्व, अवकाशदानहेतुत्व, वर्णनाहेतुत्व, वर्ण, रस, गंध, स्पर्शत्व आदि विशेष अन्तर्गत समूहों के द्रव्य हैं अर्थात् जो भाव प्र का ८

वत्त्वादिविशेषगुणानां च समुदायो द्रव्यम् । एवं 'द्रव्यपर्यायस्वरूपमपी'-स्यनुपदमेव वक्ष्यते ।

पर्यायलक्षणम्—

परियन्ति=उत्पादविनाशौ प्राप्नुवन्ति न सर्वदा तिष्ठन्तीति पर्यायाः । यद्वा-परि=सर्वथा अयन्ते=गच्छन्ति द्रव्यगुणौ समाश्रयन्तीति पर्यायाः ।

द्रव्यस्योत्पादविनाशशालिनो धर्माः पर्यायाः । पर्याया हि द्रव्यं गुणं चाश्रित्य वर्तन्ते । कालभेदादेकमेव ज्ञान जीवस्यान्यदन्यद्रूपं दधत् पर्यायशब्द-वाच्यं भवति, यथा कश्चिदष्टवर्षीयो विनयी प्रमादविकथावर्जितो बालमुनि-गुरुचरणसरोज सेवमानः पूर्वमावश्यकमात्रमधीत्य समितिगुप्तिज्ञानं संपादयति,

विशेष गुणों का समूह नहीं बन सकता है । ऐसे द्रव्य और पर्याय के विषय में भी समझना चाहिए, वह अभी आगे बतायेंगे ।

पर्याय का लक्षण—

जिनके निरन्तर उत्पाद और व्यय होता है, जो सदैव स्थिर नहीं रहते उन्हें पर्याय कहते हैं । अथवा द्रव्य और गुण का आश्रय लेने वाले पर्याय कहलाते हैं ।

द्रव्य के उत्पाद और विनाश-शील धर्म पर्याय कहलाते हैं । पर्याय, द्रव्य में भी रहते हैं और गुण में भी रहते हैं । जीवका एक ही ज्ञानगुण काल के भेदसे भिन्न-भिन्न रूप धारण करता हुआ पर्याय कहलाता है । जैसे एक आठ वर्ष का विनयी प्रमाद और विकथा से दूर रहने वाला बाल मुनि अपने गुरु के चरण कमलों की सेवा करता हुआ

राज्यं ज्ञेयं के विभिन्न द्रव्योना विशेष गुणोना समूहं ज्ञानी शकतो नही ज्ञेयी रीते द्रव्य ज्ञेय पर्यायना विषयमा पण्य समज्यु ज्ञेयं विशेष आगण्यतावीशु

पर्यायुं लक्षणम्—

ज्ञेयी अहर हुमेशा उत्पाद ज्ञेय व्यय तथा करे छे ज्ञेय जे हुमेशा-सहाकाण स्थिर रहेतु नही तेने पर्याय कहे छे, अथवा द्रव्य ज्ञेय गुणोना आश्रय लेनार तेने पर्याय कहेवामा आवे छे

द्रव्योना उत्पाद ज्ञेय विनाश-शील धर्म ते पर्याय कहेवाय छे पर्याय, द्रव्यमा पण्य रहे छे ज्ञेय गुणमा पण्य रहे छे एवमो ज्ञेय ज्ञानगुण कालना ज्ञेयं भिन्न भिन्न रूप धारण करीने पर्याय कहेवाय छे ज्ञेयी रीते के ज्ञेय आठ वर्षना विनयवंत, प्रमाद ज्ञेय विकथाधी हर रहेवावाणा बालमुनि चोताना ज्ञेय अरुण्य

क्रमेण ज्ञादसाङ्गत्वात् विज्ञाय ज्ञानपारां प्रकर्षयति । तत्र तस्य वास्तव्यमितो ज्ञानं यत्किञ्चन विस्मयवतामापद्यमानमपूर्वमपूर्वं ज्ञायमानं ज्ञानं पर्यायशब्दवाच्यतां मज्जति । एवं दर्शनचारिभादीनामपि पर्याया ज्ञातव्याः । जीवस्य मानुषत्ववाच्या दयोऽपि पर्यायाः । पुद्गलस्य तु एकगुणकालस्त्वादयो पर्याया ज्ञेयाः । एवं च द्रव्यगुणाभितत्वं पर्यायस्य सङ्गममिति निश्चीयते । तथा चोक्तमुत्तराध्ययने—(अ २८)

पहले—पहले आचर्यक मात्र का अभ्ययन करता है, फिर समिति और गुप्ति का ज्ञान सम्पादन करता है । तदनन्तर क्रम से ब्रह्मशास्त्र का तथा ज्ञान कर ज्ञान की धारा में वृद्धि करता है, उस बाद मुनि का ज्ञान क्षण-क्षण में विकस्यमान होकर नवीन-नवीन रूपों में उत्पन्न होता हुआ 'पर्याय' शब्द द्वारा कहा जाता है । इसी प्रकार दर्शन और चारित्र आदि गुणों के पर्याय भी समस्त केना आदिप । मनुष्यता वासुकपन आदि जीव के पर्याय हैं और एक-गुण-कक्षपन आदि पुद्गल के वर्ण-गुण के पर्याय हैं । इस प्रकार यह निश्चित होता है कि पर्याय द्रव्य और गुण दोनों में ही रहता है । उत्तराध्ययन सूत्र में कहा है—

“गुणों का जो आश्रय हो उसे द्रव्य कहते हैं, गुण एक मात्र द्रव्य में ही रहते हैं । पर्यायों का सङ्ग उभयाभित होना है, अर्थात् पर्याय, द्रव्य और गुण दोनों में ही पाये जाते हैं” ।

कर्मयोगी सेवा करता है। प्रथम आचर्यक मात्रनु अभ्ययन करे छे पछी समिति जने शुचितनु ज्ञान संपादन करे छे जार पछी कर्मवी ब्राह्मणतु तत्त्व बोधी ज्ञाननी धारणा वृद्धि करे छे; ते जावमुजितु ज्ञान क्षण-क्षणमां विवक्षतु-तरेकवार जनी नवीन ज्ञेयोभा उत्पन्न बाव छे तेन 'पर्याय' शब्दवी ज्ञेयजगत्तमां ज्ञावे छे जे प्रभावे दर्शन जने चारित्र आदि सुखोना पर्याय पक्ष समस्त सेवा बोधके मनुष्यता, जावकपक्ष आदि लवना पर्याय छे, जने जेकसुखकाणापक्ष आदि पुद्गलना वर्णसुखोना पर्याय छे जे प्रभावे जे निश्चित बाव छे ई-पर्याय, द्रव्य जने सुख जे जनेमां रहे छे उत्तराध्ययनसूत्रमां कहू छे—

‘सुखोना जे आश्रय बोध, तेन द्रव्य कहे छे; सुख जेक मात्र द्रव्यमां जे रहे छे, जने पर्यायेनु तस्य उभयाभित बोध छे अर्थात् पर्याय, द्र व जने सुख जनेमां जेवामां ज्ञावे छे’

“ગુણાણમાસજો દ્વં, ઇગદ્વસ્સિયા ગુણા ।

લક્ષણં પન્જવાણં તુ, દુહજો અસ્સિયા ભવે ॥ ૬ ॥” ઇતિ ।

છાયા—

“ગુણાનામાશ્રયો દ્રવ્યમ્, એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણા :

લક્ષણં પર્યવાણાં તુ, ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ” ॥ ૬ ॥ ઇતિ ।

દ્રવ્યલક્ષણે પર્યાયાનુક્ત્યા કાર્યકારણયોરમેદવિવક્ષ્યા પર્યાયાણાં ગુણેષુ સમાવેશ ઇતિ ભગવદમિપ્રાયો ગમ્યતે । “એકદ્રવ્યાશ્રિતા ગુણાઃ” ઇતિ, એકં=કેવલં દ્રવ્યમાશ્રિત્ય ગુણા વર્તન્ત ઇત્યર્થઃ । અનેન ગુણલક્ષણમુક્તમ્ । ‘પર્યવાણાં લક્ષણ તુ ઉભયોરાશ્રિતા ભવેયુઃ’ ઇત્યન્વયઃ । પર્યવઃ, પર્યયઃ, પર્યાયઃ, ઇતિ સમાનાર્થકાઃ । ઉભયોઃ=દ્રવ્યગુણયોરાશ્રિતાઃ પર્યાયાઃ, ઇતિ પર્યાયલક્ષણં વોધ્યમિત્યર્થઃ । પર્યાયાસ્તુ દ્રવ્યં ગુણં ચોભયમાશ્રિત્ય વર્તન્ત ઇતિ ભાવઃ ।

દ્રવ્ય કે લક્ષણ મેં ‘પર્યાય’ પદ કા સમાવેશ ન કરને કે કારણ ભગવાન્ કા અમિપ્રાય યહ હૈ કિ—કાર્ય કારણ કે અમેદસે ગુણ મેં હી પર્યાય કા સમાવેશ હો જાતા હૈ । ‘એગદ્વસ્સિયા ગુણા’ હસ વાક્ય કા અર્થ યહ હૈ કિ—ગુણ કેવલ દ્રવ્ય મેં હી હોતે હૈ । હસ કથનદ્વારા ગુણ કા લક્ષણ ભી કહ દિયા ગયા હૈ ।

પર્યાય કા લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોના હૈ, દોનો મેં અર્થાત દ્રવ્ય મેં ભી ઓર ગુણ મેં ભી પર્યાય રહતે હૈ । પર્યવ, પર્યય ઓર પર્યાય યે સમી સમાનાર્થક હૈ ।

દ્રવ્યના લક્ષણમા ‘પર્યાય’ પદનો સમાવેશ નહિ કરવાથી ભગવાનનો અભિપ્રાય એ છે કે—કાર્ય કારણના અમેદથી ગુણમા જ પર્યાયનો સમાવેશ થઈ નય છે. ‘એગદ્વસ્સિયા ગુણા’ આ વાક્યનો અર્થ એ છે કે—ગુણ કેવલ દ્રવ્યમા જ હોય છે. આ કથનદ્વારા ગુણનું લક્ષણ પણ કહી આપ્યું છે

પર્યાયનું લક્ષણ ઉભયાશ્રિત હોય છે, અનેના અર્થાત દ્રવ્યમા અને ગુણમાં પણ પર્યાય રહે છે પર્યવ, પર્યય અને પર્યાય શબ્દ સમાન અર્થવાળા છે.

द्रव्यविभागः—

द्रव्यं पृथ्विपद्म-धर्माधर्माकाशकाष्ठपुद्गलजीवमेदात् । उक्तञ्च श्रीमद्भगवद्गीता-
मुत्रे—

“इह यं संते ! द्रव्या पण्यचा ?, गोयमा ! छ द्रव्या पण्यचा, सं जहा-
धम्मस्विकाए, अधम्मस्विकाए, आगासस्विकाए, पुग्गलस्विकाए, जीवस्विकाए,
अदासमये” ॥

उत्तराध्यायनसूत्रेऽपि—(अ २८)

“धम्मो अहम्मो आगासं, कासो पुग्गल संतपो ।
एस सोगोपि पमत्तो, निष्सेहिं वरदंसिहिं ॥ ७ ॥

द्रव्य क मेद—

द्रव्य छह प्रकार का है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काष्ठ
(५) पुद्गल और (६) जीव । श्री भगवद्गीता में कहा है—

“भगवान् । द्रव्य कितने कहे गये हैं ! गौतम ! छह द्रव्य कहे गये हैं, वे इस
प्रकार—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशस्तिकाय, पुद्गलस्तिकाय, जीवास्तिकाय और
अदा-समय” ।

उत्तराध्यायनसूत्र में भी कहा है—

“धर्म, अधर्म, आकाश, काष्ठ, पुद्गल, और जीव को सर्वत्र, सक्करीं विन भगवान्
ने लोकसज्ञा दी है ॥ ७ ॥

द्रव्यना मेद—

द्रव्यना छ प्रकार है—(१) धर्म (२) अधर्म (३) आकाश (४) काष्ठ (५)
पुद्गल और (६) एव. श्री भगवद्गीता सूत्रभा वलु कहुं छे—

“अत्रचन । द्रव्य केदवा कथां छे ? गौतम ! छ द्रव्य केदवा छ ते अत्र
प्रभावे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशस्तिकाय पुद्गलस्तिकाय, एवस्तिकाय
अने अदा-समय,”

उत्तराध्यायन सूत्रभां वलु कहुं छे—

“धर्म अधर्म, आकाश काष्ठ, पुद्गल और एवने सर्वत्र सक्करीं विन
अत्रचने लोकसज्ञा आपी छे” ॥ ७ ॥

ધમ્મો અહમ્મો આગાસ, ઢવ્વે ઇચ્છિકામાહિર્યં ।

અંગંતાણિ ય દવ્વાણિ, કાલો પુદ્ગલ જંતમો ॥ ૮ ॥”

અત્ર કાલમાત્રં વિહાય ધર્માદયોઽસ્તિકાયા ઉચ્યન્તે । ‘અસ્તી’ તિ તિહન્ત-
પ્રતિરૂપકમવ્યય પ્રદેશવાચકમ્ । પ્રદેશઃ સ્વસ્થાનાદનપાયિ નિર્વિભાગં સ્વખંડમ્ ।
ઈદં નિર્વિભાગં સ્વખંડં યદા પુદ્ગલસ્ય ગલનસ્વભાવાત્તદીયસ્કન્ધદેશમ્યામવપુત્ય-
પૃથગ્ભૂત્વા વર્તન્તે તદા પરમાણુનામ્ના વ્યવહરિયન્તે । યાવદપૃથગ્ભૂત્વા વર્તન્તે
તાવત્તદેવ નિર્વિભાગં સ્વખંડ પ્રદેશ ઇત્યુચ્યન્તે । અનંનૈવાશયેન પુદ્ગલાસ્તિકાયસ્ય
ચત્વારો ભેદા મગવતા કથિતાઃ-સ્કન્ધઃ, દેશઃ, પ્રદેશઃ, પરમાણુથેતિ । કાયઃ-

ધર્મ, અધર્મ ઓર આકાશ, યે ત્રીન દ્રવ્ય ઇક ઇક હૈ, કાલ, પુદ્ગલ, જીવ, અનન્ત
અનન્ત દ્રવ્ય હૈ” ॥ ૮ ॥

કાલ કો છોડ કર શેષ પાંચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહલાતે હૈ । ‘અસ્તિ’ યહ તિહન્તરૂપ
પ્રતીત હોને વાલા ઇક અવ્યય હૈ ઓર પ્રદેશ કા વાચક હૈ । જો અપને સ્થાન સે ચ્યુત ન
હોને વાલા, અર્થાત્ જો દ્રવ્ય કે સાથ હી જુડા હુઆ નિર્વિભાગ-જિસ કા ફિર વિભાગ ન હો
સકે વહ સ્વખંડ, પ્રદેશ કહલાતા હૈ । પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાલા હૈ અત ઇવ જમ્ યહ
નિર્વિભાગ સ્વખંડ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ સે વિહ્યુદ કર અલગ હો જાતા હૈ તમ્ વહી સ્વખંડ
પરમાણુ કહલાતા હૈ । જમ્ વહી પરમાણુ પુદ્ગલ કે સ્કન્ધ યા દેશ મેં ફિર મિલજાતા હૈ તમ્

ધર્મ અધર્મ અને આકાશ આ ત્રણુ દ્રવ્ય એક-એક છે, કાલ, પુદ્ગલ અને
જીવ અનન્ત-અનન્ત દ્રવ્ય છે ” ॥ ૮ ॥

કાલ સિવાયના બાકીના પાચ દ્રવ્ય અસ્તિકાય કહેવાય છે ‘અસ્તિ’ એ
તિહન્ત રૂપ જણાતુ એક અવ્યય છે, અને પ્રદેશતુ વાચક છે જે પોતાના સ્થાનથી
ચ્યુત નહિ થવા વાળા, અર્થાત્ દ્રવ્યની સાથે જ બેઠાઈ રહેલા નિર્વિભાગ-જેનો ફરી
ભાગ ન થઈ શકે તે ખંડ, પ્રદેશ કહેવાય છે પુદ્ગલ ગલનસ્વભાવ વાળા છે,
તે કારણે જ્યારે તે નિર્વિભાગ ખંડ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા દેશથી છુટા થઈ જાય
છે, ત્યારે તે ખંડ પરમાણુ કહેવાય છે જ્યારે તે પરમાણુ પુદ્ગલના સ્કન્ધ અથવા
દેશમાં ફરીને મળી જાય છે ત્યારે તે પરમાણુના બદલે ફરી પ્રદેશ કહેવાય છે.

समूहः । अस्ति=प्रदेशानां कायः=समूहो यत्र यस्य वा स अस्तिकायाः, प्रदेशसमूहवान्, पर्यभासावस्तिकायमेति पर्यास्तिकायः । एवं च पर्यास्तिकायाः, अधर्मास्तिकायाः, आकाशास्तिकायाः, पुद्गलास्तिकायाः, जीवास्तिकायाः, इति नामानि सन्ति तेषाम् । कास्त्वु प्रदेशभासावस्तिकायो न भवतीत्यतः काकाः कालास्तिकाय छन्देन न व्यनश्चियते ।

पर्यास्तिकायसमूहम्—

स्वभावतो गतिपरिणामिनां जीवपुद्गलानां गति मति सहकारी कारणं पर्यास्तिकायाः । जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतो गच्छन्ति, तत्रोपपत्तानकारणस्वस्यास्ते च परमाणु के बड़े निर प्रदेश कहलाने स्मता है, इसी अभिप्राय से भगवान् ने पुद्गलास्तिकाय के चार भेद कहे हैं (१) स्थान (२) देश (३) प्रदेश और (४) परमाणु ।

क्रम का अर्थ है समूह । जिसमें वा जिसके प्रदेशों का समूह है वह अस्तिकाय कहलाता है । अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशों का समूहवाला । पर्यास्तिकाय पर्यास्तिकाय समझना चाहिए । इसी प्रकार अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और जीवास्तिकाय, ये अस्तिकायों के नाम हैं । काकात्म्य प्रदेशों का समूहरूप न होने के कारण अस्तिकाय नहीं है अतः काक 'काकास्तिकाय' नहीं कहलाता है ।

पर्यास्तिकायका सङ्ख्यम्—

स्वभाव से वा प्रयोग से गतिविधामें परिणत हुए जीव और पुद्गलों की गति में जो सहकारी कारण हो उसे पर्यास्तिकाय कहते हैं । जीवा और पुद्गलों का गमन करना स्वभाव ही है ।

आ अभिप्राये लजवाने पुद्गलास्तिकायना चार भेद कहे हैं (१) स्थान (२) देश, (३) प्रदेश अने (४) परमाणु ।

अथवा अर्थ है—समूह, जेमां अथवा जेनां प्रदेशेना समूह कहे ते अस्तिकाय कहेवाय से, अस्तिकाय अर्थात् प्रदेशेना समूह वाणा पर्यास्तिकाय पर्यास्तिकाय समन्वेना जेठके जेठ प्रभासे अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय अने जीवास्तिकाय से अस्तिकायोंना नाम से ।

आकाश-प्रदेशेना समूहेत्येव नदि कहेवाकी अस्तिकाय नहीं तेथी अतः जे 'आकाशिकाय' कहेवाय नदि ।

पर्यास्तिकायसु सङ्ख्यम्—

स्वभावकी अथवा प्रयोगकी गतिविधामें परिणत कहेवा अने अने पुद्गलोंकी गतिमां जे सहकारी कारण कहे तेने पर्यास्तिकाय कहे से अथवा अने

ગતિ પ્રતિ, પુનસ્તસ્યામેવ ગતિ-ક્રિયાયાં ધર્માસ્તિકાયઃ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં ભવતિ ।

(૧) યથા સરિત્સમુદ્રાદ્યવગાહનશીલાનાં મત્સ્યાનાં સ્વત એવ જિગમિવા ગતિશ્ચ જાયતે, તત્ર તેપાં ગમનં પ્રતિ સહાયરૂપં નિમિત્તકારણં વારિ । સ્વયં તિષ્ઠતાં તુ મત્સ્યાનાં ન તત્ પ્રેરકં ગમનાય ।

(૨) યથા વા મૃત્પરિણામભૂતસ્ય ઘટસ્ય ઢણ્ડો નિમિત્તકારણમ્ ।

(૩) યથા વા સ્વત એવાવગાહમાનસ્ય દ્રવ્યસ્યાવગાહનં પ્રતિ ગમનમ્, ન પુનરવગાહમાનં દ્રવ્યં વલાદવગાહયતિ તત્ ।

હસ ગમનક્રિયા મેં ઉપાદાન કારણ વહ સ્વયં હી હોતે હૈ, ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોને સે નિમિત્ત કારણ હૈ ।

(૧) જૈસે—નદી અથવા સમુદ્રમેં અવગાહન કરનેવાલે મચ્છો મે ગમન કરને કી ઇચ્છા સ્વય હી ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઓર સ્વય હી વે ગતિ કરતે હૈં, જલ ઉન કી ગતિ મેં સહાયક રૂપ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ । હૈં, મચ્છ અગર ઠહરે તો જલ ઉન્હેં ગમન કરને કે સ્થિતે પ્રેરિત નહીં કરતા ।

(૨) અથવા જૈસે—મૃત્તિકા સે વનને વાલે ઘડે મે ડડા નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

(૩) અથવા જૈસે—સ્વય હી અવગાહન કરને વાલે દ્રવ્ય કી અવગાહના મેં આકાશ નિમિત્ત કારણ હોતા હૈ ।

પુદ્ગલોનો ગમન કરવુ તે સ્વભાવ જ છે, એ ગમન-ક્રિયામા ઉપાદાન કારણુ તે પોતે જ હોય છે, ધર્માસ્તિકાય સહાયકમાત્ર હોવાથી તે નિમિત્ત કારણુ છે

(૧) જેવી રીતે નદી અથવા સમુદ્રમા અવગાહન કરવાવાળા મચ્છોમા ગમન કરવાની પોતાની જ ઇચ્છા ઉત્પન્ન થાય છે, અને પોતે જ તે ગતિ કરે છે, પરંતુ જલ તેની ગતિમા સહાયરૂપ નિમિત્ત કારણુ થાય છે પરંતુ મચ્છ જે સ્થિર રહેવાની ઇચ્છા કરે તો જલ તેને ગમન કરવા માટે પ્રેરણુ કરતુ નથી

(૨) અથવા જેવી રીતે—માટીથી તૈયાર થતા ઘડામાં ડુંડો અને ચાક નિમિત્ત કારણુ હોય છે.

(૩) અથવા જેવી રીતે—પોતે જ અવગાહન કરનારા દ્રવ્યના અવગાહનમા આકાશ નિમિત્ત કારણુ હોય છે

(४) यथा वा—जलबुष्टौ सत्यां स्वयमेव कृपिकर्मारम्भं कुर्वतां कृपीवसानां कृपिकर्मारम्भे प्रति बुष्टि सहकारि कारणं भवति ।

(५) अपरोऽपि शास्त्रीयो दृष्टान्तो दृष्टियथमवतरति, यथा—‘सिद्धस्वरूपोऽहम्, अनन्तसुखमामनोऽहम्’ इत्यादिभावनाया व्यवहारनयन शुद्धसिद्धस्वरूप ध्यानकर्तृणां, निश्चयनयनेन निर्विकल्पध्यानपरिणामिनां स्वयं तदुपादानकारणस्वरूपाणां मध्यानां स्वयमेव ज्ञायमानां सिद्धगतिं प्रति प्रेरणारहितो निष्क्रियो मूर्तिरहितोऽपि सिद्धमगवान् सहायकः सन् सहकारि कारणं भवति, तद्बद्धमूर्तो निष्क्रियः प्रेरणारहितश्च धर्मास्तिकायो जीवानां पुद्गलानां च गतिरूपे परिणामे सहायकः सन्निमित्तकारणं भवति ।

(४) अथवा बैसे—अन्न की वर्षा होने पर स्वयं ही कृषिकार्यं आरम्भ करने वाले किसानों के कृषिकार्य के आरम्भमें बुष्टि सहकारी कारण होती है ।

(५) एक शास्त्रीय दृष्टान्त और भी दृष्टिगोचर होता है—श्री सिद्धस्वरूप हूँ, मैं अमृत सुख का भाजन हूँ । इस प्रकार की भावनापूर्वक व्यवहार नय से शुद्ध सिद्ध परमात्मा का ध्यान करने वालों को, और निश्चय नय से निर्विकल्प ध्यान में परिणत होने वालों को जो सिद्धगति की प्राप्ति होती है उस में उपादान कारण स्वयं ध्यान करने वाला मध्यमा है, और प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक होते हुए भी सिद्ध मगवान् उसमें सहायक होने से निमित्त कारण हो जाते हैं । इसी प्रकार अमूर्तिक निष्क्रिय और प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय भी जीव और पुद्गल के गतिरूप परिणाम में सहायक होता हुआ निमित्त कारण होता है ।

(४) अथवा जेची रीते पावुी वरसवाधी जेदुत पीते अ जेतीना कामने आरल करे ते जेतीने आरल करवावाण्य जेदुतेना जेती कार्यना आरलकामां वृष्टि (वसवा) अक्षरी कारण होय ते

(५) जेक शास्त्रीय दृष्टान्त जीवु पणु दृष्टिगोचर थाय ते —
 “हुं सिद्ध स्वरूप हूँ हुं अनन्त सुखानु भाजन-पान हूँ आ प्रकाशी भावनापूर्वक व्यवहार नयधी शुद्ध सिद्ध अजवान-परमात्मानु ध्यान करवावाण्य अने निश्चयनयधी निर्विकल्प ध्यानमां परिणत तथा वाणाने जे सिद्ध-गति प्राप्त थाय ते तेमां उपादान कारण ध्यान करवावाण्य पीते अम्यात्मा ते अने प्रेरणारहित निष्क्रिय तथा अमूर्तिक होवा छतां पणु सिद्ध अजवान नेमा सहायक होवाधी निमित्त कारण बर्य थाय ते

जे प्रभावे अमूर्तिक निष्क्रिय अने प्रेरणारहित धर्मास्तिकाय पणु एण अने पुद्गलानां गतिरूप परिणाममा सहायक होवाधी निमित्त कारण ते

ननु धर्मास्तिकायस्य दण्डादिवन्निमित्तकारणता नोपपद्यते, सव्यापारं हि कारणं भवति, निर्व्यापारस्य कारणत्वे युक्त्यभावादिति चेन्न,

धर्मास्तिकायस्य हि स्वाभाविकव्यापारसत्त्वात् कारणत्व मूपपादम् । उक्तं च धर्मास्तिकायलक्षणं भगवता—

“ गडलक्खवणो उ धम्मो ” इति,

‘ गतिलक्षणस्तु धर्मः ’ इति श्लाया । (उत्तराध्ययनमंत्रे २८ अ.) गतिकार्यानुमेयो धर्मास्तिकाय इति भावः ।

शङ्का—धर्मास्तिकाय उदा आदि के समान निमित्त कारण नहा हो सकता, क्योंकि वह व्यापार नहीं करता, कार्य की उत्पत्ति में व्यापार करने वाला ही कारण होता है । कार्य की उत्पत्ति में व्यापार न करने पर भी अगर किसी को कारण मान लिया जाय तो चाहे जो वस्तु चाहे जिस कार्य में कारण हो जायगी । ऐसी दशा में नियत कार्य—कारण भाव का अभाव हो जायगा ।

समाधान—यह शङ्का ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ हेतु असिद्ध है । गतिरूप कार्य में धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं है, किन्तु धर्मास्तिकायका स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होने के कारण उसे कारण मानना युक्तिसङ्गत है । भगवान् ने धर्मास्तिकायका लक्षण इस प्रकार बतलाया है—

“ गडलक्खवणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गति लक्षण वाला है । (उत्तराध्ययनमंत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप कार्य से धर्मास्तिकायका अनुमान होता है ।

शङ्का—धर्मास्तिकाय उदा आदि प्रमाणे निमित्त कारण थर्ष शक्तु नथी, केभडे ते व्यापार क्तु नथी, धर्मनी उत्पत्तिमा व्यापार क्तुनार न् कारण होय छे धर्मनी उत्पत्तिमा व्यापार नहि उरवा छता य जे क्कधने क्तुण् मानवामा आवथे तो गमे ते वस्तु गमे ते धर्ममा क्तुण् थर्ष न्थे. जेवी दशामा नियत धर्म कारण भावनेो अभाव थर्ष न्थे

समाधान—आ शङ्का ठीक नहीं, कारण के अहि हेतु असिद्ध छे गतिरूप धर्ममा धर्मास्तिकाय व्यापाररहित नहीं, धर्मास्तिकायनेो स्वाभाविक व्यापार विद्यमान होवार्थी तेने कारण मानवु ते युक्तिसङ्गत छे भगवाने धर्मास्तिकायनु लक्षण आ प्रमाणे बताव्यु छे—

“ गडलक्खवणो उ धम्मो ” धर्मास्तिकाय गतिलक्षणवाणु छे (उत्तराध्ययन मंत्र अ० २८) अर्थात् गतिरूप धर्मधी धर्मास्तिकायनु अनुमान थाय छे.

अस्य-(१) अरूपित्वम्, (२) अचेतनत्वम्, (३) अक्रियत्वम्, (४) गति-
सहायकत्वं चेति गुणा । (१) स्कन्ध, (२) देश, (३) प्रदेशः, (४) अगुण्यधुत्वं
चेति पर्याया । अयं द्रव्यक्षेत्रकालमात्रगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञाप्यते, यथा-द्रव्यत एको
धर्मास्तिकाय, क्षेत्रतो लोकप्रमाण, कालत भास्वरहितः भावतो रूपरहितः-
बभैगन्धरसस्पर्शधर्मित इति । गुणतमलनसुख ।

अधर्मास्तिकायस्वरूपम्—

स्वभावतः स्थितिपरिणतानां श्रीषुद्रत्वानां स्थितिं प्रति सहकारि कारणत्वम
धर्मास्तिकायस्य सङ्गणम् ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व ये धर्मास्तिकाय
के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुण्यधुत्व य उसके पर्याय
हैं । धर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र काल मात्र और गुण इस तरह पांच धर्मों से बना जाता है ।
भेदे-द्रव्य से धर्मास्तिकाय एक है, क्षेत्रसे लोकप्रमाण है, कालसे भास्वरहित है,
भावसे रूपादिरहित है-रूप रस गन्ध स्पर्श उस में नहीं है, और गुण से पञ्च-गुण
बना है ।

अधर्मास्तिकायका स्वरूप—

स्वभाव से स्थितिरूप परिणत हुए श्रीषु और पुद्गलकी स्थिति में सहकारी हाना
अधर्मास्तिकायका सङ्गण है ।

(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) गतिसहायकत्व. के सर्व
धर्मास्तिकायका सुखो है (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश और (४) अगुण्यधुत्व, के
तेना पर्याय है धर्मास्तिकाय-द्रव्य, क्षेत्र काल, भाव और गुण, के पांच लोकोपाय
आयी शक्या है जेवी रीते-द्रव्यका धर्मास्तिकाय अके है क्षेत्रकी लोकप्रमाण्य है
कालकी भास्वरहित अन्त रहित है भावकी रूपादिरहित है-रूप-रस-गन्ध-स्पर्श
तेमां नहीं, और गुणकी पञ्चन-सुखवाणा है

अधर्मास्तिकायतुं स्वरूप—

स्वभावकी स्थितिरूप परिणत बनेला लोको और पुद्गलकी स्थितिमां सहकारी
धनुं ते अधर्मास्तिकायतुं लक्षण है.

जीवाः पुद्गलाश्च स्वभावतः स्वयं तिष्ठन्ति, तत्रोपादानकारणस्वरूपास्ते स्थितिं प्रति, पुनस्तस्यामेव स्थितिक्रियायामधर्मास्तिकायः सहायरूपं निमित्तकारणं भवति ।

(१) यथा—स्वयं तिष्ठता पथिकानां स्थितौ छाया सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठतस्तु स्थातुं न पुनः सा प्रेरयति ।

(२) यथा वा स्वयं तिष्ठतो देवदत्तस्य स्थितिं प्रति पृथिवी सहकारि कारणं भवति । अतिष्ठन्तं तु देवदत्तं न पृथिवी स्थापयति ।

(३) यथा-समितिगुप्तिधारिणो रत्नत्रयाराधिनः समरसकन्दा समाहितमतयो महात्मानो निश्चयनयेन निजात्मस्वरूपं चिन्तयन्तः क्षपकश्रणिं समारुह्य समुत्पन्न-

जीव और पुद्गल जब स्वभाव से ही स्थित होते हैं, अपनी स्थिति में उपादान कारण तो स्वयं वही है, पर अधर्मास्तिकाय उस में सहायक होता है, अतः वह निमित्त कारण है ।

(१) जैसे—स्वयं ठरने वाले पथिकों की स्थिति में छाया सहकारी कारण होती है । अगर कोई न ठहरें तो वह ठहरने की प्रेरणा नहीं करती ।

(२) अथवा जैसे—स्वयं ठहरने वाले देवदत्त की स्थिति में पृथिवी सहकारी कारण है । मगर देवदत्त को न ठहरना हो तो पृथ्वी ज्वरदस्ती नहीं ठहराती ।

(३) अथवा जैसे—समिति गुप्तिके धारक, रत्नत्रय की आराधना करने वाले, समभाव के रस में निमग्न समाधियुक्त मति वाले महात्मा निश्चय नय से आत्मस्वरूपका चिन्तन करते

एव अने पुद्गल न्यारे स्वभावથી જ स्थित થાય છે તો પોતાની स्थितिમાં उपादान कारण तो पोते જ છે, परन्तु अधर्मास्तिकाय तेमा सहायक धाय છે, તેથી ते निमित्त कारण છે

(१) જેવી રીતે—પોતે ઉભા રહેવા વાળા મુસાફરોની स्थितिમાં छाया सहकारी कारण डोय છે अगर कोय उभा न रहे तो ते उभा रહેवानी प्रेरणा नथी करती

(२) अथवा—जैसे-रीते पोते જ ઉભા ન રહેવા વાળા દેવદત્તની स्थितिમાં पृथ्वी सहकारी कारण છે, परन्तु જે દેવદત્તને ઉભા ન રહેવું હોય તો પृથ્વી દેવદત્તને બળબળરીથી ઉભો રાખી શકતી નથી

(૩) અથવા—જેવી રીતે સમિતિ—ગુપ્તિના ધારક, રત્નત્રયની આરાધના કરવા-વાળા, સમભાવના રસમાં નિમગ્ન, સમાધિયુક્ત મતિવાળા મહાત્મા નિશ્ચયનથી

केवलज्ञान-केवलदर्शनमृतः सन्त* सकलकर्मसयं कृत्वा, शरीरमौदारिकमिह परि-
त्यज्य, सिद्धिगतिनामन्त्रेय स्थानं गतास्तिष्ठन्ति तेषां निश्चयनयेन स्वतः स्थिति
परिणतानां तत्र साध्यपर्यवसितां स्थितिं प्रति तस्स्थानं सहकारि कारणं भवति । न तु
तद् स्थानं तानवस्थातुं प्रेरयति ।

(४) यथा व्यवहारनयन सिद्धमक्त्या स्वयं समुत्पन्नसविकल्पध्यानावस्थितानां
महात्मनां सविकल्पध्याने स्थितिं प्रति, निष्क्रियो मूर्च्छिरहितः प्रेरणारहितोऽपि
सिद्धमगवान् सहायः सन् सहकारि कारणं भवति । न त्वसौ तान् सदधाने स्वातु प्रेरयति ।

हुप क्षयक्षेत्री पर आरुह हो कर उपम केवलज्ञान और केवलज्ञान को धारण करने
वाले हो कर समस्त कर्मों का क्षय करके औदारिक शरीर को यही त्याग कर सिद्धिगति
नामक स्थान को प्राप्त हो कर स्थिर हो जात है । निश्चयनयन से स्वयं स्थिति में परिणत
हुप उन सिद्ध जीवां को सन्नि-भनन्त स्थिति में वह स्थान सहकारी कारण होता है,
किन्तु वह स्वयं उन्हें उत्थान के लिए प्रेरित नहीं करता ।

(५) अथवा जैसे-व्यवहारमय से सिद्ध भगवान की भक्तिसे स्वयं उपम हुप
सविकल्प ध्यान में अवस्थित महात्मा पुरुषों की सविकल्प में जो स्थिति है, उस में अक्रिय
अमूर्तिक और प्रेरणारहित भी सिद्ध भगवान् सहायक होने से निमित्त कारण होते हैं किन्तु
वे उन्हें ध्यान में स्थित होने की प्रेरणा नहीं करते ।

आत्मरूपरूपतु स्थितन इत्या अथा क्षयक्षेत्री पर आरुह यद्यने उत्पन्न केवलज्ञान
जने केवलदर्शनने आरुह इत्या वाणा यद्यने अमस्त इमाने क्षय इरीने औदारिक
शरीरने आदि व त्याग इरीने सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त यद्य स्थिर यद्य
अथ छे निश्चयनयधी स्वय स्थितिमा परिणत यथेवा ते सिद्ध एवानी आदि
अनत स्थितिमा ते स्थान सहकारी कारण कोष छे परतु ते स्थान तेने अथवा
भा प्रेरणु नहीं इरतु

(६) अथवा-जैसी हीते व्यवहारमयधी सिद्ध भगवाननी भक्तिधी स्वय उत्पन्न
यथेवा अविच्छेद ध्यानमा अवस्थित महात्मा पुरुषोंने सविकल्प ध्यानमां जो स्थिति
छे तेमां निमित्त, अमूर्तिक जने प्रेरणारहित सिद्ध भगवान सहायक कोनाधी
निमित्त कारण कोष छे परतु सिद्ध भगवान तेने ध्यानमां स्थित यथानी प्रेरणा
इत्या नहीं.

इदमेवाभिप्रेत्य भगवताऽभिहितम्—

“अहम्मो ठाणलक्खणो” इति (उत्तरा. अ. २८)

‘अधर्मः स्थानलक्षणः’ इति च्छाया । लक्ष्यते=दृश्यते परिचीयते अनेनेति लक्षण=परिचायक ज्ञापकम् । स्थानं=स्थितिरेव लक्षण=ज्ञापकं यस्याऽसाविति स्थानलक्षणः । स्थितिकार्यानुमेयोऽधर्मास्तिकाय इत्याशयः ।

अधर्मास्तिकायस्य—(१) अरूपित्वम् , (२) अचेतनत्वम् , (३) अक्रियत्वम् , (४) स्थितिसहायकत्वमिति गुणाः ।

(१) स्कन्धः, (२) देशः, (३) प्रदेशः, (४) अगुरुलघुत्व चेति पर्यायाः ।

इसी अभिप्राय से भगवान ने कहा—“अहम्मो ठाणलक्खणो” अधर्मास्तिकाय स्थिति लक्षण वाला है । (उत्तरा० अ० २८) जिस के द्वारा कोई वस्तु लखा जाय (देखी जाय) या जो, वस्तु का परिचायक (परिचय कराने वाला) हो वह लक्षण कहलाता है । स्थान अर्थात् स्थिति ही जिस का लक्षण है, अर्थात् स्थितिरूप कार्य से जिस का अनुमान होता है उसे अधर्मास्तिकाय कहते हैं ।

अधर्मास्तिकाय के गुण—(१) अरूपित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व और स्थितिसहायकत्व हैं । (१) स्कन्ध, (२) देश (३) प्रदेश, और (४) अगुरुलघुत्व, अधर्मास्तिकाय के पर्याय हैं ।

એ અભિપ્રાયથી ભગવાને કહ્યું છે કે—“અહમ્મો ઠાણલક્ખણો” અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિ લક્ષણ વાળા છે (ઉત્તરાધ્યયન અ ૨૮)

જેના દ્વારા કોઈ વસ્તુ લખી શકાય (દેખી શકાય) અથવા જે વસ્તુને પરિચય કરાવનાર હોય તે લક્ષણ કહેવાય છે સ્થાન અર્થાત્ સ્થિતિ જ જેનું લક્ષણ છે અર્થાત્ સ્થિતિરૂપ કાર્યથી જેનું અનુમાન થાય છે, તેને અધર્માસ્તિકાય કહે છે

અધર્માસ્તિકાયાના ગુણ—(૧) અરૂપિત્વ (૨) અચેતનત્વ (૩) અક્રિયત્વ અને (૪) સ્થિતિસહાયકત્વ છે

(૧) સ્કન્ધ, (૨) દેશ, (૩) પ્રદેશ, અને (૪) અગુરુલઘુત્વ, એ અધર્માસ્તિકાયાના પર્યાય છે

अयं द्रव्यक्षेत्रकालमाद्यगुणभेदेन पञ्चधा ज्ञायते, यथा—अधर्मास्तिकायो द्रव्यत एकः, क्षेत्रतो लोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहितः, मात्रतो स्पर्शरहितः—धर्म-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति, गुणत स्थितिगुण ।

ननु धर्माधर्मलक्षणान्यां पुण्यपापरूपौ धुमाधुमफलद्वौ धर्माधर्मौ कथं नात्र श्लेषे ? इति चेत्, उच्यते—तयोर्गुणत्वेन द्रव्यप्रकरणे समावेशासंभवात् । किञ्च तौ धर्माधर्मौ पुण्यपापरूपौ पुद्गलत्वेनाभिमतौ पुद्गलद्रव्यान्तर्भूतौ, एतत्त्वयोर्न धर्माधर्मौ स्तिकायमन्थे समावेशः ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, मात्र और गुण के भेदसे पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—अधर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है, क्षेत्र से लोकप्रमाण है, काल से आदि-अन्त रहित है, मात्रसे अरूपी अर्थात् रूप, रस गन्ध और स्पर्श से रहित है, और गुण से स्थितिगुण वास्तव है ।

उत्तर—धर्म शब्द से धुम फल देने वाले पुण्य का और अधर्म शब्द से अधुम फल देने वाले पाप का प्रमाण क्यों नहीं किया गया ?

समाधान—पुण्य और पाप द्रव्य नहीं, गुण हैं, इसी लिये इनका द्रव्यके प्रकरण में समावेश नहीं हो सकता । अथवा पुण्य—पाप रूप धर्म और अधर्म पुद्गल हैं अतः उनका समावेश पुद्गल में ही हो जाता है । अधर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में उन्हें वर्जित नहीं किया जा सकता ।

अधर्मास्तिकाय द्रव्य, क्षेत्र, काल, मात्र और गुणत्व से ही प्रत्येक प्रकार के अर्थात् शक्य है अन्तः—अधर्मास्तिकाय द्रव्यकी अन्तः से क्षेत्रकी लोकप्रमाण्य है कालकी आदि-अन्त रहित है मात्रकी अरूपी अर्थात् रूप रस गन्ध और स्पर्शकी रहित है अने गुणकी स्थितिगुणत्व है

शंका—धर्म शब्दकी शुरु शब्द व्यापकता वाग्या पुण्य अने अधर्म शब्दकी अशुरु शब्द व्यापकता वाग्या पापानु अक्षय या भटे कर्वाभा व्यापकता नहीं ?

समाधान—पुण्य अने पाप, द्रव्य नहीं, गुण है अने वा भटे द्रव्यता प्रकृत्यभा तेना समावेश नहीं शक्यता नहीं अथवा पुण्य-पापरूप धर्म अने अधर्म पुद्गलरूप है तेनी तेना समावेश पुद्गलभा न शर्त जाय है अधर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकायभा तेना अन्तित नहीं करी शक्यता

અથાકાશસ્વરૂપમ્—

આ-સમન્તાત્ કાશતે=અવગાહદાનેન પ્રતિભાસતે इत्याकाशम्, યદ્વા-આકા-
શન્તે=દીપ્યન્તે ધર્માધર્મકાલપુદ્ગલજીવાઃ સ્વસ્વરૂપેણ યત્ર તત્ ।

ધર્માધર્માદિસર્વદ્રવ્યાણામાધારતયાજ્વકાશં દદાતીત્યવકાશદાયિત્વં લક્ષણમા-
કાશાસ્તિકાયસ્ય । અત્રાવકાશદાયિત્વં વ્યવહારનયેનોપચારિમ્ । અસ્તિકાયશબ્દઃ
પ્રાગ્ વ્યાખ્યાતઃ । ઉક્તં ચોત્તરાધ્યયનમૃત્રે (૨૮ અધ્યયને)—

“ માયણ સન્વદન્વાણ, નહં ઓગાહલક્ષણમ્ । ” ઇતિ ।

આકાશકા સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દ મે ‘આ’ ઓર ‘કાશ’ દો હિસ્સે હૈં । ‘આ’ કા અર્થ હૈ—સમી ઓર
સે—સર્વત્ર, ઓર ‘કાશ’ કા અર્થ હૈ—પ્રકાશિત હોને વાલા । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ અપને
અવગાહદાનનામક ગુણસે સર્વત્ર પ્રભાસિત હોતા હૈ, વહ આકાશ હૈ । અથવા જહાં ધર્મ,
અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ ઓર જીવ અપને—અપને સ્વરૂપ સે પ્રકાશિત હોતે હૈં ઉસે આકાશ
કહતે હૈ ।

ધર્મ, અધર્મ, આદિ સમસ્ત દ્રવ્યો કા આધાર હોકર જો ઉન્હે આશ્રય દેતા હૈ, વહી
આકાશ હૈ । અવકાશ દેને વાલા હી આકાશ કહલાતા હૈ । યહાં ‘અવકાશ દેના’ આકાશ
કા જો લક્ષણ વતલાયા ગયા હૈ, વહ વ્યવહારનયસે ઉપચરિત કથન હૈ । ‘અસ્તિકાય’
શબ્દ કી વ્યાખ્યા પહેલે હી કી જા ચુકી હૈ । ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ૦ ૨૮) મેં કહા હૈ —
“માયણં સન્વદન્વાણં નહં ઓગાહલક્ષણ” ઇતિ ।

આકાશનુ સ્વરૂપ—

‘આકાશ’ શબ્દમા ‘આ’ અને ‘કાશ’ જે ભાગ છે ‘આ’ નો અર્થ છે—ચારેય
કેરથી—સર્વત્ર, અને ‘કાશ’નો અર્થ છે પ્રકાશિત થવા વાળા, તાત્પર્ય એ છે કે-
પોતાના અવગાહદાન (અવકાશ આપવો) નામના શુભૃથી જે સર્વત્ર પ્રતિભાસિત
હોય છે તે આકાશ છે, અથવા ન્યા ધર્મ, અધર્મ, કાલ, પુદ્ગલ અને છવ
પોતપોતાના સ્વરૂપથી પ્રકાશિત હોય છે—પ્રતીત થાય છે તેને આકાશ કહે છે

ધર્મ, અધર્મ આદિ તમામ દ્રવ્યોનો આધાર બની જે તેને આશ્રય આપે છે
તે આકાશ છે અવકાશ આપનાર જે આકાશ કહેવાય છે અવકાશ આપવો તે
આકાશનુ લક્ષણ બતાવવામા આવ્યુ છે, તે વ્યવહારનયથી ઉપચારરૂપ કથન છે
‘અસ્તિકાય’ શબ્દની વ્યાખ્યા પ્રથમ જે કહી દીધી છે, ઉત્તરાધ્યયન સૂત્ર (અ.૨૮)મા
કહ્યુ છે કે— “માયણ સન્વદન્વાણં નહં ઓગાહલક્ષણ” ઇતિ.

‘भासनं सर्वद्रव्याणां, नमोऽवगाहलक्षणम्’ । इति च्छाया ।

सर्वद्रव्याणां भासनम् = आधारः, इति हेतुगर्भविशेषणम् । यतः सर्वद्रव्याणां भासनम्, अतः अवगाहस्वरूपं नम इति भावः ।

धर्माधर्मकालानामन्तः समावेशेन नीचपुत्रलानामौपचारिकसंयोगविभागान्यां चावगाहः । अवगाह तत्त्वैस्त्वस्योपाधिभेदादवगाहस्य नानात्वेन संयोगविभागव्यपगतौ ।

अवगाहोऽवकाशः, स एव स्वरूपं=ज्ञापकं यस्य तद् अवगाहस्वरूपं नमः=आकाशं कल्प्यते, इत्यर्थः । अवगाहदानकार्यानुमेयमाकाशमित्याशयः ।

धर्माधर्मादिद्रव्याणामाधारान्यथाऽनुपपत्तेराश्रयमस्तीति निःशङ्कं विश्व-

‘आकाश’ सब द्रव्यों का आधार है । सारांश यह है कि आकाश सब द्रव्यों का आधार होनेसे अवगाह-स्वरूप वाक्य है ।

‘धर्मस्तिक्राम’ ‘आधर्मस्तिक्राम’ और काल का आकाश में ही समावेश होने से नीच और पुत्रला के औपचारिक संयोग और विभाग के द्वारा अवगाह होता है । अवगाह होने पर देश के मध्य से अवगाह भी भिन्न हो जाता है और संयोग तथा विभाग उत्पन्न होते हैं ।

तत्पर्यं यह है कि—अवगाह वा अवकाश ही जिस का स्वरूप है, अर्थात् अवगाह से जिस का अनुमान होता है वह द्रव्य आकाश है ।

आकाश न होता तो धर्म अधर्म आदि द्रव्यों की स्थिति कहाँ होती ? अर्थात् उनका कोई आधार ही नहीं रहता अतः एव आकाश का अस्तित्व किसी प्रकार की शङ्का किये

आकाश सर्वद्रव्येभ्यो आधारः अत्रांशे ज्ञेये अत्रांशे सर्वद्रव्येभ्यो आधारः कोणाधी अवगाहकं लक्षणव्यस्तु अत्रे

धर्मस्तिक्राम अधर्मस्तिक्राम अने कालने आकाशमां समावेश कोणाधी एव अने पुत्रलौने औपचारिक संयोग अने विभाग द्वारा अवगाह वाक्य अत्रे अवगाहकं कोणाधी हेतुना कोणाधी अवगाहकं पक्षे सिद्धं अत्रे अत्रे अत्रे तथा विभाग उत्पन्न वाक्य अत्रे

तत्पर्यं ज्ञेये अत्रे अवगाहकं अवगाहकं अत्रे लक्षण अत्रे अवगाहकं अत्रे अनुमान वाक्य अत्रे द्रव्य आकाश अत्रे अधर्मा आकाश न तो धर्म, अधर्म आदि द्रव्येभ्यो स्थिति क्या कोणा ? नेने कोणा आधार

सनीयम्, इत्यपि भगवता बोधितम् । आकाशसिद्धयर्थं ' भायणं सव्वदव्वाणं'-
इति, ' ओगाहलक्खणं ' इति च विशेषणद्वयमुपात्तम् ।

आकाश द्विविधम्—लोकालोकभेदात्, उक्तं च स्थानान्नामूत्रे—

“ दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव ” इति ।
द्विविध आकाशः प्रज्ञप्तस्तद्यथा—लोकाकाशश्चैव अलोकाकाशश्चैव, इति च्छाया ।
धर्मादिसर्वद्रव्याणामाधारभूतमसंख्यातप्रदेशात्मरूमाकाशखण्डं लोकाकाशम् । तद्भि-
न्नमनन्तप्रदेशात्मरूमलोकाकाशम् ।

ननु धर्माधर्मद्रव्यस्वीकारे प्रयोजनं न किमपि पठ्यामः, जीव-पुद्गलानां
गतिस्थितिकार्ययोः सहायरूपं कारणं त्वाकाशमेव स्यात् ? ।

विना विश्वास करने योग्य है, यह भी भगवान ने उक्त कथन से ध्वनित कर दिया है ।
आकाश की सिद्धि के लिये ' भायणं सव्वदव्वाणं ' और ' ओगाहलक्खणं ' ये दो विशेषण
लगाये गये हैं ।

आकाश दो प्रकार का है—लोकाकाश, और अलोकाकाश । स्थानान्नामूत्र में कहा है—
“दुविहे आगासे पन्नत्ते तं जहा—लोगागामे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि सब द्रव्यों का आधार और असंख्यातप्रदेशरूप आकाशखण्ड, लोकाकाश
कहलाता है । लोकाकाश में भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है ।

शङ्का—जब कि आकाश ही जीव और पुद्गलों की गति एवं स्थिति में सहायक कारण
हो सकता है तो फिर धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय द्रव्यों को स्वीकार करने का कोई
न रहें, अटला भाटे आकाशना अस्तित्व, ठोई जतनी पणु शका कथा वगर
विश्वास करना योग्य है, अरे पणु लगवाने उक्त कथनथी ध्वनित कर्तुं है.
आकाशनी सिद्धि भाटे 'भायणं सव्वदव्वाणं' अने 'ओगाहलक्खणं' आ जे विशेषण
लगावैला है

आकाश जे प्रकारना है (१) लोकाकाश अने (२) अलोकाकाश—स्थानांग
सूत्रमा कहुं है —“ दुविहे आगासे पन्नत्ते, तंजहा—लोगागासे चेव अलोगागासे चेव”

धर्म आदि तमाम द्रव्योंना आधार अने असंख्यातप्रदेशरूप आकाशमें उ
ते लोकाकाश कडेवाय है, लोकाकाशथी भिन्न अनन्तप्रदेशी अलोकाकाश है

शंका—जे के आकाश ज एव अने पुद्गलवैनी गति अने स्थितिमा सहायक
कारण थई शके है तो पछी धर्मास्तिकाय अने अधर्मास्तिकाय द्रव्योंना स्वीकार

अत्रोच्यते-धर्मभाधर्मभेदि द्रव्यद्वयमवश्यमङ्गीकरणीयम्, अन्यथा दोषबाहुल्यप्रसङ्गात् ।

(१) आकाशस्य गतिहेतुत्वस्वीकारे जीवपुद्गलानामलोकाकाशगमनापत्तिः ।

(२) अलोकाकाशस्यापि जीवपुद्गलपूर्वत्वे लोकात्मसंग, तथा चालोकाकाशस्य नामाऽपि वन्व्यापुष्पदेव स्यात् ।

(३) भगवत्प्रकृतिताऽऽकाशद्वैविध्यस्यसंस्थाऽपि न सिद्धयेत् ।

प्रबोद्धं दितार्त्तं नही देता ।

समाधान-धर्मद्रव्य जीव अधर्मद्रव्य अवश्य स्वीकार करना चाहिये। उन्हें स्वीकार न करके से बहुतसे दोष व्यक्त हैं । वे इस प्रकार-

(१) आकाश को ही गति का कारण मान लिया जाय तो जीवा और पुद्गल का अलोकाकाश में भी गमन मानना पड़ेगा क्योंकि अलोकाकाश भी तो आस्तिर अकाश ही है।

(२) अलोकाकाश अगर जीवा और पुद्गल से स्वात्त मान लिया जाय तो वह अलोकाकाश न रहकर लोकाकाश ही हो जायगा। ऐसी स्थिति में अलोकाकाश तो वन्व्यापुत्र के समान ही जायगा अर्थात् अलोकाकाश का अस्तित्व नही रहेगा।

(३) भगवान् न दो प्रकार का आकाश बतलाया है, वह व्यवस्था मङ्ग हो जायगी।

इत्याहुं केव पञ्च प्रथमं जेवाभा आवतु नथी

समाधान-धर्मद्रव्य जने अधर्मद्रव्यने अवश्य स्वीकार इत्येव जेवजे, तेने स्वीकार नहि इत्याधी लदु न होय आवे छ ते ज्ञा प्रभासे-

(१) आकाशने न उचित इत्येव मानी जेवाभा आवे ते लवे जने पुद्गलने जे अलोकाकाशमां पञ्च जमन मानवुं पश्ये; केवजे अलोकाकाश पञ्च छवटे ते अकाश न छे

(२) अथवा अलोकाकाश लवे जने पुद्गलने भी व्याप्त मानी जेथी ते ते अलोकाकाश नहि रहेता लोकाकाश न बर्ध जरी जेनी स्थितिमा अलोकाकाश ते वन्व्या पुत्रना समान बर्ध जरी, अथवा अलोकाकाशतु अस्तित्व न रहेरी नहि.

(३) भगवाने दो प्रकारके आकाश जलाभां छे ते व्यवस्था भज बर्ध जरी

(४) अपिच—सिद्धभगवान् उर्ध्वं गत्वा लोकाग्रेऽवस्थित इति मर्यादाऽपि स्वपुष्पायमानैव स्यात् ।

(५) भवन्मते गतिकारणीभूतस्याकाशस्योर्ध्वदेशं विद्यमानत्वात्तस्य (सिद्धस्य) गतेरचरोधाभावो भवेत् ।

धर्माधर्मद्रव्ययोरकाशतः पृथक् स्वीकारे तु लोकाकाशत उर्ध्वमलोकाकाशस्य सत्त्वेन तत्र गतिहेतोर्धर्मस्याभावान्न गतिर्भवति । स्थितिहेतोरधर्मद्रव्यस्य लोकान्तर्वर्तित्वेन लोकाध्य एवोपरिभागे गतिहेतोर्धर्मद्रव्यस्य साहाय्येन गत्वा तत्रैवाधर्मद्रव्यसाहाय्येन तिष्ठति । एव च लोकाग्रे भगवानवस्थितो जले

(४) सिद्ध भगवान् उपर जाकर लोक के अग्र भाग में स्थित हो जाते हैं, यह आगम की मर्यादा भी आकाशपुष्प के समान हो जायगी ।

(५) आप के मत के अनुसार गतिका कारण आकाश है और वह उर्ध्व देश में लोकाकाश के अग्रभाग से भी आगे विद्यमान है, अतः सिद्धों की गति में रुकावट नहीं होगी ।

धर्मद्रव्य और अधर्मद्रव्य को आकाश से भिन्न मान लेने से लोकाकाश से उपर अलोकाकाश में गति का कारण धर्मद्रव्य नहीं है, अतः लोकाकाश से आगे गति भी नहीं होती, तथा स्थिति का कारण अधर्मद्रव्य लोक के अन्तर्गत ही है, अतः धर्मद्रव्य की सहायतासे सिद्ध जीव, लोक के अन्त तक पहुँच कर अधर्म की सहायता से वहाँ अर्थात् लोकाकाशके

(४) सिद्ध भगवान् उपर उर्ध्वे लोकाकाशे अग्रभागमा स्थित थाय छे, ते आगमनी मर्यादा पञ्च आकाश-पुष्पना समान धर्म जेशे

(५) आपना मत प्रमाणे गतिनु कारण आकाश छे अने ते उर्ध्व-उपरना देशमा लोकाकाशना अग्रभागथी पञ्च आगण विद्यमान-हुंयात् छे, तेथी सिद्धोनी गतिमा रुकावट-रुकावट नहि थाय.

धर्म द्रव्य अने अधर्मद्रव्यने आकाशथी भिन्न मानी द्वैवाथी लोकाकाशथी उपर अलोकाकाशमा गतिनु कारण धर्मद्रव्य नथी, तेथी लोकाकाशथी आगण गति पञ्च थती नथी, तथा स्थितिनु कारण अधर्मद्रव्य लोकाकाश अन्तर्गत (अदरज) छे, तेथी धर्मद्रव्यनी सहायताथी सिद्ध लोकाकाश अत सुधी पञ्चोथीने अधर्मद्रव्यनी

दुम्भीयदिति मर्यादा सूत्रादुपपद्यते । उक्त औपपातिकसूत्रे-

“कहिं पडिह्या सिद्धा, कहिं सिद्धा पडिह्या ।
कहिं बादिं पड्या णं, कस्य गंतुण सिद्धा ॥ १ ॥
असोणे पडिह्या सिद्धा, सोयमा य पडिह्या ।
इह बोदिं पड्या णं, कस्य गंतुण सिद्धा ॥ २ ॥” इति ।

छाया—

“कुत्र प्रतिहताः सिद्धाः, कुत्र सिद्धाः प्रतिष्ठिताः ।
कुत्र बोन्दि (शरीरं) त्यक्त्वा, कुत्र गत्वा सिद्धपति ॥ १ ॥
असोके प्रतिहताः सिद्धा, सोकाग्रे च प्रतिष्ठिताः ।
इह बोन्दि (शरीरं) त्यक्त्वा, तत्र गत्वा सिद्धपति ॥ २ ॥ इति

अन्तर्गत ही उद्धर आता है । इस प्रकार पहले अग्रभाग पर उद्धरे हुए तुम्हे के समान सिद्ध भगवान् सोकाकाश क अग्रभाग पर स्थित है, वह मर्यादा स्वतः सिद्ध हो जाती है ।

औपपातिकसूत्र में कहा है—

सिद्ध भगवान् कहीं रुकजात है / कहीं स्थित बात है । / कहीं शरीर का त्याग करके कहीं बाहर सिद्ध होते हैं । ॥ १ ॥

सिद्ध भगवान् असोक मं रुक जाते हैं, सोकक अग्रभाग मं स्थित होने हैं । यहीं शरीर का त्याग करके कहीं बाहर सिद्ध हो जाते हैं ॥ २ ॥”

सदापतापी त्वां च अज्ञोत् लोकानाशाना अदृश्य बोधी ज्ञाने उ तात्पर्यं ज्ञे उ हे ज्ञाना अज्ञाना उपर स्थित रहेला तुल्यानी येठे सिद्ध अज्ञान लोकानाशाना अज्ञाना उपर स्थित उ आ मर्यादा स्वता सिद्ध कर्ष ज्ञाने उ औपपातिक सूत्रमां पद्य कर्षु उ—

“सिद्ध अज्ञाना ज्ञाना शिकर्ष ज्ञाने उ ? कथा स्थित बाध उ ? कथा शरीरने त्याग करीने, ज्ञाना ज्ञाने सिद्ध बाध उ ? ॥ १ ॥

सिद्ध अज्ञाना अज्ञाना शिकर्ष ज्ञाने उ, लोकाना अज्ञानाशाना स्थित बाध उ अदि शरीरने त्याग करीने त्या ज्ञाने सिद्ध कर्ष ज्ञाने उ ॥ २ ॥”

નન્વેવં ધર્માધર્મદ્રવ્યે એવ સમાદ્રિયેતામ્, ક્ષિમાકાશદ્રવ્યાવલમ્બનેન, આકાશ-
કાર્યાવગાહસાહાય્ય ધર્માધર્મદ્રવ્યાભ્યામેવ સપદ્યેત ? , ઇતિ ચેત્, ઉચ્યતે-સિદ્ધાન્તે
તયોર્જીવાદિગતિસ્થિતિસાધકત્વેન સિદ્ધાન્તિતત્પ્રાદ્યકાશ ઘાતુ તૌ ન પ્રભવતઃ ।
અન્યસાધ્ય કાર્યમન્યો ન સાધયતિ, અન્યથાગતિપ્રસંગાત્ । લોકેઽપિ ચક્ષુસ્સાધ્ય
દર્શનકાર્યં ન શ્રોત્ર સાધયતિ ।

નનુ કેવલજ્ઞાનસ્ય યોઽનન્તતમો ભાગસ્તત્પ્રમાણમેવ નમોદ્રવ્યમ્, તસ્ય
ચાનન્તતમમાગપરિમિતં લોકાકાશમ્, एतादृशेऽल्पतरूपे लोकाकाशे लोकाकाश-

શબ્દા—યદિ એસા હો તો ધર્મદ્રવ્ય ઓર અધર્મદ્રવ્ય હી સ્વીકાર કરલેને ચાહિયે,
ફિર આકાશ કી વ્યા આવશ્યકતા હૈ / આકાશ કા કાર્ય અવગાહ દેના હૈ સો વહ કાર્ય
ધર્મદ્રવ્ય ઓર અધર્મદ્રવ્ય સે હી સમ્પન્ન હો જાયગા ।

સમાધાન—આગમ મં ધર્મદ્રવ્ય ઓર અધર્મદ્રવ્ય કો ગતિ ઓર સ્થિતિ મ હી સહાયક
વતલાયા હૈ, ઇસ લિષ્ટ વહ અવકાશ દેને મં સમર્થ નહીં હૈ, ઓર કા કાર્ય કોઈ ઓર નહીં
કર સકતા । અગર એસા હોને લગે તો સર્વત્ર ગડવટ હો જાયગા । લોક મ ચક્ષુકા દેલના
કાર્ય કાન નહીં કર સકતા ।

ગઢ્ઠા—કેવલ જ્ઞાન કા જો અનન્તવાં ભાગ હૈ ડમી વે વગવર આકાશદ્રવ્ય હૈ, ઓર
આકાશ-દ્રવ્ય કા મી અનન્તવાં ભાગ લોકાકાશ હૈ તો ઇતને છોટે સે લોકાકાશ મં સમસ્ત
લોકવ્યાપી ઓર અસહ્યાત પ્રદેશવાલે ધર્મદ્રવ્ય કા, અધર્મદ્રવ્ય કા, અનન્તાનન્ત જીવોં કા

શ કા—જે એ પ્રમાણે છે તો ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યનો સ્વીકાર કરી
લેવો જોઈએ, ફરીને આકાશની શુ આવશ્યકતા છે? આકાશનું કાર્ય અવગાહ-
અવકાશ આપવો તે છે, તે કાર્ય ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યથી જ સંપન્ન થઈ જશે

સમાધાન—આગમમા ધર્મદ્રવ્ય અને અધર્મદ્રવ્યને ગતિ અને સ્થિતિમા
સહાયક બતાવ્યા છે, એટલા માટે તે અવકાશ આપવામા સમર્થ નથી બીજાનું
કાર્ય કોઈ બીજે નહિ કરી શકે, જે એમ થવા લાગશે તો સર્વત્ર ગડબડ થઈ
જશે. જગતમા નેત્રથી જેવાનું કાર્ય કાન કરી શકતા નથી

શ કા—કેવલજ્ઞાનનો જે અનતમો ભાગ છે તેના બરાબર આકાશદ્રવ્ય છે,
અને આકાશદ્રવ્યનો પણ અનતમો ભાગ લોકાકાશ છે, તો એવડા નાના સરખા
લોકાકાશમા સમસ્ત લોકવ્યાપી અને એમખ્યાત પ્રદેશવાળા ધર્મદ્રવ્યનો, અધર્મ

ध्यापिनोः प्रत्येकमसंख्यातप्रदेशात्मकयोर्धर्मापमास्तिकाययोरनन्तबीधानां तेभ्योऽप्यनन्तगुणपुत्राणां च कर्म समावेशः, एकस्य लोककाशस्य सर्वद्रव्यावकाशदाना समवात्?, इति चेदुच्यते—

लोककाशस्यावकाशशक्तिर्हि महीयसी विस्मृणा चिन्तयितुमशक्या च, अत एव भगवता—“मायया सम्बद्धव्यामं नह ओगाहलम्बर्ण” इत्युक्तम् ।

नमसोऽवकाशशक्तिं केवलाखोकेनावसाक्य सर्वद्रव्याभामाधारत्वं भगवता प्रविबोधितम् । महीयसी नमसोऽवकाशशक्तिं, सुकरोऽत्र सर्वद्रव्याणां समावेश इति तदाशय ।

यथा—वतासानामधय मधुरद्रव्य दुग्धपरिपूरितेऽपि मात्राने निहितं सत् और उन से भी अनन्तगुणे पुत्रकाका समावेश किस प्रकार हो सकता है? एक लोककाश समस्त द्रव्यों को भगवाह दे सके, यह असम्भव है ।

समाधान—लोककाश की अवकाश देने की शक्ति महान् है, विलक्षण है, और अविनश्य है, इसीलिये तो भगवान् ने कहा है—“मायया सम्बद्धव्यामं नह ओगाहलम्बर्ण” अवगाहलम्बर्ण बाला आकाश सब द्रव्यों का आधार है ।

भगवान् ने अपने केवलज्ञान में आकाश की अवगाहदात्मशक्ति को देखकर उसे सब द्रव्यों का आधार निरूपण किया है । भगवान् के कथन का अमिमाय यही है कि आकाश की अवगाहदात्मशक्ति बहुत बड़ी है, उस में सब द्रव्यों का समावेश सरलता से हो जाता है ।

कैसे—दूध से परिपूर्ण पात्र में क्तासे हास दिये व्यर्थ तो वे उसी में समाविष्ट हो द्रव्येण अन्तानन्त लयेनां अने तेनाथी पद्य अनन्तप्रभु पुत्रगद्येनां समावेश केवी शीते धर्ष शके? लोक लोककाश समस्त द्रव्येनां अवगाह-अवकाश आधी शके, जे असलव छे

समाधान—लोककाशनी अवकाश आपनानी शक्ति महान छे विलक्षण छे अने अविनश्य छे कोऽहा भजे कत्रवाने कहु छे—“मायया सम्बद्धव्यामं नह ओगाहलम्बर्ण” अवगाहलम्बर्ण आकाश सर्व द्रव्येनां आधार छे कत्रवाने पोतान्त केवल ज्ञानमां आकाशनी अवगाहदान-अवकाश आपनानी-शक्ति अछिने तेने सब द्रव्येनां आधार छे जेभ निरूपण कयुं छे, कत्रवानन्य वचनने अविनश्य जे छे के-आकाशनी अवगाहनशक्ति बहु ब शैली छ अने तेमां सर्व द्रव्येनां समावेश सरलताथी धर्ष लव छे

केवी शीते द्रव्यना परिपूर्ण पात्रमां पनासां नाजनामां आवे त्वां ते तेमा

तस्मिन् समाविशति । यथा वा भित्तौ शङ्कोः समावेशस्तथैवानन्तद्रव्याणां लोकाकाशे समावेश इति बोध्यम् ।

नन्वलोकाकाशस्य कथं सिद्धिः, नासौ हि द्रव्याणामाधारः, नाप्यवकाशदायित्वं तस्य?, इति चेत्, उच्यते—गतिस्थितिकारणयोर्धर्मधर्मयोरभावादेव तत्र विद्यमानापि द्रव्याधारताशक्तिरवकाशदानशक्तिश्च नाभिव्यक्ता भवति । तदस्वीकारे तु जीवद्रवानां कर्मनिगडविमुक्तसिद्धानां चोर्ध्वगतिविरामो न स्यात्, भगवत्प्रतिबोधितलोकालोकव्यवस्थाऽपि न तिष्ठेत्, एवं चागमयुक्तिप्रमाणाभ्यामलोकाकाशं सिद्धम् ।

जाते है, अथवा जैसे दीवाल में कील का समावेश हो जाता है उसी प्रकार लोकाकाश में अनन्त द्रव्यों का समावेश हो जाता है ।

गङ्गा- अलोकाकाश की सिद्धि कैसे होती है ? न तो वह द्रव्यों का आधार है, न अवकाशदानरूप लक्षण ही उस में घटित होता है ?

समाधान—गति और स्थिति के कारण धर्म और अधर्मद्रव्य का अभाव होने के कारण ही अलोकाकाशकी द्रव्याधारता की शक्ति और अवकाशदानशक्ति प्रकट नहीं होती है । अगर अलोकाकाश न माना जाय तो जीवों और पुद्गलों की, तथा धर्मरूपी वेडी से मुक्त हुए सिद्ध जीवों की गति का अन्त हो न होगा, और भगवान् की कही हुई लोक अलोक की व्यवस्था भी कायम नहीं रहेगी । इस प्रकार आगम और युक्ति प्रमाणों से अलोकाकाश की सिद्धि होती है ।

(द्वधमा) समाविष्ट—अतोत्प्रेत थर्ध न्य छे, अथवा जेवी रीते दीवालमा कील—भीदीने समावेश थर्ध न्य छे, ते प्रमाणे लोकाकाशमा अनन्त द्रव्येनो समावेश थर्ध न्य छे

श का—अलोकाकाशनी सिद्धि कैवी रीते होई शके ? ते द्रव्येनो आधार नथी अने अवकाशदानरूप लक्षण तेनामा घटी शकतु नथी

समाधान—गति अने स्थितिना कारण धर्म अने अधर्म द्रव्येनो अभाव होवाना कारणे न अलोकाकाशनी द्रव्याधारतानी शकित अने अवकाशदान—शक्ति प्रकट थती नथी अथवा अलोकाकाश मानवामा नहि आवे तो एवो अने पुद्गलेनी, तथा कर्मरूपी वेडीथी मुक्त थयेला सिद्ध एवोनी गतिने । कायम अनन्त—छेडे न नहि आवे, अने भगवाने कहेली लोक—अलोकनी व्यवस्था पणु कायम नहि रहे अे प्रमाणे आगम अने युक्ति प्रमाणेथी अलोकाकाशनी सिद्धि थाय छे,

अन्यसकम्ब्रव्यापेक्षया महस्परिमाणमाकाशस्य, अनन्तप्रदेशित्वात् ।
तेनाकारं महात्मन्स्वरूपम् ।

आकाशास्तिकायस्य (१)-अक्षयित्वम्, (२)-अचेतनत्वम्, (३)-अक्रियत्वम्,
(४)-अवगाह्यत्वमित्यं चेति गुणाः । (१)-स्कन्धः, (२)-देशः, (३)-प्रदेशः,
(४)-अगुरुलघुत्वं चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-माप-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञाप्यते, यथा-द्रव्यत एक
आकाशास्तिकायः, क्षेत्रतो लोकालोकप्रमाणः, कालत आद्यन्तरहित, मापतो
रूपरहितः-वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शवर्जित इति । मुख्यतोऽपकाशदायी ।

आकाश का प्रमाण अन्य सब द्रव्यों की अपेक्षा बड़ा है, क्योंकि यह अनन्तप्रदेशी
है, अन्त आकाश महात्मन्स्वरूप है ।

(१) अक्षयित्व (२) अचेतनत्व, (३) अक्रियत्व (४) अवगाह्यत्वित्व ये
आकाशास्तिकाय के गुण हैं । (१) स्कन्ध (२) देश (३) प्रदेश तथा (४) अगुरुलघुत्व,
उसके पर्याय हैं ।

द्रव्य क्षेत्र काल माप और गुणके भेदसे आकाश द्रव्य पाँच प्रकार से जाना जाता
है । जैसे द्रव्य से आकाशास्तिकाय एक है, क्षेत्र से लोकालोकप्रमाण है, काल से आदि-
अन्त रहित है-मापसे अरूपी है, उस में वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श नहीं पाये जाते ।
गुणसे अवकाश देने वाला है ।

आकाशात् परिमाणं भीत सव द्रव्यान् अपेक्षान्ने शोडुं उ कभडे ते
अनन्तप्रदेशी उ अठसे के आकाश महात्मन्स्वरूप उ

(१) अक्षयित्व (२) अचेतनत्व (३) अक्रियत्व (४) अवगाह्यत्वित्व के
आकाशास्तिकायना गुण उ अने (१) स्कंध (२) देश, (३) प्रदेश, तथा अगुरु
लघुत्व, तेना पर्याय उ

द्रव्य क्षेत्र, काल, माप अने गुणना सेवधी आकाश द्रव्य पाँच प्रकारधी
अरूपी शक्य से जेभडे-द्रव्यधी आकाशास्तिकाय अठ उ क्षेत्रधी लोकालोकप्रमाण
उ कालधी आदि-अन्तरहित उ मापधी अरूपी से-तेमां वज, अथ, रस अने
स्पर्श नहीं, गुणधी अवकाश आपवाच्य उ

कालनिरूपणम्—

तत्र कालशब्दस्य व्युत्पत्तिः—

कलयते=परिच्छिद्यते वस्त्वनेनेति कालः । करणे घञ् । 'मासिकोऽयं बालः, वार्षिकोऽयं बालः, वासन्तिकमिदं पुष्पम्' इत्यादिरूपेण वस्तुनां परिच्छेदो=निर्णयः कालमाश्रित्य भवति ।

अथवा स्वभावतः परिणमद्भिः पदार्थजातैः, कलयते=गम्यते=प्राप्यते निमित्तत्वेनाऽसौ, इति कालः । सकलवस्तुपरिणतिहेतुः काल इत्यग्रे वक्ष्यते ।

कालनिरूपणम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जिस के द्वारा वस्तु कली जाय अर्थात् जानी जाय वह काल है । यहाँ करणमें 'घञ्' प्रत्यय हुआ है । यह बालक मासिक (एक मासका) है, यह बालक वार्षिक (वर्ष भरका) है, यह फूल वासतिक (वासन्तऋतुसम्बन्धी) है, इस रूपमें वस्तुओं का ज्ञान काल के द्वारा ही होता है ।

अथवा स्वभावसे परिणत होने वाले पदार्थ समूहों द्वारा निमित्त रूपमें जो प्राप्त किया जाय वह काल कहलाता है । 'काल, समस्त वस्तुओं के परिणमन का हेतु है यह बात आगे बतलाई जायगी ।

कालनिर्णयम्—

काल शब्द की व्युत्पत्ति—

जोना द्वारा वस्तु लक्ष्णी शक्यते काले अस्ति कारणं 'घञ्' प्रत्यय यथा अस्ति "आ बालक मासिक-एक मासना, आ बालक वार्षिक-एक वर्षना, आ फूल वासतिक-वासन्तऋतुसम्बन्धी" अत्रे इयं वस्तुनां ज्ञान काल द्वारा शक्यते

अथवा स्वभावसे परिणत पदार्थसमूहों द्वारा निमित्तरूपमा ज्ञेयं प्राप्त करी शक्यते काले अस्ति कारणं "काल समस्त वस्तुनां परिणमन हेतुः अस्ति" अत्रे आगम्यतावत्त्वात् आवश्यते ।

कालस्य सिद्धिः—

‘पदार्थाः सन्ति, अथवा पदार्थां वर्तन्ते’ इति स्पष्टहारो वर्तनामूल ।
 ‘अनुदात्तेषु इलादे’—रिति पाणिनिद्वारेण वृत्तातोर्षुप्रत्ययः । वर्तनशीला
 वर्तना । उत्पत्तिः, अग्रन्युतिः, विद्यमानतास्या वृत्तिः=क्रिया वर्तना । इयं
 वर्तना सर्वेषु भावेषु विद्यते । वर्तना=पदार्थानां परिणामविशेषः । पदार्थानां वर्तना
 रूप कार्यं नोपपद्यते विना कनश्चिन्मिषकारणेन, तस्मात् वर्तनारूपकार्योत्पत्तौ
 यश्चिन्मिष धर्मप्रत्ययमिष गती, स एव कार्य इत्युच्यते ।

काल की सिद्धि—

‘पदार्थ है या पदार्थ वर्त रहे हैं इस प्रकार के स्पष्टहार का कारण वर्तना है ।
 ‘अनुदात्तेषु इलादे’ पाणिनि के इस सूत्र से ‘वृत्तु’ भाव से ‘वृष्’ प्रत्यय हुआ है ।
 वर्तनशील हो उसे वर्तना कहते हैं । उत्पत्ति, अग्रन्युति और विद्यमानतारूप वृत्ति
 अर्थात् क्रिया वर्तना कहलाती है । यह वर्तना सभी पदार्थों में विद्यमान है । यह पदार्थों का
 विशेष परिणाम है । पदार्थों का वर्तनारूप काम किसी निमित्त कारण विना नहीं हो सकता
 अतः वर्तनारूप कार्यकी उत्पत्ति में जो निमित्त कारण है, वही कार्य-प्रत्यय है जैसे गति का
 निमित्त कारण धर्म प्रत्यय है ।

कालानी सिद्धि—

प्रथम उ अथवा पदार्थं वत्त स्तेषु उ अने प्रकारका अर्थकारण कालस्य
 वर्तना उ अनुदात्तेषु इलादे पाणिनिना आ सूत्रधी ‘वृत्तु’ भावधी ‘वृष्’ प्रत्यय
 यथे उ. अने वर्तनशील होय तेने वर्तना कहे उ उत्पत्ति अग्रन्युति, अने
 विद्यमानतास्य वृत्ति अर्थात् क्रिया वर्तना कहेषाम उ वर्तना सर्व पदार्थीयां विद्यमान
 उ ते पदार्थीय विशेष परिणाम उ पदार्थीय वर्तनारूप काम केवल निमित्त कारण
 विना यथं शक्यं नथी. तेधी वर्तनारूप कार्यनी उत्पत्तिमा अने निमित्त कारण उ ते
 काल प्रत्यय उ. अनेही शीते गतिनु निमित्त कारण धर्म-प्रत्यय उ

कालस्य लक्षणम्—

स्वभावतो विद्यमानानां पदार्थानां या विद्यमानताख्या वर्तना, ता प्रति सहकारिकारणत्वं कालस्य लक्षणम् ।

अनेनैवाशयेन भगवताऽप्युक्तम्—“वृष्टणालक्खणो कालो” इति, वर्तनालक्षणः कालः, इति च्छाया । वर्तना, लक्षणं=कार्यत्वेन प्रत्यायकं, यस्य स वर्तनालक्षणः, वर्तनाकार्यानुमेयः काल इत्यर्थः । अत्र वर्तनेत्युपलक्षण परिणामक्रिया-परत्वापरत्वादीनाम् ।

परिणामो हि वस्तूनां नोपपद्यते कारण नियामकमन्तरेण, अन्यथा नियामकहेत्वभावे सर्वे भावा युगपदुत्पद्येरन् । किञ्च—कारणमन्तरेणापि कार्योत्पत्तिः

काल का लक्षण—

स्वभाव से विद्यमान पदार्थों की विद्यमानतारूप जो वर्तना है उस में सहकारी कारण होना काल का लक्षण है, इसी अभिप्राय से भगवान्ने भी कहा है—“वृष्टणालक्खणो कालो” “काल वर्तनालक्षण वाला है ।” वर्तना है लक्षण अर्थात् ज्ञापक जिस का, अर्थात् वर्तनारूप कार्य से जिसका अनुमान होता है उसे काल कहते हैं । वहाँ वर्तना उपलक्षण है उससे परिणाम, क्रिया, परत्व, (पहलापन), और अपरत्व (पीछापन) का भी ग्रहण हो जाता है ।

नियामक कारणके अभाव में पदार्थों का परिणामन नहीं हो सकता, अगर ऐसा न माना जाय तो सभी पदार्थों की एक साथ ही उत्पत्ति होने लगेगी । तथा कारण के विना भी

કાલનુ લક્ષણ-

સ્વભાવથી વિદ્યમાન પદાર્થોની વિદ્યમાનતારૂપ જે વર્તના છે, તેમા સહકારી કારણ થવુ તે કાલનુ લક્ષણ છે આ અભિપ્રાયથી ભગવાને પણ કહ્યું છે—

“વૃષ્ટણાલક્ષણો કાલો” કાલ વર્તનાલક્ષણ વાળો છે વર્તના છે લક્ષણ અર્થાત્ જ્ઞાપક જેનુ, અર્થાત્ વર્તનારૂપ ડાર્થથી જેનુ અનુમાન થાય છે તેને કાલ કહે છે વર્તના ઉપલક્ષણ છે તેથી પરિણામ, ક્રિયા, પરત્વ (પહેલાપણુ) અને અપરત્વ (પાછાપણુ)નુ ગ્રહણ થઈ જાય છે

નિયામક કારણના અભાવમા પદાર્થનુ પરિણમન થતું નથી જે એવુ માનવામાં ન આવે તો સર્વ પદાર્થોની એક સાથે જ ઉત્પત્તિ થઈ જશે, તથા કારણ વિના પણ

प्रसज्येत, अपराधीनत्वात् परिष्मामानाम्, अतः परिष्मामाः प्रतिनियतकालमाविन, तेषामनेकशक्तियुक्तमेकं कारणं कालाल्पमित्यवश्यमङ्गीकरणीयम् ।

तास्तामशक्तयस्वस्वकार्यकरणाय कालविशेष एव प्रवर्तन्ते, न सर्वदा, तादृशस्वभावत्वात् । यथा-अङ्कुररूपेण परिणतस्य वनस्पतेर्मूल-काण्ड-त्वक्-पत्र-स्कन्ध-शाखा-विटप-पुष्प-फलरूपा परिणामा न युगपद् भवन्ति । आसीदङ्कुरः, समति स्कन्धवान्, ऐशमः पृष्पिष्यति' इति व्यनहारात् । यथा वा पुरुषस्य बाल-कुमार-युव-मध्यमाद्यवस्थाकृपा, नत्र पुराण प्रनष्टकृपाश्च परिणामा न युगपद् भवन्ति,

काम की उत्पत्ति का प्रसङ्ग उपस्थित होगा, क्योंकि परिणाम किसी कारण पर निर्भर तो होने नहीं बिना कारण ही होगा लेकिन ऐसा नहीं होता परिणाम नियत समय पर ही होते हैं, अतः अनक शक्तियां से युक्त एक काल नामक कारण अङ्गीकार करना चाहिए ।

वह अनेक शक्तियों अपना अपना कार्य करने के लिये क्रिया विशेष काल में ही उद्यत होती है, सर्वशक्ति नहीं क्योंकि उनका स्वभाव ही ऐसा है, जैसे कि-अङ्कुररूप से परिणत वनस्पति का मूल काण्ड त्वक्, पत्र, स्कन्ध, शाखा, विटप, पुष्प और फल रूप परिणामन एक साथ नहीं होते हैं । पृष्ठक अङ्कुर था, जब स्कन्धबाह्य हो गया कुछ दिनों के बाद वह धूम्रवर्ण इत प्रकार का सोष्ण्यवहार प्रसिद्ध ही है । अबवा-जैसे पुरुष के बाल कुमार युवा मध्यम आदि अवस्था तथा

कामनी उत्पत्तिना प्रसंग उपस्थित भवे। केभके परिव्याम केअं पर निभर रडेरी नकि, विना कारणे न भवे, परन्तु जेरी शीते होय नकि। परिव्याम नियत समय पर न होय छे, जेटला भाटे अनेक शक्तिज्येभी युक्त जेक काल नामनु कारण अङ्गीकार करु जेअंजे।

ते अनेक शक्तिज्ये पीत-पीतानु कार्य करवा भाटे केअं विशेष कालमां न उद्यत-प्रकशित थाय छे सचवा यती नधी। केभके तेनेः स्वभाव न जेवे। छे जेभके-अङ्कुररूपी परिव्युत वनस्पतिनु मूल, काण्ड-काण्डी, छास, पत्र स्कन्ध, शाखा, विटप-काण्डी, पुष्प, इतरूप परिव्युतन जेक साथे यदा नधी प्रथम अङ्कुर इतु पछी स्कन्धकाण्डी यनु अने केटलाक दिवसे पछी ते इत्ये जे प्रभावे होअव्यवहार पय प्रसिद्ध न छे अथवा जेवी शीते पुत्रुपने व्यास्य, कुमार युवा, मध्यम आदि अवस्था, तथा नवायलु अने लुनायलु अने प्रनष्ट-नाशरूप परिव्युतन जेक साथे इतु नधी जेटला भाटे समस्त परिक्रमेण निवामक निमित्त

तस्मात्सर्वेषां परिणामानां नियामक निमित्तकारण काल इति सिद्धम् । यथा कर्त्तरी वस्त्रकृन्तने निमित्तकारणं तथा द्रव्याणां पर्याये निमित्तकारण कालः ।

क्रिया=द्रव्यपरिणामः । तस्या अपि नियामक निमित्तकारणं कालः । यथा—‘आकाशदेशे-अङ्गुलिरस्ति, आसीत्, भविष्यति च’ इत्ययं व्यवहारः काल-मवलम्ब्य संपद्यते, कालस्यासत्त्वे त्वतीत एव वर्तमानोऽनागतश्च स्यात्, क्रिया-नियामकाभावात्, एवमतीतादिविभागाभावे व्यवहारोच्छेदापत्तिः, तस्मात् “अस्ति कालः यमाश्रित्यातीतादिव्यवहाराः सुस्पष्टं प्रसिध्यन्ति” इति, मन्तव्यम् ।

नयापन, पुरानापन, और प्रनष्टरूप परिणामन एक साथ नहीं होते हैं, अत एव समस्त परिणामों का नियामक निमित्त कारण काल ही सिद्ध होता है । जैसे कैंची वस्त्र काटने में निमित्त कारण होती है, उसी प्रकार द्रव्यों के परिणामन में काल निमित्त कारण होता है ।

क्रिया द्रव्य का परिणामविशेष है । उसका निमित्त कारण भी काल ही है । जैसे ‘आकाश में अगुली है, थी और होगी’ इस प्रकार का व्यवहार काल के आश्रित है । काल की सत्ता न मानी जाय तो अतीत ही वर्तमान और अनागत (भविष्य) हो जायगा, क्योंकि क्रिया का कोई नियामक नहीं है । इस प्रकार अतीत आदि कालों का विभाग न रहने से व्यवहार का लोप हो जायगा, अतः “काल अवश्य है, जिस के सहारे अतीत आदि के व्यवहार स्पष्ट रूप से सिद्ध होते हैं” ऐसा मानना ही समुचित है ।

कारण काल न सिद्ध थाय छे जेभके कालर, वस्त्रने कापवामा निमित्त कारण थाय छे, ते प्रमाणे द्रव्येना परिणामनमा काल निमित्त कारण थाय छे.

क्रिया ये द्रव्यनु परिणाम विशेष छे तेनु निमित्त कारण पणु काल न छे जेभ ‘आकाशमा आगणी छे, छती अने छुशे’ आ प्रकारने व्यवहार कालने आश्रित छे कालनी सत्ता न मानवामा आवे ते अतीत-भूतकाल न वर्तमान अने भविष्य काल थछे जेभके क्रियाने नियामक काल नथी, आ प्रमाणे अतीत भूतकाल आदि कालेनो विलाग नछि रहेवाथी व्यवहारने लोप थछे जेभे. अतएवा भाटे “काल अवश्य छे, जेनी सहायताथी भूतकाल आदिने व्यवहार स्पष्टरूपथी सिद्ध थाय छे” जेभ मानवु ते न थोज्य छे

प्रतिदिनसममयकालिकसकलवस्त्रपात्रादिप्रतिष्ठेस्वन, प्रत्यहोराश्रममयकालिक
मावश्यकं, कतुष्कालिकं स्वाध्यायकरणं मुनीनां कृतव्यतया भगवतोपदिष्टं, तत्र
काष्ठस्यासस्ये तद्विमागङ्गानामावेन यथाकालमनुष्ठातुमशक्यं मुनिभिरिति
शास्त्रानर्यव्यमापद्येत ।

मिस्त्रायमकालवर्जनपूषककालानुरोधेन निष्क्रमप्रतिक्रमकृतव्यतया भगवत्प्ररूपिता
एहीतमव्रज्यानां मिस्त्राणां नष्टमाया स्यात् ।

प्रतिदिन दोनो बल समस्त बल पात्र आदि का प्रतिष्ठेस्वन करना प्रत्येक
दिन और रात्रि के अन्त में आवश्यक करना बौद्धानीन स्वाध्याय करना भगवान्ने
मुनियों का कृतव्य कतकाया है । अगर कालव्रम्य की सथा न मामी जाय तो दिन रात
आदि के मेत्र का पता ही नहीं चलेगा और समय पर उक्त सब काय नहीं किये जा सकेंगे ।
एसी अवस्था में शास्त्रों का यह उपदेश निरर्थक हो जायगा ।

“अकाल का आग कर के समुचित समय पर मुनियों को मिश्रा के लिए जाना
और जाना चाहिए भगवान् ने मुनियों का यह कृतव्य कतकाया है, कालव्रम्य न
मानने पर यह सब कृतव्य और उनका उपदेश भी नष्टप्राय हो जायगा ।

प्रतिदिन जन्ने बभत समस्त—तन्नाम वस्त्र, पात्र आदितु प्रतिष्ठेपन करुं,
प्रत्येके द्विवस जने सत्रिना अन्तर्मा आवश्यक करुं, बौद्धानीन—आश्रम काल स्वाध्याय
करुंवे। ते भगवान्ने मुनिज्जेपु कर्तव्य जताञ्चु छे अजर कालव्रम्यनी सत्ता नदि
माने। ते द्विवस शत वजेरे वेडने। सत्तो भणसे नदि, अने समय पर आरण
होइसां सर्व कारी करी सकासे नदि जेवी अवस्थाभां शास्त्रोने जे उपदेश निरर्थक
सर्ष करे।

“अकालने।त्वाज करीने शैव्य समय पर मुनिज्जेजे सिद्धाने भाटे करुं—आवुं
वेडजे” अत्रवाने मुनिज्जेपु जे कतव्य करुं छे कालव्रम्यने नदि मानवामां आवे
ते आ सर्व कर्तव्य जने तेमने। उपदेश पपु नष्टप्राय सर्ष करे।

કિંચ—ગ્રીષ્માદિપુ સંયતાનામતાપનાદયો ધર્માઃ ભગવદુક્તાઃ કાલસત્ત્વ
 એવોપપદ્યન્તે । અન્યથા ગ્રીષ્માદિક્ષતુજ્ઞાનાભાવાદ્ ભગવદુપદિષ્ટક્રિયાહાનિઃ પ્રસજ્યેત ।
 એવં ચ વર્તના, પરિણામઃ, ક્રિયાથ્ચ દ્રવ્યમ્ભાવાઃ કાલમાશ્રિત્ય ભવન્તીતિ
 નિરૂપિતમ્ ।

પરાપરવ્યતિકરજ્ઞાનમપિ કાલેનૈવ સપદ્યતે । વિપ્રકૃષ્ટઃ કનિષ્ઠપર્યાયો મુનિઃ
 ક્ષેત્રેણ પરોઽપિ કાલેનાપરઃ, સંનિકૃષ્ટો જ્યેષ્ઠપર્યાયો મુનિઃ ક્ષેત્રેણાપરોઽપિ

इसके अतिरिक्त ग्रीष्म आदि ऋतुओं में सावुओं के लिये भगवान् ने आतापना
 आदि धर्मोंका उपदेश दिया है, काल के होने पर ही यह उपदेश बन सकता है ।
 काल के अभाव में ग्रीष्म ऋतु का ही ज्ञान नहीं होगा और भगवान् द्वारा उपदिष्ट क्रिया
 की हानि हो जायगी ।

यहां तक यह बतलाया जा चुका कि वर्तना, परिणाम और क्रिया, जो कि द्रव्य
 के स्वभाव हैं, काल के सहारे ही होते हैं ।

परत्व और अपरत्व का मिला-जुला सा ज्ञान भी काल द्वारा ही होता
 है । दूरवर्ती छोटीदीक्षापर्यायवाला मुनि दूर होने के कारण क्षेत्र से पर होने
 पर भी (दीक्षा में छोटा होने के कारण) काल से अपर कहलाता है । समीपवर्ती
 है, मगर ज्येष्ठदीक्षापर्यायवाला मुनि क्षेत्र से अपर होने पर भी काल से पर
 कहलाता है । यहाँ 'पर' भी 'अपर' हो गया है और 'अपर' भी 'पर' बना गया है ।

તે સિવાય ગ્રીષ્મ આદિ ઋતુઓમાં સાધુઓ માટે ભગવાને આતાપના આદિ
 ધર્મોનો ઉપદેશ આપ્યો છે, કાલ દ્રવ્યને માનવામાં આવે તો જ, અથવા કાલ દ્રવ્ય
 હોય તો જ એ ઉપદેશ ઘટી શકે છે કાલના અભાવમાં ગ્રીષ્મ ઋતુનું જ્ઞાન થશે
 નહિ, અને ભગવાને કહેલી ક્રિયાની હાનિ થઈ જશે

અહીં સુધી ખતાવી ચૂક્યા કે વર્તના, પરિણામ અને ક્રિયા, જે કે દ્રવ્યનો
 સ્વભાવ છે, કાલની સહાયતાથી જ થાય છે

પરત્વ અને અપરત્વનું મિલા-જુલા જેવું જ્ઞાન પણ કાલદ્વારા જ
 થાય છે. દૂરવર્તી, નાની દીક્ષા-પર્યાયવાળા મુનિ દૂર હોવાના કારણે ક્ષેત્રથી પર હોવા
 છતાં પણ (દીક્ષામાં નાના હોવાના કારણે) કાલથી અપર કહેવાય છે, સમીપવર્તી છે
 પણ જ્યેષ્ઠ-મોટીદીક્ષાપર્યાયવાળા મુનિ ક્ષેત્રથી અપર હોવા છતાં પણ કાળથી પર કહેવાય
 છે અહીં 'પર' પણ 'અપર' થઈ ગયો છે અને 'અપર' પણ 'પર' બની ગયો છે

काष्ठेन पर इत्युच्यते। अत्र परस्यापरत्वम्; अपरस्य परत्वमिति परापरव्यति
करः। कारणं विना न संभवति, यदत्र कारणं स एव कालः।

यौगपद्यायौगपद्यन्तयेनापि कास्त्रव्यस्यास्तित्वं सिध्यति। 'आम्यां
युगपदधीतो दृष्टिवायः' 'एमिस्तु मुनिमिर्युगपत् पठिवा द्वादधाङ्गी' इति वाक्य
दोऽध्ययनगतयौगपद्यायौगपद्यमतीतौ कालान्तरेवान्यभिमितं नोपलभ्यते, यत्र
निमित्तं स कालः।

× 'परस्परविवर्तनं व्यतिकर'।

पर और अपरका यह व्यतिकर+ कारण के बिना संभव नहीं है, अत एव इस
व्यतिकर में जो कारण है वस वही काल है।

यौगपद्य (एक साथ) और अयौगपद्य (आगे-पीछे) का जो ज्ञान
होता है उस से भी कास्त्रव्य का अस्तित्व सिद्ध होता है। 'इन दोनों मुनियोंने
एक साथ दृष्टिवाय का अभ्यसन किया' और 'इन मुनियोंने बारह अक्ष एक साथ नहीं
पढ़े-आगे पीछे पढ़े हैं,'—इस वाक्य से यौगपद्य और अयौगपद्य का—एक साथ का
और आगे पीछे का—जो ज्ञान होता है उसमें काल के अस्तित्व के सिवाय और कोई
कारण नहीं पाया जाता। जो कारण है वही काल है।

+ 'परस्परविवर्तनं व्यतिकर' अर्थात् एक का विषय दूसरे में क्या जाना
व्यतिकर कहलाता है जैसे—पर का अपर हो जाना और अपर का पर हो जाना।

पर जाने अपरता के व्यतिकरक कारण बिना संभव नहीं, तभी के
व्यतिकरता के कारण है अथ तेज हाण से

यौगपद्य—जो साथे जाने अयौगपद्य—आगण—पाछणतु के ज्ञान वाच्य है,
तेमा पद्य कालविन्दु अस्तित्व सिद्ध वाच्य है। "जो जाने मुनियोंके जो साथे
दृष्टिवायतु अभ्यसन क्यु" जाने "जो मुनियोंके आर अजितु जो साथे अभ्यसन
क्यु" नहीं—आगण—पाछण अभ्यसन क्यु" है" आ वाक्यधी यौगपद्य जाने
अयौगपद्यतु—जो साथेतु जाने आगण पाछणतु के ज्ञान वाच्य है तेमां काल बिना
भीलु डोर्ष कारण होजातु नहीं, के कारण है तेज हाण से

+परस्परविवर्तनं व्यतिकर" अर्थात्—जोकेने विषय जीवतां आस्थि वाच्य
ते व्यतिकर कहेवाच्य है, केवी शीते—परतु अपर वर्यतु जाने अपरतु पर वर्यतु
म वा.—१२

ચિરક્ષિપ્રપત્યયોઽપિ કાલમાસાદ્યૈવ જાગર્તિ । યયા-‘અનેન મહાત્મના ચિરં તપશ્ચરિતમ્, ગજસુકુમાલેન ક્ષિપ્રમાત્મકલ્યાણં કૃતમ્’ इत्यादिवाक्यैस्तप-
श्चरणकल्याणसाधनादीनां विलम्बाविलम्बप्रतीतिः कालाभावं सति नोपपद्येत ।

ह्य श्वोऽद्य परश्वः’-इत्यादयः कालाभिधायिनः शब्दाः कालाख्यमर्थं
गमयन्ति । सर्वज्ञेन भगवतोच्चारितत्वादिमे शब्दा यथार्थवस्तुबोधकाः रूपशब्दवद्
असमस्तपदत्वात्, शुद्धैकपदत्वाच्च प्रसिद्धं सद्भूतमर्थमावेदयन्ति कालशब्दादयः ।

वर्तनाहेतुत्वा-ऽस्तित्व-ज्ञेयत्वादिगुणाश्रयतया, अतीतानागतवर्तमानादिपर्या

जल्दी और देर का ज्ञान भी काल के कारण ही होता है, जैसे-“ इस
महात्मा ने चिरकाल तक तप किया, गजसुकुमाल मुनिने ग्रीत्र ही आत्मकल्याण कर
लिया । ” इत्यादि वाक्यों से तपश्चरण और कल्याण-साधन आदि में विलम्ब और
अविलम्ब का ज्ञान काल के अभाव में नहीं हो सकता ।

‘कल, आज, परसों’ इत्यादि कालवाचक शब्द भी कालनामक द्रव्य को
प्रकट करते हैं । सर्वज्ञ भगवान् के द्वारा उच्चारण किये हुए ये काल आदि शब्द
वास्तविक वस्तु के बोधक हैं, क्योंकि यह समासरहित पद हैं और शुद्ध एक पद हैं ।
जो पद समासरहित और शुद्ध एक पद होते हैं वे वास्तविक पदार्थ के ही बोधक
होने हैं, जैसे रूप आदि ।

वर्तनाहेतुत्व, अस्तित्व, ज्ञेयत्व, आदि गुणा का आधार होने से, तथा
अतीत, अनागत (भविष्यत्) और वर्तमान आदि पर्यायों का आश्रय होने से काल का

જલ્દી-તુરત અને ઢીલતુ જ્ઞાન પણ કાલના કારણથી જ થાય છે જેમ-“આ
મહાત્માએ લાખા સમય સુધી તપ કર્યું, ગજસુકુમાલ મુનિએ તુરતમા આત્મકલ્યાણ
કરી લીધું ” ઇત્યાદિ વાક્યોથી તપશ્ચરણ અને કલ્યાણસાધન વગેરેમાં વિલમ્બ અને
અવિલમ્બનું જ્ઞાન કાલના અભાવમાં થઈ શકશે નહિ

‘ગઈ કાલ, આવતી કાલ, આજ, પરમ દિવસે,’ ઇત્યાદિ કાલવાચક શબ્દ પણ
કાલ નામના દ્રવ્યને પ્રગટ કરે છે, સર્વજ્ઞ ભગવાન દ્વારા કહેવામાં આવેલા એ કાલ
આદિ શબ્દ વાસ્તવિક વસ્તુના બોધક છે, કેમકે એ સમાસરહિત પદ છે અને શુદ્ધ
એક પદ છે જે પદ સમાસરહિત અને શુદ્ધ એક પદ હોય છે, તે વાસ્તવિક
પદાર્થના જ બોધક હોય છે જેમ રૂપ આદિ

વર્તનાહેતુત્વ, અસ્તિત્વ, જ્ઞેયત્વ આદિ ગુણોનો આધાર હોવાથી, તથા ભૂતકાલ,
ભવિષ્યકાલ અને વર્તમાનકાલ આદિ પર્યાયોનો આશ્રય હોવાથી કાલનું દ્રવ્યપણું

याध्वतया च तस्य द्रव्यत्वं सिद्धयति, तस्मात् 'पटं द्रव्यं कालः' इति युक्त्योपपत्त्या च सिद्धम् ।

आगमोऽप्यत्र प्रमाणमिति चक्षुरुदात्तप पश्य—

“कइ न भवे ! द्रव्या पण्यत्ता ?, गोयमा छ द्रव्या पण्यत्ता, त जहा धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए,” इति ।

कति ननु मन्द ! द्रव्याणि प्रकृत्यानि ?, गौतम ! पट् द्रव्याणि प्रकृत्यानि, तानि यथा—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायः, आकाशास्तिकायः, पुत्रलास्तिकायः, बीजास्तिकायः, अद्दासमय । इति च्छया ।

‘कइविहा ण भवे ! सक्कद्रव्या पण्यत्ता ?, गोयमा ! छन्निहा सम्बद्धद्रव्या पण्यत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए, नाव अद्दासमए’ इति । (मगघती ध० २५, उ० ४)

द्रव्यपन सिद्ध होता है अतएव युक्ति तथा उपपत्ति से कालनामक छटा द्रव्य सिद्ध हुआ ।

आंस लोख कर देतो इस विषय में आगम—प्रमाण भी विद्यमान है—

“कइ ण भवे ! द्रव्या पण्यत्ता ! गोयमा ! छ द्रव्या पण्यत्ता, तंजहा धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए ।”

सिद्ध धाय छ अट्ठहा कारवुधी युक्ति तथा उपपत्ति (पुत्रला—प्रमाण)भी आंस नाभनु उहु द्रव्य सिद्ध धाय छे

आंस लोखानीने लुओओ आ विषयमा आगम—प्रमाण पवु विद्यमान छे—

“कइ ण भवे ! द्रव्या पण्यत्ता ?, गोयमा ! छ द्रव्या पण्यत्ता, तंजहा धम्मत्थिकाए, अधम्मत्थिकाए, आगासत्थिकाए, पुग्गलत्थिकाए, जीवत्थिकाए, अद्दासमए ।

अर्थात्—आगमन द्रव्य केटवां छे ? गौतम ! द्रव्य छ छे—धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय आकाशास्तिकाय, पुत्रलास्तिकाय लुब्धास्तिकाय अने अद्दासमय अर्थात् आंस

तथा—कइविहा ण भवे ! सम्बद्धद्रव्या पण्यत्ता ? गोयमा ! छन्निहा सम्बद्धद्रव्या पण्यत्ता, तंजहा—धम्मत्थिकाए अधम्मत्थिकाए, नाव अद्दासमए ।”

कतिविधानि खलु भदन्त ! सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि ?, गौतम !
षडविधानि सर्वद्रव्याणि प्रज्ञप्तानि, तानि यथा-धर्मास्तिकायः, अधर्मास्तिकायः,
यावत्-अद्धासमयः, इति च्छाया ।

“ धम्मो अधम्मो आगासं, दव्वं इक्किक्कमाहियं ।

अणताणि य दव्वाणि, कालो पुग्गल जंतवो ” ॥८॥ (उक्त० अ० २८)

धर्मोऽधर्मः आकाशः, द्रव्यमेकैकमाख्यातम्

अनन्तानि च द्रव्याणि, कालः पुद्गला जन्तवः । इति च्छाया ।

कालस्य स्वरूपम्—

अर्धतृतीयद्वीपव्यापी, निर्विभागोऽनाद्यपर्यवसितः,

एकोवर्तमानः समयः कालपदार्थः । एकत्वादेवास्तिकायो नायम् ।

अर्थात्—‘ भगवन् ! सब द्रव्य कितने हैं ? ’ ‘ गौतम ! सब द्रव्य छह है—
धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धा-समय ’ (भगवतीसूत्र श २५ उ ४)

उत्तराध्ययन सूत्र (अ २८) में भी कहा है— ‘ धर्म, अधर्म और आकाश द्रव्य
एक एक कहे गये हैं । काल, पुद्गल और जीव अनन्त-अनन्त है ’ इति ।

काल का स्वरूप—

समयक्षेत्रव्यापी, निर्विभाग, आद्यन्तरहित, एकप्रदेगरूप वर्तमान समय को
‘ काल ’ कहते हैं । यह एक होने के कारण अस्तिकाय नहीं है ।

अर्थात्—‘ भगवन् ! सर्व द्रव्य केटला छे ? गौतम ! सर्व द्रव्य छ छे-धर्मास्तिकाय
अधर्मास्तिकाय यावत् अद्धासमय ’ (भगवती श २५. उ ४) उत्तराध्ययनसूत्र
(अ २८) भा पणु कल्लु छे-धर्म, अधर्म, अने आकाश द्रव्य अेक अेक कल्लु छे,
काल, पुद्गल अने जिव अनन्त-अनन्त छे

कालस्य स्वरूपम्—

समयक्षेत्र (अर्धद्वीप) व्यापी, निर्विभाग (नेना भाग न पडे तेवु), आद्यन्त-
रहित, एकप्रदेशरूप वर्तमान समयने काल कहे छे, आ अेक होवाना कारणुथी
‘ अस्तिकाय ’ नथी.

सूर्यचन्द्रादिव्योतिष्काणां गतिमाभित्य कालविभागो भवति, गतिश्च मनुष्यलोकाभ्यन्तर एव तेषाम् । दिवसरात्रिमुहूर्तपक्षमासशुक्लचतुर्दशयनवर्षयुगादीनां विभागः सूर्योदिसस्यैव लोके भवति । एवमतीतवर्तमानादयो विभागाः । यस्तु संख्यातुमशक्य उपमानमात्राण्यगम्य कालः सोऽसंख्येयः, यथा-पश्योपम, सागरोपम इत्यादि । असंख्येयादिकालज्ञानमपि भगवता मनुष्यलोकाप्रसिद्धोपमानमदर्शनेन प्ररूपितम् ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कां की गति का आभयण कर काल का विभाग होता है । सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्कां की गति मनुष्यलोक के अन्दर में ही होती है । दिन, रात मुहूर्त पक्ष मास, शुक्ल, अवन वर्ष युग आदि का विभाग सूर्य आदि की गति से ही लोक में होता है । इसी प्रकार अतीत, वर्तमान आदिका विभाग भी समझना चाहिये । किसी संख्या नहीं हो सकती, जो उपमान मात्र से गम्य है, वह काल असंख्येय है, जैसे—पश्योपम सागरोपम इत्यादि । असंख्येय आदि काल का ज्ञान भी मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमान का प्रदर्शन करके भगवान ने प्ररूपित किया है, समक जाबदिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्योदिव्योतिष्कां की गति से नहीं जाना जाता है, क्या कि वह गति सूक्ष्म है । इस क्रिये कालका व्यवहार समक्षेत्र के भीतर ही होता है । समक्षेत्र के बाहर भीष्का के अत्युच्य आदि भी गमना मनुष्यलोकप्रसिद्ध प्रमाण से ही होती है ।

सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केनी जतिना आभयधी कालने विभाग थाय उ सूर्य चन्द्र आदि ज्योतिष्केनी जति मनुष्य लोकमां ए लोक उ दिन रात, मुहूर्त, पक्ष, मास शुक्ल, अवन, वर्ष युग आदिना विभाग सूर्य आदिनी जतिधी ए लोकमां थाय उ आ प्रकारे जतीत (अतीत) वर्तमान आदिना विभाग पक्ष समकना जेधजे केनी गणतरी न यर्ष शर्क ने उपमान मात्रधी अभ्य (समल) शक्य तेषु) उ ते काल असंख्येय उ केमठे—पश्योपम सागरोपम इत्यादि । असंख्येय आदि कागनु ज्ञान पक्ष भगवाने मनुष्यलोकप्रसिद्ध उपमाननु प्रदर्शन करी प्ररूपित क्युं उ समक, जाबदिका आदि सूक्ष्म काल तो सूर्योदिव्योतिष्केनी जतिधां पक्ष जर्षी शक्यु नधी, केमठे ते अति सूक्ष्म उ ज्यधी कालने व्यवहार समक्षेत्र-अधी हीजनी अदर ए थाय उ समक्षेत्रधी अकार लोकेनां आनुष्य आदिनी जणना थाय उ ते मनुष्यलोकप्रसिद्ध प्रमाणधी ए थाय उ केम समल वेनु

समयावलिादिसूक्ष्मकालस्तु सूर्यादिज्योतिष्काणां गत्या नावगम्यः, अतिसूक्ष्मत्वात् । तस्मात् कालव्यवहारोऽर्धतृतीयद्वीप एव । अर्द्धतृतीयद्वीपाद्ब्रह्मिर्जीवानामायुष्कादिगणना तु मनुष्यक्षेत्रप्रसिद्धग्रमाणेनैव भवतीति ज्ञेयम् ।

एकोऽपि कालोऽतीतानागतपर्यायभेदैरनन्तः, अत एव भगवता—“अणताणि य द्वाणि कालो पुगल जंतवो” इत्युपदिष्टम् । वर्तमानसमयस्य तु पर्यायत्वेऽपि नानन्त्यम्, एकरूपत्वात् ।

निश्चयनयेन तु “लोकव्यापी कालः” इत्यवसीयते, अत एव भगवता—“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुगल जंतवो । एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” । इत्यभिहितम् । धर्मोऽधर्म आकाशः कालः पुद्गला जन्तवः । एष लोक इति प्रज्ञप्तः, जिनर्वरदर्शिभिः । इति च्छाया ।

काल यद्यपि एक ही है, तो भी वह भूत-भविष्यत्पर्याय भेद से अनन्त है, इसीलिये भगवानने कहा है—‘अणताणि य द्वाणि कालो पुगल जंतवो’ इति ।—काल, पुद्गल और जीव, ये सभी अनन्त है । वर्तमान समय पर्यायसहित होते हुए भी अनन्त नहीं है, क्योंकि वह एक ही है ।

निश्चयनय से तो काल लोकव्यापी माना जाता है, अतएव भगवानने कहा है—

“धम्मो अधम्मो आगास, कालो पुगल जंतवो ।

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” ॥ १ ॥

जे के काल ओके ज छे तो पणु भूत भविष्यना लेदधी अनन्त छे, तेथी भगवाने कहु छे—‘अणताणि य द्वाणि कालो पुगल जंतवो’ इति, काल पुद्गल अने एव ओ द्रव्ये अनन्त छे वर्तमान समय पर्यायसहित होवा छता पणु अनन्त नथी केभके ते ओके ज छे

निश्चयनयथी तो काल लोकव्यापी मानवाभा आवे छे आथी भगवाने कहु छे के—“धम्मो अधम्मो आगासं कालो पुगल जंतवो ।

एस लोगोत्ति पन्नत्तो जिणेहि वरदंसिहि” ॥

वरदशी—दोहादोहने जेवावाणा जिन भगवाने ‘धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकारास्तिकाय, काल, पुद्गलास्तिकाय अने एवास्तिकाय, ओज दोह छे’ ओभ कहु छे

एष सामान्यरूपेण प्रसिद्धो लोकः—अनन्तरोक्तद्रव्यपदकसमुदायरूप इति भावः ।

कालस्य—(१)—अरूपित्वम्, (२)—अचेतनत्वम्, (३)—अक्रियत्वम्, (४)—वर्तनाहेतुत्वं चेति गुणाः । (१)—अतीतत्वम्, अनागतत्वम्, (२)—वर्तमानत्वम्, (३)—अगुरुत्वम् चेति पर्यायाः ।

अयं द्रव्यसमूहकालमात्रगुणमदेन पञ्चधा ज्ञायते । यथा—द्रव्यत एकः काल क्षेत्रतः—अर्थात्तृतीयद्वीपप्रमाणः, कालतः—आद्यन्तरहितः, मासतः—अस्वी-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जित इति, गुणतः—वर्तनालक्षणः, इति ।

वर्तना—सोकासोके को रेखनबासे जिन भगवानने धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय माकासास्तिकाय काल पुत्रस्मस्तिकाय और जीवास्तिकाय इन सबको जर्नात् इनके समुदाय को लोक कहा है ।

उपरिनिर्दिष्ट छ द्रव्यों के समुदाय को भगवानने सामान्यतया लोक कहा है ।

काल के—अरूपित्व अचेतनत्व अक्रियत्व वर्तनाहेतुत्व ये चार गुण हैं । अतीतत्व अनागतत्व वर्तमानत्व, अगुरुत्व ये चार पर्याय हैं ।

यह काल—द्रव्य क्षेत्र काल मात्र और गुण के क्षेत्र छ पांच प्रकार से जाना जाता है । जैसे—द्रव्य से काल एक है, क्षेत्र से समयक्षेत्रप्रमाणवाला काल से आद्यन्तरहित भाव से अस्वी, जर्नात् वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित और गुण से वर्तनालक्षणवाला है ।

उपरि दर्शायेला छ द्रव्योंना समुदायने ज्ञायमाने सामान्य रीते लोक कहिले छ

ज्ञायमाना—अरूपित्व, अचेतनत्व, अक्रियत्व आने वर्तनाहेतुत्व, जे चार गुण छ आने अतीतत्व अनागतत्व वर्तमानत्व तथा अगुरुत्व जे चार पर्याय छ

आ ज्ञान—द्रव्य क्षेत्र ज्ञान मात्र आने अज्ञाना जेदधी पांच प्रकारे ज्ञाय छ जेमेके—द्रव्यधी ज्ञान जेके क्षेत्रधी अतीतधी प्रभाव ज्ञानधी आद्यन्तरहित, ज्ञानधी अस्वी—वर्ण—गन्ध—रस—स्पर्श—रहित छ आने अज्ञानधी वर्तनालक्षणवाला छ

अथ पुद्गलास्तिकायः ।

तत्र-पुद्गलशब्दार्थः ।

पूर्यते=संहन्यते-परस्परं संयुज्य संघीभूय नूतनघनघटावदेकीभवति, गलति च=विच्छिन्नमुक्तावलीमणिवद् विकीर्णो भवति-इति पुद्गलः । पूरण-गलन-धर्म इत्यर्थः । पुद्गलश्चासात्रस्तिकायश्चेति पुद्गलास्तिकायः ।

पुद्गलास्तिकायस्य घटादिकार्यान्यथानुपपत्तेः प्रत्यक्षदर्शनाच्च सत्ता सिद्धैव ।

पुद्गलास्तिकाय—

‘पुद्गल’ शब्द का अर्थ—

आपस में मिलकर इकट्ठे होकर नवीन घटघटादि के रूप में जो एकमेक हो जाते हैं, और जो गल जाते हैं अर्थात् टूटी हुई मोतियों की माला की भांति बिखर जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं । तात्पर्य यह है कि—जिसमें पूरण और गलन धर्म हो वह पुद्गल है, पुद्गलरूप अस्तिकाय ‘पुद्गलास्तिकाय’ कहलाता है ।

अगर ‘पुद्गलास्तिकाय’ न होता तो घट आदि कार्य नहीं बन सकते थे । इस कारण, तथा प्रत्यक्ष दिखाई देने के कारण भी पुद्गलास्तिकाय की सत्ता भलीभांति सिद्ध है ।

पुद्गलास्तिकाय—

पुद्गल शब्दको अर्थ—

परस्पर भंगीने अेकत्र यथने नवीन धन-घटादिना रूपमा ने अेक-अेक यथ नय छे, अने ने गणी नय छे अर्थात् टुटी गअेदी मोतीअेनी भाणा प्रभाअे विभाअ नय छे, ते पुद्गल कडेवाय छे तात्पर्य अे छे अे-अेमा पूरण अने गलन धर्म होय ते पुद्गल छे, पुद्गलरूप अस्तिकाय ते पुद्गलास्तिकाय कडेवाय छे

अगर पुद्गलास्तिकाय न होत तो घट आदि कार्य अनी शकत नहि आ कारणथी, तथा प्रत्यक्ष देणी शकय छे ते कारणथी पण पुद्गलास्तिकायनी सत्ता इदी रीते सिद्ध छे.

पुद्गललक्षणम्—

रूपवत्त्वं पुद्गलानां लक्षणम्, अत्र रूपं मूर्तस्ववर्णादिकम् । यद्यपि परमाणुमसृतयः सूक्ष्माः पुद्गलास्तेषां गुणाभातीन्द्रियतया नेन्द्रियैश्चान्ते तथापि वादरत्कपरूपे परिणामविशेषे तेषामेवेन्द्रियग्राह्यतया रूपवत्त्व प्रतीयते ।

अतीन्द्रिये परमाणुमसृतिपुद्गलेऽतीन्द्रिये धर्मास्तिकायादौ चैतानाम् विशेषः— धर्मास्तिकायादीनामिन्द्रियविषयत्वामावाहतीन्द्रियत्वपरूपित्वं च, परमाणुमसृतिपुद्गलानां त्वतीन्द्रियत्वेऽपि रूपित्वमिति ।

पुद्गल का लक्षण—

पुद्गलकोका लक्षण 'रूपवत्त्व' है । जिस में रूप, रस गन्ध और स्पर्श पाया जाय अर्थात् जो मूर्तिका हो वह पुद्गल है । यद्यपि परमाणु अर्थात् पुद्गल बहुत सूक्ष्म हैं, और अतीन्द्रिय होने के कारण उनके गुण इन्द्रियां द्वारा नहीं ग्रहण किये जाते, तथापि जब उन पुद्गलको का वादर लक्षण के रूपमें परिणमन होता है तब वे इन्द्रियोद्धार प्राप्त हो जाते हैं और उनका रूपवत्त्व प्रतीत होने लगता है ।

परमाणु अर्थात् अतीन्द्रिय पुद्गलको में और धर्मास्तिकाय अर्थात् अतीन्द्रिय द्रव्यों में इतना अन्तर है कि—धर्मास्तिकाय अर्थात् अरूपी द्रव्य कभी इन्द्रियों के विषय नहीं होते अतः वे अतीन्द्रिय और अरूपी हैं किन्तु परमाणु अर्थात् पुद्गल अतीन्द्रिय होने पर भी रूपी हैं ।

पुद्गलको लक्षण—

पुद्गलकोको लक्षण रूपवत्त्व है; जेभा रूपं, रस, गन्ध अने स्पर्श जेवामा आवे अर्थात् जे मूर्तिमान कोय ते पुद्गल है जे जे परमाणु अर्थात् पुद्गल लक्ष्ण अ सूक्ष्म है अने अतीन्द्रिय कोवाना कारणे तेना सुषु धन्द्रियो द्वारा अलक्ष्ण करी शकता नथी; तेा यद्य अन्तरे ते पुद्गलकोको वादर लक्षण रूपमा परिणमन गण्य है त्वारे ते धन्द्रियो द्वारा अलक्ष्ण वर्ध जाय है अने तेनु रूपवत्त्व प्रतीत यथा जाये है ।

परमाणु अर्थात् अतीन्द्रिय पुद्गलकोकां अने धर्मास्तिकाय नयेरे अतीन्द्रिय द्रव्योंमा अलक्ष्ण अन्तर-इराहार है जे—धर्मास्तिकाय अर्थात् अरूपी द्रव्य अन्तरेय पक्ष धन्द्रियोना विषय यत्ता नथी, तेथी ते अतीन्द्रिय अने अरूपी है परन्तु परमाणु अर्थात् पुद्गल अतीन्द्रिय कोका अर्थात् रूपी है

पुद्गलानां प्रदेशसंख्या—

परमाणुमारभ्याचित्तमहास्कन्धपर्यन्ताः पुद्गला विविधपरिणामा भवन्ति ।
 तेषां प्रदेशाः संख्याता असंख्याता अनन्ताश्च यथासंभवं भवन्ति ।
 तत्र—संख्यातपरमाणुसंयोगसंजातः स्कन्ध संख्यातप्रदेशी, असंख्यातपरमाणु-
 घटितः स्कन्धोऽसंख्यातप्रदेशी, अनन्तपरमाणुसंहतिसमुद्भूतश्च स्कन्धोऽनन्त-
 प्रदेशी भवति । परमाणोस्तु निरंशत्वान्नास्ति प्रदेश इति ।

पुद्गलानां क्षेत्रस्थितिः—

परमाणौ विभागाभावादेकस्मिन्नेव प्रदेशे लोकाकाशस्य परमाणुरव-

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुसे लेकर अचित्त महास्कन्ध तक सब पुद्गल विविध परिणमन वाले होते हैं । उनके प्रदेश यथासंभव सख्यात असख्यात अथवा अनन्त होते हैं । सख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध सख्यातप्रदेशी कहलाता है । असख्यात परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध असख्यातप्रदेशी और अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त प्रदेशी कहलाता है । परमाणु निरंश होता है—उसके अनेक भाग नहीं हो सकते, अत एव वह अप्रदेशी है ।

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

पुद्गलों की प्रदेशसंख्या—

परमाणुओं की लक्षणों से अचित्त महास्कन्ध सुधी सर्व पुद्गल विविध परिणमनवाण होय छे तेना प्रदेश यथासंभव सख्यात, असख्यात अथवा अनन्त होय छे, सख्यात परमाणुओं के संयोग से बना हुआ स्कन्ध सख्यातप्रदेशी कहलाय छे, असख्यात परमाणुओं से बना हुआ स्कन्ध असख्यातप्रदेशी अथवा अनन्त परमाणुओं से निष्पन्न स्कन्ध अनन्त-प्रदेशी कहलाय छे, परमाणु निरंश होय छे, तेना अनेक भाग नहीं हो सकत नथी तेथी ते अप्रदेशी छे

पुद्गलों की क्षेत्रस्थिति—

परमाणु के विभाग न होने के कारण लोकाकाश के एक ही प्रदेश में उसकी

गाहते । इष्युक्स्त्वन्वभ तस्यैकस्मिन् प्रदेशे, इष्योश्च प्रदेशयोरवगाहते । तथा
 इष्युक्स्त्वन्वो ङाकाकाशस्यैकस्मिन् प्रदेशे, इष्योः प्रदेशयोस्त्रिषु प्रदेशेषु
 वावगाहते । एवं चतुरणुकादीनां संख्यात्प्रदेशाऽसंख्यात्प्रदेशानन्तप्रदेशानां
 स्त्वन्वानामवगाहनं लोकाकाशस्यैकप्रदेशमारम्य संख्यात्प्रदेशात्प्रदेशपर्यन्तेषु
 भवति ।

नन्वेकस्मिन्नाकाशप्रदेशेऽन्यपीयसि कश्चनन्तप्रदेशिनः स्त्वन्वाः स्वानं
 क्त्वन्ते, न हि कलशे सिन्धोः समावेशं पश्यामः ?

अवगाहना होती है । इष्युक् अर्थात् दो परमाणु बाह्य स्त्वन्व लोककाश के एक प्रदेश में
 या दो प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी प्रकार तीन परमाणुओं बाह्य स्त्वन्व लोककाश
 के एक प्रदेश में, दो प्रदेशों में अथवा तीन प्रदेशों में अवगाहन करता है । इसी भाँति
 चतुरणुक (चार अणुओं वाले) आदि स्त्वन्वों की अवगाहना, तथा संख्यात्प्रदेशी,
 असंख्यात्प्रदेशी और अनन्तप्रदेशी एक के स्त्वन्वों की अवगाहना लोककाश के एक
 प्रदेश से लेकर संख्यात् तथा असंख्यात् प्रदेशों में होती है ।

टीका—आकाश के एक छोटे से प्रदेश में अनन्तप्रदेशी स्त्वन्व का समावेश
 किस प्रकार हो सकता है, गागर में सागर का समावेश होना तो कहीं दिखार्
 नहीं देता ।

अवगाहना लोक छे इष्युक् अर्थात् ते परमाणुवाण्ण स्त्वन्व लोककाशना लोक
 प्रदेशमां अथवा ते प्रदेशोमां अवगाहन करे छे जे प्रमाद्ये त्रय अणुवाण्ण
 स्त्वन्व लोककाशना लोक प्रदेशमां, ते प्रदेशोमां अथवा त्रय प्रदेशोमां अवगाहन
 करे छे जे प्रमाद्ये च चार अणुवाण्ण आदि स्त्वन्वी अवगाहना, तथा
 संख्यात्प्रदेशी, असंख्यात्प्रदेशी जने अनन्तप्रदेशी सुधीना स्त्वन्वी अवगाहना
 लोककाशना लोक प्रदेशवी लधने संख्यात् तथा असंख्यात् प्रदेशोमां लोक छे

शुद्ध—आकाशना लोक नाना प्रदेशमां अनन्त प्रदेशी स्त्वन्व समावेश डेनी
 रीते कर्ष शक्ये, आकाशमां सागरने समावेश कथेती कर्ष ठेकाद्ये देव्यते नथी ?

अत्र ब्रूमः—पुद्गलस्य परिणमनशक्तिरेव तादृशी यतः परमब्रह्मस्तादृशः परिणामो जायते, येनानन्तप्रदेशिन स्कन्धाः प्रदेशमेकं नभसः प्रविशन्ति । अथवा गगनस्य तादृशी त्रिचित्रावगाहदानशक्तिर्यतोऽनन्तप्रदेशिनां स्कंधाना तस्यैकस्मिन् प्रदेशे समावेशः सिध्यति । यथा अतिघनीभूतलोहगोलकावगाह-
नान्निरवकाशे क्लिफाकाशदेशे भस्त्रानिलसमुद्भूताः पावकावयवाः समाविशन्ति । यदि रन्ध्ररहिताऽप्योगोलक शीतलीकतु वारि निक्षिप्यते, तदा तदयोगोलक-
परिपूरितनिरन्तराकाशदेशे तस्मिन्नेव वारिकणा अव्याहृतं प्रविशन्ति ।

समाधान—पुद्गल मे परिणमनशक्ति ही ऐसी है, जिससे उसका अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन होता है । इसी कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्ध भी आकाश के एक प्रदेश में समा जाते हैं । अथवा आकाश में ऐसी कुछ त्रिचित्र अवकाशदान करने की शक्ति है कि उसके कारण अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का भी आकाश के एक ही प्रदेश में समावेश हो जाता है । जैसे—अत्यन्त सघन लोहे के गोले के अवगाहन से निरवकाश आकाश-
प्रदेश में धौकनी की वायु से वृद्धि पाये हुए अग्नि के अवयव प्रवेश कर जाते हैं । तात्पर्य यह है कि—लोहे का गोल बहुत ठोस होता है, वह आकाश के जिन प्रदेशों में मौजूद है, वहा जगह दिखाई नहीं देती, फिर भी धौकनी की वायु की प्रेरणासे उन्हीं आकाश प्रदेशों में अग्नि का प्रवेश हो जाता है, तत्पश्चात् छिद्ररहित उस लोहे के गोले को ठडा करने के लिये उस पर पानी डाल जाय तो जिन आकाश प्रदेशों में लोहे का गोल और पावक—अग्नि है, उन्हीं में जल के कण भी वेरोकटोक प्रवेश कर जाते हैं ।

समाधान—पुद्गलवैभा परिणमनशक्ति न् ऐवी छे न्थी तेनु अत्यन्त सूक्ष्म परिणमन डाय छे न्थे कारले अनन्तप्रदेशी स्कंध पणु आकाशना न्थेक प्रदेशमां समाधि नय छे, अथवा आकाशमा न्थेवी केधि विचित्र अवकाशदान करवानी शक्ति छे के—ते कारणुथी अनन्तप्रदेशी स्कंधाना पणु आकाशना न्थेक न्थे प्रदेशमा समावेश थधि नय छे न्थेभके—अत्यन्त सघन लोहाना गोणाना अवगाहनथी निरवकाश आकाश प्रदेशमा धमणुना वायुथी वृद्धि पाभेला अग्निना अवयवो प्रवेश करी नय छे, तात्पर्य न्थे छे के—लोहाना गोणो भहु न्थे ठोस (चोलाणु विनाना) डाय छे, ते आकाशना न्थे प्रदेशोमा भोणुद छे, त्या न्थे ग्या देभाती नथी, तो पणु धमणुनी वायुनी प्रेरणुथी ते आकाश प्रदेशोमा अग्निना प्रवेश करी नय छे ते पछी छिद्ररहित ते लोहाना गोणाने ठडा करवा माठे तेना उपर पाणुी नाभवामा आवे तो न्थे आकाश—प्रदेशोमा लोहाना गोणो अने अग्नि छे, तेमा पाणुीना टीपा पणु शक—ठोड (अटकाव्या) विना प्रवेश करी नय छे

यथा वा एकप्रदीपप्रमायामेकप्रदीपप्रमासमावेशः । यथा वा एककर्मपरि-
मितवारद अक्षकर्मपरिमितसुवर्णसमावेशो भवति ।

अनन्तप्रदेशी अभित म्हास्त्वः केवलिसमुद्रातवत् सकल्लोकभ्यापी
भवति । स च विस्तारागत्या प्रथमसमयेऽसंख्यातयोन्नविस्तरेण दण्डाकारेण
परिणमति । द्वितीयसमय कपाटरूपेण, तृतीयसमय मन्थानरूपेण, चतुर्थसमये
प्रतरमापूर्य सकल्लोक भ्याप्नोति, पञ्चमसमये प्रतरं संहरति, षष्ठसमये मन्थानं
मनक्ति, सप्तमसमये कपाटं च, अष्टमसमये दण्डाकारं संहृत्य लङ्घः प्रविकीर्णो
भवति ।

अथवा—एक दीपक के प्रकाश में अनेक दीपकों का प्रकाश समा जाता है ।

अथवा एक कर्म—माद्य (मापविरोध) परिमित पारे में तो कर्म परिमित होने का
समावेश हो जाता है ।

अनन्तप्रदेशी अभित म्हास्त्वः केवलिसमुद्रात के समान समस्तलोक-
भ्यापी होता है । वह स्वाभाविक गति से, प्रथम समय में असंख्यातयोन्नविस्तृत
दण्ड के आकार में परिणत होता है । दूसरे समय में वह कपाट के रूप में परिणत होता है,
और तीसरे समय में मन्थान के रूप में हो जाता है, चौथे समय में प्रतर पूर्ण करके सम्पूर्ण
लोक में व्याप्त हो जाता है । फिर पाँचवें समय में प्रतर को सिकोड़ता है, छठे
समय में मन्थान को, सातवें समय में कपाट को, और आठवें समय में दण्डाकार को यह
सिकोड़ता है । उसके अनन्तर वह लण्ड लण्ड होकर बिलर जाता है ।

अथवा—अनेक दीपकना प्रकाशमा अनेक दीपकाना प्रकाश समर्थ न्य छे
अथवा अनेक कर्म (मापविरोध) परिमित पारमा अनेकरो कर्म परिमित सोनाने
समावेश गर्ध न्य छे ।

अनन्तप्रदेशी अभित म्हास्त्वः, केवलिसमुद्रातनी समान समस्तलोक
भ्यापी होय छे ते स्वाभाविक अतिशी प्रथम समयमा असंख्यातयोन्नविस्तृत
दण्डना आकारमा परिणत होय छे । पीछे समयमा ते कपाटना रूपमा परिणत
होय छे अने तीसरे समयमा मन्थान (दही वदोवधाने स्वेधे) ना रूपमा होय
छे अथवा समयमा प्रतर पूर्ण करीने होयमा व्याप्त गर्ध न्य छे । दूरी पाँचमा
समयमा प्रतरने सकेय छे छुम समयमा मन्थाने, सातमा समयमा कपाटने
अने आठमा समयमा दण्डाकारने अे सिकोडे छे त्थार पछी ते ज ६-ज ६ अर्थने
विशेषार्ध न्य छे ।

पुद्गलानामुपकारः—

शरीरवाङ्मनःप्राणादयः पुद्गलपरिणामा गमनाऽऽदान-वचन-चिन्तन-प्राणनादिभावेन जीवानुपकुर्वन्ति, अतः शरीराद्याकारेण पुद्गला जीवानामुपकार कुर्वन्ति । तत्र शरीरं पञ्चविधम्, औदारिकं, वैक्रियम्, आहारक, तैजसं, कर्मणं चेति ।

अथ जीवानां ये सुखदुःखजीवितमरणरूपाः परिणामा भवन्ति तत्र सुखादिरूपेण जीवपरिणामे निमित्तं पुद्गला इति सिद्ध जीवोपकारित्वं पुद्गलानाम् ।

पुद्गलों का उपकार—

शरीर, वचन, मन और प्राण आदि पुद्गलों के परिणामविशेष—गमन, आदान, वचन, चिन्तन और प्राणन (सांस लेना) आदिरूप से जीवों का उपकार करते हैं अतः शरीर आदि के रूप में पुद्गल ही जीवों का उपकार करते हैं । इनमें शरीर पांच प्रकार का है— (१) औदारिक (२) वैक्रिय (३) आहारक (४) तैजस और (५) कर्मण ।

प्राणियों में सुख दुःख जीवन और मरण रूप जो परिणाम होते हैं, उन सब परिणामों में पुद्गल कारण है, अतः यह सिद्ध हुआ कि पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं ।

पुद्गलानां उपकार—

शरीर, वचन, मन अने प्राण आदि पुद्गलाना परिणामविशेष—गमन, आदान, वचन, चिन्तन अने प्राणन (सांस लेना) आदि रूपों में जीवों का उपकार करते हैं, अतः शरीर आदिना रूपमा पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं, तेमा शरीर पांच प्रकारना छे—(१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कर्मण ।

प्राणियोंमा सुख, दुःख, जीवन अने मरणरूप जो परिणामना थाय छे, ते सर्व परिणामानामा पुद्गल कारणरूप छे तेथी अ सिद्ध थाय छे छे पुद्गल जीवों का उपकार करते हैं ।

पुद्गलानां विशेषगुणाः—

वर्णगन्धरसस्पर्शाः पुद्गलानां विशेषगुणाः सहभाविन परिणामाः ।
 शब्द - वाच - सौम्य - स्पर्श - संस्वान - मेद - तम - छाया - ऽऽप्तयो-द्योतादिभिः
 पर्यायैः पुद्गला लक्ष्यन्ते-ज्ञायन्ते, इत्याद्येन भगवता पुद्गलानां लक्षणतया
 कथ्यते-प्रोक्ताः । तथाहि—

“सर्वपार उज्जोयो, पमा छायाऽऽप्तवृत्ति वा

वण्णरसगणकासा, पुगलाज तु लक्ष्णं ॥१॥” (उच० अ० २८)

पुद्गलों के विशेष गुण—

वर्ण, गन्ध रस और स्पर्श पुद्गलों के विशेष (सहाधारण) गुण हैं—सहभावी परिणाम हैं । शब्द, वाच सूक्ष्मता सूक्ष्मता, संस्वान (आकार) मेद, तम, छाया अतएव उद्योत आदि पर्यायों के द्वारा पुद्गल कसा जाता है—जाना जाता है । इस वाक्य से भगवान् ने शब्द आदि को पुद्गलों का लक्षण कहा है, वह इस प्रकार—
 “सर्वपार उज्जोयो, पमा-छाया-ऽऽप्तवृत्ति वा, वण्णरसगणकासा, पुगलाज तु लक्ष्णं” शब्द, आकार उद्योत प्रमा छाया अतएव वर्ण, रस गन्ध और स्पर्श ये सब पुद्गलों के लक्षण हैं । गाथा में ‘छायाऽऽप्तवृत्ति यथा इति’ शब्द आदि के अर्थ में है । इस आदि शब्द से वर्ण आदि का प्रमाण हो सकता वा फिर भी उन्हें कसा करने का कारण यह है कि—वे नित्य सहभावी गुण हैं ।

पुद्गलानां विशेष गुण—

वर्ण गन्ध रस और स्पर्श पुद्गलानां विशेष (सहाधारण) गुण हैं—
 सहभावी परिणाम से शब्द, वाच सूक्ष्मता, सूक्ष्मता संस्वान (आकार) मेद, तम, छाया अतएव उद्योत आदि पर्यायों की लक्ष्य शक्यता से ते अतएव लक्षणतया शब्द आदि पुद्गलानां लक्षणं कथं से ते वा प्रमाद्ये से—
 “सर्वपार उज्जोयो पमा-छाया-ऽऽप्तवृत्ति वा वण्णरसगणकासा, पुगलाज तु लक्ष्णं” शब्द आकार उद्योत प्रमा, छाया, अतएव, वर्ण रस गन्ध और स्पर्श को पुद्गलानां लक्षणं से आचारानां-‘छायाऽऽप्तवृत्ति’ आदि ‘इति’ शब्द आदिना अर्थमा से प्रमाद्ये आदि शब्दों की वृत्ति वृत्तेषु लक्ष्यं कथं शक्यं से ते वा तेने अतएव लक्ष्यते-कारणं से से ते नित्य सहभावी गुणं से ।

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा । वर्णरसगन्धस्पर्शाः
पुद्गलानां तु लक्षणम् । इति च्छाया ।

“छायाऽऽतवृत्ति” इत्यत्र ‘इति’ शब्द आद्यर्थकः । तेनैव वर्णादीना ग्रहणेऽपि
पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम् ।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो
द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् ।
स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं
पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

पुद्गलविभागः-

पुद्गलः संक्षेपतो द्विविधः-परमाणु-स्कंधभेदात् ।

वर्ण पांच प्रकार का है-काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद । सुगन्ध दुर्गन्ध
के भेद से गन्ध दो प्रकार का है । रस के पांच भेद हैं--तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा,
और मीठा । स्पर्श के आठ भेद हैं--कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना,
और रूखा । संस्थान पांच प्रकार का है-वृत्त (गोल), त्र्यस्र (त्रिकोना), चतुरस्र
(चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल-(गोल-मटोल)

पुद्गल के भेद—

संक्षेप से पुद्गल के दो भेद हैं-परमाणु और स्कन्ध ।

वर्ण पांच प्रकारना छे-काणो, लीलो, लाल, पीणो अने घोणो सुगंध अने
दुर्गंधना लेदथी गंध के प्रकारना छे रसना पांच लेद छे-तीणो, कडुवो, कषायेलो,
आटो अने मीठो, स्पर्शना आठ लेद छे-कठणु, कोमल, भारी, हलके, शीत, उष्ण,
चिकणो अने रूख सस्थान पांच प्रकारना छे-वृत्त-गोण, त्रिकोण, चतुरकोण,
आयु अने गोणमटोण

पुद्गलानां भेद

संक्षेपथी पुद्गलानां के भेद छे-(१) परमाणु अने (२) स्कंध

परमाणुस्वरूपम्—

तत्र परमाणुस्य सकलविभागान्तर्वर्ती निरंशः परस्परसंयुक्तः, सूक्ष्मस्वादि-
न्द्रियव्यापारातीतः, एकैकवर्णं-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, द्रव्यशुद्धस्वभावाद्यचित्तमहा-
स्वल्पपर्यन्तानां स्थूल-सूक्ष्म-स्वल्पकार्याणां कारणरूपो नित्यमेति ।

उक्तञ्च भगवता भगवतीसूत्रे—(श्र २० उ० ५)—

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्रक का अन्तिम विभाग है। वह निरंश है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिया की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध एक रस और दो स्पर्शोत्पि युक्त है। द्रव्यशुद्ध स्वभावसे लेकर अन्तिम महास्वल्प पर्यन्त स्थूल एवं सूक्ष्म स्वरूप कर्म का कारण है और नित्य है। भगवानने भगवतीसूत्र (श्र २, उ ५) में कहा है—

प्रश्न—भगवन्! परमाणु पुद्रक कितने वर्णबाह्य कितने गंध बाह्य, कितने रसबाह्य, और कितने स्पर्शबाह्य कहा गया है ?।

उत्तर—जीतम! एक वर्णबाह्य एक गंध बाह्य, एक रसबाह्य और दो स्पर्शबाह्य कहा गया है।

एक वर्णबाह्य होता है तो क्वाचित् कास्य क्वाचित् मीम्य, क्वाचित् सास्य,

परमाणु स्वरूप—

परमाणु को पुद्रकलने अन्तिम विभाग है तो निरंश (असंयुक्त) है परस्पर असंयुक्त है सूक्ष्म होवाना कारणे इन्द्रियोनी प्रवृत्ति तेषां वर्ध शक्यती नहीं। कोक वक्ष कोक जघ, कोक रस जने के स्पर्शाधी युक्त है द्रव्यशुद्ध स्वभावी लक्ष्नि अन्तिम महास्वल्प पर्यन्त स्थूल जने सूक्ष्मस्वल्पकार्य कायतु कारण है जने नित्य है अजवाने भगवती सूत्र (श्र २० उ ५) में कहु है—

प्रश्न—‘भगवन्! परमाणु पुद्रकलने कितने वर्णबाह्य कितने गंध बाह्य, कितने रसबाह्य जने कितने स्पर्शबाह्य कहु है ?।

उत्तर—जीतम! कोक वर्णबाह्य कोक जघबाह्य कोक रसबाह्य जने के स्पर्शाधी कहु है”

“कोक वर्णबाह्य कोक है तो क्वाचित् कास्य, क्वाचित् मीम्य क्वाचित् सास्य, क्वाचित् पीतु जने क्वाचित् श्वेत कोय है। कोक जघबाह्य कोक है तो क्वाचित्

शब्दोऽन्धकार उद्योतः प्रभा छाया आतप इति वा । वर्णरसगन्धस्पर्शाः
पुद्गलानां तु लक्षणम् । इति च्छाया ।

“छायाऽऽतवृत्ति” इत्यत्र ‘इति’ शब्द आद्यर्थकः । तेनैव वर्णादीनां ग्रहणोऽपि
पुनरुपादानं नित्यसहभावित्वबोधनार्थम् ।

तत्र वर्णः पञ्चधा, कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्ल-भेदात् । गन्धो
द्विविधः-सुरभिरसुरभिश्च । रसः पञ्चविधः-तिक्त-कटु-कषाया-ऽम्ल-मधुर-भेदात् ।
स्पर्शोऽष्टधा-कठिन-मृदु-गुरु-लघु-शीतो-ष्ण स्निग्ध-रूक्ष-भेदात् । संस्थानं
पञ्चविधम्-वृत्त-त्र्यस्र-चतुरस्र-ऽऽयत-परिमण्डल-भेदात् ।

पुद्गलविभागः-

पुद्गलः सक्षेपतो द्विविधः-परमाणु-स्कन्धभेदात् ।

वर्ण पांच प्रकार का है-काला, नीला, लाल, पीला, और सफेद । सुगन्ध दुर्गन्ध
के भेद से गन्ध दो प्रकार का है । रस के पांच भेद हैं-तीखा, कडुआ, कषैला, खट्टा,
और मीठा । स्पर्श के आठ भेद हैं-कठिन, कोमल, भारी, हल्का, शीत, उष्ण, चिकना,
और रूखा । संस्थान पांच प्रकार का है-वृत्त (गोल), त्र्यस्र (त्रिकोना), चतुरस्र
(चौकोर), आयत (लम्बा) और परिमण्डल-(गोल-मटोल)

पुद्गल के भेद—

सक्षेप से पुद्गल के दो भेद हैं-परमाणु और स्कन्ध ।

वर्ण पांच प्रकारना छे-काणो, लीलो, लाल, पीणो अने धोणो सुगंध, अने
दुर्गंधना लेदथी गंध के प्रकारना छे रसना पांच लेद छे-तीखो, कडवो, कषायेदो,
आटो अने भीठो, स्पर्शना आठ लेद छे-कठणु, कोमल, भारी, हलको, शीत, उष्ण,
चिकणो अने रूख सस्थान पांच प्रकारना छे-वृत्त-गोण, त्रिकोण, चतुरकोण,
लाणु अने गोणमटोण

पुद्गलाना भेद

सक्षेपथी पुद्गलाना के भेद छे-(१) परमाणु अने (२) स्कंध

परमाणुस्वरूपम्—

सत्र परमाणुश्च सकलविभागान्तर्गतीं निरक्षः परस्परसंयुक्तः, सूक्ष्मत्वादि-
न्द्रियव्यापारातीत, एकैकवर्ण-गन्ध-रस-द्विस्पर्शयुक्तः, इत्युक्तस्त्वभावापिक्तमहा
स्त्वपर्यन्तानां स्पृह-सूक्ष्म-स्त्वकार्याणां कारणरूपो निस्पद्येति ।

उक्तञ्च मगधता मगधतीसूत्रे-(श्र २० उ० ५) —

परमाणु का स्वरूप—

परमाणु, पुद्गल का अन्तिम विभाग है। यह निरक्ष है। परस्पर असंयुक्त है। सूक्ष्म होने के कारण इन्द्रिया की उसमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। एक वर्ण, एक गन्ध, एक रस और दो स्पर्शसि युक्त है। इच्छुक्त स्त्वसे लेकर अन्तिम महास्त्व पर्यन्त स्पृह एवं सूक्ष्म स्त्वभरूप कार्य का कारण है और निरक्ष है। मगधाने मगधतीसूत्र (श्र २०, उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-मगधन् । परमाणु पुद्गल कितने वर्णवास्य कितने गंध वास्य, कितने रसवास्य, और कितने स्पर्शवास्य कहा गया है ? ।

उत्तर-श्रीतम । एक वर्णवास्य एक गंध वास्य, एक रसवास्य और दो स्पर्शवास्य कहा गया है ।

एक वर्णवास्य होता है तो क्याचित् काका क्याचित् मौस्य, क्याचित् स्यक,

परमाणु स्वरूप—

परमाणु जो पुद्गलने अन्तिम विभाग है ते निरक्ष (अक्षरहित) है परस्पर असंयुक्त है सूक्ष्म होवान् अस्त्रे इन्द्रियोनी प्रवृत्ति तेमां वर्णं शक्यी नथी। जोक वक्ष जोक जध जोक रस अने दो स्पर्शशी युक्त है। इच्छुक्त स्त्वधरी लक्ष्मि अक्षित महास्त्व पर्यन्त स्पृह अने सूक्ष्मस्त्वभरूप कार्यत अस्त्रु है अने नित्य है मगधाने मगधती सूत्र (श्र. २ उ० ५.)मां कस्यु है—

प्रश्न- 'मगधन् । परमाणु पुद्गल केंदवा वर्णवाणु केंदवा जधवाणु केंदवा रसवाणु अने केंदवा स्पर्शवाणु कस्यु है ?

उत्तर-श्रीतम । जोक वर्णवाणु जोक जधवाणु जोक रसवाणु अने दो स्पर्शवाणु कस्यु है”

“जोक वक्षवाणु जोष है तो कदाचित् काणु, कदाचित् बीसु कदाचित् लाव, कदाचित् पीणु अने कदाचित् श्वेत जोष है जोक जधवाणु जोष है तो कदाचित्

“परमाणुपोग्गले णं भंते ! कतिवन्ने, कतिगंधे, कतिरसे, कतिफासे पन्नत्ते ?, गोयमा ! एगवन्ने, एगगंधे, एगरसे, दुप्फासे पन्नत्ते, तंजहा-जइ एगवन्ने-सिय कालए, सिय नीलए, सिय लोहिए, सिय ढालिदे, सिय सुक्किल्ले । जइ एगगंधे-सिय सुब्भिगंधे, सिय दुब्भिगंधे । जइ एगरसे-सिय तित्ते सिय कडुए सिय कसाए, सिय अंक्विले, सिय महुरे । जइ दुप्फासे-सिय सीए य निद्धे य १, सिय सीए य लुक्खे य २, सिय उसिणे य निद्धे य ३, सिय उसिणे य लुक्खे य ४ ” इति ।

परमाणुपुद्गलः मदन्त ! कतिवर्णः, कतिगन्ध, कतिरसः, कतिस्पर्शः प्रज्ञप्तः ? गौतम ! एकवर्णः, एकगन्धः, एकरसः, द्विस्पर्शः प्रज्ञप्तः । तद्यथा-यदि एकवर्णः-स्यात् कालकः, स्यात् नीलकः, स्यात् लोहितः, स्यात् हारिद्रिः, स्यात् शुक्रः । यदि एकगन्धः-स्यात् सुरभिगन्धः, स्यात् दुरभिगन्धः, यदि एकरसः स्यात्तित्तः स्यात् कटुकः, स्यात् कषायः, स्यात् अम्लः, स्यात् मधुरः । यदि द्विस्पर्शः-स्यात् शीतश्च स्निग्धश्च १, स्यात् शीतश्च रूक्षश्च २, स्यात् उष्णश्च स्निग्धश्च ३, स्यात् उष्णश्च रूक्षश्च ४, । इति च्छाया,

कदाचित् पीला, और कदाचित् शुक्र होता है । एक गन्धवाला होता है तो कदाचित् सुरभिगन्धवाला, कदाचित् दुरभिगन्धवाला होता है । यदि एक रसवाला होता है तो कदाचित् तित्त, कदाचित् कटुक, कदाचित् कषायला, कदाचित् खट्टा, और कदाचित् मीठा होता है । यदि दो स्पर्शवाला होता है तो कदाचित् शीत और स्निग्ध (चिकना) १, कदाचित् शीत और रूक्ष २, कदाचित् उष्ण और स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण और रूक्ष होता है ४ ।

सुरभिगन्ध (सारी गन्ध) वाणु अने कदाचित् दुरभिगन्धवाणु डोय छे ने ओक रसवाणु डोय छे तो कदाचित् तीक्ष्ण, कदाचित् कडु, कदाचित् कषायलु, कदाचित् आढु अने कदाचित् मधुर-मीठु-डोय छे ने वे स्पर्शवाणु डोय छे तो कदाचित् शीत अने स्निग्ध-(चिकन्ना) १, कदाचित् शीत अने रूक्ष २, कदाचित् उष्ण अने स्निग्ध ३, तथा कदाचित् उष्ण अने रूक्ष डोय छे ४ ”

असौ अज्ञादिना सतादिकदृष्टेय, सूच्यादिना चर्मषट्मेघा, अग्निना काष्ठषट्दाहः, इस्तादिना बहूपानषट्प्राणम् । उक्तञ्च मगवता मगवतीसूत्रे (श-२० उ० ५) —

“इवपरमाणू यं मते । अद्विहे पणसे?, गोयमा! अद्विहे पणसे, उमहा-अच्छेज्जे, अमेज्जे, अद्विहे, अगेज्जे।” इति । द्रव्यपरमाणुः स्वसु मवन्त! कतिभिपः प्रकृतः?, गौतम! चतुर्भिपः प्रकृत्य, उद्यया-अच्छेयः, अमेघ, अदाह, अग्राहः । इति च्छाया ।

यद्यपि परमाणुः पुद्गलत्वान्मूर्च्छस्तबाऽप्यसौ स्पष्टः कर्तुमशक्यः, आकाशप्रदेशवत्परमाणो पुद्गलपरममपन्यास्वरूपत्वात्, सर्वपरिमाणेभ्योऽपकृष्ट परिमाणं परमाणोरेव तस्मात्सोऽस्त्वष्ट एव ।

परमाणु शब्द के द्वारा सता आदि की मालि छेया नहीं था सकता, चमरे की तरह सूर्य आदि से मया नहीं था सकता काष्ठ के समान अग्नि आदि से एक नहीं सकता और बहू पात्र आदि पत्राओं की तरह हाथ आदिसे एकत्र नहीं था सकता । मगवान्ने मगवतीसूत्र (श २० उ० ५) में कहा है—

प्रश्न-मगवन् ! द्रव्य परमाणु कितने प्रकार का कहा गया है ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारका कहा गया है—अच्छेय अमेघ, अदाह और अग्राह ।

परमाणु पुद्गल होने के कारण मूर्तिक ई, फिर भी उस के स्पष्ट नहीं किये जा सकते । जैसे आकाश का एक प्रदेश अकल्प अशक्य है और उसका परिमाण समी

परमाणु शब्द द्वारा लव्य आदिना प्रमाणे छेदी शक्यतुं नहीं, आभयानी जेभ सोय वजेश्चो वींभी शक्यतुं नहीं, आभयानी जेभ आभिन आदिवी आणी शक्यतुं नहीं, अने परम पात्र आदि पत्रावैनी जेभ काय वजेश्चो पठवी शक्यतुं नहीं ।

अजवाने अजवतीसूत्र-(श. २०-उ ५) भा कह्युं छे—

प्रश्न- अजवन् ! द्रव्य परमाणु केंद्रका प्रकाशतुं कस्युं छे ?

उत्तर-गौतम ! चार प्रकारतुं कस्युं छे— अछेय, अमेघ, अदाह अने अग्राह । (छेदी शक्य नहिं लेवी शक्य नहिं, अणी शकें नहिं, अने अकल्प अर्थ शकें नहिं) ।

परमाणु पुद्गल होवाना कारणे भूतिक छे तो पण तेना अह-नाम अर्थ शक्यतुं नहीं जेभकें—आकाशने एक प्रदेश अकल्प अशक्य छे अने तेतुं परिमाण

स च प्रत्यक्षदृश्यैरनेकविधैर्वादरपरिणामरूपैः स्कन्धैरनुमीयते । उक्तञ्च—
 “कारणमेव तदंतं, सुदुभो णिञ्चो य होढ परमाणु ।
 एगरसगंधवण्णो, दुष्फासो कज्जलिङ्गो य ॥१॥ इति
 छाया—कारणमेव तदन्त्यं, सूक्ष्मो नित्यश्च भवति परमाणुः ।
 एकरसगंधवर्णो, द्विस्पर्शः कार्यच्छिद्दश्च ॥१॥” इति ।

स्कन्धस्वरूप तद्भेदाश्च—

परस्परसमिलितवद्धपरमाणुसमुदायः स्कन्ध । स्कन्धान्तवर्ती निरशोऽवयवः
 प्रदेश इत्युच्यते ।

परिमाणोसे हीनतम है, इसी प्रकार परमाणु भी जघन्य अंशरूप है—उसके अंश नहीं
 हो सकते, वह अखण्ड है ।

प्रत्यक्ष से दिखाई देनेवाले अनेक प्रकार के वादररूप परिणत स्कन्धों से परमाणु
 का अनुमान होता है । कहा भी है—

“परमाणु कारणरूप है, अन्तिम अंशरूप है, सूक्ष्म है और नित्य है । एक रसवाला,
 एक गंधवाला, एक वर्णवाला और दो स्पर्शवाला होता है । स्कन्धरूप कार्य देखने से
 उसका अनुमान होता है ।”

स्कन्ध का स्वरूप और भेद—

परस्पर मिले हुए—आपसमें बद्ध—परमाणु का समूह स्कन्ध कहलाता है । स्कन्धमें
 रहा हुआ निरश अवयव प्रदेश कहलाता है ।

सर्व परिमाणोत्थी हीनतम छे, ओ प्रमाणु परमाणु पणु जघन्य अंशरूप छे, तेना
 अंश-विभाग थर्छ शकता नथी, ते अखण्ड छे

प्रत्यक्षथी जेवामा आवता अनेक प्रकारना आदररूप परिणत स्कन्धोत्थी
 परमाणुनु अनुमान थाय छे कहु पणु छे—

“परमाणु कारणरूप छे, अन्तिम अंशरूप छे, सूक्ष्म छे अने नित्य छे,
 ओक रसवाणु छे, ओक गंधवाणु, ओक वर्णवाणु अने ओ स्पर्शवाणु डोय छे,
 स्कन्धरूप कार्याना देखावथी तेनु अनुमान थाय छे

स्कन्धनु स्वरूप अने भेद—

परस्पर भणोला—अदर अदर अद्ध—परमाणुओनो समूह ते स्कन्ध कडेवाय छे,
 स्कन्धमा रहेले निरश अवयव ते प्रदेश कडेवाय छे

यद्यपि पर्मापर्माकाश्चजीवा अपि पुद्गलरस्त्वन्यस्यास्तथापि स्क्न्ध रूपपुद्गलादय विन्नपः-तेषाम्-पर्मादीनां चतुर्णां प्रवेशाः स्वस्वस्क्न्धात् स्वच्छः पूयम् मभित्तुमर्हन्ति, तेषाममूर्त्तत्वात् । पुद्गलप्रवेशास्तु स्वच्छं पूयम् भवन्ति, तेषां मूर्त्तत्वात्, आच्छेपविश्लेषार्था मूर्त्तवस्तुनि संमिलन-पूयमात्र-शक्तेः सर्वानुभवगोचरत्वात्, अतः स्क्न्धपुद्गलानां स्थूला सूक्ष्मा वा मागाज्वयव उच्यते । अथपौषि-पूयम्भवतीत्यनयप्रश्नभ्युत्पत्त्या विमाज्य एवांशोऽज्वयवद्वयार्थं स्वस्मात्पुद्गलप्रवेश एवाभवयव इत्युच्यते ।

यद्यपि धर्म-द्रव्य अर्धर्म-द्रव्य आकाश और जीव भी पुद्गलके समान स्क्न्धरूप हैं, फिर भी स्क्न्धरूप पुद्गल से उनमें यह भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्यके प्रदेश अपने २ स्क्न्धसे कभी अस्मा नहीं हो सकते क्योंकि धर्म आदि चार द्रव्य अमूर्त्त हैं । पुद्गल द्रव्य के प्रदेश स्वच्छ होकर अस्मा हो जाते हैं क्योंकि पुद्गल मूर्त्त है । आच्छेप और विश्लेष के द्वारा मूर्त्त वस्तु में मिलने और विलुप्तन की शक्ति है, यह बात सभी के अनुभव से सिद्ध है, अतः स्क्न्ध-पुद्गल का स्थूल या सूक्ष्म माग अवयव कहसक्ता है, 'अथपौषि' इति-अवयवः अर्थात् जो पूयम् हो सके उसे अवयव कहते हैं, 'स स्युत्पत्ति के अनुसार विभक्त हो सकने योग्य अथ को ही अवयव कहा जा सकता है, अतः पुद्गल का प्रदेश ही अवयव कहसक्ता है ।

जो है धर्म-द्रव्य अर्धर्म-द्रव्य, आकाश अने जीव पक्ष पुद्गलाना समान स्क्न्धरूप है तो पक्ष स्क्न्धरूप पुद्गलकी तेषां जो भिन्नता है-धर्म आदि चार द्रव्योना प्रदेश पीत-पीताना स्क्न्धकी कारण पक्ष अस्मत्त धर्म शक्ती नहीं हैअतः धर्म आदि चार द्रव्यो अमूर्त्त है पुद्गल द्रव्यना प्रदेश अतः अतः धर्मने अस्मत्त धर्म वल्य है, हैअतः पुद्गल मूर्त्त है आच्छेप (भगवतु) अने विश्लेष (वृत्ता वतु) द्वारा मूर्त्त वस्तुमां भगवतु अने वृत्ता वतु ते शक्ति है आ पात सर्वने अनुभवथी सिद्ध है अतः कारणथी स्क्न्ध पुद्गलानु स्क्न्ध अथवा सूक्ष्म अवयव कहेवाय है अथपौषि इति-अवयव अर्थात् पूयम् धर्म शक्ते तेने अवयव कहे है जो स्युत्पत्ति प्रभावे विभक्त वया योग्य अथने व अवयव कहे है अथ कारणथी पुद्गल द्रव्योना प्रदेश व अवयव कहेवाय है

संघाताद्, भेदात्, सघातभेदाभ्यां च द्विप्रदेशिप्रभृतयः स्कन्धाः समुत्पद्यन्ते । उक्तञ्च भगवता स्थानाङ्गसूत्रे—

“दोहिं ठाणेहिं पोग्गला साहण्णंति, तजहा-सयं वा पोग्गला साहन्ति, परेण वा पोग्गला साहन्ति । सयं वा पोग्गला भिज्जंति परेण वा पोग्गला भिज्जंति” इति ।

छाया—“द्वाभ्या स्थानाभ्यां पुद्गलाः संहन्यन्ते । तद्यथा—स्वयं वा पुद्गलाः संहन्यन्ते, परेण वा पुद्गलाः संहन्यन्ते । स्वयं वा पुद्गला भिद्यन्ते, परेण वा पुद्गला भिद्यन्ते । इति ।

‘स्वयवे’-ति स्वभावतो वा अभ्रादिष्विव संहन्यन्ते=सम्बध्यन्ते । (कमणः कर्तृत्वविवक्षायां प्रयोगोऽयम्) परेण वा=अन्येन वा पुरुषादिना संहन्यन्ते=संहताः क्रियन्ते । (कर्मणि वाच्ये प्रयोगोऽयम्) । एवं भिद्यन्ते=विकीर्यन्ते ।

द्वयोः परमाण्वोः संघाताद् द्विप्रदेशी स्कन्धः समुद्भवति । द्विप्रदेशिनः

सघात (मिलने) से, भेद (बिछुडने) से तथा सघातभेदसे द्विप्रदेशी आदि स्कन्ध उत्पन्न होते हैं ।

भगवानने स्थानाङ्गसूत्रमें कहा है—

“दो स्थानों से पुद्गल आपस में मिलते हैं, वह इस प्रकार—या तो पुद्गल स्वयं बादल आदि की तरह मिल जाते हैं, या दूसरे पुरुष आदि के द्वारा मिलाये जाते हैं, इसी प्रकार पुद्गल स्वयं अलग हो जाते हैं, या दूसरे के द्वारा अलग किये जाते हैं ।

दो परमाणुओं के सघात से द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, द्विप्रदेशी स्कन्ध

सघात (मेलाप)थी वेद (जुड़ा पडवा)थी तथा सघात-वेदथी द्विप्रदेशी विगेरे स्कंध उत्पन्न थाय छे भगवाने स्थानाङ्गसूत्र भा कहु छे—

“जे स्थानोथी पुद्गल परस्पर भजे छे ते आ प्रमाणु-पुद्गल पोते जे वादण आदि प्रमाणु भणी नय छे, अथवा पीण पुपुष आदिना द्वारा भेणवाय छे जे प्रमाणु पुद्गल पोते जे अगल थर्ध नय छे, अथवा तो पीणना द्वारा अलग करी शकय छे.

जे परमाणुओना सघातथी (भणवाथी) द्विप्रदेशी स्कंध भने छे द्विप्रदेशी स्कंध

स्कन्धस्य परमाण्वोश्च संयोगे सति त्रिप्रदेशी स्कन्धो भवति । सस्यात-
परमाणूनां संपातात् संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, असंख्यातपरमाणूनां संयोगाद्
संख्यातप्रदेशी स्कन्धः, अनन्तपरमाणूनां संपातात्कालोऽनन्तप्रदेशी स्कन्धः,
अनन्तप्रदेशिनां स्कन्धानां योगे त्वनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्धो जायते । सस्यात-
प्रदेश्यादिषु स्कन्धेषु संयोगपरिणामः पूर्वोक्तरीत्या भावनीयः ।

द्रव्यशुद्धादिक्रमेणानन्तानन्तप्रदेशिपर्यन्ता ये स्कन्धा संयोगपरिणाम-
वास्तेभ्यः परमाणुः पृथग् भवति चेत्तदैकपरमाणुन्यूनः स्कन्धो जायते । एवं
द्विषिक्तुःपञ्चादिपरमाणुपृथग्भावक्रमेण न्यूनान्पूतो द्विप्रदेशी स्कन्धः समुत्पद्यते ।

और एक परमाणु का संयोग होने पर त्रिप्रदेशी स्कन्ध बनता है, संख्यात परमाणुओं के
संपात से संख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है और असंख्यात परमाणुओं के संयोग
से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध बनता है । अनन्त परमाणुओं के मिलने से अनन्तप्रदेशी स्कन्ध
बनता है, अनन्तप्रदेशी स्कन्धों का संयोग होने पर अनन्तानन्तप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता
है । संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धों में संयोगरूप परिणाम पूर्वोक्तप्रकार से समझ लेना चाहिए ।

द्रव्यशुद्ध आदि के क्रम से अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त जो स्कन्ध संयोगपरिणाम से
बने हैं, उन में से अगर एक परमाणु अलग हो जाता है तो वह एक परमाणुहीन स्कन्ध रह
जाता है । इसी प्रकार दो तीन चार पांच आदि परमाणुओं के अलग होने पर अन्त में
द्विप्रदेशी स्कन्ध ही बनता है ।

जने ज्येष्ठ परमाणुने संयोग कवाधी त्रिप्रदेशी स्कन्ध जने छे संख्यात परमाणुज्येष्ठान्
संख्यातधी (भणवाधी) संख्यातप्रदेशी स्कन्ध जने छे जने असंख्यात परमाणुज्येष्ठान्
संयोगधी असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध जने छे अनन्त परमाणुज्येष्ठान् संयोगधी अनन्त
प्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न बाब छे अनन्तप्रदेशी स्कन्धिने संयोग बाब तो अनन्तानन्त
प्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न बाब छे संख्यातप्रदेशी आदि स्कन्धिनां संयोगरूप परिणाम
पूर्वना प्रकारधी समस्त बेलु ज्येष्ठान् ।

अथशुद्ध आदिना क्रमधी अनन्तानन्तप्रदेशी पर्यन्त के स्कन्ध छे ते संयोग
परिणामधी जन्ता छे तेमांसी जे ज्येष्ठ परमाणु अलग बाध बाब तो ते ज्येष्ठ
परमाणुहीन स्कन्ध रही बाब छे जे प्रकल्पे जे, त्रय चार पांच आदि परमाणुज्येष्ठान्
अलग बाध बाब तो अन्तधां द्विप्रदेशी स्कन्ध के जन्ते छे

स्कन्धाद् वहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना सयोगे द्वयणुकस्कन्ध उत्पद्यते । एवं संयोग-विभागाभ्यामपि त्रिविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

परमाणूनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणूनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावात्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं सयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्पर बन्धो भवति । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

स्कन्ध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्वयणुक उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार संयोग और विभाग के द्वारा भौति-भौति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं ।

परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है । एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते हैं । बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

स्कन्धर्था अलग थथेत्वा परमाणु न्यारे भीज परमाणुनी साथे भजे छे, तेनेना भजवाधी नवीन द्वयणुक उत्पन्न थाय छे अे प्रमाणु संयोग अने विभाग द्वारा तरेहु-तरेहुना स्कन्ध उत्पन्न थया करे छे

परमाणुओंना अधनु कारणम्—

जे अथवा अधिक परमाणु अेक भीजभा प्रवेश करी शकता नथी, डेभके परमाणुओंभा छिद्र नथी अलवत्त स्वाभाविक गतिथी जे अथवा जेथी अधिक परमाणुओंना परस्पर संयोग थवाधी तेभा विद्यमान स्निग्धता अने रूक्षताना गुणुना कारण तेना आपसभा अध थर्थ जय छे अेकतारूप परिणमनने अध कडे छे अधना सधधभा अेटलु विशेष समजनु जेधअे डे —

अधन्यगुणस्निग्धयोर्द्वयो, अधन्यगुणस्निग्धानां वा बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । तथा अधन्यगुणरूक्षयोः, अधन्यगुणरूक्षानां वा परस्परं बन्धो न भवति । अधन्योऽप्यकृतमः, गुणशब्दोऽथ संख्यार्थकः । यथा एकगुणं, द्विगुणमित्यादिपदम्—एकसंख्यकद्विसंख्यकाद्यर्थबोधकम् । स्नेहाद्विगुणानां मरुर्पापकरो लोकाप्रसिद्धौ । यथा—पानीयादद्वादुग्ध स्निग्धम्, अमादुग्धाद् गन्धं दुग्धम्, उक्तञ्च महिषोदुग्धमित्युत्तरोत्तरं स्नेहमर्क्यः ।

एषामेव पूर्वं पूर्वं स्नेहापकर्षः । तथा वैकगुणस्निग्धस्यैकगुणस्निग्धेन, द्वयोर्बहूनां परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवति । एकगुणरूक्षस्यैकगुणरूक्षेण च

अधन्यगुण स्निग्ध दो परमाणुओं का अधन्य बहुत परमाणुओं का परस्परमें बन्ध नहीं होता । इसी प्रकार अधन्यगुण रूक्ष दो या बहुत परमाणुओं का भी परस्पर में बन्ध नहीं होता । अधन्य का अर्थ यहाँ हीनतम समझना चाहिए । गुणशब्द यहाँ संख्या (द्विगती) का वाचक है, जैसे—एकगुण, दोगुण आदि पद एकसंख्यक द्विसंख्यक आदि अर्थ के वाचक हैं । स्निग्धता (निकनार्द्र) आदि गुणों की अधिकता और न्यूनता लोक में प्रसिद्ध है । जैसे पानी की अपेक्षा बकरी का दूध निकना होता है । बकरी के दूधसे गौ का दूध अधिक निकना होता है, और गौ के दूध की अपेक्षा गैंस का दूध अधिक निकना होता है । इस प्रकार पानी आदिमें उच्चोत्तर निकनेपन की अधिकता है । इन्ही पानी आदि में पाँकेर बाना में निकनेपनकी न्यूनता है । इस प्रकार एक गुण स्निग्ध का एक गुण स्निग्ध के साथ दो या अधिक परमाणुओं का

अधन्य शुष्ण स्निग्ध दो परमाणुओंको अधन्य बहुत परमाणुओंको परस्पर बन्ध नहीं अधन्यको अर्थ हीनतम समझनेको चाहिये । शुष्ण शब्द अर्द्धि सन्ध (द्विगती) को वाचक है जेवी रीते जेक जल्य दो अणु आदि पद जेक सन्ध द्विसंख्यक आदि अर्थनु वाचक है स्निग्धता (निकनार्द्र) आदि गुणोंकी अधिकता अने न्यूनता लोकमें प्रसिद्ध है जेभ पाणीकी अपेक्षाके लकरीनु दूध निकल्लु जेभ है लकरीना दूधकी जायनु दूध अने जायना दूधकी अपेक्षाके सेसनु दूध बधारे स्निग्ध (निकल्लु) कोष है जे प्रभावे पाणी आदिभो उच्चोत्तर निकल्लु पाणीकी अधिकता है

जे पाणी आदिभो फेला-फेलायनां निकल्लुपाणीकी न्यूनता है जे प्रभावे जेक शुष्ण स्निग्धको जेक शुष्ण स्निग्धकी साथे, तथा जे अधन्य अधिक परमाणुओंको

स्कन्धाद् बहिर्गतस्य परमाणोरन्येन परमाणुना मयोगे द्वयणुकस्कन्ध उत्पद्यते । एव संयोग-विभागाभ्यामपि विविधाः स्कन्धा भवन्ति ।

परमाणुनां बन्धस्य कारणम्—

परमाणुद्वयस्य परमाणुनां वा परस्परानुप्रवेशो न भवति, छिद्राभावाद्, किन्तु तयोस्तेषां वा विस्रसागत्या परस्परं मयोगे सति स्निग्धरूक्षत्वगुण-सद्भावे परस्पर बन्धो भवति । ऐक्यपरिमाणो बन्धः । तत्रायं विशेषः—

स्कन्ध से अलग हुआ परमाणु जब दूसरे परमाणु के साथ मिलता है तो दोनों के मेलसे नवीन द्वयणुक उत्पन्न हो जाता है । इस प्रकार मयोग और विभाग के द्वारा भाँति-भाँति के स्कन्ध उत्पन्न होते ही रहते हैं ।

परमाणुओं के बन्ध का कारण

दो या अधिक परमाणु एक दूसरे में प्रवेश नहीं कर सकते, क्योंकि परमाणुओं में छिद्र नहीं होता, अलवत्त स्वाभाविक गति से दो या दो से अधिक परमाणुओं का परस्पर में संयोग होने पर उन में विद्यमान स्निग्धता और रूक्षता गुण के कारण उन का आपस में बन्ध हो जाता है । एकतारूप परिणमन को बन्ध कहते हैं । बन्ध के सम्बन्ध में इतना विशेष समझना चाहिए—

स्कन्धही अलग थथेला परमाणु न्यारे भीन्त परमाणुनी साथे भजे छे, तेना भनेना भणवाथी नवीन द्वयणुक उत्पन्न थाय छे अे प्रमाणु संयोग अने विभाग द्वारा तरेहु-तरेहुना स्कन्ध उत्पन्न थया करे छे

परमाणुओंना बंधु कारण—

जे अथवा अधिक परमाणु एक भीन्तमा प्रवेश करी शकता नथी, डेभके परमाणुओंमा छिद्र नथी अलवत्त स्वाभाविक गतिथी जे अथवा जेथी अधिक परमाणुओंने परस्पर संयोग थवाथी तेमा विद्यमान स्निग्धता अने रूक्षताना गुणना कारणे तेना आपसमा बंध थई नथ छे ऐक्यतारूप परिणमनने बंध कडे छे बंधना संभधमा अेटलु विशेष समज्जु लेईअे के —

एव द्विगुणत समारम्भ यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य द्विगुणतः समारम्भ यावत् संख्यातासंख्यातानन्तगुणस्निग्धेन सर्वेषु समगुणेन पुद्गलेन परस्परं वधा न भवति । तथा द्विगुणादिरूपस्य द्विगुणादिरूपस्य सर्वेषु समगुणेन यावदनन्तगुणरूपेषु पुद्गलेन सह परस्परं बन्धो न भवति । यथा तुल्यबन्धगुणमृच्छयोरुभयोर्मध्ये परस्परं काऽपि कश्चिदभिद्भन्दु न प्रभवति ।

इत्वं च तुल्यसंख्यकं स्निग्धत्वे सति स्निग्धस्य स्निग्धेन सह बन्धो न भवति, तुल्यसंख्यके रूपत्वे सति रूपस्य रूपेण सह बन्धा न भवतीति सारांशः ।

अथ जघन्यस्निग्धस्य क्रीडशेन स्निग्धेन सह परस्परं बन्धो भवति ?

इती प्रकार द्विगुण से डेकर सख्यात बन्धमात और अनन्तगुण स्निग्ध पुद्गलका द्विगुण से डेकर संख्यात असख्यात और अनन्तगुण स्निग्धतावाले समगुण पुद्गल के साथ आपस में बन्ध नहीं होता । तथा द्विगुण वादि रूप समगुणवाले किसी भी पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है । जैसे—समान बन्धवाले दो मछों में से कबे किसी को पकड़ि नहीं कर सकता ।

इस प्रकार समान स्निग्धता होने पर स्निग्ध पुद्गलका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता है और समान रूपता होने पर रूपका रूपके साथ भी बन्ध नहीं होता है ।

संका—जघन्य स्निग्ध का किस प्रकार के स्निग्ध पुद्गल के साथ परस्पर बन्ध होता है ?

जो प्रमाणे द्विगुणकी लक्ष्नी संख्यात, असंख्यात जने अनंतगुण स्निग्ध पुद्गलने द्विगुणकी लक्ष्नी संख्यात, असंख्यात, जने अनंतगुण स्निग्धतावाण्य समगुण पुद्गलकी साथ आपसमा लभ बते नथी तथा द्विगुण वादि रूप पुद्गलने द्विगुण वादि रूप समगुणवाण्य डेढ पण्य पुद्गलकी साथ लभ बते नथी जेभ समान लक्षणवा जे मखीमाथी डेढ डेढने पशक्ति करी शकता नथी

जो प्रमाणे समान स्निग्धता होवा ज्वाय, स्निग्ध पुद्गलने स्निग्ध पुद्गलकी साथ लभ बते नथी, जने समान रूप होवा ज्वाय रूपने रूपकी साथ लभ बते नथी

शका—जघन्य स्निग्ध पुद्गलने क्या प्रकारका स्निग्ध पुद्गलकी साथ परस्पर लभ बन्ध है ?

द्वयोर्बहुना वा परमाणुनां परस्परं बन्धो न भवतीति फलितम् ।

ननु परमाणुना सत्यपि संयोगे बन्धकाङ्गीभूतस्निग्धत्वस्त्वेतन्नयोश्च सद्भावो कथं न जायते परस्परमेकत्वपरिणतिलक्षणो बन्धः ? इति ।

परमाणोस्तादृशपरिणमनगतरेभावात् । परिणामशक्तयश्च द्रव्याणां विचित्र-
रूपाः क्षेत्रकालाद्यनुरोधेन प्रयोगविस्तरापेक्षाः प्रभवन्ति । जघन्यगुणत्वेन
दौर्बल्यादेव स्नेहो रूक्षो वा कश्चिद् पुद्गलं परिणामयितुं न समर्थः । यथा-
तुल्यदुर्बलगुणमल्लयोरुभयोर्मध्ये परस्परं कोऽपि कश्चिदभिहन्तुं न प्रभवति, तस्माच्च-
जघन्यगुणानां परस्परं बन्धो न भवतीति सिद्धम् ।

परस्पर बन्ध नहीं होता, और एक गुण रूपका एक गुण रत्न के साथ दो या अधिक परमाणुओं का परस्पर बन्ध नहीं होता, यह सिद्ध हुआ ।

शंका—परमाणुओं का संयोग मौजूद होने पर भी, और बन्ध के कारणभूत स्निग्धत्व तथा रूक्षत्व के विद्यमान होने पर भी बन्ध—एकतारूप परिणमन क्यों नहीं होता ?

समाधान—परमाणु में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति का अभाव है । द्रव्यों की परिणमन शक्तियाँ क्षेत्र और काल के अनुरोध से प्रयत्न तथा स्वभाव की अपेक्षा रखती हुई नाना प्रकार की होती हैं । जघन्य गुणवाला होने के कारण निर्बल होने से स्निग्ध या रूक्ष परमाणु किसी पुद्गल को परिणत करने में समर्थ नहीं होता, जैसे समान दुर्बलतावाले दो मल्लों में से कोई किसी को पराजित नहीं कर सकता । अत एव यह सिद्ध हुआ कि जघन्य गुणवालों का परस्पर में बन्ध नहीं होता ।

परस्पर बंध थोटा नहीं, अने अेकशुष्ण इक्षने अेकशुष्ण इक्षनी साथे वे अथवा अधिक परमाणुओंने परस्पर बंध थोटा नहीं

शंका—परमाणुओंने संयोग मौजूद होवा छत्ताय पण, अने बंधना कारणभूत स्निग्धत्व (अिच्छुपाणु) तथा इक्षत्व (लूणाणु) विद्यमान होवा छत्ताय बंध-
अेकताइय परिणमन कैम थतु नहीं ?

समाधान—परमाणुमा अे प्रकारनी परिणमननी शक्तिने अभाव छे, द्रव्यनी परिणमन शक्तिअे क्षेत्र अने कालना अनुरोधथी, प्रयत्न तथा स्वभावनी अपेक्षा राअती थकी नाना प्रकारनी थाय छे जघन्य शुष्णवाणा होवाना कारणे, निर्बल होवाथी स्नेह अथवा इक्ष परमाणु कोरि पुद्गलने परिणत करवामा समर्थ थतु नहीं अेवी रीते समान दुर्बलतावाणा वे मल्लोमाथी कोरि कोरिने पराजित करी शकता नहीं, अेटला कारणथी सिद्ध थतु के-जघन्य शुष्णवाणाओंने परस्पर बंध थोटा नहीं

एवमुक्तयुक्तया द्विगुणादिस्निग्धस्य स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । द्विगुणस्निग्धस्यैकाधिकस्त्रिगुणस्निग्ध त्रिगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणस्निग्ध एकाधिकः, इति हेतोर्द्विगुणस्निग्धस्य त्रिगुणस्निग्धेन सह बन्धो न भवति । इत्थं च स्निग्धपुद्गलस्यैकाधिकगुणस्निग्धपुद्गलेन सह बन्धो न भवतीति सारः ।

द्विगुणादिस्निग्धस्य द्व्यधिक्यादिगुणस्निग्धेन बन्धो भवति । यथा द्विगुणस्निग्धस्य द्व्यधिक्यचतुर्गुणस्निग्ध । त्र्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, चतुरधिकः

पूर्वोक्त युक्ति के अनुसार द्विगुण आदि स्निग्ध का अपनी अपनी अपेक्षा से एक गुण अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । द्विगुण स्निग्ध से एक अधिक का बन्ध है—त्रिगुण स्निग्ध, त्रिगुण स्निग्ध से एक अधिक चतुर्गुण स्निग्ध सनत्ता आदिये । इस रीति से अनन्त गुण स्निग्ध भी अपने से एक गुण हीन स्निग्ध की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध है । अतः द्विगुण स्निग्ध का त्रिगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता । सारांश यह है कि—स्निग्ध पुद्गल का एक गुण अधिक पुद्गल के साथ बन्ध नहीं होता ।

द्विगुण स्निग्ध आदि का दो गुण अधिक आर्षात् चार गुण स्निग्ध के साथ बन्ध हो जाता है, जैसे दो गुण स्निग्ध से दो गुण अधिक स्निग्ध का

पूर्वोक्त युक्ति प्रमाणे द्विगुण आदि स्निग्धने दो-दोतानी अपेक्षाधी कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध साथे लभ्यते नही, द्विगुण स्निग्धधी कोष्ठ अधिकने लभ्यते—त्रिगुण स्निग्ध जाने त्रिगुण स्निग्धधी कोष्ठ अधिक चतुर्गुण स्निग्ध समकाले कोष्ठको को प्रमाणे अनन्त शुद्ध स्निग्ध पक्ष दोतानीधी कोष्ठ शुद्ध हीन स्निग्धनी अपेक्षाधी कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध से तेषी द्विगुण स्निग्धने त्रिगुण स्निग्धनी साथे लभ्यते नही, सारांश कोष्ठ से—स्निग्ध पुद्गलने कोष्ठ शुद्ध अधिक स्निग्ध पुद्गलनी साथे लभ्यते नही

द्विगुण स्निग्ध आदिने दो शुद्ध अधिक आर्षात् चार शुद्ध स्निग्धनी साथे लभ्यते लभ्यते कोष्ठ-कोष्ठ शुद्ध स्निग्धधी दो शुद्ध अधिक स्निग्धने लभ्यते चार

अत्रोच्यते—जघन्यस्निग्धस्य द्व्यधिकान्यधिकादिना स्निग्धेन बन्धो भवति, यथा एकगुणस्निग्धस्य परमाणुपुद्गलस्य त्रिगुणस्निग्धेन परमाणुपुद्गलेन सह संयोगे सति बन्धो भवति । एव एकगुणस्निग्धस्य चतुर्गुणपञ्चगुणयावत्संख्यातासंख्यातानन्तगुण स्निग्धेन सह बन्धः ।

एकगुणस्निग्धस्यकाधिकगुणस्निग्धेन (द्विगुणस्निग्धेन) तु न बन्धः, द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन च स्निग्धपुद्गलस्य बन्धविधानात् । एकाधिकगुणस्निग्धस्य पुद्गलस्य प्रतिविशिष्टपरिणमनशक्तेरभावात् । एकगुणस्निग्धस्यैकाधिको द्विगुणस्निग्धः ।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गल का दो गुण (डिगरी) या तीन गुण अधिक स्निग्धतावाले पुद्गल के साथ बन्ध होता है । जैसे एक गुण स्निग्धतावाले परमाणु का तीन गुण स्निग्धता वाले परमाणु के साथ संयोग होने पर बन्ध हो जाता है । इसी प्रकार एक गुण (एक अंश) स्निग्धका चार, पांच, यहाँ तक कि सख्यात, असख्यात एवं अनन्त गुण स्निग्ध के साथ बन्ध होता है ।

एक गुण स्निग्धका एक अधिक गुण स्निग्ध अर्थात् द्विगुण स्निग्ध के साथ बन्ध नहीं होता, क्योंकि दो गुण अधिक स्निग्धका स्निग्ध पुद्गल के साथ बन्ध बतलाया गया है । एक गुण अधिक स्निग्ध पुद्गल में विशेष प्रकार के परिणमन की शक्ति नहीं है । एक गुण स्निग्धतावाले की अपेक्षा एक गुण अधिक स्निग्ध जहाँ कहा जाय वहाँ दो गुण स्निग्धतावाला पुद्गल समझ लेना चाहिये ।

समाधान—जघन्य स्निग्ध पुद्गलना मे शुष्ण (डिग्री) अथवा त्रुष्ण शुष्ण अधिक स्निग्धतावाणा पुद्गलनी साथे भध थाय छे जेभके—એક शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुना त्रुष्ण शुष्ण (डिग्री) स्निग्धतावाणा परमाणुनी साथे संयोग थध नय तो भध थध नय छे तेवी रीते એક शुष्ण (डिग्री) (अंश) स्निग्धताना चार, पांच, त्या सुधी के संख्यात असंख्यात ए प्रमाणे अनन्त शुष्ण स्निग्धनी साथे भध थाय छे.

એક शुष्ણ સ્નિગ્ધતાનો એક અધિક શુષ્ણ સ્નિગ્ધ અર્થાત્ દ્વિશુષ્ણ સ્નિગ્ધની સાથે ભધ થતો નથી, કેમકે એ શુષ્ણ અધિક સ્નિગ્ધતા સ્નિગ્ધ પુદ્ગલની સાથે ભધ બતાવ્યો છે, એક શુષ્ણ અધિક સ્નિગ્ધ પુદ્ગલમાં વિશેષ પ્રકારના પરિણમનની શક્તિ નથી એક શુષ્ણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાણી અપેક્ષા એક શુષ્ણ (ડિગ્રી) અધિક સ્નિગ્ધ ન્યા કહેવાય ત્યા એ શુષ્ણ (ડિગ્રી) સ્નિગ્ધતાવાણા પુદ્ગલ સમજ લેવા જોઈએ.

अधन्यगुण (एकगुण) स्निग्धस्य अजधन्यगुण (द्विगुणाद्यनन्तगुणपर्यन्त) स्निग्धस्य वा स्वस्वापेक्षयैकाधिकगुणरूपेण, पुनः स्वस्वापेक्षया द्व्यधिक-त्र्यधिक-चतुरधिकवादि गुणरूपेणापि धन्यो भवति । उक्तञ्च मगवता प्रज्ञापनामूत्रे—(१३)—प्रयोदशे परिणामपदे—“बंधनपरिणामे णं मते ! कद्विहे पञ्चमे ?, गोयमा ! दुविहे पण्यते, तंजहा—गिन्द्रबधणपरिणामे य लुक्स्वबंधनपरिणामे य ।”

समण्डियाए बन्धो, न होइ समलुक्स्तयाएवि ण होइ ।

बेमायबिद्धलुक्स्त—तणेण धधो उ संघाणं ॥१॥

छया—बन्धनपरिणामो भदन्त ! कतिविधः मङ्गलः?, गौतम !

द्विविधः मङ्गलस्तद्यथा—स्निग्धबंधनपरिणामश्च, स्थानबन्धनपरिणामश्च ।

समस्निग्धतायां धन्यो न भवति, समरुक्षतायामपि न भवति ।

विमात्रस्निग्धरुक्षत्वेन, बन्धस्तु स्तृपानाम् ॥ १ ॥

नहीं होता । अल्प गुण (एकगुण) स्निग्ध का बंधवा अधन्य गुण (दो से ज्यादा अनन्त गुण तक) स्निग्ध का अपने से एक गुण अधिक रुक्ष के साथ बन्ध होता है । और अपने अपने से दो अधिक तीन अधिक, चार अधिक आदि रुक्ष पुत्रम के साथ भी बन्ध होता है । मगवान् ने प्रज्ञापना सूत्र के १३ वें परिणाम पदमें कहा है—

प्रश्न—“मगवान् ! बन्ध परिणाम कितने प्रकार का कहा गया है ?”

उत्तर—गौतम ! दो प्रकार का कहा गया है—(१) स्निग्धबंधनपरिणाम और (२) रुक्षबंधनपरिणाम ।

समान स्निग्धता या समान रुक्षता होने पर बन्ध नहीं होता है, किन्तु विमात्र-बर्धत् अधिक का हीनके साथ और हीनका अधिक के साथ चाहे व स्निग्ध हो या रुक्ष हो बन्ध हो जाता है ॥ १ ॥

नधी अधन्य शुष् (कोक शुष्) स्निग्धेना अजधना अजधन्य (विधी लघुने अनन्त शुष् सुधी) स्निग्धेना पीतानाधी कोक शुष् अधिक रुक्षनी आधे जध धाय छे जने पीतपीतानी वि अधिक त्रयु अधिक चार अधिक आदि रुक्ष पुत्रमलनी आधे पध जध धाय छे जजवाने प्रज्ञापना सूत्रना १३मा परिणाम पदमा ठडेछे छे—

प्रश्न—अजधन् ! अधन-परिणाम कितने प्रकारनां कथां छे ?

उत्तर—गौतम ! वि प्रकारना ठडेछा छे—(१) स्निग्धबंधनपरिणाम जने (१) रुक्षबंधनपरिणाम ।

समान स्निग्धता अथवा समान रुक्षता होय तो जध बन्धो नहीं परतु विमात्र अर्थात् अधिकने हीननी आधे जने हीनने आधिकनी आधे भते ते स्निग्ध होय के रुक्ष होय, जध बर्ध जय छे ॥ १ ॥

पङ्गुणस्निग्धः, इत्यादि । त्रिगुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः पञ्चगुणस्निग्धः, त्र्यधिकः
 पङ्गुणस्निग्धः, चतुरधिकः सप्तगुणस्निग्ध, इत्यादि । चतुर्गुणस्निग्धस्य द्व्यधिकः
 पङ्गुणस्निग्धः, त्र्यधिकः सप्तगुणस्निग्धः चतुरधिकः— अष्टगुणस्निग्धः । एव
 पञ्चगुणस्निग्धादिसंख्यातासख्यातानन्तगुणस्निग्धपर्यन्तस्य द्व्यधिकादिगुणस्निग्धेन
 सह बन्धो भावनीयः ।

एवं जघन्यगुणरूक्षस्य, अजघन्यगुणरूक्षस्य च बन्धव्यवस्था बोध्या ।

विसदृशपुद्गलबन्धः—

अथ विसदृशपुद्गलयोर्बन्धे कीदृशी व्यवस्था ?

उच्यते—जघन्यगुणस्निग्धस्य, जघन्यगुणरूक्षेण सह बन्धो न भवति ।

अर्थ चार गुण स्निग्ध, तीन गुण अधिक का अर्थ पाच गुण स्निग्ध, चार गुण अधिक
 का अर्थ छह गुण स्निग्ध, इत्यादि समझना चाहिए । चतुर्गुण स्निग्ध से द्व्यधिक-
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक-सप्तगुण स्निग्ध, चतुरधिक-अष्टगुण स्निग्ध समझना चाहिए ।
 इस प्रकार पञ्चगुण स्निग्ध आदि से सख्यात, असंख्यात अनन्त गुण स्निग्ध का दो गुण
 अधिक स्निग्ध के साथ बन्ध होता है । इस प्रकार जघन्य गुण रूक्ष का अजघन्य गुण रूक्ष
 के साथ बन्ध की व्यवस्था जाननी चाहिए ।

विसदृश पुद्गलों का बन्ध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्पर विरोधी पुद्गलों के बन्ध की क्या व्यवस्था है ?

उत्तर—जघन्य गुण स्निग्ध का जघन्य गुण वाले रूक्ष पुद्गलके साथ बन्ध

शुष्ण स्निग्ध, त्र्यण शुष्ण अधिकने अर्थ पाच शुष्ण स्निग्ध, चार शुष्ण अधिकने
 अर्थ छ शुष्ण स्निग्ध, ये प्रमाणे समञ्जसु नेधये चतुर्गुण स्निग्धे द्व्यधिक
 पङ्गुण स्निग्ध, त्र्यधिक सप्तशुष्ण स्निग्ध चतुरधिक अष्टशुष्ण स्निग्ध समञ्जसु
 नेधये, ये प्रमाणे पाच शुष्ण स्निग्ध आदिथी सख्यात, असख्यात अनन्तशुष्ण
 स्निग्धना ये शुष्ण अधिक स्निग्धनी साथे भध थाय छे ये प्रमाणे जघन्य शुष्ण
 रूक्षनी अजघन्य शुष्ण रूक्षनी साथे भधनी व्यवस्था नक्षुवी नेधये

विसदृश पुद्गलानां भध—

प्रश्न—विसदृश अर्थात् परस्परविरोधी पुद्गलानां भधनी शु व्यवस्था छे ?

उत्तर—जघन्य शुष्ण स्निग्धने जघन्य शुष्णवाणा पुद्गलानी साथे भध थतो

॥ परमाणुबन्धव्यवस्थाकोष्ठकम् ॥

अधन्यगुण-(एकागुण)-स्निग्ध-
रूपयोर्बन्धव्यवस्था ।

स्निग्धरूपसंख्या	सद्विधानाम्		विसद्विधानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूपस्य + स्थेण सह	स्निग्धस्य + स्थेण सह
अधन्यस्य (एकागुणस्य) अधन्येन (एकागुणेन) सह	बन्धामावः	बन्धामावः	बन्धामावः
अधन्यस्य (एकागुणेन) + एकाधिकेन (द्विगुणेन) सह	बन्धामावः	बन्धो भवति	बन्धो भवति
अधन्यस्य (एकागुणस्य) + द्व्यधिकदिगुणेन (त्रिगुण- पदसंयुतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धो भवति

अधन्यगुण-(द्विगुणादि)-स्निग्धरूपयोर्बन्धव्यवस्था

स्निग्धरूप-संख्या	सद्विधानाम्		विसद्विधानाम्
	स्निग्धस्य + स्निग्धेन सह	रूपस्य + स्थेण सह	स्निग्धस्य + स्थेण सह
द्विगुणस्य + द्विगुणेन सह	बन्धामावः	बन्धामावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + एकाधिकेन (त्रिगुणेन) सह	बन्धामावः	बन्धामावः	बन्धो भवति
द्विगुणस्य + द्व्यधिकादिगुणेन (त्रिगुणपदसंयुतः समारभ्य यावद् अनन्तगुणेन) सह	बन्धो भवति	बन्धो भवति	बन्धा भवति

एवम् अधन्यगुण-(त्रिगुणचतुर्गुणतः समारभ्यानन्तगुणपर्यन्त)-स्निग्धरूपयोः
समगुणन, एकाधिकगुणेन, द्व्यधिकादिगुणेन च सह बन्धव्यवस्था मावनीया ॥

णिद्धस्स णिद्धेण दुयाहिण्ण,
 लुक्खस्स लुक्खेण दुयाहिण्ण ।
 णिद्धस्स लुक्खेण उवेइ बन्धो,
 जहण्णवज्जो विसमो समो वा ॥२॥
 (प्रज्ञा० पद-१३)

छाया—स्निग्धस्य स्निग्धेन द्विकाधिकेन,
 रूक्षस्य रूक्षेण द्विकाधिकेन ।
 स्निग्धस्य रूक्षेण उपैति बन्धो,
 जघन्यवर्जो विषमः समो वा ॥२॥” इति,
 विसदृशस्य बन्धमाह—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि ।

स्निग्धस्य रूक्षेण सह बंध उपैति=उपगतो भवति, जायत इत्यर्थः ।
 यदि परमाणुर्जघन्यवर्जो विषमो समो वा भवेत् । ॥२॥
 परमाणूनां बन्धव्यवस्थाकोष्ठकमग्रेऽवलोकनीयम् ।

दो गुण अधिक स्निग्ध के साथ स्निग्ध का बन्ध होता है । और दो गुण अधिक रूक्ष के साथ रूक्षका बन्ध होता है । अब विसदृश बन्धको कहते हैं—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि । जघन्य गुणवाले परमाणु को छोड़कर फिर चाहे वह विषम हो या सम हो स्निग्ध का रूक्ष के साथ बन्ध होता है ।

परमाणुओं की बन्धव्यवस्था का कोष्ठक पृष्ठ १२१ देख लें ।

ये शुष्क अधिक स्निग्ध साथे स्निग्धनो अध थाय छे अने ये शुष्क अधिक रूक्षनी साथे रूक्षनो अन्ध थाय छे हवे विसदृश अन्ध छडे छे—“णिद्धस्स लुक्खेण” इत्यादि जघन्य शुष्कवाणा परमाणुने छोडीने पीला गमे ते विषम होय अथवा सम होय ते स्निग्धनो रूक्षनी साथे अध थाय छे

परमाणुओंकी अधव्यवस्थानु कोष्ठक पेज १२१मा लेख देखु ।

इन्द्रियपंचकम् ५, मनोवाक्कामयज्ञलप्रयम् ३, आसोच्छ्वासरूपः १, आयुषेति १ । एते दस प्राणाः संसारिणां यथासम्भवं भवन्ति । नारकस्त्रियंगादयः संसारिणां द्रव्यप्राणैरपि प्राणिनः । व्यपगतसमस्तकर्मसम्बन्धा सिद्धास्तु केषाम्भावप्राणैरपि प्राणिनः सन्ति । भावप्राणाश्चतुर्विधा—अनन्तज्ञानम् १, अनन्तवीर्यम् २, अनन्तसुखम् ३, अनाघनन्तस्वित्तिश्च ४ । तत्रानन्तज्ञानात् क्षायोपशमिरूपवेन्द्रियाणि, अनन्तवीर्यरूपमावप्राणस्यानन्तांशेन मनोवाक्कामयज्ञलप्रयम्, अनन्तसुखाच्च—आसोच्छ्वासरूपं प्राणः समुद्भवति, तथा अनाघनन्तस्वित्तिरूप—भावप्राणतः सादिसान्तरूप्य आयुःप्राणो जायते । एवं द्रव्यप्राणानां कारणं भावप्राणा इत्यवधेयम् ।

दशमेव है—पाँच इन्द्रियों, तीन बल—मनोबल वचनबल और कायबल ३, आसोच्छ्वास १ तथा आयु १ य दस द्रव्यप्राण यथासम्भवं संसारी जीवों के होते हैं । नारकी त्रियंज भाति संसारी जीवों में भी द्रव्यप्राण पाये जाते हैं किन्तु सब प्रकार के कर्म—संबंध से रहित सिद्धों में त्रिं भावप्राण ही होते हैं । सिद्ध जीव भावप्राणा के कारण ही प्राणी कहलाते हैं ।

भाव प्राणके चार भेद हैं—अनन्तज्ञान १ अनन्तवीर्य २ अनन्तसुख ३ और अनाघिअनन्तरित्तिश्च ४ । क्षयोपशम से उपन इन चारों पाँच इन्द्रियों अनन्त ज्ञान का विकार (वैभाविक परिणामन) है, मन वचन और काय—बल अनन्तवीर्यरूप भावप्राणका विकार है, आनोच्छ्वास अनन्तसुखरूप भावप्राणका विकार है, और सादिमान्त आयुस्वरूप द्रव्यप्राण अनाघि—अनन्तरित्तिरूप भावप्राणका विकार है । इस प्रकार भावप्राण द्रव्यप्राणा के कारण है ।

इस लेख में—पाँच इन्द्रियों, त्रय बल अर्थात् मनोबल, वचनबल और कायबल ३ आसोच्छ्वास तथा आयु । यह दस द्रव्यप्राण आध्यात्म रीति संसारी जीवों में देखे जाते हैं नारकी त्रियंज भाति संसारी जीवों में पाये जाते हैं पञ्च द्रव्यप्राणों के कारण ही प्राणियों में द्रव्यप्राणों का कारण है ।

भावप्राणों का चार भेद है—अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य अनन्त सुख और अनाघि अनन्त स्विति, क्षयोपशमभी उत्पन्न तथा वाली पञ्च इन्द्रियों अनन्त ज्ञानके विकार (वैभाविक परिणामन) है, मन, वचन और कायबल अनन्त वीर्यरूप भाव प्राणों का विकार है आसोच्छ्वास से अनन्तसुखरूप भावप्राणों का विकार है; और सादि—सान्त आयुस्वरूप द्रव्यप्राण, अनाघि अनन्त स्वित्तिरूप भावप्राणों का विकार है ये प्राणों का कारण है, ३ प्राणों का कारण है ।

अथ जीवास्तिकायः—

जीवशब्दार्थः—

जीवति प्राणान् धारयतीति जीवः । न च सिद्धानां प्राणसम्बन्धा-
भावादजीवत्वापत्तिरिति वाच्यम्, 'प्राणान् धारयती'—त्यत्र प्राणसामान्यविवक्षया
पञ्चेन्द्रियप्रभृतिदशविधद्रव्यप्राणानामसन्त्वेऽपि सिद्धानां भावप्राणसद्भावेन जीवत्व-
सिद्धेरव्याहतत्वात् । प्रतिविशिष्टप्राणसम्बन्धे सति जीवनाज्जीवशब्दः प्रवर्तते ।

प्राणा द्विविधाः—द्रव्यप्राणाः, भावप्राणाश्च । तत्र द्रव्यप्राणा दशविधाः

जीवास्तिकाय—

जीवशब्दका अर्थ—

जो जीता है अर्थात् प्राणों को धारण करता है, वह जीव कहलाता है । 'सिद्धों
में प्राणों का अभाव होने से वे अजीव हो जायेंगे' यह कहना ठीक नहीं है । 'जो
प्राणों को धारण करता है' इस कथन में प्राण-सामान्य की विवक्षा की गई है । सिद्धों
में यद्यपि पाच-इन्द्रिय आदि दस प्रकार के द्रव्यप्राण नहीं है, तथापि भाव-प्राण
पाये जाते हैं, और इन भाव-प्राणों के कारण सिद्ध भगवान् का जीवपन सिद्ध हो
जाता है । विशिष्ट प्रकार के प्राणों का सम्बन्ध होने पर जीने वाले को
जीव कहते हैं ।

प्राण दो प्रकार के हैं—(१) द्रव्यप्राण और (२) भावप्राण । द्रव्यप्राणों के

लवास्तिकाय—

लव शब्दना अर्थ—

ले लवे छे अर्थात् प्राणाने धारण करे छे, ते लव कडेवाय छे 'सिद्धोभा
प्राणानो अभाव होवाथी ते अलव थळ नथे,' अम कडेवु ते ठीक नहीं 'ले
प्राणाने धारण करे छे' अम कडेवाभा प्राण-सामान्यनी विवक्षा कही छे सिद्धोभा
ले के पाच इन्द्रियो आदि दस प्रकारना द्रव्य-प्राण नहीं, तो पण भाव-प्राण
होय छे, अने ते भाव-प्राणाना धारण सिद्ध भगवाननु लवपणु सिद्ध थाय छे
विशिष्ट प्रकारना प्राणानो सम्बन्ध होवाना धारण लववा वाणाने लव कडे छे

प्राण दो प्रकारना छे—(१) द्रव्य-प्राण अने (२) भाव-प्राण, द्रव्य प्राणाना

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्ती मास पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिजामिकमेति ।

(१) औपशमिकमात्र—

(१) मोहनीयकर्मणा मग्नावच्छिन्नबद्धिस्वनुद्रेकावस्था, प्रवेशताप्यु-
दयामावन्न उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रवेशरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति
निरोधः । इत्यम्भूतयोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्हृत औपशमिकः—
क्रोधादिकपायोदयामावन्नोपशमस्य फलस्वपो जीवस्य परमज्ञान्तावस्थालक्षण-
परिणामविशेष । स चात्मना शुद्धिविशेष । यथा—कतकचूर्णप्रक्षेपेण पक्कादि-

पाप प्रकारका है—(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक, (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक
और (५)—पारिजामिक ।

(१) औपशमिक मात्र—

उस से ईंकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुद्रेक अवस्था एवं
प्रवेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलाता है । अर्थात् उद्रेकरूप से, तथा
प्रवेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का यथाशक्ति रूकना उपशम है । इस प्रकार का
उपशम सर्वोपशम कहलाता है । जो उपशम स हो उसे औपशमिक कहते हैं ।
अर्थात् क्रोध आदि कषायों के उदयागावरूप उपशम का फलस्वपो जीव उसका परमशान्त
अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहलाता है । यह आत्मा की एक प्रकार की शुद्धि है ।
वैसे कि—कतकचूर्ण (निर्मलकतक का चूर्ण) तथा किट्कही आदि का पूरा छानने से अण्डका

प्रकारना से (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने
(५) पारिजामिक

(१) औपशमिक मात्र—

उपशम की अवस्था अग्नि समान मोहनीय कर्मनी अनुद्रेक अवस्था, जो
प्रवेशनी अपेक्षा पक्ष उदय न होना से उपशम कहलाता है अर्थात् उद्रेकरूप
तथा प्रवेशरूप—दोनों प्रकारना उदयत यथाशक्ति रूकना से उपशम से आ
प्रकारना उपशम सर्वोपशम कहलाता है जो उपशमकी अवस्था से औपशमिक
से अर्थात् क्रोध आदि कषायोंना उदयागावरूप उपशमना फलस्वपो जीव
परम शान्त अवस्थाकूप परिणाम औपशमिक कहलाता है

जो आत्माने जोके प्रकारनी शुद्धि है, जेभके कतकचूर्ण (निर्मलकतक चूर्ण) तथा

अथ जीवन्मय स्वरूपम्—

औपशमिकादिभाववान्, अयंख्यातप्रदेशी, परिणामी, लोकाकाशव्यापी प्रदीपवत् संकोचविकासशीलः, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽव्यण्डः, क्रियाशीलः, प्रदेश-समुदायरूपो, नित्यो, रूपरहितोऽवन्धितोऽमूर्तः सन्नपि संसारावस्थायां मूर्त इव प्रतीयमानः, ऊर्ध्वगतिशील आत्मा जीवः ।

अथ भावस्तद्भेदाश्च—

‘अथौपशमिकादिभाववान् जीवः’ इत्युक्तम्, तत्र कस्तावद्भावः ? श्रूयताम्—
आत्मपर्यायाणामवस्थैव भावाः । आत्मपर्यायाश्चावस्थामेदेन विविधरूपा

जीव का स्वरूप—

औपशमिक आदि भावोंवाला, असख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाव वाला, व्यक्तिरूप से अनतसत्यक, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होने पर भी ससारी अवस्था में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमनस्वभाववाला आत्मा जीव कहलाता है ।

भाव और भाव के भेद—

प्रश्न—जीव का स्वरूप बतलाते हुए उसे औपशमिक आदि भावों वाला कहा है तो भाव क्या वस्तु है ?

उत्तर—सुनिये, आत्मा के पर्यायों की अवस्था ही भाव कहलाती है । आत्मा के पर्याय, अवस्थाओं के भेद से नाना प्रकार के होते हैं, अत आत्मपर्यायवर्ती भाव

शुक्ल स्वरूप

औपशमिक आदि भावोंवाला, असख्यातप्रदेशी, परिणामी, प्रदीपप्रभाके समान संकोच-विकास स्वभाववाला, व्यक्तिरूपेणानन्तोऽव्यण्डः, क्रियाशील, प्रदेशसमुदायरूप, नित्य, अरूपी, अवस्थित, अमूर्त होना छूटाय ससारी अवस्थाओं में मूर्त जैसा प्रतीत होने वाला, ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला आत्मा शुक्ल कहलाता है ।

भाव अने भावना भेद—

प्रश्न—शुक्ल स्वरूप बतावता था तेने औपशमिक आदि भावोंवाला कहेल छे, ते भाव शुक्ल वस्तु छे ?

उत्तर—साधनो, आत्माना पर्यायेनी अवस्था न भाव कहेवाय छे आत्माना पर्याय, अवस्थाओंना भेदधी नाना प्रकारना होय छे, तेधी आत्मपर्यायवर्ती भाव पाय

भवन्ति, अत एवात्मपर्यायवर्त्ती मावः पञ्चविधो भवति—(१) औपशमिकः, (२) क्षायिकः, (३) क्षायोपशमिकः, (४) औदयिकः, (५) पारिणामिकश्चेति ।

(१) औपशमिकमावः—

(१) मोहनीयकर्मणो भस्मावच्छमवद्विषदजुदेकावस्था, प्रदेष्टतोऽप्यु-
दयामावश्च उपशमः । उद्रेकरूपेण प्रदेष्टरूपेण च द्विविधस्याप्युदयस्य यथाशक्ति
निरोधः । इत्यन्युदयोपशमः सर्वोपशम उच्यते । उपशमेन निर्हित औपशमिक-
क्षोपादिकपायोदयामावक्षोपोपशमस्य फलस्यो जीवस्य परमज्ञानावस्थालक्षण-
परिणामविशेषः । स चात्मनः शुद्धिविशेषः । यथा—कृत्कषूणमक्षोपेण पञ्चादि-

पांशु प्रकारका है—(१)—औपशमिक (२)—क्षायिक (३)—क्षायोपशमिक (४)—औदयिक
और (५)—पारिणामिक ।

(१) औपशमिक मावः—

रास से रैकी हुई अग्नि के समान मोहनीय कर्म की अनुदेक अवस्था एवं
प्रदेश की अपेक्षा भी उदय न होना उपशम कहलता है । अर्थात् उदयरूप से, तथा
प्रदेशरूप से—दोनों प्रकार के उदय का समाप्तिक रूढ़ता उपशम है । इस प्रकार का
उपशम सर्वोपशम कहलता है । जो उपशम से हो उसे औपशमिक कहते हैं ।
अर्थात् जो अग्नि कषायों के उदयमावक्षोप उपशम का फलरूप जीव उसका परमज्ञान
अवस्थाका परिणाम औपशमिक कहलता है । यह ज्ञाना की एक प्रकार की शुद्धि है ।
जैसे कि—कृत्कषूर्ण (निर्मलफल का चूरा) तथा कृत्कषूटी अग्नि का चूरा डालने से बलका

प्रकारका है (१) औपशमिक (२) क्षायिक (३) क्षायोपशमिक (४) औदयिक अने
(५) पारिणामिक

(१) औपशमिक व्यापः—

राजधी बहिला अग्नि समान मोहनीय कर्मणी अनुदेक अवस्था, जोव
प्रदेशनी अपेक्षा पक्ष उदय न होय ते उपशम कहेवास्य छे अर्थात् उद्रेकरूपधी
तथा प्रदेशरूपधी—अने प्रकारका उदयत यथाशक्ति रूढ़ता ते उपशम छे अ
प्रकारको उपशम सर्वोपशम कहेवास्य छे । जे उपशमधी होय तेने औपशमिक कहे
छे अर्थात् जीव अग्नि कषायोना उदयमावक्षोप उपशमना कहेवास्य छे तेना
परम ज्ञान अवस्थाका परिणाम औपशमिक कहेवास्य छे

जो आत्मानी जेके प्रकारनी शुद्धि छे, जेभडे कृत्कषूण (निर्मलफल चूर्ण) तथा

મલનિચયસ્યાધોદેશે નિપાતે સતિ જલસ્ય સ્વચ્છતા । મોહનીયકર્મણ ઉપશમાદ્
 યદ્ દર્શનં શ્રદ્ધાનરૂપં, ચરણં વા વિરતિરૂપં જાયતે તદપ્યૌપશમિકશબ્દેનોચ્યતે ।

(૨) ક્ષાયિકભાવ —

(૨) સકલકર્મણામત્યન્તોચ્છેદઃ ક્ષય, ક્ષયેણ નિર્વૃત્તઃ ક્ષાયિકઃ-
 અપ્રતિપાતિ-જ્ઞાનદર્શનચારિત્રલક્ષણો જીવસ્ય પરિણતિવિશેષઃ । સ ચાત્મનઃ
 પરમવિશુદ્ધિઃ । યથા-સર્વથા નિઃશેષપટ્ટાદિમલવ્યપગમે જલસ્ય પરમસ્વચ્છતા ।

કીચડ આદિ મૈલ નીચે બેઠ જાતા હૈ, ઓર જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । મોહનીય કર્મ કે
 ઉપશમ સે શ્રદ્ધાનરૂપ જો દર્શન ઉત્પન્ન હોતા હૈ યા વિરતિરૂપ જો ચારિત્ર ઉત્પન્ન હોતા હૈ
 વહ ઔપશમિક સમ્યદર્શન ઓર ઔપશમિક ચારિત્ર કહલાતા હૈ ।

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મ કા અત્યન્ત ઉચ્છેદ હો જાના ક્ષય કહલાતા હૈ । ક્ષય સે હોને વાલા ભાવ
 ક્ષાયિક ભાવ હૈ । અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન હો કર ફિર નષ્ટ ન હોને વાલે જ્ઞાન, દર્શન
 ઓર ચારિત્ર રૂપ જીવ કે પરિણામ કો ક્ષાયિક ભાવ કહતે હૈ । ક્ષાયિક અવસ્થા જીવ કી
 પરમ વિશુદ્ધિ હૈ, જૈસે-પૂર્ણ રૂપ સે સમસ્ત કીચડ આદિ મૈલ કે હટ જાને પર જલ કી
 પરમ સ્વચ્છતા હોતી હૈ ।

ફટકડી આદિનુ ચૂર્ણ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે ઝેસી જાય છે, અને જલ સ્વચ્છ
 થાય છે મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અથવા
 વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યદર્શન અને ઔપશમિક
 ચારિત્ર કહેવાય છે

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ
 ક્ષાયિક ભાવ છે અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન,
 દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે ક્ષાયિક અવસ્થા
 જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના ફર
 થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે

(३) सायोपशमिक-भावः—

(३) मिथ्यात्वमोहनीयादिकर्मणासुदीर्घस्यांशस्य नाश-स्य, अनुदीर्घ-स्यांशस्य विपाकोन्मुत्सत्त्वाभावः—उपशमः, यत्र एतद्वयं स सायोपशमः, स एव सायोपशमिकः। अस्य भावस्य 'मिथः' इति नामान्तरम्। ईश्वरविध्यात्तावच्छ्रम-वदिवद्। यद् उद्यापनिकामविष्टं कर्म, तत् क्षीणम्, ततोऽवशिष्टं कर्म, त्रेक-सायोमपरिहितावस्यम्, इमासुमयीमवस्थामपसम्भ्य सायोपशमिको भावः प्रजायते।

(४) औद्ययिकभावः—

(४) कर्मविपाकाविर्भाव उद्ययः। तेन निर्हृतो भाव औद्ययिकः। स

(३) सायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्वमोहनीय आदि कर्मों का उद्योग (उद्यम में जाये हुए) अंश का नाश होना क्षय है। और अनुदीर्घ अंश का फल देने में उन्मुत्स न होना उपशम है। इन्हीं दोनों अवस्थाओं को सायोपशमिक भाव कहते हैं। इस भाव का दूसरा नाम 'मिथभाव' भी है। मोड़ी-र मुड़ी हुई और ढकी हुई अग्नि के समान जो कर्म उद्यापनिका में भाग्युके हैं उनका क्षय होना तथा शेष कर्मों का त्रेक और सय-दोनों अवस्थाओं से रहित होना इन दोनों के आधार पर सायोपशमिक भाव उत्पन्न होता है।

(४) औद्ययिक भाव—

कर्म का विपाक (फल) देना उद्यम कहलाता है। उद्यम से होनेवाला

(३) सायोपशमिक भाव—

मिथ्यात्व मोहनीय आदि कर्मों का उद्योग (उद्यम में जायेवा) अशनेना नाश भवे ते क्षय ए आने अनुदीर्घ अशनु इव देवाभा उ-मुप-ते तशर नदि यपु ते उपशम ए, ये अने अवस्थाओंने सायोपशमिक भाव कहे ए आ भावतु पीणु नाम मिथभाव पणु ए मोडी मोडी ढकी घबेटी आने ढकिटी अग्नि प्रभावे के कम उद्यापनिकां जावी कृपा ए तेना क्षय भवे, तथा शेष कर्मोने त्रेक आने क्षय, अने अवस्थाओंधी रहित यपु आ अनेनां आधार उपर सायोपशमिक भाव उत्पन्न भवत ए

(४) औद्ययिक भाव—

कर्मो विपाक (फल) भगवु ते उद्यम कहेवाय ए उद्यमधी उपल यवानाणे भाव ते औद्ययिक ए औद्ययिक भाव आत्मानी भक्तिता इप ए केभके क्षीय-

મલનિચયસ્યાધોદેશે નિપાતે સતિ જલમ્ય સ્વચ્છતા । મોહનીયકર્મણ ઉપશમાદ્
યદ્ દર્શનં શ્રદ્ધાનરૂપં, ચરણં વા વિરતિરૂપં જાયતે તદપ્યૌપશમિકશ્વદેનોચ્યતે ।

(૨) ક્ષાયિકભાવ —

(૨) સકલકર્મણામત્યન્તોચ્છેદઃ ક્ષય, ક્ષયેણ નિર્વૃત્તઃ ક્ષાયિકઃ—
અપ્રતિપાતિ-જ્ઞાનદર્શનચારિત્રલક્ષણો જીવસ્ય પરિણતિવિશેષઃ । સ ચાત્મનઃ
પરમવિશુદ્ધિઃ । યથા-સર્વથા નિઃશેષપટ્ટાદિમલવ્યપગમે જલસ્ય પરમસ્વચ્છતા ।

કીચડ આદિ મૈલ નીચે વેંઠ જાતા હૈ, ઓર જલ સ્વચ્છ હો જાતા હૈ । મોહનીય કર્મ કે
ઉપશમ સે શ્રદ્ધાનરૂપ જો દર્શન ઉત્પન્ન હોતા હૈ યા વિરતિરૂપ જો ચારિત્ર ઉત્પન્ન હોતા હૈ
વહ ઔપગમિક સમ્યગ્દર્શન ઓર ઔપગમિક ચારિત્ર કહલાતા હૈ ।

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મ કા અત્યન્ત ઉચ્છેદ હો જાના ક્ષય કહલાતા હૈ । ક્ષય સે હોને વાળા ભાવ
ક્ષાયિક ભાવ હૈ । અર્થાત્ એક વાર ઉત્પન્ન હો કર ફિર નષ્ટ ન હોને વાલે જ્ઞાન, દર્શન
ઓર ચારિત્ર રૂપ જીવ કે પરિણામ કો ક્ષાયિક ભાવ કહતે હૈ । ક્ષાયિક અવસ્થા જીવ કી
પરમ વિશુદ્ધિ હૈ, જૈસે-પૂર્ણ રૂપ સે સમસ્ત કીચડ આદિ મૈલ કે હટ જાને પર જલ કી
પરમ સ્વચ્છતા હોતી હૈ ।

કટકડી આદિનુ ચૂર્ણ નાખવાથી કચરો અને મેલ નીચે યેસી લાય છે, અને જલ સ્વચ્છ
થાય છે મોહનીય કર્મના ઉપશમથી શ્રદ્ધારૂપ જે દર્શન ઉત્પન્ન થાય છે અથવા
વિરતિરૂપ જે ચારિત્ર ઉત્પન્ન થાય છે, તે ઔપશમિક સમ્યગ્દર્શન અને ઔપશમિક
ચારિત્ર કહેવાય છે

(૨) ક્ષાયિક ભાવ—

કર્મનો અત્યન્ત ઉચ્છેદ થઈ જવો તે ક્ષય કહેવાય છે ક્ષયથી થવાવાળો ભાવ
ક્ષાયિક ભાવ છે અર્થાત્ એકવાર ઉત્પન્ન થઈને ફરી નાશ નહિ થવાવાળા જ્ઞાન,
દર્શન અને ચારિત્રરૂપ જીવના પરિણામને ક્ષાયિક ભાવ કહે છે ક્ષાયિક અવસ્થા
જીવની પરમ વિશુદ્ધિ છે જેમ-પૂર્ણરૂપથી સમસ્ત કીચડ-કાદવ આદિ મેલના ફેર
થવાથી જલની પરમ સ્વચ્છતા થાય છે

શામનિર્વૃત્તો બીયો નિર્વૃત્ત સ્યાત્ । એવં ધાદિયરશ્ચસંગઃ । કયમસન્ આકાશ-
કુમુદમકલ્પ આત્માઽઽપ્યત્યાં સંમવે ?-વિતિ યુક્તિષિરોપથઃ ।

ન હિ પરિણામેન વિના કશ્ચિદ્ભાવો મથતીતિ માયાનાં મધ્યે પરિણામસ્યૈવ
માપાન્યમ્ । આત્મનઃ સ્વામાયિકં સ્કરૂપપરિણમનમેષ પારિણામિકો માથ ઠખ્યતે ।
યથાત્મનઃ સત્તયા સ્વપમેવ પરિણામો મથતિ, સ એવ પારિણામિકો માથ । ઠકઞ્ચ-

“ ય કર્તા કર્મમદાનાં, મોક્ષા કર્મફલમ્સ્ય ચ ।

સંસ્તર્તા પરિનિર્વાતા, સ હ્યાત્મા નાન્યસક્ષણઃ ॥ ૧ ॥”

અષ્ટમિષકર્મણાં કર્તા, કર્મફલમોક્ષા, પતુર્ગૌવિશ્રમયકર્તા, કર્મલ્પકરણેન
મોક્ષગન્તા યઃ, સ એવાત્મા, અન્યરૂપો નેત્યર્થઃ ।

પ્રકાર બીજકો સાદિ (બાદિવાણ) માનમા પથેગા, પરંતુ એસા હો નહીં સક્ષતા ક્યોક્તિ-
બો બાત્મા મૂલકાકર્મે નહીં જા તો બાકારાપુષ્પકે સમાન મથિષ્યત્ કાકર્મે ઠસકા હોના
કૈસે સંમથ હો સક્ષતા હૈ ? । ઇસ પ્રકાર યુક્તિસે મી વિરોધ બાઠા હૈ ।

વિના પરિણામ કે કોઈ માથ નહીં હો સક્ષતા અથ માથોમૈ પરિણામકી
પ્રથાનતા હૈ । બાત્મા કા સ્વામાયિક પરિણમન હી ‘પારિણામિક’ માથ કલ્પજાતા હૈ, અર્થાત્
બાત્મા કા જો અન્યપરિણમનસત્તા કા કારણ હૈ ઠસે પારિણામિક માથ સમક્ષતા
પાદિપ । કહા મી હૈ -

‘જો કર્મ કે મેદો કા કર્તા હૈ, જો કર્મફલ કા મોક્ષા હૈ । સસારમનજ
કરને શાકા હૈ, નિર્વૃત્તિ (મોક્ષ) પ્રાપ્ત કરને શાકા હૈ જ્ઞી બાત્મા હૈ, બાત્મા કા અન્ય
સક્ષ્ય નહીં હૈ ॥૧॥

અનબામા આવે તેા પૂર્વકાળમા ઇવ નહિ કલે તે કલે થયે છે અથ પ્રકારે
ઇવને ગ્રહિ (બાદિવાણો) માનવે પઠયે પરંતુ જ્યેમ થઈ શકે નહિ, કારણ કે-જે
ઇવ મૂલકાકર્મા નહીં કલે ત્યારે તેનુ આકારાપુષ્પની સમાન અથિષ્યત્ કાળમા
થવુ કેમ સભવે ? જ્યેમ યુક્તિથી પણ વિશેષ આવે છે.

વગર પરિણામે કેઈ પણ ભાવ નથી થઈ શકતો, જોટલા માટે ભાવોમાં
પરિણામની પ્રથાનતા છે આત્માનુ સ્વામાયિક પરિણમન અથ પારિણામિક ભાવ કહેવાય
છે અર્થાત્ આત્માની અન્યપરિણમનસત્તાનુ જે કારણ છે તેને પારિણામિક ભાવ
સમજવુ જોઈએ કહ્યું પણ છે-

જે કર્મના લોહોનો કલ્પી છે, જે કર્મના ફળનો મોક્ષતા છે સસારમનજ
કરવાવાળો છે નિર્વૃત્તિ (મોક્ષ) પ્રાપ્ત કરવા વાળો છે તે આત્મા છે આત્માનુ
મીલુ લક્ષણ નથી ” ॥૧॥

चात्मनो मालिन्यम्, यथा पङ्कसंगाज्जलस्य मालिन्यं । तथा-नरकगत्यादिनाम-
कर्मणो विपाकाविर्भावात्नरकगत्याद्याख्य औदयिको भावः । कषायमाहनीयकर्मणो
विपाकाविर्भावाच्च 'क्रोधी,-मानी'-त्यादिरौदयिको भावः । एवं सर्वत्रौदयिको
भावः समालोचनीयः ।

(५) परिणामिक-भावः—

(५) परिणमनं-सर्वथा-अपरित्यक्तपूर्वावस्थस्य रूपान्तरेण भवनं-परिणामः,
स एव पारिमाणिकः । अत्र स्वार्थे ठक् प्रत्ययः, न तु निर्वृत्त्यर्थे, जीवस्यादिमत्त्वापत्तेः ।
यदि 'परिणामेन निर्वृत्त' इत्यर्थे पारिणामिको जीव इति मन्यते, तदा प्रागवस्था-

भाव औदयिक है । भाव आत्मा का मालिन्यरूप है, जैसे कि कीचड़ के ससर्ग से जल में
मलिनता आ जाती है । नरकगतिनामकर्म आदि के उदय से नरक गति आदि औदयिक
भाव कहलाते हैं । कषायमोहनीय कर्म के उदय से क्रोध, मान आदि औदयिक भाव
होते हैं । इसी प्रकार सभी जगह औदयिक भाव का विचार कर लेना चाहिये ।

(५) पारिणामिक भाव—

पूर्व अवस्था का सर्वथा त्याग न कर के रूपांतर में होना परिणाम है, और वही
पारिणामिक कहलाता है । यहा स्वार्थमें ठक् प्रत्यय हुआ है, न कि निर्वृत्ति अर्थमें, निर्वृत्ति अर्थ
में प्रत्यय होनेसे जीवका आदिमान होनेका प्रसङ्ग आजाता है । यदि—“परिणामेन निर्वृत्तः
पारिणामिकः-जीवः” अर्थात् परिणामसे होनेवाला पारिणामिक-जीव कहलाता है, ऐसी
व्युत्पत्ति मानली जाय तो 'किसी पूर्व कालमें जीव नहीं था वह अब हुआ है' इस

काहवना ससर्गशी जलमा मलिनता आवी जय छे नरकगति नाम-कर्म आदिना
उदयशी नरकगति आदि औदयिक भाव कडेवाय छे कषाय-मोहनीय कर्मना उदयशी
क्रोध, मान आदि ते औदयिक भाव छे आ प्रमाणे तमाम स्थणे औदयिक भावने
विचार करी देखे।

(५) पारिष्णामिक भाव—

पूर्व अवस्थानो सर्वथा त्याग नहि करता रूपांतर थवु ते परिष्णाम छे, अने
परिष्णाम तेज पारिष्णामिक कडेवाय छे अही स्वार्थमा ठक् प्रत्यय थयो छे परन्तु
निर्वृत्ति अर्थमा नथी थयो निर्वृत्ति अर्थमा प्रत्यय थवाधी एवने आदिमान
(आदिवाणो) थवानो प्रसङ्ग आवी जय छे जे—“परिणामेन निर्वृत्त परिणामिकः-
जीव” अर्थात् 'परिष्णामशी थवावाणो पारिष्णामिक एव कडेवाय छे' आवी व्युत्पत्ति

इति । यदा जीव क्वचित्समुद्रातानस्यां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकालोकान्मेक-
जीवस्याधारक्षेत्रं भवति । मन्त्रजीवराज्यपत्नया तु जीवानामाधारक्षेत्रं संपूर्णमित्येक-
लोकालोकान् ।

लोकालोकस्याऽस्तस्यातमागे जीवस्य स्वतिरित्येवमाऽऽगपवचनं यथा—

“सद्गुणेनं लोयस्स अस्सेज्जमागे”

स्वस्याननं लोकस्यासम्पयमागे । (प्रश्ना० २ पद जीवस्यानाधिकारे)

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम् ? उच्यते—जीवस्यानाधिकत्वो-
ऽनन्तानन्ताणुप्रचयरूपेण कर्मण-शरीरेण सम्बन्धादकस्यैव जीवस्य परिमाणं
जीव का आधारक्षेत्रं लोकालोकान् के असेज्जमातरे भाग स लकर संपूर्ण लोकालोक
हो सकता है । जब जीव क्वचित्समुद्रात करता है उस समय वही एक जीव संपूर्ण
लोकालोक में व्याप्त हो जाता है । समस्त जीवगति की अपेक्षा संपूर्ण लोकालोक
जीव का आधारक्षेत्र है ।

जीव का अन्तर्गत लोकालोक के असेज्जमातरे भाग में होता है, इस
विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

“सद्गुणेनं लोयस्स अस्सेज्जमागे” (प्रश्नापत्ता २ पद जीवस्यानाधिकार)
स्वस्याननं लोकस्यासम्पयमागे (जीव की स्थिति है) ।

प्रश्ना—जीव के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है ?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कर्मण शरीर के साथ
आगे एवं केवलिसमुद्रात करे छे ते समय ते लोक एवं संपूर्ण लोकालोकमा
व्याप्त एवं लोय छे समस्त एवंतशिनी अपेक्षाधी संपूर्ण लोकालोक एवंत
आधारक्षेत्र छे

एवमेव अन्तर्गत लोकालोकान् असेज्जमातमा आगमा लोक छे आ विषयमां
आनन्त प्रमाण आ प्रमाये छे—

“सद्गुणेनं लोयस्स अस्सेज्जमागे” स्वस्याननं अपेक्षा लोकान् असेज्जमातमा
आनन्तमां (लोकान् स्थिति छे) प्रश्नापत्ता २ पद जीवस्यानाधिकार)

शंका—एवमेव परिष्कारनी न्यूनाधिकतात्तु शु कारण छे ?

समाधान—अनन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप (संभूत) रूप कर्मण शरीर

जीवस्य स्थितिक्षेत्रम्—

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य, समस्तलोकाकाशे जीवोऽवगाहते । जीवप्रदेशानां प्रदीपवत् संकोचविस्तारस्वभावत्वात् । आत्मनः परिमाणं न गगन-
वन्महत्, नापि परमाणुवदणु, किन्तु मध्यमम् ।

यद्यपि प्रदेशसंख्यापेक्षया समानमेव सर्वेषामात्मनां स्वस्वपरिमाणम्, तथापि दैर्घ्य-विस्तारादि सर्वेषां विसदृशमेव । अतः प्रत्येकजीवस्याऽऽधारक्षेत्रं जघन्यतो लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागतः समारभ्य समग्रभागपर्यन्तं भवितुम-

जीव का स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाश के असख्यातवें भाग से लेकर सम्पूर्ण लोकाकाश में जीव का अवगाहन हो सकता है । कारण यह है कि—जीव के प्रदेश दीपक की प्रभा के समान संकोच-विस्तार स्वभाव वाले हैं, अर्थात् कभी सिकुड़ जाते हैं और कभी फैल जाते हैं । आत्मा का परिमाण न तो आकाश के समान महान् (सर्वव्यापी) है और न परमाणु के बराबर ही है किन्तु आत्मा मध्यम परिमाण वाला है ।

प्रदेशों की संख्या की अपेक्षा समस्त आत्माओं का परिमाण बराबर है, अर्थात् सब आत्मा लोकाकाश के बराबर असख्यातप्रदेश वाले हैं किन्तु प्राप्त शरीर के अनुसार उनके विस्तार में (परिमाण में) अन्तर पड़जाता है, अतः प्रत्येक

एवमु स्थितिक्षेत्र—

लोकाकाशना असंख्यातभा भागधी लधने संपूर्ण लोकाकाशभा एवमु
अवगाहनं यद्यं शके छे कारण्यं अथे छे—एवमुना प्रदेश दीपकनी प्रभानी समान
संकोच-विस्तार स्वभाववाणा छे, अर्थात् कौछ वषत् सङ्कुचार्थं नय छे अने कौछ
वषत् प्रेलां नय छे आत्मानु परिमाणु आकाशप्रमाणे महानं नथी अने
परमाणुना परापरं पणु नथी परन्तु आत्मा मध्यम परिमाणु वाणो छे

प्रदेशोनी संख्यानी अपेक्षायै समस्त आत्मानु परिमाणु परापरं छे अर्थात्
सर्वं आत्मा लोकाकाशना परापरं असंख्यात प्रदेशवाणा छे, परंतु प्राप्त शरीरना
अनुसारं तेना विस्तारभा (परिमाणुभा) अन्तर पडी नय छे तेटला शरीरधी प्रत्येक एवने
आधार-क्षेत्र लोकाकाशना असंख्यातभा भागधी लधने संपूर्ण लोकं सुधी यद्यं शके छे

इति । यदा जीवः क्वलिसमुद्रातापस्यां प्राप्नोति, तदा समस्तलोकाकाशमेक-
 शीवस्यापारक्षेत्र मवति । सकलजीवराज्यपेक्षया तु जीवानामाधारस्य संपूर्णमेव
 लोकाकाशम् ।

लोकाकाशस्याऽसंख्यातभागे जीवस्य स्थितिरित्यत्राऽऽगायचर्चनं यथा—

“सद्भागेण मायस्त असखेज्जहमागे”

स्वस्थानेन लोकस्यासस्ययमागे । (प्रश्ना २ पद जीवस्यानाधिकार)

ननु परिमाणस्य न्यूनाधिकत्वे किं कारणम् ? उच्यते—जीवस्यानाधिकारतो-
 ऽन्तानन्ताशुभयरूपेण कर्मण-शरीरेण सम्बन्धादेकस्यैव जीवस्य परिमाणं
 जीव का आधारक्षेत्र लोकाकाश के असंख्यातवै भाग स कर सम्पूर्ण लोकाकाश
 हो सकता है । जब जीव क्वलिसमुद्रात करता है उस समय वही एक जीव सम्पूर्ण
 लोकाकाश में व्याप्त हो जाता है । समस्त जीवराजि की अपेक्षास सम्पूर्ण लोकाकाश
 जीवों का आधारक्षेत्र है ।

जीव का भवगाह लोकाकाश के असंख्यातवै भाग में होता है; इस
 विषय में आगम का प्रमाण इस प्रकार है—

“सद्भागेण मायस्त असखेज्जहमागे” (प्रश्नापना २ पद जीवस्यानाधिकार)
 स्वस्थान की अपेक्षा लोक का असंख्यातवै भाग में (जीव की स्थिति है) ।

प्रश्न—जीवों के परिमाण की न्यूनाधिकता का क्या कारण है ?

समाधान—अन्तानन्त परमाणुओं के प्रचयरूप कर्मण शरीर के साथ

जब एक लव डेवदिसमुद्रात करे तो उस समय ते लोक एक स पूरा लोकाकाशमें
 व्याप्त यह लव है समस्त लवराशिनी अपेक्षाशी स पूरा लोकाकाश लवेतु
 आधारक्षेत्र है

एवमेव अवगाह लोकाकाशना असंख्यातभा भागभा होय है का विषयमां
 आशयतु प्रमाण का प्रमाण है—

सद्भागेण मायस्त असखेज्जहमागे स्वस्थाननी अपेक्षा लोकाकाश असंख्यातभा
 भागमां (जीवनी स्थिति है) प्रश्नापना २ पद जीवस्यानाधिकार)

शंका—एवमेव शरीरमनी न्यूनाधिकतातु तु कारण है ?

समाधान—अन्तानन्त परमाणुओंके प्रचय (समूह) रूप कर्मण शरीर

વહૂનાં વા જીવાના પરિમાણં વિવિધં જાયતે । કાર્મણ-શરીરં ઠિ સર્વદાઝ્નેક-
રૂપેનાવતિષ્ઠતે । તત્સમ્બન્ધાદૌદારિકાઘપિ શરીરં તદનુસારિ ન્યૂનાધિક-
પરિમાણભાગ્ ભવતિ ।

જીવમ્ય મૂર્તવદ્ ઠાસવૃદ્ધિઃ—

વસ્તુતો રૂપરઠિતોઽપિ જીવઃ શરીરસમ્બન્ધાન્ન્યૂનાધિકપરિમાણં
દધન્મૂર્તે ઈવાપચયોપચયૌ પ્રાપ્નોતિ । મ ઠિ સ્વભાવતઃ પ્રદીપવન્નિમિત્તમાસાઘ
સકોચવિકાશશીલઃ સ્વાશ્રયમાત્રેઽવભાસતે । યથા-કલશે પ્રાસાદપ્રદેશે નિરા-

અનાદિ કાલ સે જીવ કા સમ્બન્ધ ઠે । ઁસ સમ્બન્ધ કે કારણ ઁક ઠી જીવ કા
અનેક કાલો મેં, ઁર અનેક જીવો કા ઁક ઠી કાલ મેં બિન્નર પ્રકાર કા પરિમાણ
ઠોતા ઠે । કાર્મણ શરીર સદા વિભિન્ન રૂપો મ પરિણમન કરતા રઠતા ઠે । ઁસકે સયોગ સે
ઁદારિક આદિ શરીર ઠી કાર્મણ શરીર કે અનુસાર ન્યૂનાધિકપરિમાણવાલે ઠોતે ઠે ।

જીવ કી ઠાસ-વૃદ્ધિ—

જીવ વાસ્તવ મે અરૂપી ઠે, ફિર ઠી શરીર કે સાથ સમ્બન્ધ ઠોને કે કારણ
વઠ ઠોટે-ઠોટે પરિમાણ કો ધારણ કરતા ઠે, અત ઁસ મે મૂર્ત પદાર્થ કી ઠોતિ અપચય
(ઠાસ) ઁર ઁપચય (વૃદ્ધિ) ઠોના ઠે । સ્વભાવ સે સકોચ વિકાસવાલા જીવ નિમિત્ત
પાકર દીપક કી તરઠ અપને આશ્રય (શરીર) મે પ્રતિભાસિત ઠોતા ઠે । જૈસે ઘટ મેં,

સાથે અનાદિ કાલથી ઁવનો સળ ઘ ઁ, ઁ સળ ઘના કારણે ઁકલ્ ઁવના અનેક
કાલોમા, અને અનેક ઁવોના ઁકલ્ કાલમા બિન્ન બિન્ન પ્રકારનુ પરિમાણ થાય ઁ
કાર્મણ શરીર સદાય વિભિન્ન રૂપોમા પરિણમન કરી રઠે ઁ, તેના સયોગથી
ઁદારિક આદિ શરીર પણ કાર્મણ શરીર પ્રમાણે ન્યૂનાધિક પરિમાણવાળા ઠોાય ઁ

ઁવની ઠાસ વૃદ્ધિ—

ઁવ વાસ્તવમા અરૂપી ઁ, તે પણ શરીરની સાથે સળ ઘ ઠોવાના કારણે તે
નાના-ઠોટા પરિમાણને ધારણ કરે ઁ, તે કારણથી તેમા મૂર્ત પદાર્થની જેમ અપચય
(ઠાસ) અને ઁપચય (વૃદ્ધિ) થાય ઁ સ્વભાવથી સકોચ-વિકાસવાળો ઁવ નિમિત્ત
પ્રાપ્ત કરી દીપકની પ્રમાણે ઁતાના આશ્રય (શરીર)મા પ્રતિભાસિત થાય ઁ-(ઠેખાય ઁ)

दृताकाशे धावस्थितं प्रकाशपुरुषरूपं प्रदीपः स्वाभयमात्रावमासी क्वचित् संकुचितं क्वचित् विततवन्न भवति । अतः शरीरपरिमाणानुसारं परिमाणं दधान आत्मा मूर्त इव विहायते । उक्तञ्च राजप्रसीयसूत्रे—

“पपसी ! जहाणामए-कूडागारसत्ता सिया जाव गमीरा, मइ ण केई पुरिसे जोई व दीवं व” इत्यारभ्य “एवमेव पपसी ! अथेवि अं चारिसर्यं पुञ्जकम्मनिबद्धं बोद्धिं विम्बत्तेइ तं असखेज्जेहिं मीवपएसेहिं सचिचं करेइ-सुद्धियं वा महासिच्यं वा” इति पर्यन्तम् । सू० ८४ ॥ इति ॥

प्रदेशिन तद् यथानामकम्-कूटागारसत्ता स्यात् यावद् गम्भीरा अथ सक्त कोऽपि पुरुषः न्योतिर्वा दीर्घ वा (इत्यारभ्य) एवमेव प्रदेशिन ! जीवोऽपि यां यादृशिकां पूर्वकर्मनिबद्धां बोद्धिं निर्बर्त्तयति तामसंख्येयैर्मीवपदत्रैः सचिचां करोति सुद्धिच्यं वा महासच्यं वा ।” इति उच्यते ।

मूढ में और सुक आकाश में रक्ता हुआ प्रकाश का पुरुरूप दीपक अपनी बगल पर माध्यम होता हुआ कहीं संकुचित होता है और कहीं विलुप्त होता है । इसी प्रकार शरीर के परिमाण के अनुसार परिमाणवाला आत्मा मूर्त जैसा माध्यम होता है । राजप्रसीय सूत्र में कहा है —

हे प्रदेशी राजा ! जैसे कोई कूटागार साया हो और वह (यावत्) गंभीर हो और कोई पुरुष जेत या दीपक उस में रक्ता तो वह उसे पूर्णरूप से प्रकाशित करता है, इसी प्रकार हे प्रदेशी ! आत्मा अपने पूर्वोपचित कर्मों के अनुसार जैसा शरीर पाता है, उसे असंख्यात आत्मप्रदेशों से सचिच बना देता है, चाहे वह शरीर बड़ा हो चाहे क्षुण्ण (छोट) हो” ।

कैसी रीतें घरमां, भडेलमां अने सुक्या आकाशमा सजेतो प्रकाश-पुरुषरूप दीपक पीतानी जन्माजे देजातो बडेा डोड जन्माजे संकुचित होय छे अने डोड जन्माजे विलुप्त होय छे जे प्रमाद्ये शरीरमा परिमाण अनुसार परिमाण वाणो आत्मा मूर्त जेवो देजाय छे राजप्रसीय सूत्रमा कहु छे —

“हे प्रदेशी राजा ! जेव डोड कूटागार साया होय ते (यावत्) गंभीर होय अने डोड पुरुष जेवत अथवा दीपक तेमा सजे तो ते जेने पुरुषरूपधी प्रकाशित करे छे, जे प्रमाद्ये हे प्रदेशी ! आत्मा पीतानी पूर्वोपचित कर्मो प्रमाद्ये जेवु शरीर प्राप्त करे छे तेने असंख्यात आत्मप्रदेशोधी सचिच जन्मवी हे छे, ते शरीर जेते तो ओहु होय अथवा नाहु होय” ।

जीवस्य-ऊर्ध्वगतिः—

सकलकर्मणां क्षये सति सपदि जीवो मुक्तः सन्तुष्टं गच्छति, न च 'जीवस्यामूर्तत्वाद् गतेरसंभवः' इति वाच्यम्, स्वभावत एव पुद्गलद्रव्ययद् जीवस्य गतिशीलत्वात् ।

इयान् विशेषः पुद्गलेभ्यः—पुद्गलाः स्वभावादधोगतिशीलाः, जीवास्तु स्वभावा-
दूर्ध्वगतिशीलाः । प्रतिबंधकद्रव्यसद्भाद् ऊर्ध्वगमनस्वभावा जीवा अधस्तिर्यग् वा
गच्छन्ति, गन्तुमक्षमा वा भवन्ति । तच्च तद्गतिप्रतिबन्धक कर्मैव । यदा सकल-

जीव की ऊर्ध्वगति—

सकल कर्मों का क्षय होने पर तत्काल मुक्त हुआ जीव ऊपर की ओर
गमन करता है । 'जीव अमूर्त है और इस कारण वह गति नहीं कर सकता' ऐसा
कहना ठीक नहीं है, क्यों कि पुद्गल-द्रव्य के समान जीव स्वभाव से ही गतिशील है ।

गति के विषय में जीव और पुद्गल में इतना भेद है—पुद्गल अधोगतिशील है
और जीव ऊर्ध्वगतिशील है, अर्थात् पुद्गलों का स्वभाव नीचे जाने का है और जीव का
स्वभाव उपर की ओर जाने का है मगर रुकावट डालने वाले द्रव्यों के निमित्त से
ऊर्ध्वगतिशील जीव भी नीचे की ओर अथवा तिरछा गमन करता है । या कभी गमन
करने में असमर्थ हो जाता है । जीव की स्वाभाविक गति का प्रतिबन्धक (रुकावट
डालने वाला) कर्म ही है । जब समस्त कर्मों का अत्यन्त उच्छेद हो जाता है और

एवनी उर्ध्व गति—

सकल कर्मोना क्षय थया पछी तत्काल मुक्त थयेवो एव उपर तरङ्ग गमन
करे छे 'एव अमूर्त छे, अने अे कारखुधी ते गति करी शकते नथी'—अेभ
कहेवु ते डीक नथी, केभके पुद्गलानो प्रभाषे एव स्वभावथी न गतिशील छे

गतिना विषयमा एव अने पुद्गलमा अेटवो भेद छे—पुद्गल अधोगतिशील
छे, अने एव उर्ध्वगतिशील छे अर्थात् पुद्गलानो स्वभाव नीचे नवानो छे, अने
एवना स्वभाव उपर तरङ्ग नवानो छे परतु तेमा अतराय नाभवावाणा द्रव्योना
निमित्तथी उर्ध्वगतिशील एव पषु नीचे तरङ्ग अथवा तिछी गमन करे छे अथवा
कोछ वअत गमन करवामा असमर्थ थछ नथ छे एवनी स्वाभाविक गतिना
प्रतिबन्ध (अटकायत) करनार कर्म न छे न्यारे सकल कर्मोना अत्यन्त क्षय थछ

कर्मज्ञानमत्यन्तोच्छेदे सति कर्मसङ्ग्रामात् कर्मवृत्तानोच्छेदाच्च नास्त्येवोर्ध्वगति-
प्रतिबन्धकं तदा स्वस्वमावानुसारेणार्ध्वगमनावसरः सिद्धानामुपतिष्ठते ।

जीवस्य लक्षणम्—

उपयोगवत्त्वं जीवस्य लक्षणम् । उपयुज्यते वस्तुपरिच्छेदं प्रति व्यापार्यते
जीवो ज्ञेयैस्तु उपयोगः करणे च । बोधरूपो व्यापार उपयोगः । ज्ञानं, संवेदन,
प्रत्ययः, इति नामान्तराणि ।

सामान्यविशेषरूपबोधद्वयवर्धनान्निवृत्तयो मवति-विद्यते त्वत्तु जीवः
यस्यैर्ष्या सामान्यविशेषावबोधौ, न च तादृश कश्चिदस्ति जीवो, यस्य साक्षा-
त्कर्मो का संसर्गो नही रहता, कर्मकथन का उच्छेद होने से ऊर्ध्वगति का कोई
प्रतिबन्धक नही रहता तब सिद्ध जीवों को ऊर्ध्व गमन का अवसर प्राप्त होता है ।

जीव का लक्षण—

जीव का लक्षण उपयोग है । जो जीव को वस्तु के बोध में व्यापृत करता है
उपयुक्त बनाता है उस उपयोग कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—बोधरूप व्यापार उपयोग
कहा जाता है । ज्ञान संवेदन प्रत्यय ये उपयोग के पर्यायवाची शब्द हैं ।

सामान्य बोध (दर्शन) और विशेष बोध (ज्ञान) अनुभवसिद्ध है । इन
दोनों बोधों से यह निश्चय होता है कि जीव अक्षय्य है जिस में यह सामान्य और
विशेष बोध पाया जाता है । ऐसा कोई जीव नहीं है जिस में सामान्य—बोध (निराकार
बोध) से ज्ञाने इन्द्रियाणि ससर्गं त्छेदये नही त्परे इन्द्रियजनने क्षय भव्याधी उर्ध्वगति
भवामां केवल प्रतिबन्धक (अतस्तत्र कस्मान्) रहेंतु नही त्परे सिद्ध लोकोत्तरे उर्ध्व
गमन कस्वानो अवसर प्राप्त भव्ये

एतत्तु लक्षणम्—

एतत्तु लक्षण उपयोग से ते एतने वस्तुना बोधमां व्यापृत—व्यापारयुक्ता
हरे से तात्पर्य ये से है—बोधरूप व्यापार उपयोग कहेवाच्य से । ज्ञान, संवेदन,
प्रत्यय, आ अप उपयोगना पर्यायवाची शब्दों से

सामान्य बोध (दर्शन) ज्ञाने विशेष बोध (ज्ञान) अनुभव सिद्ध से जो ज्ञाने
बोध्याधी ज्ञेय निश्चय वाच्य से है—एव अक्षय्य से ज्ञेयमां आ सामान्य तथा
विशेष बोध ज्ञेयामां ज्ञाने से ज्ञेयो केवल एव नही है ज्ञेयमां सामान्य बोध

रानाकारोपयोगौ न स्तः । अत एवोक्तं भगवता—“ जीवो उवओगलक्खणो ” इति ।

लक्ष्यते—ज्ञायतेऽनेनेति लक्षणम् । उपयोगो लक्षणं यस्य स उपयोगलक्षणः । ज्ञानावगम्यो जीव इत्यर्थः ।

पृथिवीकायादिसर्वसंसारिजीवानां बोधस्यानन्ततमो भागः सर्वदा प्रकाशमानोऽनावृतस्तिष्ठत्येव । नहि सकललोकान्तवर्तिन पुद्गलाः कर्मरूपतया परिणता अपि कस्यापि जीवस्य सर्वतोभावेन ज्ञानमावरीतुं प्रभवन्ति । यथा—अतिनिविडघनघटाऽऽच्छादितस्यापि सूर्यस्य प्रकाशलेशः प्रकाशत एव, नच सर्वथा उपयोग) और विशेष बोध (साकार उपयोग) विद्यमान न हो, इसी कारण भगवान्ने कहा है—“जीवो उवओगलक्खणो” जीव उपयोग लक्षण वाला है ।

जिस के द्वारा वस्तु लखी जाय—जानी जाय वह लक्षण कहलाता है । उपयोग जिस का लक्षण हो उसे उपयोगलक्षण कहते हैं । तात्पर्य यह है कि—ज्ञान लक्षण के द्वारा जीव मात्स्य होता है ।

पृथिवीकाय आदि समस्त ससारी जीवों के ज्ञान का अनन्तवा भाग सदैव प्रकाशमान और आवरणरहित बना रहता है । सम्पूर्ण लोकाकाश के पुद्गल कदाचित् कर्मरूप में परिणत हो जाएँ तो भी वह किसी एक जीव के ज्ञान को पूर्णरूप से आवृत नहीं कर सकते । सूर्य चाहे कितनी ही सघन घनघटा से आच्छादित क्यों न हो जाए, उसका थोडा बहुत प्रकाश बना ही रहता है, प्रकाश कभी परी तरह

(निराकार उपयोग) अने विशेष बोध (साकार उपयोग) विद्यमान न होय, अे कारण्युथी लगवाने कल्यु अे अे —“ जीवो उवओगलक्खणो ” अेव उपयोग लक्षणाणी अे ।

नेना द्वारा वस्तु लभी शकाय—अणु शकाय—ते लक्षणा कडेवाय अे । उपयोग नेनु लक्षणा होय, तेने “ उपयोगलक्षणा ” कडे अे तात्पर्य अे अे अे—ज्ञानलक्षणा द्वारा अेव मात्स्य पडे अे

पृथिवीकाय आदि तमाम ससारी अेवोना ज्ञानने अनन्तमे भाग अेश प्रकाशमान अने आवरणरहित अनी रहे अे सपूर्ण लोकाकाशना पुद्गले कदाय कर्मरूपमा परिणत थथ अय तो पणु ते कौध अेक अेवना ज्ञानने पूर्णरूपथी आवृत करी (ढाडी) शके नहि सूर्य गमे तेदली घनघटा—(अेघाडअर)मा आच्छादित थथ अय तो पणु सूर्यने थोडा—अजे प्रकाश तो अनी अे रहे अे,

विरोधितो भवति । तथा पृथिवीकायादिजीवानामुपयोगांश्च स्फुरत्येव सर्वदा । यदि ओक्त्वापि न पुद्गलाः सपीथूपापि कर्मवर्णारूपेण सर्वतोभावेन ज्ञानं विरोधयुस्तर्हि निर्बीयतापत्तिरात्मनो दुर्बारा स्यात् । तस्मात् पृथिव्यादिजीवेषु बोधांश्च म्भमावतोऽनाहृतस्तिष्ठत्यवेति सिद्धम् । उक्तं चागम—

“सम्बन्धीवाणं पि य णं अक्षरस्स अणतमागो निष्पुग्गाडिभो । अह पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा ”

“सुद्धुवि मेहसमुदए, होइ पमा चंद—धुरायं ” इति ।

छाया—सर्वजीवानामपि च सत्तु अक्षरस्यानन्तमागो नित्योद्घाटितः । यदि पुनः सोऽपि आव्रियत तर्हि सत्तु जीवः अजीवत्वं प्राप्नुयात् । “सुद्धुपि मेहसमुदये, भवति ममा चन्द्रसूरयोः” इति ।

विरोधित नहीं हो सकता, इसी प्रकार पृथिवीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों के उपयोग का अर्थ सदा स्फुराममान रहता ही है । अगर ओक्त्वापी पुद्गल इच्छे हो कर्मवर्णया रूप परिवर्त हो कर ज्ञान को पूरी तरह आच्छादित कर इसके सों जीव अजीव का अर्थ अगर ऐसा होना असम्भव है, अत एव यह सिद्ध है कि—पृथिवीकाय आदि एक इन्द्रिय वाले जीवों में भी ज्ञान का किंचित अंश स्वभाव से बनाहृत (आवरण रहित) रहता है । आगम में भी कहा है—“सम्बन्धीवाणं पि य णं अक्षरस्स अणतमागो निष्पुग्गाडिभो, अह पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा” “सुद्धुपि मेहसमुदए होइ पमा चन्द्रसूरायं”

अथ अक्षरय पुण्ये विरोधित—आच्छादित यतो नही के प्रभावे पृथिवीकाय आदि ओकेन्द्रिय जीवाना उपयोग” अथ पुण उहा सुसुखमान रहे छे अक्षर लोकव्यापी पुद्गल ओकठा यधने कर्मवर्णारूप परिवर्त यधने ज्ञानने पूरी तरहकी आच्छादित करी नांजे (बांधी के) तो एव अल्प जनी अत पुण ओम जन्तु अक्षरचित छे ओकठा अक्षरकी के सिद्ध छे के—पृथिवीकाय आदि ओकेन्द्रियवाला जीवोना पुण ज्ञानने किंचित अथ स्वभावकी जनाहृत—अणतमागो निष्पुग्गाडिभो छे छे अणतमागो पुण कथं छे— सम्बन्धीवाणं पि य णं अक्षरस्स अणतमागो निष्पुग्गाडिभो । अह पुण सोऽपि आवरिज्जा तो णं जीवो अजीवत्तं पाविज्जा सुद्धुवि मेहसमुदए होइ पमा चन्द्रसूरायं

તસ્માદ્ યશ્ચ યાવાનુપયોગાંશઃ સર્વસંસારિજીવેષુ યથાસંભવં સ્વભાવતોઽનાવૃતો વર્તતે, તત્ર સર્વતો જઘન્ય ઉપયોગાંશઃ પ્રમથસમયે સ્વલ્પપર્યાપ્તાના સૂક્ષ્મનિગોદાના-મેવ ભવતિ । તતઃ પરં સ એવોપયોગાંશઃ અવશિષ્ટૈકેન્દ્રિય દ્વિ-ત્રિ-ચતુઃ-પન્ચેન્દ્રિયમેદાદ્ ભિદ્યમાનઃ સંભિન્નસ્રોતસ્ત્વાદિલબ્ધિસમૂહેન ચ લબ્ધિનિમિત્તકરણશરીરેન્દ્રિયવાહ્મ-નાંસિ સમાશ્રિત્ય પ્રવર્ધમાનો વિવિધક્ષાયોપશમકૃતવૈચિત્ર્યવતામવગ્રહાદીનાં મેદેન તતોઽપ્યધિકતરં વર્ધમાનઃ સકલઘાતિકર્મક્ષયં કૃત્વા, સકલજ્ઞેયગ્રાહિકાં પરાં વિશુદ્ધિ

“સર્વ જીવોં કે અક્ષર કા અનન્તવા ભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડા (નિરાવરણ) બના રહતા હૈ, અગર વહ મી ઢક જાય તો જીવ અજીવ હો જાય । ”

“મેંધોં કા સ્વૂબ સમુદાય હોને પર મી ચન્દ્રમા ઓર સૂર્યે કો પ્રમા તો બની હી રહતી હૈ । ”

ઉપયોગ કા જો સર્વ' જઘન્ય અશ' સમસ્ત સસારી જીવોંમેં સર્વદા અનાવૃત બના રહતા હૈ, વહ જઘન્ય અશ ઉત્પત્તિ કે પ્રથમ સમય મેં વર્તમાન અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદિયા જીવોં મેં મી હોતા હૈ । તત્પશ્ચાત્ વહી ઉપયોગ કા અશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય ચતુરિન્દ્રિય ઓરેં પન્ચેન્દ્રિય કે મેદ સે ભિન્ન હોતા હુઆ સભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લબ્ધિયોં કે સમૂહ સે લબ્ધિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય વચન ઓર મન કા આશ્રય લેકર બઢતા જાતા હૈ । યહા તક કિ વિવિધ પ્રકાર કે ક્ષયોપશમ કી વિચિત્રતા વાલે જીવોં કે અવગ્રહ આદિ કે મેદ સે ઓર ઉસ સે મી અધિક બઢકર સમસ્ત ઘાતી કર્મોં કા ક્ષય હોને પર સમસ્ત જ્ઞેય પદાર્થોં

“ સર્વ જીવોંને અક્ષરનો અનન્તભાગ જ્ઞાન સદૈવ ઉઘાડુ (નિરાવરણ) રહે છે અગર તે પણ જો ઢકાઈ નય તો જીવ અજીવ થઈ નય ”

“ મેંધનો ખુબ સમુદાય હોય તો પણ ચંદ્ર અને સૂર્યની પ્રમા બની રહે છે ”

ઉપયોગનો જે સર્વ જઘન્ય અશ તમામ સસારી જીવોંમા સર્વદા અનાવૃત (ઉઘાડો) બની રહે છે તે સર્વ જઘન્ય અશ ઉત્પત્તિના પ્રથમ સમયમા વર્તમાન, અપર્યાપ્ત સૂક્ષ્મ નિગોદના જીવોંમા પણ હોય છે તે પછી તે ઉપયોગનો અશ એકેન્દ્રિય દ્વીન્દ્રિય ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પન્ચેન્દ્રિયના લેહથી ભિન્ન થઈને, સભિન્નસ્રોતસ્ત્વ આદિ લબ્ધિઓના સમૂહથી, લબ્ધિ, નિમિત્ત, કરણ, શરીર, ઇન્દ્રિય, વચન અને મનનો આશ્રય લઈને વધતો નય છે, અહીં સુધી કે વિવિધ પ્રકારના ક્ષયોપશમની વિચિત્રતાવાળા જીવોંને અવગ્રહ આદિ લેહથી અને તેનાથી પણ અધિક વધીને સમસ્ત ઘાતી કર્મોંનો

माप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

जीवा द्विविधा -सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्दूताश्लेषकर्माण मिद्धा*,
असिद्धा* ससारिणः । द्रव्यमाशब्दबन्धः ससार* । कर्माणिकसम्बन्धो द्रव्यबन्ध,
रागद्वेषादिपरिणाममर्भञ्जो माशब्दबन्धः । द्विविधबन्धरूपः संसारोऽस्ति येषां ते
संसारिणः । ससारिणा द्विविधा प्रसस्वावरमदात् । तत्र पृथिव्यवृषणनस्पतयः
स्वावरा । तेजोवायुदारात्प्रज्ञाः । तेजोवायु गन्धैश्च त्रसो, न तु स्पृश्या । तजोदाराम्
तुर्विधा -द्वि-भि-चतुः-पञ्चन्द्रियमदात् । तत्र पञ्चन्द्रिया पुनर्द्विविधाः समनस्का
अमनस्काश्च ।

को ज्ञान्ते योग्य विशुद्धता प्राप्त कृते केवल ज्ञान सज्ञा को प्राप्त है ।

जीव दो प्रकार के है —सिद्ध जीव और असिद्ध जीव । सकल कर्मों से
रहित जीव सिद्ध कहलाते है और ससारी जीव असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध
और माशब्द को संसार कहते है । भाठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग
द्वेष आदि परिणामों का सम्बन्ध होता माशब्द है । यह दो प्रकार का बन्धरूप
ससार बिन्दु के हो के संसारी जीव कहलाते हैं । संसारी जीव प्रस और स्वावर के
भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी अथ और वनस्पति ये स्वावर हैं, तेज वायु और उदार जीव
प्रस हैं । इन में तेज और वायु गतिप्रस हैं अग्नि से स्वावर है ।

उदार के चार भेद है—इन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय
जीवों के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद हैं ।

सुख यथाशी समस्त ज्ञेय पदार्थोंने आलुषा योग्य विशुद्धता प्राप्त करीने केवलज्ञान
सज्ञा प्राप्ते है

एव जे प्राप्नोति है—सिद्ध एव अने असिद्ध एव, सकल कर्मोंकी रहित
एव सिद्ध कहेवाय है अने ससारी एव असिद्ध कहेवाय है द्रव्यबन्ध अने
माशब्दबन्धने संसार कहे है अथ कर्मोंने सम्बन्ध ते द्रव्यबन्ध है अने राग-द्वेष
आदि परिणामोंने सम्बन्ध माशब्द है अने जे प्राप्नोति अशरूप संसार
रहित ज्ञान है ते ससारी एव कहेवाय है ससारी एव प्रस अने स्वावरना सेदधी
जे प्राप्नोति है पृथ्वी, वायु, अने वनस्पति अथ तजु स्वावर है तेज वायु
उदार एव प्रस है तेमां तेज अने वायु गतिप्रस है अग्निही स्वावर है
उदारना चार भेद है इन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चन्द्रिय
एवोंना संज्ञी असंज्ञी जे जे भेद है

तस्माद् यश्च यात्रानुपयोगाशः सर्वसंसारिजीवेषु यथासंभवं स्वभावतोऽनावृतो वर्तते, तत्र सर्वतो जघन्य उपयोगाशः प्रमथसमये खल्वपर्याप्ताना सूक्ष्मनिगोढानामेव भवति । ततः परं स एवोपयोगाशः अशिशिष्टैकेन्द्रिय द्वि-त्रि-चतुः-पञ्चेन्द्रियभेदाद् भिद्यमानः संभिन्नस्रोतस्त्वादिलब्धिसमूहेन च लब्धिनिमित्तकरणशरीरेन्द्रियत्रादमनांसि समाश्रित्य प्रवर्धमानो विविधक्षायोपशमकृतवैचित्र्यवतामवग्रहादीना भेदेन ततोऽप्यधिकतरं वर्धमानः सकलघातिर्कर्मक्षयं कृत्वा, सकलज्ञेयग्राहिका परां विशुद्धिं

“सर्व जीवों के अक्षर का अनन्तवा भाग ज्ञान सदैव उघाडा (निरावरण) बना रहता है, अगर वह भी ढक जाय तो जीव अजीव हो जाय । ”

“मेंघों का खूब समुदाय होने पर भी चन्द्रमा और सूर्य को प्रभा तो बनी ही रहती है । ”

उपयोग का जो सर्व जघन्य अत्र समस्त ससारी जीवोंमें सर्वदा अनावृत बना रहता है, वह जघन्य अत्र उत्पत्ति के प्रथम समय में वर्तमान अपर्याप्त सूक्ष्म निगोढिया जीवों में भी होता है । तत्पश्चात् वही उपयोग का अत्र एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से भिन्न होता हुआ संभिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धियों के समूह से लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय वचन और मन का आश्रय लेकर बढ़ता जाता है । यहा तक कि विविध प्रकार के क्षयोपशम की विचित्रता वाले जीवों के अवग्रह आदि के भेद से और उस से भी अधिक बढ़कर समस्त घाती कर्मों का क्षय होने पर समस्त ज्ञेय पदार्थों

“सर्व एवोने अक्षरने अनन्तमे लाग ज्ञान सदैव उघाडु (निरावरण) रहे छे अगर ते पणु ने ढकाई जाय तो एव अएव थई जाय ”

“भेदने प्रुण समुदाय डोय तो पणु अद्र अने सूर्यनी प्रभा णनी रहे छे ”

उपयोगने ने सर्व जघन्य अश तमाम स सारी एवोमा सर्वदा अनावृत (उघाडा) णनी रहे छे ते सर्व जघन्य अश उत्पत्तिना प्रथम समयमा वर्त्तमान, अपर्याप्त सूक्ष्म निगोढना एवोमा पणु डोय छे ते पछी ते उपयोगने अश अेकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रियना लेदथी लिन्न थईने, स लिन्नस्रोतस्त्व आदि लब्धिओना समूहथी, लब्धि, निमित्त, करण, शरीर, इन्द्रिय, वचन अने मनने आश्रय लईने वधतो जाय छे, अही सुधी के विविध प्रजरना क्षयोपशमनी विचित्रतावाणा एवोने अवग्रह आदि लेदथी अने तेनाथी पणु अधिक वधीने समस्त घाती कर्मोने

प्राप्य, केवलज्ञानसंज्ञां प्राप्नोति ।

बीजा द्विविधा - सिद्धा असिद्धाश्च । तत्र निर्दूताश्लेषकर्माणः सिद्धाः, असिद्धाः ससारिणः । द्रव्यभावबन्धः ससारः । कर्माष्टकसम्बन्धो द्रव्यबन्धः, रागद्वेषादिवरिणामसंबन्धो भावबन्धः । द्विविधबन्धरूपः संसारोऽस्ति यथा ते संसारिणः । ससारिणो द्विविधा प्रसत्पावरमदात् । तत्र पृथिव्यवृषभनस्पतयः स्वावराः । तेजोवायुदारस्रस्ताः । तजोवायु गत्यैव प्रसौ न तु लभ्या । तजोदाराव-
स्तुर्बिधा - द्वि-त्रि-चतु - भेदेन्द्रियमेदात् । तत्र पठवेन्द्रियाः पुनर्द्विविधा समनस्का
अमनस्काश्च ।

को जानने बोधम विशुद्धता प्राप्त करके केवल ज्ञान सज्ञा को पाता है ।

बीज दो प्रकार के है - सिद्ध बीज और असिद्ध बीज । सकल कर्मों से रहित बीज सिद्ध कहलाते है और ससारी बीज असिद्ध कहलाते हैं । द्रव्यबन्ध और भावबन्ध को संसार कहते है । पाठ कर्मोंका सम्बन्ध द्रव्यबन्ध है, और राग द्वेष भादि परिणामों का सम्बन्ध होना भावबन्ध है । यह दो प्रकार का बन्धरूप संसार जिन के जो वे संसारी बीज कहलाते हैं । संसारी बीज त्रस और स्वावर के भेदसे दो प्रकार के है । पृथ्वी बल और वनस्पति ये स्वावर हैं, तेज वायु और उद्यार बीज त्रस हैं । इन में तेज और वायु गतित्रस है अग्नि से स्वावर है ।

उद्यार के चार भेद है - दीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय बीजा के संज्ञी और असंज्ञी, ये दो भेद है ।

क्षय कषाधी समस्त ज्ञेय पदाधीने जलपुत्रा योज्य विशुद्धता प्राप्त करीने केवलज्ञान संज्ञा प्राप्ते छे

एव जे प्रकारना छे - सिद्ध एव जने असिद्ध एव, सकल कर्मोंकी रहित एव सिद्ध कहेवाच छे जने ससारी एव असिद्ध कहेवाच छे द्रव्यबंध जने भावबंधने ससार कहे छे आठ कर्मोंना संबंध ते द्रव्यबंध छे जने राग-द्वेष आदि परिशुद्धिने संबंध भाव ते भावबंध छे जे जे प्रकारना बन्धरूप ससार जेने होव छे ते ससारी एव कहेवाच छे ससारी एव त्रस जने स्वावराणा सेदधी जे प्रकारना छे पृथ्वी, पाणी, जने वनस्पति आ त्रसु स्वावर छे तेज वायु, उद्यार एव त्रस छे तर्मा तेज जने वायु गतित्रस छे अग्निधी स्वावर छे उद्यारना चार सेद छे दीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय जने पञ्चन्द्रिय । पञ्चन्द्रिय एवोना स-नी असंज्ञी, जे जे सेद छे

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरदिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णाः-

जीवास्तिकाय के गुण ये है- (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण है (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

जीवास्तिकायना शुष्ण आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्यं

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने शुष्णना लेइथी पाच प्रकारे जीवास्तिकायनु ज्ञान थाय छे (१) द्रव्यथी-जीव अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) शुष्णथी-चेतनालक्षण छे

इति जीवास्तिकाय-

अथ पद्द्रव्यविचारः—

पट्टं द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षणम्, इतरे धर्मादय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। दृक्कुरुक्षरकुरुक्षेत्रवर्तिपौगलिकैकैकदेशस्य स्वच्छः। करणे पर्यन्ततो यस्य स्वच्छस्य पुनः स्वच्छो न भवितुमर्हति, तादृक्स्वच्छपरिमाणं यावदाकाशमधं व्याप्नोति, तावति मागे वियतोऽसम्पातप्रदेशः, धर्मास्तिकायस्यासंस्पातपदज्ञा, अथर्मास्तिकायस्य चा सम्पातप्रदेशः, असंस्पाता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रभागपरिमित निगोदस्वच्छेऽप्यसंस्पाता भेदय सन्ति। तत्र प्रत्येकभेदस्यासंस्पाता प्रतरा, प्रतरं च प्रत्येकमसंस्पाताः गालका, गोलके

पद्द्रव्यविचारः—

उह द्रव्या मं स आकाश द्रव्य, क्षेत्र इ और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देख कुरु और उच्छरकुरु क्षेत्रों के जुगलिकाके एक केस के ऐस दुकडे किये जाई कि फिर उनका दूसरा दुकडा न हो सके। इन में से एक दुकडा ब्रितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतन माग मं आकाश के असंस्पात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंस्पात प्रदेश हैं, अथर्मास्तिकाय के असंस्पात प्रदेश है, और निगोद के असंस्पात गोलक विद्यमान है।

सुई की नाक बराबर निगोद के स्वच्छ में मी असंस्पात क्षेत्रिया विद्यमान हैं। एक २ भेगी में असंस्पात-असंस्पात प्रतर हैं एक ७ प्रतर में असंस्पात ७ गोलक ।

पद्द्रव्य विचारः—

उ द्रव्येभा आकाश द्रव्य क्षेत्र उ अने जाहीना धर्म आदि पाचद्रव्ये क्षेत्रवर्ती होवाही क्षेत्र उ; देवकुरु अने उच्छरकुरु क्षेत्रोना जुगलिकाणा क्षेत्र देश-पालना जेवा दुकडा कस्याभा आवे के इतीने तेना वीले दुकडे अथ शके नदि, तेमाधी क्षेत्र दुकडा गेटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे उ तेरता आत्रभा आकाशना असंस्पात प्रदेश कडेवाय उ तेमा धर्मास्तिकायना असंस्पात प्रदेश उ अधर्मास्तिकायना असंस्पात प्रदेश उ अने निगोदना असंस्पात गोलक विद्यमान उ

क्षेत्रवर्ती अग्नी ज्वालनर निगोदना अठमा पञ्च अक्षरव्याप्त अक्षीय विद्यमान उ क्षेत्र क्षेत्र अक्षीय अक्षरव्याप्त-अक्षरव्याप्त-प्रतर उ. क्षेत्र क्षेत्र अक्षरभा

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्यावाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकाय सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय हैं।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पाच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त है, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित हैं (५) गुण से-चेतनालक्षण हैं।

। इति जीवास्तिकाय।

लुवास्तिकायना शुषु आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्य

(१) अव्यावाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये लुवनी पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने शुषुना लेहथी पाच प्रकारे लुवास्तिकायनु ज्ञान थाय छे (१) द्रव्यथी-लुव अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) शुषुथी-चेतनालक्षण छे

इति लुवास्तिकाय-

अथ पद्धत्यविचारः—

पदसु द्रव्येषु वियव् द्रव्यं क्षमम्, इतरे धर्मादयः पञ्च सेशवर्तित्वात्
 क्षत्रिणाः । द्रव्यरूपरूपेभ्योऽत्रवर्तियोगलिकैककेस्यस्य सण्डश्च कण्ठे पर्यन्ततो
 यस्य सण्डस्य पूनः सण्डा न भवितुमर्हति, तादृशसण्डपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं
 व्याप्नोति, तावति मागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशा, धर्मास्तिकापस्यासंख्यातमदक्षाः,
 अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातमदक्षाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च विद्यन्ति ।

सूच्यप्रमाणपरिमित निगोदखण्डेष्वसंख्याता भगव सन्ति । एत
 प्रत्येकभेद्यामसंख्याताः प्रतरा, प्रतरं च प्रत्येकमसंख्याता गोलका, गोलके

पद्धत्यविचारः—

एत द्रव्या में स आकाश द्रव्य, क्षेत्र है और शेष धर्म आदि पांच द्रव्य
 क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं । देव कुट्ट और उत्तरकुट्ट क्षेत्रों के जुगलियके एक
 केस के देसे दुकडे किये जाई कि कित्र उमका बूतरा दुकडा न हो सके । इन में
 से एक दुकडा कितने आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उक्त माग में आकाश के
 असंख्यात प्रदेश होते है । उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के
 असंख्यात प्रदेश हैं और निगोद क असंख्यात गोलक विद्यमान है ।

सुई की नाक बराबर निगोद के खण्ड में भी असंख्यात भेगिया विद्यमान हैं ।
 एक २ भेगी में असंख्यात—असंख्यात प्रतर हैं एक २ प्रतर में असंख्यात २ गोलक हैं

पद्धत्यविचारः—

उ द्रव्योभां आकाश द्रव्य क्षेत्र छे जने जाहीना धर्म आदि पाचद्रव्यो
 क्षेत्रवर्ती होपाशी क्षेत्र छे; देवकुट्टे जने उत्तरकुट्टे क्षेत्रोना जुगलियाना जेक देश-
 पाज्जा जेवा दुकडा कस्याभां आवे के इरीने तेना वीजे दुकडे अथ शके नकि,
 तेभांशी जेक दुकडा नेटका आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छे तेदवा भाजभां आकाशाना
 असंख्यात प्रदेश कहेवाय छे तेभां धर्मास्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे अधर्मा-
 स्तिकायना असंख्यात प्रदेश छे जने निगोदना असंख्यात गोलक विद्यमान छे

सोवनी जपूी जशेजर निगोदना जदभां पञ्च असंख्यात भेगुीयो विद्यमान
 छे जेक जेक भेगुीया असंख्यात—असंख्यात—प्रतर छे. जेक जेक प्रतरभां

जीवास्तिकायस्य (१)-अनन्तज्ञानम्, (२)-अनन्तदर्शनम् (३)-अनन्तसुखम्, (४)-अनन्तवीर्यं चेति गुणाः। (१)-अव्याबाधवत्त्वम्, (२)-अनवगाहवत्त्वम्, (३)-अमूर्तिकत्वम् (४)-अगुरुलघुवत्त्वं चेति पर्यायाः।

अयं द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव-गुण-भेदेन पञ्चधा ज्ञायते-(१)-द्रव्यतः-अनन्ता जीवाः, (२)-क्षेत्रतो लोकप्रमाणाः, (३)-कालत आद्यन्तरहिताः, (४)-भावतः अरूपिणः-वर्णगन्धरसस्पर्शवर्जिता इति, (५)-गुणतश्चेतनालक्षणा इति।

। इति जीवास्तिकायः सम्पूर्णः-

जीवास्तिकाय के गुण ये हैं- (१) अनन्त ज्ञान (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख और (४) अनन्त वीर्य।

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व और (४) अगुरुलघुत्व, ये जीव की पर्याय है।

द्रव्य क्षेत्र काल भाव और गुण के भेद से पांच प्रकार से जीवास्तिकाय का ज्ञान होता है। (१) द्रव्य से-जीव अनन्त हैं, (२) क्षेत्र से-लोकप्रमाण हैं (३) काल से-आदि-अन्त रहित हैं (४) भाव से-अरूपी हैं-रूप, रस, गन्ध, और स्पर्श से रहित है (५) गुण से-चेतनालक्षण है।

। इति जीवास्तिकाय।

जीवास्तिकायना गुण्य आ छे-(१) अनन्तज्ञान, (२) अनन्त दर्शन (३) अनन्त सुख अने (४) अनन्त वीर्य

(१) अव्याबाधवत्त्व (२) अनवगाहनावत्त्व (३) अमूर्तिकत्व अने (४) अगुरुलघुत्व, ये जीवनी पर्याय छे

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अने गुण्यना लेहथी पाच प्रकारे जीवास्तिकायनुं ज्ञान थाय छे (१) द्रव्यथी-जीव अनन्त छे (२) क्षेत्रथी-लोकप्रमाण (३) कालथी-आदि अनन्त रहित छे (४) भावथी-अरूपी छे-रूप-रस-गन्ध अने स्पर्शथी रहित छे (५) गुणथी-चेतनालक्षण छे

इति जीवास्तिकाय-

अथ पद्धत्यविचार—

पदसु द्रव्येषु वियद् द्रव्यं क्षमम्, इतरे धर्मादय पञ्च क्षेत्रवर्तित्वात् क्षेत्रिणः। देवकुरुक्षेत्रकुरुक्षेत्रवर्तियौगलिकैककेसस्य स्वच्छन्न करणे पर्यन्तता यस्य स्वच्छस्य पुनः स्वच्छा न भवितुमर्हति, तादृशस्वच्छपरिमाणं यावदाकाशक्षेत्रं व्याप्नोति, तावति भागे वियतोऽसंख्यातप्रदेशः, धर्मास्तिकायस्यासंख्यातमदक्षाः, अधर्मास्तिकायस्य चा संख्यातमदक्षाः, असंख्याता निगोदानां गोलकाश्च तिष्ठन्ति।

सूच्यग्रमागपरिमिते निगोदस्वच्छेऽप्यसंख्याताः भ्रमयः सन्ति। तत्र प्रत्येकक्षेत्रेण्यसंख्याताः प्रतराः, प्रतरे च प्रत्येकमसंख्याताः गोलकाः, गोलके

पद्धत्यविचार—

एक द्रव्या में से आकाश द्रव्य, क्षेत्र है और क्षेत्र धर्म आदि पाच द्रव्य क्षेत्रवर्ती होने के कारण क्षेत्री हैं। देव कुरु और उतरकुरु क्षेत्रों के जुगलिकाके एक केश के ऐसे टुकड़े किये जायें कि फिर उनका दूसरा टुकड़ा न हो सके। इन में से एक टुकड़ा भित्ति आकाश क्षेत्र को व्याप्त करता है उतन भाग में आकाश के असंख्यात प्रदेश होते हैं। उसी में धर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, अधर्मास्तिकाय के असंख्यात प्रदेश हैं, और निगोद के असंख्यात गोलक विद्यमान है।

सुई की नाक बराबर निगोद के स्वर में भी असंख्यात भेगिया विद्यमान हैं। एक २ क्षेत्री में असंख्यात-असंख्यात प्रतर हैं, एक ७ प्रतर में असंख्यात गोलक है

पद्धत्य विचार—

छ द्रव्योभां आकाश द्रव्य क्षेत्र छ अने लाहीना धर्म आदि पाच द्रव्यो क्षेत्रवर्ती होनाभी क्षेत्र छ- देवकुरु अने उतरकुरु क्षेत्रोना जुगलिकान्ना क्षेत्र देश-वाण्णा जेवा टुकड़ा करवाया आने के इरीने तेना वीजे टुकड़ा बछ शके नहि, तेभाभी जेक टुकड़ा नोटला आकाशक्षेत्रने व्याप्त करे छ तेतला भावभां आकाशान्ना असंख्यात प्रदेश बहेवाय छ तेभा धर्मास्तिकायान्ना असंख्यात प्रदेश छे, अधर्मास्तिकायान्ना असंख्यात प्रदेश छे अने निगोदान्ना असंख्यात गोलक विद्यमान छे

क्षेत्रणी अन्नी लशेजर निगोदान्ना अदभां पञ्च असंख्यात अणुजो विद्यमान छे जेक जेक क्षेत्रीया असंख्यात-असंख्यात-प्रतर छे, जेक जेक प्रतरभां

ष प्रत्येकमसंख्यातानि निगोदशरीराणि सन्ति । तत्र च प्रत्येकशरीरेऽनन्ता निगोदजीवाः सन्ति ।

अथ कियन्तोऽनन्ता जीवास्तत्र सन्ती ?—त्युच्यते—अतीतकालोऽनन्त, तथा भविष्यत्कालोऽप्यनन्तः, वर्तमानकालश्चैकसमयमात्रः, कालत्रयस्यापि यावन्तः समयाः सन्ति, ते पुनरनन्तेन गुणिता यावन्तो भवेयुस्ततोऽप्यनन्त-गुणाधिका एकस्मिन् निगोदे निगोदिका जीवाः सन्ति ।

तत्रैकजीवस्यासंख्याताः प्रदेशाः सन्ति । एकैकप्रदेशेऽनन्ताः कर्मवर्गणाः संलग्नाः । तत्रैकस्यां वर्णायामनन्ताः परमाणुपुद्गलाः सन्ति ।

एक २ गोलक में असल्यात २ निगोदशरीर हे, और एक २ निगोदशरीर में अनन्त २ निगोदजीव है ।

शङ्का—अनन्त के अनन्त भेद होते हैं, ऐसी स्थिति में एक निगोदशरीर में कितने अनन्त जीव होते हैं ?

समाधान—अतीत काल के अनन्त समय है, भविष्य कालके भी अनन्त समय है, और वर्तमान काल एक समय मात्र है । इन तीनों कालों के जितने समय है उनका अनन्त से गुणाकार कर देने पर जितने समय हों उन से भी अनन्त गुणा अधिक निगोदजीव एक निगोदशरीर में होते हैं ।

एक जीव के असल्यात प्रदेश होते हैं । एक २ प्रदेश में अनन्त २ कर्म-वर्गणाएँ लगी हुई हैं, और एक २ वर्गणा में अनन्त २ पुद्गलपरमाणु हैं

असंख्यात गोलक छे एक एक गोलकमा असंख्यात निगोद शरीर छे, अने एक एक निगोद शरीरमा अनन्त अनन्त निगोद छव छे

शङ्का—अनन्तना अनन्त बेद छोय छे, ओवी स्थितिमा एक निगोद शरीरमा केटला अनन्त छव छोय छे ?

समाधान—अतीतकाल (भूतकाल)ना अनन्त समय छे, लविष्यकालना पछ अनन्त समय छे, अने वर्तमान काल एकसमयमात्र छे, ओ त्रणे कालोमा ने समय छे, तेनो अनन्तथी गुणाकार करवाथी ने गुणाकार (शशि) थाय तेटला समयथी पछ अनन्त गुणा अधिक निगोद छव एक निगोद-शरीरमा छोय छे

एक छवना असंख्यात प्रदेश थाय छे एक-एक प्रदेशमा अनन्त-अनन्त कर्मवर्गणाओ लागी छे, अने एक-एक वर्गणांमा अनन्त अनन्त पुद्गलपरमाणु छे

परमाणुनां द्वौ भेदौ स्त-बद्धा भवद्वाथ । तत्र बद्धा स्कन्धस्थाः ।
 भवद्वाः परस्परासयुक्ताः । स्कन्धानां पुनर्द्वा भेदौ-जीवसहिताः, जीवरहिताम् ।
 तत्र षट्-पटादिरूपा जमीवस्कन्धाः ।

अथ जीवस्कन्ध-विचारः प्रस्तूपते—

द्वयोः परमाणुः संयोगे द्विप्रदेशी स्कन्धः । प्रयाणां परमाणुनां संयोगे
 त्रिप्रदेशी स्कन्धः । एवमसंख्यायानां परमाणुनां संयोगावसंख्यातप्रदेशी स्कन्धो
 जायते । एतावत्पर्यन्ता स्कन्धा जीवानां ग्राह्या न भवन्ति ।

परमाणु दो प्रकार के है- बद्ध और भवद्वा । स्कन्धरूप परमाणु बद्ध कहलते है,
 और आपस में असयुक्त परमाणु भवद्वा कहलते हैं ।

स्कन्ध के भी दो भेद हैं-जीवसहित और जीवरहित, इन में षट् पट
 कृषि स्कन्ध जीवस्कन्ध कहलते हैं ।

अथ जीवस्कन्ध का विचार करते हैं—

दो परमाणुओं का संयोग होने पर द्विप्रदेशी स्कन्ध बनता है, और तीन
 परमाणुओं के संयोगसे त्रिप्रदेशी स्कन्ध । इसी प्रकार असंख्यात परमाणुओं के संयोग
 से असंख्यातप्रदेशी स्कन्ध उत्पन्न होता है । यहाँ तक के स्कन्ध जीवा द्वारा
 ग्रहण नहीं किये जा सकते ।

परमाणु के प्रकारना छे—(१) बद्ध जने (२) भवद्वा स्वरूप परमाणु बद्ध
 कहैवाथ छे जने आपसमा असयुक्त परमाणु भवद्वा कहैवाथ छे

स्कंधना पञ्च के सेह छे—एकसहित जने एकरहित तेना षट् पट कृषि
 स्कंध जलएस्कंध कहैवाथ छे

द्वे एवस्कंधेना विचार करवाभां आवे छे—

के परमाणुजोना सभोज सबाधी द्विप्रदेशी स्कंध जने छे जने त्रय परमाणु-
 जोना सभोजधी त्रिप्रदेशी स्कंध जने छे जे प्रमाणे असंख्यात परमाणुजोना
 सभोजधी असंख्यातप्रदेशी स्कंध करवन्न याव छे कृषि सुधीना स्कंध, एते
 द्वारा ग्रहण करी सकावा नहीं

अथ कीदृशाः स्कन्धा जीवानां ग्राह्या भवन्ती ?—त्युच्यते—अभव्य-
राशिश्चतुःसप्ततितमः, तद्गतजीवापेक्षयाऽनन्तगुणाधिकाः परमाणवो यदि
संधीभवन्ति तदौदारिकशरीरग्राह्यवर्गणा भवति । औदारिकवर्गणापेक्षया-
ऽनन्तगुणाधिका वैक्रियशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिकाऽऽहारकवर्गणा ।
आहारकवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका तैजसशरीरग्राह्यवर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका
एकभाषाग्राह्यवर्गणा । एकभाषाग्राह्यवर्गणापेक्षयाऽनन्तगुणाधिका एकश्वासोच्छ्वास-
वर्गणा । ततोऽनन्तगुणाधिका एकमनसो वर्गणा । तदपेक्षयाऽनन्तगुणाधिका कर्मण-
वर्गणा भवति । ततोऽनन्तगुणाधिकाः पुद्गलपरमाणुस्कन्धा ज्ञेयाः । कर्मण

किस प्रकार के स्कन्ध जीवों द्वारा ग्राह्य होते हैं ? यह बतलाते हैं—अभव्य
राशि चोत्तरवीं है । इस अभव्य राशि के जीवों की अपेक्षा अनन्त गुणा अधिक
परमाणु यदि इकट्ठे हों तो औदारिकशरीरग्राह्य वर्गणा होती है । औदारिकवर्गणाकी
अपेक्षा अनन्तगुणी अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और इस से भी
अनन्त गुणी अधिक आहारकवर्गणा होती है । आहारकवर्गणा से अनन्तगुणी अधिक
तैजसशरीरग्राह्य वर्गणा होती है, और उस से भी अनन्तगुणी अधिक एकभाषाग्राह्य
वर्गणा होती है । एकभाषावर्गणा से भी अनन्तगुणी अधिक एक श्वासोच्छ्वासवर्गणा
होती है, और उस से अनन्तगुणी अधिक एकमनोवर्गणा होती है, मनोवर्गणा से
भी अनन्तगुणी अधिक कर्मणवर्गणा होती है । उस से भी अनन्त गुणा अधिक
पुद्गल परमाणु के स्कन्ध समझने चाहिए । इस प्रकार कर्मणवर्गणा के अनन्त पुद्गल

क्या प्रकारना स्कन्ध लोकोद्वारा ग्रहण करी शक्य छे ? ते बतावे छे—अभव्य
राशि त्रयोतेर (७४) वी छे अे अभव्य राशिना लोकोनी अपेक्षा अनन्त गुण
अधिक परमाणु अे अेकठा थाय तो औदारिक शरीर ग्रहण करी शक्ये तेवी वर्गणा
डोय छे, औदारिक वर्गणानी अपेक्षा अनन्त गुण अधिक वैक्रियशरीरग्राह्य वर्गणा
डोय छे, अने तेनाथी पणु अनन्त गुणी अधिक अेक आहारकवर्गणा डोय छे
आहारकवर्गणाथी अनन्त गुणी अधिक तेजसशरीरग्राह्य वर्गणा डोय, तेनाथी पणु
अनन्त गुणी अधिक अेक भाषाग्राह्य वर्गणा डोय छे, अने तेनाथी अनन्तगुणी अधिक
अेक श्वासोच्छ्वासवर्गणा डोय छे, अने तेनाथी अनन्तगुणी अधिक अेक मनोवर्गणा डोय
छे मनोवर्गणाथी पणु अनन्तगुणी अधिक कर्मणवर्गणा डोय छे तेनाथी पणु अनन्त
गुणी अधिक पुद्गलपरमाणुना स्कन्ध समझवा अेछे अे प्रमाणु कर्मणवर्गणा

वर्णागतानन्तपुद्गलपरमाणुघटितस्कन्धा नीचानां प्राज्ञा भवन्ति ।

रागद्वेषरूपाशुद्धप्रवृत्त्याऽऽत्मनः प्रतिभवेक्षमनन्तानन्तकर्मवर्गणा अयोगो-
सकवद्विवस्लोमीभूता सन्ति, अत एवानन्तज्ञानादयो गुणा जीवस्य तिरारिता
भवन्ति । एवं च जीवोपेक्षयाऽनन्तगुणाधिक्यं पुद्गला ज्ञातव्याः । ते च पुद्गला
रूपिणोऽचेतना सक्रियाः पूरणगलनस्वभावा वेदितव्याः ।

पद्धत्येषु सक्रिय-निष्क्रियविचारः—

पद्धत्येषु निश्चयनयेन सर्वाणि द्रव्याणि सक्रियाणि । व्यवहारनयतो
धर्माधर्माच्छाश्वलास्यानि चत्वारि द्रव्याणि क्रियारहितानि । जीवपुद्गलौ सक्रियौ
परमाणुमा स वने हुए स्कन्ध बीजों द्वारा प्रहण करम योग्य होते हैं ।

राग और द्वेषरूप अशुद्ध प्रवृत्ति के कारण आत्मा के एक एक प्रदेश में अनन्तान्त
कर्मवर्गगारै इस प्रकार एकमेक हो रही है, जैसे छोटे का गोमम और अग्नि एकमेक
हो जात है, इसी कारण जीव के अनन्त ज्ञान आदि गुण हैंक जाते है । इस प्रकार
बीजा की अपभ्रंश पुरस् अनन्त गुणा अधिक जानत पादिण । ये पुरगल-रूपी, अचेतन,
सक्रिय और पूरणगलनस्वभाववाक है ।

छह द्रव्यों में सक्रिय-निष्क्रियका विचार—

निश्चय नय से छहा द्रव्य सक्रिय है, किन्तु व्यवहारनयसे धर्मास्तिक्रिय अपर्मा
स्तिक्रिय अकारण और काम नामक चार द्रव्य क्रिया रहित हैं जीव और पुरस् द्रव्य सक्रिय

अनन्त पुद्गल परमाणुजोधी जनेला रक्ष लयो दाश अकल करण योग्य होय छे
सम अने द्रव्य न्य अशुद्ध प्रवृत्तिना काले आत्मान्ना कोर-कोर प्रदेशभा
अनन्तान्त कर्मवर्गजो जो प्रभावे कोरमेक यर्ष रही छे के-नेम होदाने जेजो
जने अग्नि कोरमेक यर्ष जय छे जो कारजोधी लयन अनन्त ज्ञान आदि गुण
कहाय जय छे जो प्रभावे लयानी अपेक्ष पुरजल अनन्तगुणा अधिक व्यजुवा
जोको ते पुद्गल, रूपी अचेतन सक्रिय अने पूरजलनस्वभाववाण छे

● द्रव्यामा सक्रिय निष्क्रियना विचार—

निश्चयनय प्रभावे छ द्रव्यो सक्रिय छे परन्तु व्यवहारनयधी धर्मास्तिक्रिय
अधर्मास्तिक्रिय अकारण अने काव नामक चार द्रव्यो क्रियारहित छे लय अने

સ્તઃ । નિશ્ચયનયાદ્ ધર્માસ્તિકાયો ગતિપરિગતાના જીવપુદ્ગલાનાં ગતિ પ્રતિ સહાયદાનરૂપાં ક્રિયામ્, અધર્માસ્તિકાયઃ સ્થિતિપરિગતજીવપુદ્ગલાના સ્થિતિ પ્રતિ મહાયદાનરૂપાં ક્રિયાં ક્રમેતિ । તથૈવાકાશોઽવગાહદાનરૂપા ક્રિયાં, કાલઃ વર્તનારૂપક્રિયાં જીવાજીવેષુ વિષ્ણે । તથૈવ નિશ્ચયેન જીવઃ સ્વસ્વરૂપરમણરૂપાં ક્રિયાં ક્રમેતિ । યદિ નિશ્ચયનયેન શુભાશુભરૂપવિભાવદશારમણાન્મિકા ક્રિયા કુર્યાન્તદાઽઽત્મા કદાપ્પવિચલપદ નાન્નુયાત્, અતઃ સ્વસ્વરૂપપરિગતિરૂપામેવ ક્રિયાં કરોતિ । નિશ્ચયનયેન પુદ્ગલોઽપ્યનાદિકાલતઃ સ્વપૂરણગત્ત્વરૂપાં ક્રિયાં સમાચરતિ । તસ્માદ્ નિશ્ચયનયેન સર્વાણિ દ્રવ્યાણિ સક્રિયાણીતિ જ્ઞાતવ્યમ્ ।

હૈ । નિશ્ચયનય સે ધર્માસ્તિકાય, ગતિપરિગત જીવો ઓગ પુદ્ગલો કો ગતિ મે સહાયકતા દેને કો ક્રિયા કરતા હૈ, ઓગ અધર્માસ્તિકાય સ્થિતિપરિગત જીવો ણ્વ પુદ્ગલોકો સ્થિતિ મેં સહાયતા દેનેકો ક્રિયા કરતા હૈ । ડસી પ્રકાર આકાશ-અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ, ઓર કાલ વર્તના આદિ મેં સહાયતા પઢુંચાતા હૈ । જીવ નિશ્ચયનય સે નિઃસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરતા હૈ । અગર નિશ્ચય નય સે જીવ શુભ ઓગ અશુભ રૂપ વિભાવદશા મેં રમણ કરને કો ક્રિયા કરે તો ડસે અવિચલ પદ કો કદાપિ પ્રાપ્તિ નહીં હો સકતી, અત ણ્વ જીવ અપને સ્વભાવ મેં પરિગતિરૂપ ક્રિયા હી કરતા હૈ । નિશ્ચય નય કો અપેક્ષા પુદ્ગલ મો અનાદિ કાલ સે પૂરણ ગત્ત્વ રૂપ ક્રિયા કર રહા હૈ । ડમ પ્રકાર નિશ્ચય નય સે સમી દ્રવ્ય સક્રિય હૈ ।

પુદ્ગલ દ્રવ્ય સક્રિય છે નિશ્ચયનયથી ધર્માસ્તિકાય, ગતિમા પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની ગતિમા સહાયતા કરવાની ક્રિયા કરે છે, અને અધર્માસ્તિકાય, સ્થિતિમા પરિણુત જીવો અને પુદ્ગલોની સ્થિતિમા સહાયતા દેવાની ક્રિયા કરે છે. એ પ્રમાણે આકાશ, અવગાહદાનરૂપ ક્રિયા કરે છે, અને કાલ વર્તના આદિમા સહાયતા પહોચાડે છે, જીવ નિશ્ચયનયથી નિઃસ્વરૂપ-રમણરૂપ ક્રિયા કરે છે અગર નિશ્ચયનયથી જીવ શુભ અને અશુભરૂપ વિભાવદશામા રમણ કરવાની ક્રિયા કરે તો તેને અવિચલ પદની પ્રાપ્તિ કદાપિ પણ થઈ શકે નહિ, એટલા કારણથી જીવ પોતાના સ્વભાવમા પરિણુતિરૂપ ક્રિયા જ કરે છે, નિશ્ચયનયની અપેક્ષા એ પુદ્ગલ પણ અનાદિ કાલથી પૂરણ-ગત્ત્વરૂપ ક્રિયા કરે છે, એ પ્રમાણે નિશ્ચયનયથી સર્વ દ્રવ્યો સક્રિય છે.

अधुना व्यवहारनयमाभित्योभ्यस्ते—

व्यवहारतो धर्माधर्माकाशकाला निष्क्रियाः, जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः। व्यवहारनयतो जीवो रागद्वेषरूपाभ्युदपरिषत्त्या प्रविस्मयमनन्तपुद्गलपरमाणुस्वरूपाऽऽज्ञानक्रियां करोति। परमाणुपुद्गला अपि कर्मवर्गमारूपेण जीवस्य सर्वस्मिन् प्रदेशे संलम्बना भवन्ति, अतस्तं संलम्बेपक्रियां पूरणगमनादिक्रियां च कुर्वन्ति, तस्माद् व्यवहारनयतो जीव-पुद्गलाश्च सक्रियाः।

पद्मन्यविषये कर्तृत्वाकर्तृत्वनिरूपणम्—

निश्चयनयन पद्मद्रव्याणि स्वस्वरूपकर्तृणि, तस्मात्तेषां कर्तृत्वमुपपद्यते।

अब व्यवहार नय की अपेक्षा से कृत्न क्रिया जाता है—व्यवहारनय से धर्म अधर्म आकाश और काल क्रियारहित है, तथा जीव और पुद्गल सक्रिय है। व्यवहार नय से जीव राग-द्वेषरूप अशुभ परिणति के द्वारा प्रति समय अनन्त पुद्गल परमाणुओं के स्पर्शा का ग्रहण करने की क्रिया करता है। परमाणु पुद्गल भी कर्मवर्गमारूप में परिणत हो कर जीव के समस्त प्रदेशों में बर होने हैं, अतः वह कणनरूप क्रिया करते हैं, और पूरण गमन आदि क्रिया भी करते हैं इस प्रकार व्यवहार नय से जीव और पुद्गल ही सक्रिय हैं।

उह द्रव्यों का कर्तापन और अकर्तापन—

निश्चय नय से उहो द्रव्य अपने २ स्वरूप के कर्ता हैं अतः सभी द्रव्यों में

उहो व्यवहारनयनी अपेक्षासे कहेवाय है—व्यवहारनयधी धर्म अधर्म आकाश अने काल क्रियारहित है तथा एव अपने पुद्गल सक्रिय है व्यवहारनयधी एव राग-द्वेषरूप अशुभपरिणतिद्वारा प्रतिसमय अनन्त पुद्गल परमाणुओंका स्पर्शाने कहेवाय क्रिया करे है परमाणु पुद्गल पद्य कर्मवर्गमारूपमें परिणत यधने एवना समस्त प्रदेशोंमा जद यध व्यव है (सय प्रदेशोंने कौटी जाय है) तेरला कारणधी ते व्यवहारनय क्रिया करे है अने पूरण-गमन आदि क्रिया पद्य करे है अने प्रमाणे व्यवहारनयधी एव अने पुद्गल च सक्रिय है

द्रव्योऽपि कर्तापद्य अने अकर्तापद्य—

निश्चयनयधी उ द्रव्यो, पौतपिताना स्वरूपमा कर्ता है तेधी सय द्रव्योमां

વ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વ, ધર્માદિદ્રવ્યપશ્ચકસ્યાકર્તૃત્વમિતિ ।

વ્યવહારનયઃ—

વ્યવહારનયઃ પદ્ધિઃ—શુદ્ધાશુદ્ધશુભાશુભોપચરિતાનુપચરિતભેદાત્ । તત્ર—

(૧) શુદ્ધવ્યવહારનયઃ ।

યદિ જીવઃ કર્મમલરૂપાશુદ્ધતા વ્યવનીયાનન્તજ્ઞાનાદિગુણ પશુદ્ધતા મુપાર્જયતિ તર્હિ પ્રથમશુદ્ધવ્યવહારનયેન જીવસ્ય કર્તૃત્વં ભવતિ । તથાદિ-શુદ્ધવ્યવહારનયેન જીવો યદા શુદ્ધસ્વરૂપાર્જનાય પ્રયત્તે, તદા પ્રથમગુણસ્થાને કર્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ । વ્યવહારનયસે જીવ કર્તા હૈ ઓર શેષ ધર્મ આદિ પાચ દ્રવ્ય અકર્તા હૈ ।

વ્યવહારનય—

વ્યવહાર નય છહ પ્રકાર કા હૈ—(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય, (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, (૩) શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભ વ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય ઓર (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય ।

(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય—

અગર જીવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતા કો હટાકર અનન્તજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતા કા ઉપાર્જન કરતા હૈ તો શુદ્ધ વ્યવહારનય સે જીવ મેં કર્તૃત્વ હોતા હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર શુદ્ધ વ્યવહાર નય સે જીવ જવ અપના શુદ્ધ સ્વરૂપ પ્રાપ્ત કરને કે લિપ કર્તાપાશુ સિદ્ધ થાય છે વ્યવહારનયથી એવ કર્તા છે અને આક્રીના ધર્માદિ પાચ દ્રવ્યો અકર્તા છે

વ્યવહારનય—

વ્યવહારનય છ પ્રકાર છે (૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય (૨) અશુદ્ધ વ્યવહારનય, શુભ વ્યવહારનય, (૪) અશુભવ્યવહારનય, (૫) ઉપચરિત વ્યવહારનય, (૬) અનુપચરિત વ્યવહારનય

(૧) શુદ્ધ વ્યવહારનય—

એવ કર્મમલરૂપ અશુદ્ધતાને હટાવીને અન તજ્ઞાનાદિગુણરૂપ શુદ્ધતાને ઉપાર્જન કરે છે તો શુદ્ધ વ્યવહારનય પ્રમાણે એવમા કર્તૃત્વ-કર્તાપાશુ હોય છે તે આ પ્રમાણે-શુદ્ધ વ્યવહારનયથી એવ પોતાના શુદ્ધ સ્વરૂપને પ્રાપ્ત કરવા માટે પ્રયત્ન

अन्तानुबन्धिकपायचतुष्टयं क्षपयित्वा चतुर्थं गुणस्थानं समासाद्य सम्यक्त्वगुणं लभते । अप्रत्याख्ययकपायचतुष्टयस्य दशविरतिरूपं पञ्चमं गुणस्थानं प्राप्नोति । प्रत्याख्ययकपायचतुष्टयक्षयणं जीवस्य पृष्ठसप्तमगुणस्थानयोः सर्वं विरतिरूपयोरुपलम्बिर्भवति । यद्यन्मगुणस्थानं लभ्यते तदा तत्र भेगिद्वयं समाख्यत, उपक्रमभेगि क्षपकभेगिश्च । तत्रोपक्रमभेग्याऽप्यन्मगुणस्थानावकादश गुणस्थानं यावद्व्यापारइति । क्षपकभग्या त्वन्मत्तारभ्य दशमं यावत् समाख्येकादशं विहाय द्वादश गुणस्थानं समारोइति । जीवस्तत्र रागद्वेषरूपमोहनीय

प्रयत्न करता है तब प्रथम गुणस्थान में अनन्तानुबन्धी चार कपायांश्च क्षय करके चतुर्थ गुणस्थान प्राप्त करता है और सम्यक्त्व गुण पा जाता है । चार अप्रत्याख्ययानावरण कपायां का क्षय करके देशविरतिरूप पांचवां गुणस्थान प्राप्त करता है, और प्रत्याख्ययानावरण कपाय—चतुष्टय के क्षय से जीव को सर्वविरतिरूप छठ और सातवें गुणस्थान की प्राप्ति होती है । जीव को यदि आठवां गुणस्थान प्राप्त होता है तो वहाँ से दो भेगियाँ भास्म होती हैं और जीव उन में से किसी एक भेगी पर भास्म होता है । दो भेगियाँ हैं—उपक्रमभेगी, और क्षपकभेगी । उपक्रमभेगीभास्म जीव ग्यास्मै गुणस्थान तक चढ़ सकता है । क्षपकभेगीभास्म जीव आठवें से दशवें गुणस्थान तक पहुँचकर ग्यारहवें की सीढ़ी पर संघा वाहवें गुणस्थान पर भास्म हो जाता है । जीव दशवें गुणस्थान के अन्त में रागद्वेषरूप मोहनीय कर्म का समूह नाश करके

करे छे त्वारे प्रथमं शुद्धस्थानमा अनन्तानुबन्धी चार कपायेना क्षय करीने चतुर्थं (चतु) शुद्धस्थान प्राप्त करे छे अने सम्बन्धत शुद्ध पायी जव छे चार अप्रत्याख्ययानावरण कपायेना क्षय करीने देशविरतिरूप पांचमं शुद्धस्थान प्राप्त करे छे अने प्रत्याख्ययानावरण कपाय—चतुष्टयना क्षयधी लवने क्षपविरतिरूप छठ अने सातमं शुद्धस्थानकी प्राप्ति याव छे लवने जे आठमं शुद्धस्थान प्राप्त याव छे तो त्वांभी जे भेगीभेगोना चारका याव छे अने लव जे नवमी ठेठ जेठ भेगी पर भास्म याव छे जे भेगी आ प्रभावे छे—(१) उपक्रमभेगी (२) क्षपकभेगी उपक्रमभेगी पाण लव अजिअरमं शुद्धस्थान सुधी यही शके छे क्षपकभेगीपाणो लव आठमाधी इसमा शुद्धस्थान सुधी यहाँयाने अजिअरमं शुद्धस्थानने छेरीने सीधे चारमा शुद्धस्थान पर आरूढ यर्थ जव छे. लव इसमा शुद्धस्थानना अतमं

कर्म समूलमुन्मूल्य घातिकर्माणि क्षपयित्वा त्रयोदशं गुणस्थानमारोहति । त्रयोदशे गुणस्थाने निर्मलकेवलज्ञानं प्राप्नोति । तदनन्तर पञ्चलघ्वक्षरोच्चारणकालस्थितिक चतुर्दशगुणस्थानं संप्राप्य निःशेषकर्मनिचयं क्षपयित्वाऽसौ शिवपदं संप्राप्नोति ।
। इति जीवस्य शुद्धस्वरूपनिरूपकः शुद्धव्यवहारनयः ।

(२) अशुद्धव्यवहारनयः—

अशुद्धव्यवहारनयेन रागद्वेषमिथ्यात्वादयोऽनादिकालतः शत्रुरूपेण जीवे संलग्नाः सन्ति, तस्माज्जीवस्याशुद्धत्वं ज्ञेयम् । अशुद्धत्वेन च प्रतिसमय-
और वारहवें गुणस्थान में शेष तीन घाति कर्मों का क्षय करके तेरहवें गुणस्थान में पहुँचता है । इस गुणस्थान में (वारहवें गुणस्थान के अन्तिम समय में) जीव को निर्मल केवलज्ञान प्राप्त होता है । तेरहवें गुणस्थान के बाद पाच ह्रस्व स्वर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) उच्चारण करने में जितना समय लगता है उतने समय तक चौदहवें गुणस्थान में ठहरकर समस्त कर्मों का क्षयकर के मोक्ष प्राप्त कर लेता है ।

जीवके शुद्ध स्वरूप को ग्रहण करने वाला यह शुद्ध व्यवहारनय है ।

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनय से राग-द्वेष और मिथ्यात्व आदि अनादि काल से शत्रुकी तरह जीव के साथ लगे हुए हैं, इसी कारण जीव में अशुद्धता है । इस अशुद्धता के राग-द्वेषरूप मोहनीय कर्मोंना समूहगो नाश करीने अने पारमा शुष्मस्थानमा शेष त्रयु घातीकर्मोना क्षय करीने तेरमा शुष्मस्थानमा पडोये छे अये शुष्मस्थानमा (पारमा शुष्मस्थानना अतिम समयमा) एवने निर्मल केवलज्ञान प्राप्त थाय छे तेरमा शुष्मस्थान पछी पाच ह्रस्व स्वर--(अ-ई-उ-ऋ-लृ) उच्चारण कृता नेटके समय लागे छे, तेटके समय चौदमा शुष्मस्थानमा थोलीने समस्त कर्मोना क्षय करीने मोक्ष प्राप्त करी ले छे

एवना शुद्ध स्वरूपने ग्रहण करवा वाणो आ शुद्ध व्यवहार नय छे

(२) अशुद्ध व्यवहारनय—

अशुद्ध व्यवहारनयधी राग-द्वेष अने मिथ्यात्व आदि अनादि-कालधी शत्रुनी भाङ्क एवनी नाथे लाग्या छे, अये कारणधी एवमा अशुद्धता छे अये अशुद्धताना

मनन्तानन्तकर्मवर्गणा सत्कारूपेणावगुण्ठिता भवन्ति । एवं चाशुद्धव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(३) शुभव्यवहारनयः—

शुभव्यवहारनयनात्मा शुभपरिणामतो हानश्रीसप्तपोमावबिनयमक्षिपैयादृश्यं, धमणनिर्ग्रन्थानां प्रासुकमेष्णीयमश्नपानत्वाद्यस्वाद्यवस्त्रकम्बलप्रतिग्रहपादमोठछन प्रातिहार्यपीठफलकशय्यासस्तारकौषभमैपज्यप्रतिलामर्ष्यं सुपात्रदान, त्रियमाण—जीवरसवरूपममयदानं, हीनहीननिःसञ्चजीवानां साहाय्य, साधर्मिकत्वात्स्वयं, परहित चिन्तारूपां मैत्रीं, परदुःखनिवारणेष्वारूपां कक्षां, निःस्वार्थपरोपकारादिकां च कृत्वा प्रतिशमय मनन्तान्त कर्मवर्गणै सत्कारूप से बद्ध होती रहती है । इस प्रकार अशुद्ध व्यवहारनय से जीव को कर्ता समझना बाह्य ।

(३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनय से आत्मा शुभपरिणामद्वारा दान शौच, तप माव बिनय, मक्ति, वैयाहृत्य रूप शुभक्रिया करता है अमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक णवर्गीय—मान पान स्वाद्य स्वाद्य वस्त्र, कम्बल, पात्र, पात्रप्रोच्छन पछिहारी पीठ, फलक, शय्या संस्तारक, कौषभ मेवज का सुपात्रदान देता है । मरते हुए जीव को स्वारूप अमयदान देता है, हीन हीन और निर्बल जीवों की सहायता करता है । साधर्मों के प्रति वासव्य प्रकट करता है, परहितचिन्तनरूप मैत्री भावना दूसरों का दुःखनिवारणरूप कृष्णा

कारण प्रतिशमय मनन्तानन्त कर्म वर्गणा सत्कारूपयी बद्ध होती रही है अथ प्रभावे अशुद्ध व्यवहारनयभी करने के वां समन्वये लेईजे।

(३) शुभ व्यवहारनय—

शुभ व्यवहारनयभी आत्मा दान शौच, तप, माव बिनय, अत्रि वैयाहृत्य रूप शुभ क्रिया करे है अमणनिर्ग्रन्थाने प्रासुक जेपणीय—अशन, पान, भाद्य, स्वाद्य वस्त्र, कम्बल पात्र पात्रोच्छन, पछिहारी—पीठ इलाक शय्या, संस्तारक, कौषभ, कौषभ सुपात्र दान आदि है मरता अपनी रण्यरूप अमयदान आदि है हीन हीन अने निर्बल अनेनी सदायता करे है साधर्मना उपर वासव्य प्रकट करे है परहितचिन्तनरूप मैत्रीभावना, पीठना दुःखनिवारणरूप कृष्णा तथा निःस्वार्थ

शुभक्रियां करोति, तेन शुभव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं जायते ।

(४) अशुभव्यवहारनयः—

अशुभव्यवहारनयेन जीवो हास्य-भय-शोक-रत्य-रति-निद्रा-प्राणातिप्रात-
मृषावादा - ऽदत्तादान - मैथुन - परिग्रह - क्रोध - मान-माया-लोभ-राग-द्वेषादिषु
प्रवर्तते । विषयसुखारम्भादिरूपामशुभक्रियां च करोति तेनाऽशुभव्यवहारनयतो
जीवस्य कर्तृत्वं सिध्यति ।

(५) उपचरितव्यवहारनयः—

उपचरितव्यवहारनयेन जीवो निजमजरामरत्वमनन्तज्ञानदर्शनमव्यावाध-

तथा नि स्वार्थं परोपकार आदिरूप शुभक्रिया करता है, अतः शुभ व्यवहारनय से
जीव का कर्तापन सिद्ध होता है ।

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनय से जीव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणाति
पात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष,
आदि अशुभ कार्यों एवं भावों में प्रवृत्त होता है, तथा विषयसुख एवं आरम्भ आदि
रूप अशुभ क्रिया करता है, अतः अशुभव्यवहारनय से जीव कर्ता सिद्ध होता है ।

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहार नय से जीव अपने अजरता अमरता तथा अनन्त ज्ञान
परोपकार आदिरूप शुभ क्रिया करे छे, ते कारण्युधी शुभ व्यवहारनयथी एवमु
कर्तापण्यु सिद्ध थाय छे

(४) अशुभ व्यवहारनय—

अशुभ व्यवहारनयथी एव हास्य, भय, शोक, रति, अरति, निद्रा, प्राणातिपात,
मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि
अशुभ कार्यों एवं भावों में प्रवृत्त थाय छे, विषयसुख एवं आरम्भ आदि
अशुभ क्रिया करे छे, तेथी अशुभ व्यवहारनयथी एव कर्ता सिद्ध थाय छे

(५) उपचरित व्यवहारनय—

उपचरित व्यवहारनयथी एव चोताना अजर अमर तथा अनन्तज्ञान, दर्शन

घृत्सादिरूपं शुद्धस्वरूपं विस्तृत्य पौद्गलिकविमानपरिणामेऽनन्तदुःखजनकेऽनन्ता
 नन्दमनुभवति, मोक्षपक्षेण बाह्यवस्तुषु ममत्वभाव कुरुते । यथा-“इदं मम शुश्रू, इमे मम पुत्राः, इमा मम दाराः, इमे मम परिवाराः, इदं मम सर्वं धनप्रणाविक्रम्” ।
 इत्थं विक्रमं विषयं पीयूषं मन्यमानो विषयकृतानो क्षणमात्रमुत्सन्नमनकान् बहु
 छलदुःखदान् काममोगान् सुञ्जानो विषयगृह्णन् पुनः पुनर्धात्रमानो दीर्घात्स
 संसारे क्षणमपि विभ्रान्ति न लभते । ममेति कुर्वन्मयं जीवः पुत्रदारादीनां सुखेन
 सुखं, दुःखेन दुःखं मन्यमानस्तदर्थं व्यर्थमेव शोकमनुभवति, तदर्थं प्राप्ननाक्रमपि कर्तुं
 समुद्यतो भवति । अनात्मियमपि स्वीयं मन्यमानो नानाविधपापकार्यकरणेन

वर्तक तथा अन्माबाह्यस्वरूप शुद्ध स्वरूप को मूल का पौद्गलिक विमान परिणाम
 में जो अनन्त दुःखों का जनक है अनन्त मानन्द मानता है । मोक्ष के बगीमृत हो
 कर बाह्य वस्तुओं में ममत्व धारण करता है जैसे-“यह मेरा घर है, ये मेरे पुत्र
 हैं, यह मेरी फली है, ये मेरे कुटुम्बी हैं ये सब धन-जन आदि मेरे हैं” । इस
 प्रकार के विकाररूप विषयों को अमृत मानता हुआ विषयों में तन्मय हो कर, क्षण भर
 सुख देन वाले और दीर्घकाल तक दुःख देने वाले काम-मोगों को भोगता हुआ
 विषयों की गृहगृहणा की तरफ बारंबार दौड़ता हुआ इस दीर्घमार्गवाले संसार में
 क्षण भर भी विद्याम नहीं पाता है । मेरे मेरे करता हुआ यह जीव पुत्र और फली बगैरह के
 सुख में सुख और दुःख में दुःख मानता हुआ व्यर्थ ही उज के स्थिर शोक करता है,
 वही तक की उन के स्थिर प्राणों का नारा तक करन को उद्यत हो जाता है । यह

तथा अन्माबाह्य स्वरूप शुद्ध स्वरूपने भूमी अन्ते पौद्गलिक विमान परिणामभा
 के से अनन्त दुःखोंने जनक (कैवल्य-कलाए) से तेषां अनन्त मानन्द माने से,
 मोक्षने वश अन्ते लक्षात्सी वस्तुओंमां ममत्व धारण करे से अमोक्ष-“मम घर
 भाई से, मम माता पुत्र से मम भारी स्त्री से मम भाई कुटुम्ब से मम सर्व
 धन-जन वजरे भाई से” जे प्रभाले विषय-विषयेने अमृतस्वरूप भागीने
 विषयोंमां तन्मय यथेन लक्ष्यमात्र मुञ्ज आप्यवाणा अने लांजा काल सुधी दुःख
 अप्यवाणा जेजोने जेजवतो योके, विषयेनी मृतगृह्ण करे वारवार दोहते
 योके मम लांजा मार्गवाणा ससाधर्मा लक्ष्य मात्र पक्ष विद्याम प्राप्तो नधी,
 भारा-भास करतो मम लक्ष्य पुत्र अने फली वजरेना मुञ्जमा मुञ्ज अने दुःखमां-
 दुःख मानतो योके तेना भाटे नमभि शोक करे से-“तथां सुधी के तेना भाटे मातेजोने
 नारा करवा तेयार यथं व्यय से मम लक्ष्य परने पेतानु समलने नाना प्रकारना

स्वात्मानं मलिनीकरोति । एवमुक्तरीत्या कर्मवशेन ममत्वपाशवद्धस्य जीवस्योप-
चरितव्यवहारनयेन कर्तृत्वमिति ।

(६) अनुपचरितव्यवहारनयः—

अनुपचरितव्यवहारनयेन स्वात्मनः प्रत्यक्षरूपेणात्यन्तभिन्नं शरीरमज्ञान-
वशात् पारिणामिकभावेनात्मप्रदेशैरेक्यभावमापद्यमानमिव स्वात्मनः स्वरूपं
मन्यमानस्तत्पुष्टिरक्षणादिहेतोरैकेन्द्रियादिसकलप्राण्युपमर्दनजनकमहारम्भमृषावादा-
दत्तादान-मैथुन-परिग्रहादिकानि नानाविधपापकर्माणि जीवः समाचरति ।
आत्मन स्वरूपे शरीरे च नितान्त भिन्नता वर्तते । तथाहि—आत्मा

जीव पर को स्वकीय समझ कर नाना प्रकार के पाप कार्य कर के अपने को मलीन
बनाता है । उस प्रकार कर्मवश हो कर ममता के पाशमें जकड़ा हुआ यह जीव उप-
चरित व्यवहारनय से कर्ता सिद्ध होता है ।

(६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनय से जीव अपनी आत्मा से प्रत्यक्षत भिन्न शरीर को
अज्ञान के वश हो कर पारिणामिक भाव से आत्मप्रदेशोंकी एकता समझ कर, और
आत्मा का ऐसा ही स्वरूप मान कर शरीर की पुष्टता और रक्षा आदि के लिए
एकेन्द्रिय आदि समस्त प्राणियों की हिंसा करने वाले महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान,
मैथुन और परिग्रह आदि नाना प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करता है । वस्तुतः
आत्मा के स्वरूप में और शरीर में अत्यन्त भिन्नता है, वह इस प्रकार—आत्मा चैतन्य

पापकार्य करीने पोताने भलीन बनावे छे आ प्रभाञ्जे कर्मने वश थई ममताना
पाशभा जकडाओले आ एव उपचरित व्यवहारनयथी कर्ता सिद्ध थाय छे ।

(६) अनुपचरित व्यवहारनय—

अनुपचरित व्यवहारनयथी एव पोताना आत्माथी प्रत्यक्ष भिन्न शरीरने
अज्ञानवश थई पारिणामिक भावथी आत्मप्रदेशोनी ऐकता समझने, अने आत्मानु
ऐवु न स्वरूप मानीने शरीरनी पुष्टता अने रक्षा आदि भाटे ऐकेन्द्रिय आदि
तमाम प्राणीओनी हिंसा थवावाणा, महारम्भ, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, अने
परिग्रह आदि नाना—अनेक प्रकारना पाप कर्मोनु आचरण करे छे वस्तुतः आत्माना
स्वरूपमा अने शरीरमा अत्यन्त भिन्नता छे, ते आ प्रभाञ्जे कर्म—आत्मा चैतन्य

કૈતન્યરૂપઃ, શરીરમિદ્ બહસ્વપ્નમ્ । આત્મા-અરૂપી, શરીરમિદ્ રૂપિ । આત્મા જ્ઞાન-
 દર્શનમુલ્લવીર્યાદિરૂપઃ, શરીરં તુ નિઃસર્વં વિવિધમ્યાધિયુક્તમ્ । આત્મા-નિત્ય
 શાશ્વતો ધ્રુવરૂપઃ, શરીરમિદમનિત્યમશ્વતમધ્રુવમ્ । આત્મા-નિત્યાન્તનિર્મલઃ, શરીરં
 તુ ગર્માશ્ચયસ્થાનતઃ શુદ્ધબોધિતામ્યકારણતઃ, નવદ્વારલો મલનિઃસ્રવણેન ષ નિત્યાન્તા
 શુષિ, મલમાશ્ચં ષ ।

યદ્વેમેતાદૃશાનિ કર્માણિ હૃષંન્તિ, સ્થનન્તવારં લખં ત્પકં ષ વ્પુ ।
 ર્ષ્ટ્થે નષરે શરીરેડુનુરણ્ય પુનઃ પુનસ્તાન્યેષ પાપકર્માણિ મમાષરન્ સ્વીયમાત્માનં
 કર્મમારાકાન્તં કરોવિ । તેન પુનઃ પુનરનાદિદુરન્તસસારમહાગતે પવિતઃ સ્વા
 ત્વરૂપ છે, શરીર બહ છે । આત્મા અરૂપી છે, શરીર રૂપી છે । આત્મા જ્ઞાન વર્ણન મુખ
 બૌર બૌમદિરૂપ છે, શરીર નિ સર્વ બૌર વિવિધ મ્યાધિયાં સ યુક્ત છે । આત્મા નિત્ય છે,
 શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે, શરીર અનિત્ય અશ્વત બૌર અધ્રુવ છે । આત્મા નિત્યાન્ત નિર્મલ છે,
 શરીર ગર્માશય મેં રિષ્ત હોન સ શુદ્ધ બૌર ધોષિત સે બના હુમ્બ હોન કે ક્ષરણ, તથા
 મૌ હારો સે મલ નિક્કમ્ન કે કારણ અચન્ત અશુષિ છે, બૌર મલ કા પાત્ર છે । ષિસ
 શરીર કે ક્ષિપ્ત પેષ ૨ ઉર્પ્યુક કર્મ કિયે જાતે છે બહ શરીર અનન્ત વાર પાયા છે
 બૌર અનન્ત વાર ઝોડા છે, ઝેકિન સસારી બીજ ઇસ નષર શરીર મેં અનુગમ કરકે
 પુન પુન વ્હી પાપકર્મ કરતા હુમ્બ અપને કો કર્મ કે માર સે ગારી બનાતા છે । ઇસ
 ક્ષરણ અનાદિ બૌર દુરન્ત સસારરૂપી મહાગતે મેં પુન પુન પઢકર અપન્ય ઝસાર કરન
 ત્વરૂપ છે શરીર બહ છે. આત્મા અરૂપી છે શરીર રૂપી છે આત્મા જ્ઞાન, ઇશન,
 મુખ અને વીર્યરૂપ છે શરીર નિ.સત્વ અને વિવિધ આધિગોષી મુક્ત છે આત્મા
 નિત્ય છે શાશ્વત છે, ધ્રુવ છે શરીર અનિત્ય અશ્વત અને અધ્રુવ છે આત્મા
 અચન્ત નિમલ છે શરીર જબોશયમાં સ્થિત હોવાથી શુદ્ધ અને શોષિતથી (વીર્ય
 અને લોહીથી) અનેહુ હાવાના કારણે, તથા ૧૫ દ્વારોથી મલ નીકળવાના કારણે
 અચન્ત અશુષિ-અપવિત્ર છે અને મલતુ પાત્ર છે જે શરીરના માટે જોવાં જોવા
 ઉપર ઢહેલા તેવાં કર્મ કરવામા આવે છે તે શરીર અનતવાર પ્રાપ્ત અધુ છે અને
 અનતવાર ઊઠી ઢીધુ છે પરંતુ સસારી જીવ આ નાશવત શરીરમાં અનુસન-પ્રીતિ
 કરીને કરી-કરીને તે પશુકમ કરીને પોતાને કર્મના બાદથી બાદે બનાવે છે. જે
 કારણથી બનાદિ અને દુરન્ત-મુસ્કેલીથી પાર પડે તેવો-સસારરૂપી મહાગત-મોટો
 આદે તેમા વારવાર પડીને પોતાનો ઉદ્ધાર કરવામાં અસમર્થ બની જાય છે, પરંતુ

त्मानमुद्धर्तुं न शक्नोति । अविज्ञाय च स्वकृतकर्मभारं दुरन्तसंसारमहागर्तपतनं च मुहुर्मुहुस्तादृशान्येव कर्माणि कुर्वन्ति ससारिणः । एवमात्मनोऽत्यन्तभिन्नं शरीरमेव स्वस्वरूपं मत्वा तत्पुष्टिरक्षणाद्यर्थं क्रियमाणया क्रियया जीवस्यानुपचरित-व्यवहारनयेन कर्तृत्वं सिध्यति । उक्तरीत्या पडविधव्यवहारनयेन जीवस्य कर्तृत्वं विज्ञेयम् ।

जीवस्वरूपे सदृशाऽसदृशविचारः—

ननु—सर्वेषां जीवानां स्वरूपं लक्षणं च सदृशमेव, तर्हि ससारिणो दुःखिनः, सिद्धास्तु सुखिन इति कथम्? उच्यते—निश्चयनयेन तु सर्वे जीवाः

में असमर्थ बन जाता है, मगर संसारी जीव अपने किये कर्मों के भार को न समझ कर, तथा ससाररूपी महागर्त के पतन को न जानकर फिर-फिर वैसे ही कर्म करने लगते हैं । इस प्रकार आत्मा से भिन्न शरीर को ही अपना स्वरूप समझ कर उसके पोषण और रक्षणके लिए की जानवाली क्रियासे जीव अनुपचरित व्यवहारनयकी अपेक्षा कर्ता सिद्ध होता है । इस तरह पूर्वोक्त प्रकार से छह तरह के व्यवहारनय से जीवको कर्ता समझना चाहिए ।

जीवके स्वरूप में सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सब जीवोंका स्वरूप और लक्षण समान ही है तो ससारी जीव दुःखी और सिद्ध सुखी क्यों हैं ।

उत्तर—निश्चय नयसे सभी जीव सिद्धोंके समान ही हैं । उन मे से जो जीव

स सारी एव पोताना करेला कर्मोना लारने समञ्जतो नथी, तथा स साररूपी महागर्तमा पडयो छे ते तेने लक्षणतो नथी तेथी क्षरी-क्षरी तेवा कर्मो करवा लागे छे अे प्रमाणे आत्माथी भिन्न शरीरने न पोतानु स्वरूप समञ्जने तेना पोषण तथा रक्षण भाटे करवामा आवती क्रियाथी एव अनुपचरित व्यवहार नयनी अपेक्षाअे कर्ता सिद्ध थाय छे अे प्रमाणे पूर्वे कहेला प्रकारथी छे प्रकारना व्यवहारनयथी एवने कर्ता समञ्जवे लोछे अे

एवना स्वरूपमा सदृश-विसदृश विचार—

प्रश्न—अगर सर्व एवोनु स्वरूप अने लक्षण समान न छे तो पछी संसारी एव दुःखी अने सिद्ध एव सुखी केम छे ?

उत्तर—निश्चयनयथी सर्व एवो सिद्धोनी समान छे तेमांथी न्ने एव तमाभ

सिद्धसदृशा एव, तत्र य सकल कर्म संप्रयन्ति ते सर्वे जीवा सिद्धा भवति, तस्मात् सर्वेषामेकैव सत्ता विद्यते । यदि सर्वे सिद्धसदृशास्तर्हि कथमभ्युपगम्यैः सिद्धगतिमागिर्न भूयत ? इति भूयताम्—

अभ्युपगम्यैः जीवानामनाघनन्तचिक्रणकर्मसंबन्धात्, परावर्तस्वभावाभावात् कर्मसंप्रयणशक्तिर्नास्ति, मध्यानां तु तादृशचिक्रणकर्माभावात्, परावर्तस्वभावसद्भावात् वेद्यगुरुधर्मसामग्रीसत्त्वं ज्ञानादिरत्नप्रयत्नमाराधनेन, गुणभेगिसमारोहणेन च सिद्धपदं लब्धुं शक्यम् ।

समस्त कर्मोंका क्षय कर सकते हैं वे सब सिद्ध कहलाते हैं । उनका असली स्वरूप प्रकट हो जाता है । संसारी जीव कर्म के अधीन होने के कारण दुःखी होते हैं । इस प्रकार यद्यपि प्रत्येक जीव की सत्ता प्रथक्-प्रथक् है, तथापि उा में स्वरूप की समानता है ।

प्रश्न—यदि समस्त जीव सिद्धों के समान है तो अल्प्य जीव सिद्धिगति क्यों प्राप्त नहीं करते ?

उत्तर—सुनिये अभ्युपगम्य जीवों में अनादि अनन्त चिक्रण कर्मों के सम्बन्ध से और अपरिवर्तनशील स्वभाव के कारण कर्मों का क्षय करने की शक्ति नहीं है । मध्य जीवों के जैसे चिक्रण कर्मों के न होने से और परावर्त स्वभाव से देव गुरु और धर्मरूप सामग्रीके भिन्न पर ज्ञानादिरत्नप्रयत्न की आराधना करने से, तथा गुणधर्म पर आरोहण करने से उनको सिद्धपद प्राप्त करना शक्य है ।

कर्मोंका क्षय करी नांजे से ते अचे सिद्ध कहेंवाच से, तेनु असली स्वरूप प्रकट करी जाय से संसारी जीव कर्मोंके अधीन होवना कारणे दुःखी होय से अने प्रभावे अने के प्रत्येक जीवनी सत्ता प्रथक्-प्रथक्-अर्थात् अर्थात् से ते पक्ष तेनाभां स्वरूपनी समानता से

प्रश्न—अने सर्व जीव सिद्धोंकी समान से ते अल्प्य जीव सिद्धिगतिने कर्म प्राप्त करी शकता नहीं ?

उत्तर—सुनिये अल्प्य जीवोंमें अनादि-अनन्त चिक्रण कर्मोंका सन्ध होवानी अने अपरिवर्तनशील स्वभावता कारणे कर्मोंका क्षय करवानी शक्ति नहीं; अल्प्य जीवोंने तेनां चिक्रण कर्म न होवानी अने परावर्त-स्वभावकी देव, गुरु अने धर्मरूप सामग्रीना भजना पर, ज्ञानादि रत्नप्रयत्नकी आराधना करवानी तथा अल्प्य भेदों पर आरोहण करवानी तेज्जोने सिद्धपद प्राप्त करवु शक्य से

મનુષ્યભવ પ્રાપ્ય કર્મણિ ક્ષપયિત્વા જીવા મોક્ષં યાન્તિ, તદાની-
મેવાવ્યવહારારાશિમૂક્ષમનિગોદાદકામનિર્જરયા નિઃમૃત્યાઽન્યે જીવાઃ વિકાસદર્શા
પ્રાપ્નુવન્તિ । યદિ દગ જીવા મુક્તિ ગચ્છન્તિ તદા દગ મૂક્ષમનિગોદાન્નિપ્રકાન્તા
ભવન્તિ । કદાચિત્તોઽપ્યલ્પસમ્બન્ધકાઃ મૂક્ષમનિગોદા વહિરાયાન્તિ તદા તૈઃ
સાર્ધમેકો દ્વાવભવ્યજીવૌ નિઃસરતઃ, કિન્તુ વ્યવહારાગૌ જીવાના હાસવૃદ્ધી ન
ભવતઃ । ઈદૃશા નિગોદગોલકા અસખ્યાતા લોકે સન્તિ, ઇતિ ગ્રન્થાન્તરે ।

। ડત્યવતરણા સંપૂર્ણા ।

ઇત્ય મગવત્પરૂપિતમનુયોગચતુષ્ટયં પ્રદર્શિતમ્ । તત્ર ચરણઋણાનુયોગસ્ય
પ્રાધાન્યાત્પ્રાથમ્યમિતિ ચ નિગદિતમ્ ।

મનુષ્ય ભવ પાકર કર્મો કા ક્ષય કરક જીવ મોક્ષ જાતે હૈ, ડસી સમય
અવ્યવહારારાશિ મૂક્ષ નિગોદ સે અકામનિર્જરાદ્વાગ દસરે જીવ નિકલકર વિકાસદગા કો પ્રાપ્ત
કરને હૈ । અગર દગ જીવ મોક્ષ મે જાતે હૈ નો દગ જીવ મૂક્ષનિગોદ સે વાહર
નિકલ આતે હૈ । કદાચિત્ અલ્પસલ્યક મૂક્ષ નિગોદ જીવ વાહર નિકલતે હૈ તો ડનકે
સાથ ઇક-દો અભવ્ય જીવ વાહર આ જાતે હૈ મગર વ્યવહાર રાશિ મેં જીવોં કી ઘટતી
વઢતી નહીં હોતી । ઇસે નિગોદગોલક લોકમે અસલ્યાત હોતે હૈ, ઇસા ગ્રન્થાન્તર મે કહા હૈ ।

ઇતિ અવતરણા સંપૂર્ણા—

ડસ પ્રકાર મગવાનુ કે દ્વાગ પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગા કા સ્વરૂપ વતલાયા ગયા હૈ ।
યહ કહા જા ચુકા હૈ કિ-ચરણઋણાનુયોગ પ્રવાન હોને કે કારણ ડસકા પ્રહ્ણ
સર્વપ્રથમ કિયા ગયા હૈ ।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે
અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષમનિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વારા ખીલ જીવો નીકળીને
વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર ડસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો ડસ જીવ સૂક્ષમ
નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસખ્યક સૂક્ષમ નિગોદ-જીવ બહાર
નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-એ અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે પણ વ્યવહાર
રાશિમા જીવોતુ ઘટવુ-વધવુ થતુ નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસખ્યાત
હોય છે આ પ્રમાણે ગ્રન્થાન્તરમા કહ્યુ છે

ઇતિ અવતરણા સંપૂર્ણા—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોતુ સ્વરૂપ બતાવવામાં
આવ્યુ છે. એ કહી આવ્યુ છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેતુ
અહલ્ય સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યું છે

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मोक्षोपायतयाऽस्याङ्गस्य मोक्षकारणावबोधकत्वयैतद्व्योषितार्थावस्थितस्येतराङ्गाध्ययनयोग्यतालामाप्त्वा माधान्यात् ।

किञ्च—एतत्प्राम्थ्यनेन ज्ञान्त्वादिभरणकरणरूपो वा भ्रमणानां धर्मः सुविदितो भवति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणां माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।

आचारसूत्रेण चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्गृह्यते । तत्प्रतिपादकमङ्ग-
माचाराङ्गम्, अस्मैदमादिसूत्रम्—

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

बारह अंगा में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्या कि चरण और करण मोक्ष के उपाय हैं, मन्त यह अङ्ग भी मोक्ष का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने वाला सूत्रे अङ्गके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि—इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा भक्ति, कर्षवा धरण—करणरूप धर्मधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य भक्ति फलों की प्राप्ति के कारणमूल स्वसमय का परिज्ञान भक्ति समस्त धर्मों में आचारभारिख (समय पाठन) ही प्रधान है, मन्त एक आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिये, यह सिद्ध है ।

यहाँ ‘आचार’ शब्द से ज्ञानचार भक्ति पाँच प्रकार का आचार समझना चाहिये । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाता है । इस आचाराङ्ग सूत्र का पहला सूत्र यह है—

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

आर ज्ञानोभा आचाराङ्ग पहला अङ्ग है केमके अर्थक अने अर्थक मोक्षने उपाय है तेही आ अङ्ग प्रथम मोक्षने कारण है

आचाराङ्ग सूत्रमा निरूपित अर्थक अनुष्ठान करनेवाला नीला अर्थोना अध्ययनकी योग्यता प्राप्त करे है ते कारणही आ अङ्ग प्रधान है

नीला वात अने है—आ अङ्गना अध्ययनकी क्षमा भक्ति अथवा अर्थक-करणरूप धर्मधर्म-धर्म सम्यक् प्रकारे ज्ञान प्राप्त है आचार्य भक्ति फलों की प्राप्तिना कारणमूल स्वसमय प्ररिज्ञान भक्ति समस्त धर्मोना आचारभारिख (समयपाठन)का प्रधान है अने भाटे आचारानु प्रतिपादन करनेवाला आगमक पहला अङ्ग होना चाहिये, अने सिद्ध है

अर्थात् ‘आचार’ शब्दकी ज्ञानाचार भक्ति पाँच प्रकारने आचार समझने चाहिये, तेनु प्रतिपादन करनेवाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाय है अने आचाराङ्ग सूत्रनु पहला सूत्र अने है—

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

મનુષ્યમ્ભવં પ્રાપ્ય કર્માણિ ક્ષપયિત્વા જીવા મોક્ષં યાન્તિ, તદાની-
મેવાવ્યવહારારાશિમૂક્ષમનિગોદાદકામનિર્જરયા નિઃસૃત્યાઽન્યે જીવાઃ વિકાસદર્શા
પ્રાપ્નુવન્તિ । યદિ દશ જીવા મુક્તિં ગચ્છન્તિ તદા દશ મૂક્ષમનિગોદાન્નિપ્રાન્તા
ભવન્તિ । કદાચિત્તતોઽપ્યલ્પસંખ્યકાઃ મૂક્ષમનિગોદા વહિરાયાન્તિ તદા તૈઃ
સાર્ધમેકો દ્વાવમવ્યજીવૌ નિઃસરતઃ, કિન્તુ વ્યવહારાગૌ જીવાના હાસવૃદ્ધી ન
ભવતઃ । ईदृशा निगोदगोलका असख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे ।

। इत्यवतरणा संपूर्णा ।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम् । तत्र चरणकरणानुयोगस्य
प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम् ।

મનુષ્ય મવ પાકર કર્મો કા ક્ષય કરક જીવ મોક્ષ જાતે હૈં, ઁસી સમય
અવ્યવહારારાશિ સૂક્ષમ નિગોદ સે અકામનિર્જગદ્વાગ દૃમરે જીવ નિકલકર વિકાસદશા કો પ્રાપ્ત
કરને હૈં । અગર દશ જીવ મોક્ષ મં જાને હેં તો દશ જીવ સૂક્ષમનિગોદ સે વાહર
નિકલ આતે હૈં । કદાચિત્ અલ્પસલ્પક સૂક્ષમ નિગોદ જીવ વાહર નિકલતે હેં તો ઁનકે
સાથ ઁક-દો અમવ્ય જીવ વાહર આ જાતે હૈં મગર વ્યવહાર રાશિ મેં જીવોં કી ઘટતી
વદતી નહીં હોતી । ઁસે નિગોદગોલક લોકમે અસલ્યાત હોતે હૈં, ઁસા ગ્રન્થાન્તર મેં કહા હૈ ।

इति अवतरणा संपूर्ण—

ઁસ પ્રકાર મગવાન્ કે દ્વાગ પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગાં કા સ્વરૂપ વતલાયા ગયા હૈ ।
યહ કહા જા ચુકા હૈ કિ-ચરણકરણાનુયોગ પ્રધાન હોને કે કારણ ઁસકા પ્રહ્ણ
સર્વપ્રથમ કિયા ગયા હૈ ।

મનુષ્ય ભવ પામીને, કર્મોનો ક્ષય કરીને જીવ મોક્ષે જાય છે, તે સમયે
અવ્યવહાર રાશિ સૂક્ષમ નિગોદથી, અકામ નિર્જરાદ્વાગ ખીલા જીવો નીકળીને
વિકાસદશાને પ્રાપ્ત કરે છે અગર દસ જીવ મોક્ષમા જાય છે તો દસ જીવ સૂક્ષમ
નિગોદથી બહાર નીકળી આવે છે કદાચિત્ અલ્પસંખ્યક સૂક્ષમ નિગોદ-જીવ બહાર
નીકળે છે તો, તેની સાથે એક-બે અભવ્ય જીવ બહાર આવી જાય છે પણ અવ્યવહાર
રાશિમા જીવોનું ઘટવું-વધવું થતું નથી એ પ્રમાણે નિગોદગોલક લોકમા અસખ્યાત
હોય છે આ પ્રમાણે ત્રેતાન્તરમા કહ્યું છે

इति अवतरणा संपूर्ण—

આ પ્રમાણે ભગવાન દ્વારા પ્રરૂપિત ચાર અનુયોગોનું સ્વરૂપ બતાવવામાં
આવ્યું છે એ કહી આપ્યું છે કે ચરણ-કરણાનુયોગ પ્રધાન હોવાના કારણે તેનું
બહુ સૌથી પ્રથમ કરવામા આવ્યું છે

तथाचाराङ्गस्य द्वादशाङ्गेषु प्राथम्यम्, चरणकरणयोर्मौक्तोपायतयाऽस्याङ्गस्य
मौक्तकारणावबोधकस्यैतद्विधितार्थावस्थितस्मेतराङ्गाध्ययनयोग्यतासामाच्च माभान्यात् ।

किञ्च-एतत्प्राथम्यनेन ज्ञान्त्यादिभरणकरणरूपो वा भ्रमणानां धर्मः सुषिदितो
मयति, आचार्यादिपदप्राप्तिकारणभूतानां स्वसमयादिपरिज्ञानादीनां सर्वेषां धर्माणां
माचारधारित्वमेव प्रधानमस्ति, तेन तत्प्रतिपादकस्यास्यागमस्य प्रथमाङ्गत्वं सिद्धम् ।
आचारशब्देन चात्र पञ्चविधो ज्ञानाचारादिर्बुद्धते । तत्प्रतिपादकमङ्ग-
माचाराङ्गम्, अल्पेदमादिसूत्रम्-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

बाह्य अंगों में आचाराङ्ग पहला अंग है, क्योंकि चरण और करण मौक्त के उपाय हैं,
अतः यह अङ्ग भी मौक्त का कारण है, आचाराङ्ग सूत्र में निरूपित अर्थका अनुष्ठान करने
वाला दूसरे अङ्गोंके अध्ययन की योग्यता प्राप्त करता है । इस कारण यह अङ्ग प्रधान है ।

दूसरी बात यह है कि-इस अङ्गके अध्ययन से क्षमा आदि, अथवा चरण-करणरूप
भ्रमणधर्मका सम्यक् प्रकार से ज्ञान होता है । आचार्य आदि पदों की प्राप्ति के कारणमूढ
स्वसमय का परिज्ञान आदि समस्त धर्मों में आचारधारित्व (समय वाचन) ही प्रधान है,
अतः एव आचार का प्रतिपादक आगम ही पहला अङ्ग होना चाहिए, यह सिद्ध है ।

यहाँ ‘आचार’ शब्द से ज्ञानाचार अर्थात् पाँच प्रकार का आचार समझना
चाहिए । उसका प्रतिपादन करने वाला अङ्ग ‘आचाराङ्ग’ कहलाता है । इस आचाराङ्ग
सूत्र का पहला सूत्र यह है-

‘सुयं मे’ इत्यादि ।

आचार अंगोंमें आचारांग पहले का अंग है किन्तु अल्प अने अल्प भावने
उपाय है तभी का अंग पद्य भावने का अंग है

आचारांग सूत्रमा निरूपित अर्थ का अनुष्ठान करनेवाला भील अंगोंना
अध्ययननी योग्यता प्राप्त करे है ते अल्पधी का अंग प्रधान है

भील बात को है-आ अंगना अध्ययनधी क्षमा आदि अथवा अल्प-
अल्परूप भ्रमण-धर्मनु सम्यक् प्रकार से ज्ञान काय है आचार्य आदि पदोंनी प्राप्तिना
कारणमूढ स्वसमयनु परिज्ञान आदि समस्त धर्मोंमें आचारधारित्व (समयवाचन)का
प्रधान है को भाटे आचारनु प्रतिपादन करनेवाला आगम का पहले का अंग है
कोईको को सिद्ध है

जहाँ ‘आचार’ शब्दधी ज्ञानाचार अर्थात् पाँच प्रकारने आचार समझने
चाहिए, तेनु प्रतिपादन करवावतु अंग ‘आचाराङ्ग’ कहलाय है आ आचाराङ्ग
सूत्रनु पहले सूत्र का है-

सुयं मे इत्यादि

मनुष्यभवं प्राप्य कर्माणि क्षपयित्वा जीवा मोक्षं यान्ति, तदानी-
मेवाव्यवहारराशिमूक्षमनिगोदादकामनिर्जरया निःसृत्याऽन्ये जीवाः विकासदशां
प्राप्नुवन्ति । यदि दश जीवा मुक्तिं गच्छन्ति तदा दश मूक्षमनिगोदात्रिष्कान्ता
भवन्ति । कदाचित्ततोऽल्पसंख्यकाः मूक्षमनिगोदा वहिरायान्ति तदा तैः
सार्धमेको द्वावभव्यजीवौ निःसरतः, किन्तु व्यवहारागौ जीवानां हासवृद्धी न
भवतः । ईदृशा निगोदगोलका असंख्याता लोके सन्ति, इति ग्रन्थान्तरे ।

। इत्यवतरणा सपूर्णा ।

इत्थं भगवत्प्ररूपितमनुयोगचतुष्टयं प्रदर्शितम् । तत्र चरणकरणानुयोगस्य
प्राधान्यात्प्राथम्यमिति च निगदितम् ।

मनुष्य भव पाकर कर्मों का क्षय करके जीव मोक्ष जाते हैं, उसी समय
अव्यवहाराशि सूक्ष्म निगोद से अकामनिर्जराद्वारा दृमरे जीव निकलकर विकासदशा को प्राप्त
करने हैं । अगर दश जीव मोक्ष में जाते हैं तो दश जीव मूक्षमनिगोद से बाहर
निकल आते हैं । कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद जीव बाहर निकलते हैं तो उनके
साथ एक-दो अभव्य जीव बाहर आ जाते हैं मगर व्यवहार राशि में जीवों की घटती
बढ़ती नहीं होती । ऐसे निगोदगोलक लोकमें असख्यात होते हैं, ऐसा ग्रन्थान्तर में कहा है ।

इति अवतरणा संपूर्णा—

इस प्रकार भगवान् के द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बतलाया गया है ।
यह कहा जा चुका है कि—चरणकरणानुयोग प्रधान होने के कारण उसका ग्रहण
सर्वप्रथम किया गया है ।

मनुष्य लव पाभीने, कर्मोने क्षय करीने एव मोक्षे नय छे, ते सभये
अव्यवहार राशि सूक्ष्म निगोदधी, अकाम निर्जराद्वारा भीन एवे नीकणीने
विकासदशाने प्राप्त करे छे अगर इस एव मोक्षमा नय छे तो इस एव सूक्ष्म
निगोदधी अहार नीकणी आवे छे कदाचित् अल्पसंख्यक सूक्ष्म निगोद-एव अहार
नीकणे छे तो, तेनी साथे अेक-अे अलव्य एव अहार आवी नय छे पशु व्यवहार
राशिमा एवेनु घटवु-वधवु थतु नहीं अे प्रभाञ्छे निगोदगोलक लोकमा असख्यात
होय छे आ प्रभाञ्छे अथान्तरमा कलु छे

इति अवतरणा संपूर्णा—

आ प्रभाञ्छे लगवान द्वारा प्ररूपित चार अनुयोगों का स्वरूप बताया गया
आव्यु छे अे कही आप्यु छे के चरण-करणानुयोग प्रधान होवाना कारणे तदं
अहलु सौथी प्रथम करवाना आव्यु छे

भुतं=भक्तविपरीकृत, मया=माहाद् भगवन्मुखाद्, न तु परम्परया, यतो गजधराणामन्तरागमो भवति । 'मया भुत'—मित्यनेन गुरुकुले निवसता मयेत्यर्थः सुतरां सम्यक्ते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुवरणसरोवरस्यैवैक्यामिवाहनं, तन्मुखादिन्दुविनिःसृतपक्वभक्षणं च नोपपद्यते ।

मगवया ~मगः=(१) - ज्ञानं=सर्वार्थविषयकम्, (२) - माहात्म्यम्=भक्तुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यज्ञः=निषिधानुकम्प्रतिकूलपरीपहोपसर्गसहन समुद्रयूता कीर्तिः, यथा-जगद्रसमपहासमुत्पा कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वथा काम

मैने मगवान् के मुम्से साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं, क्यों कि गजधरो का भागम अनन्तरागम होता है । मैने सुना इस वाक्य का मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना ' यह अर्थ स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये बिना गुरु के वरण-कमलैका स्पर्श करके अभिवादन तथा उनके मुखारविन्द से निकलन बाध बधनी का भक्षण नहीं हो सकता ।

'मगवाम' शब्द में जो 'मग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यज्ञ अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परिस्थिों और उपसर्गों को सहन करने से पैली हुई कीर्ति अथवा अगत् की रक्षा (उदार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् कामभोग की

में लजवानना सुभधी साक्षात् सांख्यु छे—परम्परशी नहि, हेभडे जघधराना आजम अनन्तराजम-कोय छे 'मे सांख्यु मे शुकुलमां निवास करवा यहा सांख्यु का अर्थ स्वताः सिद्ध छे शुकुलमां निवास कथो विना शुकुला परषुअहोनेो रपश करीने अविवाहन नमस्कार तथा तेना सुभार विदधी निकलवावाजां वधनेो भवणु अर्ध शक्यां नधी.

'क्षत्रधान' शब्दमां ने 'मग' शब्द छे तेना अनेक अर्थ बाप छे ते म्य प्रभावे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थोने जघधवावाठु ज्ञान, (२) माहात्म्य अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाधी सुभत कोर्त (३) यज्ञ-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परिपहो अने उपसर्गेने सहन करवाधी हेलावी कीर्ति अथवा अजवनी रक्षा (उदार) करवाणी लजवानाधी उत्पन्न कयेवी कीर्ति (४) वैराग्य-

मूलम्—

सुयं मे आउस तेणं भगवया एवमक्खायं, (सू. १)

(छाया)

श्रुतं मया आयुष्मन् ! तेन भगवता एवमाख्यातम् (सू. १)

टीका—

‘सुयं मे’ इत्यादि । आयुष्मन् ! हे चिरजीविन् ! जम्बू ! ‘आयुष्मन्’-
न्नितिपदं शिष्यस्य जम्बूस्वामिनः कोमलवचनामन्त्रणं विनीतताख्यापनार्थम् ।
किञ्च—तस्याशेषश्रुतज्ञानोपदेश—श्रवण—ग्रहण—धारण—रत्नत्रयाराधन—मोक्षसाधन-
योग्यताप्राप्त्यर्थमेतद्वचनम् । विनाऽऽयुषा श्रुतश्रवणादिमोक्षपर्यन्तसिद्धिर्न कस्यचित्सं-
भवतीति भावः । एतद्वचनप्रभावादेव जम्बूस्वामी मोक्षपदं तस्मिन्नेव जन्मनि
प्राप ।

मूलार्थ—‘सुयं मे’ इत्यादि, हे आयुष्मन् ! मैंने सुना है । उन भगवान् ने ऐसा
कहा है (सू० १)

टीकार्थ—हे आयुष्मन् ! अर्थात् हे चिरजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद अपने शिष्य
जम्बू स्वामीका कोमल वचनरूप सम्बोधन है, और विनीतता प्रकट करने के लिए है ।
अथवा—उनके समस्त श्रुतज्ञान, उपदेश का श्रवण, ग्रहण धारण, रत्नत्रयका आराधन, तथा
मोक्षसाधन की योग्यता की प्राप्ति के लिए इस पद का प्रयोग किया गया है । आयुके
अभाव में श्रुतश्रवण से लेकर मोक्ष तक किसीकी भी सिद्धि नहीं हो सकती । इसी वचन
के प्रभाव से जम्बू स्वामीने उसी भव में मोक्ष प्राप्त किया था ।

‘सुयं मे’ इत्यादि .

मूलार्थ—हे आयुष्मन् ! मे साबळ्यु छे, ते लगवाने आवु कहु छे (सू-१)

टीकार्थ—हे आयुष्मन् अर्थात् हे चिरजीवी जम्बू !, ‘आयुष्मन्’ पद
पोताना शिष्य जम्बू स्वामीनु कोमल-वचनरूप सम्बोधन छे, अने विनीतपद
प्रकट करवा भाटे छे अथवा तेमना समस्त श्रुतज्ञान, उपदेशनु श्रवण, ग्रहण,
धारण, रत्नत्रयनु आराधन तथा मोक्षसाधननी योग्यतानी प्राप्ति भाटे आ पदने
प्रयोग करवामा आव्ये छे, आयुना अभावमा श्रुतना श्रवणथी लधने मोक्ष सुधी
कोई पद सिद्धि थई सकती नथी आ वचनना प्रभावथी जम्बू स्वामीके अ
भवमा मोक्ष प्राप्त कथी हुतो.

भुतं=भक्तविपयीकृतं, मया=साक्षाद् मगवन्मुखात्, न तु परम्परया, यतो गणपरायामन्तरागमो भवति । 'मया भुत'—मित्यनेन गुरुकुले निवासता मयेत्यर्थः सुतरां सम्पते । गुरुकुलनिवासं विना हि गुरुचरणसरोजस्पर्शपूर्वकामिवाहनं, तन्मुखारविन्दविनिःसृतवचनभ्रमं च नोपपद्यते ।

मगवया - मगः=(१) - ज्ञानं=सर्वायंविषयकम्, (२) - महात्म्यम्=मनुपममहनीयमहिमसंपन्नत्वम्, (३)-यज्ञः=विधिबालुकुसप्रतिकूलपरीषदोपसर्गसहन समुद्भूता कीर्ति, यज्ञा-जगत्सम्पन्नासमुत्था कीर्तिः, (४)-वैराग्यम्=सर्वाकां काम

मैने मगवान् के मुखसे साक्षात् सुना है—परम्परा से नहीं क्यों कि गणपती का आगम अन्तरागम होता है । मैने सुना ' इस वाक्य का मैने गुरुकुल में निवास करते हुए सुना यह अर्थ स्वतः सिद्ध है । गुरुकुल में निवास किये बिना गुरु के चरण-कमलोंका स्पर्श करके अमिवाहन तथा उनके मुखारविन्द से निकलने वाल वचनों का श्रवण नहीं हो सकता ।

'मगवान्' शब्द में जो 'मग' शब्द है उसके अनेक अर्थ होते हैं । वे इस प्रकार हैं—(१) सम्पूर्ण पदार्थों को जानने वाला ज्ञान (२) महात्म्य अर्थात् अनुपम और महान् महिमा (३) यज्ञ अर्थात् नाना प्रकार के अनुकूल और प्रतिकूल परीषदों और उपसर्गों को सहन करने से पैसी हुई कीर्ति अथवा काम्य की रक्षा (उधार) करने की भावना से उत्पन्न हुई कीर्ति (४) वैराग्य अर्थात् काममोह की

से अजवानना सुनधी साक्षात् सांभल्यु छे—परम्पराशी नदि, केभके जगत्सरोजना काजम अन्तरागम-कोय छे मे सांभल्यु मे शुकुलभां निवास करता रहा सांभल्यु जा अर्थ स्वतः सिद्ध छे शुकुलभां निवास कथी विना शुकुला अरज्यभटौने। स्पश करीने अमिवाहन नमस्कार तथा तेना सुधार विदधी निकलनावाणां वचने। श्रवण रधिं शकतां नधी।

'मगवान्' शब्दों में 'मग' शब्द छे तेना अनेक अर्थ शाय छे ते जा प्रभावे—

(१) सम्पूर्ण पदार्थों के ज्ञानवाला ज्ञान, (२) साक्षात् अर्थात् अनुपम अने महान् महिमाशी शुकुल कोय, (३) यज्ञ-अर्थात् नाना प्रकारना अनुकूल अने प्रतिकूल परीषदों अने उपसर्गों के सहन करवाधी इलावी कीर्ति अथवा अजतनी रक्षा (उधार) करवानी भावनाशी उत्पन्न कियेली कीर्ति, (४) वैराग्य-
म जा-२१

भोगाभिलाषापरहित्यम्, यद्वा-क्रोधादिकपायनिग्रहलक्षणम्, (५)-मुक्तिः=सकल-
कर्मक्षयलक्षणो मोक्ष, (६)-रूपम्=सकलहृदयहारिसौन्दर्यम्, (७)-वीर्यम्=अन्त-
रायान्तजन्यमनन्तसामर्थ्यम्, (८)-श्रीः=घातिकर्मपटलविघटनजनितज्ञानदर्शन
सुखवीर्यरूपानन्तचतुष्टयलक्ष्मीः । (९) - धर्मः-अपवर्गद्वारकपाटोद्घाटनसाधन-
श्रुतचारित्रलक्षणः (१०)-ऐश्वर्यम्=लोकत्रयाधिपत्यम्, चाम्यास्तीति भगवान्,
तेन भगवता=ज्ञानादियुक्तेन, तेन तीर्थङ्करेण, वक्ष्यमाणार्थस्य तीर्थङ्करभाषितत्वान्त-
च्छब्देनात्र तीर्थङ्करपरामर्शः । उक्तञ्च—

तनिक भी अभिलाषा न होना, अथवा क्रोध आदि कपायांका निग्रह करना, (५) मुक्ति
समस्त कर्मोंका क्षय रूप मोक्ष, (३) रूप-सब का हृदय हृदयेवाला अनुपम सौन्दर्य
(७) वीर्य-अन्तराय कर्मके क्षय से उत्पन्न अनन्तशक्ति, (८) श्री-घाति कर्मों के क्षय से
उत्पन्न अनन्तज्ञान, दर्शन, सुख और वीर्यरूप अनन्तचतुष्टय लक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी
द्वार के किवाड उघाडने का साधन श्रुतचारित्ररूप धर्म, (१०) ऐश्वर्य-तीन लोक का
आधिपत्य । ये दश गुण जिम में विद्यमान हों उसे 'भगवान्' कहते हैं । ऐसे
भगवान्ने कहा है । आगे कहा जाने वाला तत्व तीर्थङ्करभाषित है, अत एव 'तत्'
शब्द से यहाँ भगवान् तीर्थङ्कर समझना चाहिए । कहाभी है—

अर्थात् कामलोगनी जरा पण्डु अलिखापा नथवी, अथवी क्रोध कपायेना निग्रह
करवे, (५) मुक्ति-समस्त कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष (६) रूप-सर्वना हृदयने उरी
खेवावाणु अनुपम सौन्दर्य, (७) वीर्य-अन्तराय कर्मना क्षयथी उत्पन्न अनन्त
शक्ति (८) श्री-घाति कर्मोंका क्षयथी उत्पन्न अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख अने
वीर्यरूप अनन्तचतुष्टयलक्ष्मी (९) धर्म-मोक्षरूपी द्वारना कभाड उघाडवातु
साधन श्रुत-चारित्ररूप धर्म (१०) ऐश्वर्य-त्रणु लोकतु अधिपतिपणु आ दस
गुणु जेभा डोय तेने भगवान् कहे छे जेवा भगवाने कहु छे

आगण कडेवाशे ते तत्व तीर्थङ्करभाषित छे, जेटला भाटे 'तत्' शब्दथी
तीर्थङ्कर भगवानने अर्थ अहिं समजवे लोड्ये कहु पणु छे-

“अस्य मासः अरिहा, सुप्तं गन्धति गणधरा गिडभा” इत्यादि ।

अर्थ भाषतेऽर्जुन् सूत्रं ग्रन्थन्ति गणधरा निपुणा, इति ज्ञाया ।

मगधवीर्यङ्कुरोपदिष्टमर्थरूपमागममुपादाय मेधानिनो गणधरा मूर्खरूपमागमं निषन्नन्तीत्यर्थः ।

एक=वाक्यमणरीत्या आस्पार्त=कथितं द्वादशविधपरिपत्सु ।

मगधवीर्यङ्कुरकथितार्थात्तमेव बाहुस्य वक्ष्यमानं वाक्यमनुधदिष्यामीति वाक्यार्थः । आगमोक्तार्थस्य कल्पनिकत्वाभावाद् द्रव्यार्थिकनयेनार्थरूपोऽयमागमोऽज्ञादिरिति भावः ।

एषा परंपरा=परिपाटी वरीवर्तिं सर्वेषां गणधराणां, यद् धिनीतैः स्वस्वान्ते-पासिमिमौक्षमाग सविनयं पृष्ठा गणधरा “सुयं म” इतिवाक्यं प्रथमं पठन्ति । उक्तञ्च—

“अहन्त मगधन्त अर्थका निरूपणं कृतं है । और गणधर उसे मछे-मौक्षि सूत्र रूप में गूँथते है । अर्थात् मगधान् वीर्यङ्कुर के द्वारा उपदिष्ट अर्थरूप आगम के भाषार पर कुशल गणधर मूर्खरूप आगमकी रचना करते हैं ।”

उक्त भगवानने बारह प्रकारकी परिपत् में इस प्रकार कहा है जो आगे इस सूत्र में निरूपण किया जायगा । आगमोक्त अर्थ कल्पनिक नहीं होता अतः द्रव्यार्थिकनय से अर्थरूप यह आगम अनादि है ।

समी गणधरो को यह परंपरा-परिपाटी है कि-प्रथम २ विनीत शिष्या द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछे बान पर गणधर महाराज पढ़के-पढ़के ‘सुयं म’ यह वाक्य बोझते है । कहा भी है—

अहन्त अत्रवत् अथनु निरूपणं करे छे अने जलधर तेने कृषी रीते सूत्र रूपमा शुभे छे अर्थात् अत्रवान तीर्थं कर द्वारा उपदिष्ट-उपदेशोलां अर्थरूप आजमना भाषार पर कुशल जलधर मूर्खरूप आगमनी रचना करे छे

ते अत्रवाने पार प्रकाशनी परिपद्-सलाभां आ प्रभाष्ये कसु छे ने आजग आ सूत्रार्थ निरूपण करेवार्ता आवरी आजमोक्त-आजमर्मा कहेवो अर्थ कल्पनिक नथी तेथी द्रव्यार्थिक नथी अर्थरूप आ आगम अनादि छे

सर्वं जलधरानी को परंपरा-परिपाटी छे के-पात-पाताना विनीत शिष्यो द्वारा विनयपूर्वक मोक्षमार्ग पूछवथी जलधर महाराज प्रथम सुयं मे आ पद्य बोझे छे कसु पद्य छे—

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

“ निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितै,—

विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।

गणधररखिलैः प्रथम वचः,

खलु 'सुयं मे' इति प्रतिभापितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यात तदाह—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसि णो सण्णा भवइ, तजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उट्ठाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अट्ठोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अण्णुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ मृ. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने र शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुय मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ने जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को सजा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अधोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

“ विनयशी युक्त निपुण शिष्योंसे सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्व गणधरै द्वारा पोतपोताना शिष्यो प्रति सर्व प्रथम 'सुयं मे' से वाक्य कहेवाभा आण्यु छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगेसि’ इत्यादि कोठ-कोठ (एवो)ने सजा नहीं होती के हु पूर्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु दक्षिण दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु पश्चिम दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु उत्तर दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु उर्ध्व दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु अधो दिशाभाथी आण्यो छु, अथवा हु अन्य-णील कोठ दिशाभाथी अथवा अनुदशा (विदिशा)भाथी आण्यो छु । ॥२॥

छाया—

इह एकेषां नो संज्ञा भवति, तद्व्यया-पूर्वस्या वा दिशाया भागतो-
ऽहमस्मि, दक्षिणस्या वा दिशाया भागतोऽहमस्मि, पश्चिमाया वा दिशाया
आगतोऽहमस्मि । उत्तरस्या वा दिशाया आगतोऽहमस्मि । ऊर्ध्वाया वा दिशाया
आगतोऽहमस्मि, अधोदिशाया वा आगतोऽहमस्मि, अन्यतरस्या वा दिशाया
अनुदिशाया वा भागतोऽहमस्मि ।

‘इहमेवेति’ इति इह-अतुर्गतिस्त्वरणरूप संसार षष्पत्तं ज्ञानावरणीयकर्मो-
दयक्तां संज्ञिनां जीधानां संज्ञा-स्मृतिरूपो मतिभिश्चयः ना भवति-न ज्ञायत ।

अन्य प्रतिषेधवाचकं शब्द विहाय ‘नो’ शब्दोपादानं विशिष्टसंज्ञा-
मतिषेधबोधनार्थम् । ‘नो’ शब्दः सर्वनिषेधवाची, दक्षनिषेधवाची च । उक्तञ्च—

“प्रतिषेधयति समस्त, प्रसक्तमर्थं जगति नो-शब्दः ।

स पुनस्तदन्वयो वा, तस्मादर्थान्तरं वा स्यात् ॥ १ ॥”

‘नो’ शब्दः-प्रसक्तादागतमर्थं संपूर्णं प्रतिषेधयति, स चार्थं प्रसक्तावयवो
वा स्यात् तस्मादन्यो वाऽर्थः स्यात् समपि प्रतिषेधयतीत्यर्थः ।

टीकार्थः—चार गति में भ्रमण करनरूप संसार में ज्ञानावरण कर्म के उद्वय
वाके कितनेक संज्ञी जीवों को संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं होती ।

निषेधवाचक इतरे शब्द को छोड़ कर यहाँ ‘नो’ शब्द का प्रयोग किया
गया है सो विशिष्ट संज्ञा का अभाव सूचित करने के लिये समझना चाहिए । नो
शब्द सर्वनिषेधवाचक भी है और दक्षनिषेधवाचक भी है । कहा भी है—

“नो शब्द प्रसक्त में आये हुए सम्पूर्ण अर्थ का निषेध करता है । यह अर्थ
पाहे उन का एक अवयव हो या उस से भिन्न अर्थांतर हो-उस का भी
निषेध करता है’ ॥१॥

टीकार्थः—चार गतिमें भ्रमण करवा रूप संसारमें ज्ञानावरण कर्मना उद्वय
वाक्य के अर्थ सही होनेसे संज्ञा अर्थात् स्मृति नहीं रहेगी निषेध-वाचक
अन्य शब्दों के अर्थ नो शब्दने प्रयोग किये से ते विशिष्ट संज्ञाने
अभाव सूचववा भाटे समकर्मों के अर्थ नो शब्द सर्वनिषेधवाचक पक्ष से अन्य
देशनिषेधवाचक पक्ष से शब्द पक्ष से—

“ नो शब्द प्रसक्त में आयेवा संपूर्ण अर्थने निषेध करे से ते अर्थ
अत्र ते तेन के अवनय होय अथवा तेन्तर्षी जिन अर्थान्तर होय तेने पक्ष
निषेध करी दे ॥ १ ॥

(द्रुतविलम्बितं छन्दः)

“ निपुणशिष्यगणैर्विनयान्वितै,—

विमलभावयुतैः परिसेवितैः ।

गणधररखिलैः प्रथमं वचः,

खलु 'सुयं मे' इति प्रतिभाषितम् ” ॥१॥ इति ।

भगवता यदाख्यात तदाह—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलम्

इहमेगेसि णो सण्णा भवइ, तंजहा-पुरत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, दाहिणाओ वा दिशाओ आगओ अहमंसि, पच्चत्थिमाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उत्तराओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, उड्डाओ वा दिसाओ आगओ अहमंसि, अहोदिसाओ वा आगओ अहमंसि । अण्णयरीओ वा दिसाओ अणुदिसाओ वा आगओ अहमंसि ॥ सू. २ ॥

“विनय से युक्त निपुण शिष्यों द्वारा सेवित, तथा निर्मल भावों वाले सब गणधरों द्वारा अपने-२ शिष्यों के प्रति सर्व प्रथम सुय मे’ यह वाक्य कहा गया है ॥ १ ॥

भगवानन्ते जो कहा वह कहते हैं—‘इहमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ—किन्हीं २ (जीवों) को सजा नहीं होती कि—मैं पूर्व दिशा से आया हूँ, या मैं दक्षिण दिशा से आया हूँ, या मैं पश्चिम दिशा से आया हूँ, अथवा मैं उत्तर दिशा से आया हूँ । अथवा मैं उर्ध्व दिशा से आया हूँ, या अघोदिशासे मैं आया हूँ, अथवा मैं दूसरी किसी दिशा या अनुदिशा (विदिशा) से आया हूँ । ॥ २ ॥

“ विनयथी युक्त निपुण शिष्येभ्ये सेवित तथा निर्मल भावोवाणा सर्व गणधरे द्वारा पोतपोताना शिष्ये प्रति सर्व प्रथम 'सुयं मे' ये वाक्य कडेवामा आन्थु छे ” ॥ १ ॥

मूलार्थ—‘इहमेगेसि’ इत्यादि को-को-को (एवो)ने सजा नहीं होती के हु पूर्व दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु दक्षिण दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु पश्चिम दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु उत्तर दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु उर्ध्व दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु अघो दिशाभाथी आन्थो छु, अथवा हु अन्य-धील को-को दिशाभाथी अथवा अनुदशा (विदिशा)भाथी आन्थो छु । ॥ २ ॥

अथवा—सद्धानं सद्भा—चेतना, सा चासातवेदनीयमोहनीयकर्मोदयजन्य-
विकारस्युक्ता आहारादिसद्भादिद्वेन व्यपदिश्यते । सा द्विधा-अनुभवनसद्भा, ज्ञानसद्भा
श्च । तत्रानुभवनसद्भा षोडशविधा । तत्र मगवतीसूत्रोक्तदशविधसद्भा उपादायाधिका
पद् संज्ञा समिक्लिताः षोडश मयन्ति । तत्र (१) सुखसंज्ञा, (२) दुःखसंज्ञा,
(३) मोहसंज्ञा, (४) विचिकित्तासंज्ञा, (५) शोकसंज्ञा, (६) धर्मसंज्ञा चेति पद्
अधिक्य विद्येयाः ।

(१) आहारसंज्ञा—

(१) क्षुधेदनीयोदयात् क्वञ्चाघाहारायं तथाविधपुद्गलोपादानक्रिया
सम्यग् ज्ञापतेऽन्यस्याहारसंज्ञा । यद्वा—क्षुधेदनीयोदयसमुद्भव आहारामि-

अथवा—सद्धानं—सद्भा—चेतना अर्थात् सद्भा चेतना को कहत हैं । यह जब
असातवेदनीय और मोहनीय कर्म के उदय से अनित विकारों से युक्त होती है तब यह आहार
अधि संज्ञा कहलाने लगती है । यह दो प्रकार की है—(१) अनुभवनसद्भा और (२) ज्ञानसद्भा ।
इन में से अनुभवनसंज्ञा सोलह प्रकार की है । मगवतीसूत्रोक्त दश सद्भावो में
छह सद्धारों का देन से सोलह हो जाती है । छह संधारों ये हैं—(१) सुखसंज्ञा,
(२) दुःखसंज्ञा (३) मोहसंज्ञा (४) विचिकित्तासंज्ञा (५) शोकसंज्ञा और (६) धर्मसंज्ञा ।

(१) आहारसंज्ञा

क्षुधावेदनीय के उदय से क्वञ्चाहार आदि के स्थिर योग्य पुद्गलों को ग्रहण
करने की क्रिया जिस शरीर सम्यक् प्रकार से ज्ञानी बाय यह आहारसंज्ञा कहलगी है ।

अथवा—सद्धानं जेटले सद्भा ते चेतना अर्थात् चेतनान्ते सद्भा कहे छे ते ज्ञाने
असातावेदनीय जने मोहनीय कर्मन्त उदयधी उत्पन्न विकारेण युक्त होय छे
तथाए ते आहार अदि सद्भा कहेवाय छे ते वि प्रकारनी छे—(१) अनुभवनसद्भा
जने (२) ज्ञानसद्भा तेमां अनुभवनसद्भा योग प्रकारनी छे मगवतीसूत्रोक्त दस
सद्भावोमां छे मगवती वेदधी योग धाम छे छ सद्भावो जा छे—(१) सुखसद्भा,
(२) दुःखसद्भा, (३) मोहसद्भा (४) विचिकित्तासद्भा (५) शोकसद्भा जने
(६) धर्मसद्भा ।

(१) आहारसंज्ञा—

क्षुधा (भूज) वेदनीयता उदयधी क्वञ्चाहार अदि भाए योग्य पुद्गलोंने क्वञ्च
करवानी क्रिया जेना वडे सम्यक् प्रकारधी बाणी शकाय ते आहारसंज्ञा कहेवाय छे ।

यया संज्ञयाऽऽत्मनो गत्यागत्यादिकं जीवो जानाति तस्या एव प्रतिषेधो विवक्षितः ।

अथ संज्ञाभेदाः—

સંજ્ઞા ચ જીવાનાં વહુવિધા । તત્ર-દશવિધા ભગવતીસૂત્રે (ગતરુ-૭, ઉદ્દેશ ૮) પ્રોક્તા—

“ कङ्ण भंते ! सन्नाओ पन्नत्ताओ ? गोयमा ! दस सन्नाओ पन्नत्ताओ, तंजहा—(१) आहारसन्ना, (२) भयसन्ना, (३) मेहुणसन्ना, (४) परिग्गहसन्ना, (५) कोहसन्ना, (६) माणसन्ना, (७) मायासन्ना, (८) लोभसन्ना, (९) लोगसन्ना, (१०) ओहसन्ना ” इति ।

जिस सजा के द्वारा आत्मा की गति और आगति जीव जानता है, यहाँ उसीका निषेध समझना चाहिए ।

સંજ્ઞા કે ભેદ—

જીવોં કી સજા અનેક પ્રકાર કી હોતી હૈ । ભગવતીસૂત્ર (શ૦ ૬, ૩૦ ૮, મેં દશ પ્રકાર કી સજા કહી ગઈ હૈ, વહ ઇસ પ્રકાર હૈ,—

પ્રશ્ન—ભગવાન્ ! સજાઈં કિતની કહી ગઈં હૈં ।

ઉત્તર—ગૌતમ ! દશ સજાઈં કહી ગઈં હૈ । વે ઇસ પ્રકાર હૈ—
(૧) આહાર-સજા, (૨) ભય-સજા, (૩) મૈથુન-સજા, (૪) પરિમ્હ-સંજ્ઞા, (૫) ક્રોધ સજા
(૬) માન-સજા, (૭) માયા-સજા, (૮) લોભ-સજા, (૯) લોક-સંજ્ઞા ઓર (૧૦) ઓધ-સજા ।

જે સજા દ્વારા આત્માની ગતિ અને આગતિ છવ બાણે છે અહિં અને નિષેધ સમજવો જોઈએ

સજાના ભેદ—

છવેની સજા અનેક પ્રકારની હોય છે ભગવતી સૂત્ર (શ ૬ ૩ ૮)માં ઇસ પ્રકારની સજાઓ કહેવામા આવી છે. તે આ પ્રમાણે છે—

પ્રશ્ન—ભગવાન ! સજાઓ કેટલી કહી છે ?

ઉત્તર—ગૌતમ ! ઇસ સજાઓ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે—

(૧) આહાર-સજા (૨) ભય-સજા (૩) મૈથુન-સજા, (૪) પરિમ્હ-સજા
(૫) ક્રોધ-સજા (૬) માન-સજા (૭) માયા-સજા (૮) લોભ-સજા (૯) લોક-સંજ્ઞા અને (૧૦) ઓધ-સજા

(२) मयसंज्ञा—

(१) सनिमित्तप्रतिभिरं वा मयमोहनीयोदयाद् मयोद्विज्ञान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोदपायरूपा नयनवदनविकृतरोगाभ्याविर्माणादिक्रियामङ्गला स्वात्मन परिच्यतिमयसंज्ञा । इतिबल्लवेन, मयवार्ताभ्रषणमीपवदर्थनादि अनित्यपुदया, इहलोकादिमयजनकार्यपर्यालोचनेन वा मयसंज्ञा ज्ञायते । इत्यस्पर्शादिमीत्या स्वावयवसंकोचनादिना रुग्णालुवस्स्यादीना मयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

(३) पुरुषवेदोदयामैथुनार्थं यन्निस्तोक्तप्रसन्नवदनसंस्वम्भितगाभ-

(२) मयसंज्ञा—

किसी कारण से या बिना ही कारण मयमोहनीय कर्म के उदय से मयगीत पुरुषकी माहके अस्तित्व नोदपायरूप नेत्रों में और मुझ में विकर होना रोमान्न होना यदि क्रियाय विमङ्गल स्थाग है, पनी आत्मा की परिणति मयसंज्ञा कहलती है, दुर्बलता से मय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, मयद्वार वस्तु के देखने से, तथा इहलोके यदि मैं मयजनक वस्तुका विचार करने से मयसंज्ञा उत्पन्न होती है । सन्नती यदि वनस्पतियों हाथ के स्पर्श के मय से अपने अङ्गुली को सिकोड लेती हैं, अतः उन में मयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

पुरुषवेद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के लिए स्त्री को देखना, प्रसन्नवदन

(१) लक्ष संज्ञा—

कैठ हास्युधी लक्षवा विना कारणे लक्ष भवे, मोहनीय कर्मना उदयधी लक्षगीत पुरुषनी मोहने अतर्गत नोदपायरूप नेत्रेभ्यो जाने लक्षेभ्यो विकर भवे, रोमान्न वदु (इवात्ता उवां भवा) वजेरे विद्याभ्यो न्तु लक्ष्यु से ज्येवी अतर्भानी परिच्यति ते लक्षसंज्ञा कहेवाच से. इहलोकधी लक्ष उत्पन्न कर्षणधी अतः साक्षणवाधी, लक्षतर वस्तु देणवाधी तथा आ लोके वजेरेभां लक्षजनक वस्तुने विचार कर्षवाधी लक्षसंज्ञा उत्पन्न याच से लक्षवती (लक्षवती) यदि वनस्पतियो काशनेो स्पश कवाधी लक्ष कायेो होय तेम पीताना अवयवोने अठोये से तेधी तेभा लक्षसंज्ञानी विद्यमानता देणाय से

(३) मैथुन संज्ञा—

पुरुषवेद—मोहनीकर्षना उदयधी मैथुन भाये श्री तरह ज्येवु कथतु मुज

लापरूप आत्मनः परिणामविशेषः । अभिलाषश्चात्र—‘मदर्थमीदृश वस्तु पुष्टिकरं, यदीदं लभ्यते तदा मम हितं भविष्यती’—त्येवं विचारानुबद्धः स्वपुष्टितुष्टिकारणी-भूतप्रतिनियतवस्तुप्राप्त्यर्थमात्मनः परिणामः । रिक्तोदरत्वाद् भोजनीयवस्तु-श्रवण-दर्शन-संचिन्तनैश्चाहारसंज्ञा जायते । आहारादयः संज्ञाः एकेन्द्रियादि-पञ्चेन्द्रियपर्यन्तानां सर्वजीवानामासंसारं भवन्ति । जलाद्याहारोपजीवनाद् वनस्पत्यादीनामाहारसंज्ञा विज्ञायते ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होने वाली आहार की अभिलाषारूप आत्मा की परिणति आहारसंज्ञा कहलाती है । यहा अभिलाषा शब्द से ‘इस प्रकार की वस्तु मेरे लिए पुष्टिकर है, यह वस्तु मिले तो मेरा हित होगा’ ऐसे विचार से युक्त अपनी पुष्टि और सन्तोष के कारणभूत पदार्थ की प्राप्ति के लिए होने वाला अन्त का परिणाम ग्रहण करना चाहिए । खाली पेट होने पर भोज्य वस्तु के श्रवण दर्शन और चिन्तन से आहारसंज्ञा उत्पन्न होती है । आहार आदि संज्ञाएँ एकेन्द्रिय से लेकर पञ्चेन्द्रियपर्यन्त सभी जीवों को होती हैं, जब तक समार का अन्त नहीं होता तब तक बनी रहती हैं । जल आदि आहार पर जीवित रहने के कारण वनस्पति आदि एकेन्द्रिय जीवों में भी आहारसंज्ञा का अस्तित्व प्रतीत होता है ।

अथवा क्षुधावेदनीय कर्मना उदयधी उत्पन्न तथा वाणी आहारनी अभिलाषा-इच्छा-इत्य आत्मानि परिष्कृति ते आहारसंज्ञा कडेवाय छे, अहिं अभिलाषा शब्दधी ‘आ प्रकारनी वस्तु मारा माटे पुष्टि करनारी छे, आ वस्तु भणे तो माइ हित थये’ अथा विचारधी युक्त चेतानी पुष्टि अने सतोषना कारणभूत पदार्थनी प्राप्ति माटे विचार करनार आत्मानु परिष्कृति, अहंछु करवु लक्षणे, आली पेट होवाना कारणे भोज्य (भोजन करवा योग्य) वस्तुना श्रवण, दर्शन अने चिन्तनधी आहारसंज्ञा उत्पन्न थाय छे आहार आदि संज्ञाओ अकेन्द्रियधी आरंभने पञ्चेन्द्रिय सुधीना सर्व एवोने होय छे, अने न्या सुधी संसारने अत थतो नथी त्या सुधी ते संज्ञाओ रहे छे जस वगेरेना आहार पर एवित रहेवाना कारणे वनस्पति आदि अकेन्द्रिय एवोमा पण आहारसंज्ञानु अस्तित्व होय छे

(२) मयसंज्ञा—

(२) सनिमित्तमनिमित्त वा मयमोहनीयोदयाद् मयोद्भ्रान्तस्य मोहनीयान्तर्गतनोकपायरूपा नयनवदनविकृतरोमाश्चाभिर्मांवादिक्रियास्रष्टया स्वात्मन परिच्यतिमयसंज्ञा । इतिवस्तुत्वेन, मयवार्ताभ्रवणमीपवदभ्रनादि बन्धियुद्धया, इहलोकादिमयजनकार्यपर्यालोच्यतेन वा मयसंज्ञा ज्ञायते । इत्यस्पर्शादिमीत्या स्वापयवसंकोचनादिना लज्जालुबस्त्र्यादीनां मयसंज्ञा विज्ञायते ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

(३) पुरुषवेदोदयान्मैथुनार्थं पणितालोकनप्रसन्नवदनसंस्तम्भितगात्र

(२) मयसंज्ञा—

किसी कारण से या बिना ही कागज मयमोहनीय कर्म के उदय से मयमय पुरुषकी मोहके अन्तगत मोहपायरूप नेत्रों में और मुख में विकार होना रोमान्च होना अथि क्रियाएँ विसंज्ञा स्रष्टय है, एसी अज्ञाना की परिणति मयसंज्ञा कहलाती है, दुष्प्रज्ञा से मय उत्पन्न करने वाली बात सुनने से, मयहर वस्तु के देखने से, तथा इहलोक अथि में मयजनक वस्तुका विचार करने से मयसंज्ञा उत्पन्न होती है । स्रष्टय अथि वस्तुवर्तियों हात्र के स्पर्श के मय से अपने अवबन्धा को सिद्धोड होती हैं, अतः उनमें मयसंज्ञा की विद्यमानता प्रतीत होती है ।

(३) मैथुनसंज्ञा—

पुरुषवद-मोहनीय कर्म के उदय से मैथुन के स्थित स्त्रीको देखना, प्रसन्नवदन

(२) अथ संज्ञा—

हात् हात्पृथी अथवा बिना हात्जे अथ अथो, मोहनीय अभन्य उदयधी अथधीत पुरुषनी मोहने अतप्रत नोदपायद्वय नेत्रोभा अने अदोसमां विकार अथो शोभास अतु (हनास्र उलां अथी) अथेरे विद्यायो १२ उदयजे उ अथी अथानी परिच्यति ते अथसंज्ञा उदयथा उ इत अताधी अथ उत्पन्न अशयनारी अत सासगवाधी, अथ हर वस्तु देअवाधी तथा आ दोस्र ववेदिमां अथअनक वस्तुनो विचार अथवाधी अथसंज्ञा उत्पन्न याव उ अथलपटी (अथलपु) अथि वनस्पतियो दाधनो अथस मवाधी अथ दाभ्यो दोस्र तेम पीताना अथअथोने अथेथे उ तेधी तेभा अथसजानी विद्यमानता देजाव उ

(३) मैथुन संज्ञा—

पुरुषवेद—मोहनीकर्मना उदयधी मैथुन आगे स्त्री तरध अने उदयतु अथ

લાપરુપ આત્મનઃ પરિણામવિશેષઃ । અમિલાપશ્ચાત્ર—'મદર્થમીદૃશ વસ્તુ પુષ્ટિકાં, યદીદં લભ્યતે તદા મમ દિતં ભવિષ્યતી'—ત્યેવં વિચારાનુવદ્ધઃ સ્વપુષ્ટિતુષ્ટિકારણી-
 મૂતપ્રતિનિયતવસ્તુપ્રાપ્ત્યર્થમાત્મનઃ પરિણામઃ । રિક્તોદરત્વાદ્ ભોજનીયવસ્તુ-
 શ્રવણ-દર્શન-સંચિન્તનૈશ્ચાહારસજ્ઞા જાયતે । આહારાદયઃ સજ્ઞાઃ એકેન્દ્રિયાદિ-
 પચ્ચેન્દ્રિયપર્યન્તાનાં સર્વજીવાનામાસંસારં ભવન્તિ । જલાદ્યાહારોપજીવનાદ્
 વનસ્પત્યાદીનામાહારસજ્ઞા વિજ્ઞાયતે ।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મ કે ઉદય સે ઉપન્ન હોને વાળી આહાર કી અમિલાપારુપ આત્મા કી પરિણતિ આહારસજ્ઞા કહલાતી હૈ । યહા અમિલાષા શ્વદ સે 'ઇસ પ્રકાર કી વસ્તુ મેરે લિષ્ પુષ્ટિકર હૈ, યહ વસ્તુ મિલે તો મેગ હિત્ત હોગા' એસે વિચાર સે યુક્ત અપની પુષ્ટિ ઓર સન્તોષ કે કારણમૂત પદાર્થ કી પ્રાપ્તિ કે લિષ્ હોને વાળ અમા કા પરિણામ પ્રહણ કરના ચાહિષ । ઁલાી પેટ હોને પર ભોજ્ય વસ્તુ કે શ્રવણ દર્શન ઓર ચિન્તન સે આહારસજ્ઞા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । આહાર આદિ સજ્ઞાષ્ એકેન્દ્રિય સે લેકર પચ્ચેન્દ્રિયપર્યન્ત સમી જીવો કો હોતી હૈ, જવ તક સમાર કા અન્ત નહીં હોતા તવ તક વની રહતી હૈ । જલ આદિ આહાર પર જીવિત રહને કે કારણ વન-સ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય જીવો મેં મી આહારસજ્ઞા કા અસ્તિત્વ પ્રતીત હોતા હૈ ।

અથવા ક્ષુધાવેદનીય કર્મના ઉદયથી ઉત્પન્ન થવા વાળી આહારની અમિલાપા-
 રુપ-સ્વરૂપ આત્માની પરિણતિ તે આહારસજ્ઞા કહેવાય છે, અહિં અમિલાષા
 શબ્દથી 'આ પ્રકારની વસ્તુ મારા માટે પુષ્ટિ કરનારી છે, આ વસ્તુ મળે તો
 મારૂ હિત થશે' એવા વિચારથી યુક્ત ચોતાની પુષ્ટિ અને સતોષના કારણમૂત
 પદાર્થની પ્રાપ્તિ માટે વિચાર કરનાર આત્માનુ પરિણામ, ગ્રહણ કરવુ નેઈએ,
 ખાલી પેટ હોવાના કારણે ભોજ્ય (ભોજન કરવા યોગ્ય) વસ્તુના શ્રવણ, દર્શન
 અને ચિન્તનથી આહારસજ્ઞા ઉત્પન્ન થાય છે આહાર આદિ સજ્ઞાઓ એકેન્દ્રિયથી
 આરભીને પચેન્દ્રિય સુધીના સર્વ ભવોને હોય છે, અને ન્યા સુધી સસારનો
 અત થતો નથી ત્યા સુધી તે સજ્ઞાઓ રહે છે જલ વગેરેના આહાર પર ભવિત
 રહેવાના કારણે વનસ્પતિ આદિ એકેન્દ્રિય ભવોમા પણ આહારસજ્ઞાનુ અસ્તિત્વ
 દેખાય છે

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेन च परिग्रहसंज्ञा ज्ञायते ।
विस्वादिबन्धनमयीनां स्वप्नैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा—

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् बीजस्य जात्यादिमद्वन्निता कर्तव्याकर्तव्य-
विवेकापहारिका स्वपराप्रोतिरूपप्रवृत्तनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा—

(६) मानमोहनीयोदयाद् अहंकाररूपा आत्मनो विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।
देवगुरुभर्मादीनां महतामनादरणादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सचित्त आदि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से, और परिग्रह का संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है। चिन्त (बेच) आदि वस्तुवर्तियों अपने पत्तों से फूल फल बगलह को रोक लेती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है।

(५) क्रोधसंज्ञा—

क्रोधमोहनीय के उदय से बीज में अतिमद अग्नि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वप्न की अग्नीतिरूप, तथा बन्धनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है।

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय के उदय से अहंकाररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है। देव गुरु भर्मा आदि बड़ाका अनादर आदि करने से मानसंज्ञा उत्पन्न होती है।

कहेवाक्य से सचित्त आदि वस्तुओंको परिग्रह देखावाणी, परिग्रहको विचार करवाणी अने वस्तुओंको संग्रह करवाणी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न वाक्य से विद्व (वीदी) आदि वस्तुवर्तियों पौतानां फलदात्री कुल-इव नयेरेने दात्री से से तेषां वस्तुवर्तियों परिग्रहसंज्ञा देखाव से

(५) क्रोधसंज्ञा—

क्रोधमोहनीय कर्मना उदयशी, अपने अतिमद नयेरेशी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नाश करवावाणी स्व-परनी अग्नीतिरूप तथा बन्धनरूप आत्मानो विभावपरिणति से क्रोधसंज्ञा कहेवाक्य से

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय कर्मना उदयशी अहंकाररूप आत्मानो विभावपरिणति मानसंज्ञा कहेवाक्य से देव, गुरु भर्मा आदि मोहाजोने अनादर नयेरे करवाणी मानसंज्ञा उत्पन्न पडे से

शैथिल्योरुक्मपनादिक्रियारूपा आत्मनः परिणतिर्मैथुनसंज्ञा । रुधिरमांसोपचयेन, स्त्रीकथाश्रवणादिजनितमत्प्या, मैथुनचिन्तनेन च मैथुनसंज्ञा जायते । कुरुवकादिवनस्पतीनां कमनीयकामिनीभुजलतावगूहन-चरणाघात-कटाक्षविक्षेपादिभ्यः प्रसूनपल्लवादिप्रसवदर्शनान्मैथुनसंज्ञा विज्ञायते ।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

(४) लोभमोहनीयोदयाद् धर्मसाधनव्यतिरिक्त-सचित्ताऽचित्तमिश्र-वस्तुपादानादिमूर्च्छारूपा आत्मनः परिणतिः परिग्रहसंज्ञा । सचित्तादिवस्तु-

होना, शरीर का स्तम्भित हो जाना, तथा उस में शिथिलता पैदा होना उरु (घुटनके नीचेका भाग) आदि का कोपना आदि क्रियारूप आत्मा की परिणति को मैथुनसंज्ञा कहते हैं । रक्त और मांस की अधिकता से, स्त्रीकथा आदि के श्रवण से उत्पन्न हुई बुद्धि से, और मैथुन का विचार करने से मैथुनसंज्ञा उत्पन्न होती है । कुरुवक आदि वनस्पतियों में सुन्दरी कामिनी की भुजाओं के आच्छिन्न से, चरणाघात से, तथा कटाक्षपात आदि से फूल, पत्ता आदि उत्पन्न होते हैं, अतः वनस्पति में मैथुनसंज्ञा का अस्तित्व सिद्ध होता है ।

(४) परिग्रहसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से धर्म के उपकरणों के अतिरिक्त दूसरे सचित्त अचित्त और मिश्र पदार्थों के ग्रहण आदि मूर्च्छारूप आत्मा की परिणति परिग्रहसंज्ञा कहलाती है ।

यद्यु, शरीरतु स्तम्भित यर्ध वयु, तथा तेमा शिथिलता उत्पन्न यवी, नग वगेरेतु कपयु आदि क्रियायु आत्मानि परिष्कृतिने मैथुनसंज्ञा कहे छे रक्त (बोही) अने मांसनी अधिकताथी, स्त्रीकथा वगेरे साक्षणवाथी उत्पन्न यथेक्षी बुद्धिथी, अने मैथुनने विचार करवाथी मैथुनसंज्ञा उत्पन्न थाय छे कुरयक (अक नततु वृक्ष) आदि वनस्पतिमा सुदरी कामिनीना हाथना आसिगन थता, अरुणाघातथी तथा कटाक्षपात आदिथी कुल, पत्ता आदि उत्पन्न थाय छे, आ कारणुथी वनस्पतिमा मैथुनसंज्ञानु अस्तित्व सिद्ध थाय छे

(४) परिग्रह संज्ञा—

लोभमोहनीयना उदयथी धर्मना उपकरणे सिवाय भीन सचित्त, अचित्त अने मिश्र पदार्थेतु अहस्य करवु वगेरे मूर्च्छायु आत्मानि परिष्कृति ते परिग्रहसंज्ञा

परिग्रहदर्शनेन, परिग्रहचिन्तनेन, परिग्रहसंग्रहेण च परिग्रहसंज्ञा ज्ञायते ।
 विन्वादिबनस्पतीनां स्वपत्रैः पुष्पफलाच्छादनदर्शनात् परिग्रहसंज्ञा विज्ञायते ।

(५) क्रोधसंज्ञा—

(५) क्रोधमोहनीयोदयाद् जीवस्य आत्यादिमद्वञ्जिता कर्तव्याकर्तव्य-
 विवेकापहारिक्य स्वपराप्रीतिरूपप्रज्वलनात्मिका विभावपरिणतिः क्रोधसंज्ञा ।

(६) मानसंज्ञा—

(६) मानमोहनीयोदयाद् अहंकाररूपा आत्मना विभावपरिणतिर्मानसंज्ञा ।
 देवगुरुधर्मादीनां महतामनादग्नादिना मानसंज्ञा विज्ञायते ।

सञ्चित्वादि वस्तुओं का परिग्रह देखने से परिग्रह का विचार करने से और परिग्रहका संग्रह करने से परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न होती है । विन्व (विन्) वादि बनस्पतियों अथवा पत्तों से फूल फल कोरुह को रोक लेती हैं इस से उनमें परिग्रहसंज्ञा का होना प्रतीत होता है ।

(५) क्रोधसंज्ञा—

क्रोधमोहनीय के उदय से जीव में आतिमद आदि से उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्य का विवेक नष्ट कर देने वाली स्वपर की अप्रीतिरूप, तथा प्रज्वलनरूप आत्मा की विभावपरिणति क्रोधसंज्ञा कहलाती है ।

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय के उदय से अहंकाररूप आत्मा की विभावपरिणति मानसंज्ञा कहलाती है । देव गुरु धर्म आदि बड़ाका अनादर आदि कर्म से मानसंज्ञा उत्पन्न होती है ।

कहेवाय छे सञ्चित्वादि वस्तुओंको परिग्रह देखावाधी परिग्रहको विचार करवाधी अने परिग्रहको संग्रह करवाधी परिग्रहसंज्ञा उत्पन्न थाय छे विन्व (वीन्) वादि वनस्पतियों पीताना पादद्वयी कुल-कुल वनेशने बांधी रे छे तेही वनस्पतिमां परिग्रहसंज्ञा देखाय छे

(५) क्रोधसंज्ञा—

क्रोधमोहनीय कर्मना उदयधी, अपने आतिमद वनेशधी उत्पन्न, तथा कर्तव्य अकर्तव्यको विवेक नाश करवावाणी स्व-परनी अप्रीतिरूप तथा प्रज्वलनरूप आत्मानी विभावपरिणति ते क्रोधसंज्ञा कहेवाय छे

(६) मानसंज्ञा—

मानमोहनीय कर्मना उदयधी अहंकाररूप आत्मानी विभावपरिणति मानसंज्ञा कहेवाय छे देव, गुरु धर्म आदि मोटाओंको अनादर वनेश करवाधी मानसंज्ञा उत्पन्न पड़े छे

(७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा । परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाक्कायव्यापारेण सा विज्ञायते ।

(८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सच्चित्तादिवस्तुगृद्धिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा । आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते ।

(९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

(७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है । दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है ।

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सच्चित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है । आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है ।

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

(७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय कर्मना उदयधी लवनी कपटरूप विभावपरिणति माया-संज्ञा कहेवाय छे भीजने ठगवानी छञ्छाधी, मोहजनक मन, वचन अने कायाना व्यापारधी तेनी प्रतीति थाय छे

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय कर्मना उदयधी सच्चित्त आदि वस्तुओंमां आसक्तिरूप लवनी विभावपरिणति ते लोभसंज्ञा कहेवाय छे आरम्भ-परिग्रह आदिनी प्रवृत्तिधी लोभसंज्ञानो पतो लागे छे

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमधी अने मोहनीयकर्मना उदयधी कुबुद्धिजनित

स्यात्मानो विभावपरिणतिर्लोकसंज्ञा । यथा—“अपुत्रस्य गतिर्नास्ती”-त्यादि ।

(१०) ओषसंज्ञा—

(१०) ज्ञानावरणीयात्पक्षपापशमसमुद्भूता, अभ्यक्तोपयोगरूपा बीजस्य परिणतिः ओषसंज्ञा । सा लक्षादीनां प्रतानारोहणादिना ज्ञायते ।

(११) सुखसंज्ञा—

(११) संसारिणां सात्तावेदनीयोद्भवाद् सकलेन्द्रियाणामनुकूलतया ज्ञायमाना आत्मनः परिणतिः सुखसंज्ञा ।

वर्कुरूप आत्मा की विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहनाती है यथा—‘निपूत को सदति नहीं मिलती’ आदि ।

(१०) ओषसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्म के अथ्य क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाली तथा अभ्यक्त (अप्रकट) उपयोगरूप बीज का विभावपरिणमन ओषसंज्ञा कहलाती है । छटा वगैरह का मंडप पर बहने आदि से उसका ज्ञान होता है

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी जीवोंको सात्तावेदनीय के अथ से सब इन्द्रियों के अनुकूल प्रतीत होने वाली आत्मा की एक विशिष्ट परिणतिको सुखसंज्ञा कहते हैं ।

वर्कुरूप आत्मान्नी विभावपरिणति लोकसंज्ञा कहलाय छ वेदोः अपुत्रियाने सङ्गति भवती नशी

(१०) ओषसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना अथ्य क्षयोपशमशी उत्पन्न बनारी अने अप्रकट उपयोग रूप लभनु विभावपरिणमन ते ओषसंज्ञा कहलाय छ वेदोः अपुत्रियाने मंडप उपर अक्षु वनेरक्षी तेनु ज्ञान थाय छ

(११) सुखसंज्ञा—

संसारी लोकोने सात्तावेदनीयना अथशी सब इन्द्रियोंको अनुकूलतया ज्ञान करवनारी आत्मान्नी ओष संविशिष्ट परिणतिने सुखसंज्ञा कहें छ

(७) मायासंज्ञा—

(७) मायामोहनीयोदयात् कपटलक्षणा प्रवृत्तिर्जीवस्य विभावपरिणतिर्मायासंज्ञा । परवञ्चनेच्छया व्यामोहोत्पादकमनोवाकायव्यापारेण सा विज्ञायते ।

(८) लोभसंज्ञा—

(८) लोभमोहनीयोदयेन सचित्तादिवस्तुगृह्णिरूपा जीवस्य विभावपरिणतिर्लोभसंज्ञा । आरम्भपरिग्रहादिप्रवृत्त्या लोभसंज्ञा विज्ञायते ।

(९) लोकसंज्ञा—

(९) ज्ञानावरणीयक्षयोपशमेन मोहनीयकर्मोदयेन च कुबुद्धिजनिततर्क

(७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय के उदय से जीव को कपटरूप विभावपरिणति मायासंज्ञा कहलाती है । दूसरे को ठगने की इच्छा से मोहजनक मन, वचन और काय के व्यापार से उस की प्रतीति होती है ।

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय के उदय से सचित्त आदि वस्तुओं में आसक्तिरूप जीवकी विभावपरिणति लोभसंज्ञा कहलाती है । आरम्भ परिग्रह आदि की प्रवृत्ति से लोभसंज्ञा का पता चलता है ।

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरण कर्म के क्षयोपशम से और मोहनीय कर्म के उदय से कुबुद्धिजनित

(७) मायासंज्ञा—

मायामोहनीय कर्मना उदयथी एवनी कपटरूप विभावपरिणति माया-संज्ञा कहेवाय छे भीजने ठगवानी इच्छाथी, मोहजनक मन, वचन अने कायाना व्यापारथी तेनी प्रतीति थाय छे

(८) लोभसंज्ञा—

लोभमोहनीय कर्मना उदयथी सचित्त आदि वस्तुओंमा आसक्तिरूप एवनी विभावपरिणति ते लोभसंज्ञा कहेवाय छे आरम्भ-परिग्रह आदिनी प्रवृत्तिथी लोभसंज्ञानो पता लागे छे,

(९) लोकसंज्ञा—

ज्ञानावरणीय कर्मना क्षयोपशमथी अने मोहनीयकर्मना उदयथी कुबुद्धिजनित

विचित्रित्वासांज्ञा । यथा दानादिधर्मस्य फलं प्रति सन्नयः । सा द्विधा-द्वयतः, स्वतन्त्रम् । 'द्विविधतिपरिग्रहसहनद्वयधर्म्यकेशोस्तुञ्जनादिष्वेष्टसहनस्य फलं भविष्यति न वे'-तिरूपा देवतः । 'परलोकादि सम्यं न वे'-तिरूपा, सर्वज्ञप्ररूपितजीवादितत्त्वं यथार्थं न वे'-त्यादिरूपा वा सर्वतः ।

(१५) श्लोकसंज्ञा—

(१५) मोहनीयकर्मोद्दयादिष्टवियोगान्निता विमलाप-वैमनस्वरूपा आत्मन परिष्पतिः श्लोकसंज्ञा । सा चाक्रन्दनादिना ज्ञायते ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

(१६) मोहनीयस्योपशमनेन सर्वविरति-देशविरतिसंज्ञा कर्मसम्यजनक-

संज्ञा क्लृप्तता है । जैसे-दान धर्म आदि के फल में सदेह होना । यह सज्ञा दो प्रकार की है-देवा से और सब से । बाईस फील्डों के सहने का, ब्रह्मचर्य पान्थने का केशलोच आदि केशा सहने का फल मिलेगा या नहीं ? इस प्रकार का सहाय होना देवत विचित्रित्वासांज्ञा है । 'वास्तव में परलोक है या नहीं सर्वज्ञ के द्वारा प्रकृति भव आदि तत्त्व बर्णार्थ हैं या नहीं ' ' इस प्रकार का संवाय सर्वत विचित्रित्वासांज्ञा है ।

(१५) श्लोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से इष्टवियोग से उत्पन्न होनेवाली विषय और विमनस्कतारूप आत्मा की परिणति वाक्यसंज्ञा क्लृप्तता है ।

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के क्षयोत्तराम से कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरति

विचित्रित्वा सांज्ञा क्लृप्तता से जैसे-दान धर्म आदिना इहार्थ सदेह यत्न आ सज्ञा दो प्रकारकी संज्ञा से-(१) देशकी (२) सर्वकी आधी परिष्पित सदन कर्तु ते, ब्रह्मचर्य पालन कर्तु ते, केशानु बोजन कर्तु पत्रेरे क्लेश सदन कर्तवानु इह भोग्ये के नहि । आ प्रकारने सज्ञा ते देशकी विचित्रित्वासांज्ञा से वास्तव्यमा परलोक से के नहि सर्वज्ञप्ररूप प्ररूपित लुभ आदि तत्त्वो यथार्थ से के नहि आ प्रकारने सज्ञा ते सबकी विचित्रित्वासांज्ञा से

(१५) श्लोकसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयने लधि, क्लृप्तवियोगी उत्पन्न तथा वाली विषय जने विमनस्कता (आकृष्ट विच) इय आत्माना परिष्पति श्लोकसंज्ञा क्लृप्तता से

(१६) धर्मसंज्ञा—

मोहनीयकर्मना क्षयोत्तरामधी कर्मक्षयजनक सर्वविरति तथा देशविरतिरूप

(१२) दुःखसंज्ञा—

(१२) संसारिणामसातवेदनीयोदयात् सकलेन्द्रियाणा प्रतिकूलतया ज्ञायमाना विविधतापानुभवरूपा जीवस्य परिणतिर्दुःखसंज्ञा ।

(१३) मोहसंज्ञा—

(१३) मोहनीयकर्मोदयाद् मिथ्यादर्शनरूपा ज्ञानादिगुणरोधकसकलपापस्थानहेतुरात्मनो विभावपरिणतिर्मोहसंज्ञा । कुदेवकुगुरुकुधर्मादौ प्रवृत्त्या मोहसंज्ञा चिज्ञायते ।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

(१४) मोहनीयोदयाद् ज्ञानावरणीयोदयाच्च सशयरूपा जीवस्य परिणति—

(१२) दुःखसंज्ञा—

ससारी जीवों को असातावेदनीय के उदय से सब इन्द्रियों के प्रतिकूल प्रतीत होने वाली, विविध प्रकार के सतापों का अनुभवरूप जीव की परिणति दुःखसंज्ञा कहलाती है ।

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्म के उदय से मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणों का निषेध करने वाली, समस्त पापस्थानकों का कारणरूप आत्मा की विभावपरिणति मोहसंज्ञा है । कुदेव कुगुरु और कुधर्म आदि में प्रवृत्ति होने से मोहसंज्ञा का ज्ञान होता है ।

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय और ज्ञानावरण कर्म के उदय से सशयरूप आत्मा का परिणमन विचिकित्सा—

(१२) दुःखसंज्ञा—

ससारी जीवों को असातावेदनीयता उदयशी सर्व इन्द्रियोंमा प्रतिकूलतानु भाव करवावाणी, विविध प्रकारना सतापोंना अनुभवरूप जीवनी परिणति ते दुःखसंज्ञा कहोवाय छे

(१३) मोहसंज्ञा—

मोहनीय कर्मना उदयशी मिथ्यादर्शनरूप, तथा ज्ञानादि गुणोंना निषेध करवावाणी, समस्त पापस्थानना कारणरूप आत्माना विभावपरिणति ते मोहसंज्ञा छे कुदेव, कुगुरु अने कुधर्म आदिमा प्रवृत्ति होवाना कारणे मोहसंज्ञानु ज्ञान थाय छे

(१४) विचिकित्सासंज्ञा—

मोहनीय अने ज्ञानावरणीय कर्मना उदयशी सशयरूप आत्मानु परिणमन ते

(२) श्रुतज्ञानम्—

श्रुतम्=श्रुतिः श्रवणं ज्ञानविशेषः । तच्च कीदृशम् ? उच्यते—श्रवणस्य श्रवणेन, माषपादिना वा यज्ज्ञानस्यत्वघटे सदैव श्रुतम् ।

अथ श्रुतशब्देन ज्ञानं शब्दते, ज्ञानमभेदप्रकृत्यान्त'पावित्वात् । न तु श्रूयते इति व्युत्पत्त्या श्रुतशब्दः । लम्बिरूपे मतिज्ञाने सति यथात्—श्रुतज्ञान-स्यत्वघटे, न तु मतिज्ञानाभावे, अतो मतिज्ञानं कारणं श्रुतज्ञानस्य ।

ननु मतिज्ञानमथ श्रुतज्ञानं सपघटे यथा—मृचिचैत्र घटः, सन्तुरेव पटः

(२) श्रुतज्ञान—

श्रुति या श्रवण (सुनना), यह एक प्रकार का ज्ञान कहलाता है । शब्द के श्रवण से या माषण आदि से वाच्य-वाचकभाव सम्बन्ध के अनुसार जो पदार्थ का ज्ञान होता है उसे श्रुतज्ञान कहते हैं ।

यहाँ श्रुत शब्द से ज्ञान का प्रश्न किया जाता है, क्या कि वह ज्ञान के प्रमेयों के अन्तर्गत है, किन्तु श्रूयते' इस व्युत्पत्ति से वाच्यार्थक श्रुत-शब्द नहीं है । लम्बिरूप मतिज्ञान के होने पर मात्रमें श्रुतज्ञान उत्पन्न होता है, मतिज्ञान के अभाव में नहीं होता, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का कारण है ।

उक्ता—मतिज्ञान ही श्रुतज्ञानरूप में परिणत हो जाता है जैसे मिट्टी बटकर में फूट जाती है, और तन्नु पट (बज) रूप में पड़स जाते हैं वैसे रिवति में भगवान्ने श्रुतज्ञान का सूक्ष्म प्रहण किम प्रयोजन से किया है ।

(२) अज्ञान—

श्रुति अथवा श्रवण-सांभगवात्स्य कोक प्रकारनु ज्ञान ते श्रुत-ज्ञान कहेष्यते । श्रुत-ज्ञान केषु उपाय ते ? शब्दना सांभगवाथी अथवा श्रवण आदिथी, वाच्य-वाचक भाव सत्त्व प्रभावे जे पदाथनु ज्ञान वाय ते तेने श्रुतज्ञान कहेते ।

अदि श्रुत-शब्दथी ज्ञान अकल करी शक्यते । केमके ते ज्ञानना प्रमेयानी अदर ते परतु श्रूयते आ व्युत्पत्तिथी शब्दाथक श्रुत-शब्द नहीं । लम्बिरूप मतिज्ञान यथा पथी श्रुतज्ञान उत्पन्न वाय ते मतिज्ञानना अभावमां यनु नहीं ते शरवथी मतिज्ञान ते श्रुतज्ञाननु शरवते ।

श कौ—मतिज्ञान व श्रुतज्ञानरूपमा परिणत यथं ज्ञान ते जेभके भाटी बट रूपमां करी जाय ते जने तन्नु पटरूपमा अदलथं जाय ते । अवी रिवतिमा अज्ञानने श्रुतज्ञाननु अदु अकल श प्रभाजनयां कर्त ?

सर्वविरतिदेशविरतिरूपाऽऽत्मनः स्वभावपरिणतिः धर्मसंज्ञा । सा जीवरक्षणादि-
व्यापारेण ज्ञायते ।

ज्ञानसंज्ञाभेदाः—

ज्ञानसंज्ञा तु मतिश्रुतादिभेदात् पञ्चधा—(१) मतिज्ञानं, (२) श्रुतज्ञानं,
(३) अवधिज्ञानं, (४) मनःपर्ययज्ञानं, केवलज्ञानं, चेति ।

(१) मतिज्ञानम्—

मननं मतिरवबोधः । मतिश्चासौ ज्ञानं च मतिज्ञानम् । अत्र ज्ञानशब्दः
सामान्यज्ञानवाचकः । इन्द्रिय-नोइन्द्रियजन्यं ज्ञानं मतिर्ज्ञानविशेषः, अतः सामान्य-
विशेषयोर्ज्ञानयोः सामानाधिकरण्यम् ।

रूप आत्मा की स्वभावपरिणति को धर्मसंज्ञा कहते हैं । जीवरक्षा आदि व्यापारों
से उसका ज्ञान होता है ।

ज्ञानसंज्ञा के भेद

मति, श्रुत आदिके भेद से ज्ञानसंज्ञा पाच प्रकार की है । वह इस प्रकार—
(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, और (५) केवलज्ञान ।

(१) मतिज्ञान

मनन करना मति है, अर्थात् बोध । मतिरूप ज्ञान मतिज्ञान कहलाता है । यहाँ ज्ञान
शब्द सामान्य ज्ञान का वाचक है । 'इन्द्रिय और मनसे होनेवाला ज्ञान मति है' । ऐसा अर्थ
करने से सामान्य और विशेष ज्ञानों में समानाधिकरणता हो जाती है ।

आत्मान्नी स्वभावपरिणतिने धर्मसंज्ञा कहे छे जीवरक्षा आदि व्यापारोधी तेषु
ज्ञान थाय छे

ज्ञानसंज्ञाना भेदः—

मति, श्रुत आदि भेद वडे-करी ज्ञानसंज्ञा पाच प्रकारनी कही छे ते आ
प्रमाणे छे—(१) मतिज्ञान, (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन पर्ययज्ञान, अने
(५) केवलज्ञान

(१) मतिज्ञान—

मनन करवु ते मति छे अर्थात् बोध छे, मतिरूप ज्ञान ते मतिज्ञान कहेवाय
छे अदि ज्ञान शब्द सामान्य ज्ञाननो वाचक छे 'इन्द्रिय अने मनधी उत्पन्न
ज्ञान ते मति छे' अवे। अर्थ करवाधी सामान्य अने विशेष ज्ञानोभा सामान्य
धिकरणता (समानाधिकरण्य) थर्ध वाय छे

तस्मिन् पक्षे-भ्रुतम्यभासवचनस्य ज्ञान भ्रुतज्ञानमिति पष्टोत्सुक्याः । आप्तो-रागादि-
रहितः सर्वज्ञस्तस्य वचनम्-भासवचनम् । तदर्थोऽध्यवसायरूप ज्ञानं भ्रुतज्ञानमिति ।
अध्यवसायो निर्णयः । भ्रुतज्ञानं मति शब्दस्य निमित्तकारणतया शब्देऽपि भ्रुतम्यपदेशो
भवति । ज्ञानभेदम्यवसायार्था तु भ्रुतशब्दः अन्वयार्थवाचीत्यनवेष्यम् ।

(३) अवधिज्ञानम्-

अवधिज्ञानोऽवधिज्ञानार्थं, अन्वय-अवधि विस्तृतं वस्तु धीयते-ज्ञापतेऽने-
नेत्यवधिः । अवधिज्ञानो तदज्ञानं वेति विग्रहः । विस्तृतविषयक ज्ञानमवधि-

वचन का मी प्रहण होता है । उस पक्ष में भ्रुत का अर्थात् भासवचन का ज्ञान
भ्रुतज्ञान है, ऐसा शरीररूप समाप्त होगा । अतः अर्थात् रागादिसे रहित सर्वज्ञ,
उक्त वचन भासवचन कहलाता है । अध्यवसाय अर्थात् निश्चय । ऐसा अध्यवसायरूप अर्थात्
पदार्थ का निश्चयार्थक ज्ञान भ्रुतज्ञान होता है । शब्द, भ्रुतज्ञान में निमित्त कारण है, इस
लिये शब्द मी त कहलाता है किन्तु ज्ञान-भेदकी व्यवस्था में भ्रुत-शब्द अवधि अर्थ का
वाचक है ।

(३) अवधिज्ञान-

'अवधि' का अर्थ है 'अवधि' अर्थात् मति । तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान
अवधिज्ञान को वस्तु को विस्तार से जानता है वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिरूप
ज्ञान अवधिज्ञान है, अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान । जैसे-अनुसरोपपत्तिक देव अवधिज्ञान

आप्तवचनतु प्रकृत्यु वच शब्दे उ ते पक्षमां भ्रुततु अर्थात् आप्तवचनतु ज्ञान ते
भ्रुतज्ञान उ ज्ञे प्रभाष्ये शरीररूप समाप्त यथे । आप्त अर्थात् रागादिषु रहित,
सर्वज्ञ, तेन वचन ते आप्तवचन कहेवाच उ अध्यवसाय अर्थात् निश्चय, ज्ञेवा
अध्यवसायरूप अर्थात् पदार्थतु निश्चयार्थक ज्ञान ते भ्रुतज्ञान कहेवाच उ शब्द,
भ्रुतज्ञानमां कारण उ अत्रैवा भादे शब्द पक्ष भ्रुत कहेवाच उ परतु ज्ञान-भेदनी
व्यवस्थामां भ्रुत-शब्द वाचनतु ज्ञे अर्थनि वाचक उ

(३) अवधिज्ञान-

'अवधि' का अर्थ है 'अवधि' अर्थात् मति, तात्पर्य ज्ञे उ ते-ज्ञे ज्ञान अपि
विशान्नी वस्तुज्ञाने विस्तारधी अर्थे उ ते अर्थात् ज्ञान कहेवाच उ अवधिरूप ज्ञान
अवधिज्ञान उ अर्थात् विस्तृतविषयक ज्ञान ज्ञेभे-अनुसरोपपत्तिक देव अवधि

तर्हि श्रुतज्ञानस्य पृथगुपादानं भगवता किमर्थं कृतम् ? उच्यते—दृष्टान्तद्वयमिदं विषयम्, यथा घटप्रादुर्भावे पिण्डाकारा मृत्तिका प्रणश्यति, पटोरुपत्तौ सत्यां तन्तुपुञ्जश्च, तथा श्रुतज्ञाने समुपन्ने मतिज्ञान न प्रणश्यति, उक्तञ्च भगवता—

‘जत्थ मई तत्थ सुयं, जत्थ सुय तत्थ मई’ (नन्दी)

छाया—यत्र मतिस्तत्र श्रुतं, यत्र श्रुतं तत्र मतिः ।

श्रुतस्य सद्भावे मतेर्विद्यमानता भगवताऽभिहिता, तस्मादपेक्षाकारणमेव मतिज्ञानं श्रुतज्ञानस्येति मन्तव्यम्, तथा च—मतिज्ञानपूर्वकमिन्द्रियमनोजन्यमाप्त-वचनानुसारि ज्ञान श्रुतज्ञानमिति निष्कर्षः । इति ।

‘श्रूयते यत् तच्छ्रुत’—मितिव्युत्पत्त्या श्रुतशब्देनाप्तवचनमपि दृष्टते

समाधान—ये दोनों दृष्टान्त विषय हैं, जैसे—घट प्रकट होने पर पिण्डाकार मिट्टी मिट जाती है, और जैसे पटकी उत्पत्ति होने पर तन्तुओं का पुञ्ज नष्ट हो जाता है, उस प्रकार श्रुतज्ञान उत्पन्न होने पर मतिज्ञान नष्ट नहीं होता । भगवानने कहा है—

“जहाँ मतिज्ञान है वहाँ श्रुतज्ञान है, जहाँ श्रुतज्ञान है वहाँ मतिज्ञान है ।”

श्रुतज्ञान के सद्भाव में मतिज्ञान का अस्तित्व भगवानने बतलाया है, अत एव मतिज्ञान श्रुतज्ञान का अपेक्षाकारण ही है, ऐसा मानना चाहिए । तात्पर्य यह निकलता है कि—मतिज्ञानपूर्वक इन्द्रिय और मनसे उत्पन्न होने वाला, तथा आप्तवाक्यका अनुसरण करने वाला ज्ञान श्रुतज्ञान है ।

‘जो सुनाजाय वह श्रुत है’ इस व्युत्पत्ति के अनुसार ‘श्रुत’ शब्द से आप्त

समाधान—ये अपने दृष्टान्त विषय छे, जेभके घट प्रकट थता पिण्डाकार भाटी भटी जाय छे, जेभ वस्त्रनी उत्पत्ति थतां तन्तुओंनो नष्टथो नाश पाये छे, ते प्रभाषे श्रुतज्ञान उत्पन्न थता मतिज्ञान नाश पावतु नथी भगवाने कछु छे के—

“ज्या मतिज्ञान छे त्यां श्रुतज्ञान छे, ज्या श्रुतज्ञान छे त्यां मतिज्ञान छे”

श्रुतज्ञानना सहभावमा मतिज्ञानतु अस्तित्व भगवाने भताव्यु छे जे कारण्थी मतिज्ञान, श्रुतज्ञानतु अपेक्षाकारणु न छे जेभ मानतु जेधजे, तो तात्पर्य जे नीकथु के मतिज्ञानपूर्वक, इन्द्रिय अने मनथी उत्पन्न थवावाणु, तथा आप्तवाक्यतु अनुसरणु करवावाणु ज्ञान ते श्रुतज्ञान छे

‘जे सावणवामा आवी शके ते श्रुत छे’ आ व्युत्पत्ति प्रभाषे ‘श्रुत’ शब्दथी

(४) मनःपर्ययज्ञानम्-

पर्ययनं-सर्वतः परिच्छेदनम्-अस्वोपन पर्ययः । मनसः पर्ययो मन - पर्ययाः, मनोविषयकाः, स चासौ ज्ञानं च मनःपर्ययज्ञानम् । यद्वा मनःपर्ययस्य ज्ञानं मनःपर्ययज्ञानम् ।

मनो द्विविधं द्रव्यमात्मभेदात् । तत्र द्रव्यमनो मनोवर्गणाः । संज्ञिना मनोवर्गणा पृथीवाः सत्यो मन्यमानाश्चिन्त्यमाना मात्मनोऽभिधीयते ।

तत्रेह भावमन परिच्छेदतः । भावमनसः पर्ययाच्च परेषां सार्धवृत्तीयक्षीपा-भ्यन्तरवर्तिसंज्ञिपक्षेन्द्रियाणां चिन्त्यमानविषयाभ्यवसायरूपाः । यथा-अन्याः

(४) मनाःपर्ययज्ञानम्-

पर्यय अर्थात् ज्ञानना मन को सर्वथा ज्ञानना मनाःपर्ययज्ञान है, अर्थात् मनोविषयक, सम्पूर्ण ज्ञान मनःपर्ययज्ञान कहलाता है। अथवा-मनःपर्यय (मनके पर्यय) का ज्ञान मनाःपर्ययज्ञान कहलाता है ।

मन का प्रकार का है-द्रव्य-मन और भाव-मन । मनोवर्गणाओं को द्रव्यमन करते हैं । संज्ञा और श्राय महम को हुई मनोवर्गणार्थे जब चिन्तन की जाती हैं वे भावमन कहलती हैं ।

मनःपर्यय ज्ञान के प्रकरण में भावमन ही किया जाता है । बहार्थ हीम के अन्तर्गत संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवों के द्वारा चिन्तन किये जाने वाले विषयाभ्यवसायरूप पर्ययों को मनःपर्यय ज्ञान जानता है । जैसे-कोई हमरा जीव ऐसा विचार कर-आत्मा कैसा

(४) मनाःपर्यय ज्ञानम्-

पर्यय अर्थात् ज्ञाननु, मनने ज्ञाननु ते मनाःपर्यय ज्ञान छे अर्थात्-मन विषयकनु स पूर्ण ज्ञान मनःपर्यय कहोवाय छे अथवा मन पर्ययनु ज्ञान ते मनाः-पर्ययज्ञान कहोवाय छे

मन के प्रकारना छे-(१) द्रव्यमन जने (२) भावमन मनोवृत्तवाज्जाने द्रव्य मन कहे छे जने सखी लय द्वारा प्रकृत कशब्देवी मनोवृत्तवाज्जाने अथर चिन्तन कश्यामां जावे छे तेने भावमन कहे छे

मनाःपर्यय ज्ञानना प्रकरणमा भावमन च देवामा जावे छे अथ हीमना सखी पञ्चेन्द्रिय लये द्वारा चिन्तन कश्यामा जावन विषयाभ्यवसायरूप पर्ययाने मनाःपर्यय ज्ञान ज्ञाने छे जेम हे-हेम जीवे लय जेवे विचार करे-आत्मा केवे

ज्ञानम् । यथा—अनुत्तरोपपातिका देवा अवधिज्ञानवलेन भगवन्तमापृच्छथ जीवादि-
तत्त्वस्वरूपं निर्धारयन्ति ।

यद्वा—'अवधिना ज्ञानम्' इति तृतीयासमासः । अवधिर्मर्यादा—'रूपिद्रव्याण्येव
विषयीकरोति नेतराणी'—तिव्यवस्थारूपा, तथा चायमर्थः—अरूपिद्रव्यपरिहारेण
रूपिद्रव्यमात्रविषयकं ज्ञानमवधिज्ञानमिति ।

यद्वा—अधोऽधोऽधिकं पश्यति येन तदवधिज्ञानम् । तच्च चतुर्गतिवर्तिनां
जीवानामिन्द्रियमनोनिरपेक्ष प्रतिविशिष्टक्षयोपशमनिमित्तकं रूपिद्रव्यसाक्षात्कार-
जनकं भवति । एतस्य ज्ञानस्य देव-मनुष्य-तिर्यङ्-नारका अधिकारिणः ।

के बल से भगवान् से प्रश्न पूछ कर जीवादितत्वों का स्वरूप निश्चित कर लेते हैं ।

अथवा—अवधि के साथ जो ज्ञान हो वह अवधिज्ञान कहलाता है । अवधिका
अर्थ है मर्यादा । अवधिज्ञान, रूपी द्रव्यों को ही जानता है, अरूपी को नहीं, वह
व्यवस्था ही यहाँ मर्यादा समझनी चाहिए । तात्पर्य यह हुआ कि—अरूपी द्रव्यों को
छोड़कर केवल रूपी द्रव्यों को जानने वाला ज्ञान अवधिज्ञान कहलाता है ।

अथवा—जिस ज्ञान के द्वारा नीचे नीचे अधिक जाना जाय वह अवधिज्ञान है ।
यह ज्ञान चारों गतियों के जीवों को हो सकता है । यह, सिर्फ रूपी पदार्थों को साक्षात्
जानता है, और विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होता है । देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और
नारकी, सभी इस ज्ञान के अधिकारी हैं, अर्थात् यह चारों को हो सकता है ।

ज्ञानना अण्थी भगवानने प्रश्न पूछीने अवादि तत्त्वोना निश्चय करी ले छे अथवा-
अवधिनी साथे जे ज्ञान थाय छे ते अवधिज्ञान कहेवाय छे अवधिने अर्थ छे
मर्यादा अवधिज्ञान, रूपी द्रव्योने न नाले छे, अरूपी द्रव्योने नालुतु नथी, आ
व्यवस्था न अडि मर्यादा समझवी नेछथे तात्पर्य अे थयु के अरूपी-द्रव्योने
छोडीने केवण रूपी द्रव्योने नालुवावाणु ज्ञान ते अवधिज्ञान कहेवाय छे. अथवा
जे ज्ञान द्वारा नीचे-नीचे विशेष नालुवाभा आवे, ते अवधिज्ञान छे ते ज्ञान आर
गतिओना अेवोने थछ शके छे, मात्र रूपी पदार्थोने साक्षात् नाले छे, अने विशिष्ट
क्षयोपशमथी उत्पन्न थाय छे, देव, मनुष्य, तिर्यञ्च अने नारकी, आ सर्व ते ज्ञानना
अधिकारी छे, अर्थात् अे आरेयने अवधिज्ञान थछ शके छे

तथा मनःपर्ययज्ञानी कस्यचिद् भावस्य मन सर्वतोभावन प्रत्यक्षी-
कृत्यानुमानेन बाह्य विषयमवबुध्यत- 'इदं वस्तुनेन चिन्त्यते' इति । बाह्यपदाव-
चिन्तनसमये हि बाह्यपदार्थोकारसदृशाकार मनो भवति ।

इदं मनःपर्ययज्ञान रूपिविषयत्व-सायोपशमिकत्व-प्रत्यक्षत्वादिसाम्ये-
ऽप्यवधिज्ञानाद् भिन्नं, स्वाम्यादिभेदात् । तथाहि-अवधिज्ञानमविरतसम्यग्दृष्टेरपि
भवति, तद् द्रव्यतोऽद्वेषरूपिद्रव्यविषयं, क्षेत्रतो लोकनियमम्, कामतोऽस्तीतानागता
सख्यातोऽस्तर्पिष्यवसर्पिणीविषयम्, भावतः सकलरूपिद्रव्येषु प्रवृत्तियमसंख्यात-
पर्यायविषयम् ।

मनःपर्ययज्ञान तु प्रमादरहितस्याऽऽत्मर्थापन्नतमसम्भारिणः सयतस्य
भवति । द्रव्यतः-सङ्घिपठवेन्द्रियमनोद्रव्यविषय क्षेत्रतः-समयक्षेत्रमात्रविषयम्

मनःपर्ययज्ञान अवधिज्ञान की तरह रूपी पदार्थों को विषय करता है,
क्षयोपशम से उत्पन्न होता है किन्तु अवधिज्ञान से भिन्न है क्योंकि स्वामी आदिके
भेद से दोनों में भेद है, वह इस प्रकार-अवधिज्ञान अविरतसम्यग्दृष्टि को भी
होता है, वह द्रव्यतः समस्त रूपी द्रव्या को जानता है, क्षेत्र से समस्त लोक को जानता है,
काल से असंख्यात गूढ और भावी उत्सर्पिणी एवं अवसर्पिणी को विषय करता है,
भाव से समस्त रूपी द्रव्या में से प्रत्येक द्रव्य को असंख्यात पर्यायों को जानता है ।

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त सयत को तथा आत्म आदि किसी मन्त्रि के चारु
को ही होता है । वह द्रव्य से सङ्घी पञ्चेन्द्रिय के मनोद्रव्य को, क्षेत्र से समयक्षेत्रमात्र को

मनःपर्ययज्ञान, अवधिज्ञान प्रमाद्ये रूपी पदार्थोन्ने विषय उरे उ-अन्ने उ
मनःपर्ययज्ञान क्षयोपशमभी उत्पन्न धाव उ परतु अवधिज्ञानभी ते भिन्न उ हेभके
स्वामी आदिना वेदधी ते जनेभा वेद उ ते अथ प्रमाद्ये-अवधिज्ञान अविस्त
सम्यग्दृष्टिने पञ्च धाव उ ते द्रव्यमही सर्व रूपी लोकेने अन्ने उ क्षेत्रमही अभस्त
बोहने अन्ने उ, क्षेत्रमही असंख्यात गूढ जने भावी उत्सर्पिणी अवसर्पिणीने अन्ने
उके उ भावधी अभस्त रूपी द्रव्योर्माधी प्रत्येक द्रव्यनी असंख्यात पर्यायोने अन्ने उ.

मनःपर्ययज्ञान अप्रमत्त सयतने (मुनिने) तथ आत्म आदि कोऽपि अन्विना
धारणे च धाव उ ते द्रव्यधी सती पञ्चेन्द्रियत मनोद्रव्यने, क्षेत्रमही समयक्षेत्र

કશ્ચિદેવ ચિન્તયેત્—‘આત્મા કીદશઃ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વભાવઃ, કર્મણાં કર્તા, તત્કલભોક્તા ચેત્યાદયો યે જ્ઞાનવિશેષરૂપાસ્તસ્યાત્મનઃ. પરિણામાસ્તેષાં યદ્ જ્ઞાન તન્મનઃપર્યયજ્ઞાનમ્ ।

મનઃપર્યયજ્ઞાની ચ મનઃપર્યયાનેવ પ્રત્યક્ષીકરોતિ ન તુ વાહ્યં વસ્તુ । ન ચ- ‘મનઃપર્યયજ્ઞાનિના વાહ્યં વસ્તુ ન જ્ઞાયતે’ ઇતિ વાચ્યમ્, અનુમાનતસ્તસ્ય વાહ્યવસ્તુ- જ્ઞાનસદ્ભાવાત્ । યથા—વિશિષ્ટધાયોપશમિકપ્રતિભાશાલી પ્રેક્ષાવાન્ પ્રશ્નાન્તઃ કસ્યચિદાકારેક્ષિતાદિક વિલોક્ય તદીયમનોગતં ભાવં સામર્થ્યં ચાનુમાનતો વિજાનાતિ ।

હૈ ? અરૂપી, ચેતનાસ્વરૂપ, કર્મોં કા કર્તા, કર્મફલભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્મા કે જો જ્ઞાન- વિશેષરૂપ પરિણામ હૈ, ઉન્હેં જાનના મન પર્યયજ્ઞાન હૈ । મન પર્યયજ્ઞાની જીવ, મન કે પર્યાયોં કો હી પ્રત્યક્ષ કરતા હૈ, વાહ્ય વસ્તુ કો નહીં । પરંતુ યહ કહના ઠીક નહીં હૈ કિ—મન પર્યયજ્ઞાની વાહ્ય વસ્તુઓં કો જાનતા હી નહીં હૈ । મન પર્યયજ્ઞાની કો અનુમાન સે વાહ્ય પદાર્થોં કા જ્ઞાન હોતા હૈ । જૈસે—વિશિષ્ટધાયોપશમ- જન્ય પ્રતિભા વાલા બુદ્ધિમાન્ પુરુષ કિસી કે ઇશારે યા ચેષ્ટા કો દેખકર ઉસકે મનકા ભાવ ઓર ઉસકા સામર્થ્ય અનુમાન સે જાન લેતા હૈ, ઇસી પ્રકાર મનઃપર્યયજ્ઞાની દૂસરે કે ભાવરૂપ મન કો પૂર્ણતયા પ્રત્યક્ષ કરકે અનુમાન સે વાહ્ય વસ્તુ કો જાન લેતા હૈ કિ—‘ઇસને અમુક વસ્તુ કા વિચાર કિયા હૈ’ । વાહ્ય પદાર્થોં કા વિચાર કરતે સમય ઉસી પદાર્થ કે આકાર કા મન હો જાતા હૈ ।

છે ? અરૂપી, ચેતના-સ્વરૂપ, કર્મોંનો કર્તા, કર્મફલભોક્તા, ઇત્યાદિ આત્માના જ્ઞાન વિશેષરૂપ જે પરિણામ છે, તેને જાણવા તે મન પર્યય જ્ઞાન છે

મન-પર્યય જ્ઞાની જીવ મનના પર્યાયોને જે પ્રત્યક્ષ કરે છે બહારની વસ્તુઓને નહિ પરંતુ એમ કહેવું ઠીક નથી કે—મન પર્યયજ્ઞાની બહારની વસ્તુઓને જાણતા જે નથી, મન પર્યયજ્ઞાનીઓને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓનું જ્ઞાન હોય છે જેમકે— વિશિષ્ટધાયોપશમજન્ય પ્રતિભાવાળા બુદ્ધિમાન પુરુષ કોઈના ઇશારાથી અથવા ચેષ્ટાને જોઈને તેના મનનો ભાવ અને તેનું સામર્થ્ય અનુમાનથી જાણી લે છે, એ પ્રમાણે મન પર્યયજ્ઞાની ખીજના ભાવરૂપ મનને પૂર્ણ રૂપમા પ્રત્યક્ષ કરીને અનુમાનથી બહારની વસ્તુઓને જાણી લે છે કે—“તેણે અમુક વસ્તુનો વિચાર કર્યો છે” બહારના પદાર્થોનો વિચાર કરવાના સમયે તેજ પદાર્થના આકારરૂપ મન થઈ જાય છે.

मतिज्ञानं चानेकविधम्, ईशादिभवात् । उक्तञ्च भगवता—

“ईशा अपोह बीमसा, मग्गया य गघेसणा ।

सभा सर्वे मई पभा, सध्वं आमिणिबोहियं” ॥ (नन्दी मति-
ज्ञानगाथा २७)

छाया-ईशा, अपोह विमर्शः मार्गया च गघेसणा ।

सद्वा स्पृष्टिः मतिः प्रज्ञा सर्वम् आमिनिबोधिक्म् ॥

‘आमिणिबोहियं’ इत्यनेन त्रिकालविषयकं मतिज्ञानमुच्यते तथा-चोक्तं
भगवता—“पचचिहं पाणं पण्णत् । संजहा—(१) आमिणिबोहियमाणं, (२) सुयमाणं,
(३) ओहिणाणं (४) मणपज्जवमाणं (५) केवल्लमाणं । इति (नन्दी, १)

(१) ईशा—

ईशा-पोहादयो मतिज्ञानभवेदाः । उत्र-ईहन्म्-ईशा । नाममात्यादि

यहाँ मतिज्ञान का ही प्रसङ्ग है । मतिज्ञान, ईशा आदि के क्षेत्र से बनेक प्रकार का है ।
भगवान् ने कहा है —

‘ ईशा अपोह, विमर्श, मार्गया संज्ञा, स्पृष्टि मति और प्रज्ञा, यह सब
आमिनिबोधिक् ज्ञान (मतिज्ञान) है ” (मन्वीसूत्र मतिज्ञान गाथा २७)

आमिनिबोधिक् ज्ञान का कार्य है-त्रिकालविषयक मतिज्ञान । भगवान् ने
कहा है— ‘ज्ञान पांच प्रकार का कहा गया है, वह इस प्रकार—(१) आमिनिबोधिक्ज्ञान,
(२) सुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्यवज्ञान और (५) केवलज्ञान” (नन्दी-सू १)

(१) ईशा—

ईशा अपोह आदि मतिज्ञान के क्षेत्र हैं । नाम और वास्ति आदि की विशेष

मतिज्ञानने च प्रसज्जे अतिज्ञान उक्त्वा आदि बोधेषी अनेक प्रकारेण च जगज्जाने
कण्ठे उक्ते—उक्त्वा, अपोह, विमर्शं मार्गया, अवेसणा अथा स्पृष्टि, मति, अने
प्रज्ञा अने सब आमिनिबोधिक् ज्ञान—मतिज्ञान च (नन्दीसूत्र मतिज्ञानगाथा २७)
आमिनिबोधिक् ज्ञानने अर्थं च—त्रिकालविषयक मतिज्ञान, जगज्जाने कण्ठे उक्ते—
‘ ज्ञान पांच प्रकारेण च, ते च प्रभावे (१) आमिनिबोधिक्ज्ञान (२) सुतज्ञान,
(३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्यवज्ञान अने केवलज्ञान (नन्दी सू १)

(१) ईशा—

उक्त्वा तथा अपोह अगरे मतिज्ञानना क्षेत्रे च । नाम अने वास्ति आदिनी विशेष

कालतोऽतीतानागतपल्योपमासंख्यातभागविषयम्, भावतो मनोद्रव्यगतानन्तपर्याय-
विषयकम् ।

(५) केवलज्ञानम् —

केवलम्—एकमसहायं ज्ञानावरणीयकर्मात्यन्तक्षयसमुद्भूतम्—अतीताना
गतवर्तमानयथावस्थितसकलद्रव्यगुणपर्यायविषयकमप्रतिपाति ज्ञान केवलज्ञानम् ।
अत्र ग्रन्थविस्तरभिया विरमामः ।

ज्ञानप्रसङ्गेन मत्यादिभेदपञ्चकं प्रदर्शितं, प्रकृते तु मतिज्ञानस्यैवाधिकारः ।

(अर्दाई द्वीप को), काल से पल्योपम के असख्यातवें भाग—भूत—भविष्यत् कालको और
भाव से मनोद्रव्य की अनन्त पर्यायों को विषय करता है ।

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एक ही है । उस के साथ दूसरा ज्ञान नहीं होता ।
वह असहाय है अर्थात् इन्द्रिय मन आदि किसी की सहायता की उसे अपेक्षा नहीं है ।
वह ज्ञानावरण कर्म के आत्यन्तिक क्षय से उत्पन्न होता है । अतीत, अनागत, वर्तमान काल
के समस्त द्रव्यों गुणों और पर्यायों को यथार्थरूप में जानता है, अप्रतिपाती है, अर्थात्
एकवार उत्पन्न हो कर कभी नष्ट नहीं होता । ऐसा ज्ञान केवलज्ञान कहलाता है ।
ग्रन्थविस्तार के भय से अधिक विस्तार नहीं करते ।

ज्ञान का प्रकरण होने से मतिज्ञान आदि पांच भेद बतलाये जा चुके हैं ।

मात्रने (अर्दी द्वीपने) कालथी पह्योपमना असख्यातमा लागे भूत—भविष्य कालने
अने भावथी मनोद्रव्यनी अनन्त पर्यायिने लक्ष्णे छे

(५) केवलज्ञान—

केवलज्ञान, केवल अर्थात् एकल छे तेनी साथे भीच्छु ज्ञान थतु नथी, ते
असहाय छे, अर्थात् इन्द्रिय, मन आदि कोठनी पणु सहायतानी तेने अपेक्षा नथी-
अने ते केवलज्ञान ज्ञानावरणीय कर्मना आत्यन्तिक क्षयथी उत्पन्न थाय छे केवलज्ञान
भूतकाल, भविष्यकाल अने वर्तमान कालना समस्त द्रव्ये, गुणे अने पर्यायिने
यथार्थरूपथी लक्ष्णे छे ते अप्रतिपाती छे, अर्थात् एक वार उत्पन्न थधने इरी
कोठ पणु वधत नाश पाभतु नथी, अणु ने ज्ञान ते केवलज्ञान कडेवाय छे
अथविस्तारना लयथी अधिक विस्तार अडि करता नथी

ज्ञाननु प्रकरणे लोवाथी मतिज्ञान आदि पांच भेदो जताव्या छे अडि

सामान्यज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्तायां तदनु-
गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-‘किमयं कमलनास्रस्पर्शः, माहोस्विवृ-
द्धमस्रस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘गुणास्रस्यैवार्यं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-
दित्यस्यैवार्य’-मिति निश्चयोऽन्यं भ्रमभ्रमस्पर्शमपनुवति, तस्मादयं निश्चयोऽप्योहोऽ-
पनोदमिति निगद्यते ।

(३) भीमांसा—

भीमांसा—मातृमिच्छा, मातृ-बीबादिस्वरूपं मातृमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

बीबादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्बोधेण मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपेक्ष कइसकता है । यथा-
‘यह कमलनास्रका स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर ‘यह कमलनास्र का ही स्पर्श है, क्या कि इस में अत्यन्त शीतलता है’ इस प्रकार का निश्चय होता और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का मिश्रण करदेता है, अत एव यह निश्चय अपेक्ष अपाय और अपमोह भी कइसकता है ।

(३) विमर्श-

बीबादि के स्वरूप का ज्ञान की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गणा-

बीबादि पदार्थों के यथावत् स्वरूप का अभेकण करना मार्गणा है ।

सामान्य ज्ञान तथा पक्षी चिरीयनेो निश्चय करवा भट्टे विचारणा कर्ता पक्षी तेन शुषु-दोषनी विचारणाधी उत्पन्न निश्चय तेने अपिद्ध ठडे छे अम- आ कमलना नाजनेो स्पर्श छे के अर्धनेो स्पर्श छे ? आ प्रकारनी विचारणा कया पक्षी नशरी इस्वामा आवे के आ स्पर्श कमलना नाजनेो अ छे केगके तेमां अत्यन्त शीतलता छे अे प्रकारनेो निश्चय धाय छे अने अे निश्चय बीबाजनेो जर्थात् सर्पना स्पर्शनेो निश्चय करी के छे तेभी ठरा आ निश्चय ते अपिद्ध, अपाय अने अपनोद पक्षु ठडेवाय छे ।

(३) विमर्श-

एव आदिना स्वरूपने बदलुवानी इच्छा ते विमर्श छे

(४) मार्गणा-

एव आदि पदार्थोना यथावत् स्वरूपतु अन्वेक्षण करतु ते मार्गणा छे

विशेषकल्पनारहितसामान्यज्ञानोत्तरं विशेषनिश्चयार्थं विचारणा-ईहा । यथा-
स्पर्शनेन्द्रियेण स्पर्शसामान्ये ज्ञाते सति, तदनु कीदृशोऽयं स्पर्शः ?, कस्याय
स्पर्शः ?, किमयं कमलनालस्पर्शः उताहो भुजङ्गमस्पर्शः? इति गाढान्धकारे चक्षुष्म-
तोऽपि विचारणा प्रवर्तते ।

(२) अपोहः—

अपोहनम्—अपोहः निश्चयः । कोऽयमपोह ? उच्यते—मतिज्ञानस्यावग्रहादि-
भेदचतुष्टये तृतीयभेदो योऽपायः स एवापोहशब्देनोच्यते । अवग्रहादिभेद-
चतुष्टयं च नन्दीसूत्रे भगवतैव प्रदर्शितमस्ति ।

कल्पना से रहित सामान्यज्ञान के पश्चात् होने वाली विचारणा ईहा कहलाती है ।
जैसे—स्पर्शनेन्द्रिय के द्वारा स्पर्शका सामान्य ज्ञान होने के पश्चात् गाढ अन्धकार होने
पर चक्षुवाले को भी यह विचारणा होती है कि यह स्पर्श कैसा है ? किसका यह
स्पर्श है ? यह कमल के नाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ? इस प्रकार की
विचारणा को ईहा कहते हैं । १।

(२) अपोह—

अपोह का अर्थ है—निश्चय । अपोह क्या है ? कहते हैं—मतिज्ञान के
अवग्रह आदि चार भेदों में तीसरा भेद जो अपाय है उसी को यहाँ 'अपोह' शब्द
द्वारा कहा है । अवग्रह आदि चार भेद नन्दीसूत्र में भगवान् ने कहे हैं ।

कल्पनाथी रहित, सामान्य ज्ञाननी पछी थया वाणी विचारणाने छडा छडे छे, नेभके-
स्पर्शनेन्द्रियना द्वारा स्पर्शानु सामान्य ज्ञान थया पछी गाढे अंधकार थाय त्तारे
नेत्रवाणाने पष्ण अे विचार थाय छे के-आ स्पर्श केने छे ? आ केले स्पर्श कथे
छे शेने स्पर्श छे ?, आ कमलना नाणने स्पर्श छे के सर्पने स्पर्श छे ?, आ
प्रकारनी विचारणा तेने छडा छडे छे

(२) अपोह—

अपोहने अर्थ छे निश्चय, अपोह अे शु छे ? छडे छे के-मतिज्ञानना अवग्रह
आदि आर लेहो पैडीने त्रीने लेह ने अपाय छे, तेने अहि 'अपोह' शब्दथी
छडेले छे अवग्रह आदि आर लेह नदीसूत्रमा भगवाने छडेला छे

सामान्यज्ञानोत्तरं कालं विशेषनिश्चयार्थं विचारणायां प्रवृत्त्यायां तदनु-
गुणदोषविचारणाजनितो निश्चयः, यथा-‘किमयं कमलनालस्पर्शः, आहोन्विद्
सुमङ्गमस्पर्शः ?’ इति विचारणायां ‘युगामस्यैवायं स्पर्शः, अत्यन्तशीतादिगुणवत्त्वा-
दित्यस्यैवायं’-मिति निश्चयोऽयं सुमङ्गमस्पर्शमपनुदति, तस्मादयं निश्चयोऽप्योहोऽ-
पनोदमिति निगद्यते ।

(३) मीमांसा—

मीमांसा-मातृमिच्छा, मातृ-जीवादिस्वरूपं मातृमिच्छा ।

(४) मार्गणा—

जीवादिपदार्थस्य यथावस्थितस्वरूपान्वेषणं मार्गणा ।

सामान्य ज्ञान के पश्चात् विशेष का निश्चय करने के लिए विचारणा प्रवृत्त
होने पर पश्चात् गुण-दोष की विचारणा से उत्पन्न निश्चय अपेक्ष कइलकता है । यथा-
‘यह कमलनाल का स्पर्श है या सर्प का स्पर्श है ?’ इस प्रकार की विचारणा होने पर “यह
कमलनाल का ही स्पर्श है, क्यों कि इस में अत्यन्त शीतलता है” इस प्रकार का
निश्चय होता और यह निश्चय अन्य का अर्थात् सर्प के स्पर्श का निराकरण करदेता है,
कत एव यह निश्चय अपेक्ष अपनाय और अपनोत्त मी कइलाता है ।

(३) विमर्श-

बीज आदि के स्वरूप का ज्ञान की इच्छा विमर्श है ।

(४) मार्गणा-

बीज आदि पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का अन्वेषण करना मार्गणा है ।

सामान्य ज्ञान तथा पछी विशेषने निश्चय करवा भाटे विचारणा यदा पछी
तेना शुद्ध-दोषनी विचारणाभी रूपन्त निश्चय तेने अपेक्ष कडे छ केम- आ
कमलना नागने स्पर्श छ के अर्थात् स्पर्श छे ? आ प्रकाशनी विचारणा यथा पछी
नकी करवाभा आये छे आ स्पर्श कमलना नागने छ छे केमके तेमां अत्यन्त
शीतलता छे आ प्रकाशने निश्चय थाय छे कने के निश्चय लीबने आधीत् सर्पना
स्पर्शने निराकरण करी छे छे, तेभी करे आ निश्चय ते अपेक्ष अथाय कने
अपनोत्त पक्ष कडेथाय छे.

(३) विमर्श-

एव आदिना स्वरूपने अनुधानी छिछा ते विमर्श छे

(४) मार्गणा-

एव आदि पदार्थोना यथार्थ स्वरूपने अन्वेषण करवा ते मार्गणा छे

(५) गवेपणा-

मार्गीणानन्तरमनुपलभ्यस्य जीवादिपदार्थस्य सर्वतः परिभाचनं-निर्णयाभि-
मुखविचारपरायणता गवेपणा ।

(६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्यज्ञानविषयीभूतम्यार्थस्य पुनर्दर्शनेन “म एवाय”-मिति जायमानं
ज्ञान संज्ञा । यथा—“स एवायमाहारकलञ्चिमान महात्मा, यो मया ज्ञाने दृष्टः” ।

(७) स्मृतिः-

अनुभूतार्थविषयक ज्ञान स्मृतिः । उद ज्ञानमतीतविषयक भवति ।
अत्रोदाहारण यथा—

(५) गवेपणा—

मार्गीणा के पश्चात् उपलब्ध न होने वाला जीवादि पदार्थों का पूरी तरह विचार
करना अर्थात् निर्णय के अभिमुख विचारपरायणता गवेपणा है ।

(६) संज्ञा-

इन्द्रियजन्य ज्ञानके विषयभूत पदार्थ का पुन दर्शन होने पर 'यह वही है'
इस प्रकार से उत्पन्न होने वाला ज्ञान संज्ञा कहलाता है । जैसे—“यह वही आहारकलञ्चि
वाले महात्मा है जिन्हे मैंने वनमें देखा था” ।

(७) स्मृति—

पहले अनुभव किये हुए पदार्थ लो विषय करनेवाला ज्ञान स्मृति कहलाता
है । स्मृतिज्ञान अतीतविषयक ही होता है । यहा एक उदाहरण है, जैसे—

(५) गवेपणा—

मार्गीणानी पछी उपलब्ध नहि थवा वाणा एवादि पदार्थानो पूरी रीते विचार
करवो अर्थात् निर्णयने अभिमुख-विचार परायणताने गवेपणा कहे छे

(६) संज्ञा—

इन्द्रियजन्य ज्ञानना विषयभूत पदार्थानु द्वी दर्शन थता “आ तेज छे”
ओ प्रकारे उत्पन्न थवा वाणु ज्ञान ते संज्ञा कहेवाय छे जेभ-“आ तेज आहारक-
लञ्चिवाणा महात्मा छे जेने जे वनमा जेया हता”

(७) स्मृति—

अथम अनुभव करेला पदार्थानो विषय करनाइ ज्ञान स्मृति कहेवाय छे स्मृति-ज्ञान
अतीत विषयनु ज, (वीती गयेला प्रस गनु ज) होय छे अही ओक उदाहरण छे, जेभके-

षेड्डया देवी हेमन्ते मगवत्समवसरन्त' मत्स्यागच्छन्ती मार्गे महारण्ये
 स्पमतिहाऽचिन जिनकल्पिनं कमपि मुनिं प्यानावस्यमासोक्य मवत्या तर्द्धनव-
 न्वनादिकं विषाय स्वप्नासादमागता राशौ सुप्ता । निद्रावस्यायां तस्याः पाणिराव-
 रमवस्त्राव् षड्भिर्मृतः शीतेन श्लियिषीबभूव । अयाऽसौ जागरिता बढीभूतं स्वहस्तं
 बिनोक्य शीतादिपरिपहपरिगत महारण्यस्य मुनिं स्मृतपती "कममहो अस्तौ
 मुनिरिदानीं बहिर्महावने शीतपरिभूतो भविष्यति" । इति कर्मणां महानिर्मा
 महापर्यवसानं प्रकार ।

षेड्डना देवी हेमन्त ऋतु में मगवान् के समवसरणसे छूटती हुई, मार्ग में
 महा-भरण्य में अपनी प्रतिज्ञा पालने वाडे किन्ही जिनकल्पी मुनि को प्यान में स्थित
 देखकर, भक्तिपूर्वक उन का वर्णन बन्दन आदि कर के अपने महल में आई और
 रात्रि में सो गई । निद्रावरणा म उस का हाथ ओढने के बल से बाहर निकल गया
 और ठंड के कारण ठर गया । रात्री को नींद छुल गई । उसने अपने हाथ को बढीभूत
 देख कर शीत परिपहो से आकृन्त महा-भरण्यवासी मुनिका स्मरण किया । कहने
 लगी-क्यो ! महानन में नगर के बाहर वह मुनि इस समय शीत से कैसा क्य पा
 रहे होंगे ! ऐसा सोच कर उसने कर्म की महानिर्मा की ।

षेड्डना देवी हेमन्त ऋतुमा मगवानना समवसरणमाधी पाडी करे त्पारे
 भाऊभां महावनभां पोतानी भविता पाठनाए, कौर्ध जेक जिनकल्पी मुनिने प्यानभा
 स्थित भेधने, लक्ष्मिपूर्वक तेना इशान, व इन वजेरे करीने पोताना भेड्डतभा भावी
 अने रात्रीजे सुधुं जर्ध निद्रावस्थाभां तेने जेक हाथ जोडवाना वरुमाधी लकार
 रही जये, अने कडी डोवाना कारवे ते हाथ करी जये, राणीनी निद्रा उठी अथ
 त्पारे तेवे पोताना हाथने करी लवाधी लड जये जेधने शीत आदि परीबडोधी
 आका-न्त, महा-वनवासी मुनि सावरी आभ्या; अने कडेना लागी हे-ज्ये ।
 महावनभा नगर लकार ते मुनि आ समवभा शीतधी हेतुं क्य पभता टये ?
 जेवे बियाए करीने कर्मनी महानिर्मा करी.

(૫) ગવેષણા—

માર્ગાણાનન્તરમનુપલભ્યમ્ય જીવાદિપદાર્થમ્ય સર્વતઃ પરિભાવનં-નિર્ણયાભિ-
મુખવિચારપરાયણતા ગવેષણા ।

(૬) સજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્યજ્ઞાનવિષયીભૂતસ્વાર્થસ્ય પુનર્દર્શનેન “ સ પ્ચાય ”-મિતિ જાયમાનં
જ્ઞાનં સજ્ઞા । યથા—“ સ પ્ચાયમાહારઋલ્લિધિમાન્ મહાત્મા, યો મયા જ્ઞાનને દષ્ટઃ ” ।

(૭) સ્મૃતિઃ—

અનુભૂતાર્થવિષયકં જ્ઞાન સ્મૃતિઃ । ઇદં જ્ઞાનમતીતવિષયક મત્તિ ।
અત્રોદાહારણં યથા—

(૫) ગવેષણા—

માર્ગાણા કે પશ્ચાત્ ઉપલબ્ધ ન હોને વાલા જીવાદિ પદાર્થો કા પૂરો તરહ વિચાર
કરના અર્થાત્ નિર્ણય કે અભિમુખ વિચારપરાયણતા ગવેષણા હૈ ।

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનકે વિષયભૂત પદાર્થ કા પુન દર્શન હોને પર ‘યહ વહી હૈ’
ઇસ પ્રકાર સે ઉત્પન્ન હોને વાલા જ્ઞાન સજ્ઞા કહલાતા હૈ । જૈસે—“યહ વહી આદારઋલ્લિધિ
વાલે મહાત્મા હૈ જિન્હે મૈને વનમેં દેસ્વા ધા” ।

(૭) સ્મૃતિ—

પહેલે અનુભવ કિયે હુણ પદાર્થ લો વિષય કરનેવાલા જ્ઞાન સ્મૃતિ કહલાતા
હૈ । સ્મૃતિજ્ઞાન અતીતવિષયક હી હોતા હૈ । યથા એક ઉદાહરણ હૈ, જૈસે—

(૫) ગવેષણા—

માર્ગાણાની પછી ઉપલબ્ધ નહિ થવા વાળા છવાદિ પદાર્થોનો પૂરી રીતે વિચાર
કરવો અર્થાત્ નિષ્પૃથને અભિમુખ-વિચાર પરાયણતાને ગવેષણા કહે છે

(૬) સંજ્ઞા—

ઇન્દ્રિયજન્ય જ્ઞાનના વિષયભૂત પદાર્થોનું ફરી દર્શન થતા “ આ તેજ છે ”
એ પ્રકારે ઉત્પન્ન થવા વાળું જ્ઞાન તે સજ્ઞા કહેવાય છે જેમ—“ આ તેજ આહારક-
લ્લિધિવાળા મહાત્મા છે જેને મે વનમા જોયા હતા ”

(૭) સ્મૃતિ—

પ્રથમ અનુભવ કરેલા પદાર્થોનો વિષય કરનારું જ્ઞાન સ્મૃતિ કહેવાય છે સ્મૃતિ-જ્ઞાન
અતીત વિષયનું જ, (વીતી ગયેલા પ્રસંગનું જ) હોય છે અહીં એક ઉદાહરણ છે, જેમકે—

सा संज्ञा किंस्वरूपा, या न मन्वकेषाम् ? इत्याकाङ्क्षायामाह—“ तज्ज्ञा ” इति । सा यथा—

“पुरत्पिमात्रो वा दिसात्रो” इत्यारभ्य—“अहोदिसात्रो वा आगत्रो अहमसि” इत्यन्तेमेवमुक्तं भवति—वर्तमानजन्मन माहू कर्म्या विधि ममापन्याय मासीदिति स्वगत्यागत्यवधिषिष्टिपूर्वादिपह्दिसाज्ञानं नास्ति संज्ञिनामपि कियतांषिद् । यथा—मन्त्रिरामवर्णितनयनो मूर्च्छित पयि पतित स्वननादिना समुत्पाप्य गृहमानीयते । अथ मूर्च्छापगमऽप्यसौ न जानाति—काहं पतितः ? , कपमुत्पापितः ? , केन कया रीत्याऽप्र समानीनोऽस्मी ?—ति । तद्वद् विशिष्टसंज्ञाया

वह संज्ञा किस प्रकारकी है जो किन्ही २ चीजों को नहीं होती । इस प्रकार की भ्रमज्ञा होने पर कहा गया है—संज्ञा—अर्थात् वह इस प्रकार—

‘पुरत्पिमात्रो वा दिसात्रो’ से लेकर ‘अहोदिसात्रो वा आगत्रो अहमसि’ तक का भाष्य यह है कि—इस वर्तमान जन्म से पहले मैं कहीं रहता था ? इस प्रकारका अपनी गति—आगति से कुछ छद्द दिशाओं का ज्ञान किन्नेक संज्ञी चीजको भी नहीं होता । जैसे—मन्त्रिण के मन्त्र से छका हुआ मूर्च्छित और रास्ते में पड़ा हुआ पुरुष स्वप्न आदि के द्वारा उठकर पर जाया जाता है, किन्तु मूर्च्छा हट जाने पर भी उसे ज्ञान नहीं होता कि—मैं कहीं गिरा था, किस प्रकार उठया गया ? कौन किस प्रकार मुझे यहाँ लाया ? इसी प्रकार विशिष्ट संज्ञा के अभाव क कारण जिन

ते संज्ञा देना प्रकृतनी छे, वे डोह-डोह लोचने नहीं होती ? या प्रभावे लक्षणा यथाथी कहु छे के—संज्ञा अर्थात् ते या प्रकार—

“पुरत्पिमात्रो वा दिसात्रो भी छानि “अहोदिसात्रो वा आगत्रो अहमसि” सुधीने अक्षय के छे के—या वस्तुमान के मधी पदेतां हु कया स्तेते छने, या प्रकारतु पितानी अति—अतिथी सुप्त छ दिशाओनु गान डेटवाक सखी लोचने पय नहीं यतु नेम भविसना देधी छडेता मूर्च्छित—नेमन स्वप्नाया अक्षय पुक्षने स्वप्नद्वारा उठानीने पिताना घेर लावनाया आवे छ परतु भुञ्जी वनरी नया पाी पय नेने गान यतु नहीं के—हु कयां पटी अथो जतो ? केनी रीते भने उदभो ? केपु केनी रीते भने अदि लभ्य ? या प्रकृतनी विशिष्ट अक्षय

(८) मतिः—

वर्तमानविषयकं ज्ञान मतिः । यथा—‘ मुनिः संयमार्थं भिक्षामटति ’ ।

(९) प्रज्ञा—

विशिष्टक्षयोपशमजन्यं प्रभूतपदार्थवर्ति यथास्थितस्वरूपनिर्णयात्मकं ज्ञान प्रज्ञा ।

आभिनिबोधिकस्वरूपस्य मतिज्ञानस्य प्रभेदा उक्ताः ।

“इहैकेषां नो संज्ञा भवती”—त्यत्र सज्ञाशब्देन मतिज्ञानान्तर्गतं स्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं भगवता नोशब्दनिर्देशेन प्रतिषेधितम्, न तु सर्वविधसंज्ञारूपं सामान्यं ज्ञानम् ।

(८) मति—

वर्तमानविषयक ज्ञान मति कहलाता है । जैसे—‘ मुनि सयम पालने के अर्थ भिक्षाके लिए भ्रमण करता है । ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशम से उत्पन्न होने वाला और प्रभूत पदार्थों के यथार्थ स्वरूप का निर्णयात्मक ज्ञान प्रज्ञा है ।

आभिनिबोधिकरूप मतिज्ञान के प्रभेद कहे गये ।

‘ कितनेक जीवोंको सज्ञा नहीं होती ’ यहाँ सज्ञा शब्द से मतिज्ञान के अन्तर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञान का भगवान् ने ‘ नो ’ शब्द का निर्देश करके निषेध किया है, किन्तु सब प्रकार की सज्ञारूप सामान्य ज्ञानका निषेध नहीं किया है ।

(८) मति—

वर्तमान विषयक ज्ञान ते मति कहेवाय छे, जेस ‘ मुनि सयम पालन भाटे भिक्षा लेवा भ्रमण करे छे ’

(९) प्रज्ञा—

विशिष्ट क्षयोपशमधी उत्पन्न थनाइ प्रभूत पदार्थोंना यथार्थ स्वरूपतु निर्णयात्मक ज्ञान ते प्रज्ञा छे

आभिनिबोधिकरूप मतिज्ञानना प्रभेद कहेवाया

‘ केटलाक एवोने सज्ञा नथी थती ’ अछि सज्ञा शब्दधी मतिज्ञानना अतर्गत स्मृतिरूप विशिष्ट ज्ञाननो लगवाने ‘ नो ’ शब्दने निर्देश करीने निषेध कथी छे परतु सर्व प्रकारनी सज्ञारूप सामान्य ज्ञाननो निषेध कथी नथी

पूर्वा, दक्षिणा, पश्चिमा, उत्तरा चेति चतस्रोः दिशाः, एषानी आग्नेयी, नैऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशाः, आसामष्टानामन्तरासा अष्टानन्तरदिशाः, मिस्त्रिवा पोडस । अयोर्ध्वम्, अक्षयेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश । द्रव्यदिगेव मज्ञापकदिकृच्छदेनाप्युच्यते ।

तथा—समुच्छ्रितमनुष्या, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, पद्मपञ्चाशदन्तरादीपमनुष्याः, इति चतुर्विधा मनुष्याः, द्विचिक्चुःपञ्चेन्द्रियभेदेन चतुर्विधास्तिर्यग्वाः,

पृथिव्यपृथेमेवायुकायमन्वान्चतुर्विधाः स्वावराः । अग्नीज-मूषवीज-पर्ववीज-सूक्ष्मवीज-मदाश्चतुर्विधा वनस्यतयः । इति मिस्त्रिवा पोडस । नरकगति-

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान अग्नेय मैरुत्य वायव्य ये चार दिशिगएँ हैं । इन भागों के बीच में भाठ अगान्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिस्त्रकर सोम्ह होती है । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अष्टादश द्रव्य-दिशाएँ होती हैं । द्रव्यदिशाको ही मज्ञापकदिशा भी कहते हैं ।

तथा—समुच्छ्रितमनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, छपन अन्तरादीप के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य । द्विन्द्रिय त्रिन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय के भेद से चार प्रकार के तिर्यग् । पृथ्वीकाय अकाय तेजस्काय और वायुकाय के भेद से चार प्रकार के स्वावर और अग्नीज मूषवीज पर्ववीज तथा

दक्षिण अग्ने उत्तर आ आर दिशाओं से अग्नि छिदान नैऋत्य अग्ने वायव्य, आ आर बिदिशाओं से आ अग्नी पश्च्यमा आठ अगान्तर दिशाओं से आ सब भणीने सोण दिशाओं थाय से तेभ उर्ध्वदिशा अग्ने अधोदिशा शामिल करवायी अष्टादश दिशाओं थाय से द्रव्यदिशाने प्रत्येकदिशा पञ्च कहे से तथा—समुच्छ्रित मनुष्य जल व अमभूमिज मनुष्य, जल व-अकर्मभूमि व मनुष्य छपन अन्तरादीपान् मनुष्य, आ आर प्रकारना मनुष्य, द्विन्द्रिय, त्रिन्द्रिय अतुसिन्द्रिय अग्ने पञ्चेन्द्रियना ओरधी आर प्रकारना तिर्यग् पृथ्वीकाय, अकाय तेजस्काय अग्ने वायुकायना ओरधी आर प्रकारना स्वावर अग्ने अग्नीज / मूषवीज पर्ववीज

अभावाज्जीवः पूर्वभवं न जानाति ।

“अण्णयरीओ वा दिसाओ” इति । यावत्यो दिशः सन्ति तत्र कस्याश्चिदेकस्या दिशः समागतोऽस्मीति स्वागमनावधिदिशं सामान्यरूपेणापि न जानन्ति कतिचन सज्जिनः, सर्वदिग्ज्ञानाभावेनान्यतरदिग्ज्ञानासम्भवादिति भावः ।

“अणुदिसाओ वा” इति । ईशानादयः कोणरूपा विदिशोऽनुदिशः । तासां मध्ये कस्याश्चिदेकस्या अनुदिशः समागतोऽस्मीति सामान्यरूपेण, तथैशान्या आग्नेय्या इत्यादि विशेषरूपेण च स्वागत्यवधिभूताया अनुदिशो ज्ञान न भवतीत्यभिप्रायः ।

अथ दिशः कति सन्ति ? उच्यते—संक्षेपतो द्रव्य-भाव-भेदेन दिशा द्विविधा ।

अपना पूर्व भव नहीं जानता ।

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जितनी दिशाए है, उनमें किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, इस प्रकार अपने आगमन की दिशा को सामान्यरूप से भी कितनेक सज़ी नहीं जानते है । क्यों कि सभी दिशाओं के जानके अभाव मे किसी एक दिशा का ज्ञान होना असम्भव ही है । ‘अणुदिशाओ वा’ ईशान वगैरह कोणरूप विदिशाओं को अनुदिशा कहते हैं । उनमें से सामान्यरूप से किसी भी एक दिशा से मैं आया हूँ, या विशेषरूप से ईशान, आग्नेय आदि विदिशा से मैं आया हूँ, ऐसा ज्ञान नहीं होता ।

प्रश्न—दिशाएँ कितनी है ?

उत्तर—संक्षेप से दिशा के दो भेद हैं—द्रव्य-दिशा, और भाव-दिशा । पूर्व,

अभावधी एव पोताना पूर्वभावने ज्ञायतो नथी

‘अण्णयरीओ वा दिसाओ’ अर्थात् जेटली दिशाओ छे, तेभाधी कोछ पणु ओक दिशाधी हु आओ छे आ प्रभाणे पोताना आगमननी दिशाने सामान्य रूपधी पणु केटलाक सज़ी ज्ञायता नथी केभके सर्व दिशाओना ज्ञानना अभावधी कोछ ओक दिशातुं ज्ञान थवु ते असंभव छे ‘अणुदिसाओ वा’ ईशान वगैरे कोछ रूप विदिशाओने अनुदिशा कहे छे तेभाधी सामान्यरूपे कोछ पणु ओक दिशाधी हु आओ छे, अथवा विशेषरूपधी ईशान आग्नेय आदि विदिशाओधी हु आओ छे ओवु ज्ञान थवु नथी

प्रश्न—दिशाओ केटली छे ?

उत्तर—संक्षेपधी दिशाना जे लेह छे —द्रव्यदिशा अने भावदिशा पूर्व, पश्चिम,

र्षा, दक्षिणा, पश्चिमा उत्तरा चेति चतस्रो दिशः, एषानी आग्नेयी, नैऋती, वायवी चेति चतस्रो विदिशः, आसामष्टानामन्तराणा अष्टानन्तरदिशः, मिश्रित्वा षोडश । अयोर्ध्वम्, अथश्वेति द्वे इति, तयोर्योगेऽष्टादश । द्रव्यदिशेषां द्वापकदिक्रम्येनाप्युच्यते ।

तथा—संमूर्च्छिममनुष्या, गर्भजकर्मभूमिमनुष्याः, गर्भजाकर्मभूमिमनुष्याः, अन्त्यश्वाकन्तरद्वीपमनुष्या, इति चतुर्विधा मनुष्या, द्विचिन्तुपञ्चेन्द्रियमेदेन चतुर्विधास्तिर्यग्जाः,

पृथिव्यपृतेजोवायुकायमदाष्कचतुर्विधाः स्थावराः । अग्नीज-पृथ्वीज-पर्वणीज-स्कन्धबीज-मदान्चतुर्विधा वनस्पतयः । इति मिश्रित्वा षोडश । नरकगति

पश्चिम, दक्षिण और उत्तर चार दिशाएँ हैं । ईशान अग्नेय नैऋत, वायव्य ये चार दिशिधारें हैं । इन आठों के बीच में आठ अन्तर दिशाएँ हैं । ये सब मिश्रकर षोडश होती हैं । इन में ऊर्ध्वदिशा और अधोदिशा शामिल कर देने से अष्टादश द्रव्य-दिशाएँ होती हैं । द्रव्यदिशाको ही प्रज्ञापकदिशा भी कहते हैं ।

तथा—संमूर्च्छिम मनुष्य गर्भज-कर्मभूमिज मनुष्य, गर्भज-अकर्मभूमिज मनुष्य, अन्त्य अन्तरद्वीपों के मनुष्य ये चार प्रकार के मनुष्य । द्विन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुर्विन्द्रिय और अन्त्येन्द्रिय के मंत्र से चार प्रकार के तिर्यग् । पृथ्वीकाय अकाय तेजस्काय और वायुकाय के मंत्र से चार प्रकार के स्थावर और अग्नीज मूलजीज, पर्वणीज तथा

दक्षिण अने उत्तर आ आर दिशाओं से अग्नि ईशान नैऋत्य अने वायव्य आ आर दिशाओं से आ अग्नी वज्रभां आठ अन्तार दिशाओं से आ सब भूमि सेज दिशाओं साथ से तेज ऊर्ध्वदिशा अने अधोदिशा शामिल करवाधी करके द्रव्य दिशाओं साथ से द्रव्यदिशाने प्रज्ञापकदिशा षड् बंध से तथा-संमूर्च्छिम मनुष्य, जल व ऊर्ध्वभूमि व मनुष्य, जल व-अकर्मभूमि व मनुष्य, अथ अन्त्येन्द्रियना मनुष्य आ आर प्रकारना मनुष्य, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय चतुर्विन्द्रिय अने अन्त्येन्द्रियना सेदधी आर प्रकारना तिर्यग्, पृथ्वीकाय, अकाय तेजस्काय अने वायुकायना सेदधी आर प्रकारना स्थावर, अने अग्नीज, मूलजीज, पर्वणीज

અભાવાઙ્ગીવઃ પૂર્વભવં ન જાનાતિ ।

“અણયરીઓ વા દિસાઓ” ઇતિ । યાવત્યો દિશઃ સન્તિ તત્ર કસ્યાશ્ચિદેકસ્યા દિશઃ સમાગતોઽસ્મીતિ મ્વાગમનાઽધિદિશં સામાન્યરૂપેણાપિ ન જાનન્તિ કતિચન સઙ્ગિનઃ, સર્વઙ્ગિજ્ઞાનાભાવેનાન્યતરદિગ્જ્ઞાનાસંભવાદિતિ ભાવઃ ।

“અણુદિસાઓ વા” ઇતિ । ઈશાનાદયઃ કોણરૂપા વિદિશોઽનુદિશઃ । તાસાં મધ્યે કસ્યાશ્ચિદેકસ્યા અનુદિશઃ સમાગતોઽસ્મીતિ સામાન્યરૂપેણ, તર્થશાન્યા આગ્રેય્યા ઇત્યાદિ વિશેષરૂપેણ ચ સ્વાગત્યવધિભૂતાયા અનુદિશો જ્ઞાનં ન ભયતી-ત્યભિપ્રાયઃ ।

અથ દિશઃ કતિ સન્તિ ? ઉન્યતે-સંક્ષેપતો દ્રવ્ય-ભાવ-ભેદેન દિશા દ્વિવિધા ।

અપના પૂર્વ ભવ નહીં જાનતા ।

‘અણયરીઓ વા દિસાઓ’ અર્થાત્ જિતનો દિશાએ હૈ, ઉનમેં કિસી મી એક દિશા સે મૈ આયા હૂં, ઇસ પ્રકાર અપને આગમન કી દિશા કો સામાન્યરૂપ સે મી કિતનેક સઙ્ગી નહીં જાનતે હૈં । ક્યો કિ સમી દિશાઓં કે જાનકે અભાવ મે કિસી એક દિશા કા જ્ઞાન હોના અસમ્ભવ હી હૈ । ‘અણુદિશાઓ વા’ ઈજ્ઞાન વગૈરહ કોગરૂપ વિદિશાઓં કો અનુદિશા કહતે હૈં । ઉનમેં સે સામાન્યરૂપ સે કિસી મી એક દિશા સે મૈ આયા હૂં, યા વિશેષરૂપ સે ઈજ્ઞાન, આગ્નેય આદિ વિદિશા સે મૈ આયા હૂં, એસા જ્ઞાન નહીં હોતા ।

પ્રશ્ન-દિશાએં કિતની હૈં ?

ઉત્તર-સંક્ષેપ સે દિશા કે દો ભેદ હૈં-દ્રવ્ય-દિશા, ઓર ભાવ-દિશા । પૂર્વ,

અભાવથી એવ પોતાના પૂર્વભવને જાણતો નથી

‘અણયરીઓ વા દિસાઓ’ અર્થાત્ જેટલી દિશાઓ છે, તેમાંથી કોઈ પણ એક દિશાથી હું આવ્યો છું આ પ્રમાણે પોતાના આગમનની દિશાને સામાન્ય રૂપથી પણ કેટલાક સઙ્ગી જાણતા નથી કેમકે સર્વ દિશાઓના જ્ઞાનના અભાવથી કોઈ એક દિશાનું જ્ઞાન થવું તે અસંભવ છે ‘અણુદિસાઓ વા’ ઈજ્ઞાન વગેરે કોઈ રૂપ વિદિશાઓને અનુદિશા કહે છે તેમાંથી સામાન્યરૂપે કોઈ પણ એક દિશાથી હું આવ્યો છું, અથવા વિશેષરૂપથી ઈજ્ઞાન આગ્નેય આદિ વિદિશાઓથી હું આવ્યો છું એવું જ્ઞાન થતું નથી

પ્રશ્ન-દિશાઓ કેટલી છે ?

ઉત્તર-સંક્ષેપથી દિશાના બે ભેદ છે.—દ્રવ્યદિશા અને ભાવદિશા પૂર્વ, પશ્ચિમ,

द्रव्यविशेषविषयकं ज्ञानं न भवत्येकेषामिति निवृत्तया-“इहमेगेसि षो सञ्जा भवइ” इत्युक्तं मगवता । भाषाविशेषविषयकं च ज्ञानं न भवत्येकेषामिति ब्रह्मतेऽनन्तरसूत्र एव-“एवमेगेसि वा वार्यं भवइ” इत्यादिना । ॥ सू २ ॥

भाषाविशेषविषयकं च ज्ञानं भवति सञ्जिनां कियतांचिदित्याह-“एवमेगेसि” इत्यादि ।

मूलम् ।

एवमेगेसि वा वार्यं भवइ-अस्ति मे आया आबवाइए, नत्पि म आया आबवाइए, के अई आसी, के वा इयो सुए इह पञ्चा मविस्तामि ॥ सू ३ ॥

(छाया)

एवमेकेषां नो ज्ञातं मयति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, नास्ति मे आत्मा औपपातिकः, कोऽहमासम्, को वा इतन्म्युन इह मेत्यं भविष्यामि ? ॥ सू० ३ ॥

चित्तक बीजा को ब्रह्मविशासम्बन्धी ज्ञान नहीं होता, इस कण्ठा से मगवानन कहा है कि-“इहमेगेसि षो सञ्जा भवइ” । भाषाविशेषविषयक ज्ञान चित्तकेको नहीं होता है, यह बात ‘एवमेगेसि वा वार्यं भवइ’ इत्यादि कण्ठे सूत्र में कही जायगी ॥ सू० २ ॥

चित्तके मञ्जी बीजाको भाषाविशेषविषयक ज्ञान नहीं होता यह कहने हैं-‘एवमेगेसि’ इत्यादि ।

मूलार्थ-किन्हीं बीजाको यह ज्ञान नहीं होता कि-मेरा आत्मा उपपत्तिक है या मेरा आत्मा उपपत्तिक नहीं है । मैं पहले कौन या कौन यहाँ से मरकर परलोक में कौन होऊँगा ? ॥ सू ३ ॥

हेऽव्यक्त लोकेने द्रव्यविशेषविषयकं ज्ञानं नथी तत्तु ज्ञे कियेकाधी लजवाने कथं ते हे-“इहमेगेसि षो सञ्जा भवइ भाषाविशेष विषयकं ज्ञानं हेऽव्यक्त लोकेने नथी ज्ञे वात एवमेगेसि वा वार्यं भवइ इत्यादि ज्ञानेना सूत्रमां कहीशु ॥ सू० २ ॥

हेऽव्यक्त सञ्जी लोकेने भाषाविशेषविषयकं ज्ञानं नथी ते कथं ते-“एवमेगेसि” इत्यादि

मूलार्थ-कौन कौन लोकेने ज्ञान नहीं है भाषा आत्मा उपपत्तिरील ते भाषा आत्मा उपपत्तिरील नहीं, हे प्रथम कौन कौन ज्ञाने कियेकाधी मूल्युनाद परलोकमां हे कौन कथं ? (हे कथं कथं ?) (सू. ३)

દેવગતિશ્ચેતિ દ્વે । સર્વયોગેષ્ટાદશ ભાવદિશઃ સન્તિ ।

અથ દિશાં વિદિશા ચ પ્રવૃત્તિઃ કુતઃ સ્થાનાદ્ભવતિ ? ઉચ્યતે—

તિર્યંગ્લોકસ્ય મધ્યભાગે રત્નપ્રમા ભૂમિ, તદુપરિ મધ્યભાગે મેરુ-
પર્વતાભ્યન્તરે દ્વૌ લઘુતરૌ પ્રતરૌ સ્ત । તદુપરિ ગોસ્તનાકારાશ્ચત્વારશ્ચત્વારઃ
પ્રદેશાઃ સન્તિ । ઈદ્દશાષ્ટપ્રદેશી ચતુષ્કોણો રુચકનામા ભાગોઽસ્તિ । તત ઇવ દિશાં
વિદિશાં ચ પ્રવૃત્તિર્ભવતિ । ઉક્તઞ્ચ—

“ તિર્યંગ્લોકસ્ય મધ્યે યો, રુચકોઽષ્ટપ્રદેશકઃ ।

દિશામનુદિશા ચૈવ, પ્રવૃત્તિર્જાયતે તતઃ ” ॥૧॥

સ્કન્ધબીજ કે મેદુ સે ચાર પ્રકાર કી વનસ્પતિ, યે સબ મિલકર સોલહ હોતે હૈ ।
તથા નરકગતિ ઓર દેવગતિ મિલકર અઠારહ પ્રકાર કી ભાવ-દિશાઈ હૈ ।

પ્રશ્ન—દિશાઓ ઓર વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કિસ સ્થાન સે હોતી હૈ ?

ઉત્તર—તિર્યંગ્લોક કે મધ્યભાગ મેં રત્નપ્રમા ભૂમિ હૈ । ડસકે ડપર મધ્યભાગ
મેં મેરુ પર્વત કે અન્દર ડો ડોટે પ્રતર હૈ । ડનકે ડપર ગાય કે સ્તન કે આકારવાલે
ચાર ચાર પ્રદેશ હૈ । ઇસા અષ્ટપ્રદેશી ચૌકોના રુચક નામક ભાગ હૈ । વહાં સે દિશાઓ
ઓર વિદિશાઓ કી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ । કહા મો હૈ—

“ તિઈં લોક કે મધ્ય મેં આઠ પ્રદેશવાલા રુચક ભાગ હૈ । ડસી સે સબ દિશાઓ
ઓર અનુદિશાઓ કી પ્રવૃત્તિ હોતી હૈ ॥ ૧ ॥ ”

તથા સ્કન્ધબીજના ભેદથી ચાર પ્રકારની વનસ્પતિ, આ સર્વ મળીને સોળ થાય છે,
તથા નરકગતિ અને દેવગતિ મળીને અઠાર પ્રકારની ભાવ-દિશાઓ છે

પ્રશ્ન—દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ કયા સ્થાનથી હોય છે ?

ઉત્તર—તિર્યંગ્લોકના મધ્ય ભાગમા રત્નપ્રમા ભૂમિ છે, તેના ઉપર મધ્ય
ભાગમા મેરુ પર્વતની અંદર નાના બે પ્રતર છે, તેના ઉપર ગાયના સ્તનના આકાર
વાળા ચાર-ચાર પ્રદેશ છે એવો આઠપ્રદેશી ચાર ખુણાવાળો ચુચક નામનો ભાગ છે,
તેનાથી દિશાઓ અને વિદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે કહ્યું પણ છે -

“તિઈં લોકના મધ્યમા આઠ પ્રદેશવાળો ચુચક ભાગ છે, ત્યાંથી સર્વ દિશાઓ
અને અનુદિશાઓની પ્રવૃત્તિ થાય છે.” ॥ ૧ ॥

“बोद्धं उवाच पञ्चसे तं ब्रह्मा-देवानां चैव पेश्यमाणं चैव” इति । (स्थानाङ्क० २ स्था० ३ उ०)

द्वयोः पपातः प्रकृत, तद्यथा-उदानां चैव नैरयिकानां चैव । इति पृथाया ।
 उपपातादागतः औपपातिकः । देवमवाद् नरकमवादा ममायमात्मा
 समागतोऽस्तीत्यर्थः । नास्ति मे आत्मा औपपातिक इति, अप्र-नगार्थस्यौपपाति
 कंऽन्वयः । ममात्मा-अनौपपातिकोऽस्तीत्यर्थः । समूर्धनमवाद् गममवाद् वा
 ममात्मा समागतोऽस्तीति माह । इममर्थं स्पष्टीकर्तुमाह-नाऽऽमासम् ? इति ।

अत्र प्रसङ्गज्ञान जन्मतत्त्वमेवाथ निरूप्यन्त—

दो प्रकार के बीजा के उपपातज्जन्म कहा गया है । वह इस प्रकार-देवके और
 नरकके ।” (स्था० २ उ ३)

उपपात से उत्पन्न होनेवाला औपपातिक कदम्बता है । तात्पर्य यह हुआ कि-मेरा
 आत्मा देवमव या नरकमव से आया है । इस प्रकार का ज्ञान सही होता ।

जाति मे आया उवाचए’ यहाँ निषेध का औपपातिक के साथ अन्वय है
 अर्थात् मेरा आत्मा औपपातिक नहीं है, ऐसा अर्थ समझना चाहिए । तात्पर्य यह है कि-
 मेरा आत्मा गममव से या समूर्धनमव से आया है । मय अर्थ को स्पष्ट करने के लिये कहा
 गया है-नै कौन वा ।

प्रसङ्ग पाकर यहाँ जन्म और जन्म के भेदा का निरूपण करत हैं—

दो प्रकारका लोकेने उपपात जन्म कहेवे छे ते आ प्रमाणे-(१) देवोने
 अने (२) नारकीअने । (स्था ० उ ३)

उपपातका रूपत यथा वरुण ते औपपातिक कहेवाय छे तात्पर्य जे धनु
 के-अथे अप्रभा देवत्वव अथवा नरकत्ववकी आन्धे छे ? आ प्रमाणे ज्ञान कर्तु नधी.

“जन्म मे आया उवाचए” अर्द्धि निषेधने औपपातिकनी जामे अन्वय छे
 अर्थात्-अथे आत्मा औपपातिक नहीं. अथे अथ समन्वये अर्थजे ता पय जे
 छे के-अथे आत्मा अर्द्धत्ववकी अथवा समूर्धनत्ववकी आन्धे छे ? आ अर्थनी
 स्पष्टता कर्तवने अथे कहेव छे के-“तु कालु कने ?”

प्रसङ्ग प्राप्त कवाधी अर्द्धि जन्म अने जन्मना भेदोनु निरूपण करे छे-

टीका ।

‘एवमेवेति’ इति, एवं वक्ष्यमाणप्रकारेण एकेषां संज्ञिनां किय-
तांचित्तं ज्ञातं—ज्ञानम् आत्मनि विषये वर्तमानातीतानागतजन्मविषयकं नो भवति—नो
समुत्पद्यते ।

किंस्वरूपं ज्ञानं नोत्पद्यते तेषाम् ? इति दर्शयति—अस्ति मे आत्मा
औपपातिक इत्यादि । औपपातिक इति । उपपत्तनम्—उपपातः, प्रादुर्भावः=
चतुर्गतिषु जन्मतो जन्मान्तरे संक्रमणम् । उपपाते भवः—औपपातिकः । मे मम
आत्मा—औपपातिको जन्मान्तरसंक्रान्तोऽस्तीति । तथा—नास्ति मे आत्मा औप-
पातिक इति, ममात्मा वर्तमानजन्मनि कर्मक्षयसमवाद् भाविजन्मान्तर-
सम्बन्धरहितोऽस्तीति । इदं ज्ञानद्वयं वर्तमानजन्मविषयकम् ।

यद्वा — उपपातः — गर्भसंमूर्च्छनलक्षणजन्मद्वयविलक्षणो जन्मविशेषः । स च
देवनारकाणां भवति । उक्तञ्च—

टीकार्थ—आगे कहे अनुसार कितनेक सञ्जी जीवोंको अपने विषय में वर्तमान
अतीत और अनागत जन्म सम्बन्धी ज्ञान नहीं होता । उन्हे किस प्रकार का ज्ञान
नहीं होता ? इस विषय में कहा गया कि—मेरा आत्मा औपपातिक है या नहीं ? अर्थात्
चार गतियों में, एक जन्म, से दूसरे जन्म में गमन करता है या वर्तमान जन्म
में कर्मों का क्षय होने से भावी जन्म के सम्बन्ध से रहित है ? ये दोनों ज्ञान वर्तमान
जन्मसम्बन्धी है ।

अथवा—उपपातका अर्थ है—गर्भजन्म और समूर्च्छनजन्म से विलक्षण एक तीसरे प्रकार
का जन्म । वह देवों और नारकों का होता है । कहा भी है—

टीकार्थ—आगण कडेवा प्रभाषे डेटलाक सञ्जी लुवोने पोताना विषयमा
वर्तमान, भूतकाल, अने भविष्यकालना जन्म सभधी संपन होतु नथी तेने कथा
प्रकारतु ज्ञान नथी होतु ते विषयमा कडे छेके—माझे आत्मा औपपातिक छेके नहि ?
अर्थात् चार गतिओमा ओक जन्मथी गीज्ज जन्ममा गमन करे छे, अथवा वर्तमान
जन्ममा कर्मोने क्षय थवाथी भावी जन्मना सभधथी रहित छे ? ते अने ज्ञान
वर्तमानजन्मसभधी छे

अथवा उपपातना अर्थ छे—गर्भजन्म अने समूर्च्छन जन्मथी विलक्षण ओक
तीज्ज प्रकारना जन्म छे, ते देवो अने नारकीलुवोने थाय छे कहुं छे के—

आध्यात्मिकपुद्गलनिमित्तकं मन्म, यथा - बीजितश्वश्रुगामादीनां शरीरेषु जायमाना कीटादयस्त्वृषशरीरान्तर्गतपुद्गलान् स्वशरीरतया परिभ्रमन्तो जायन्ते । पृथिव्यप्तेजोवायुमनस्पति-द्विभिक्षुरिन्द्रिय-गर्ममभ्यतिरिक्त-पञ्चेन्द्रियतिर्यङ्-मनुष्यत्वां संसृष्टंनजन्म भवति ।

(२) गर्भमन्म-

उत्पत्तिस्थानावस्थितानामागन्तुकृशुशोणितपुद्गलानां स्वशरीररूपेण परिपक्वकरणं मातृसूक्ताहारसपरिपुष्टिसापक्षं च गर्भमन्म । जरायुवानामष्टमानां पोतज्ञानां च गर्भमन्म भवति, जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः जरायुमाः ।

बीजित कुले और शृगाळ आदि के शरीरों में उत्पन्न होने वाले बीजे आदि उनके शरीरके अन्तर्गत पुद्गल को अपने शरीररूप में परिणत करते हैं वह आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक प्रम कहलाता है, पृथ्वीकाय अणुकाय तेजस्काय, वायुकाय, मनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय, ऋत्तुसिन्द्रिय और गर्भत्र के सिवाय पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्चो और मनुष्यो का जन्म संसृष्टन होता है ।

(२) गर्भमन्म-

उत्पत्तिस्थान में रिक्त आगन्तुक रज-बीज के पुद्गल को अपने शरीररूप में परिणत करना और माता द्वारा भोगे हुए माहार के रस से पोषण की अपेक्षा रखनेवाला गर्भमन्म होता है । जरायु, अण्डज और पोतज जीवा का जन्म गर्भम होता है, गर्भ को छेपट रखनेवाली बमके की कैली जरायु कहलाती है, उसमें उत्पन्न होने वाले

एवता कुतरा जने शिवाज आदिना शरीरिभं उत्पन्न यथा वाणा द्वीक्ष आदि तेनां शरीरनी अहर्ना पुद्गलौने पोताना शरीररूपमा परिपुत करे छे ते आध्यात्मिक पुद्गलनिमित्तक मन्म छे पृथ्वीकाय अणुकाय, तेजस्काय, वायुकाय, मनस्पतिकाय, द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय अतुसिन्द्रिय जने गल अ शिवाय पञ्चेन्द्रिय, तिर्यङ्चो जने मनु योना जन्म संसृष्टन होय छे

(२) गर्भमन्म-

उत्पत्तिस्थानमें रिक्त, आगन्तुक रज-बीजना पुद्गलौने पोताना शरीररूपमा परिपुत करवु, जने माताके इच्छा आहाराणा अधी पोषणनी अपेक्षा राजया वाणां ते गल म अहोवाय छे जरायु / अण्डज जने पोत / एवोतु वा म जल अ होय छे गलने छेपटी राजनारी यामहानी मेखी जरायु अहोवाय छे तेमा उत्पन्न यथा वाणा एव जरायु / अहोवाय छे मनुष्य, त्राय सेस लकरी

पूर्वभवसम्बन्धि - 'स्थूलशरीरपरित्यागानन्तरमन्तरालगत्या तैजस-
कार्मणशरीरमात्रेण सहागतस्य जीवस्य नवीनभवयोग्यस्थूलशरीरार्थं प्रथमं
योग्यपुद्गलानां ग्रहणं जन्म । तच्च त्रिविध-समूर्छन-गर्भो-पपातभेदात् ।

(१) समूर्छनजन्म-

मातापित्रोः सम्बन्धं विनैवोत्पत्तिस्थानावस्थितानामौदारिकपुद्गलानां
बाह्यानामाध्यात्मिकाना वा स्वशरीररूपेण जीवकर्तृकं परिणतिकरणं समूर्छनम् ।
बाह्यपुद्गलनिमित्तकं जन्म, यथा-काष्ठत्वक्पक्वफलादिपूतपद्यमानाः कीटादयो
जन्तवः काष्ठफलवर्तिनो बाह्यपुद्गलान् स्वशरीररूपेण परिणमयन्त उत्पद्यन्ते ।

पूर्वभवसम्बन्धी स्थूल शरीर का त्याग करने के अनन्तर विग्रहगतिसे तैजस
और कार्मण शरीर के साथ आया हुआ जीव नवीन भव के योग्य स्थूल शरीर के लिए
सर्व प्रथम योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वही जन्म कहलाता है ।

जन्म तीन प्रकारका है-समूर्छन, गर्भ, और उपपात ।

(१) समूर्छनजन्म-

माता-पिता के सम्बन्ध विना ही, उत्पत्तिस्थान में रहे हुए बाह्य या आध्यात्मिक
औदारिक पुद्गलोंका अपने शरीररूप से जीव द्वारा परिणत कर लेना समूर्छन जन्म कहलाता
है । काठ, त्वचा और पके फल आदि में उत्पन्न होने वाले कीड़े वगैरह जन्तु काठ या
फल आदि के बाह्य पुद्गलों को अपने शरीर के रूप में परिणत कर लेते हैं । यह बाह्य
पुद्गलनिमित्तक जन्म है,

पूर्वभवसम्बन्धी स्थूल शरीरको त्याग करीने पछी विग्रहगतिथी तैजस अने कार्मण
शरीरनी साथे आवेला एव नवा लवने योग्य स्थूल शरीर भाटे सर्वप्रथम योग्य
पुद्गलोंने ग्रहण करे छे, ते जन्म कहेवाय छे जन्म त्रय प्रकारना छे-

(१) समूर्छन (२) गर्भ, अने (३) उपपात

(१) समूर्छनजन्म-

माता-पिताना सम्बन्ध विना ज, उत्पत्तिस्थानमा रहेला गहारना अथवा
आध्यात्मिक औदारिक पुद्गलोंने, पीताना शरीररूपथी एवद्वारा परिणत करी लेवु
ते समूर्छन जन्म कहेवाय छे काष्ठ त्वचा (छाल) अने इण आदिमा उत्पन्न थवा
वाणा कीडा वगैरे जन्तु काष्ठ अथवा इण आदिमा गहारना पुद्गलोंने पीताना
शरीरना रूपमा परिणत करी ले छे ते गहारना पुद्गल निमित्तक जन्म छे

उपपातजन्य—

उपपातक्षेत्रप्राप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथम स्वशरीररूपेण परिष्कृतिकरणम् उपपातजन्यम् । यथा—देवानां नारकाणां च । तत्र देवसङ्घस्याथो यथा—प्रच्छन्नपटस्योपरिष्ठाद् देवदृश्यस्यापस्ताब् उभयोरन्तरालवर्तमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा—नरकस्थिताविसंकुटमुल्लङ्घनीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“ अहं कः—चतुर्गतिषु प्राग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा मरो

उपपातजन्य—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त ब्रह्म में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का पकड़े-पकड़ अपने शरीररूप में परिष्कृत करना उपपात—जन्य कर्मवत्ता है, देव और नारको को यह जन्म होता है । देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—प्रच्छन्न पटके ऊपर और देवदृश्य ब्रह्मके नीचे अर्थात् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप ग्रहण करता हुआ देव उत्पन्न होता है । नारको की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—नरकवर्ती जन्मन्त सकुट (सकुटे) मुल्लावाली कुमियां में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गल को वैक्रियशरीरके रूप में ग्रहण करता हुआ नारको भी उत्पन्न होता है ।

तथा— मै कौन था ? नारक गतियों में से पूर्वजन्म में मैं नारक था, तिर्यग्च वा,

(३) उपपातजन्य—

उपपात क्षेत्रमा प्राप्तिमात्र केमा निमित्त उ ज्येवा उत्पत्तिस्थानमा स्थित वैक्रिय पुद्गलौने पकड़े-पकड़ां पित्तान्ना शरीररूपमा परिष्कृत कस्तु ते उपपातजन्य कर्मवत्ता उ । देव जने नारकील्लवोने ज्ञा जन्म होय उ ।

देवनी उत्पत्ति ज्ञा प्रमाद्ये वाच उः—प्रच्छन्नपट—उत्तरीय वस्तुता उपर जने देवदृश्य वस्तुता नीचे, जोटले के जनेनी वस्तुता वर्तमान पुद्गलौने वैक्रियशरीररूप रूपमा पकड़ करवा वहा देव उत्पन्न वाच उ । नारकील्लोनी उत्पत्ति ज्ञा प्रमाद्ये उ के—नरकवर्ती जन्मन्त सकुट भुजवाली कुमियोमा स्थित वैक्रिय शरीररूप पुद्गलौने वैक्रिय शरीररूप रूपमा पकड़ करवा वहा नारकी ल्य उत्पन्न वाच उ ।

तथा—“कु होय कतो ? अर अतिज्योमाधी पूर्वजन्ममां कु नारकी कते, तिर्यग्

तत्र - मनुष्य - गो - महिष्य - जा - ऽविका - ऽश्व - खरो - ष्ट - मृग - चमर - राह -
 गवय - सिंह - व्याघ्र - र्क्ष - द्वीपि - श्व - शृगाल - मार्जारदयो जरायुजाः । सर्प - गोधा -
 कृकलास - गृहगोधिका - (पल्ली) - मत्स्य - कर्म - नक्र - शिशुमारदयः, पक्षिषु यथा -
 लोमपक्षाः, हंस - चाप - शुक - गृध्र - श्येन - पाराव्रत - काक - मयूर - मण्ड - वक्रादयश्चा -
 ण्डजाः । पोता - ज्जाता इति पोतजाः शुद्धप्रसवाः, न तु जरायुजवचर्मा -
 दिवेष्टिता इति यावत्, यथा - शलुक - हस्ति - श्वाविल्लापक - शश - शारिका - नकुल -
 मूपिकादयः, पक्षिषु च चर्मपक्षाः, जलूका - वल्गुलि - भारण्डपक्षि - विरालादयश्च -
 पोतजाः ।

जीव जगयुज कहलाते हैं । मनुष्य, गौ, भेस, बकरी, मेप, घोडा, गधा, ऊट, मृग, चमर
 शूकर, गेह, सिंह, वाघ, रीछ, द्वीपि, कुत्ता, सियाग विलाव आदि जरायुज है । सर्प,
 गोहेरा, कृकलास, छिपकली, मच्छ, कलुवा, नक्र, शिशुमार आदि, तथा पक्षियों में लोमपक्षी,
 हस, चाप, शुक, गृध्र, वाज, कवृतर, कौवा, मोर, मण्ड (एक जातका पक्षी), वगुला आदि
 अण्डज है । जो जगयुज की मौति चमडे से लिपटे हुए उत्पन्न न हों, वे पोतज कहलाते हैं,
 जैसे—सेही, हाथी, श्वाविल्लापक, शशक, शारिका नकुल, मूपिक आदि । पक्षियों में चर्मपक्षी,
 जलूका (जौक), वल्गुली, भारण्डपक्षी विगल आदि पोतज हैं ।

घेटा, घोडा, गधेडा, गेट, मृगला, चमर (डिमालयमा यती अेक गाय विशेष)
 लूड, शैल, मिह, वाघ, रीछ, छीपला, कुतरा, शियाण, गिलाडा, वगेरे जरायुज
 छे, सर्प घोयरा, कषुसला, डेढगरेडी, मच्छ, कायणा, नक (मगर) शिशुमार (अेक
 प्रकारनु जलचर प्राणी) आदि तथा पक्षिअेमा लोमपक्षी, हंस, चाप (अेक
 जातनु वीली पाणेवाणु कायरना नेवु पर्णी) शुक - (पोपट), गीध, भाज, कषूत,
 डागडा, मोर, मडू (अेक पक्षी) गगला वगेरे अडज छे ने जरायुज प्रभाषे
 यामडीथी विटाअेला उत्पन्न न थाय ते पोतज ठडेवाय छे नेभडे—सेही - (साहुडी)
 हाथी, श्वाविहत्रापक, शशक, शारिका, नकुल - नोणीअेमा, मूषिक - उदर वगेरे पक्षीअेमा
 चर्मपक्ष - (इवाडा वगरना यामडानी पाणेवाणा) जलूका (जपो) वल्गुली
 (वडवागण) बारड - पक्षी, विराल आदि पोतज छे ।

उपपातमन्म—

उपपातक्षेत्रमाप्तिमात्रनिमित्तस्थानस्थितवैक्रियपुद्गलानां प्रथम स्वशरीररूपेण परिणतिकरणम् उपपातमन्म । यथा— देवानां नारकाणां च । तत्र देवसमुद्गावो यथा—मच्छदपत्रस्योपरिष्ठाद् देवदूष्यस्यापस्थाद् उभयोरन्तरासर्वतमानपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् देव उत्पद्यते । नारकोत्पत्तिर्यथा—नरकस्थितातिर्दंडुत्सु-कुम्भीषु स्थितान् वैक्रियशरीरपुद्गलान् वैक्रियशरीरतया गृह्णन् नारक उत्पद्यते ।

तथा—“ यद् कः—चतुर्गणेषु माग्जन्मनि नारको वा तिर्यग् वा नरो

उपपातमन्म—

उपपातक्षेत्र में प्राप्तिमात्र निमित्त बिन्न में है ऐसे उत्पत्तिस्थान में स्थित वैक्रिय पुद्गलों का यहूके—यहूके अपने शरीररूप में परिणत करना उपपात—क्रम प्रकृता है, देव और नारको को यह क्रम होता है। देव की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—प्रच्छद पटके ऊपर और देवदूष्य बलके नीचे बर्बाद् दोनों के बीचमें वर्तमान पुद्गलों को वैक्रियशरीररूप प्रकृण करता हुआ देव उत्पन्न होता है। नारको की उत्पत्ति इस प्रकार होती है—नरकवर्ती अत्यन्त सङ्कुट (सङ्के) सुखवाली कुम्भिया में स्थित वैक्रिय शरीरके पुद्गल को वैक्रियशरीर के रूप में प्रकृण करता हुआ नारकी बीच उत्पन्न होता है।

तथा—“ मै कौन था ? चार गलिया में स पूर्वमव में मैं नारक वा तिर्यग् वा

(३) उपपातमन्म—

उपपात क्षेत्रमा प्राप्तिमात्र जेमा निमित्त छ जेवा उत्पत्तिस्थानमां स्थित वैक्रिय पुद्गलौने पडैला-पडैलां पीताना शरीररूपमा परिणत कस्य ते उपपातमन्म कहैवाय छ देव जने नारकीलौवेने। आ ज म होय छ

देवनी उत्पत्ति आ प्रमासे कय छ —प्रच्छदपट-उत्तरीय बन्ना उपर जने देवदूष्य बलानी नीचे, ओटले के जनेनी बन्धमा वर्तमान पुद्गलौने वैक्रियशरीररूप रूपमां मङ्गु करवा यहा देव उत्पन्न माय छ नारकीजोनी उत्पत्ति आ प्रमासे छ है—नरकवर्ती अत्यन्त सङ्कुट सुखवाली कुम्भिकोमां स्थित वैक्रिय शरीररूप पुद्गलौने वैक्रिय शरीररूप रूपमां मङ्गु करवा यहा नारकी लव उत्पन्न कय छ

तथा— तु कौन दतो ? चार अतिज्येमाकी पूर्वमवमां तु नारकी दतो, तिर्यग्

वा देवो वा आसम् ?” इति पूर्वजन्मस्मृतिरूपं ज्ञानं, तथा—“इतः=अस्माल्लोकात्
च्युतः=वियुक्तः प्रेत्य=जन्मान्तरे इह चतुर्गतिरूपे संसारे को भविष्यामि ? चतु
र्गतिषु कीदृशीं गतिं प्राप्स्यामि” इत्यागामिजन्मविषयकं निश्चयात्मकं ज्ञानं
च न भवतीत्यर्थः । भावदिशाविषयकमपि ज्ञानं नास्ति कियताचित् संज्ञिनाम्,
असंज्ञिनां तु जीवानां नास्त्येव दिशाज्ञानमिति का चार्वा तेषामिति भावः
॥ सू. ३ ॥

संसारिणां स्वगत्यागतिज्ञानं न भवतीत्युक्तम्, मंप्रति तज्ज्ञानं यथा
भवति तत् प्रदर्शयितुमाह—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलम् ।

से जं पुण जाणेज्जा, सहसम्मइयाए, परवागरणेणं अण्णेसिं अंतिए वा
मनुष्य था या देव था ?” इस प्रकार की पूर्व जन्म की स्मृति, और “इस भव से च्युत होकर
अगले जन्म में चार गतियों में से कौन गति पाऊँगा ?” इस प्रकार का आगामी जन्म
सम्बन्धी निश्चयात्मक ज्ञान नहीं होता । कितने ही सज्जियों को भी भावदिशा-विषयक ज्ञान
नहीं होता । असंज्ञी जीवों को तो दिशा का ज्ञान होता ही नहीं ॥ सू० ३ ॥

ससारी जीवों को अपनी गति और आगति का ज्ञान नहीं होता, यह बतलाया
जाचुका, अब यह कथन किया जाता है कि—वह ज्ञान किस प्रकार हो सकता है ?—

—‘से जं पुण’ इत्यादि ।

मूलार्थ—सहसम्मति से (परोपदेश के बिना ही सहज ज्ञानसे) पर
की वागरणा (स्फटीकरण) से, दूसरों के समीप से छुनकर जान कि मैं पूर्व दिशा
हुतो, मनुष्य हुतो अथवा देव हुतो ?” आ प्रभाणु आगला जन्मनी स्मृति अने
“आ लवधी नीकणीने आगला हुवेना जन्ममा चार गतिमाथी हु कुं गतिमा
ज्जश अथवा हु कुं गति पाभीश ?” आ प्रभाणु आगामी—हुवे पछी थवावाणा
जन्म सअधी निश्चयात्मक ज्ञान थतु नथी, डेटलाक सरीअोने (सरीअोवेने)
पणु भावदिशा-विषयतु ज्ञान थतु नथी असंज्ञी अवेने दिशाअो सअधीतु ज्ञान
थतु न थी ॥३॥

ससारी अवेने पोतानी गति अने आगति विषेतु ज्ञान नथी थतु, ते
अतावी गया अीअे हुवे ते डडेवामा आवे छे के—ते ज्ञान केवी गीते थर्शके छे ?—
‘से जं पुण’ इत्यादि

मूलार्थ—सहसम्मतिथी, (गीताना उपदेश बिना पणु सहज ज्ञानथी), गीतानी
वागरणाथी (स्फटीकरणथी), गीतानी पासथी, साअणीने अणु के हुं

सोऽभा, संज्ञा-पुरस्त्रियमात्रो वा विसामा भागजो महमसि, जाय अण्यपरीओ दिसामो अणुदिसामो वा भागजो महमसि, एवमेवेति गायं मवद्-अस्ति मे आया ओषवाइए, जो इमाओ दिसामो अणुदिसामो वा संखर, सम्भामो दिसामो सम्भामो अणुदिसामो जो भागजो अणुसखर सोऽइ ॥ सू० ४ ॥

(छाया)

अथ यत् पुनर्ज्ञानीयात्-सहसंमस्या, परध्याकरणेन, अन्येषामन्तिके वा भुक्त्वा, तद्यथा-पूर्वस्या दिक्षाया आगतोऽहमस्मि यावत् अन्यतरस्या दिक्षाया अनुदिक्षाया वा आगतोऽहमस्मि । एवमेकेषां ज्ञातं मवति-अस्ति मे आत्मा औपपातिकः, योऽस्या दिक्षाया अनुदिक्षाया वा अनुसंखरति, सर्वस्या दिक्षायाः सर्वस्या अनुदिक्षाया य आगतः अनुसंखरति सोऽइम् ॥ सू० ४ ॥

‘से अ पुम्’ इति । ‘स’ इत्यव्ययं मागभसापायामयध्वन्द्वार्थकम् । ‘अथ’ इति, अनेन ‘नो सम्भा मवद्’ इति द्रव्यदिग्ज्ञानामात्रं ‘नो गायं मवद्’ इति भावविग्ज्ञानामात्रं च प्रदर्श्य तन्ज्ञानभारम्भ इति द्योत्यर्थः ।

से आया हूँ (यावत्) अन्तर दिशा से अथवा विदिशा से मैं आया हूँ । इस प्रकार कितनेक जीवा को ज्ञान होता है कि-मेरा आत्मा औपपातिक (अन्य केमे वास्तु) है; जो इस दिशा से अथवा अनुदिशा से संखर करता है, सभी दिग्धामा से सभी अनुदिक्षामा से आया हुआ जो अथवा भ्रमण करता है, वह मैं हूँ । (सू ४)

टीकार्थ-भाग्यी माया में ‘से’ अव्यय ‘अथ’ शब्द के अर्थ में है । यहाँ ‘अथ’ शब्द से यह प्रकट किया गया है कि-प्राण के सूत्रमें ‘नो सम्भा मवद्’ इत्यादि शब्द अथवा दिक्षा के ज्ञानका निषेध करके, और ‘नो गायं मवद्’ इत्यादि शब्द का भावविद्यासम्बन्धी ज्ञान का निषेध करके अब इस ज्ञान की उत्पत्ति का प्रश्न प्रदर्शित करते हैं-

पूर्व दिशाधी आ ये उ यावत् वीह दिशाओधी अथवा विदिशाओधी हु आन्धी उ आ प्रमाद्ये इदंलोक लोकेने ज्ञान वाच्ये उ इ-आशा आत्मा औपपातिक (अथ वेवापायो) से, जो आ दिशाधी अथवा अनुदिशाधी संखर करे से सर्व दिशाओधी सर्व अनुदिशाओधी, आवेद्यो जो आत्मा भ्रमण करे से ते हु उ (सू ४)

टीका-भाग्यी आयाभा ‘से’ अव्यय अथ, शब्दना अर्थमां से अर्थ ‘अथ शब्दधी जो प्रकट कर्तुं’ से-प्रथमना सूत्रोभा ‘नो सम्भा मवद्’ अथवा इदंलोक लोकेने ज्ञानने निषेध करीने अने ‘नो गायं मवद्’ अथवा इदंलोक लोकेने भावविद्यासम्बन्धी ज्ञानने निषेध करीने उ उ ने ज्ञान की उत्पत्ति का प्रश्न प्रदर्शित करते हैं-

टीका—

यत्=यदि पुनर्जानीयात् स्वस्वगत्यागत्यादिकं कश्चित्, तत् त्रिविधेन कारणेन, तदाह—सहसंमत्येत्यादि । आत्मना सह वर्तते या सम्यग्मतिः, सा सहसंमतिः, परोदेशमन्तरेण समुत्पन्ना जातिस्मरणावधिमनः पर्ययकेवलज्ञानरूपा, तथा सहसंमत्या । तत्र जातिस्मरणवान्नियमतः संख्यातभवान् जानाति, अवधिज्ञानी संख्यातभवानसंख्यातभवान् वेत्ति, तथैव मनःपर्ययज्ञानी च । केवलज्ञानी तु नियमतोऽनन्तान् भवान् त्रिजानाति । जातिस्मरणज्ञानवानवान्तरे यद्यसंज्ञिभवं न कुर्यात्, तर्हि स्वकीयसंज्ञिपञ्चेन्द्रियभवस्योत्कृष्टतो नवशतभवान् विज्ञातुं शक्नुयात् । जातिस्मरणेन स्वकीयपूर्वभवं विज्ञातुर्दृष्टान्तः प्रदर्श्यते—

अगर कोई अपनी-अपनी गति और आगति को जाने तो तीन प्रकार के कारण से जान सकता है, उसी को कहते हैं—सहसंमति आदि से, आत्मा के साथ रहने वाली सम्यग्मति कहलाती है, अर्थात् परोपदेश के बिना ही उत्पन्न होनेवाली जातिस्मरण, अवधि, मन पर्यय और केवलज्ञान रूप मति सहसंमति कहलाती है, उनमें जाति स्मरणवाला नियम से संख्यात भवोंको जानता है, अवधिज्ञानी संख्यात या असंख्यात भवोंको जानता है, इसी प्रकार मन पर्ययज्ञानी भी जानता है, किन्तु केवलज्ञानी नियम से अनन्त भवोंको जानता है । जातिस्मरण—ज्ञानवाला बीच में यदि असंज्ञी का भव न करे तो अपने सञ्ज्ञि-पञ्चेन्द्रिय के उत्कृष्ट नौ सौ भवोंको जान सकता है । जातिस्मरण से अपना पूर्वभव जानने वाले का दृष्टान्त प्रदर्शित किया जाता है—

अथवा ठोस पोतपोतानी गति अने आगतिने ज्ञाछे तो त्रय प्रकारना कारण्थी ज्ञाछी शक्ये छे, तेने कहे छे—सहसंमति आदिथी, आत्मानी साथे रहैवा वाणी सम्यग् मति—बुद्धि अर्थात् परोपदेश विनाज उत्पन्न थवा वाणी जतिस्मरण्थ, अवधि, मनःपर्यय, अने केवल-ज्ञानरूप मति ते सहसंमति कहेवाय छे जति स्मरण्थ वाणा नियमथी संख्यात भवोने ज्ञाछे छे अवधिज्ञानी संख्यात अथवा असंख्यात भवोने ज्ञाछे छे अे प्रभाछे मनःपर्यायज्ञानी पञ्च ज्ञाछे छे परतु केवलज्ञानी नियमथी अनन्त भवोने ज्ञाछे छे जतिस्मरण्थ ज्ञानवाणा एव वथमा जे असंज्ञीने भव न करे तो पोताना सञ्ज्ञी पञ्चेन्द्रियना उत्कृष्ट नवसो (८००) भवोने ज्ञाछी शक्ये छे जतिस्मरण्थी पोताना पूर्वभवने ज्ञाछुनारानु द्रष्टात अतावे छे—

सुप्रीचनगरे बलभद्रनामा नृप आसीत् । तस्याग्रमहिषी भृगानाम्नी बभूव ।
बलभद्रवृषस्य तस्यां पुत्रां जातः । स च मातापितृभ्यां बलभी-नाम लम्बाऽपि
लोके भृगापुत्र इति नाम्ना प्रसिद्धो बभूव । अथ मातापित्रोः परमप्रिया
कृतयौवनान्यामिषेको मुदितचित्तो भृगापुत्र प्रासादे दोगुन्दुगदेववत् प्रमदाभिः
सह क्रीडतिस्म ।

स चैवं बिलसन् मभिरत्नरात्रितङ्कङ्कितवले सर्वोपगित्तिनि प्रासाददेसे
स्सुपविष्ट सङ्कृहस क्तुष्क-भिक-अत्तर-मार्गान् बिलोकमानः पयि श्रीमाहय
गुणसागरं तपोनियमसंपन्नं संयतमनिमिषहृष्टाऽद्राधीत् । तमबलोक्य सुमाप्य-

सुप्रीच नगर में बलभद्र नामक राजा था । उसकी पटरानी का नाम भृगा या इस
भृगुपुत्री से बलभद्र को पुत्र की प्राप्ति हुई । माता-पिताने उसका नाम बलभी रक्खा, किन्तु
वह लोक में भृगापुत्र के नाम से प्रसिद्ध हुन्य वह माता-पिता का परम प्रिय था । उसका
युवराज्य पर अमिषेक किया गया । वह प्रसन्न-चित्त होकर दोगुन्दुग (निष्पत्ती एक
देवकी जाति) देव के समान अपने महलमें क्रीडा करता था ।

एक बार भृगापुत्र मयियां और रत्ना से सुशोभित कर्षकाके महल के सब
से ऊपर के मंजिर पर बैठा था । वह कौतूहल के साथ नगर के चौपट भ्रिक तथा अत्तर
मार्गों का अवलोकन कर रहा था । तब उसे मार्ग में शीक से विभूषित गुजों के सागर
सग नियम और संवम धारण करने वाले एक मुनि दृष्टिगोचर हुए । उसने टकटकी लगाकर

सुप्रीच नगरमां बलभद्र नामने राजा कते। तेनी परशशीतु नाम-भृगा
कतु ते भृगा राजी यही बलभद्रने पुत्रनी प्राप्ति यध माता-पिताके तेनु नाम
बलभी राभु परतु ते होकने विषे भृगापुत्र नामका प्रसिद्ध भये। ते माता-पिताने
परमप्रिय कते, तेना युवराज पर पर अमिषेक कये। यही ते प्रसन्नचित्त यधने
दोगुन्दुग (निष्पत्ती के देवनी जाति) देव समान पोताना भडेकमा क्रीडा
करते कते।

लोक बार भृगापुत्र भयिके आने रत्नोशी-सुशोभित इश-सुहर तजिवावाये
भडेकने सौधी उपरने पर कते, तेना उपर भेडे कते। ते कुण्डलपूर्वक नगर
चौपट भ्रिक तथा अत्तर मार्गोर्तु अवलोकन करी रह्ये कते। ते वजते के भार्यमा
शीकधी विभूषित, शुबेला सागर सग, नियम, संवम धारण करवावाया लोक मुनि दृष्टिगोचर

वसायेन मृगापुत्रो मूर्च्छामवाप्य जातिस्मरणं प्राप । 'पूर्वजन्मनि प्रव्रज्यां गृहीत्वा पञ्चमहाव्रतपालनेन स्वर्गसुख लब्ध्वाऽहमिह राजकुले संजातः' इति । अनेन जातिस्मरणेन पुनरात्मकल्याणाय प्रयतते स्म ।

अवधिज्ञानिना मल्लीनाथेन भगवता ससारावस्थार्यां पूर्वजन्मवृत्तान्तोऽवलोकितः । मनःपर्यय-केवलज्ञानघोस्तु दृष्टान्तौ सुप्रतीतौ ।

तथा—परव्याकरणेन-परस्तीर्थङ्करस्तस्य व्याकरण यथावस्थितार्थस्य—

उनकी ओर देखा । उन्हें देख कर मृगापुत्र को मूर्च्छा आ गई और जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हो गया । उससे माद्वम हुआ कि—' पूर्व जन्म में दीक्षा धारण करके, पाचमहाव्रतों का पालन करके, पश्चात् स्वर्ग के सुख भोगकर मैं इस राजकुल म उ पन्न हुआ हूँ ।' इस जातिस्मरण से वह फिर आत्मकल्याण में प्रवृत्त हो गया ।

अवधिज्ञानी भगवान् मल्लीनाथने ससार-अवस्थाम अपना पूर्व जन्म का वृत्तान्त देख लिया था । मन पर्यय ज्ञान और केवलज्ञान के दृष्टान्त तो प्रसिद्ध ही हैं ।

तथा—परके व्याकरण से भी गति-आगति का ज्ञान होता है । पर का अर्थ है—तीर्थंकर । उनका व्याकरण अर्थात् पदार्थ का स्वरूप यथार्थरूप से जानकर समझकर कहना, अथवा परव्याकरण का अर्थ तीर्थंकर का प्रवचनरूप आगम समझना चाहिए ।

थथा, ते वप्यते मृगापुत्र एक नजरथी तेमनी सामे जेयु, अने तेने जेधने मृगापुत्रने मूर्च्छा आवी गध अने जतिस्मरण ज्ञान उत्पन्न थयु, तेनाथी माद्वम पडथु के—“ हु पूर्व जन्ममा दीक्षा धारण करीने, पाच महाव्रतोंतु पालन करी, पछी स्वर्गना सुखो भोगवीने आ राजकुलमा उत्पन्न थयो छु ” आ प्रमाणे जतिस्मरण थवाथी ते इरीने आत्मकल्याणमा प्रवृत्त थध गये ।

अवधिज्ञानी मल्लीनाथ भगवाने ससार-अवस्थामा पोताना पूर्व जन्मने वृत्तान्त जेध लीधो हुतो मन-पर्ययज्ञान अने केवलज्ञानना द्रष्टा तो प्रसिद्ध ज छे

तथा—परना व्याकरणथी पणु गति-आगतितु ज्ञान थाय छे परने अर्थ छे—तीर्थंकर, तेनु व्याकरण-अर्थात् पदार्थतु स्वरूप यथार्थरूपथी जणु—समणने कडेकुं, अथवा परव्याकरणे अर्थ—तीर्थंकरना प्रवचनरूप आगम समजवु जेध अे

साक्षात्कारेण सम्वाच्य कथनम्, तीर्थङ्करप्रवचनरूप आगमो वा, तेन ।
परम्याकरणोदाहरणं यथा—साक्षात् भगवतो देवनाया मेघकुमारादयो जातिस्मरण
माप्तवन्तः ।

यथा—अन्येषामन्तिके वा भ्रुत्वेति, अन्येषां समीपे, भुत्वा स्वगत्या-
गत्यादिशोभकतद्वचनप्रवचनेन । तृतीयोदाहरणं यथा—यद् मित्रभूपाञ्छ्वस्यावस्थस्य
मञ्जिनाथभगवतः समीपे तद्वचनेन जातिस्मरणमाप्तः ।

अध्यात्मनि विषये यादृशं गत्यागत्यादिज्ञानं भवति, तदेष दर्शयति-
तद्यथा—इत्यादि 'पूर्वस्या दिक्षाया आगतोऽहमस्मि यावद् अन्यतरस्या दिक्षाया
अनुदिक्षाया वा आगतोऽहमस्मी'त्यनेन स्वगमनावधि-द्रव्यदिक्षाज्ञानं, यथा-
परम्याकरणका उदाहरणं वैते—साक्षात् भगवान् श्री देशना से मेघकुमार अग्निने जातिस्मरण
श्रान प्राप्त किया था ।

तथा—दूसरा से सुनकर भी गति भागति का ज्ञान होता है । तात्पर्य यह है
कि—भयनी गति एव आगति समज्ञान वाला दूसरे के बचन से भी जातिस्मरण हो जाता
है । जैसे—उद् मित्र-रावामोत्रे छत्रस्थ-अवस्था वाले भगवान् मञ्जिनाथ के बचन से
जातिस्मरण प्राप्त किया था ।

आत्मा के विषय में गति-भागति ज्ञानि का ज्ञान किस प्रकार होता है,
उसे द्रिस्तमत्त है—मै पूर्व दिशा से आया हूँ (यावत्) अन्यतर दिग्ग से भववा
अनुदिशा से मै आया हूँ इस कथन से अपने गमन तक श्री द्रव्य-दिशा का प्राण
सूचित किया है । तथा मेरा आत्मा औपचारिक है यहाँ से लकर ' भगव करता है
परम्याकरणका उदाहरण, जैसे—साक्षात् भगवान् श्री देशनाथी मेघकुमार अग्निने
जातिस्मरण ज्ञान प्राप्त हुआ ।

यथा—वीज्य पासेधी सांभग्याने पद्य जति-आगतितु ज्ञान याव से ठे -
पीतानी जति अने आगति समज्ञानवाया वीज्यना बचनोधी पद्य जातिस्मरण ज्ञान
दर्शनाथ छे । नेम-छ मित्र-रावामोत्रे छत्रस्थ-अवस्था वाया भगवान् मञ्जिनाथना
बचनोधी जति स्मरण प्राप्त हुआ ।

आत्माना विषयमा जति-आगतितु ज्ञान ने प्रमात्रे होय छे तेन देजाटे
छे- तु पूर दिशाधी आन्धो छे (यावत्) अन्यतर दिशाधी अथवा अनुदिशाधी तु
आन्धो छे आ कथनधी पीतना जमन सुधीनी द्रव्यदिशानु ज्ञान सूचित हुआ छे,

‘अस्ति मे आत्मा औपपातिकः’ इत्यारभ्य ‘अनुसंचरित सोऽहम्’ इत्यन्तेन द्रव्य-भावोभयदिशाज्ञानं भगवता प्रदर्शितम् ।

सोऽहमस्मी’त्येनेनेदमावेदितं भवति । त्रिविधान्यतमेन कारणेन ज्ञानं प्राप्तो जीवः स्वात्मस्वरूपमेवं विशानाति—यद्यमात्मा सकलकर्मक्षयावधि चतुर्गति-भ्रमणकर्ता पुनरपि कस्याश्चिदेकस्यां दिशायामनुदिशायां वा गमिष्यति नास्त्यस्य गतिविरामस्तावदिति । एवमयमात्मा सर्वस्या दिशाया अनुदिशाया आगतःपुनरपि स्वकर्मवशगः सन् सर्वस्यां दिशायामनुदिशायां वा परिभ्रमिष्यति । न कदाचिदस्य विश्रान्तिच्छेशोऽपि तादृशोऽहमस्मीति ॥ सू० ४ ॥

वह मैं हूँ’ यहाँ तक द्रव्यदिशा और भावदिशा, दोनों का ज्ञान भगवान् ने प्रदर्शित किया है ।

‘वही मैं हूँ’ इस कथन से यह प्रकट होता है कि—तीन में से किसी एक कारण के द्वारा ज्ञान को प्राप्त जीव इस रूप में अपना आत्मस्वरूप जानता है, कि—यह आत्मा जब तक समस्त कर्मों का क्षय नहीं कर देता तब तक चारों गतियों में भ्रमण करता है और फिर किसी एक दिशा में या अनुदिशामें गमन करेगा परन्तु कर्मों का क्षय जब तक न हो तब तक उसकी गति का अन्त नहीं आता है । इस प्रकार यह आत्मा सब दिशाओं से और अनुदिशाओं से आया है और कर्मों के अर्धीन हो कर फिर सब दिशाओं अथवा विदिशाओं में परिभ्रमण करेगा, इसे लेशमात्र भी कभी विश्राम नहीं मिल सकता, ऐसा मैं हूँ ॥ सू० ४ ॥

तथा—‘भावे आत्मा औपपातिके’ त्याधी लधने ‘भ्रमणु करे’ ते हुं छु, त्या सुधी द्रव्यदिशा अने भावदिशा, अने अन्नेनु ज्ञान भगवाने प्रदर्शित कर्तुं छे “ते हुं छु” आ कथनथी अेभ प्रगट थाय छे के अे त्रणुमाथी डोर्धे डारणु द्वारा ज्ञानने पावेले। एव आ रूपमा पोताना आत्मस्वरूपने नणु छे के आ आत्मा न्या सुधी समस्त कर्मोने क्षय करतो नथी, त्या सुधी आरेय गतिओभा भ्रमणु करतो रहे छे, अने डरी डोर्धे दिशाभा अथवा तो अनुदिशाभा गमन करथे परतु न्या सुधी कर्मोने क्षय नडि डोय त्या सुधी तेनी गतिने अत आवतो नथी अे प्रमाणे आ आत्मा सर्व दिशाओथी अने अनुदिशाओथी आंये छे अने कर्मोने आधीन धधने डरीथी सर्व दिशाओ अथवा विदिशाओभा परिभ्रमणु करथे. तेने लेशमात्र पणु विश्राम भली शकतो नथी अेवे हुं छु, (सू० ४)

आत्मवादिमकरणम्—

यस्तु द्रव्यदिष्टु मावदिष्टु चात्मनो गत्यागती अत्रगत्प स्वमात्मानमेव
चिजानावि—‘अयमात्मा असिद्धगतिमाप्तिवर्गतिषु पूर्णमानो अन्यान्तरसंक्रान्त-
त्रिकात्मती शरीरात् मिथो नित्यपरिणामी ज्ञानसम्पत्त्वचारिभ्रमुत्तवीर्यादिगुणवा-
निति, स एवात्मवादीत्याह—‘से आयावादी’ इत्यादि ।

मूलम्—

से आयावादी, लोकावादी, कर्मावादी, किरियावादी ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स आत्मवादी, लोकावादी कर्मवादी, क्रियावादी ॥ सू० ५ ॥

आत्मवादिप्रकरण—

जो जोह द्रव्य दिष्ट्यामा में और मावदिष्ट्यामा में आत्मा का गमन-भागन जान कर
अपनी आत्मा के विषय में इस प्रकार जानता है कि—वह आत्मा सिद्धगति की प्राप्तिरहित
चार गतिषु में भ्रमण करता हुआ एक अन्म से दूसरे अन्म को ग्रहण करता है, त्रिकात्मती
है शरीर से भिन्न है, नित्यपरिणामी है और सम्पत्त्व, ज्ञान चारित्र, सुख बीर्य आदि
गुणों वाला है वही आत्मवादी है । अब इसी विषय का निरूपण किया जाता है —‘से
आयावादी’ इत्यादि ।

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति । वही आत्मवादी है, लोकावादी है, कर्मवादी है
कीवावादी है (सू. ५)

आत्मवादीप्रकरण

ये एव द्रव्यदिष्ट्यामां अने मावदिष्ट्यामां आत्मवत् अणु-आणु वापिनि
पिताना आत्माना विषयमां जे प्रमाये अणुं छे हे:-आ आत्मा सिद्धगतिनी प्राप्ति
विना जीला चार गतिमां भ्रमण करता अस्तो जेक अन्मभी जीले ए म प्रकृत्य
अरे छे त्रिकात्मती छे शरीरभी भिन्न छे नित्यपरिणामी छे अने सम्पत्त्व, ज्ञान,
चरित्र, सुख बीर्य आदि अणुं वाणुं छे ते आत्मवादी छे. अने आ विषयत
नित्यप्रणुं करवां अने छे—‘से आयावादी’ इत्यादि.

मूलार्थ—‘से आयावादी’ इति. ते आत्मवादी छे, लोकावादी छे, कर्मवादी छे
अने क्रियावादी छे. (सू. ५)

टीका—

‘से आयावादी’ इति । सः=इत्थमात्मानं ज्ञाता, आत्मवादी= आत्मानं वदितुं शीलमस्येति विग्रहे कर्तरि णिनि, आत्मस्वरूपकथनस्वभाववाद् । अयं भावः—आत्मस्वरूप वक्तारो जगति बहवः सन्ति, परन्तु स एवात्मवादी वेदितव्यो, यः पूर्वोक्तरीतिमनुसृत्यात्मानं विजानातीति ।

आत्मस्वरूपपरिचयं विना बन्धस्वरूपं ज्ञातुमशक्यम् । तद् विना न रोचते कस्मैचिदात्मोत्कर्षकरणम्, तद्बुधिमन्तरेण च कस्यचिन्मोक्षोपाय-भूतनिश्चयव्यवहारलक्षणज्ञानक्रिययोः प्रवृत्तिर्न स्यात्, तस्मादत्रात्मज्ञानमसङ्गेन किञ्चिदुच्यते—

टीकार्थ—जो इस (पूर्वोक्त) प्रकार से आत्मा को जानता है वही आत्मवादी है अर्थात् आत्मा के स्वरूप को कहने वाला है । तात्पर्य यह है कि—आत्मा का स्वरूप कहने वाले ससार में बहुत हैं किन्तु वास्तव में सच्चा आत्मवादी वही है जो पूर्वोक्त प्रकार से आत्मा का ज्ञाता है ।

आत्मा का स्वरूप समझे विना बन्ध का स्वरूप अशक्य है । उसके अभाव में किसीको आत्मा का उत्कर्ष करना रुचिकर नहीं होता, और इस रुचि के अभाव में किसीकी निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान और क्रिया में—जो मोक्ष के कारण हैं—प्रवृत्ति नहीं होती, अत आत्मज्ञान का प्रसङ्ग होने से यहाँ कुछ विवेचन किया जाता है—

टीकार्थ—जे आ (पूर्वोक्त) प्रकारथी आत्माने नल्ले छे, ते आत्मवादी छे, अर्थात्—आत्माना स्वरूपने कडेवा वाणा छे, तात्पर्य जे छे जे—आत्मानु स्वरूप कडेवा वाणा सभारभा धरु छे परतु वास्तवभा सान्या आत्मवादी ते छे जे जे पूर्वोक्त प्रकारथी आत्माना ज्ञाता छे, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकारे आत्माने नल्ले छे

आत्माना स्वरूपने समञ्ज्या विना थधनु स्वरूप समञ्ज्यु अशक्य छे, तेना अभावभा कोर्धने आत्मा उत्कर्ष करवु इच्छिकर थतु नथी अने ते इच्छिना अभावभा कोर्धने निश्चय-व्यवहाररूप ज्ञान अने क्रियाभा जे मोक्षनु कारखु छे तेभां प्रवृत्ति थती नथी । ते कारखुथी आत्मज्ञानने प्रसङ्ग होवाथी अहि थोडु विवेचन करवामा आवे छे—

आत्मशब्दार्थः—

अवति—नित्ये जानातीति आत्मा । ‘अत सातत्पगमने’ इत्यत्रात-
 धातोर्गत्यर्थकत्वाद्, गत्यर्थानां च ज्ञानार्थकत्वात् स्वीकारादयमर्थो उच्यते ।
 सिद्धसंसारिमेवमत्र द्विविधस्यापि जीवस्य सर्वदाश्रयोपसङ्गात्सात्त्विकः कस्या
 चिदपस्यायामुपयोगवियोगो न जायते । कदाचिदप्यश्रयोपयोगे च जीवत्वमेव
 व्याह्रियेत । अत एव—‘जीवो उच्यतेऽश्रयोपयोगे’ इत्युक्तम् (उपरा २८ अ १० श्लो)
 यद्वा—अवति—सततं गच्छति, निरन्तरं प्राप्नोति स्वकीयान् पर्यायानिति—आत्मा ।

आत्मशब्द का अर्थ—

‘अवति’—इति—आत्मा अर्थात् जो नित्य जानता रहता है वह आत्मा कहलता
 है । ‘अत’ धातु सतत गमन करने के अर्थ में है और गमनार्थक सभी धातु ज्ञानार्थक होते
 हैं, अत उपर्युक्त अर्थ किमा गया है । क्या सिद्ध और क्या संसारी, दोनों ही प्रकार के
 जीवों में सर्वत्र ज्ञान विद्यमान रहता है और किसी भी अवस्था में उपयोगका वियोग नहीं
 होता । किसी समय ज्ञान का अभाव हा जाय तो जीव में जीवत्व ही नहीं रहे । इसी कारण
 उपराश्रयन सूत्र (अ. २८ श्लो १) में कहा है —“जीवो उच्यतेऽश्रयोपयोगे”
 जीव उपयोग कदापि बाध है ।

अथवा—अवति अर्थात् जो अपन पर्यायों को सतत प्राप्त होता रहता है
 वह आत्मा है ।

आत्मा शब्दने अर्थ—

अवति इति आत्मा अर्थात् जो सतत रहते है ते आत्मा कहलवाये छे ।
 ‘अत’ धातु सतत गमन कस्याना अर्थमा छे, जने अमनार्थक सव धातु ज्ञानार्थक
 पक्ष होव छे (जमन कस्तु जेवा अर्थवाजा तमाम धातु ज्ञान अर्थवाजा पक्ष होव
 छे) जे कस्तुभी उपर कहलै अर्थ कथे छे तो शु सिद्ध जने संसारी जने
 प्रकृतमा एवैमा ज्ञान विद्यमान रहे छे जने कदापि उपयोग अथवा अश्रयोपयोगे
 वियोग कते नही कदापि समय जमने अभाव कदापि न्य तो एवमा एवद्व ज न
 रहे, जे कस्तुभी उपराश्रयन सूत्र (अ. २८ श्लो १०) मां कहु छे के—
 “जीवो उच्यतेऽश्रयोपयोगे” “एव उपयोग कदापि बाधे छे”

अथवा—अवति अर्थात् जो पताना पर्यायने सतत प्राप्त कते रहते छे, ते
 आत्मा छे

नन्वेवं गगनादीनामपि सततं स्वपर्यायप्राप्त्या तत्रात्मशब्दप्रयोगो दुर्वारः, कदापि पर्यायाभावे त्वपरिणामित्वेन तेषां वस्तुत्वमेव न स्यादिति चेन्नैवम्, सततस्वपर्यायप्राप्तिकर्तृत्वमिति व्युत्पत्तिनिमित्तमात्रमात्मशब्दस्य, न तु तत् प्रवृत्तिनिमित्तम् । प्रवृत्तिनिमित्त चास्योपयोग एवेति गगनादिषु नात्मशब्दः प्रवर्तते ।

यद्वा—सततं गच्छतीत्ययमर्थोऽपि न विरुध्यते संसारदशायां कर्म-
वशेन नानागतिषु सततगमनात्, मुक्तावस्थायामपि भूतकालिकसततगमनसद्भावात् ।

शङ्का—आकाश आदि भी अपने अपने पर्यायों को निरन्तर प्राप्त होते रहते हैं तो उनके लिये भी आत्मा शब्द का प्रयोग करना अनिवार्य होगा । किसी समय उन में पर्याय का अभाव हो तो वे अपरिणामी ठहरेगे और तब उन में वस्तुत्व ही नहीं रहेगा ।

समाधान—ऐसा मत कहिए । निरन्तर अपने पर्यायों को प्राप्त करना तो आत्मा शब्द का व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र है, वह प्रवृत्तिनिमित्त नहीं है, प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग ही है, अत आकाश आदि में आत्मा शब्द का प्रयोग नहीं हो सकता ।

अथवा 'निरन्तर गमन करता है' इस अर्थ का भी विरोध नहीं है, क्यों कि संसार-अवस्था में कर्म के अधीन होकर आत्मा नाना गतियों में सदैव गमन करता रहता है, मुक्त अवस्था में भी भूतकालीन सतत गमन विद्यमान है ।

शंका—आकाश आदि पक्षु पौत पौताना पर्यायाने निरन्तर प्राप्त होता रहे
छे, तो तेने भाटे पक्षु आत्मा शब्दने प्रयोग करवे अनिवार्य थसे कोछ समय
तेनाभा पर्यायाने अभाव होय तो ते अपरिणामी ठरसे त्यारे तेनाभा वस्तुत्व
पक्षु नहि रहे

समाधान—अे प्रमाणे न कछो निरन्तर पौताना पर्यायाने प्राप्त करवु ते
तो आत्म शब्दनी व्युत्पत्तिनिमित्त मात्र छे, परतु ते प्रवृत्तिनिमित्त नथी,
प्रवृत्तिनिमित्त तो उपयोग न छे, तेथी आकाश आदिभा आत्म शब्दने प्रयोग
थर्ध शकते नथी

अथवा—निरन्तर गमन करे छे, आ अर्थाने पक्षु विरोध नथी केभके—संसार
अवस्थामा कर्मना अधीन यनीने आत्मा अनेक गतिओमा ह्येशा गमन करते
रहे छे मुक्त-अवस्थामा पक्षु भूतकालीन सतत गमन विद्यमान छे

आत्मनोऽस्तित्वसिद्धिः—

तावत् मत्पक्षप्रमायत एवात्मन सिद्धिरुच्यते—(१) किमयमात्मा—अस्ति नास्ति चेति संशयादिविद्वान् स्वस्वात्मनि स्वसंबन्धनमत्यक्षम सिद्धम्, स एवात्मा, संशयादिविद्वानस्यैव तदनन्यत्वेनात्मरूपत्वात् ।

(२) तथा—आत्मानमाभित्यैव मुखदुःखादयः स्वस्वशरीर एव मत्पक्षेण संबध्यन्ते ।

(३) यद्वा—कृतवानहं, करोम्याहं, करिष्याम्याहम्, इत्यादिप्रकारण योऽयम्—अहमप्रत्ययः, एतस्मादपि मत्पक्ष एवायमात्मा । क्वमसत्यात्मनि—

आत्माके अस्तित्वकी सिद्धि—

सब प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाण स ही आत्मा की सिद्धि कहते हैं—

(१) आत्मा है या नहीं है, इस प्रकार का संशय आदि ज्ञान अपनी अपनी अत्मा में स्वसंबन्धन प्रत्यक्ष से सिद्ध है । वही ज्ञान आत्मा है अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्मासे अभिन्न होने के कारण आत्मस्वरूप ही है ।

(२) आत्मा को अभिन्न करके ही दुःख—सुख आदि अन्तर शरीर में प्रत्यक्ष से जाने जाते हैं ।

(३) अथवा—मैं कर चुका, मैं करता हूँ मैं करूँगा इत्यादि रूप स जो अहमप्रत्यय होता है उससे भी आत्मा का प्रत्यक्ष होता है । आत्मा न होता तो अत्मा से विषय में अहमप्रत्यय (मैं का ज्ञान) किस प्रकार हो सकता था ? आत्मरूप विषय के

आत्माना अस्तित्वनी सिद्धि—

श्रीश्री प्रथम प्रत्यक्ष प्रमाणकी अत्माना सिद्धि कहे छ—(१) आत्म्य छ के नहि, आ प्रमाणु संशय आदि ज्ञान पीत पीताना आत्माना स्वसंबन्धन प्रत्यक्षकी सिद्ध छ ते नान आत्म्य छ अर्थात् संशय आदि ज्ञान आत्माना अभिन्न कानाना तास्ते आत्मस्वरूप अ छ

(२) आत्माना अभिन्नपक्षकी अ दुःख—सुख आदि पीत—पीताना शरीरमां प्रत्यक्ष लक्षणमां आवे छे

(३) अथवा—हुं करी कर्मो हुं करे छ हुं करीय, अत्माद्विषयी अ अहमप्रत्यय जाय छ तेथी पक्ष आत्म्यनु प्रत्यक्षपक्ष जाय छ आत्माना न होय तो आत्माना विषयमां अहमप्रत्यय (हुं पक्षनु ज्ञान) केनी रीते कर्ष शके ? आत्मरूप

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानाख्यो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव में विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सद्भाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । बिना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं?' इस प्रकार का संशय करता कौन है? संशय एक प्रकार का ज्ञान-गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमा विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्ध शकती शरीर न् आ ज्ञाननेो विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' (हूँ) नेो अर्थ आत्मा नथी अह्के शरीर छे, अेभ कडेवु ते उचित नथी, केभके नेे अेभ डोय तो मृत शरीरमा अहम्प्रत्यय थर्ध शकशे आत्मानेे विषय करवा वाणेो आ-अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामा "हूँ छु के नथी" आ प्रकारनेे संशय न् थतेो नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानेो सद्भाव डोवाथी "हूँ छु" आ प्रकारनेे निश्चय न् थर्ध शके छे आत्माना अस्तित्वना विषयमा संशय करवामा आवे तो प्रश्न उपस्थित थाय छे के आ अहम्प्रत्यय केनेे थाय छे? कारण् विना तो तेनी उत्पत्ति थर्ध शकती नथी नेे संशय करवा वाणेो एव नथी तो "हूँ छु के नहि" अे प्रकारनेे संशय करनार केावु छे? संशय अेक प्रकारनेे ज्ञान-गुण् छे, अनेे गुण् गुण्नीना अभावमा थर्ध शकतेो नथी

न च देहाऽत्र गुणीति बाध्यम्, देहस्य मूर्तत्वाद् जडत्वाच्च ज्ञानस्य
 चामूर्तत्वाद् बोधरूपत्वाच्च । अर्हं नाहं वेदिगदतो 'माता मे बन्ध्या' इत्यादिषु
 स्ववचनध्यासात् ।

(४) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष एव, सृष्टि-विज्ञासा-चिकीर्षा-
 श्रिगमिषा-संश्रयादिज्ञानविशेषाणां तद्गुणानां स्वात्मनि स्वसंवेदनप्रत्यक्ष-
 मिदत्वाद्, इह यस्य गुणाः प्रत्यक्षा स प्रत्यक्षो ष्टः, यथा घटाः, प्रत्यक्षगुणभास्मा,
 तस्मात् प्रत्यक्षाः । यथा घटोऽपि गुणी रूपादिगुणप्रत्यक्षत्वादेव प्रत्यक्षाः, तथा
 विज्ञानादिगुणप्रत्यक्षत्वादात्मापीति ।

यहाँ वह कहना ठीक नहीं है कि- 'देह गुणी है' क्योंकि देह मूर्त है और वह
 है जब कि ज्ञान अमूर्त है और चेतनरूप है । मूर्त गुणी का अमूर्त गुण नहीं हो सकता
 और न वह का गुण चेतना हो सकता है । इस कारण 'मैं हूँ या नहीं' इस प्रकार कहने
 वाले को मम माता बन्ध्या है' ऐसा कहने वाले के समान स्ववचनवाच्य दोष जाता है ।

(४) यद्वा आत्मा गुणी प्रत्यक्ष से ही सिद्ध है, क्योंकि सृष्टि, विज्ञासा,
 करने की इच्छा, गमन की इच्छा संशय आदि ज्ञान-जो आत्मा के गुण है-अपनी
 आत्मा में प्रत्यक्ष से सिद्ध हैं, जिस प्रकार के गुण प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं वह
 प्रकार भी प्रत्यक्ष माना जाता है, जैसे घट, आत्माके गुण भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होते हैं इस
 कारण आत्मा प्रत्यक्ष है । घट के रूप आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से ही गुणी घट
 का प्रत्यक्ष होना देना जाता है, इसी प्रकार विज्ञान आदि गुणों का प्रत्यक्ष होने से
 आत्मा भी प्रत्यक्ष है ।

जहाँ वह कहती है 'जो म ठहरे तू ते ही नथो कारण के देह मूर्त से जाने
 कर से ज्यारे सान अमूर्त से जाने चेतनरूप से मूर्त श्रुतिने अमूर्त श्रुति से
 शकें नकि जाने करणे श्रुति चेतन बर्ध शकें नकि आ कारणधी तू छ के नकि'
 जो प्रभावे ठहरेवाजाने भारी माता बन्ध्या से जो प्रभावे ठहरेवाला नेवे
 स्ववचनवाच्य नाभने होय आवे से

(४) यद्वा-आत्मा गुणी प्रत्यक्ष ही सिद्ध है जैसे-सृष्टि, इच्छा करवानी
 इच्छा, गमन की इच्छा, संशय आदिज्ञान विशेषों ने आत्माना श्रुति से ते चेतना आत्मा
 प्रत्यक्ष ही सिद्ध से । ने प्रकारने श्रुति प्रत्यक्ष ही प्रतीत वाच्य से ते प्रकार पक्ष
 प्रत्यक्ष मानवामां आवे से नेम-घट, आत्मानो श्रुति प्रत्यक्ष ही प्रतीत वाच्य से ते
 कारणधी आत्मा प्रत्यक्ष से घटना रूप आदि श्रुति प्रत्यक्ष होवानी व श्रुति
 घटतु प्रत्यक्ष होतु जेवामां आवे से ते प्रभावे विज्ञान आदि श्रुति प्रत्यक्ष होवानी
 आत्मा पक्ष प्रत्यक्ष से ।

अहमिति ज्ञानम् आत्मविषयकं जायते । आत्मरूपविषयाभावे विषयिणोऽनुत्थानप्रसंगात् । न च देह एवास्य ज्ञानस्य विषय इति वाच्यम् । जीवरहितेऽपि देहे तदुत्पत्तिप्रसंगात् । अस्मिन्नहम्प्रत्यय आत्मविषयके सति तु किमहस्मि नास्मीति संशयो नोपपद्यते, अहम्प्रत्ययविषयस्यात्मनः सद्भावादहमस्मीति निश्चय एव संभवति । आत्मास्तित्वसंशये तु कस्यायमहम्प्रत्ययः स्यात्?, निर्मूलत्वेन तदनुत्थानप्रसङ्गात् । यदि संशयी जीव एव नास्ति, तर्हि अस्ति नास्तीति संशयः कस्य भवतु । संशयो हि विज्ञानारूपो गुण एव, न च गुणिनमन्तरेण गुणः सिध्यति ।

अभाव मे विषयी अर्थात् ज्ञान की उत्पत्ति नहीं हो सकती । शरीर ही इस ज्ञान का विषय है—अर्थात् 'अहम्' (मैं) का अर्थ आत्मा नहीं वरन् शरीर है, ऐसा कहना उचित नहीं, क्यों कि—ऐसा होता तो मृत शरीर में भी अहम्प्रत्यय होने लगता । आत्मा को विषय करनेवाले इस अहम्प्रत्यय की विद्यमानता में 'मैं हूँ या नहीं हूँ', इस प्रकार का संशय ही नहीं होता है, अहम्प्रत्यय के विषयभूत आत्मा का सदाभाव होने से 'मैं हूँ' इस प्रकार का निश्चय ही हो सकता है । आत्मा के अस्तित्व के विषय में संशय किया जाय तो प्रश्न उपस्थित होता है कि यह अहम्प्रत्यय किसे होता है । बिना कारण के ही तो उसकी उत्पत्ति नहीं हो सकती । यदि संशय करने वाला जीव ही नहीं है तो 'है या नहीं' इस प्रकार का संशय करता कौन है? संशय एक प्रकार का ज्ञान—गुण है और गुण, गुणी के अभाव में नहीं हो सकता ।

विषयना अभावमा विषयी अर्थात् ज्ञाननी उत्पत्ति नथी थर्ध शकती शरीर न आ ज्ञानने विषय छे, अर्थात् 'अहम्,' (हूँ) ने अर्थ आत्मा नथी अह्के शरीर छे, अेभ कडेवु ते उचित नथी, केभके ने अेभ डेय ते मृत शरीरमा अहम्प्रत्यय थर्ध शकथे आत्माने विषय करवा वाणे। आ-अहम्प्रत्ययनी विद्यमानतामा "हूँ छु के नथी" आ प्रकारने संशय न थते। नथी अहम्प्रत्ययना विषयभूत आत्मानो सद्भाव डोवाथी "हूँ छु" आ प्रकारने निश्चय न थर्ध शके छे आत्माना अस्तित्वना विषयमा संशय करवामा आवे तो प्रश्न उपस्थित थाय छे के आ अहम्प्रत्यय केने थाय छे? कारण बिना तो तेनी उत्पत्ति थर्ध शकती नथी ने संशय करवा वाणे एव नथी तो "हूँ छु के नहि" अे प्रकारने संशय करनार केवु छे? संशय अेक प्रकारने ज्ञान-शुष्प छे, अने शुष्प शुष्पिना अभावमा थर्ध शकते नथी

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातेऽप्यज्ञातं न मनसि, यथा घटे ज्ञाते पत्रे न ज्ञायते । गुणा कदापि द्रव्याद् मिन्स्तया सर्वा न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेष्वपि मिन्स्तया न सर्वा लभते । अथ गुणाः, अथ गुणीति नाममात्रतो भेदसत्त्वेऽपि न तत्त्वतो भेदः । यथा-अग्निगुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तमिन्न स्यात्तर्हि दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात् ।

तथा-यथात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तमिन्नो मवेत् तदा तस्य अद्वैत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्मदो न कदापिदासीत्, नाप्यस्ति, न च मविष्यतीति सिद्धम् ।

तुभ्यस्तु दुर्बलन्यायेन तव मते गुणेष्वपि मिन्स्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा भव्य का ज्ञान होने से अन्य का बोध नहीं हो जाता । जैसे-पर के जानेसे पर मात्रम नहीं होता । गुण द्रव्य से भिन्न कदापि नहीं रह सकते, और द्रव्य भी गुणों से भिन्न कदापि नहीं रह सकता । यह गुण है, यह गुणी है इस प्रकारका मंत्र नाममात्रका है, वास्तव में गुण-गुणी में मंत्र नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णगुण से अत्यन्त भिन्न होता तो वह दाह-कार्य (बस्त्र का काय) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से भिन्न होता तो आत्मा में बढ़ता जा जाती । अतः पर द्रव्य और गुण का मंत्र न करी जा न है, और न होगा ।

दुर्बलसम्बन्धमात्र से, सुन्दार मठ के अनुसार कदाचित् यह मान लिया जाय कि आत्मा गुणों से भिन्न है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष मन्त्र ही न हो पर इत्यर्थ प्रत्यक्ष नहीं घटते । अन्यत्र ज्ञान सवाधी अन्यतो ज्ञातं घटते नहीं, ज्ञेयके घटना ज्ञानशी पर भाव्य घटते नहीं (परन्तु ज्ञान यत्तु नहीं) । अथ द्रव्यशी कि न कदापि रही शकते नहीं । आ शुभ से अने अतः शुभी से अने प्रकाशने भेद नाममात्रतो से वास्तविक रीते शुभ-शुभीभां भेद नहीं अत्र अग्नि शुभी घटतना उष्णताशुभशी अत्यन्त भिन्न यद्यपि अथ तो ते दाहकार्य (जागवानु काय) इत्यादि असंभव यद्यपि अथ से ।

श्रीरु वात से से-आत्मा से घटतना ज्ञानशुभशी भिन्न दाह तो आत्माभां घटतना आधी अथ ज्येष्ठ भाते इत्य अने शुभतो भेद दाह पर अने इतो नदि से नदि अने यही पर नदि

इत्यनन्ततः अथशी तमात्र मन प्रभावे कदाचित् ज्ञेय आनी तद्विसे के आत्मा शुभशी भिन्न से अने तं शरने आत्मा प्रत्यक्ष असे न शक तो पर प्र. आ-२८.

न चाऽनैकान्तिकोऽयं हेतुः, यस्मादाकाशगुणः शब्दः प्रत्यक्षोऽस्ति, न पुनराकाशमिति वाच्यम्, शब्दस्याकाशगुणत्वाभावात् । शब्दो हि पुद्गलगुणः ऐन्द्रिय-कत्वाद् रूपादिवदिति ।

अस्तु, गुणाः प्रत्यक्षाः, गुणिनस्तु प्रत्यक्षत्वे किं मानम् ? उच्यते—गुणे-भ्योऽनन्यो गुणीति ज्ञानादिगुणानां प्रत्यक्षत्वादेवात्माऽपि गुणी प्रत्यक्षेण ज्ञायते । यदि गुणेभ्योऽन्यो गुणी स्यात्, तदा घटादयोपि गुणिनः प्रत्यक्षा न भवेयुः,

शङ्का—आप का दिया हुआ हेतु अनैकान्तिक है, क्यों कि आकाश के गुण शब्द का तो प्रत्यक्ष होता है किन्तु आकाश का प्रत्यक्ष नहीं होता ।

समाधान—ऐसा न कहिए, क्यों कि शब्द आकाश का गुण नहीं है । शब्द पुद्गल का गुण है, क्यों कि वह इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय) का विषय है, जो इन्द्रिय का विषय होता है वह पौद्गलिक ही होता है, जैसे—रूप आदि

शङ्का—गुणों को प्रत्यक्ष मान ले किन्तु गुणी के प्रत्यक्ष होने में क्या प्रमाण है ?

समाधान—गुण और गुणी का कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध है—गुणी, गुणों से अभिन्न होता है, अत एव गुणों का प्रत्यक्ष होने से आत्मा गुणी भी प्रत्यक्ष से प्रतीत होता है । अगर गुणी, गुणों से भिन्न होता तो गुणी घट आदिका भी प्रत्यक्ष न होता, क्योंकि सिर्फ रूपादि गुणों से भिन्न घट का कभी प्रत्यक्ष नहीं होता ।

शंका—आपे ने हेतु अर्हि आप्ये छे ते अनैकान्तिक छे, केमके आकाशने गुणु शब्द ते तो प्रत्यक्ष थाय छे, परतु आकाश प्रत्यक्ष यतु नथी

समाधान—अे प्रमाणे न कडो, केमके शब्द ते आकाशने गुणु नथी पणु शब्द ते पुद्गलने गुणु छे. केमके ते इन्द्रिय (श्रोत्रेन्द्रिय)ने विषय छे ने इन्द्रियने विषय होय छे ते पौद्गलिक न होय छे, नेम-रूप आदि

शंका—गुणेने प्रत्यक्ष मानी लधअे. परतु गुणीना प्रत्यक्षपणुमा शु प्रमाणु छे ?

समाधान—गुणु अने गुणीने कथंचित् तादात्म्य सम्बन्ध छे—गुणी, गुणेथी अभिन्न होय छे, अेटवे गुणेना प्रत्यक्षपणुथी आत्मा गुणी पणु प्रत्यक्ष प्रतीत थाय छे अगर ने गुणी, गुणेथी भिन्न होत तो गुणी घट आदि पणु प्रत्यक्ष थर्ध शकत नहि केमके मात्र रूपादि गुणेन प्रत्यक्ष होय छे, रूपादि गुणेथी भिन्न

रूपादिगुणमात्रस्यैव प्रत्यक्षत्वात् । अन्यस्मिन् ज्ञातज्यक्त्वात् न भवति, यथा पटे ज्ञाते पटो न ज्ञापते । गुणाः कदापि द्रव्यात् मिन्नतया सार्था न लभन्ते, एवं द्रव्यमपि गुणेष्वपि मिन्नतया न सार्था लभते । अयं गुणः, अयं गुणीति नाममात्रतो मेदसत्त्वेऽपि न उच्यते मेदः । यथा-अग्निर्गुणी स्वकीयादुष्णत्वगुणादत्यन्तमिन्नः स्यात्सर्वं दाहकार्यं कर्तुमसौ न शक्नुयात् ।

तथा-यद्यात्मा ज्ञानगुणादत्यन्तमिन्ना भवेत् तदा तस्य जडत्वापत्तिः स्यात् । तस्माद् द्रव्यगुणयोर्मदो न कदापिदासीत्, नाप्यस्ति, न च भविष्यतीति सिद्धम् ।

तुम्हणु दुर्जन्यायेन तप मते गुणेष्वपि मिन्नत्वाङ्गीकारेऽप्यात्मा प्रत्यक्षो मा अयं का ज्ञान होने से अयं का बोध नहीं हो जाता । जैसे-पट के आग्नेसे पट माहूम नहीं होता । गुण द्रव्य से मिन कदापि नहीं रह सकत, और द्रव्य भी गुणों से मिन कदापि नहीं रह सकता । 'यह गुण है, यह गुणी है' इस प्रकारका मेद नममात्रका है वास्तव में गुण-गुणी में मेद नहीं है । अगर अग्नि गुणी अपने उष्णतागुण से अत्यन्त मिन होता तो वह दाह-कार्य (बलने का कार्य) करने में असमर्थ होता ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा यदि अपने ज्ञानगुण से मिन होता तो आत्मा में जडता या शरीर । अत एव द्रव्य और गुण का मेद न कभी या, न है, और न होगा ।

दुर्जनमत्तोक्त्याय से, तुम्हारे मत के अनुसार कदाचित् यह मान कि या कि आत्मा गुणों से मिन है और इस कारण आत्मा का प्रत्यक्ष मते ही न हो

यं उच्यते प्रत्यक्ष नहीं यत् । अ-अनु ज्ञान भवामी अ-अने बोध यतो नहीं, जेभडे वदना ज्ञानधी यं माहूम यतो नहीं (परंतु ज्ञान यत्तु नहीं), शुष, इत्यधी कि न कदापि रही शकतो नहीं । आ शुषु छे अने आ शुषी छे जे प्रकारने से न नममात्रने छे वास्तविक रीते शुषु-शुषीमां सेद नहीं । अमर अग्नि शुषी योताना उष्णताशुषधी अत्यन्त मिन यत्तु अथ तो ते दाहकार्य (जालवानु कर्ष) इत्याभा असमर्थ यत्तु अथ छे

गीता वात जे छे उ-आत्मा जे योताना ज्ञानशुषधी मिन होय तो आत्माभां कठवा आवी अथ कोटला भाटे द्रव्य अने शुषुने सेद कोष पक्ष पक्षते कतो नहि, छे नहि अने कयी पक्ष नहि.

इह नयतोप न्यायधी तमाश भव प्रभक्षे कदाचित् जेभ भानी कर्षजे उ-आत्मा शुषुधी मिन छे अने ते कारणे आत्मा प्रत्यक्ष कते न यथ तो पक्ष प्र आ-पट

ભવતુ, અસ્તિત્વં ચ તસ્ય નિર્વાધમેત્ર । જ્ઞાનાદિગુણાઃ સન્તિ યસ્ય સ ગુણિરૂપ આત્મા કથમપલપ્યેત ।

નતુ દેહ એવ જ્ઞાનાદિગુણાઃ ઉપલભ્યન્તે તદાશ્રયતયા દેહ એવ રૂપાદીના ઘટ ઇત્ર ગુણી સિધ્યતિ, ન ત્વાત્મા । પ્રયોગશ્ચૈવમ્—દેહગુણા એવ જ્ઞાનાદયઃ, તત્રૈવોપલભ્યમાનત્વાદ્, ગૌરકૃશસ્થૂલતાદિવદિતિ ચેન્ન, જ્ઞાનાદયો ગુણા ન દેહ-સમ્બન્ધિનઃ, અમૂર્તત્વાદ્, અચાક્ષુષત્વાદ્ વા, ગગનવત્ । દ્રવ્યવિગ્રહિતો ગુણો ન ભવતિ ।

તથાપિ ઉસકે અસ્તિત્વ મેં કોઈ વાધા નહી આતી । જિસ કે જ્ઞાનાદિ ગુણ મૌજુદ હૈ ઉસ ગુણીરૂપ આત્મા કા અપલાપ કિસ પ્રકાર કિયા જા સકતા હૈ ? ।

શરૂઢા—દેહ મે હી જ્ઞાનાદિ ગુણ પાયે જાતે હૈ, અત ઇન ગુણો કા આધાર ગુણી દેહ હી હૈ, જૈસે—રૂપાદિ ગુણો કા આધાર ઘટ હૈ । આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણો કા આશ્રયભૂત ગુણી નહીં હૈ । અનુમાન ઇસ પ્રકાર હૈ—જ્ઞાન આદિ દેહ કે ગુણ હૈ, ક્યો કિ વે દેહ મેં હી ઉપલબ્ધ હોતે, જૈસે—ગૌરપન, દુવલાપન ઓર સ્થૂલતા આદિ ।

સમાધાન—યહ કહના ઠીક નહીં, જ્ઞાન આદિ ગુણ દેહ કે નહીં હૈ, ક્યો કિ વે અમૂર્ત હૈ ઓર અચાક્ષુષ (જો આંસુસે નહીં દીક્ષતા) હૈ, જો અમૂર્ત ઓર અચાક્ષુષ હોતે હૈ વે દેહકે ગુણ નહીં હોતે, જૈસે આકાશ ।

ગુણ, દ્રવ્ય કે વિના રહ નહીં સકતે અત જ્ઞાન આદિ ગુણોકા આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય અવગ્ય હોના યાહિષ । જ્ઞાનાદિ ગુણોકે અનુરૂપ જો અરૂપી એવ અચાક્ષુષ ગુણી હૈ વહ દેહ સે ભિન્ન આત્મા હી હૈ ।

આત્માના અસ્તિત્વમા કોઈ પ્રકારની હરકત આવતી નથી જેના જ્ઞાનાદિ ગુણુ ડૈયાત છે, તે ગુણીરૂપ આત્માને અપલાપ—(છતી વસ્તુને નથી એમ કહેવુ તે) કેમ કરવામા આવે ?

શ કા—દેહમા જ જ્ઞાનાદિ ગુણુ દેખાય છે, તે કારણથી એ ગુણોના—આધાર ગુણી દેહ જ છે, જેમ રૂપાદિ ગુણુ નો આધાર ઘટ છે આત્મા જ્ઞાનાદિ ગુણોના આશ્રયભૂત ગુણી નથી અનુમાન આ પ્રમાણુ છે—જ્ઞાન આદિ દેહના ગુણુ છે, કેમકે તે દેહમા જ ઉપલબ્ધ જણાય છે, જેમકે ગોરાપણુ, દુબલાપણુ અને સ્થૂળતા—બહાપણુ વગેરે

સમાધાન—એ પ્રમાણુ કહેવુ તે યોગ્ય નથી, જ્ઞાન આદિ ગુણુ તે દેહના ગુણુ નથી, કેમકે તે અમૂર્ત છે, અને અચાક્ષુષ છે (જે નેત્રથી દેખાતા નથી) જે અમૂર્ત અને અચાક્ષુષ હોય છે તે દેહના ગુણુ થઈ શકતા નથી, જેમ આકાશ ગુણુ, દ્રવ્ય વિના રહી શકતા નથી, તે કારણથી જ્ઞાન આદિ ગુણોના આધારભૂત કોઈ દ્રવ્ય હોવું જોઈએ એટલા માટે જ્ઞાનાદિ ગુણોને અનુરૂપ જે અરૂપી અને અચાક્ષુષ ગુણી છે, તે દેહથી ભિન્ન આત્મા જ છે

तस्माद् ज्ञानादिगुणानामनुभूयो यो रूपरहितोऽप्यभ्युपमं गुणी स दहाद् मिन्न
आत्माऽस्तीति विज्ञेय ।

न च ज्ञानादयो गुणा न देहसम्बन्धिन इत्यनुमानं प्रत्यक्षबाधितम्,
ज्ञानादिगुणानां देह एव प्रत्यक्षेण ज्ञानसद्भावादिति वाच्यम्, अस्य प्रत्यक्षस्या-
नुमानबाधितत्वात् । शरीरेन्द्रियमिन्नं ज्ञानादिगुणवत्त्वमनुमानेन सिध्यति ।
तथाहि—शरीरेन्द्रियमिन्नो ज्ञानादिगुणवानं तदुपरमेऽपि तदुपलम्भावाप्तुस्मत्वात् ।
यो हि यदुपरमेऽपि यदुपलम्भमर्थमनुस्मरति, स तस्मादन्यो दृष्टा, यथा—पञ्च-
पातापनोपलम्भावाप्तुस्मतां देवदत्तः, इत्यादि । केनचित् कारणेन दृष्टिबन्धि-
विषातेऽपि पूर्वदृष्टपदार्थानुस्मरणं भवतीत्यतो देहेन्द्रियादिभिर्भ्र आत्मा
गुणी सिध्यति ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है यह अनुमान, प्रत्यक्ष से बाधित है, क्या
कि—प्रत्यक्षप्रमाण स व देह में ही प्रतीत होते हैं यह कथन ठीक नहीं है, क्या
कि यह प्रत्यक्ष ही अनुमान से बाधित है । अनुमान स यह सिद्ध है कि—ज्ञान आदि
गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियों से कोई भिन्न पदार्थ (आत्मा) ही है । अनुमान
इस प्रकार है—ज्ञानादि गुणों का आधार शरीर और इन्द्रियां से भिन्न है, क्यों कि
उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है ।
बिसके नष्ट हो जाने पर भी बिसके द्वारा जाने हुए पदार्थ का जो स्मरण करता है
यह उस से भिन्न होता है । जैसे—पांच सिद्धिक्रिया द्वारा जाने हुए पदार्थों को स्मरण
करने वाला देवदत्त है, उसको किसी कारण से देहस की दृष्टि नष्ट हो जाने पर
भी पहले देहे हुए पदार्थ का स्मरण होता है । इस से भवतीति सिद्ध है कि—देह
और इन्द्रिय आदि से भिन्न आत्मा ही गुणी है ।

ज्ञानादि गुण देहसम्बन्धी नहीं है यह अनुमान प्रत्यक्ष से बाधित है
केभके प्रत्यक्ष प्रमाण ही ते देहमां च प्रतीत वाच्ये, त अन्य ठीक नहीं केभके
ते प्रत्यक्ष अनुमानही बाधित है अनुमानही के सिद्ध है के ज्ञान आदि गुणोने
आधार शरीर जाने इन्द्रियोंही केअं भिन्न पदार्थ (आत्मा) च है अनुमान का
प्रमाण है—ज्ञानादि गुणोने आधार शरीर जाने इन्द्रियोंही भिन्न है केभके तेना
नष्ट यथा उताम तेना द्वारा ज्ञेयता पदार्थानु स्मरणे ज्ञेय है तेना न च यथा पछी
पक्ष, ज्ञेय द्वारा ज्ञेयता पदार्थ तेना के स्मरण करे है ते तेनाही भिन्न ज्ञेय है
ज्ञेय पांच सिद्धिक्रिया द्वारा ज्ञेयता पदार्थानु स्मरणे कस्या बायो देवदत्त है
तेने केअं ज्ञेयही ज्ञेयवानी शक्ति नष्ट यथा उताम प्रथम देजेता पदार्थानु

भवतु, अस्तित्वं च तस्य निर्वाधमेव । ज्ञानादिगुणाः सन्ति यस्य स गुणिरूप
आत्मा कथमपलप्येत ।

ननु देह एव ज्ञानादिगुणाः उपलभ्यन्ते तदाश्रयतया देह एव
रूपादीनां घट इव गुणी सिध्यति, न त्वात्मा । प्रयोगश्चैवम्—देहगुणा एव ज्ञानादयः,
तत्रैवोपलभ्यमानत्वाद्, गौरकृशस्थूलतादिवदिति चेन्न, ज्ञानादयो गुणा न देह-
सम्बन्धिनः, अमूर्तत्वाद्, अचाक्षुपत्वाद् वा, गगनवत् । द्रव्यविरहितो गुणो न भवति ।

तथापि उसके अस्तित्व में कोई बाधा नहीं आती । जिस के ज्ञानादि गुण मौजूद हैं उस
गुणिरूप आत्मा का अपलाप किस प्रकार किया जा सकता है ? ।

शङ्का—देह में ही ज्ञानादि गुण पाये जाते हैं, अत इन गुणों का आधार
गुणी देह ही है, जैसे—रूपादि गुणों का आधार घट है । आत्मा ज्ञानादि गुणों का
आश्रयभूत गुणी नहीं है । अनुमान इस प्रकार है—ज्ञान आदि देह के गुण हैं, क्यों
कि वे देह में ही उपलब्ध होते, जैसे—गौरपन, दुबलापन और स्थूलता आदि ।

समाधान—यह कहना ठीक नहीं, ज्ञान आदि गुण देह के नहीं है, क्यों
कि वे अमूर्त हैं और अचाक्षुष (जो आंखसे नहीं दीखता) हैं, जो अमूर्त और
अचाक्षुष होते हैं वे देहके गुण नहीं होते, जैसे आकाश ।

गुण, द्रव्य के बिना रह नहीं सकते अत ज्ञान आदि गुणोंका आधारभूत
कोई द्रव्य अवश्य होना चाहिए । ज्ञानादि गुणोंके अनुरूप जो अरूपी एव अचाक्षुष
गुणी हैं वह देह से भिन्न आत्मा ही है ।

आत्माना अस्तित्वमा क्वैर् प्रकारनी उरुक्त आचती नथी जेना ज्ञानादि शुषु डैयात
छे, ते शुषुडैय आत्मानो अपलाप—(छती वस्तुने नथी जेम कडेवु ते) केम
करवामा आवे ?

शंका—हेडमा जे ज्ञानादि शुषु देषाय छे, ते कारणथी जे शुषुनो—आधार
शुषु हेड जे छे, जेम इपादि शुषुनो आधार घट छे आत्मा ज्ञानादि शुषुनो
आश्रयभूत शुषु नथी अनुमान आ प्रमाणे छे—ज्ञान आदि हेडना शुषु छे, केमके
ते हेडमा जे उपलब्ध जेषाय छे, जेमके गौरापणु, दुबलापणु अने स्थूलता-
—जरापणु वगेरे

समाधान—जे प्रमाणे कडेवु ते जेज्य नथी, ज्ञान आदि शुषु ते हेडना
शुषु नथी, केमके ते अमूर्त छे, अने अचाक्षुष छे (जे नेत्रथी देषाता नथी)
जे अमूर्त अने अचाक्षुष डैय छे ते हेडना शुषु थर् शकता नथी, जेम आकाश.
शुषु, द्रव्य विना रडी शकता नथी, ते कारणथी ज्ञान आदि शुषुनो आधारभूत
क्वैर् द्रव्य डैयुं जेछजे जेटला माटे ज्ञानादि शुषुनो अनुरूप जे अरूपी अने
अचाक्षुष शुषु छे, ते हेडथी भिन्न आत्मा जे छे

सात्मकं न भवति तत्रेष्टानिष्टप्रवृत्तिनिवृत्ती न भवतः, यथा घट इति । तथा च परश्वरीरे प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्यन्ते तस्मात् तत् सात्मकम्, इति ।

यद्वा-शरीरं सकर्तृकं, आदिमत्प्रतिनियताकारत्वात्, यत् पुनरकर्तृकं तत् आदिमत्प्रतिनियताकारमपि न भवति, यथा-मन्त्रधिकारः । यत्र कर्ता शरीरस्य, स आत्मा । मेवादावनैकप्रन्तिकत्वात्तन्नायादिमत्प्रतिशेषणम् ।

यद्वा-अस्तीन्द्रियाणामपिष्ठाता-आत्मा, तत्रानुमानप्रयोगक्षत्यम्—

नहीं होता उसमें इष्ट-अनिष्ट की प्रवृत्ति-निवृत्ति भी नहीं होती, जैसे घट । दूसरे के शरीर में भी प्रवृत्ति-निवृत्ति दली जाती है अतः वह सात्मक है ।

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ता से युक्त) है, क्यों कि वह आदिबाल्य और नियत आकार वाला है, जैसे घट । जो सकर्तृक नहीं होता वह अप्रतिबाल्य और नियत आकार वाला नहीं होता जैसे मेधा का विकार (जनाबट) । शरीर का जो कर्ता है वही आत्मा है । जो नियत आकार बाह्य सुमेरु आदि से व्यभिचार (हेतु हो और साध्य न हो) निवारण करने के लिये 'आदि बाल्य' विशेषण लगाया गया है ।

अथवा इन्द्रियोंका अपिष्टयता आत्मा है, इस विषय में अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए -

(आत्माधीशुक्त) नहीं तत्रा इष्ट-अनिष्टनी प्रवृत्ति-निवृत्ति पद्यवती नहीं, केमहे-
बट, अतन्ना शरीरमां पद्य प्रवृत्ति-निवृत्ति ज्ञेयमां आवे छ तेषी ते सात्मक छ

(२) शरीर सकर्तृक (कर्ताधीशुक्त) छ केमहे ते आदिबाल्य अने नियत आकार वाणु छ; केम घट के सकर्तृक नहीं होतां ते आदिबाल्य अने नियत आकार वाणां नहीं होतां केम विशेषण विकार (जनाबट) शरीरने के कर्ता छ ते आत्मा छ अर्हि नियत आकारवाणा सुमेरु आदिधी अभिचार (हेतु होय अने साध्य न होय) निवारण करवा भाटे आदिवाण्य' विशेषण लगाणु छ

अथवा-इन्द्रियोंने आदिष्ठाता आत्मा छ. आ विषयमां अनुमानने प्रयोग आ प्रमाद्ये करवे जेह ज्ये-

एवं च प्रत्यक्षप्रमाणेनात्मनोऽस्तित्वं निरूपितम् ।

अथ ज्ञानादिगुणानां स्वात्मनि प्रत्यक्षतया तदनन्यभूतः स्वात्माऽपि प्रत्यक्षो भवतु, परशरीरे तु कथमात्मनोऽस्तित्वं विजानीयात् ? इति, उच्यते—यथा स्वदेहे प्रत्यक्षेणात्मा विज्ञायते, तथा परदेहेऽप्यनुमानतो विज्ञेयः ।

(१) परशरीरं सात्मकम् इष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्तिदर्शनात्, यत्रेष्टानिष्टयोः प्रवृत्तिनिवृत्ती दृश्येते, तत् सात्मकं दृष्टं यथा—स्वशरीरम्, तथा यत्

इस प्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा का अस्तित्व निरूपण किया गया ।

अनुमान से आत्मा की सिद्धि—

शुद्धा—ज्ञान आदि गुणों का अपनी आत्मा में प्रत्यक्ष होने से उन गुणों से अभिन्न अपनी आत्मा को प्रत्यक्ष मान लिया जाय किन्तु दूसरे के शरीर में आत्मा का अस्तित्व कैसे जान सकते हैं ?

समाधान—जैसे—अपने शरीर में प्रत्यक्ष प्रमाण से आत्मा प्रतीत होता है, उसी प्रकार दूसरे के शरीर में अनुमानप्रमाण से आत्मा समझना चाहिए ।

अनुमान प्रमाण इस प्रकार है—

(१) दूसरे का शरीर सात्मक (आत्मा से युक्त) है, क्यों कि उस की इष्ट में प्रवृत्ति और अनिष्ट में निवृत्ति देखी जाती है । जहाँ इष्ट—अनिष्ट में प्रवृत्ति और निवृत्ति देखी जाती है, वह सात्मक होता है, जैसे—अपना शरीर । तथा जो सात्मक स्मरण रडे छे तेथी थराथर सिद्ध छे डे देड अने धन्द्रिय आदिथी सिन्न आत्मा न शुधी छे

आ प्रमाणे प्रत्यक्षप्रमाणेथी आत्माना अस्तित्वनु निरूपण कथुं छे

अनुमानेथी आत्माने सिद्धि—

शुद्धा—ज्ञान आदि शुद्धा पोताना आत्माना होवाथी, ते शुद्धाथी अलिन्न पोताना आत्माने तो प्रत्यक्ष मानी होवामां आवे, परतु थीलना शरीरमा आत्मानु अस्तित्व केवी रीते नथी शक्य ?

समाधान—जेवी रीते पोताना शरीरमा प्रत्यक्षप्रमाणेथी आत्मा प्रतीत थाय छे ते प्रमाणे थीलना शरीरमा अनुमानप्रमाणेथी आत्मा समजवे। नेध अने अनुमानप्रमाणे आ प्रमाणे छे -

(१) थीलनु शरीर सात्मक (आत्माथीयुक्त) छे, केमके तेनी छिटमा प्रवृत्ति अने अनिष्टमा निवृत्ति होवामा आवे छे न्या छिट—अनिष्टमा प्रवृत्ति—निवृत्ति होवामा आवे छे ते सात्मक होय छे जेम पोतानु शरीर. तथा जे सात्मक

(५) यद्वा—देहादिकं विद्यमानभोक्तृकम्, भोग्यत्वात्, यथा—अन्नरस्रा-
दिकम् । अन्नवस्त्रादीनां भोक्ता मनुष्योऽस्ति । यस्य च भोक्ता नास्ति तद् भोग्य-
मपि न भवति, यथा स्वरविषाणम्, भोग्यं च शरीरादिकं, तस्माद् विद्यमानभोक्तृकम् ।

(६) यद्वा—अस्ति देहादिकं स्वामिकं, संपातरूपत्वात्, मूर्तिमत्त्वात्,
पेन्द्रियत्वात्, चाक्षुषत्वात्, यथा—गृहादिकम् । गृहादीनां स्वामिनः देवदत्तादयः
सन्ति । यत् पुनरस्वामिकं तत् संपातरूपं न भवति, मूर्तिमत्तं भवति, पेन्द्रियं न
भवति, चाक्षुषं च न भवति, यथा—गगनकस्तुमम् । देहादिकं, चास्ति संपातारिरूपम्,
तस्माद् विद्यमानस्वामिकम् । यच्च देहादीनां स्वामी स चात्मेति ।

(५) अन्ना—देह आदि का भोक्ता कोई भवत्य है, क्योंकि कि वे भोग्य हैं जो भोग्य
होते हैं उन का भोक्ता भी होता है, जैसे—अन्न, वस्त्र आदि का । अन्न—वस्त्र आदि का
भोक्ता मनुष्य है । जिसका भोक्ता नहीं होता वह भोग्य भी नहीं होता जैसे गधे का मीन ।
शरीर आदि भोग्य हैं अतः उनका भोक्ता भवत्य है ।

(६) अन्ना—देह आदि का कोई स्वामी है, क्योंकि कि वे संपातरूप हैं, मूर्तिमान् हैं,
इन्द्रियों के विषय हैं और चाक्षुष हैं, पर आदि के समान । पर आदि के स्वामी देवदत्त
आदि हैं । जिसका कोई स्वामी नहीं होता वह संपातरूप नहीं होता मूर्तिमान् नहीं
होता इन्द्रिय का विषय नहीं होता और चाक्षुष (आंख से देखने वाला) भी नहीं होता,
जैसे—आकाशगुण्य । देह आदि संपातरूप हैं, अतः उन का स्वामी भवत्य है । देह आदि
का जो स्वामी है वही आत्मा है ।

(५) अन्ना—देह आदिने भोक्ता कोई भवत्य है, केमके ते भोग्य है ।
भोग्य भोग्य है तेने भोक्ता पण भोग्य है केमके अन्न, वस्त्र आदिने। अन्न—वस्त्र
आदिने भोक्ता मनुष्य है केने भोक्ता नहीं ते भोग्य पण नहीं, केम अमीकान्ना
शील शरीर आदि भोग्य है तेथी तेने भोक्ता भवत्य है

(६) अन्ना देह आदिने कोई स्वामी है केमके ते संपातरूप है मूर्तिमान् है
इन्द्रियोंने विषय है अने चाक्षुष है पर आदि प्रमाणे। पर आदिने स्वामी
देवदत्त आदि है केने कोई स्वामी नहीं ते संपातरूप पण नहीं, अने ते मूर्तिमान्
पण भोग्य नहीं इन्द्रियोंने विषय पण दोष नहीं अन्न चाक्षुष (नेत्रधीने कोई शक्य
तेषां) पण दोष नहीं, केमके आकाशगुण्य देह आदि संपातरूप है तेथी तेने
स्वामी भवत्य है, देह आदिने स्वामी है ते आत्मा है

(૩) ઇન્દ્રિયં સાધિષ્ઠાત્વકં, કરણત્વાત્ , યથા ચક્રચીવરમૃત્મુત્રદ્વંડાદયઃ, અસ્તિ હિ ચક્રચીવરાદીનામધિષ્ઠાતા કુલાલઃ । યચ્ચ નિરધિષ્ઠાત્વકં તત્ કરણમપિ ન ભવતિ, યથા—આકાશમ્ , યથેન્દ્રિયાણામધિષ્ઠાતા સ આત્મેતિ ।

(૪) યદ્વા—ઇન્દ્રિયવિષયયાણામાદાતા સંભવતિ, ઇન્દ્રિયવિષયયા શબ્દાદય આદાત્વસહિતાઃ આદાનાદેયભાવસદ્ભાવાત્ , સદશકલોહવત્ । યથા લોકે સદ-શકલોહાનામયસ્ફાર આદાતાઽસ્તિ । ઇન્દ્રિયવિષયયાણા આદાનાદેયભાવો વિદ્યતે, અતસ્તેષામપ્યાદાતાઽસ્તીત્યનુમીયતે । યત્ર તુ આદાતા નાસ્તિ, તન્નાદાનાદેયભાવોઽપિ ન વિદ્યતે, યથા—આકાશે ।

(૩) ઇન્દ્રિયાં કિસી સધિષ્ઠાતા સે યુક્ત હૈ, ક્યાં કિ—ત્રે કરણ હૈં, જૈસે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત ઓર દ્વંડ આદિ । ચક્ર, ચીવર આદિ કા અધિષ્ઠાતા કુમાર હૈ, જિસ કા કોઈ અધિષ્ઠાતા નહીં હોતા વહ કરણ મી નહીં હોતા, જૈસે—આકાશ । ઇન્દ્રિયાં કા જો અધિષ્ઠાતા હૈ, વહી આત્મા હૈ ।

(૪) અથવા ઇન્દ્રિયાં કે વિષય શબ્દ આદિ આદાતાયુક્ત (પ્રહણ કરને વાલે સે યુક્ત) હૈ, ક્યાં કિ ઉન મે આદાન આદેયભાવ મૌજૂદ હૈ, જૈસે સડાસી ઓર લોહે મેં, તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—લોક મેં સડાસી ઓર લોહે મેં આદાન (લેના) આદેયભાવ (જો લિયા જાય) પ્રસિદ્ધ હૈ ઓર ઉન કા આદાતા હુહાર હૈ, ઇસી પ્રકાર ઇન્દ્રિયાં તથા વિષયોં કા મી આદાન—આદેયભાવ હૈ, અત ઉનકા મી કોઈ આદાતા હોના ચાહિય । જહોં આદાતા નહીં હોતા વહોં આદાન—આદેયભાવ મી નહીં હોતા, જૈસે—આકાશ મેં ।

(૩) ઇન્દ્રિયો કોઈ પણ અધિષ્ઠાતાથી યુક્ત છે, કેમકે તે કરણ છે, જેમકે ચક્ર, ચીવર, મૃત્તિકા, સૂત અને દ્વંડ આદિ ચક્ર, ચીવર વગેરેનો અધિષ્ઠાતા કુમાર છે, જેનો કોઈ અધિષ્ઠાતા હોય નહિ, તે કરણ પણ હોય નહિ, જેમકે—આકાશ ઇન્દ્રિયોનો જે અધિષ્ઠાતા છે, તે આત્મા છે

(૪) અથવા—ઇન્દ્રિયોના વિષય શબ્દ આદિ આદાનયુક્ત—(અહણ કરવાવાળા—યુક્ત) છે, કેમકે તેમા આદાન—આદેય ભાવ મોજુદ છે જેમ સાણસી અને લોહમા તાત્પર્ય એ છે કે લોહમા સાણસી અને લોહમા આદાન—આદેય ભાવ પ્રસિદ્ધ છે અને તેના આદાતા હુહાર છે, આ પ્રમાણે ઇન્દ્રિયો તથા વિષયોનો પણ આદાન—આદેય ભાવ છે તેથી તેનો પણ કોઈ આદાતા હોવો જોઈએ ન્યા આદાતા નથી, ત્યા આદાન—આદેય ભાવ પણ હોય નહિ, જેમ આકાશમા

पुद्गलसंघातोपगूहत्वात्, सञ्चरीरत्वाच्च कर्षचिन्मूर्तत्वादिधर्मपुक्त एवास्तीति ।

(७) यद्वा—' जीव ' इति पदं सार्धकं, व्युत्पत्तिमन्वे सति असमासपदत्वाद् एकपदत्वाद् घटादिपदवत् । घटादिपदं व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं लोके दृष्टम्, तथा च जीवपदं, तस्मात् सार्धकम् । यत्तु सार्धकं नास्ति तद् व्युत्पत्तिमत् असमासपदमेकपदं च नास्ति, यथा—सरणिपाणादिकं, द्वित्यादिकं च पदम् । जीवपदं च न तथा, तस्मात् सार्धकम् ।

यद् व्युत्पत्तिमन्न भवति तदेकपदमपि सद् न सार्धकम्, यथा द्वित्यादिपदम्, इति हेतोरनैकान्तिकत्वापचित्तद्वाराणाय व्युत्पत्तिमन्विशेषणमुपासम् ।

हुए हैं इस लिए कोई दोष नहीं आता । संसारी आत्मा बाट कर्मों के समूह से युक्त होने के कारण तथा सञ्चरीर होने के कारण मूर्तत्व आदि धर्मों से युक्त ही है ।

(७) अथवा— जीव ' पद का वाच्य अन्वय है, क्योंकि यह पद व्युत्पत्ति वाच्य होते हुए समासरहित है, एक पद है, घट आदि पदों के समान । घट वगैरह पद व्युत्पत्तिवाले असमासपद एक पद लोके में देखे जाते हैं अतः उनके वाच्य भी अन्वय हैं । जीव ' पद भी ऐसा ही है, अतः वह भी सार्धक है । जो पद सार्धक नहीं होता वह व्युत्पत्तिवाला असमासपद, एक पद भी नहीं होता जैसे— सरणिपाज ' पद, अथवा द्वित्य पद, जीव पद ऐसा नहीं है अतः वह सार्धक है ।

जो व्युत्पत्ति वाच्य नहीं होता वह एक पद होते हुए भी सार्धक नहीं होता, जैसे द्वित्य ' आदि पद । इस हेतु में अनैकान्तिकता निवारण करने के लिए ' व्युत्पत्ति

धीजे, जे/वा आटे काष्ठ दोष आवतो नशी संसारी आत्मा आक कर्माना समूहभी युक्त होवाना कारणे तथा सञ्चरीर होवाना कारणे मूर्तत्व आदि धर्मोभी युक्तत्व से

(७) अथवा एव पदना वाच्य अन्वय से कारणे के पद व्युत्पत्तिवाले होवा छत्याय समासरहित से जेक पद से घट आदि पदोना समान. 'घट' जे व्युत्पत्तिवाले असमास पद जेक पद लोकेमां जेवामां आवे से, ते कारणधी तेलु वाच्य पद अन्वय से एव पद पदु जेतुं न से तेषी ते पदु सार्धक से. जे पद सार्धक नशी अतु ते व्युत्पत्तिवाला असमास पद जेक पद पदु अतु नशी जेभके अरनिपाजु (अपिधाना शीज) पद अथवा पदित्ये पद. एव-पद जेतु नशी. तेषी ते सार्धक से

जे व्युत्पत्तिवाले अतु नशी ते जेक पद होवा छत्याय पदु सार्धक नशी अतु जेभ पदित्ये' आदि पद.

आ जेतुमां अनैकान्तिकता निवारण कत्वा आटे ' व्युत्पत्तिवाले विशेषण प्र का-२२

न च—आदिमत्प्रतिनियताकारत्वादिहेतुभिः शरीरादीनां कर्त्रादय एव सिध्यन्ति, न तु प्रस्तुत आत्मेति वाच्यम् । अन्यस्येश्वरादेर्युक्त्यसहत्वेन कर्तृत्वाद्यसम्भवाद् देहादीना कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता, स्वामी चायमात्मैवेति निश्चयात् ।

ननु—घटादीनां कर्त्रादिरूपाः कुलालादयो मूर्तिमन्तः सघातरूपा अनित्यादिस्वभावाश्च दृष्टाः, इत्यतो जीवोऽप्येतादृश एव सिध्यति, एतद्विपरीतश्चास्माकं साधनीयः, इत्येवं साध्यविरुद्धसाधकतया हेतूनां विरुद्धत्वापत्तिरिति चेन्मन्त्रम्, संसारिणमात्मानं साधयितुं प्रवृत्तानामस्माकमेतद्वोपासंभवात् । संसारी चात्माऽष्टविधकर्म-

पूर्वोक्त—‘आदिमानं होते हुए नियत आकार वाले होने से’ इत्यादि हेतुओं से शरीर आदि के कर्ता आदि ही सिद्ध होते हैं, प्रस्तुत आत्मा सिद्ध नहीं होता, ऐसा नहीं कहना चाहिये क्यों कि—आत्मा से भिन्न ईश्वर आदिका कर्तापन युक्तिसङ्गत नहीं ठहरता, अतः देह आदिका कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता और स्वामी आत्मा ही है, ऐसा निश्चय हो जाता है ।

शङ्का—घट आदि के कर्ता कुलार वगैरह मूर्तिक, सघातरूप और अनित्य आदि स्वभाव वाले देखे जाते हैं, अतः जीव भी ऐसा ही सिद्ध होता है, मगर आपको इस से विपरीत धर्मोवाला आत्मा सिद्ध करने के कारण पूर्वोक्त हेतुओं में विरुद्ध दोष आता है ।

समाधान—ऐसा मत कहो । हम संसारी आत्मा सिद्ध करने के लिए उचित

पूर्वोक्त—‘आदिमानं होवा छताय नियत आकारवाणा हांवाथी’ इत्यादि हेतुओंवाथी शरीर आदिना कर्ता आदि न सिद्ध होय छे प्रस्तुत आत्मा सिद्ध थतो नथी अथ नहि कडेपु न्नेथ अथे, केभके आत्माथी भिन्न अधिर आदिनु कर्तापण्यु युक्ति सगत थतु नथो, तेथी देह आदिनो कर्ता, अधिष्ठाता, आदाता, भोक्ता अने स्वामी आत्मा न छे अथ निश्चय थथ नथ छे

शङ्का—घट आदिना कर्ता कुलार वगैरे मूर्तिक, सघातरूप अने अनित्य आदि स्वभाववाणा न्नेवामा आवे छे, तेथी एव पण्यु अथो न सिद्ध थाय छे परतु तभने तेनाथी विपरीत धर्मोवाणो आत्मा सिद्ध करवो छे, अथी स्थितिमा साध्यथी विरुद्ध सिद्ध करवाना कश्चे पूर्वोक्त हेतुओंवाथी विरुद्धता दोष आवे छे

समाधान—अथे प्रभाण्णे न कडेो, अथे संसारी आत्मा सिद्ध करवाभाटे तैयार थथा

विन्ता मतीयते । प्रकृतेऽपि प्राणी, मृत, जीवः, सत्त्व, इत्यादयो जीवसम्प्रदायस्य पर्यायाः, शरीर चतुः, कायो, देहः, गात्रमित्यादयस्तु शरीरसम्प्रदायस्य पर्याया 'अयं जीवस्तस्मान्न इन्तस्य' इत्यनेनापि देहस्थितस्य प्राणिन एव हिंसा निषिध्यते ।

आज्ञागमस्तु समस्त पञ्चात्मानं बोधयति, आत्मतत्त्वस्यैव सम्पददर्शनज्ञान-पारिभाष्यं तस्य मङ्गलत्वात् । तथापि कानिचिदागमवचनानि प्रमाणतया प्रदर्शयामः

‘से आयावादी’ इति प्रस्तुतमेव वचनं तावद् दृष्टव्यम् । ‘से ज पुन

सम्प्रदाय है, इस सिद्धि पटका अथ और आकार का अर्थ अस्मा-मस्मा है । इसी प्रकार जीव के पर्यायवाचक प्राणी, मृत जीव सत्त्व आदि शब्द अस्मा हैं और देह के पर्यायवाचक शरीर, चतुः, काय गात्र आदि भिन्न हैं, अत इन दोनों का अर्थ भी अस्मा होना चाहिये । यह जीव ह अत इनन करने योग्य नहीं है’ इस वाक्य द्वारा देह में स्थित प्राणी की ही हिंसा का निषेध किया जाता है ।

आगम से आत्मा की सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत सम्पूर्ण आगम आत्मा का बोधक है । आत्मतत्त्व के सम्बन्ध दर्शन ज्ञान और चरित्र के लिए ही आगम की प्रवृत्ति होती है फिर भी आगम के कतिपय वाक्य प्रमाणरूप में प्रवृत्त करते हैं —

सब से पहले- ‘से आयावादी’, इस प्रस्तुत वाक्य को ही जीविय

प्रमाणों अर्थात् पर्यायवाचक-प्राणी, मृत, जीव सत्त्व आदि शब्द अस्मा से अने देहना पर्यायवाचक-शरीर, चतुः, काय, गात्र आदि भिन्न से ते आटे से जनेना अर्थ पक्ष अस्मा से अर्थ अस्मा “आ अथ से तेषां इनन करवा योग्य नहीं” आ वाक्य द्वारा देहना पक्षों प्राणीनी ए हिंसाने निषेध करवाया अस्मा से

आत्मतत्त्व आत्मान्ती सिद्धि-

आप्त पुरुष द्वारा प्रणीत स पूरा आत्म आत्मतत्त्व बोधक से आत्मतत्त्वना अर्थदर्शन, ज्ञान अने आदि आटे ए आत्मतत्त्व प्रवृत्ति होय से, तो पक्ष आत्मना देहना वाक्य प्रमाणरूपमें प्रवृत्त करे से—

श्रीश्री प्रथम ‘से आयावादी’ आ प्रस्तुत-वाक्य वाक्यने ए अर्थ से अं पुन

यच्चैकपदं नास्ति किन्तु सामासिकम्, तदपि व्युत्पत्तिमत्त्वे सत्यपि सार्थकं नास्ति, यथा खरविषाणादिकमिति । तत्रानैकान्तिकत्वापत्तिदोषस्तत्परिहारार्थमेकपदत्वमिति ।

ननु देह एव जीवपदस्यार्थोऽस्तु कथं पुनरात्मा विज्ञायेत । देहरूपेऽर्थे जीवशब्दप्रयोगोऽपि दृष्टः, यथा—‘अयं जीवः, तस्मान्न हन्तव्यः’ इति । अतो देह एव जीवशब्दार्थतया ग्रहीतव्यः, इति चेन्न, पर्यायशब्दभेदाद् देहजीव-शब्दयोरर्थो भिन्न एवेति बोधनात्, यथा घटाकाशयोः, तत्र—घटकुम्भकलशादयो घटशब्दस्य पर्यायाः, आकाशनभोव्योमादयस्त्वाकाशशब्दपर्यायाः, अतस्तयोरर्थे

वाला विशेषण लगाया है । तथा जो एक पद नहीं है किन्तु समासयुक्त पद है वह व्युत्पत्तिवाला होते हुए भी सार्थक नहीं होता । जैसे खरविषाण आदि पद । इस में अनैकान्तिकता हटाने के लिए ‘एकपद’का प्रयोग किया गया है ।

शङ्का—जीव पदका अर्थ देह ही क्यों न मान लिया जाय ? आत्मा अर्थ कैसे समझा जाय ? देह के अर्थ में जीव शब्दका प्रयोग देखा भी जाता है, जैसे ‘यह जीव है, अतः हनन करने योग्य नहीं है’ । इस लिए जीव शब्द का अर्थ शरीर ही लेना चाहिए ।

समाधान—देहके और जीव के पर्यायवाची शब्द अलग अलग हैं, अतः दानों का अर्थ अलग-अलग ही मानना चाहिए । जैसे घटके पर्यायवाची कुम्भ, कलश आदि शब्द अलग हैं, और आकाश के पर्यायवाची शब्द नभ, व्योम, गगन आदि

आप्यु छे तथा जे अेक पद नथी परतु समासयुक्त पद छे ते व्युत्पत्तिवाळु डोवा छताय सार्थक थतु नथी जेम अरविषाळु आदि पद, तेमा अनैकान्तिकता डठाववा माटे—‘अेक पद’नेा प्रयोग करेलेा छे

शंका—‘एव’ पदनेा अर्थ देह शा माटे मानवामा नथी आवतेा ? आत्मा अर्थ जेम समन्य छे ? देहना अर्थमा एव शब्दनेा प्रयोग लेवामा पळु आवे छे. जेम—‘आ एव छे, तेथी डळुवा जेज्य नथी’ अेटला माटे एव शब्दनेा अर्थ शरीर जे लेवेा जेछेअे

समाधान—देह अने एवना पर्यायवाची शब्द नूहा नूहा छे तेथी अे अनेनेा जेध नूहेा-नूहेा मानवेा जेछेअे जेम घटना पर्यायवाची कुल, कलश आदि शब्द अलग छे, अने आकाशना पर्यायवाची शब्द-नभ, व्योम, गगन आदि शब्द अलग छे अे कारणुथी घटनेा अर्थ अने आकाशनेा अर्थ अलग छे अे

चेतना चात्मद्रव्यादात्मगतान्यसुखादिगुणतन्मानपायिनो । तामेवाभित्य ज्ञानदर्शना-
दिविधिषापयोगानां भिन्नभिन्नसमयवर्तिनां प्रैकात्मिकः प्रवाहो भवति । तस्याभेद-
नायाः कार्यरूपा पर्यायप्रवाहः स्वरूपेणोपयोग एव ।

उपयोगात्मकपर्यायप्रवाह इव सुखदुःखवेदनात्मकपर्यायप्रवाहस्तथा प्रवृत्त्या-
त्मकपर्यायप्रवाहादयोऽन्तःपर्यायप्रवाहा सह-गुणवत् प्रवर्तन्ते । अतश्चेतनागुण
इवात्मनि ज्ञानदर्शीर्यप्रभृत्येकैकगुणस्वीकरणीयतयाऽन्तःगुणाः सिध्यन्ति ।

आत्मनि चेतनाऽऽनन्दशीर्यादिगुणानां भिन्नभिन्ना विविधपर्याया
एकस्मिन् समय समुपलभ्यन्ते परन्तु एकस्य चेतनागुणस्य विविधाउपयोगपर्याया

के द्वारा ज्योत्स्ना नाना प्रकार के उपयोगों के रूप में परिणत होता है किन्तु चेतना,
जगत्प्रत्यय के रूप में तथा ज्योत्स्ना में रहने वाले सुख आदि गुणों के रूप में
सदा विद्यमान रहती है—कभी नष्ट नहीं होती उस के आधार पर ज्ञान दर्शन आदि
भिन्न भिन्न समयों में होने वाले अनेक उपयोगों का प्रवाह बहता है । उस चेतना
का कार्यरूप पर्याय-प्रवाह स्वरूपसे उपयोग ही है ।

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाह के समान सुख-दुःखवेदनात्मक पर्याय का
प्रवाह है, तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्यायप्रवाह आदि अन्तः पर्याय-प्रवाह एक साथ जारी
रहते हैं अतः चेतनागुण के समान ज्योत्स्ना में ज्ञानन्द, शीर्य आदि एक एक गुण
स्वीकार करते योग्य होते संभन्ध गुण सिद्ध होते हैं ।

ज्योत्स्ना में चेतन्य सुख शीर्य आदि गुणों की मिसर विविध पर्यायों एक ही
समय में उपलब्ध होती हैं, किन्तु एक ही समय में अनेक चेतनागुणों की विविध

तथा ज्योत्स्ना में श्रेयवाण्य शुभ आदि सुखेणा रूपमां केश्यां विद्यमान रहे छे
केछ वलत पद्य नारा प्रभती नथी तेना आधार पर नान, दर्शन आदि भिन्न
भिन्न समयमां भवावाण्य अनेक उपयोगेना प्रवाह पडेतो रहे छे ते चेतनाना
कार्यरूप पर्यायप्रवाह स्वतन्त्र उपयोग ए छे

उपयोगात्मक पर्याय-प्रवाहना समान सुख-दुःखवेदनात्मक पर्यायने प्रवाह
छे तथा प्रवृत्त्यात्मक पर्याय-प्रवाह आदि अन्तः पर्यायप्रवाह अनेक साथे जारी रहे
छे तेकी चेतनागुण समान ज्योत्स्ना में ज्ञानन्द शीर्य आदि अनेक-अनेक सुख स्वीकार
करना योग्य होवाची अन्तः शुभ सिद्ध भाष छे

ज्योत्स्ना में चेतना, सुख, शीर्य आदि सुखेणा भिन्न-भिन्न विविध पर्यायों
अनेक समयमां उपलब्ध भाष छे परंतु अनेक समयमां अनेक चेतनागुणों

જાણેજ્જા ' ઇત્યાદિ—' સોઽહ ' ઇત્યન્તં પ્રાગ્વ્યાખ્યાતં ચ (આચા૦ ૧ અ૦ ૧ ૩૦) ।
 ' અત્થિ આયા ' (અસ્ત્યાત્મા) ઇતિ । ' અત્થિ જીવા ' (સન્તિ જીવાઃ) ઇતિ ।
 ' ઇને આયા ' (એક આત્મા) (સ્થા૦ ૧ સ્થા૦ ૧ ૩૦) ઇતિ ।

“ કઙ્ઘિહા ણં મંતે ! દવ્વા પ્પણ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્પણ્ણત્તા, તંજહા-
 જીવદવ્વા ય, અજીવદવ્વા ય ” (અનુ સૂ. ૧૪૧)

ઇત્યાદીન્યનુસન્ધેયાનિ । અન્યેઽપિ સાંખ્યાદયઃ પ્રાયશ સ્વીકુર્વન્ત્યેવ
 શરીરાદ્ધિન્નતયાઽસ્ત્મનોઽસ્તિત્વમિતિ ।

આત્મનો દ્રવ્યત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા દ્રવ્યમસ્તિ, ચેતનાધનન્તગુણવત્ત્વાત્, જ્ઞાનદર્શનલક્ષણવિત્તિ-
 ધોપયોગાદ્યનન્તપર્યાયવત્ત્વાચ્ચ । ચેતનાદ્ધારેણાત્મા નાનારૂપોપયોગરૂપેણ પરિણમતે ।

‘ સે જં પુણ જાણેજ્જા ’ સે લેકર ‘ સોઽહ ’ તક પહલે વ્યાખ્યાન ક્રિયા જા ચુકા
 હૈ । (આચા ૧ અ ૧ ૩) તથા ‘ અત્થિ આયા ’ ‘ અત્થિ જીવા ’ ‘ ઇને આયા ’
 (સ્થા ૧ સ્થા ૧ ૩) તથા ‘ કઙ્ઘિહા ણં મંતે દવ્વા પ્પણ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા
 પ્પણ્ણત્તા, તજહા-જીવદવ્વા ય અજીવદવ્વા ય, (અનુ સૂ. ૧૪૧) ઇત્યાદિ અનેક
 આગમવાક્ય સમસ્ર લેને ચાહિણ । દૂસરે સાખ્ય વગૈરહ મી પ્રાય ગરીર સે મિન્ન આત્મા
 કા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરતે હૈ ।

આત્માકા દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય હૈ, ક્યોં કિ વહ ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોં સે યુક્ત હૈ
 ઔર વહ જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયોં વાલા મી હૈ । ચેતના
 જાણેજ્જા’ થી લઈને ‘ સોઽહ ’ સુધી પહેલા વ્યાખ્યાન કરી દીધુ છે (અચા ૧-અ
 ૧-૩) તથા ‘ અત્થિ આયા ’ ‘ અત્થિ જીવા ’ ‘ ઇને આયા ’ (સ્થા ૧ સ્થા ૧ ૩) ‘ કઙ્ઘિહા ણં
 મંતે ! દવ્વા પ્પણ્ણત્તા ? ગોયમા ! દુવિહા પ્પણ્ણત્તા, તંજહા-જીવદવ્વા ય અજીવદવ્વા ય’
 (અનુ સૂ ૧૪૧) ઇત્યાદિ અનેક આગમ-વાક્ય સમસ્ર લેવા ભેદએ ખીળ સાખ્ય
 શાસ્ત્ર વગેરે પણ પ્રાય શરીરથી ભિન્ન આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરે છે.

આત્માનુ દ્રવ્યત્વનિરૂપણ—

આત્મા દ્રવ્ય છે, કેમકે તે ચેતના આદિ અનન્ત ગુણોથી યુક્ત છે, અને તે
 જ્ઞાનોપયોગ તથા દર્શનોપયોગ આદિ અનન્ત પર્યાયો વાળો પણ છે ચેતનાદ્ધાર
 આત્મા નાના પ્રકારના રૂપમા પરિણુત થાય છે. પરંતુ ચેતના આત્મદ્રવ્યના રૂપમા

अनन्तगुणानामसङ्ख्यसमुदाय एव द्रव्यम्, तथाप्यात्मनश्चेतनाऽऽनन्द-
 चारित्रधीर्यादयो गुणा परिमिता एव साधारणधियां छषस्वानां ज्ञेया भवन्ति,
 न तु सर्वे गुणाः । इदमत्र कारणम्-विशिष्टज्ञानमन्तरेण आत्मनः सर्वे पर्यायप्रवाहा
 विहातुमशक्याः भवन्ति । यो य पर्यायप्रवाहः साधारणपुद्गला हातु शक्यते
 उन्कारणीभूतानां गुणानां व्यवहारः क्रियते, अतस्ते गुणा व्यवहार्या भवन्ति ।
 यथा-आत्मनश्चेतनाऽऽनन्दचारित्रधीर्यादयो गुणा व्यवहार्याः सन्ति । ज्ञेयास्तु
 सर्वे केवन्मिाम्या इति ।

त्रैकालिकानामनन्तपर्यायाभावेकैकप्रवाहस्य कारणीभूतकैस्यैकगुणोऽस्ति,
 तादृशानन्तगुणानां समुदायो द्रव्यम् । एतदपि कथञ्चिद् भेदविवक्षया । अमेद-

अनन्त गुणो का अन्वय समुदाय ही द्रव्य है फिर भी आत्मा के चेतना
 सुख, चारित्र धीर्य आदि गुण साधारणबुद्धि वाले छपरमा के द्वारा परिमित ही जाने
 जाते हैं, सब गुण नहीं जाने जाते । इस का कारण यह है कि-विशिष्ट ज्ञान के बिना
 आत्मा के समस्त पर्याय-प्रवाहों को जानना अशक्य है । जो जो पर्याय-प्रवाह
 साधारण बुद्धि के द्वारा जाना जा सकता है उसके कारणभूत गुणों का व्यवहार किया
 जाता है, अत एव व गुण व्यवहार्य होते हैं, जैसे-आत्मा के चेतना, सुख चारित्र और
 धीर्य आदि गुण व्यवहार्य होते हैं । शेष सब केवलविगम्य हैं ।

तब कुछ सम्बन्धी अनन्त पर्याय के एक-एक प्रवाह का कारण एक-एक
 गुण है, और ऐसे अनन्त गुणों का समुदाय द्रव्य है । यह कथन क्वचित् भेद

अनन्त गुणानां अणु समुदाय न द्रव्य है, तो पक्ष आत्माना चेतना सुख
 चारित्र, नीच आदि अणु साधारण बुद्धिवाला छपरमाद्वारा परिमित-भवेदित न
 अनुभवाभां आवे है परंतु सर्व अणु अनुभवाभां व्यवहार नहीं तेनु कारण ज्ञे है
 के-विशिष्ट ज्ञान बिना आत्माना नभस्त पर्याय-प्रवाहोंने अनुभव अशक्य है जे जे
 पर्याय-प्रवाह साधारण बुद्धिवाला द्वारा नहीं शक्य है तेना कारणभूत गुणोंने
 व्यवहार करवाभां आवे है जे कारणों ते अणु व्यवहार्य थाव है जेभ आत्माना
 चेतना सुख, चारित्र आने नीच आदि अणु व्यवहार्य थाव है नाही सब
 केवलविगम्य है

अणु काव सब भी अनन्त पर्यायाना जेक-जेक प्रवाहनु कारण जेक-जेक
 अणु है आने जेका अनन्त गुणोंने समुदाय ते द्रव्य है, अत कथन क्वचित्

एकस्मिन् समये न समुपलभ्यन्ते, तथैकस्यानन्दगुणस्य वा विविधा वेदनपर्याया एकस्मिन् समये नोपलभ्यन्ते ।

प्रत्येकगुणस्यैकस्मिन् समये एक एव पर्यायः प्रकटीभवति । यथा-जलावस्थितस्यापि नरस्य शीतोष्णोपयोगौ न युगपद् भवतः । उष्णोपयोगसमये शीतोपयोगो नोपलभ्यते, शीतोपयोगसमये चोष्णोपयोगोपि नैवेति ।

आत्मा नित्यः । तस्य चेतनादिगुणा अपि नित्याः । परन्तु चेतनाजन्य उपयोगपर्यायो न नित्यः, सतु सदैवोत्पादविनाशशालितया व्यक्तिरूपेणानित्यः । उपयोगपर्यायप्रवाहस्तु त्रैकालिकतया नित्य इति ।

उपयोगरूप पर्याये उपलब्ध नहीं होती । उसी प्रकार एक ही समयमें अकेले आनन्दगुणकी भी विविध वेदनरूप पर्यायें उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुण की एक समय में एक ही पर्याय प्रकट होती है, परन्तु जैसे-जल में स्थित पुरुष के शीत और उष्ण, दोनों उपयोग एक साथ नहीं होते । उष्णोपयोग के समय शीतोपयोग नहीं पाया जाता, और शीतोपयोग के समय उष्णोपयोग नहीं पाया जाता ।

आत्मा नित्य है, उसके चेतना आदि गुण भी नित्य हैं, परन्तु चेतना-जन्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं हैं, वह सदैव उत्पन्न और विनष्ट होती रहती है अतः व्यक्तिहरसे अनिय है, उपयोग-पर्याय का प्रवाह त्रिकालवर्ती होनेके कारण नित्य है ।

विविध उपयोगरूप पर्यायो उपलब्ध नहीं होती अनेक प्रमाणों अनेक न समयमा अनेकदा आनन्द गुणनी पणु विविध वेदनरूप पर्यायो उपलब्ध नहीं होती ।

प्रत्येक गुणनी अनेक समयमा अनेक पर्याय प्रकट थाय छे, जेभ नलमा उला रडेला पुरुषने शीत अने उष्ण, अने अने उपयोग अने साथे थशे नडि, उष्णोपयोगना समये शीतोपयोग थशे नडि अने शीतोपयोगना समये उष्णोपयोग नष्याशे नडि ।

आत्मा नित्य छे, तेना चेतना आदि गुण पणु नित्य छे, परतु चेतनाजन्य उपयोग-पर्याय नित्य नहीं, ते डुमेशा उत्पन्न अने नाश थती रडे छे, तेथी व्यक्तिरूपथी अनित्य छे, ते पणु उपयोग-पर्यायने प्रवाह त्रिकालवर्ती डोवाथी नित्य छे ।

आत्मनः स्वरूपम्—

आत्मनः स्वरूपं तावदुच्यते—

आत्मा—(१)—जीवः (२)—नित्यः (३)—चेतनावान्, (४)—उपयोगवान्, (५)—परिणामी, (६)—प्रभुः, (७)—कर्ता, (८)—साक्षाद्मोक्षा, (९)—स्वशरीर-परिमाणः, (१०)—अमूर्ता, (११)—प्रतिशरीरं भिन्नः, (१२)—पौत्रल्लिङ्गकर्मसंयुक्ता, (१३)—ऊर्ध्वगतिशीलम् ।

तत्राऽऽत्मनो जीवत्वादिरूपं निरूप्यते—

(१) जीवत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन सत्ता-वैतन्य-ज्ञानादिरूपैः शुद्धप्राणैः तथा

आत्मा का स्वरूप—

अब आत्मा का स्वरूप कहते हैं—

आत्मा—(१)—जीव है, (२)—नित्य है, (३)—चेतनावान् है, (४)—उपयोगवान् है, (५)—परिणामी है (६)—प्रभु है (७)—कर्ता है, (८)—साक्षात् मोक्षा है, (९)—अपने शरीर के बराबर है, (१०)—अमूर्त है, (११)—प्रत्येक शरीर से भिन्न है, (१२)—पौत्रल्लिङ्ग कर्मों से युक्त है, और (१३)—ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है ।

उन में अब आत्मा क जीवत्वादि स्वरूप का निरूपण करते हैं—

(१) जीवत्व का निरूपण—

आत्मा निश्चयनय से सत्ता-वैतन्य और ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणों से तथा

आत्मानु स्वरूप—

इसे आत्मानु स्वरूप कहे थे—

आत्मा—(१) सत् है (२) नित्य है, (३) चेतनावत है (४) उपभोजवत है (५) परिणामी है (६) प्रभु है (७) कर्ता है (८) साक्षात् मोक्षा है (९) पाताना शरीर बराबर है, (१०) अमूर्त है (११) प्रत्येक शरीरमा भिन्न भिन्न है (१२) पौत्रल्लिङ्ग कर्मोंसे युक्त है अने (१३) ऊर्ध्वगमन स्वभाववाला है

तथा आत्मानु सत्त्वादि स्वरूपं निरूपणं कर्त्तव्यम्—

(१) सत्त्वतद निरूपणम्—

आत्मा निश्चयनयसे सत्ता, वैतन्य अने ज्ञान आदिरूप शुद्ध प्राणोंसे, तथा

દૃષ્ટ્યા તુ પર્યાયાઃ સ્વસ્વકારણીભૂતસ્ય ગુણસ્ય સ્વરૂપાઃ, ગુણા અપિ દ્રવ્યસ્વરૂપા इति
ગુણપર્યાયાત્મકમેવ દ્રવ્યમિત્યુચ્યતે ।

દ્રવ્યેષુ સર્વે ગુણા એકરૂપા ન સન્તિ । તત્ર કતિચન સાધારણાઃ અનેક-
દ્રવ્યવર્તિનઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનશ્ચ । યથા-અસ્તિત્વ-પ્રદેશવત્ત્વ-જ્ઞેયત્વાદયઃ સર્વદ્રવ્યવર્તિનઃ,
નિષ્ક્રિયત્વાઽચેતનત્વાઽરૂપિત્વાદયોઽનેકદ્રવ્યવર્તિનઃ । કતિચિદસાધારણા ગુણા
એકદ્રવ્યમાત્રવર્તિનઃ સન્તિ । યથા-આત્મનશ્ચેતનાઽનન્દચારિત્રવીર્યાદયઃ ।
સ્વસ્વાઽસાધારણગુણાનાં તજ્જન્યપર્યાયાણાં ચાપેક્ષયા પ્રત્યેકદ્રવ્યમન્યદ્રવ્યાદ
ભિન્નમસ્તીતિ બોધ્યમ્ ।

વિવિક્ષા સે હી હૈ । અમેદ-વિવિક્ષા સે તો પર્યાયે અપને કારણભૂત ગુણ સે અભિન્ન હૈ
ઔર ગુણ, દ્રવ્ય સે અભિન્ન હૈ, અત ગુણપર્યાયરૂપ હી દ્રવ્ય કહલાતા હૈ ।

દ્રવ્ય મેં સમી ગુણ એકરૂપ નહી હૈં । કોઈ-કોઈ ગુણ સાધારણ હૈ, અર્થાત્
સામાન્ય રૂપ સે અનેક દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં, યા સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં ।
જૈસે-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ, ઔર જ્ઞેયત્વ, યે ગુણ સમસ્ત દ્રવ્યો મેં પાચે જાતે હૈં ।

નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, ઔર અરૂપિત્વ આદિ ગુણ અનેક દ્રવ્યવર્તી હૈં ।
કોઈ-કોઈ ગુણ અસાધારણ હૈં-સિર્ફ એક દ્રવ્ય મેં રહતે હૈં, જૈસે-આત્મા કે ચૈતન્ય,
સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ ગુણ । અપને-અપને અસાધારણ ગુણો ઔર ગુણો સે ઉત્પન્ન
પર્યાયો કી અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય દૂસરે દ્રવ્ય સે ભિન્ન હૈ, યેસા જાનના ચાહિદ્ ।

લેદવિવિક્ષાથી જ છે અલેદવિવિક્ષાથી તો પર્યાયો પોતાના કારણભૂત શુભુથી અભિન્ન
છે, અને શુભુ દ્રવ્યથી અભિન્ન છે તેથી શુભુપર્યાયરૂપજ દ્રવ્ય કહેવાય છે

દ્રવ્યમા સર્વ શુભુ એકરૂપ નથી, કોઈ કોઈ શુભુ સાધારણ છે, અર્થાત્-સામાન્ય
રૂપથી અનેક દ્રવ્યોમા જોવામા આવે છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યોમા જોવામા આવે
છે જેમ-અસ્તિત્વ, વસ્તુત્વ, પ્રદેશવત્ત્વ અને જ્ઞેયત્વ, એ શુભુ સમસ્ત દ્રવ્યોમા
જોવામા આવે છે નિષ્ક્રિયત્વ, અચેતનત્વ, અને અરૂપિત્વ આદિ શુભુ અનેક દ્રવ્યવર્તી છે
કોઈ કોઈ શુભુ અસાધારણ છે-માત્ર એક દ્રવ્યમા રહે છે જેવી રીતે આત્માના ચૈતન્ય,
સુખ, ચારિત્ર, વીર્ય આદિ શુભુ પોત-પોતાના સાધારણ શુભુ અને શુભુથી ઉત્પન્ન
પર્યાયોની અપેક્ષા પ્રત્યેક દ્રવ્ય ધીજ દ્રવ્યથી ભિન્ન છે, એમ સમજવુ જોઈએ.

दहन-पचन-गगनरूपपञ्चभूतेषु शुन्युपरि मिलितेषु चेतनालक्षण आत्मा कथं नोपसम्पते ? ।

यद्वा-मृतशरीरे पञ्चभूतसद्भावेऽपि चेतनालक्षण आत्मा नोपसम्पते । अतोऽप्यमात्मा बद्धरूपपाञ्चमौतिकदेहाद् भिन्नो निर्भीयते ।

अपरञ्च-आत्मना बद्धरूपत्वस्वीकारे कृतनाशोऽकृताभ्यागमभाषयेत् । कृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिं विनैव नाशः स्यात्, अकृतस्य कर्मणः फलप्राप्तिम् । अकृतुः फलप्राप्तिः, कर्तुम् नति इयमयुक्तम् । तस्मात्-आत्मा दहाद् भिन्नो जन्मान्तरसम्भ्रान्तोऽपीति निधेयम् ।

होला है तो चेतनारूप आत्मा क्या नहीं पैदा हो जाता, बही पांच भूतों का संयोग विद्यमान है और उसीसे आत्मा की उत्पत्ति मानते हो ।

अथवा-मृत शरीर में पांच भूतों का सद्भाव होने पर भी चेतनस्वरूप आत्मा क्या उपसम्पन्न नहीं होता । इस से निश्चित होता है कि आत्मा बद्धरूप पांच भूतों से भिन्न है और नित्य है ।

और भी आत्मा को देहरूप स्वीकार करने से कृतनाश और अकृतान्त्यागम दोष की प्राप्ति होगी । किण्वु कर्म फल दिए बिना ही नाश हो जायगा, और अकृत कर्म के फल को ममला पड़ेगा । कर्म न करने वाला फल भोगे और करने वाला फल से बच जाय यह तोना बात अनुचित है, अतः अतः यह निश्चय कर लना चाहिए कि-आत्मा शरीर से भिन्न है और जन्मान्तर में गमन करता है ।

चेतनारूप आत्मा કેમ પેદા થતો નથી ? જાદિ પાંચ ભૂતોનો સંયોગ વિદ્યમાન છે અને તેમાંથી તેને (નાસ્તિકો) આત્મની ઉત્પત્તિ માને છે ?

અથવા-મૃત્યુ પશિલા શરીરમાં પાંચ ભૂતોનો સદ્ભાવ હોવા છતાંય ચેતનસ્વરૂપ આત્મ કેમ ઉપસંપન્ન થતો નથી ? એ કારણથી નિશ્ચય થાય છે કે-આત્મા બદલ સ્વરૂપ પાંચભૂતોથી ભિન્ન છે અને નિત્ય છે

અને બીજી એ પણ છે કે-આત્માને દેહરૂપ સ્વીકાર કરવાથી કૃતનાશ અને અકૃતાભ્યાગમ દોષની પ્રાપ્તિ થશે, કરેલા કર્મ ફળ આપ્યા વિના જ નાશ થઈ જશે અને અકૃત-નાદિ કરેલા કર્મનું ફળ ભોગવવું પડશે કર્મ નહિ કરવાપણ્યને કર્મનું ફળ ભોગવવું પડે, અને કર્મ કરનાર ફળ ભોગવવામાંથી બચી જાય આ અને વાત અનુચિત છે એ કારણે એ નિશ્ચય કરી લેવો જોઈએ કે આત્મા શરીરથી ભિન્ન છે, અને જન્માન્તર ગમન કરે છે

व्यवहारनयतो यथासंभवं क्षयोपशमिकैरिन्द्रियादिद्रव्यप्राणैश्च जीवति, जीवित्यति, जीवितवांश्चेत्यतोऽयमात्मा 'जीवः' इत्युच्यते ।

“अयमात्मा न देहादन्यः, नापि जन्मान्तरसंक्रान्त ” इति नास्तिकमतं निराकर्तुमुक्तम्—“अयमात्मा जीवः” इति । पूर्वभवसंस्कारं विना कथमिह प्रसूत एव बालो मातुः स्तन्यपाने प्रवर्तते । प्रवृत्तिं प्रति स्वकृतिसाध्यत्वस्येष्टसाधनताज्ञानस्य च कारणतया बालस्य तज्ज्ञानजनकपूर्वभवीयसंस्कारोऽस्तीति विज्ञायते । तस्मादात्मनः पूर्वभवसम्बन्धोऽवधार्यते । तेन च देहमिन्नत्वमपि ज्ञायते ।

अयमात्मा यदि पाञ्चभौतिकदेहरूपः स्यात्, तर्हि मृन्मयभाण्ड—सलिल—

व्यवहारनय से यथासंभव क्षयोपशम—जन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणों से जीवित है, जीवित रहेगा और जीवित था, इस कारण आत्मा 'जीव' कहलाता है ।

“आत्मा शरीर से भिन्न नहीं है और न एक जन्म से दूसरे जन्म में जाता है” नास्तिकों के इस मत का निराकरण करने के लिए कहा गया है कि— “आत्मा जीव है” । पूर्वभव के संस्कार के विना इस भव में तत्काल जन्मा हुआ शिशु माता के स्तन—पान में कैसे प्रवृत्त हो सकता है ?, शिशु की इस प्रवृत्ति से सिद्ध होता है कि उस में पूर्व भव का संस्कार विद्यमान है । इस से निश्चित हो जाता है कि—आत्मा पूर्व भव में भी था, और इस कारण वह शरीर से भिन्न भी मादृश होता है ।

पाच भूतों से बना हुआ शरीर ही यदि आत्मा है तो मिट्टी का पात्र, पानी, पावक—(अग्नि), पवन और आकाश रूप पाचों भूतों का चूले के ऊपर जब संयोग

व्यवहारनयती यथासंभव क्षयोपशमजन्य इन्द्रियादि द्रव्यप्राणोऽपि ज्वित छे, ज्वित रहेशे अने ज्वित हुतो, तेथी आत्मा 'ज्व' कहेवाय छे “आत्मा शरीरथी बिन्न नथी, अने ओक जन्मथी पीण जन्ममां जतो नथी” नास्तिकानो ओ प्रमाणे जे मत छे, तेतु निराकरण करवा माटे कहु छे के “आत्मा ज्व छे.” पूर्व भवना संस्कार विना आ भवना तत्काल जन्म पावेतु आणक माताना स्तनपानमा (धावनामा) प्रवृत्ति केवी रीते करी शके छे ?, आणकनी आ प्रवृत्तिथी सिद्ध थाय छे के—तेनामा पूर्व भवना संस्कार विद्यमान छे आ कारणथी निश्चय थाय छे के आत्मा पूर्वभवमा पण हुतो, अने ते कारणथी आत्मा शरीरथी बिन्न मादृश पडे छे

पाच भूतोथी अनेतु शरीर ज जे आत्मा छे तो माटीतु पात्र, पाणी, अग्नि, आकाश, पवन वगैरे पाच भूतानो खुला उपर ब्यारे संयोग थाय छे, तो ते वधते

यथा-जातिस्मरणशक्त्या मृगापुत्रवत् सयमी पूर्वमेव स्मरति, व्याख्यादिकारणेन नटदृष्टिः पूर्वाभूत रक्तपीवादिवर्णं, नटभयवशं सर्वं स्मरति । यथा गेहगवाद्यैः पूर्वदृष्टस्य पूर्वभूतस्यान्यत्रानुस्मर्ता दृशदृशः ।

(२) नित्यत्वनिरूपणम्—

अथमात्मा नित्यत्वादमूर्त इति सिद्धायत । अमूर्तत्वान्च देहादन्य इति निर्णीयत । तथाहि-आत्माऽनुत्पत्तौ सत्पामविनाशी, तथा सर्वकालावस्थायी । तथा-आत्मा लणापक्षपाति न निरन्वयनाश्रयान् ; वस्तुत्वे सति उत्पत्तेरभावात्, ज्ञान स मृगापुत्र को पूर्व भव का स्मरण हुआ था । कर्ष-कोई सयमी अपन पूर्वभव का स्मरण करता है । रोग आदि किसी कारण से जिस की दृष्टि नष्ट हो गई है, वह पुरुष पहले अनुभव किए हुए लस पील आदि रंगों का स्मरण करता है और जिसका ज्ञान नष्ट हो गये हैं वह शब्द का स्मरण करता है । किसी पर की अन्तर्क्रिया के द्वारा पहलू देख हुए पशुओं का या सुन हुए दम्पती का देवदत्त का अन्वय स्मरण होता है, अतः पर देवदत्त अन्तर्क्रिया से भिन्न है । उसी प्रकार आत्मा इन्द्रिया से भिन्न है ।

(२) आत्माकी नित्यता—

आत्मा नित्य हान के कारण अमूर्त प्रवर्तित होता है और अमूर्त होने के कारण वेद से भिन्न है । यह इस प्रकार-मात्मा उत्पत्तिरहित और अविनाशी तथा सर्वज्ञान में स्थायी है तथा आत्मा क्षण भी अपेक्षा भी निरवश्य (ममूत) नाशवान् नहीं है नया कि वस्तु होने पर भी उस की उत्पत्ति नहीं होती, अतः अक्षय । ज्ञानधी मृगापुत्रने पूर्वभवनु स्मरण यद्यु दत्त कोष्ठ कोष्ठ सयमीने पेटान्ध पूर्व भवतु स्मरण्य शक्य है शन आदि कोष्ठ शरत्पथा रानी दृष्टि (नेत्रभी जेवानी शक्ति) नाश पामां तज छ ते पुत्र्य प्रथम अनुभवला लात, पीया आदि रजितु स्मरण्य करे छ अने जेना ज्ञान नष्ट यज तथा दोष- (साजगवानी शक्ति नाश यामी होय) ते शब्दतु स्मरण्य करे छ कोष्ठ परनी पशुभीया द्वारा प्रथम जेपेक्षा पराधीनु अथवा तो साजनेला शब्दतु देवदत्तने अन्वय-धीन शक्ये स्मरण्य शक्य छ जे शरत्पथी देवदत्त अ जीव्यधी भिन्न छ त प्रभाजे प्य मा धन्दिपेधी भित छ

(२) आत्मानो नित्यता—

आत्मा नित्य होवाना शरत्पु अमूर्त लजाय छ अने अमूर्त होवाना शक्ये, देवधी भिन्न छ, ते आ प्रभाजे-अथवा छ उत्तिरहित अने अचिन्तनी छ तथा अथ शरत्पथी शक्य छ अने शरत्पथी अपेक्षा यज निरन्वय (अमूर्त) नाशयन्त नहीं,

आत्मा देहे कदाचित्तिष्ठति, कदाचिन्न तिष्ठति, अतः तस्याभावस्तत्र नियतो नास्ति । तस्माद् देहादन्य इति मन्तव्यम् । एवमनुमानप्रयोगः—

आत्मा—देहादन्यः, तद्भावेऽपि तत्र तस्यानियमेनाभावात्, उपाश्रयगतसाधु-
श्रावकवत् । ननु देहे जीवस्य गमनागमन न दृश्यते, तथा च जीवस्य देहे सदा
सद्भावसत्त्वेनाभावरूपो हेतुरप्रसिद्ध इति चेन्न, मृतशरीरे तस्यादर्शनात् ।

यद्वा—आत्मा देहेन्द्रियभिन्नः तद्विगमेऽपि तदुपलब्धार्थानुस्मरणात् ।

आत्मा शरीर में कभी रहता है, कभी नहीं रहता, अतः उसका अभाव वहाँ नियत नहीं है । अतः एव मानना चाहिए कि—आत्मा देह से भिन्न है । अनुमान का प्रयोग इस प्रकार करना चाहिए —

आत्मा शरीर से भिन्न है, क्यों कि देह के होने पर भी आत्मा वहाँ नियम से नहीं रहता, उपाश्रय में स्थित साधु श्रावक के समान ।

शका—शरीर में जीव का गमन और आगमन दिखाई नहीं देता अतः वह देह में सदैव विद्यमान रहता है । ऐसी अवस्था में आप का यह अभाव सिद्ध करने वाला हेतु असिद्ध है ।

समाधान—ऐसा कहना समीचीन नहीं है, क्यों कि मृत शरीर में आत्मा माद्वम नहीं होता ।

अथवा—आत्मा देह और इन्द्रियों से भिन्न है, क्यों कि उनके नष्ट हो जाने पर भी उनके द्वारा जाने हुए पदार्थ का स्मरण होता है । जैसे जातिस्मरण

आत्मा शरीरमा केऽथ वपत रडे छे, केऽथ वपत नथी रडेते। तेथी तेने अभाव त्या बोधस इपथी नथी तेथी भानवु नेऽथे केः—आत्मा देहथी भिन्न छे, अनुमानने प्रयोग आ प्रभाणे करवे नेऽथे —

आत्मा शरीरथी भिन्न छे, केमके देह छोवा छताय आत्मा त्या नियमथी रडेते। नथी, उपाश्रयमा रडेला साधु श्रावक प्रभाणे

शंका—शरीरमा अवतु गमन-जवु, अने आगमन-आवतु ते नजरे नेवामा आवतु नथी, तेथी ते देहमा सदैव विद्यमान रडे छे जेवी अवस्थामा आपनेने अभाव सिद्ध करवाने हेतु असिद्ध छे जेम कडेवु ते परापर नथी, केमके मृत शरीरमा आत्मा माद्वम पडते। नथी

अथवा—आत्मा देह अने इन्द्रियोथी भिन्न छे, शरणा के—तेने नाश थया पथी पथु तेना द्वारा जणवामा आवेला पदार्थनु स्मरण थाय छे जेम जातिस्मरण

त्वामूर्षत्वयोरात्मन्येकान्ततोऽम्हीकारात् ।

यद्वा—आत्मा नित्यः ससारात्, त्रिकालविषयकक्रियापर्यालोचकत्वात्, 'स एव' इति प्रत्यभिज्ञावत्त्वात् । अनेन हेतुत्रयेण क्षणिकत्वात् निरस्तः ।

यद्यु—आत्मा-एकान्तनित्यः 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादिबचनप्रामाण्यात्, 'स एव भक्षयोऽत्र' इत्यादिभ्रुतिप्रामाण्यात्, इति, क्वन् युक्तम्, आत्मन एकत्वभावत्वे संस्र्वादिभ्यश्चकारोच्छ्वापचिः स्यात् । एस्मात् कथञ्चिन्नित्यः कथञ्चिन्नित्य इति

में व्यभिचार की आशङ्का नहीं करना क्यों कि अहम् में निरालम्बी और अमूर्खत्व एकान्त रूप से नहीं माना गया है ।

अथवा—अहम् निरालम्बी है, क्या कि वह एक गति से दूसरी गति में जाता है, नया कि वह त्रिकालविषयक क्रियाका आलोचक है, और वह प्रथमिज्ञान (वह वही है हम प्रकार का बोद्धरूप ज्ञान) प्राप्त है । इन तीन हेतुओं से क्षणिकत्वका निराकरण हो गया ।

'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि' इत्यादि बचन से और 'स एवः भक्षयोऽत्र' इत्यादि भ्रुति के प्रमाण से आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध होता है । ऐसा कहना भी युक्त नहीं है क्या कि आत्मा का एकान्त नित्य स्वभाव वास्तव मानने से संस्र्वाण (एक क्षण से दूसरे क्षण में जाना) आदि व्यवहारों का नश हो जायगा । अत एव कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य आत्मा स्वीकार करना चाहिए ।

अभिचारणी आशङ्का कस्वी नहि कस्वु के अहम्भां नित्यत्व अने अमूर्खत्व एकान्तरूपका माननामां आन्वु नहीं ।

अथवा—आत्मा नित्य है कस्वु के ते अने अतिथी वीछ अतिमां अथ है कस्वु के—ते त्रिकालविषयक क्रियाएं आलोचक (निरालम्बी कस्वु) है अने ते प्रथमिज्ञान (अथ तेव है अने प्रथमनु बोद्धरूप ज्ञान) बाणो है अथ तसु हेतुओं वडे कसी क्षणिकत्वात्तु निराकरण कर्ष अयु है

"नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि" इत्यादि बचनसे अने स एव भक्षयोऽत्रः इत्यादि भ्रुतिना प्रमाणसे आत्मा एकान्त नित्य सिद्ध बाय है अने अने हेतु ते पद्य युक्त नहीं, कस्वु के आत्माने एकान्त नित्य स्वभाव बाणो माननाथी संस्र्वाण (अने अ भरी वीछ अथ अयु ते) आदि व्यवहारोंने नश कर्ष लये, अने कस्वुकी कथञ्चित् नित्य अने कथञ्चित् अनित्य आत्मा है अने प्रमाणे स्वीकार कस्वु अने अने

યથા ગગનમ્ । અનુત્પત્તૌ મન્યામવિનાગિત્વેન, તથા સર્વકાલાવમ્યાયિત્વેન, તથા ક્ષણાપેક્ષયાઽપિ નિગ્નવ્યનાગ્રાભાવત્ત્વેન ચાન્મનો નિત્યન્વ મિષ્યતિ । દેહાન્મવાદિના પરિમિતકાલાવસ્થાયિત્વમાન્મનો મન્યતે, તથા ક્ષણિકગ્રાદિનાપિ નિરન્વય-ક્ષણિકપરિણામપ્રવાહસ્ય નિત્યન્વ સ્વીક્રિયતે । તૌ ચૈવવિધનિત્યત્વસાધનેન નિરાકૃતૌ । ગણશુદ્ધાદાવપિ જન્માભાવસત્ત્વેન હેતૌ માધ્યવ્યાપ્તિર્ન સ્યાદતો વસ્તુત્વે સતીત્યુક્તમ્ ।

ન ચામૂર્તત્વસ્ય પરમાણો વ્યભિચાર આગદ્ગનીયઃ, આર્હતમતે નિત્ય-

ઉત્પત્તિરહિત ઔર અવિનાશી હોને ક કારણ, તથા સર્વકાલ મેં વ્રિયમાન રહને કે ફાણ ઔર ક્ષણ કી અપેક્ષા મી સમૂલ નાશવાન ન હોને કે કારણ આમા કી નિયતા સિદ્ધ હોતો હૈ । દેહ કો હી આમા માનને ચાલા કહ્તા હૈ કિ-આમા પરિમિત કાલ તક ઠહરતા હૈ । તથા ક્ષણિકવાદી મી નિરન્વય ક્ષણિક પરિણામ-પ્રવાહ કો નિલ માનતા હૈ । ડસ પ્રકાર આત્મા કી નિલતા સિદ્ધ કરકે ડન દોનોં કે મત કા નિરાકરણ ક્રિયા ગયા હૈ । પ્રસ્તુત હેતુ મેં 'વસ્તુ હોતે હુણ મી' યહ વિશેષગ ડસ લિયે લગાયા હૈ કિ શય-વિષાણ આદિ સે વ્યભિચાર (હેતુ હો ઔર સાધ્ય ન હો) ન હો, કયોં કિ ઉત્પત્તિ કા અભાવ તો ડન મેં મી હૈ કિન્તુ વસ્તુત્વ ડન મેં નહીં હૈ ।

અમૂર્તત્વ, પરમાણુ મેં નહીં હૈ ઔર વહોં નિત્યત્વ હેતુ હૈ, ડસ લિયે પરમાણુ

કેમકે વસ્તુ છતાય તેની ઉત્પત્તિ નથી હોતી, જેમકે આકાશ. ઉત્પત્તિરહિત અને અવિનાશી હોવાના કારણે, તથા સર્વકાલમા વિદ્યમાન રહેવાના કારણે, અને ક્ષણની અપેક્ષાએ પણ સમૂળગો નાશવાન નહિ હોવાના કારણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ થાય છે. દેહને જ આત્મા માનવાવાળા કહે છે કે-આત્મા પરિમિત કાલ સુધી થાલે છે, તથા ક્ષણિકવાદી પણ નિરન્વય ક્ષણિક-પરિણામપ્રવાહને નિત્ય માને છે. આ પ્રમાણે આત્માની નિત્યતા સિદ્ધ કરીને એ બને (દેહવાદી અને ક્ષણિકવાદી)ના મતનું નિરાકરણ કર્યું છે. પ્રસ્તુત હેતુમા "વસ્તુ હોવા છતાંય પણ" એ વિશેષણ એ કારણથી આપ્યું છે કે-શય-વિષાણ-(સસલાના શિંગડા) આદિથી વ્યભિચાર (હેતુ હોય અને સાધ્ય ન હોય) ન થાય, કારણ કે ઉત્પત્તિનો અભાવ તો તેમા પણ છે, પરંતુ વસ્તુત્વ તેમા નથી.

અમૂર્તત્વ, પરમાણુમા નથી, અને ત્યા નિત્યત્વ હેતુ છે, એ કારણથી પરમાણુમા

यद्वा—आत्मा नित्यः स्वकारणविभागात्मात् आकाशदेव । आकाशस्य कारणाभावादेव कारणविभागो नास्ति । यस्तु न नित्यः, स न स्वकारणविभागात्मात्मात्, यथा पटः । दृश्यते हि पटस्त्वन्तुनां विभागो भवतीति ।

किञ्च—आत्मा नित्यः कारणविनाशमात्मात् आकाशदेव । कारण-मात्मादेव हि कारणस्य विनाशमात्मात्, यथा गगनमेव । यो न नित्यः, स न कारणविनाशमात्मात्मात् अर्थात् कारणविनाशवानेव, यथा पटः । दृश्यते हि पटकारणीभूतस्य तन्तोर्बिनाशो भवतीति । अयं चात्मा स्वकारणमात्मेन कारण विनाशमात्मात्मात्, तस्मात्नित्य इति । नित्यत्वादयममूर्तः, अमूर्तत्वाच्च क्षरीरात् मिथ इति निर्णीयते ।

अथवा—आत्मा नित्य है, क्योंकि उस के कारणों का विभाग नहीं है, जैसे आकाश । आकाश के कारणों का अभाव है, इसी कारण उसके कारणों का विभाग भी नहीं है । जो नित्य नहीं है, वह अपने कारणों के विभाग का अभाव वास्तव में नहीं होता जैसे—पट । पट से तन्तुओं का विभाग होता दिखाई देता है ।

और भी—आत्मा नित्य है, क्योंकि उसके कारणों के विनाश का अभाव है, जैसे—आकाश । कारणों का अभाव होने से ही कारणों के विनाश का अभाव है जैसे आकाश । जो नित्य नहीं होता वह कारण-विनाशमात्र वास्तव में नहीं होता, जैसे पट, ऐसा जाता है कि—पट के कारणभूत तन्तुओं का नाश हो जाता है । आत्मा के अनेक कारणों का अभाव है अतः वह कारणों के विनाशका अभाव वास्तव है, अर्थात् आत्मा के कारण ही नहीं है तो उसके कारणों का अभाव क्या होगा !

अथवा—आत्मा नित्य है इसलिए तेना कारणाना विभाग नहीं, जेअ आकाश आकाशने कारणाना अभाव है तेही अ तेना कारणाना विभाग पण नहीं, जे नित्य नहीं ते तेताना कारणाना विभागना अभाववाणे पण नहि थाव, जेअ पट पणही तत्त्वाने विभाग अते जेवामां आवे ।

इसी पक्ष—आत्मा नित्य है इसलिए ते कारण तेतना कारणाना विभागने अभाव है जेअ आकाश कारणाना अभाव होवाणी अ कारणाना विभागने अभाव है जेअ आकाश जे नित्य नहीं ते कारणविनाशमात्मात् पण नहीं, जेअ पट जेवामां आवे है ते—पटना कारणभूत तत्त्वाने नाश थाव है पण आत्मना अनेक कारणाने अभाव है तेही ते कारणाना विभागने अभाववाणे है अर्थात् आत्माने

स्वीकर्तव्यम् । द्रव्यार्थिकनयेन नित्यः, पर्यायार्थिकनयेन—अनित्य इति । एवमनङ्गीकारे हि 'संसारा'—दित्याद्युक्तहेतूनामसंगतिः स्यात् । आत्मन एकस्वभावत्वस्वीकारे स्वभावान्तरानापत्या वर्तमानकालिकभावातिरिक्तं भावान्तरं न लब्धुमर्हेत् । एवमनित्यत्वामूर्तत्वयोरपि स्याद्वाद आलम्बनीयः, अन्यथा व्यवहारोच्छेद-प्रसङ्गः स्यात्, एकान्तामूर्तस्य, तथैकान्ततो देहभिन्नस्य चातिपातादिप्रसङ्गाभावे सति हिंसादिनिवृत्तिदेशनादिपरकचरणकरणादिवोधकसकलशास्त्रानर्थक्य, तथाऽऽत्मनः संसारगर्तादनुद्धारश्च स्यात् ।

आत्मा द्रव्यार्थिकनय से नित्य है और पर्यायार्थिकनय से अनित्य है । ऐसा स्वीकार न करने पर 'संस्करण करने से' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असङ्गत हो जायेंगे । एक स्वभाव वाला आत्मा स्वीकार किया जाय तो उस में दूसरे स्वभाव की उत्पत्ति नहीं होगी, और वर्तमानकालीन भाव के अतिरिक्त दूसरा भाव कभी प्राप्त नहीं होगा । इसी प्रकार अनित्यत्व और अमूर्तत्व के विषय में भी स्याद्वादका ही आश्रय लेना चाहिए, अन्यथा व्यवहार के अभाव का प्रसङ्ग आएगा । आत्मा को एकान्त अमूर्त मानने से, तथा देह से एकान्त भिन्न मानने से उस का घात होना असम्भव है, और इस दिशा में हिंसा आदि से निवृत्त होने का उपदेश देने वाले चरण—करण आदि के बोधक सब शाल्म व्यर्थ हो जाएँगे । इस के अतिरिक्त आत्मा का संसाररूपी खड्के से कभी उद्धार भी नहीं होगा ।

आत्मा द्रव्यार्थिक नयधी नित्य छे, अने पर्यायार्थिक नयधी अनित्य छे अने प्रभाण्डे स्वीकार नहिं करवाधी 'संस्करण करवाधी' इत्यादि पूर्वोक्त हेतु असंगत थछे जशे अेक स्वभाववाणे आत्मा स्वीकार करवाभा आवशे तो तेभा भीअ स्वभावनी उत्पत्ति नहिं थाय, अने वर्तमानकालीन भाव विना भीअे लाव कोछ पणु वभत प्राप्त नहिं थाय, अे प्रभाण्डे अनित्यत्व अमूर्तत्वना विषयभा पणु स्याद्वादने ज आश्रय लेवे जेछअे अन्यथा व्यवहारना अभावने प्रसङ्ग आवशे आत्माने अेकान्त अमूर्त मानवाधी तथा देहधी अेकान्त भिन्न मानवाधी तेना घात थवे असम्भव छे, अने अे दशामा हिंसा आदिधी निवृत्त थवाने उपदेश देवावाणा अरणु—करण आदिना बोधक तमाम शास्त्रो व्यर्थ थछे जशे ते सिवाय आत्माने संसाररूपी भाडाधी कोछ वभत पणु उद्धार नहिं थाय

समाह्वयमे तु सुसदुःखाद्य सर्वे आत्मनोऽप्रच्युतानुत्पन्नस्यैवस्वभावतयाऽ-
न्यथास्वरूपपरिणामासंभवाभ्युपगमेन, नारकत्वादिभावो यस्य यादृशो विद्यते,
तदन्यरूपतां नास्ती प्रपद्येत ।

मायतोऽप्रसभस्यात्मन पूर्वरूपापरित्यागे सति पुनः प्रसभरूपताया
असंभवः स्यात् । इत्यतः पुनरप्रसन्नस्य क्त्वाचित् प्रसभताऽपि, सा नोपपद्येत ।
तस्मादेकान्तवादैः परित्यज्यामेकान्तवादः समालम्बनीयः ।

(३) चेतनावस्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन शुद्धचेतनासहित, व्यवहारनयन च कर्मादि
स्वीकार करने पर आत्मा अप्रच्युत अनुत्पन्न और स्थिर एकरूप तथा एक स्वभाव
पाया होने के कारण और उसमें रूपान्तर होना असंभव होने से सुख दुःखादि नहीं
हमारे अंत विभिन्न अवस्थाएँ भी नहीं हो सकेगी, फिर जो आत्मा नारकत्वादि
विस रूप में है वह सर्वथा उसी रूप में रहेगी—एक मय से दूसरे मय में नहीं जा
सकेगी । जो आत्मा अप्रसन्न है, मगर अप्रसन्न का भी कभी प्रसन्न होना दिखाई देता है,
फिर ऐसा न हो सकेगा । अत एव एकान्तवाद का त्याग करके अनेकान्तवाद का आग्रह
केना चाहिए ।

(३) चेतनावस्व—

यद् आत्मा निश्चयनय स शुद्ध चेतना से युक्त है और व्यवहारनय स
स्वीकार इत्यादि आत्मा अप्रच्युत अनुत्पन्न होने स्थिर कोकरे । तथा कोक स्वभाव
पाया होवाना कारणे तेभां रूपान्तर यत् असंभविता दोषाधी सुख-दुःखादि नदि
दोषः ते कारणधी विविक्त अवस्थायोः पक्ष यत् शक्ये नदि । इरी ए आत्मा
नारकत्वादि ने रूपमा छे ते सवदा ते रूपमा ए रह्ये । कोटत कोक अवस्थाधी
पीया अवमा अर्ध शक्ये नदि । वगी ने आत्मा अप्रसन्न छे त पीतान्त पूर्व रूपने
परित्याज न करे तो तेने इरी प्रसन्नताभां अत्यु ते असंभव छे परत अप्रसन्न
पक्ष कोछ वजन प्रसन्न कोष कोम दोषाय छे; इरी कोम नदि यत् शक्ये । को
कारणधी अनेकान्तवादने त्याज करीने अनेकान्तवादने आग्रह लवा कोछ को

(३) चेतनावस्व—

आ आत्मा निश्चयनयधी शुद्ध चेतनाधी युक्त छे अने व्यवहारनयधी 'आ आने

परन्तु एकान्तनित्यत्वे, एकस्यात्मनो नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवगतिपरिणामा नोपपद्येरन् । एकान्तक्षणिकत्वेऽपि स्वाध्यायाध्ययनध्यानादिपरिश्रमप्रत्यभिज्ञान नोपपद्येत । तस्मादात्मा कथञ्चिन्नित्यः, कथञ्चिदन्नित्यः, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

यत्तु—“द्रव्यक्षेत्रकालभावैरेकान्तेनैव नित्यः, अविचलितस्वभाव आत्मे”—ति वदन्ति तत्सर्वमयुक्तम् । तथा सति सुखदुःखससारमोक्षानामनुपपत्तिरापद्येत । तत्र हि आह्लादानुभवरूपं क्षणं सुखं, तापानुभवरूपं दुःखम्, तिर्यङ्मनुष्यनारक- देवभवसंसरणरूपः संसारः, अष्टविधकर्मबन्धवियोगो मोक्षः । एकान्तवाद-

इस लिए आत्मा नित्य है । आत्मा नित्य होने के कारण अमूर्त है, और अमूर्त होने के कारण शरीर से भिन्न है ।

किन्तु आत्मा को एकान्त नित्य मानने पर एक ही आत्मा नरक तिर्यञ्च, मनुष्य और देवगतिरूप नाना पर्यायों को प्राप्त नहीं होगा । और एकान्त क्षणिक मानने पर भी स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदि का परिश्रम वृथा हो जायगा, और प्रत्यभिज्ञान का अभाव हो जायगा । अत एव आत्मा कथञ्चित् नित्य और कथञ्चित् अनित्य है, ऐसा अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

जो लोग द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव से आत्मा को एकान्त नित्य अविचल स्वभाव वाला मानते हैं, वह सब अयुक्त है । ऐसा मानने से सुख, दुःख, ससार और मोक्ष नहीं बन सकते । आह्लाद का अनुभव करनारूप क्षण सुख कहलाता है । सताप का अनुभव करना दुःख है । तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक और देव भव में जाना ससार है । आठ प्रकार के कर्मबन्ध का वियोग होना मोक्ष है । एकान्तवाद

कारण न् नर्था तेा पछी तेना कारणोना अभाव शु थशे ? अे कारणथी आत्मा नित्य छे आत्मा नित्य डोवाना कारणे अमूर्त छे अने अमूर्त डोवाना कारणे शरीरथी भिन्न छे

परतु आत्माने एकान्त नित्य मानवाथी अेक न् आत्मा नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य अने देवगतिरूप नाना पर्यायेने प्राप्त नहि थाय, अने एकान्त क्षणिक मानवाथी पणु स्वाध्याय, अध्ययन, ध्यान आदिने परिश्रम वृथा थथे, अने प्रत्यभिज्ञानने अभाव थथे न् थशे, अे कारणथी आत्मा कथञ्चित् नित्य अने कथञ्चित् अनित्य छे अे प्रभाळे न् र स्वीकारवु न् थथे

अे भाषसे द्रव्य, क्षेत्र, काल अने भावथी आत्माने एकान्त नित्य, अविचल स्वभाव वाणी माने छे, ते सर्व अयुक्त छे अे प्रभाळे मानवाथी सुख, दुःख ससार अने मोक्ष णनी शकशे नहि आह्लादाने अनुभव करवाइय क्षण सुख कडेवाय छे सतापने अनुभव करवे ते दुःख छे तिर्यञ्च, मनुष्य, नारक अने देवत्वमा न् वु ते ससार छे. आठ प्रकारना कर्म ण धने वियोग थयो ते मोक्ष छे एकान्तवाद

अयमारम्भा इन्द्रार्धनोपयोग्यां न मिथ इति बोधयित्तु उपयोगवानिति, इदं च ज्ञानात्मनोरेकान्तमद इति नैयायिकमतं निराकर्तुमुक्तम् । सर्वज्ञ सिद्धान्ते तु ब्रह्म बन्तुतो गुणपर्यायस्यो न मिथम्, अतः कथञ्चिदमेद विवक्षयाऽऽभयिमां परिकल्प्य-उपयोगवानिति निगदितम् ।

उपयोगो द्विधा-ज्ञानदर्शनमेवात् । सविकल्प उपयोग एव ज्ञानोपयोगः । निर्विकल्प उपयोगो दर्शनोपयोग । तत्र ज्ञानोपयोगोऽष्टविधः-मतिश्रुतावधिमत पर्यय कथनानि पञ्च सम्यग्ज्ञानानि, मति-श्रुत-विमग-मदेन प्रीम्यज्ञानानि चेति । अज्ञानान्यपि ज्ञानरूपतया ज्ञानवर्गे निक्षिप्तानि । अप्रैकमेव कवलज्ञानं सायिकं सर्वा-

आत्मा ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग से भिन्न नहीं है' यह बतलाने के लिए उसे उपयोगवान् कहा है । ज्ञान और आत्मा का एकान्त मन्त्र है' ऐसा नैयायिका का मत है । इस मत का निराकरण करने के लिए यह कथन किया गया है । सर्वज्ञ के सिद्धान्त में ब्रह्म वास्तव में गुण और पर्याय से भिन्न नहीं है, अतः कथञ्चित् मन्त्र को विवक्षा करके व्यापारापेय भाव की कल्पना से उपयोगवान् कहा है ।

उपयोग के दो भेद हैं-ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग । सविकल्प उपयोग को ज्ञानोपयोग कहते हैं और निर्विकल्प उपयोग दर्शनोपयोग कहलमता है । इनमें से ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है-(१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान (३) अवधिज्ञान (४) मन-पर्ययज्ञान (५) केवलज्ञान, (६) कुमतिज्ञान (७) कुश्रुतज्ञान और (८) विमग्नज्ञान, अन्तर्के तीन अज्ञान कहलमते हैं । ये विपरिज्ञानरूप होने के कारण इन्हें ज्ञान की कोटि में रक्ता है । इनमें

आत्मा ज्ञानोपयोग होने इन्द्रार्धनोपयोगी भिन्न नहीं, जो जलापवा भाटे च तेने उपयोगवान् कही से ज्ञान होने अज्ञानाना ज्येकान्त वेद से ज्येवे नैवाधिज्ञाने मत से जो मततु निराकरण करवा भाटे जो कथन कस्वामां आन्तु से सर्वज्ञान सिद्धान्तमा इन्द्र जो वास्तवमा श्रुत होने पर्यायधी भिन्न नहीं तथा कथञ्चित् वेदनी विवक्षा करीने व्यापारापेय भावनी कल्पनाधी उपयोगवान् कही से ।

उपयोगना के दो भेद से-(१) ज्ञानोपयोग होने (२) इन्द्रार्धनोपयोग सविकल्प उपयोगने ज्ञानोपयोग कही से होने निर्विकल्प उपयोग से इन्द्रार्धनोपयोग कहीवाच से । तेमा ज्ञानोपयोग अष्ट प्रकारने से (१) मतिज्ञान (२) श्रुतज्ञान, (३) अवधिज्ञान, (४) मन-पर्ययज्ञान, (५) केवलज्ञान, तथा (६) कुमतिज्ञान, (७) कुश्रुतज्ञान होने (८) विमग्नज्ञान । तेमा छेवटना त्रय अज्ञान कहीवाच से परतु विपरिज्ञानरूप होवाना कारणे तेने ज्ञाननी कोटिमा सञ्चा से ज्येमा ज्ये

પીડયત્યાત્માનમિતિ જ્ઞાનરૂપાશુદ્ધચેતનયા સહિતશ્ચેતનાવાનિત્યુચ્યતે । ચેતનાવાનિતિ કથશ્ચિદુચ્યતે; આત્મા વસ્તુતશ્ચેતનાસ્વરૂપ ઇવાસ્તિ । આત્મનો ગુણશ્ચેતનેતિ સર્વેપા મતં, તદભિપ્રાયેણ ચેતનાવાનિત્યુક્તમ્ । ચેતના દ્વિવિધા—શુદ્ધા, અશુદ્ધા ચેતિ । જ્ઞાનચેતનૈવ શુદ્ધચેતના । કર્મચેતના, તથા કર્મફલચેતના ચાશુદ્ધચેતનોચ્યતે ।

(૪) ઉપયોગવત્ત્વનિરૂપણમ્—

અયમાત્મા નિશ્ચયનયેન કેવલજ્ઞાનકેવલદર્શનરૂપાભ્યાં શુદ્ધોપયોગાભ્યાં સહિતો વ્યવહારનયેન મતિજ્ઞાનાદુપયોગયુક્તશ્ચેત્યતોડયમુપયોગવાનિત્યુચ્યતે ।

‘આત્મા કો કર્મ પીડિત કરતે હૈ’ ઇસ પ્રકાર કે જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતના સે યુક્ત હૈ અત ઇવ આત્મા ચેતનાવાન્ કહલાતા હૈ । આત્મા કો કિસી અપેક્ષા સે હી ચેતનાવાન્ કહતે હૈ, વાસ્તવ મેં તો આત્મા ચેતનારૂપ હી હૈ । ‘ચેતના આત્મા કા ગુણ હૈ’ ઇસા સવકા મત હૈ, ઇસી અભિપ્રાય સે ડસે ચેતનાવાન્ કહ દિયા હૈ । ચેતના ડો પ્રકાર કી હૈ—શુદ્ધ ચેતના ઓર અશુદ્ધ ચેતના । જ્ઞાન ચેતના હી શુદ્ધ હૈ । કર્મચેતના ઓર કર્મ-ફલચેતના અશુદ્ધ ચેતના હૈ ।

(૪) ઉપયોગવત્ત્વ—

યહ આત્મા નિશ્ચયનય સે કેવલજ્ઞાન ઓર કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ । વ્યવહારનય સે મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોં સે યુક્ત હૈ, અત ઇવ આત્મા ઉપયોગવાન્ કહલાતા હૈ ।

કર્મો પીડિત કરે છે’ ઓ પ્રકારના જ્ઞાનરૂપ અશુદ્ધ ચેતનાથી યુક્ત છે એટલા માટે આત્મા ચેતનવાન્ કહેવાય છે આત્માને કોઈ અપેક્ષાથી જ ચેતનવાન્ કહે છે, વાસ્તવમા તો આત્મા ચેતનારૂપ જ છે ‘ચેતના આત્માનો ગુણ છે’ ઓ પ્રમાણે સર્વનો મત છે ઓ અભિપ્રાયથી તેને ચેતનાવાન્ કહી દીધો છે ચેતના ઓ પ્રકારની છે (૧) શુદ્ધ-ચેતના અને (૨) અશુદ્ધ-ચેતના જ્ઞાનચેતના જ શુદ્ધ છે, કર્મચેતના અને કર્મફલચેતના તે અશુદ્ધ-ચેતના છે

(૪) ઉપયોગવત્ત્વ—

આ આત્મા નિશ્ચયનયથી કેવલજ્ઞાન અને કેવલદર્શનરૂપ શુદ્ધ ઉપયોગોથી યુક્ત છે વ્યવહારનયથી મતિજ્ઞાન આદિ ઉપયોગોથી યુક્ત છે ઓ કારણે આત્મા ઉપયોગવાન્ કહેવાય છે

नद्रूपत्वापत्तिः । आत्मनि ज्ञानस्य नित्यानादिसम्बन्धस्वीकारेऽपि पदार्थद्रव्य
रूपनायां पुनस्तत्सम्बन्धरूपसमवायस्य रूपनायां महद् गौरवम्, तस्माद्
गुणघृणिनोर्बस्तुतस्तादात्म्यस्वीकार एवोचितस्यमर्हति । यदि गुणघृणिनोरभेद
एव समवायोऽपीत्युच्यते तर्हि नास्ति काऽपि सति । तत्र—

“ गुणपर्ययतादात्म्यः—विच्छिष्टं द्रव्यमुच्यते ।
उत्पत्तिमयनैयत्वं,—पर्यायास्तस्य श्लाघताः ॥ १ ॥ ” इति ।

(५) परिणामित्वनिरूपणम्—

अयमात्मा परिणामी । प्रतिसमयमपरापरपर्यायेषु गमनं परिणामः,

हो पाया। आत्मा में ज्ञान का निम्न-अनादि सम्बन्ध स्वीकार किया जाय तो दो
पदार्थ मानने पड़ेगे और उन दोनों अर्थात् अत्मा और ज्ञान को सम्बद्ध करने के लिये
तैमिर समवाय सम्बन्ध मानना होगा यह बड़ा गौरव होगा । अत एव गुण और गुणीका
वास्तव में तादात्म्य सम्बन्ध स्वीकार करना ही उचित है । अगर गुण और गुणी के
अभेद को ही समवाय सम्बन्ध कहते हो तो उसे स्वीकार करने में कोई हानि नहीं है ।
कहा भी है —

जो गुण और पर्याय के तादात्म्य से मुक्त हो वह द्रव्य कहसकता है । उस द्रव्य
की पर्याय सद्य उत्पत्ति और विनाशवासी हैं और वे अनादिप्रवाहरूप हैं ॥ १ ॥

(५) आत्मा का परिणामीपन—

आत्मा परिणामी है । प्रत्येक समय एक पर्याय को छोड़कर दूसरा पर्याय

आत्मा वह यहाँ ज्यो आत्माने विने ज्ञानने निम्न-अनादि सलध स्वीकार करवाभा
आवे तो के पदार्थ मानवा पज्ये अने ते अने अर्थात् अत्मा अने ज्ञान ते
अने ने अजलक कस्या भाँ नीने केई समवाय अलध मानवे पज्ये, जे आरे
औरते यजे ते काश्चधी अल अने शुद्धीने। वास्तवभां तादात्म्य अलध स्वीकार
करवे जेकर उचित ऐ अववा अल-अलुनीना असेवने ए समवाय अलध अजे। ते।
तेने स्वीकार करवाभा केई प्रकारे चानि नही। कसु पज्य ऐ —

जे अल अने पर्यायना तादात्म्यधी मुक्त होव ते द्रव्य अवेवाच ऐ ते द्रव्यनी
पयोधे अद्य उत्पत्ति अने विनाश वागी ऐ अने त अनादिप्रवाहरूप ऐ ॥१॥

(५) आत्मान् पस्तिभाभीपव —

आत्मा पस्तिभाभी ऐ प्रत्येक समय जेक पर्यायने जेदी नीने पयोध धारण
करवा ते पस्तिभाभी अवेवाच ऐ त पस्तिभाभी जेभां होव ते पस्तिभाभी अवेवाच ऐ

वरणरहितं सर्वतः शुद्धमस्ति । अन्यानि मतिज्ञानादिकानि चत्वारि ज्ञानानि क्षायो-
पशमिकानि देशत आवरणरहितानि देशतः शुद्धानि । त्रीण्यज्ञानान्यशुद्धानि ।
दर्शनोपयोगस्य चत्वारो भेदाः— (१) चक्षुर्दर्शनम्, (२) अचक्षुर्दर्शनम्, (३)
अवधिदर्शनम्, (४) केवलदर्शनं च । तत्रैकं केवलदर्शनं क्षायिक सर्वतोऽनावरणं
सर्वतः शुद्धं च । चक्षुर्दर्शनादीनि त्रीणि क्षायोपशमिकानि देशतोऽनावरणानि
देशतः शुद्धानि च सन्ति ।

‘ज्ञानादिगुणतः सर्वथा भिन्न आत्मे’ ति नैयायिकाद्यभिमतं तु न युक्तम्,
ज्ञानादिगुणसम्बन्धात् प्राक् कदाचिद् ज्ञानादिगुणहीनोऽप्यासीदिति तस्य मते
एक मात्र केवलज्ञान क्षायिक है, सम्पूर्ण आवरण से रहित और पूर्ण शुद्ध है । शेष मतिज्ञान
आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक है, देशत आवरणरहित हैं और देशत शुद्ध हैं । तीनों
कुज्ञान अशुद्ध हैं ।

दर्शनोपयोग के चार भेद हैं—(१) चक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधिदर्शन
और (४) केवलदर्शन । इनमें से अकेला केवलदर्शन क्षायिक है, पूर्ण रूप से आवरणरहित है
और पूर्णरूप से शुद्ध है । चक्षुर्दर्शन आदि तीन क्षायोपशमिक हैं, देशत निरावरण
हैं, और देशतः शुद्ध है ।

‘आत्मा ज्ञानादि गुणों से सर्वथा भिन्न है’ ऐसा नैयायिक आदि का मत युक्त
नहीं है, क्यों कि ज्ञानादि गुणों का सम्बन्ध होने से पहले किसी समय आत्मा को
ज्ञानादि गुणों से रहित भी मानना पड़ेगा और इस प्रकार उन के मत में आत्मा जड़
मात्र केवलज्ञान क्षायिक छे, सपूर्ण आवरणरथी रहित अने पूर्ण शुद्ध छे भाडीना
मतिज्ञान आदि चार ज्ञान क्षायोपशमिक छे, देश थकी आवरणरहित छे अने देश
थकी शुद्ध छे, त्रषु कुज्ञान अशुद्ध छे.

दर्शनोपयोगना चार भेद छे—(१) अक्षुर्दर्शन, (२) अचक्षुर्दर्शन, (३) अवधि-
दर्शन अने (४) केवलदर्शन नेमाथी अेक केवलदर्शन क्षायिक छे पूर्णरूपथी आवरणर-
रहित छे, अने पूर्णरूपथी शुद्ध छे अक्षुर्दर्शन आदि त्रषु क्षायोपशमिक छे, देश
थकी निरावरण छे अने देश थकी शुद्ध छे

“आत्मा ज्ञानादि गुणोथी सर्वथा भिन्न छे” अेवा नैयायिक आदिने मत
युक्त नथी—उच्यते नथी, कारण के ज्ञानादि गुणोने न भय थया पडेला डोर्ध समय
आत्माने ज्ञानादि गुणोथी रहित पषु मानवे पडसे, अने अे प्रभाषे तेना मतमा

सामर्थ्यात्, तथा व्यवहारनयत संसारतत्कारणरूपाद्युदपरिणामार्थपरिणमन-
शक्तिमत्त्वात् प्रसुरित्युच्यते ।

अयमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकतया, रत्नत्रयेण मोक्षसाधकतया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-
शक्तिमत्तया च प्रसुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-दिति नास्तिकमतं
निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽप्यात्मन प्रसूत्वमस्तीति सवेद्यते । यथा-अन्नपटसमलान्धन्
रविचन्द्र-ज्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैमत्स्यं प्राप्नुवत्, सर्वपाऽन्नपटसमलादि-
व्यपगमे सर्वतो भाषनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिमिरयुद्ध आत्मा क्रमशः
शुद्धिं सममानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्थ्यवात्मा है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अद्भुत
परिणमो के लिए परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रसु कहलाता है ।

यह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, रत्नत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की
और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रसु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’
ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के लिए सर्वज्ञरूप में ही आत्मा का प्रसूत्व सूचित
किया गया है । जैसे-मेघपटक तथा मछ से आच्छादित सूर्य, अन्नमा की ज्योति, सुवर्ण या
चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अन्नपटक या मछ के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से शुद्ध
हो जाने हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अद्भुत आत्मा धीरे-धीरे शुद्ध होता हुआ पूर्ण
शुद्धता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण शुद्ध आत्मा ही सर्वज्ञ कहलाता है ।

भाटे परिणमन-सामर्थ्य वाग्यो है तथा व्यवहार नयशी संसार होने संसारना
कारणरूप अद्भुत परिणमो भाटे परिणत बचानी शक्तिशी युक्त है आ कारणशी
आत्मा प्रसु कहोवाय है

आ आत्मा मोक्षमार्गने उपदेश देवानी रत्नत्रयना द्वारा मोक्षसाधननी होने
अनसत्ताप्राप्तिनी शक्तिशी युक्त होवाना कारणे प्रसु है । “कोई सर्वज्ञ नहीं”
ज्येवो के नास्तिकमत है तेजु निराकरण करवा भाटे सर्वज्ञरूपमां पञ्च आत्मानु प्रसूत्व
सूचित कर्तुं है जेम-मेघसमुद्र तथा मछशी आच्छादित सूर्य, अन्नमाणी ज्योति,
सुवर्ण अथवा चांदी वगैरे कर्मशी निर्मल वतां वतां मेघसमुद्र अथवा मछना
जशी जवाशी पूर्ण शुद्ध रूपमां ज्योती जय है-शुद्ध कर्म जय है, ते प्रभाज्ये रज-द्वेष
आदिशी अद्भुत आत्मा धीरे धीरे शुद्ध कर्तुने पूर्ण शुद्धता प्राप्त करी ले है जे
प्रभाज्ये पूरु शुद्ध आत्मा व सर्वज्ञ कहोवाय है ।

सोऽस्यास्तीति परिणामी । अनेन 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति मतं निराकृतम् । 'आत्मा कूटस्थनित्यः' इति स्वीकारे पूर्वदशायां यथाविध आत्मा, तथाविध एव ज्ञानोत्पत्तिसमयेऽपि भवेत्, तदा पूर्वमविज्ञातात्मा कथं पदार्थविज्ञाता स्यात्, प्रतिनियतस्वरूपस्याप्रच्युतिरूपता कौटस्थ्यमिति स्वीकारात् । यदि तदा पदार्थ-विज्ञातृत्वं स्वीक्रियते तदा पूर्वमविज्ञातुर्विज्ञातृरूपत्वे परिणामापत्त्या तन्मते कौटस्थ्य-भङ्गः । तस्मादात्मनः परिणामित्वमवश्यं स्वीकरणीयम् ।

(६) प्रभुत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा निश्चयनयेन मोक्षतत्कारणरूपशुद्धपरिणामार्थं परिणमन-

धारण करना परिणाम कहलाता है । यह परिणाम जिस में हो वह परिणामी । इस विशेषण से आत्मा की कूटस्थनित्यता का निराकरण किया गया है । आत्मा कूटस्थ नित्य है, ऐसा स्वीकार करने पर आत्मा जैसा पहले अज्ञाता था वैसा ही ज्ञान की उत्पत्ति के समय भी रहेगा । ऐसी दशा में आत्मा पहले अज्ञाता था तो बाद में पदार्थों का ज्ञाता कैसे होगा ? क्यों कि आप के मत के अनुसार प्रतिनियत स्वरूप से च्युत न होना—जैसा का तैसा ही बना रहना—कूटस्थता है । अगर बाद में आत्मा को पदार्थों का ज्ञाता स्वीकार करते हो तो पहले जो अज्ञाता था, उस का ज्ञाता के रूप में परिणमन हो गया अतः कूटस्थनित्यता नष्ट हो गई । अतः एव आत्मा को परिणामी अवश्य मानना चाहिए । आत्मा कूटस्थ नित्य नहीं वरन् परिणामी नित्य है ।

(६) आत्मा का प्रभुत्व—

निश्चयनय से आत्मा मोक्ष और मोक्ष के कारणरूप शुद्ध परिणामों के लिए

आ विशेषणार्थी आत्मान्नी कूटस्थनित्यतानु निराकरणं कथुं छे "आत्मा कूटस्थ नित्य छे" ज्येवे स्वीकार करवाथी आत्मा जेवे पड़ेला हुतो तेवे ज्ञाननी उत्पत्तिना समयमा पणु रडेथे, ज्येवी दशामा आत्मा पड़ेला अज्ञाता हुतो तो पछी पदार्थोने ज्ञाता केवी रीते थथे ?, डेमके—आपना मत प्रमाणे प्रतिनियत स्वरूपथी च्युत नहि थता जेवे छे तेवे ज्ञानी रहे ते कूटस्थता छे अगर तो पछीथी आत्माने पदार्थोने ज्ञाता स्वीकार करे छे तो प्रथम जे अज्ञाता हुतो तेनु ज्ञाताना रूपमा परिणमन थछ गथु, तेथी कूटस्थरूप नित्यता नाश पामी गछ, आ कारणार्थी आत्माने परिणामी अवश्य मानवे जेछ ज्ये आत्मा कूटस्थ नित्य नथी परतु परिणामी नित्य छे

(६) आत्मानु प्रभुत्व—

निश्चय नय प्रमाणे आत्मा मोक्ष अने मोक्षना कारणरूप शुद्ध परिणामो

सामर्प्यात्, तथा व्यवहारनयतः संसारवत्कारणरूपाद्युदपस्थिामार्थं परिणमन-
शक्तिमत्त्वाच्च मसुरित्युच्यते ।

अथमात्मा मोक्षमार्गोपदेशकत्वाया, स्तत्रयेण मोक्षसाधकत्वाया, सर्वज्ञत्वप्राप्ति-
शक्तिमत्त्वाया च मसुरित्युच्यते । “सर्वज्ञो नास्ति कश्चि”-इति नास्तिकमतं
निराकर्तुं सर्वज्ञतयाऽऽयात्मनः मसुत्वमस्तीति संवेद्यते । यथा-अन्नपटलसम्मलान्छन्
रविपन्द्र-स्योतिः, सुवर्णं रजतं वा क्रमशो नैमर्त्यं प्राप्नुवत्, सर्वथाऽन्नपटलमलादि-
व्यपगमे सर्वतो भावेनापि शुद्धिं प्राप्नोति, तथा रागद्वेषादिमिरद्युद् आत्मा क्रमशः
शुद्धिं क्रममानः पूर्णशुद्धिमपि प्राप्नोति स एवात्मा ‘सर्वज्ञः’ इत्युच्यते ।

परिणमन-सामर्प्यबलम् है, तथा व्यवहार नय से संसार और संसार के कारणरूप अद्युद्
परिणमो के सिद्ध परिणत होने की शक्ति से युक्त है । इस कारण आत्मा प्रभु कहलता है ।

मह आत्मा मोक्षमार्ग का उपदेश देने की, स्तत्रय के द्वारा मोक्षसाधन की
और सर्वज्ञताप्राप्ति की शक्ति से युक्त होने के कारण प्रभु है, ‘कोई सर्वज्ञ नहीं है’
ऐसे नास्तिकमत का निराकरण करने के सिद्ध सर्वज्ञरूप में ही आत्मा का प्रमुख स्थिति
किया गया है । जैसे-मेघपटल तथा मल से आच्छादित सूर्य, पत्रमा की ग्योति सुवर्ण या
चांदी, क्रम से निर्मल होते-होते, अन्नपटल वा मल के सर्वथा हट जाने पर पूर्णरूप से छुद्
हो जाने हैं उसी प्रकार रागद्वेष आदि से अद्युद् आत्मा धीरे-धीरे छुद् होता हुआ पूर्ण
छुद्ता प्राप्त कर लेता है । इस प्रकार पूर्ण छुद् आत्मा ही सर्वज्ञ कहलता है ।

भाटे परिष्कृत-सामर्थ्यं वाणे ३ तथा व्यवहार नयधी संसार जाने संसारना
कारणरूप अद्युद् परिष्कृतो भाटे परिष्कृत बचानी शक्तिधी युक्त ३ अ कारणधी
आत्मा प्रभु कहोवाय ३

आ आत्मा मोक्षमार्गोपदेश देवानी स्तत्रयना द्वारा मोक्षसाधननी जाने
सर्वज्ञताप्राप्तिनी शक्तिधी युक्त होवानी कारणे प्रभु ३ “कोई सर्वज्ञ नहीं है”
ऐसे नास्तिकमत ३ तेनु निराकरण कत्वा भाटे सर्वज्ञरूपमां पद्युद् आत्मानु प्रभुत्व
स्थिति कर्तुं ३ जेम-मेघसमुक्त तथा मलधी आच्छादित सूर्य, अन्नपटली ज्योति,
सुवर्ण अथवा चांदी वजरे कभी निर्मल कर्ता कर्ता मेघसमुक्त अथवा मलना
जशी ज्योति पूर्य शुद्ध रूपमां ज्योति जय ३-शुद्ध सधं जय ३, ते प्रभावे राज-द्वेष
आदिधी अद्युद् आत्मा धीरे धीरे शुद्ध कर्तनी पूर्य शुद्धता प्राप्त करी ले ३ जे
प्रभावे पूर्य शुद्ध आत्मा ए सर्वज्ञ कहोवाय ३

किञ्च—आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

(७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा—अदृष्टादिकर्मकरणात्, निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात्, व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नो कर्मवाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तृत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तृमुक्तम्—‘आत्मा कर्ते’ति ।

दूसरी बात यह है कि—आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वकीय कल्याण—साधन में स्वयं समर्थ है । इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है । अत आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

(७) आत्माका कर्तृत्व—

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नो कर्म—वाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

‘आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है’ सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है ।

भील वात ओ छे डे—आत्मा पोतानु कल्याणु करवाभा भीलनी अपेक्षा राभतो नथी, ते पोताना कल्याणुसाधनभा पोते न समर्थ छे ते कारणुथी आत्मानु प्रभुत्व सिद्ध थाय छे ओ कारणुथी आत्महितना अलिहाषी पुझेओ मोक्षना कारणुभूत तप अने संयमनी आराधनाभा प्रवृत्त थवु नेछे ओ

(६) आत्मानु कर्तृत्व—

आ आत्मा अदृष्ट आदि कर्मो करवाथी, निश्चयनयनी अपेक्षाओ शुद्ध भावोना कर्ता होवाथी तथा व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नो कर्म—आह्यशरीर आदिना कर्ता होवाथी कर्ता कहेवाय छे.

“आत्मा ओकान्तरूपथी अकर्ता छे.” सांख्यना आ मतनु निराकरणु करवा भाटे आत्माने कर्ता विशेषणु आभ्यु छे.

औदारिकाविसरीरस्य कर्वांऽस्ति, आदिमत्प्रतिनियताकारित्वात्, कुम्भस्य यथा कुम्भालः । यद्युत्तरकर्तृकं तदादिमत्प्रतिनियताकारमपि न मवति, यथाऽन्नवि-
कारः । यत्र क्षीरस्य कर्वा स आत्मा, इत्यत्रमात्मनः कर्तृत्वं सिध्यति । अत्रादि-
मत्प्रविशेषं मेवादीनुपादाय हेतोरनैकान्तिकत्वप्रारणाय ।

यद्वा-आत्मा कर्वा, स्वकर्मफलमोक्षत्वात् षणिकृत्प्रीवलादिबत् ।
आत्मा स्वकृतकर्मफलमोक्षा तस्मात् कर्वा, यथा षणिकृत्प्रीवलाद्योऽकृतकर्मणाः
फलं न प्राप्नुवन्ति ।

इस औदारिकादि शरीर का कोई कर्ता है, क्यों कि औदारिकादि शरीर आदिमान्
और प्रतिनियत आकारवाला है, जैसे-पहेका कर्ता कुमार । जो वस्तु बिना कर्ता की
होती है वह आदिमान् और नियत आकार वाली नहीं होती, जैसे-बादल का बिकार । जो
शरीर का कर्ता है, वह आत्मा है । इस प्रकार आत्मा का कर्तृत्व सिद्ध होता है । यहाँ
'आदिमत्' विशेषण से मेरु आदि से होने वाले अनेकान्तिक दोषका निवारण किया गया
है, क्यों कि वे आदिमान् नहीं है ।

अथवा आत्मा कर्ता है, क्यों कि वह अपने कर्मों का मोक्षा है जैसे षणिकृ या
फिसान । आत्मा अपने कर्मों के फलका मोक्षा है इस कारण कर्ता है । जैसे-षणिकृ या
फिसान आदि बिना किये कर्म का फल नहीं मोगते इसी प्रकार व्याप्या बिना किये
कर्म का फल नहीं मोगता ।

आ औदारिकादि शरीरस्ये कर्वा कर्ता छे कारण छे औदारिकादि शरीर, आदिमान्
अने प्रतिनियत आकार वाला छे नेम बधाने कर्ता कुम्भार. ने वस्तु कर्ता विनागी
होव छे ते आदिमान् अने नियत आकार वाली होव नहि, नेम वाङ्मना बिकार.
ने शरीरस्ये कर्ता छे ते आत्मा छे अने प्रकारे आत्मानु कर्तृत्व सिद्ध थाव छे
अथी आदिमत्' विशेषणभी मेरु आदिभी अथ वाङ्म अनेकान्तिक दोषतु निवारण
करुं छे अरसु छे ते आदिमान् नथी

अथवा-आत्मा कर्ता छे कारण छे-ते पोखना कर्मोने होखता छे नेम
वज्रिह अथवा जेडुव. आत्मा पोखना कर्मोना इतने होखता छे, ते कारणभी कर्ता
छे नेम वज्रिह अथवा जेडुव आदि, कम कर्वा विना कर्मोनु इण होखता नथी.
ते अन्तरे आत्मा कम कर्वा विना तेनु इण होखता नथी.

किञ्च-आत्मा स्वस्य हितं कर्तुमन्यं नापेक्षते; स्वयमेव स्वहितसाधने क्षमः, अत एवात्मनः प्रभुत्वं सिध्यति, तस्मात् स्वहितमिच्छुना मोक्षप्राप्तिकारणी-भूते तपःसंयमाराधने प्रवर्तितव्यम् ।

(७) कर्तृत्वनिरूपणम्—

अयमात्मा-अदृष्टादिकर्मकरणात्, निश्चयनयेन शुद्धभावकर्तृत्वात्, व्यवहार-नयतो द्रव्यभावकर्मणां नो कर्मबाह्यशरीरादीनां कर्तृत्वाच्च, कर्तेत्युच्यते । आत्मै-कान्तरूपेणाऽकर्तेति सांख्यमतमपाकर्तुमुक्तम्-‘आत्मा कर्तेति’ ।

दूसरी बात यह है कि-आत्मा अपना कल्याण करने में अन्य की अपेक्षा नहीं रखता । वह स्वकीय कल्याण-साधन में स्वयं समर्थ है । इसी से आत्मा का प्रभुत्व सिद्ध होता है । अत आत्महित के अभिलाषी पुरुष को मोक्षकारणभूत तप और संयम की आराधना में प्रवृत्त होना चाहिए ।

(७) आत्माका कर्तृत्व-

यह आत्मा अदृष्ट आदि कर्म करने से, निश्चयनय की अपेक्षा शुद्ध भावों का कर्ता होने से, तथा व्यवहारनय से द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म-बाह्यशरीर आदिका कर्ता होने से कर्ता कहलाता है,

‘आत्मा एकान्तरूप से अकर्ता है’ सांख्य के इस मत का निराकरण करने के लिए आत्मा को कर्ता विशेषण लगाया है ।

भीष्म वात ये छे के -आत्मा पोतानु कल्याणु करवाभा भीष्मनी अपेक्षा राभतो नथी, ते पोताना कल्याणुसाधनभा पोते न समर्थ छे ते कारणुथी आत्मानु प्रभुत्व सिद्ध थाय छे ये कारणुथी आत्महितना अखिलाषी पुश्पोये मोक्षना कारणुभूत तप अने संयमनी आराधनाभा प्रवृत्त थयु जेधं ये

(६) आत्मानु कर्तृत्व-

आ आत्मा अदृष्ट आदि कर्मो करवाथी, निश्चयनयनी अपेक्षायें शुद्ध भावोना कर्ता होवाथी तथा व्यवहारनयथी द्रव्यकर्म, भावकर्म तथा नोकर्म-बाह्यशरीर आदिना कर्ता होवाथी कर्ता कहवाय छे.

“आत्मा एकान्तरूपथी अकर्ता छे.” सांख्यना आ मतनु निराकरणु करवा भाटे आत्माने कर्ता विशेषणु आण्यु छे

अकर्तृत्वाच्च तस्य सांसारिकविषयसुखानाममोक्षत्वम् च सिध्यति । प्रकृते हि कर्तृत्वमेव नारष्टाद्विजनकर्मण एव कर्तृत्वं विवक्षितम्, तेन मुक्तात्मनि नाविमसंगः । तथा च यः सांसारिकसुखदुःखाद्यनुभविता स एव तत्कारणीभूतकर्मणः कर्ता, अकर्तृमोक्षत्वाद्युपपत्तेः ।

(८) मोक्षत्वसिद्धिः—

अयमेवात्मा मोहोदयेन शुद्धात्मस्वरूपां विस्तृत्य परब्रह्मनि मोहितं सम् रागद्वेषं करोति, रागद्वेषबन्धोऽर्निर्बंधं नवनवविषयसंग्रहार्थं प्रयतमान-
न्तद्वियोगे सति विन्ताभ्याकृत्वित्वेता भार्गुरौद्रभ्यान्मुपगतः स्वात्मनि कर्मरजः

विषयसुख आदि के बनक कर्मों के कर्ता नहीं हैं, इस कारण वे अकर्ता हैं। और अकर्ता होने के कारण वे सांसारिक विषयसुखों के मोक्ष भी नहीं हैं। यहाँ 'कर्ता' शब्द से अदृष्ट आदि के बनक कर्मों का कर्ता ही विवक्षित है, अतः मुक्त आत्मा में अति-प्रसङ्ग नहीं आता अतः एव सिद्ध हुआ कि जो सांसारिक सुख-दुःख आदि का मोक्षता होता है, वही उन के कारणभूत कर्म का कर्ता भी होता है। जो कर्ता नहीं है वह मोक्षता भी नहीं है।

(८) आत्मा का मोक्षत्व

आत्मा मोह के उदय से शुद्ध आत्मस्वरूप को मूढकर पर-पराधी में मोहित होता हुआ राग-द्वेष करता है। राग-द्वेष के बंध हो कर रात-दिन नवीन नवीन विषयों का सम्राट् करने के लिए प्रयतनशील होता हुआ और उनका विमोच होने पर विन्ता से व्याकुलचित हो कर भार्गवभ्यान् और रौद्रभ्यान् को प्राप्त होता है, और इस

संसारना विषय-सुख वनेशने उदयन्त कर्मान् कर्मानि कर्ता नहीं, जो कारुण्यी ते आत्मा अकर्ता से अने अकर्ता होवाना कारुण्ये ते संसारना विषयसुखेना मोक्षता पश्य नहीं, अर्थात् 'कर्ता शब्दशी अदृष्ट आदिना बनक कर्मानि कर्ता च विवक्षित से तेथी मुक्त आत्माभां अतिप्रसङ्ग आचते नहीं, जो कारुण्यी जेन सिद्ध समु के से संसारना सुख-दुःख वनेशने मोक्षता से ते जेना कारुण्यी कर्मानि कर्ता पश्य होव से से कर्ता नहीं ते मोक्षता पश्य नहीं।

(८) आत्मा का मोक्षत्व—

आत्मा मोहना उदयशी शुद्ध आत्मस्वरूपने मूढी अने पर-पराधीभां मोहित अने राग-द्वेष करे से राग-द्वेषने वरा वर्धने रात्री अने विषय नवा-नवा विषयाने अमर्क करवा भां प्रयतनशील रहतेथे, अने तेने विमोच कर्ता विन्ताशी व्याकुल-चित्त अने भार्गवभ्यान् अने रौद्रभ्यान् ने प्राप्त बाप से, अने ते कारुण्यी पावाना

સમુપાદત્તે । યથા કોડપ્યજ્ઞાની વ્યાધિનિદાનમૂતમપથ્યમશ્નન્અવાઙ્ચિતમપિ જ્વરાદિકં સ્વયમુત્પાદયતિ, તથાડયમાત્મા કર્મવન્ધનમવાઙ્ચન્નપ્યાર્તરૌદ્રધ્યાનવગેન કર્મવન્ધન પ્રાપ્નોતિ । યથા કર્મવન્ધન સ્વયમેવાદત્તે, તથા તત્ફલમપિ વાહ્યં કિશ્ચિન્નિમિત્ત-મપેક્ષ્ય સ્વયમેવોપશુદ્ધવત્તે । એવં ચાત્મનો ભોક્તૃત્વં સિધ્યતિ । ભોક્તૃત્વાન્ચ કર્તૃ-ત્વમપિ તસ્ય નિર્વાઘમ્ ।

સાખ્યસિદ્ધાન્તે પ્રકૃતેઃ કર્તૃત્વ, ન તુ જીવસ્ય, ભોક્તૃત્વં ચાપિ જીવસ્યોપચરિતમેવ । દર્પણાકારાયા વુદ્ધૌ સંક્રાન્તાના સુખદુઃસ્વાદીના સ્વાત્મનિ

કારણ અપની આત્મા મેં કર્મ-રજ ડક્ટરી કર લેતા હૈ । જૈસે અજાની મનુષ્ય રોગ કે કારણમૂત અપથ્ય કા સેવન કરતા હુઆ ન ચાહતે હુણ મી જ્વર આદિ કો ઉત્પન્ન કર લેતા હૈ, ડસી પ્રકાર આત્મા કર્મવન્ધન કી ડચ્છા ન કર કે મી આર્ત-રૌદ્રધ્યાન કે અધીન હોકર કર્મવન્ધ કો પ્રાપ્ત હોતા હૈ । જૈસે કર્મવન્ધ કો આત્મા સ્વય પ્રહણ કરતા હૈ, ડસી પ્રકાર કિસી વાહ્ય નિમિત્ત કી અપેક્ષા સે ડસકા ફલ મી સ્વય હી મોગતા હૈ । ડસી પ્રકાર આત્મા મેં ભોક્તાપન સિદ્ધ હોતા હૈ, ડૌર મોક્તા હોને સે ડસ મેં કર્તાપન મી વિના કિસી બાધા કે સિદ્ધ હો જાતા હૈ ।

સાખ્યમત સે પ્રકૃતિ કર્તા હૈ, જીવ નહીં, ડૌર ભોક્તાપન જીવ મેં ડપચાર સે હૈ । દર્પણાકાર વુદ્ધિ મેં પ્રતિવિમ્બિત હોને વાલે સુખ-દુઃખ આદિ કા આત્મા મેં પ્રતિવિમ્બ

આત્માને વિષે કર્મ-રજ (કર્મના રજકણો) એકઠી કરી લે છે, જેમ અજાની મનુષ્ય રોગના કારણમૂત અપથ્યનુ (રોગ ઉત્પન્ન કરે તેવુ) સેવન કરીને, પોતે ઇચ્છતા નથી તેા પણ જ્વર (તાવ) આદિને ઉત્પન્ન કરી લે છે. તે પ્રમાણે આત્મા કર્મવન્ધનની ઇચ્છા નહિ કરવા છતાય પણ આર્ત-રૌદ્ર ધ્યાનને આધીન થઈને કર્મ વન્ધનને પ્રાપ્ત થાય છે જેવી રીતે કર્મવન્ધનને આત્મા પોતે જ વ્રહ્મણ કરે છે, તે પ્રમાણે કોઈ બાહ્ય નિમિત્તની અપેક્ષાથી તેનુ ફલ પણ પોતે જ ભોગવે છે એ પ્રમાણે આત્મામા ભોક્તાપણુ સિદ્ધ થાય છે અને ભોક્તા હોવાથી તેમાં કોઈ પ્રકારની બાધા વિના કર્તાપણુ પણ સિદ્ધ થઈ જાય છે

સાખ્યમત પ્રમાણે પ્રકૃતિ કર્તા છે, જીવ કર્તા નથી ભોક્તાપણુ તે પણ જીવમા ઉપચારથી છે દર્ષણાકાર વુદ્ધિમા પ્રતિબિમ્બિત (પ્રતિબિમ્બ) થવાવાળા (દેખાવવાવાળા) સુખ-દુઃખ આદિનુ પ્રતિબિમ્બ આત્મામા પડી શકતુ નથી, સ્કૃટિક

प्रतिबिम्बोऽप्यासमवाद् । स्फटिकदर्पणादापि परिणामनैव प्रतिबिम्बोदय-
समर्पनाद् । तादृशपरिणामाङ्गीकारे च जीवस्य कर्तृत्वं, स्वत एव मोक्षत्वं
च सिद्धम् ।

(९) आत्मनः स्वशरीरपरिमाणत्वम्—

अयमात्मा स्वशरीरपरिमाण । निश्चयनयेन सोकाकाशपरिमाणोऽ-
संख्यातप्रदेशी च । अन्वहारनयतः शरीरनामकर्मोदयाज्जातन सूक्ष्मशरीरेव
सूक्ष्मशरीरण वा समानपरिमाणो भवति, तस्मादयं स्वशरीरपरिमाण इत्युच्यते ।

यही यह सफ़्टा । स्फ़्टिक तथा दर्पण आदि में जो प्रतिबिम्ब पड़ता है सो परिणामी होने के कारण ही पड़ता है । स्फ़्टिक आदि पकन्त अपरिणामी होते तो उन में किसी भी वस्तु का प्रतिबिम्ब नहीं पड़ सकता था । इस प्रकार का परिणाम स्वीकार कर कन पर जीव में कर्तृत्व सिद्ध हो जायगा और फिर मोक्षाप्त भी स्वतः सिद्ध हो जायगा ।

(९) आत्माका शरीरपरिमाण—

आत्मा प्राप्त शरीर के बराबर है, अर्थात् शरीर का जो परिमाण है । वही आत्मा का भी परिमाण है । आत्मा निश्चयनय से सोकाकाश के बराबर असंख्यात प्रदेशी है । अन्वहारनय से शरीरनामकर्म के उदय से प्राप्त हुए सूक्ष्म या स्थूल शरीर का जो परिमाण है उसी परिमाणवाला आत्मा है, अत एव आत्मा शरीर परिमाण कद्रमता है ।

तथा दर्पण आदिमा ने प्रतिबिम्ब पड़े छे ते परिणामी होयाना कस्ये पड़े छे स्फ़्टिक आदि ने अज्ञान्त अपरिणामी होय तो तेमां कस्य पक्ष वस्तुतः प्रतिबिम्ब पंथी शकत नही. आ प्रभावे परिणाम स्वीकार करी देवाथी लुपमां कतीपक्ष सिद्ध भई लये, अने मोक्षापक्ष पक्ष स्वतः सिद्ध भई लये.

(९) आत्मात शरीरप्रमाण—

आत्मा प्राप्त शरीरनी अशावर छे अर्थात् शरीरतु ने परिमाण छे ते आत्मतनु पक्ष परिमाण छे आत्मा निश्चयनयथी तोकाकाशनी अशावर अथ आत्वप्रदेशी छे अन्वहारनयथी शरीर-नामकर्मना उदयथी प्राप्त बनेल सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीरतु ने परिमाण छे ते परिमाण वाको आत्मा छे अतएव आत्मा शरीरपरिमाण कहेवाय छे

આત્મા સર્વવ્યાપીતિ વેદાન્તિકાદિમતં, તથાઽઽત્મા-અણુરિતિ કસ્યચિન્મતં
ચ નિરાકર્તું શરીરપરિમાણ દ્વયુક્તમ્ । આત્મનઃ સર્વવ્યાપિત્વે નિષ્ક્રિયત્વાદ્
ભવાન્તરસંક્રાન્તેરસંભવાપત્તિરાકાશવત્ ।

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી, શરીર એવ તદ્ગુણોપલબ્ધેઃ, અન્યૌષ્ણ્યવત્,
અથવા ઘટાદિગુણવત્ । યથા ઘટાદેર્વર્ણાદિયો ગુણા યત્રંચ દેશે દૃશ્યન્તે તત્રૈવ
તસ્યારિત્ત્વં પ્રતીયતે, નાન્યત્ર । એવમાત્મનોઽપિ ગુણાશ્ચૈતન્યાદયો શરીર એવ દૃશ્યન્તે,
ન વહિઃ, તસ્માદ્ દેહપ્રમાણ એવાવમાત્મેતિ । ન ચ પુષ્પાદીનાં

‘આત્મા સર્વવ્યાપક છે’ એસા વેદાન્તિક આદિ કા મત છે । કોઈ-કોઈ
યહ મી માનતે છે કિ-‘આત્મા અણુ-પરિમાણવાલા છે’ ઇન સવ મતો કા નિરાકરણ
કરને કે લિએ આત્મા કો શરીર-પરિમાણ વિશેષણ લગાયા છે । આત્મા કો સર્વવ્યાપક
માને તો વહ નિષ્ક્રિય ઠહેરેગા ઓર ભવાન્તર મે નહીં જા સકેગા, જૈસે આકાશ ।

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે, ક્યોં કિ શરીર મેં હી ઉસકે ગુણ ઉપલબ્ધ હોતે છે,
જૈસે અગ્નિ કી ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિ । જૈસે ઘટ આદિ કે ગુણ રૂપ
વગૈરહ જિસ જગહ દેલે જાતે છેં ઉસી જગહ ઉસકા અસ્તિત્વ પ્રતીત હોતા છે, અન્યત્ર
નહીં । ઇસ પ્રકાર આત્મા કે ગુણ ચૈતન્ય આદિ જહાં પાયે જાઈં વહીં ઉસકા અસ્તિત્વ
માનના યાહિએ । આત્મા કે ગુણ શરીર મેં હી પાયે જાતે છેં અત શરીર મેં હી આત્મા
કા અસ્તિત્વ સ્વીકાર કરના ઉચિત છે, અત આત્મા શરીરપરિમાણ હી છે ।

‘આત્મા સર્વવ્યાપક છે’ એવો વેદાન્તિક આદિનો મત છે કોઈ કોઈ એમ
પણુ માને છે કે —“આત્મા આણુ-પરિમાણવાળો છે” તે સર્વ મતોનું નિરાકરણ
કરવા માટે આત્માને શરીર-પરિમાણ વિશેષણ લગાડયું છે આત્માને સર્વવ્યાપક
માનશે તો તે નિષ્ક્રિય ઠરશે અને ભવાન્તરમા જઈ શકશે નહિ, જેમ આકાશ

આત્મા શરીરમાત્રવ્યાપી છે કારણ કે શરીરમા જ તેના ગુણ ઉપલબ્ધ થાય
છે જેમ અગ્નિની ઉષ્ણતા અથવા ઘટ આદિના ગુણ રૂપ વગેરે જે જગ્યામા
જેવામા આવે છે, તે જ જગ્યામા તેનું અસ્તિત્વ પ્રતીત થાય છે, અન્યત્ર (બીજા
સ્થળે) નહિ એ પ્રમાણે આત્માના ચૈતન્ય આદિ ગુણ જેવામા આવે, ત્યા જ તેનું
અસ્તિત્વ માનવું જોઈએ આત્માનો ગુણ શરીરમા જ જેવામા આવે છે તે કારણથી
શરીરમા જ આત્માના અસ્તિત્વનો સ્વીકાર કરવો તે ઉચિત છે. તેથી આત્મા શરીર

गन्धादिगुणः पुण्याद्यस्त्यतिदेशादन्यथाप्युपलभ्यते, तथा च हेतोरनैकान्तिकत्वा-
पधिरिति वाच्यम्, पुण्याद्याभितगन्धादिपुत्रस्नानां वैश्वसिक्त्या मायोगिक्त्या वा
गत्या मतिमत्त्वेन तदुपलम्भकप्रजाणादिदेक्षपर्यन्तगमनोपपत्तेरिति ।

आत्मा सर्वगतो न भवति, त्वृगुणस्य सर्वभानुपलम्भमानस्वात् । यस्य
यस्य गुणः सर्वभानुपलम्भमान स स सर्वगतो न भवति, यथा घटाः । अयं चात्मा
सर्वभानुपलम्भमानगुणवान्, तस्मात् सर्वगतो न भवतीति । व्यतिरेक्युदाहरणं
तु व्योम्नादि । न चासिद्धोऽयं हेतुरिति वाच्यम्, देहव्यतिरिक्तदेशे बुद्ध्यादीनां

यह कहना ठीक नहीं है कि—'फूल जति का गुण—गन्ध' बगैरह फूल की बगह से
इसरी बगह भी पाये जाते हैं, इस कारण आपका हेतु अनेकान्तिक है' क्यों कि गन्ध के
आधारमृत पुत्रक त्वामाधिक गति से वा प्रकलनक्य गति से गतिमान् होने के कारण,
गन्ध को प्रहण करने वाले घण—देश तक जाते हैं । तात्पर्य यह है कि जहाँ फूलकी
गन्ध है वहाँ उस गन्ध के आधारमृत गन्ध—पुत्रक भी होते हैं इस कारण हेतु में
व्यभिचार नहीं जाता ।

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है, क्यों कि आत्मा के गुण
सर्वत्र नहीं पाये जाते । बिस—बिस के गुण सर्वत्र उपलब्ध नहीं
होते, वह पदार्थ सर्वव्यापक नहीं होगा जैसे घट । आत्मा के गुण
सर्वत्र नहीं पाये जाते, अतः वह सर्वव्यापक नहीं है । 'आकाश यहाँ व्यतिरिक्त
उदाहरण है । 'यह हेतु असिद्ध है,' ऐसा नहीं कह सकते, क्यों कि देह से जति

परिभाष्ये छ "तूल आदिने शुषु—अंभ वजिरे कुलनी जन्मा बिना पीछे जन्माके
पक्ष जेवामां जावे छ ते आरक्षुभी आपने हेतु अनेकान्तिक छ" जेभ कहेतु ते
ठिक नहीं. आरक्षु के जभना आधारमृत पुत्रजल स्वास्तविक अतिथी जभवा
प्रकलनक्य अतिथी अतिमान होवाना आरक्षे, जभने प्रकष्य करवा वाणा आरक्षे
शुभी जावे छ. तात्पर्य जे छ के—जन्मा कुलनी जंभ छ त्यों ते जभना आधारमृत
अथपुत्रजल पक्ष होय छ ज्य आरक्षु हेतुमां व्यभिचार जावतो नहीं.

आत्मा सर्वव्यापक नहीं है, केभके आधारमृत शुषु सबत्र जेवामां जावतो नहीं,
जेने शुषु सर्वत्र उपलब्ध भतो नहीं, ते पदार्थ सर्वव्यापक होय नकि, जेभ घट
आत्मानो शुषु सबत्र जेवामां जावतो नहीं, जे आरक्षुभी ते सर्वव्यापक नहीं.
आकाश जति व्यतिरिक्त उदाहरण छ. ते हेतु असिद्ध छ." जेभ कही सकरी

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् वहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्ज्वात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि कारण्यु के देहथी अतिरिक्त (देह सिवाय) देशमा बुद्धि आदि गुणानो सद्भाव नथी अे प्रमाणे सौअे स्वीकारेणु छे शरीरमा आत्माना गुणानु अस्तित्व छे न, अे कारण्युथी हेतु असिद्ध नथी आ प्रमाणे शरीरनी अकार आत्मानु अस्तित्व माननु त्यअेने पोताना देहमा न अस्तित्व माननु अेधअे

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कारण्यु के ते चेतन छे अे व्यापक होय-छे ते चेतन होय नहि, अेम आकाश आत्मा चेतन छे ते कारण्युथी व्यापक नथी।

आ हेतुथी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाथी पूर्वोक्त हेतुथी (केमके शरीरमा न तेना गुणु अेवामा आवे छे अे हेतुथी) आत्मानी शरीरप्रमाणता पणु सिद्ध थध नथ छे आठ समयमा सपन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थामा, अौद राजूलोकमा आत्मानु व्याप्त थध नवानु अहि अे मान्यु छे, ते अाहाअित्क

सर्वभ्यापित्वा, वत् कादाचित्कमिति न तेन व्यभिचार ।

आत्मा श्यामाकृष्णगुल्माभो न भवति, अङ्गुष्ठपर्वमात्रो वा न भवति, सावन्मात्रस्योपाचर्यरीरभ्यापित्वात्, तिष्ठे तैस्त्वत् त्वरूपर्वन्तश्चरीरभ्यापित्वेन शोषलभ्यमानगुलत्वात्, तस्मादुपाचर्यरोरे त्वरूपर्वन्तश्चरीरभ्यापीति सिद्धम् ।

(१०) अमूर्तत्वनिरूपणम्—

आत्मा अमूर्तः, इन्द्रियैर्प्राप्तत्वात्, स्वप्नादिभिरप्येद्यत्वात्, शब्दादिभिरमेद्यत्वात्, रूपरहितत्वात्, अनाद्यमूर्तपरिणामत्वात्, निस्त्यत्वात् ।

कार्याधिक (कमी-कमी होनेवाला) है, उस से व्यभिचार नहीं करता ।

आत्मा श्यामाकृष्णान्मकण बराबर नहीं है, न अंगुठे के पर्व (पेर) के बराबर ही है, इत्यादि सा आत्मा एक साब समस्त शरीर में व्यापक नहीं हो सकता, मगर आत्मा के गुण तो संपूर्ण शरीर में उपलब्ध होते हैं, जैसे सिंघों में तोड़ सर्वत्र पाया जाता है अत एव सिद्ध हुआ कि आत्मा प्राप्त शरीर में व्यापकत्ववापी है ।

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व—

आत्मा अमूर्त है, क्यों कि वह इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण नहीं किया जाता, वह स्वतः शक्ति से ज्ञेय नहीं हो सकता शब्द आदि से ज्ञेय नहीं हो सकता वह अरूपी है, अनादि काळ से अमूर्त परिणामवाक्य है और वह नित्य है ।

(अध्वजित बवावधु) छ तेभं व्यभिचार आवतो नधी

आत्मा श्यामाकृष्णान्मकण केषु जराजलर नधी; तेभञ्ज अङ्गुष्ठाना पर्व (पेर) जराजलर वधु नधी, ज्येष्ठतो आत्मा ज्येष्ठ आद्ये समस्त शरीरभ्यां व्यापक वधु शकतो नधी, परतु आत्माना ज्ञानु तो संपूर्ण शरीरभ्यां उपलब्ध वाम छ ज्येष्ठ तलभं तेषु सर्वत्र ज्ञेय छ ज्येष्ठ शरवधुषी ज्येष्ठ सिद्ध वधु के आत्मा का प्राप्त शरीरभ्यां त्वत्वा-आमदी सुधी व्यापी रहेतो छ

(१०) आत्मा का अमूर्तत्व

आत्मा अमूर्त छ कारण के ते इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण करी शकतो नधी, अज्ञान (तलवार) आदिषी छेरी शकतो नधी, शब्द आदिषी बोधी शकतो नधी, अरूपी छे, अनादि कालषी अमूर्त परिणामवाक्यी छे, अने ते नित्य छे.

गुणानामसद्भाव इति सर्वैः स्वीकारात् । शरीरे तद्गुणसत्त्वे हेतोर्नाप्रसिद्धता, इत्थं च देहाद् वहिर्देशेऽपि आत्माऽस्तीति वादं परित्यज्य स्वदेह एवात्माऽस्तीति मन्तव्यम् ।

यद्वा—आत्मा व्यापको न भवति चेतनत्वात्, यत्तु व्यापकं तन्न चेतनम्, यथा गगनम् । चेतनं चात्मा, तस्मान्न व्यापकः । इत्थमव्यापकत्वे सिद्धे तस्य तत्रैवोपलभ्यमानगुणत्वे कायप्रमाणताऽपि सिद्धा । यत् पुनरष्टसमयसाध्य-केवलिसमुद्घातावस्थायामार्हतानामपि चतुर्दशरज्जात्मकलोकव्यापित्वेनात्मनः

रिक्त देश में बुद्धि आदि गुणों का सद्भाव नहीं है, ऐसा सभी ने स्वीकार किया है । शरीर में आत्मा के गुणों का अस्तित्व है ही, अत एव हेतु असिद्ध नहीं है । इस प्रकार शरीर से बाहर आत्मा का अस्तित्व मानना छोड़ कर स्वदेह में ही अस्तित्व मानना चाहिए

अथवा—आत्मा व्यापक नहीं है, क्या कि वह चेतन है । जो व्यापक होता है वह चेतन नहीं होता, जैसे आकाश । आत्मा चेतन है, अतः व्यापक नहीं है ।

इस से आत्मा की अव्यापकता सिद्ध हो जाने पर पूर्वोक्त हेतु से (क्यों कि शरीर में ही उस के गुण पाये जाते हैं, इस हेतु से) आत्मा की शरीरप्रमाणता भी सिद्ध हो जाती है । आठ समय में सम्पन्न होने वाले केवलिसमुद्घात की अवस्था में चौदहराजू लोक में आत्मा का व्याप्त हो जाना जो यहाँ माना है, वह

नहि कार्ष्ण्ये के देहथी अतिरिक्त (देह सिवाय) देशमा बुद्धि आदि शुष्णानो सद्भाव नथी अे प्रभाष्ये सौअे स्वीकारेद्यु छे शरीरमा आत्माना शुष्णानु' अस्तित्व छे न, अे कार्ष्ण्यथी हेतु असिद्ध नथी आ प्रभाष्ये शरीरनी षडार आत्मानु अस्तित्व मानवुं त्यञ्जने पोताना देहमां न अस्तित्व मानवुं न्नेधञ्जे

अथवा—आत्मा व्यापक नथी, कार्ष्ण्य के ते चेतन छे न्ने व्यापक डोय-छे ते चेतन डोय नहि, न्नेम आकाश आत्मा चेतन छे ते कार्ष्ण्यथी व्यापक नथी

आ हेतुथी आत्मानी अव्यापकता सिद्ध थवाथी पूर्वोक्त हेतुथी (केमके शरीरमा न्नेना शुष्ण न्नेवामा आवे छे अे हेतुथी) आत्मानी शरीरप्रमाणता पण्य सिद्ध थध नथ छे आठ समयमा सम्पन्न थवा वाणा केवलिसमुद्घातनी अवस्थामा, औद 'राजूदोक्तमा आत्मानु व्याप्त थध न्नेवामुं अहि न्ने मान्यु छे, ते काहाचित्क,

इयं च पुच्छिका न किञ्चिदिच्छति, पुनरयं बाल सकलेन्द्रियैर्विषय-
सुपशुभ्य सुखीमपितृमिच्छति । यदि कोऽपि स्वदुःखस्याप्येमावभिधावेत् तदा
पुच्छिका पूर्ववदेवावस्थिता मदिष्यति, बालस्तु स्वदुःखमिधासनितदुःखादुद्दिश्य
पलायिष्यते । अतो बालः कमपि सुसुखितं बालसुपकरिष्यति भोजनीयवस्तु-
मदानेन, कमपि बान्यं बालं वपेटादिप्रहारेण क्रन्दयिष्यति । पुच्छिका तु
हितमहितं वाऽपि किञ्चिन्नैव कर्तुं ममदिष्यति । यदि मिष्टान्नाय बाल आहूतो
मवेत् तदानीं सस्तरमागतो बालो भोक्तुं प्रवर्तेत, तन्नञ्ज्यसुखानुमनोऽपि तस्य
भावेत् । पुच्छिका तु नागमिष्यति न किञ्चित् मोक्ष्यते, का वार्ता सुखानुमनस्य ? ।

यह पुच्छी कुछ भी इच्छ नहीं करती मगर बालक सभी इन्द्रियों के विषयों का
मोह करने के सुखी होने को इच्छा करता है । अगर कोई तस्कार उठकर इन्हें मारने
वाले तो पुच्छी क्यों को क्यों लखी रहेगी मगर बालक तस्कार के आघात के दुःख
से उद्दिश्य हो कर या आघात को आशङ्का से भाग जाएगा । वह बालक किसी
मुखे बालक को मोहन देकर उसका उक्कर भी करेगा और किसी बालक को शय्य
आदि मारकर सम्पन्न मगर पुच्छी किसीका हित या अहित करने में समर्थ नहीं
है । अगर बालक को मिठार्ह खाने के लिये बुझाया जाय तो उसी समय बालक वह
मिठार्ह पर दूट पड़ेगा और उसे मिठार्ह खाने के सुख का अनुभव भी होगा ।
पुच्छी न मिठार्ह के लिये व्यर्णगी न स्वापगी, सुख का अनुभव करने की तो बात
ही अस्म्य रही । अत एव यह निश्चय होता है कि बालक में जीव का लक्षण ज्ञान

आ पुच्छी काष्ठ पक्षु उच्छिन्ना करती नहीं, परतु जलज सब उच्छिन्नेना
विषयेना खोज करीने मुञ्जी वदानी उच्छिन्न करे छे अथवा केछ वलवार उच्छिन्ने
तेने भावना होठे तो पुच्छी तो खेम छे तेम त्यां उभी स्तेरी परतु आलक
वलवार भावना दुःखी उच्छिन्न-विद्यतुर जनीने अथवा तो भावनायी अशकायी
थायी करी ।

जे जलज केछ बुझा जलजने खोजन आपीने तेने उपाहर पक्षु करी अने
केछ जलजने बपक्ष अदि भारीने तेने शयस्यरी, परतु पुच्छी केछतु हित के
अथवा अहित करवा समर्थ नहीं, अथवा जलजने मिश्रार्थ जावा भाटे विद्यावचार्थ
जावे तो तेन समर्थ आपीने मिश्रार्थ पर तही पक्षी अने तेने मिश्रार्थ आपीने
मुपने अनुभव पक्षु करी, पुच्छी मिश्रार्थ भाटे आपरी नहीं, अने जाये पक्षु नहीं
तो मुपना अनुभवनी तो बात न थी रही, जे काश्चुधी निश्चय जाय छे के

અનેન—“આત્મા નાતીન્દ્રિયો નાપિ જડાદ્ મિન્નઃ” ઇતિ નાસ્તિકમતં નિરસ્તમ્ ।

નન્વમૂર્તોઽયમાત્મા નેત્રાદિભિરિન્દ્રિયૈસ્તુ ન વિજ્ઞેયસ્તદિં કથમિમં જનો જાનીયાત્—‘અસ્ત્યત્રાત્મે’—તિ ।

શ્રૂયતામ્—કસ્યચિત્ સમક્ષમષ્ટવર્ષીયો વાલસ્તિષ્ઠતિ; તત્સમાનાકૃતિ-મૂર્ન્મયી પુત્તલિકાઽપિ તિષ્ઠતિ । તત્રાસૌ દ્રષ્ટા પश्यति—इयं पुत्तलिका चक्षुर्घ्राण-कर्णयुक्ताऽपि द्रष्टुं घ्रातुं श्रोतुं वा न शक्नोति, पुनरयं वालश्चक्षुर्भ्यां पश्यति, पुष्पमाघ्राति, कस्यचिद्भाषितं शृणोति च ।

હસ કથન સે નાસ્તિક કે હસ મત કા નિરાકરણ હો ગયા કિ—‘આત્મા ન અતોન્દ્રિય હૈ ઓર ન જડ સે મિન્ન હૈ’ ।

શક્કા—આત્મા અમૂર્ત હૈ, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયો સે જાના નહીં જા સકતા તો મનુષ્ય કેસે સમક્ષે કિ આત્મા કા અસ્તિત્વ હૈ ? ।

સમાધાન—સુનિયે । માન લીજિએ કિસી કે સામને આઠ વર્ષ કા વાલક સ્વહા હૈ ડસી કે સમાન આકૃતિવાલી મિટ્ટી કી એક પુતલી મી રક્ષી હૈ । ડોનો કો ડેરખને વાલ ડેસ્તા હૈ કિ—યહ પુતલી નેત્ર, નાક ઓર કાન સે યુક્ત તો હૈ કિન્તુ ડેસ્તને મેં સૂઘને મેં ઓર સુનને મેં સમર્થ નહીં હૈ, ઓર યહ વાલક આંસો સે ડેરખતા હૈ, ફૂલ સૂઘતા હૈ, ઓર કિસી કા ભાષણ સુનતા હૈ ।

આ કથનથી નાસ્તિકના એ મતનું નિરાકરણ થઈ ગયું કે “આત્મા અતોન્દ્રિય નથી, અને જડથી મિન્ન નથી”

શંકા—આત્મા અમૂર્ત છે, નેત્ર આદિ ઇન્દ્રિયોથી જાણી શકાતો નથી, તો પછી માણસો કેવી રીતે સમજી શકશે કે આત્માનું અસ્તિત્વ છે

સમાધાન—સાબળો ? માગી ડો કે કોઈ (માણસ)ના સામે એક આઠ વર્ષનો બાળક ઉભો છે તેની બાબુમા તેના જેવી સમાન આકૃતિવાલી માટીની એક પુતળી પણ રાખી છે આ બન્નેને જોવાવાળા બુવે છે કે—આ પુતળી નેત્ર, નાક, કાનથી યુક્ત તો છે, પરંતુ જોવામા, સુઘવામા અને સાલળવામા સમર્થ નથી. અને આ બાળક નેત્રથી બુવે છે, ફૂલ સૂઘે છે અને કોઈનું ભાષણ સાબળે છે.

(११) आत्मनः प्रतिशरीरं भिन्नत्वम्—

आत्मा—प्रतिशरीरं भिन्नः । एकस्यैवात्मनः प्रतिशरीरसत्त्वे तु जन्ममरणवन्ध-
मोक्षव्यवस्था नोपपद्यते । अन्यो जातः, अन्यो मृतः । अन्यो बन्ध, अन्यस्तु मुक्त
इति व्यवस्था कथमुपपद्येत, तस्मात् प्रतिशरीरं भिन्न इति सिद्धम् । तथा चानन्ता
आत्मान इति मन्तव्यम् । अनेनाज्ञैतन्नादो निराकृतः ।

(१२) आत्मनः पौद्गलिककर्मसंयुक्तत्वम्—

अपमारा—पौद्गलिककर्मसंयुक्तः । निश्चयनयन कर्मरहितोऽपि व्यवहार-
नयतोऽनादिकास्ततः पौद्गलिककर्मसंबन्धोऽस्ति, तस्मात्पुं पौद्गलिककर्मसंयुक्त
इति कथ्यते ।

(११) आत्मा का प्रतिशरीरभिन्नत्व—

आत्मा अस्मि—अस्मि शरीरों में अस्मि—अस्मि है । समस्त शरीरों में
एक ही आत्मा का अस्तित्व माना जाय तो जन्म, मरण बन्ध और मोक्ष
की व्यवस्था नहीं हो सकेगी । अर्थात् कोई जनमा कोई मरा, कोई बन्ध हुआ
और कोई मुक्त हुआ, ऐसी व्यवस्था कैसे बन सकेगी ? अतः अहम्मा प्रत्येक
शरीर में अस्मि ही सिद्ध होता है । आमार्ये अन्त्य हैं; ऐसा मानना चाहिए ।
इस से अज्ञैतनाद का निराकरण हो गया ।

(१२) आत्मा का पौद्गलिक कर्मसंयोग—

यह आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है । निश्चयनय से कर्मरहित होने पर
भी व्यवहारमन्त्री अपेक्षा अनादिकास्ततः से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

(११) आत्मानु प्रतिशरीरभिन्नत्व

आत्मा अस्मि—अस्मि शरीरों में अस्मि—अस्मि है । समस्त शरीरों में अस्मि ही आत्मानु
अस्तित्व मानना ही आवे तो जन्म, मरण, बन्ध अने मोक्षकी व्यवस्था नहीं हो सकेगी
नहीं । अर्थात्, कोई जन्म, कोई मरण, कोई बन्ध और कोई मुक्त या
कोई व्यवस्था कैसे हो सकेगी ? आ अस्तित्व ही 'आत्मा प्रत्येक शरीरों में अस्मि
है' जैसा सिद्ध जाय तो आत्मा अन्ततः ही जन्म मानत ही जन्म मानत ही जन्म, अर्थात् अज्ञैतनादनु
निराकरण नहीं हो सकेगा ।

(१२) आत्मानु पौद्गलिक कर्मसंयोग

आ आत्मा पौद्गलिक कर्मों से संयुक्त है । निश्चयनय से कर्मरहित होने पर
भी व्यवहारमन्त्री अपेक्षा अनादिकास्ततः से पौद्गलिक कर्मों के साथ आत्मा

તથા ચાયં નિશ્ચયઃ—વાલે જીવલક્ષણસ્ય જ્ઞાનસ્ય સદ્ભાવાદ્ વાલશરીરે જીવોઽસ્તીતિ ।
 એવમન્યત્રાપિ સજીવશરીરે જીવસ્ય સત્તા નિશ્ચેતું શક્યતે । વસ્તુતોઽયમાત્મૈવ કર્તા
 ભોક્તા નાનાવિધશુભપરિણતિકર્તા વેતિ । અયમાત્મા સંસારાવસ્થાર્યાં સ્વજ્ઞાનવશેન
 દુઃખમર્જયતિ । ઉક્તચ્ચ—

“સંસારે પર્યટન્ જન્તુ, —વૃહુયોનિસમાકુલે,
 શારીરં માનસં દુઃખં, પ્રાપ્નોતિ વત દારુણમ્ ॥૧॥
 આર્તધ્યાનરતો મૂઢો, ન કરોત્યાત્મનો હિતમ્,
 તેનાસૌ સુમહત્ ક્લેશં, પરત્રેહ ચ ગચ્છતિ” ॥૨॥

વિદ્યમાન છે, આ માટે તેને જીવ છે । આ પ્રકારે અન્યત્ર પણ સજીવ શરીર જે
 જીવની સત્તાના નિશ્ચય કરવામાં આવે છે । વાસ્તવમાં જીવની આત્મા કર્તા, ભોક્તા
 અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ પરિણતિઓના કર્તા છે । આત્મા સંસાર-
 અવસ્થામાં અજ્ઞાનના આધીન થઈને દુઃખ ઉપાર્જન કરતો છે, કહાં પણ છે :—

“નાના પ્રકારની યોનિઓમાંથી યુક્ત આ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો જીવ
 અનેક અનેક શારીરિક અને માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરતો છે ॥ ૧ ॥

આર્તધ્યાન અને રોદ્રધ્યાનમાં લીન રહેવા વાળો મૂઢ જીવ આત્માના હિત
 નથી કરતો । આથી કારણે તે આ લોક અને પરલોકમાં મહાન ક્લેશ પામે છે ॥૨॥

ખાલકમાં જીવનું લક્ષણ—જે જ્ઞાન તે વિદ્યમાન છે, તે કારણથી તેમાં જીવ છે એ
 પ્રમાણે અન્યત્ર પણ સજીવ શરીરમાં જીવની સત્તાના નિશ્ચય કરી શકાય છે
 વાસ્તવમાં આ આત્મા કર્તા, ભોક્તા અને નાના પ્રકારની શુભ અને અશુભ
 પરિણતિઓના કર્તા છે આત્મા સંસાર અવસ્થામાં પોતાના અજ્ઞાનને આધીન થઈને
 દુઃખ ઉપાર્જન કરે છે કહ્યું પણ છે કે —

“નાના પ્રકારની યોનિઓથી યુક્ત આ સંસારમાં ભ્રમણ કરતો જીવ
 અનેક શારીરિક અને માનસિક દુઃખ પ્રાપ્ત કરે છે ॥૧॥

આર્તધ્યાન અને રોદ્રધ્યાનમાં લીન રહેવા વાળો મૂઢ જીવ આત્માના હિત
 કરતો નથી. આ કારણથી તે આ લોક અને પરલોકમાં મહાન ક્લેશ પામે છે. ॥૨॥

कर्मबन्धापेक्षयाऽऽत्मना सह पुद्गलस्यैक्यरूपः संबन्धः, परन्तु स्रष्टा-
पेक्षया द्वयोर्मिन्नता प्रतीयते । तस्मादात्मन एक्यतेनाऽमूर्तत्वं नास्ति । इदमत्र
तत्त्वम्-बन्धस्तु वस्तुतः पुद्गलस्य पुद्गलन सह भवति; यथा पृथक् पृथक् पुद्गला
स्वस्तिग्धगुणाभ्यां परस्परं बन्धं प्राप्नुवन्ति तद्वत्-आत्मना सह पूर्वप्रदेः कर्मपुद्गलेः
सह नूतनकर्मपुद्गला निबन्धते । आत्मनोऽसंख्यातप्रदेशेषु कर्मपुद्गलानामवगाहनं
भवति । आत्मन एकैकप्रदेशेऽनन्तकर्मपुद्गलास्तिष्ठन्ति । आत्मप्रदेशानां कर्मपुद्गलानां
पैक्येषुऽवगाहनरूप एव बन्धः । ईदृशोऽयं बन्धो नास्ति ।

कर्मबन्ध की अपेक्षा आत्मा के साथ पुद्गल का एकत्व-रूप-सम्बन्ध है किन्तु स्रष्टाओं
से होना मिम-मिम प्रतीत होते हैं इस लिए आत्मा में एकान्त अमूर्तता नहीं है । तात्पर्य
यह है कि-वास्तव में पुद्गल का बन्ध तो पुद्गल के साथ ही होता है, जैसे पृथक् पृथक् पुद्गल
रूढता और स्निग्धता गुणों के कारण परस्पर बंध हो जाते हैं, इस प्रकार आत्मा के साथ
पहले से बंध हुए कर्मपुद्गल के साथ नवीन कर्मपुद्गलों का बन्ध होता है, इन पुद्गलों
की अवगाहना आत्मा के असंख्यात प्रदेशों में होती है । परमा के एक-एक प्रदेश में
अनन्त पुद्गल रहते हैं । आत्मप्रदेशों का और कर्म-पुद्गलों का बन्ध एकैकैऽवगाहन
रूप ही है, जैसे एक पुद्गल दूसरे पुद्गल के साथ स्निग्धता और रूढता गुण के कारण
मिथ कर रूढ बन जाता है वैसे आत्मा और पुद्गल का बन्ध नहीं होता । कर्म

कर्म अपनी अपेक्षा आत्मा की साथ पुद्गल को एकैकैऽवगाहन रूप में बंधे से परन्तु
स्रष्टाओं को बंधे सिद्ध सिद्ध प्रतीत बात से बंधे कारणों की अपेक्षा अमूर्तता नहीं
वास्तव में है—वास्तव में पुद्गल को बंध तो पुद्गल की साथ ही बात से
पृथक्-पृथक् पुद्गल रूढता बंधे स्निग्धता शून्याना कारणों परस्पर बंध बंध बंध
से बंधे प्रमाणात् आत्मा की साथ प्रथम बंध बंधे (आत्माने प्रथम बंधे))
कर्मपुद्गलों की साथ नवीन कर्मपुद्गलों को बंध बात से, तो पुद्गलों की अवगाहना
आत्माने बंध जात प्रदेशों में बात से आत्माने बंधे बंधे प्रदेशों में अनन्त पुद्गल
रूढे से आत्माने प्रदेशों बंधे कर्मपुद्गलों को बंधे एकैकैऽवगाहनरूप बंधे से कोणी
रीते बंधे पुद्गल को बंधे पुद्गलों की साथ स्निग्धता बंधे रूढता शून्याना कारणों
अधीने बंधे बंधे बंधे से तेनी रीते आत्माने बंधे पुद्गलों को बंधे बंधे नहीं,
कर्मपुद्गलों की अवगाहना आत्मा की साथ बंधे बंधे अनन्तिकावधि बंधे बंधे बंधे से
प्र भा-३५.

આત્મનો મિથ્યાત્વેન સદાનાદિઃ સમ્વન્ધઃ । અનાદિમિથ્યાત્વજનિત-
વિભાવપરિણામરૂપરાગદ્વેપપરિણત્યાઽઽત્મા સંતપ્તાયોગોલક ઇવ સલિલં સર્વતોભાવેન
જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મદલ સમાકૃપ્ય સ્વસ્મિન્ સંયોજયતિ । તતોઽસૌ વહ્નિનાઽયોગાલક
ઇવ, નીરેણ ક્ષીરમિવ તેન કર્મદલેનૈક્યભાવં પ્રાપ્ય મૃતં ઇવ ભવતિ, અત એવ
નિશ્ચયનયેનાઽમૂર્તોઽપિ વ્યવહારનયેનાત્મા મૃતં ઇત્યુચ્યતે । કર્મસમ્વન્ધોઽયમાત્મનો
વ્યવહારનયત એવ ।

કા સયોગ છે । અત એવ ઉસે પૌદ્ગલિક કર્મો સે સયુક્ત કહતે હૈં । મિથ્યાત્વ
કે સાથ આત્મા કા અનાદિ સમ્વન્ધ છે । અનાદિકાલીનમિથ્યાત્વજનિત
વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષ સે આત્મા અપને સમસ્ત પ્રદેશો સે જ્ઞાનાવરણ આદિ
કે કર્મદલિકો કો ઉસી પ્રકાર ગ્રહણ કરતા છે, જૈસે સૂચ તપા હુઆ લોહે કા
ગોલા જલ કો ગ્રહણ કરતા છે । અત જૈસે અગ્નિ ઔર લોહગોલક એકમેક
સે હો જાને હૈં, ઔર દૂધ-પાની એક-મેક હોયા હુઆ પ્રતીત હોતા છે, ઇસી
પ્રકાર કર્મદલિકો કે સાથ આત્મા એકમેક હોકર મૂર્ત-સા હો જાતા છે । ઇસ
પ્રકાર નિશ્ચયનય સે અમૂર્ત હોને પર મી વ્યવહારનય સે આત્મા મૂર્ત છે । આત્મા
ઔર કર્મ કા વહ સમ્વન્ધ વ્યવહારનય સે હી સમજના ચાહિએ ।

કર્મોની સાથે આત્માનો સયોગ છે એ કારણથી તેને પૌદ્ગલિક કર્મોથી સયુક્ત
કહે છે

મિથ્યાત્વની સાથે આત્માનો અનાદિ સબધ છે અનાદિકાલીન મિથ્યાત્વથી
ઉત્પન્ન વિભાવ-પરિણતિરૂપ રાગ-દ્વેષથી આત્મા પોતાના સમસ્ત પ્રદેશોથી જ્ઞાનાવરણ
આદિના કર્મદળોને એવી રીતે ગ્રહણ કરે છે કે જેવી રીતે ખૂબ તપેલા લોહાનો
ગોળો જલનુ ગ્રહણ કરે છે એટલે કે જેમ અગ્નિ અને લોહાનો ગોળો એકમેક
થઈ જાય છે, અને દૂધ-પાણી એકમેક થયેલા પ્રતીત થાય છે. તે પ્રમાણે કર્મ-
દલિકોની સાથે આત્મા એક-મેક થઈને મૂર્ત જેવો થઈ જાય છે આ પ્રમાણે
નિશ્ચયનયથી અમૂર્ત હોવા છતાય પણ વ્યવહારનયથી આત્મા મૂર્ત છે આત્મા
અને કર્મનો આ સબધ વ્યવહારનયથી જ સમજવો જોઈએ

स्वप्नात् पुरातना पुद्गलाः स्रान्ति नूतनास्तु तत्रागत्य मिस्रन्ति, तथाऽनयो-
 स्तैवस-कार्मण-शरीरयोः स्वरूपं न कदाचिद् विनश्यति, परन्तु सप्रत्याः
 पुरातनाः कर्मपुद्गलाः स्वस्वफलमज्ञानपुरस्सरं स्वानस्थितिसमयं समाप्त्वाप-
 गच्छन्ति, नूतनाः पुनः कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशेषु पिच्छिन्वा संभवा भवन्ति ।
 एषामात्मप्रदेशैः सदानादिकास्तः प्रवाहरूपोऽप्य समायातः कर्मणां सम्बन्धः ।

अथ च कर्मसम्बन्धस्तद्वैव विनश्यत्यति, यदाऽप्यमात्मा मुक्तिं लभेत् । आम्नां
 तैमसकर्मणश्चरीराम्नां वियोग एव मुक्तिरुच्यते । यद्यनादिकास्तः कार्मण-
 शरीरं संसारिणो न स्यात् तदा कदाचिदपि नवीनकर्मणवर्गपाप्मिर्बन्धो न
 भवेत् । कर्मणश्चरीरामावादेव सिद्धानां कर्मणवर्गणापरिपूर्णेऽपि सिद्धक्षेत्रे
 कर्मण्यो न भवति ।

किं मी उस स्वप्न से पुराने पुद्गल सिरते रहते हैं और नवीन पुद्गल आकर उसमें मिस्र जाते
 हैं इसी प्रकार तैमस और कर्मण शरीर का स्वरूप कभी नष्ट नहीं होता, किन्तु उसमें के
 पुराने कर्म-पुद्गल अपना-अपना फल देकर, अपनी स्थिति का काळ समाप्त करके हट जाते
 हैं और नवीन पुद्गल अज्ञानप्रदेशों में मिस्रकर बस हो जाते हैं । इस प्रकार आत्मप्रदेशों के साथ
 कर्मों का सम्बन्ध अनादिकाल से प्रवाहरूप में बस आता है ।

एह कर्म-सम्बन्ध उसी समय नष्ट होगा, जब अज्ञान मुक्त हो जायगा । तैमस और
 कर्मण शरीर से सर्वथा वियोग हो जाना ही अज्ञान की मुक्ति है । संसारी जीव के साथ
 अनादि काल से कर्मण शरीर का सम्बन्ध न होता तो नवीन कर्मवर्गणामा का सम्बन्ध
 कभी न होता । यद्यपि सिद्धक्षेत्र कर्मणवर्गणा से मरा हुआ है, किं मी सिद्धों में कर्मण
 शरीर न होने से उन्हें कर्मण्य नहीं होता ।

विषयान् रक्षे छे ते पक्ष ते रक्षधर्मांश्चो पुराण्यु पुद्गल परतां रक्षे छे । अने
 नवीन पुद्गल आनीने तेमां भणी ज्य छे जे प्रमाद्ये तेज्य अने धर्मण्य
 शरीरु रक्ष्य के छे वजत पक्ष नाश भव नथी, परतु तेमा पुराण्यु धर्मपुद्गल
 पित-पितातु ह्य आनीने पितानी स्थितिने समय समान्त करीने छे ज्य छे
 अने नवीन पुद्गल आत्मप्रदेशोमां भणीने ज्य रक्ष ज्य छे ज्य प्रमाद्ये आत्म
 प्रदेशोनी साथे धर्मोनी सलध अनादि कालधी प्रवाहरूपमां आम्नेः आवे छे ।

अथ धर्म-सलध ते धर्मने नाश कथे के अथै आत्मा मुक्त कथे ज्ये
 तेज्य अने धर्मण्य शरीरनी सर्वथा वियोग कथे ज्ये तेज्य आत्मानी मुक्ति छे
 संसारी एवनी साथे अनादि कालधी धर्मण्य शरीरने सलध जे न छेत् ते
 नवीन धर्मवर्गणामोनी सलध पक्ष के छे वजत नथी बने, जे के (सिद्धक्षेत्र

यथा—पुद्गलस्य पुद्गलेन सह स्निग्धरूक्षगुणसद्भावे सति स्कन्धभावरूपो वन्यो भवति । कर्मपुद्गलानामवगाहनाऽऽत्मना सहेत्यमनादिकालतः प्रवृत्ता, यत्-एकपिण्डरूप कर्मणशरीरमेव संजायते । तच्च शरीरमात्मनः प्रदेशमेकमपि न मुञ्चति । आत्मनः सर्वप्रदेशमभिव्याप्य तिले तैलमिव कर्मणशरीरं तिष्ठति, किन्तु-अक्षर-स्यानन्ततमो भागो वर्तते एव, मेघपटलाच्छादितसूर्यरश्मिवत् । इदं कर्मणं शरीरं तैजसं चेति द्वयं शरीरमतिमूर्खं सदाऽऽत्मना सह वर्तते । यत्र सूक्ष्मशरीरे स्थूलशरीरे वाऽयमात्मा गच्छति तत्प्रमाणो भवन् संकुचितो विस्तृतो वा भवति । तदानीमिदं द्वयं शरीरमपि सूक्ष्मस्थूलशरीरानुसारेण संकुचितं विस्तृतं वा भवति ।

यथा—अकृत्रिमपर्वतादौ स्कन्धरचना विद्यमानैव, तथापि तस्मात्

पुद्गलो की अवगाहना आत्मा के साथ इस प्रकार अनादिकाल से चली आती है कि एक पिण्डरूप कर्मण शरीर ही उत्पन्न होता है । यह कर्मण शरीर आत्मा के एक भी प्रदेशको नहीं छोड़ता । आत्मा के समस्त प्रदेशों को व्याप्त करके, तिल में तेल की तरह कर्मण शरीर रहता है, किन्तु ज्ञान का अनन्तवाँ भाग बादलों से आच्छादित सूर्य की प्रभा के समान खुला रहता ही है ।

यह कर्मण शरीर और तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म है और आत्मा के साथ सदैव रहते हैं । जिस सूक्ष्म या स्थूल शरीर में आत्मा जाता है उसी शरीरप्रमाण संकुचित या विस्तृत हो जाता है, और उस समय ये दोनों शरीर भी सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीर के अनुसार संकुचित अथवा विस्तृत हो जाते हैं ।

जैसे अकृत्रिम पर्वत आदि में स्कन्ध की रचना तो ज्यों की त्यों विद्यमान रहती है

हे ऐकपिण्डरूप कर्मण शरीर न उत्पन्न थाय छे ते कर्मण शरीर आत्माना ऐक पण्य प्रदेशने छोडतो नथी आत्माना तमाभ प्रदेशाने व्याप्त (आरेय तरक्ष घेरायेडुं) करीने तदभा तेल रडे छे ते प्रभाणु कर्मण शरीर रडे छे

परतु ज्ञानने अनन्तमे भाग, वाहणाओधी ढकाओली सूर्यनी प्रभा प्रभाणु भुख्ये रडे न छे ? ते कर्मण शरीर अने तैजस शरीर अत्यन्त सूक्ष्म छे अने आत्माना साथे ते डभेशा रडे छे जे सूक्ष्म हे स्थूल शरीरमा आत्मा नय छे ते शरीर प्रभाणु संकुचित अथवा विस्तृत थर्ष नय छे अने ते समय आ जन्ने शरीर पण्य सूक्ष्म अथवा स्थूल शरीरना अनुसारे संकुचित अथवा विस्तृत थर्ष नय छे.

जेवी रीते अकृत्रिम पर्वत आदिना रूक्षधनी रचना तो जेवी छे तेवी न

लोकवादिप्रकरणम्—

यः पुनरेकस्वमात्मानं सर्वथा विज्ञायात्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव वस्तुतो लोकवादीत्याह—'लोकवादी' इति । लोक्यते सर्वैरिति लोक—पृथ्वीवनिकायरूपः । अत्र लोकशब्देन पृथ्वीवनिकायो युज्यते, भगवताऽऽत्मज्ञानमेव पुरस्कृत्य लोकवादिमतिषोपनात् । यः पृथ्वीवनिकायरूपं लोकं विमानाति स एव लोकवादी—लोकस्वरूपकवनस्वभाववान्, न तु पृथ्वीवनिकायानमिह इत्यर्थः ।

पृथ्वीवनिकायरक्षणैवात्मस्वरूपं प्रकटीमपति । तत्र पृथ्वीव-

लोकवादिप्रकरण—

जो इस प्रकार आत्मा के स्वरूप को जान कर आत्मा के निरूपण में तत्पर होता है वही वास्तव में लोकवादी है ।

सर्वज्ञों द्वारा जो लोक वाय-मवलोकन किया गया वह लोक है, अर्थात् पृथ्वीवनिकाय को लोक कहते हैं । लोक 'शब्द से नहीं पृथ्वीवनिकाय का ही ग्रहण किया गया है, क्योंकि भगवान् ने आत्मज्ञान को ही भागे रखकर लोकवादी का कवन किया है । जो पृथ्वीवनिकायरूप लोक को जानता है वही लोकवादी है, अर्थात् लोक के स्वरूप का कवन करने वाला है, किन्तु पृथ्वीवनिकाय से अनभिज्ञ नहीं ।

पृथ्वीवनिकाय की रक्षा करने से ही आत्मा का स्वरूप प्रकट होता है । पृथ्वीव-

लोकवादीप्रकरण

जो आत्मा प्रमाद्ये आत्मज्ञान स्वरूपने बाधुी करीने आत्मज्ञान निरूपणमा तत्पर थाव उ ते वास्तविक शीते लोकवादी उ

सर्वज्ञे ज्ञान के लोकवाय-अवलोकन करवा-अर्थात् सर्वज्ञा जेने जेठ शब्द उ ते लोक उे अर्थात् पृथ्वीवनिकायने लोक उठे उे लोक 'शब्दधी पृथ्वीवनिकायतु न प्रकृत्य उतु उे करवा उे अजवाने आत्मज्ञानने न आत्मज्ञान राधीने लोकवादीतु कवन उतु उे के पृथ्वीवनिकायरूप लोकने ज्ञाने उे ते लोकवादी उे अर्थात् लोकना स्वरूपतु कवन करवा पज्या उे पृथ्वीवनिकायधी अनभिज्ञ होय ते नदि ।

पृथ्वीवनिकायनी रक्षा करवाधी न आत्मज्ञान स्वरूप प्रकट थाव उे पृथ्वी-

(૧૩) આત્મન ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવત્વમ્—

અયમાત્મા—ઝર્ધ્વગતિશીલઃ, અગુરુલઘુત્વાત્ । યદ્યેવં તર્હિ કથમધો ગચ્છતિ ? । અલાઘુર્યથા સ્વભાવત ઝર્ધ્વગમનશીલોપિ મૃલ્લેપાજ્જલેઽધો ગચ્છતિ; તદપગમાદૂર્ધ્વ-માજલાન્તાદ્ ગચ્છતિ, એવમાત્માપિ કર્મલેપાદધો ગચ્છતિ તદપગમાદૂર્ધ્વમાલો-કાન્તાદ્ ગચ્છતિ । યથા વા—એરળ્ડવીજમપિ વન્ધનમુક્તં સદૂર્ધ્વ ગચ્છતિ ।

(૧૩) આત્માકા ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

યહ આત્મા ઝર્ધ્વગમન સ્વભાવ વાલા હૈ, ક્યોં કિ વહ અગુરુલઘુ હૈ । પ્રશ્ન કિયા જા સકતા હૈ કિ અગર એસી વાત હૈ તો આત્મા અધોગમન ક્યોં કરતા હૈ ? ઇસ પ્રશ્ન કા ઉત્તર યહ હૈ કિ જૈસે પાની મેં ડપર કી ઓર ગમન કરને કા તૂવેકા સ્વભાવ હૈ, ફિર મી મિટ્ટી કા લેપ કર દેને સે વહ અધોગમન કરતા હૈ ઓર લેપ હટ જાને પર જલ કી સતહ તક ડપર કી ઓર ઉઠતા હૈ । ઇસી પ્રકાર આત્મા કર્મલેપ કે કારણ નીચે જાતા હૈ ઓર કર્મલેપ હટ જાને સે લોક કે અગ્રભાગ તક ડપર કી ઓર જાતા હૈ । અથવા જૈસે—એરળ્ડ કા વીજ વન્ધન સે મુક્ત હોકર ડપર જાતા હૈ ડસી પ્રકાર આત્મા મી કર્મવન્ધન કા નાશ હોને પર ડપર જાતા હૈ ।

કાર્મણુવર્ગણુઓથી ભરેલો છે, તો પણ સિદ્ધોમા કાર્મણુ શરીર નહિ હોવાથી તેને કાર્મણ ધ થતો નથી

(૧૩) આત્માનો ઝર્ધ્વગતિસ્વભાવ—

આ આત્મા ઝર્ધ્વ-ગતિ-ગમન-સ્વભાવ વાળો છે, કારણ કે તે અગુરુ-લઘુ છે તો પ્રશ્ન કરી શકાય છે કે અગર જો એ પ્રમાણે છે તો આત્મા અધોગમન કેમ કરે છે ? આ પ્રશ્નનો ઉત્તર એ છે કે—તુબડાનો સ્વભાવ જેમ પાણીમા ઉપરની તરફ આવવાનો છે તો પણ તેને માટીનો લેપ કરી દેવાથી તે પાણીમા નીચે જાય છે અને માટીનો લેપ દૂર થતા જલની સપાટી સુધી ઉપરના ભાગમા આવે છે એ પ્રમાણે આત્મા કર્મલેપના કારણે નીચે જાય છે, અને કર્મલેપ દૂર થવાથી લોકના અગ્રભાગ સુધી ઉપરના ભાગમા જાય છે અથવા જેવી રીતે એરડાનું ખીજ બંધનથી મુક્ત થતા ઉપર જાય છે તે પ્રમાણે આત્મા પણ કર્મબંધન નાશ થતા ઉપર જાય છે

अत्र पञ्च स्यान्वरा एकत्रसमेति मिच्छिष्या प जीवनिष्काया मबन्ति
एषां पत्येकं मेदान् मदर्शयामः-

(१) पृथिवीकायमेदाः-

पृथिवीकायस्तावदुच्यते-पृथिव्येष कायो यस्य स पृथिवीकायः।
पृथिवीकायादय पञ्च स्थावरनामकर्त्रोदयात् समुत्पन्नास्तस्मादिमे स्थावरा इति
कथ्यन्ते। पृथिवीकायोऽनेकविधा, शुद्धपृथिवीशर्करा-वाल्मकादिमेदात्। तत्र
शर्करादिमेदरहिता मृत्तिकारूपा, तथा गोमयकचवरादिरहिता वा पृथिवी-

पांच स्थावर और एक प्रत्येक मिच्छर पृथिवीकाय हैं। इन सबके
मेद विस्मृत हैं—

(१) पृथिवीकाय के मेद—

पृथिवी ही भिन्न का शरीर हो, वह पृथ्वीकाय कहलाता है। पृथ्वीकाय आदि पांचों
स्थावरनामकर्त्रों के उदय से उत्पन्न होने के कारण स्थावर कहलाते हैं। पृथिवीकाय
अनेक प्रकार का है—शुद्ध पृथिवी, शर्करा वाल्म आदि। उनमें शर्करा आदि
मेदों से रहित मृत्तिकारूप तथा गोबर या कचरा आदि से रहित पृथिवी शुद्धपृथिवी
कहलाती है। कचरे के छोटे-छोटे सखों से मिली हुई मृत्तिका शर्करा पृथिवी है।

ॐ, भद्रं कर्णेभ्यो नमः ॐ

पांच स्थावर होने लोके तत्र मणीने पृथिवीकाय ॐ के तमामना सेदो
क्यावे ॐ—

(१) पृथिवीकायना सेद—

पृथिवी केतु शरीर केतु, ते पृथिवीकाय कहेंवाय ॐ. पृथ्वीकाय आदि पञ्च
स्थावरनामकर्त्रोऽनेकविधा उत्पन्न होवाना कारणे स्थावर कहेंवाय ॐ पृथ्वीकाय अनेक
प्रकारे ॐ शुद्धपृथ्वी, शर्करा, वाल्म (शर्करा) आदि तेषां शर्करा आदि सेदोकी रहित
मृत्तिकारूप, अने काय अत्रर कचरा आदिशी रहित पृथ्वी शुद्धपृथ्वी कहेंवाय ॐ.
कचरा नाना-नाना ककलकोशी भजेवी माटी ते शर्करा पृथिवी ॐ. वाल्म (शर्करा)

નિકાયજ્ઞાન વિના તદ્રક્ષણં ન સંભવતિ । અતઃ પદ્મજીવનિકાયસ્વરૂપં નિરૂપ્યતે—

જીવાસ્તાવત્ સંક્ષેપતો દ્વિવિધાઃ—સિદ્ધા અસિદ્ધાથેતિ । તત્ર મુક્તિ પ્રાપ્તાઃ સિદ્ધાઃ, સંસારિણોઽસિદ્ધાઃ । સંસારિણઃ પુનર્દ્વિવિધાઃ—ત્રસ—સ્થાવરભેદાત્ । તત્ર પૃથિવ્યપ્તેજોવાયુવનસ્પતયઃ સ્થાવરાઃ । ત્રસાશ્ચતુર્વિધાઃ—દ્વીન્દ્રિય—ત્રીન્દ્રિય—ચતુરિન્દ્રિય—પञ્ચેન્દ્રિયભેદાત્ । તત્રેન્દ્રિયાણિ પञ્ચ શ્રોત્ર—ચક્ષુ—ઘ્રાણ—રસન—સ્પર્શનાભ્યાનિ । પૃથિવીકાયોઽપ્કાયસ્તેજસ્કાયો વાયુકાયો વનસ્પતિકાયથેતિ પञ્ચવિધા જીવા એકેન્દ્રિયાઃ । કૃમ્યાદયો દ્વીન્દ્રિયાઃ, । પિપીલિકાદયસ્ત્રીન્દ્રિયાઃ, ભ્રમરાદયશ્ચતુરિન્દ્રિયાઃ । મનુષ્યાદયઃપञ્ચેન્દ્રિયાઃ ।

નિકાય કી રક્ષા ઉસકે જ્ઞાન કે અભાવ મેં નહીં હો સકતી, અતઃ ષડ્જીવનિકાય કે સ્વરૂપ કા નિરૂપણ ક્રિયા જાતા હૈ—

સંક્ષેપ મેં જીવોં કે દો ભેદ હૈં—સિદ્ધ જીવ ઓર અસિદ્ધ જીવ । મુક્ત જીવ સિદ્ધ કહલાતે હૈં ઓર સસારી જીવ અસિદ્ધ કહલાતે હૈં । સસારી જીવ મી દો પ્રકાર કે હૈં—ત્રસ ઓર સ્થાવર । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, ઓર વનસ્પતિકાય સ્થાવર હૈં । ત્રસ જીવ ચાર પ્રકાર કે હૈં—દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય ઓર પञ્ચેન્દ્રિય । શ્રોત્ર, ચક્ષુ, ઘ્રાણ (નાક), રસના ઓર સ્પર્શન, યે પાચ ઇન્દ્રિયાં હૈં । પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય ઓર વનસ્પતિકાય, યે પાચ સ્થાવર જીવ એકેન્દ્રિય હૈં । કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય હૈં । પિપીલિકા (ચિડટી) આદિ ત્રીન્દ્રિય હૈં । મૈરા આદિ ચૌદ્વિન્દ્રિય હૈં । મનુષ્ય આદિ પञ્ચેન્દ્રિય હૈં ।

જીવનિકાયની રક્ષા તેના જ્ઞાનના અભાવમા થઈ શકતી નથી, તે કારણથી પણ જીવનિકાયના સ્વરૂપનુ નિરૂપણ કરવામા આવે છે —

સંક્ષેપમા જીવના બે ભેદ છે—(૧) સિદ્ધજીવ અને (૨) અસિદ્ધજીવ મુક્તજીવ તે સિદ્ધ કહેવાય છે અને અસિદ્ધ તે સસારી જીવ કહેવાય છે સસારી જીવ પણ બે પ્રકારના છે (૧) ત્રસ અને (૨) સ્થાવર પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય, અને વનસ્પતિકાય તે સ્થાવર છે ત્રસ જીવ ચાર પ્રકારના છે દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય, ચતુરિન્દ્રિય અને પञ્ચેન્દ્રિય શ્રોત્ર (કાન) ચક્ષુ (નેત્ર), ઘ્રાણ (નાક), રસના (જીભ), અને સ્પર્શન (ચામડી), આ પાચ ઇન્દ્રિયો છે પૃથિવીકાય, અપ્કાય, તેજસ્કાય, વાયુકાય અને વનસ્પતિકાય, આ પાચ સ્થાવરજીવ એકેન્દ્રિય છે, કૃમિ આદિ દ્વીન્દ્રિય છે કીડી આદિ ત્રીન્દ્રિય છે, ભમરા વગેરે ચૌદ્વિન્દ્રિય

उक्तवाटरपृथिवीकायानां यत्रैको बीभस्तत्र नियमतोऽवस्थाता पृथिवीकाया
वीर्या सन्ति । स्थानमप्येषां पृथिवी-पाताल-मवन-नरक-प्रस्तर-विमानादिकं
वेद्यम् । सूक्ष्मपृथिवीकायानीवास्तु सर्वसोकस्यापिनः । उमयेषां मेदप्रमेदाः
सर्वश्रमणीतावागमादवगन्तव्या ।

(२) अपृकायमेदाः—

अपृकायान्मेदविधयः—अवश्याय—मिदिका—करक—हरतनु—सुद्ध—शीतो—व्या-
हार—श्ल—लक्ष्म—शीरोदक—पृतोदकादिमेदात् । एको यथापृकायस्तत्रासेस्याता
अपृकायाः सन्ति । वाटरापृकायानां समुद्र—इद—नदी—वापी—झूपादि स्थानम् ।
सूक्ष्मापृकायस्तु सर्वसोकस्यापकः । अस्यापि मेदप्रमेदा आनमता विज्ञेयाः ।

उक्त वाटर पृथिवीकाय आदि का जहाँ एक बीज है वहाँ नियम से असेस्यात पृथिवीकाम
के बीज हैं । पृथिवी, पाताल, मवन, नरक—प्रस्तर, विमान आदि इनके स्थान हैं ।
सूक्ष्म पृथिवीकाय के बीज समस्त लोक में व्याप्त हैं । दोनों के मेद—प्रमेद सर्वशोक आगम
से समस्त क्से जाधिप ।

(२) अपृकाय के मेद—

अपृकाय अनेक प्रकार का है—मेस, मिदिका, ओसे, हरतनु, सुद्धक, शीतक,
उष्णक छार अनेक लक्षणक (आर पाती) शीरोदक, नीर पृतोदक आदि । जहाँ एक अकाय
है वहाँ असेकपात अपृकाय हैं । वाटर अ—कायका स्थान समुद्र, सजाव नदी, वावडी,
झूपादि हैं और सूक्ष्म अपृकाय समस्त लोक में व्याप्त है । इसके भी मेद—प्रमेद
आगम से समस्त जाधिप ।

उपर कहेका वाटर पृथिवीकाय आदिने जनां मेद एव से तनां निजमशी
अस ज्वात पृथिवीकाय एव से पृथिवी, पाताल, मवन, नरक—प्रस्तर, विमान आदि
तेना स्थान से सूक्ष्म पृथिवी कायना एव समस्त लोकमां व्याप्त से जे अनेना
मेद—प्रमेद अजज्ञाना आनमशी समस्त तेना जेठजे.

(२) अपृकायना के—

अपृकायना अनेक प्रकार के—ओस मिदिका (निहार) ओली, हरतनु—
(पृथ्वीने सेदिने तुलना अत्रात्राज नवेरे उपर रहेनाइ पापी) सुद्ध कक
(अवरिकुपी पडेस अथवा नदीतु पापी) शीतकक, उष्णकक (स्थनावशी अरम
पापीना कुठानु पापी) आहु कक, जाइ कक, शीरोदक अने पतोदक आदि, (सवपु,
कावपु कीर, धुिरस अने पुधरवर समुद्रनां पापी) जनां मेद अपृकाय से तनां
अस ज्वात अपृकाय से वाटर अपृकायना स्थान समुद्र, सजाव नदी वापी, झूपा
आदि से अने सूक्ष्म अपृकाय समस्त लोकमां व्याप्त से तेना मेद—प्रमेद पपु
आनमशी समस्त जेठजे.

शुद्धपृथिवी । अश्मलघुखण्डमिश्रिता मृत्तिका-शर्करापृथिवी । बालुकाव्यतिमिश्रा मृत्तिका-बालुकापृथिवी । एवं बहुविधाः पृथिवीकायाः, तथाहि-

उपल - शिला - लवणो-षर - लोह - त्रपु - ताम्र - सीसक - रजत-सुवर्ण हरिताल-
हिङ्गुलक-मनःशिला-सस्यकाञ्जन-प्रवाला-भ्रकपटला-भ्रवालुका-गोमेद-रुचका-ङ्क-
स्फटिक - लोहिताक्ष - मरकत-मसारगल्ल-भुजगे-न्द्रनील-गोपीचन्दन-गैरिक - हंसगर्भ-
पुलक-सौगन्धिक-चन्द्रकान्त-सूर्यकान्त-वैडूर्य-जलकान्तादयः सर्वे वादरपृथिवीकाय-
मेदाः । एते च शुद्धपृथिव्यादयः स्वस्वनिस्थिता एव चेतनावन्तः । गोमय-
कचवरादिरूपशस्त्रोपहता रविवह्नितापरूपशस्त्रोपहताश्च गतचेतना भवन्ति ।

बाह्य मिली मृत्तिका बालुका पृथिवी कहलाती है । इस प्रकार पृथिवीकाय के अनेक मेद हैं, वे इस प्रकार .—

पत्थर, शिला, नमक, उषर, लोहा, रांगा, तांबा, शीशा, चांदी, सोना, हडताल, हिंगल, मैनसिल, सस्यकाजन, मूगा, अभ्रक अभ्रवालुका गोमेद, रुचक, अङ्क, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त, आदि वादर पृथिवीकाय के मेद हैं । वे शुद्ध पृथिवी आदि जब अपनी खान में स्थित होते हैं तभी सचेतन होते हैं । गोबर, कचरा आदि शस्त्रों से उपहत होकर या सूर्य की धूप और अग्नि के तापरूप शस्त्र से अचेतन हो जाते हैं ।

भण्डेली माटी बालुकापृथिवी कडेवाय छे अे प्रभाखे पृथिवी कायना अनेक लेह छे

पत्थर, शिला, भीडु, उषर-भारे, लोडु, रांगो, (कलध), त्रायु, सीसुं, आदी, सोतु, हडताल, हिंगलो, मनशिल, सुरभो, मूगा-परवाणा, अभ्रक, अभ्रवालुका, गोमेद, इयक, अक, स्फटिक, लोहिताक्ष, मरकत, मसारगल्ल, भुजग, इन्द्रनील, गोपीचन्दन, गेरू, हसगर्भ, पुलक, सौगन्धिक, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, वैडूर्य, जलकान्त आदि वादरपृथिवीकायना लेह छे (आ भर वादर पृथ्वीकाय छे) अे शुद्ध पृथिवी आदि न्यारे चोतानी भाषुभा स्थित होय छे, त्यारे ते सचेतन होय छे छाषु-कचरे आदि शस्त्रोथी उपहत (डषुअेला) थधने, अथवा तो सूर्य अने अग्निना तापइय शस्त्रोथी अचेतन थध जाय छे

इमौ तेजस्काय-वायुकायौ गतिस्वभावतया प्रसावपि निगद्येते ।

(५) वनस्पतिक्रयमेदाः—

वनस्पतिकायोऽनेकविध - शैवाल - पनक - हरिद्रा - अर्द्धक - मूलाक - सुक - सुरण - पलायु - लसत - कन्ददिमेदात् । इमे वनस्पतिकायाः साधारणा सच्यन्ते । तप्तपुच्छपुष्पमल्लादय प्रत्येकशरीरा उच्यन्ते । साधारणवनस्पतिकायस्यैकस्मिन्

इनके मेद-प्रमेद पूर्ववत् भागम से जानने चाहिये । तेजस्काय और वायुकाय गतिशील होने के कारण तस मी कहे जाते हैं ।

(५) वनस्पतिक्रय के मेद-

वनस्पतिक्रय अनेक प्रकार का है । जैसे-शैवाल, पनक हरिद्रा, (हस्वी), अर्द्धक (बदरस) मूलाक, अर्द्धक (भाय) सुरण प्याक लसत, और कन्द आदि । ये वनस्पतियाँ साधारण कहलती हैं । तथा वृक्ष, गुच्छ गुम्फ क्ता आदि प्रायेकशरीर कहलती हैं । साधारण वनस्पतिक्रय के एक शरीर में अनन्त बीज होते हैं । इनका

तेजा सेद-प्रसेद पूर प्रभासे आजमधी समल बेवा लेधको तेजस्काय जने वायुकाय गतिशील होवाना कश्चे तस पक्ष कहेवामा आवे छे

(५) वनस्पतिक्रयना सेद—

वनस्पति क्रय अनेक प्रकारे छे जेमेके-शैवाल, पनक हरिद्रा आद मूलक आद सुरण, कुजली, लसत जने कन्द आदि. या वनस्पतिक्रये साधारण कहेवाम छे (जेमा जनत एवे होव तेने साधारण कहे छे) तथा वृक्ष, (जजवती सूत्रमा पश्याना तस सेरो पाडेवा छे (१) सुंगजेर (आद) नी पडे जनत एवेवाणां जाडे, (२) ज्जामानी भाकत असज्य एवेवाणां जाडे, (३) जने वाक-तमात जनेर प्रभासे सज्यात एवेवाणां जाडे) पुच्छ गुम्फ (नवभासिका जार्ध जनेर) लता आदि प्रयेक शरीर कहेवाम छे साधारण वनस्पति क्रयना जेक शरीरमा अनन्त एव होव छे तेनु स्थान धनोदधि आदि छे. सूत्रम वनस्पतिक्रय सब बीजक्यापी छे

(३) तेजस्कायभेदाः—

तेजस्कायोऽनेकविधः—अङ्गारार्चिरलातशुद्धाग्न्यादिभेदात् । इमे तेजस्काया जीवा वादराः । यत्रैकस्तेजस्कायस्तत्राऽसंख्यातास्तेजस्कायाः सन्ति । तेषां स्थानं सार्धत्तृतीयद्वीपरूपसमयक्षेत्रमेव, न ततो वहिः । सूक्ष्मास्तु सर्वलोकव्यापिनः । एषां भेद-प्रभेदाः पूर्ववद् विज्ञेयाः

(४) वायुकायभेदाः—

वायुकायः पौरस्त्य-पाश्चात्याद्युत्कलिमण्डलिकादिभेदादनेकविधः । वादर वायुकायानां स्थानं घनवात-तनुवात-तद्वलयाधोलोकपातालभवनादिकम् । सूक्ष्मा वायुकाया सर्वलोकव्यापिनः । एषा भेदप्रभेदाः पूर्ववद् वेदितव्याः ।

(३) तेजस्काय के भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकार का है, जैसे—अगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध-अग्नि आदि । जहाँ एक वादर तेजस्काय का जीव होता है वहाँ असंख्यात तेजस्काय होते हैं । इन का स्थान अर्द्धद्वीपरूप समय क्षेत्र ही है, उस से बाहर ये नहीं होते । सूक्ष्म तेजस्काय के जीव लोकव्यापी हैं । इन के भी भेद-प्रभेद आगम से समझने चाहिए ।

(४) वायुकाय के भेद—

वायु के भी पूर्वा और पश्चिमी आदि के भेद से और उत्कलिक मण्डलिक आदि के भेद से अनेक प्रकार हैं । घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक और पाताल, भवन आदि वादर वायुकाय के स्थान हैं । सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी है ।

(३) तेजस्कायना भेद—

तेजस्काय अनेक प्रकारना छे, जेभ के अगार, ज्वाला, अलात, शुद्ध अग्नि, आदि, ज्या अेक आदर तेजस्कायना छव डोय छे त्या असंख्यात तेजस्काय डोय छे तेनु स्थान अर्द्धद्वीपरूप समयक्षेत्र न छे, तेनाथी अहार ते नथी सूक्ष्म तेजस्कायना छव लोकव्यापी छे तेना पणु भेद-प्रभेद आगमथी नथी देवा नैछे

(४) वायुकायना भेद—

वायुकाय पणु पूर्वं अने पश्चिम आदिना भेदथी, अने उत्कलिक (जेभ समुद्रमा क्वेलाला) मण्डलिक, (भूणमाथी जे गोण करतो वातो डोय ते वायु) आदि भेदथी अनेक प्रकारना छे, घनवात, तनुवात, वलय, अधोलोक, अने पाताल, भवन आदि आदर वायुकायना स्थान छे, अने सूक्ष्म वायुकाय सर्वलोकव्यापी छे,

पुष्पा पुष्पिपुष्पजोरापुष्पनस्वतय सर्वे म्याररा ण्य । एवं च प्रग पहरिप
 तत्ररहाय-रापुसाय-शीन्द्रिय-शीन्द्रिय-चतुरिन्द्रिय-पठयेन्द्रिय-भदात् । एष
 तेजस्वापो वापुसायथ मागुक्त ।

शीन्द्रियादिषु चतुरिषेषु प्रमथीषु शीन्द्रियाम्नावदुष्यते—

(१) शीन्द्रिय—

शरीरकाष्ठानिना—कृमय, कृमादिना—नीलद्रुप्रभृतय, गोमया-
 दिना—गन्दीलकादय, मषजा—गन्धुन्दिमभूकप्रमथीकामभृत्तया शीन्द्रिया ।
 गन्ध कृमा प्रिया ट इन्द्रिय आदि में य दोना पाइ जाती है । श्वेतनामध्वो-
 रकय सन्धि की भजा प्रकी, भर लेव वापु और बनसक्ति य मय श्वेत है ।
 इन प्रकार प्रमथेव ए प्रकार क है—तेजस्वाय वापुसाय शीन्द्रिय, शीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय
 और पठयेन्द्रिय । इन में स तेजस्वाय और वापुसाय का वर्तन पहल दिया जा चुका है ।

इति च आदि चर प्रकार क प्रमथीषा में स प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन है—

(१) शीन्द्रिय—

गन्ध और काय आदि में उत्पन्न होने वाली जमि फल आदि में उत्पन्न
 होने का शीतल बौद्ध लेव में उत्पन्न होने का विशेष बौद्ध का में पडा
 होने का एक ही बौद्ध शीन्द्रिय और है । इन का स्थान और मय य वा
 आब उ श्वेतनामध्वोय वशिन्दी अपि.५-५५५, अपु लेव वापु बनसक्ति,
 अपु ११ श्वेतरे उ आ प्रभात् वम एव उ प्रभात् उल्लेखीय, वापुसाय
 शीन्द्रिय शीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पठयेन्द्रिय आभाषी नवकाय मल वापुसाय
 वर्णन ५ उ श्वेतनाम आ उ उ

इन्द्रिय आदि चर प्रकार क प्रमथीषा में स प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन
 किया है

(१) शीन्द्रिय—

इति च आदि चर प्रकार क प्रमथीषा में स प्रथम इन्द्रिय का स्वरूप वर्णन
 किया है

इमे स्पर्शन-रसनोभयेन्द्रियाः द्वीन्द्रिया जीवा असंख्याताः ।

(२) त्रीन्द्रियाः—

त्रीन्द्रियाः पिपीलिकादयः—पिपीलिका—रोहिणिका—कुन्थु—यूक—लिख—मत्कुण-
मत्कोटक—शुलशुल—गोपदिका—खजूरा—कर्णशूलादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-
घ्राणेन्द्रियाः । त्रीन्द्रिया असंख्याताः ।

(३) चतुरिन्द्रियाः—

चतुरिन्द्रियाः भ्रमरादयः—भ्रमर—वटर—मक्षिका—दंश—मशक—वृश्चिक—कीट-
कसारी—पतङ्गादयः प्रसिद्धाः । इमे स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-रिन्द्रियाः । चतुरि-
न्द्रिया अपि असंख्याताः ।

इन्द्रिया होती है । द्वीन्द्रिय जीव असख्यात हैं ।

(२) त्रीन्द्रिय—

पिपीलिका (कीडी), रोहिणिका, कुन्थुवा, જૂ, લીખ, સ્વટમલ, મકોડા, શુલશુલ, ગોપદિકા, સ્વજૂરા, કર્ણશૂલ, આદિ ત્રીન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે । इनके स्पर्शन रसना और घ्राण, ये तीन इन्द्रियाँ होती हैं । त्रीन्द्रिय जीव असख्यात है ।

(३) चतुरिन्द्रिय—

भ्रमर, वटर, मक्खी, डાસ, મચ્છર, વિચ્છૂ, ફીટ, પતજ્જ, કસારી, આદિ ચૌદ્વિન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે । इनके स्पर्शन, रसना, घ्राण, और चक्षु, ये चार इन्द्रियाँ होती हैं । ये जीव असख्यात है ।

રસના એ બે ઇન્દ્રિયો વાળા જીવો અસખ્યાત છે

(૨) ત્રીન્દ્રિય—

કીડી, રોહિણિકા, કુન્થુવા, જૂ, લીખ, માકડ, મકોડા, શુલશુલ, ગોપદિકા, કાનખજૂરા, કર્ણશૂલ આદિ ત્રીન્દ્રિય જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેને સ્પર્શન, રસના, અને ઘ્રાણ આ ત્રણ ઇન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિય જીવ અસખ્યાત છે

(૩) ચતુરિન્દ્રિય—

ભ્રમરા, વટર, માખી, ડાસ, મચ્છર, વીછી, ફીટ, પતંગ, કસારી આદિ ચાર ઇન્દ્રિયવાળા જીવ પ્રસિદ્ધ છે તેમને સ્પર્શન રસના, ઘ્રાણ અને નેત્ર આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે એ જીવ અસખ્યાત છે

(४) पञ्चेन्द्रियनीषाः—

पञ्चेन्द्रियनीषाश्चतुर्धा—नारक-तिर्यङ्-मनुष्य-देव-भेदात्, नारकाः सप्त-विधाः, सप्तनरकेषु समुद्रमथात् । रस(१)-शर्करा(२)-बालुका(३)-पङ्क(४)-धूम(५)-तमो(६)-महातमो(७)-नाम्यः सप्त पृथिव्यस्तत्र सप्त नरकभूमयः, यत्र ये निवसन्ति ते नारकाः सप्तविधा इति । नारकतिर्यङ्मनुष्यदेवानां स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षु-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि भवन्ति ।

पञ्चेन्द्रिय-तिर्यङ्गो द्विविधाः— गर्भज-संमूर्ष्टिमभेदात् । तत्र-गर्भजा-पञ्चधा-ब्रह्मचर-म्यस्रचर-श्लेषरो-र-परितर्प-मुञ्जपरिमर्षभेदात् । संमूर्ष्टिमा अपि

(४) पञ्चेन्द्रियनीष-

पञ्चेन्द्रिय नीष चार प्रकार के हैं—(१) नारक, (२) तिर्यङ्ग, (३) मनुष्य, और (४) देव ।

नारक सात प्रकार के हैं क्यों कि सात नरक में उनकी उत्पत्ति होती है । (१) रसप्रमा (२) शर्कराप्रमा (३) बालुकाप्रमा (४) पङ्कप्रमा (५) धूमप्रमा, (६) तम-प्रमा और (७) तमस्तम-प्रमा नामक सात पृथिवी हैं । वहाँ सात नरकभूमियाँ हैं । इन भूमियों में निवास करने वाले नारकी भी सात प्रकार के कहलाते हैं । नारक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्ग मनुष्य और देवों के स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र य पांच इन्द्रियाँ होती हैं ।

पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्ग दो प्रकार के हैं—गर्भज और संमूर्ष्टिम । इन में गर्भज के पांच भेद हैं—(१) ब्रह्मचर, (२) म्यस्रचर, (३) श्लेषर, (४) उर-परितर्प और (५) मुञ्जपरितर्प ।

(४) पञ्चेन्द्रिय—

पाँच इन्द्रियों का नाम छह बार प्रकाशना है—(१) नारकी, (२) तिर्यङ्ग, (३) मनुष्य, और (४) देव नारकीया सात प्रकार के कारण के आठ नरकोंमें सेनी उत्पत्ति होय है (१) रसप्रमा, (२) शर्कराप्रमा (३) बालुकाप्रमा, (४) पङ्कप्रमा, (५) धूमप्रमा (६) तमप्रमा और (७) तमस्तम-प्रमा नामकी सात पृथिवी है तथा सात नरकभूमियों है ते नरकभूमियोंमें निवास करना चण्ड नारकी पण्ड सात प्रकाशना कहेवाय है नारकी, पञ्चेन्द्रिय-तिर्यङ्ग, मनुष्य और देवाने स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु और श्रोत्र आ पाँच इन्द्रियों होय है

पञ्चेन्द्रिय तिर्यङ्ग दो प्रकार के हैं—(१) गर्भज (२) संमूर्ष्टिम । तेषां त्रयस्य च पाँच भेद हैं—(१) ब्रह्मचर (२) म्यस्रचर, (३) श्लेषर, (४) उर-परितर्प, और

पञ्चधा—जलचर(१)—स्थलचर(२)—खेचरो(३)—रःपरिसर्प(४)—भुजपरिः
जलचरा मत्स्यमकरादयः, स्थलचरा गोमहिष्यादयः, खेचराः
उरःपरिसर्पाः सर्पादयः, भुजपरिसर्पाः गोधादयः ।

मनुष्या द्विविधाः—कर्मभूमिजाः, अकर्मभूमिजाः । यत्र जात
सिध्यन्ति; बुध्यन्ते, परिनिर्वाण्ति; सर्वदुःखानामन्त्रं कुर्वन्ति सा कर्मभूमि
संसारान्तप्राप्तिकारकस्य रत्नत्रयरूपमोक्षमार्गस्य विज्ञातारः कर्तार उ
भगवन्तस्तीर्थङ्करा अवतरन्ति । ते च स्वयं संसारार्णवं तरन्ति, परान् ३
तारयन्ति । अर्धतृतीयद्वीपाभ्यन्तरे कर्मभूमयः पञ्चदशक्षेत्ररूपा भवति

समूर्च्छिम के भी पाच भेद हैं—(१) जलचर, (२) स्थलचर, (३) खेचर, (४)
परिसर्प और (५) भुजपरिसर्प । मच्छ, मकर, आदि जल के जीव जलचर कहलाते हैं ।
मैंस आदि स्थलचर कहलाते हैं । मयूर आदि खेचर कहलाते हैं । सर्प आदि उर
और गुहेरा (गोह) आदि भुजपरिसर्प कहलाते हैं ।

मनुष्य दो प्रकार के हैं—कर्मभूमिज और अकर्मभूमिज । जहाँ उत्पन्न ह
जीव सिद्ध बुद्ध होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं और सब दुखों का अन्त करते
उसे कर्मभूमि कहते हैं । संसार का अन्त करने वाले, रत्नत्रयरूप मोक्षमार्ग के ज्ञात
कर्ता और उपदेशक तीर्थङ्कर भगवान् कर्मभूमि में ही उत्पन्न होते हैं । वे स्वयं ससा
समुद्र तरते हैं और दूसरे भव्य जीवों को भी तारते हैं । अट्टाई द्वीप में पन्द्रह कर्म-
भूमियाँ हैं—पाँच भरत क्षेत्र में, पाँच पेरवत क्षेत्र में, और पाँच महाविदेह में । पाँच

(५) भुजपरिसर्प मच्छ, मकर (मगर) आदि जलना एवं जलचर ढडेवाय छे,
गाय, लेम आदि स्थलचर ढडेवाय छे मयूर (भार) आदि खेचर ढडेवाय छे
सर्प आदि उरपरिसर्प, अने घोयरा आदि भुजपरिसर्प छे

मनुष्य के प्रकारना छे—(१) कर्मभूमिज, (२) अकर्मभूमिज, ज्या उत्पन्न
थधने एवं सिद्ध बुद्ध होय छे, निर्वाण प्राप्त करे छे, अने सर्व दुखोना अन्त
करे छे तेने कर्मभूमि ढडे छे संसारो अन्त करवावाणा, रत्नत्रयत्रूप मोक्षमार्गना
ज्ञाता कर्ता, अने उपदेशक तीर्थंकर भगवान् कर्मभूमिमा ज उत्पन्न थाय छे ते
स्वयं संसार समुद्रने तरे छे अने धीन भव्य एवंने पशु तारे छे अटी
द्वीपमा पंद्रह कर्मभूमियो छे—पाँच भरतक्षेत्रमा, पाँच पेरवत क्षेत्रमा, अने

मरुतानि, पृथैरवतानि, पञ्च महाविदेहाः । तत्र पठवसु महाविदेहेषु पठव देव-
 कुक्षेत्रेणाभि पठवोत्तरकुक्षेत्राणि अन्तर्गतानि; तानि विहाय पञ्च महाविदेहा
 कर्मभूमयो भवन्ति । एषु पञ्चदशसु क्षेत्रेषु ज्ञाता एव ज्ञानावरणीयाविसर्ज-
 कर्मवत्करेभ्यः संसारमहारण्ये परिमुक्ता मोक्षधामामिधावन्ति । एतस्यश्चदश-
 प्यतिरिक्तेषु क्षेत्रेषु जन्म प्राप्याः पुनः सम्यग्दर्शनज्ञानधारिप्रलक्षणमोक्षमार्गं
 लभ्युं न प्रभवन्ति ।

अहो मम्यमाशिनः ! स्वनिः पसाय शीघ्रं प्रयतन्ताम्, अनन्तकास्ताः
 पृथ्वीचनिकापानां भवस्थिति-कायस्थितिषु-अनन्तजन्म-जरा-मरणाद्यनन्तदुःखमनु-
 भूय पूर्वपुण्योदयेन दुर्लभमिदं मनुष्यजन्म कर्मभूमौ लभ्यम् । देवविरति-सर्वविरति-
 न्नाभितेहो में पांच देवकुक्षेत्र और पांच उत्तरकुक्षेत्र भी अन्तर्गत हैं, उन्हें छोड़कर
 पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं । इन पन्द्रह कर्मभूमि में उत्पन्न होने वाले मनुष्य ही
 ज्ञानावरणीय आदि समस्त कर्मरूपी जोरों से संसाररूपी महा अरण्यो में छूटकर मोक्षधाम
 ष्यते हैं । इन पन्द्रह क्षेत्रों से भिन्न क्षेत्रों में जन्म लेने वाले, सम्यग्, दर्शन, ज्ञान, धारि-
 त्वरूप मोक्षमार्ग प्राप्त करने में समर्थ नहीं होते ।

अहो मम्य माशिनो ! अपने देव (कन्याण) के छिपे शीघ्र प्रयत्न करो । अनादि
 काल से पृथ्वीचनिकाय की भवस्थिति और कायस्थिति में अनन्त जन्म, जरा, मरण
 आदि का दुःख मोक्ष पूर्वपुण्य के उदय से कर्मभूमि में दुर्लभ मनुष्य भव सिद्ध है ।
 देवविरति और सर्वविरतिके रूप मुखा से परिपूर्ण मनुष्यासु रूप कटोरको

पांच महाविदेहों में पांच देवकुक्षेत्र, अने उत्तरकुक्षेत्र क्षेत्र पक्ष अन्तर्गत
 हैं, तेन छोड़ने पांच महाविदेह कर्मभूमि हैं आ पंद्रह कर्मभूमि में उत्पन्न भवा
 वाणा मनुष्य व ज्ञानावरणीय आदि तन्मय कर्मरूपी जोरों से संसाररूपी महा-
 अरण्यमार्गों में छूटने मोक्षधाम जय हैं आ पंद्रह क्षेत्रों में भिन्न क्षेत्रों में जन्म
 लेनावाला सम्यग्दर्शन, ज्ञान, धारि- त्वरूप मोक्षमार्गने प्राप्त करना सम्भव नहीं

अहो मम्य लोको ! पातानां कन्याणु आटे शीघ्र-न-बड़ी प्रयत्न करो ।
 अनादि कालથી पृथ्वीचनिकायणी भवस्थिति अने कायस्थितिमां अनन्त जन्म, जरा,
 मरण आदिनु दुःख मोक्षवीने पूर्वपुण्यना उदयથી कर्मभूमिमां दुर्लभ मनुष्य
 भव मज्जे है. देवविरति अने सर्वविरतिश्च अभूतधी परिपूर्णा मनुष्यासु रूप आ

पीयूषपूर्णमेतन्मनुष्यायुःकटोरक मृत्युरपहर्तुं पुरोज्वतिष्ठते । तदत्र विरतिमुधास्वाद-
सुखवञ्चिता भवन्तो मा भवन्तु ।

अकर्मभूमयः कथ्यन्ते—

पञ्च हैमवतानि, पञ्च हरिवर्षाणि, पञ्च रम्यकवर्षाणि, पञ्चैरण्यवतवर्षाणि,
पञ्च देवकुरवः पञ्चोत्तरकुरवः, इति त्रिंशत्, षट्पञ्चाशदन्तरद्वीपाः । अन्तरद्वीपा
अपि युगलक्षेत्रत्वादकर्मभूमयो भवन्ति । एताः सर्वा अकर्मभूमयः,
तीर्थङ्करजन्मादिरहितत्वात् ।

जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रमर्यादाकारकहिमवत्पर्वतस्य पूर्वपश्चिमान्तभागद्वयात्
वक्राकारे द्वे द्वे दंष्ट्रे निःसृते स्तः । एवम् ऐरवतक्षेत्रमर्यादाकारकशिखरि-

छीनने के लिए मृत्यु सामने खड़ा है, अतः आप विरतिरूपी सुधा के आस्वाद के सुख से
वञ्चित मत रहो ।

अकर्मभूमिका कथन—

पांच हैमवत, पांच हरिवर्ष, पांच रम्यकवर्ष, पांच ऐरण्यवत, पांच देवकुरु
और पांच उत्तरकुरु, ये तीस, और छपन अन्तर द्वीप, ये सब अकर्मभूमि हैं । अन्तरद्वीप
भी युगलियाक्षेत्र होने के कारण अकर्मभूमि ही हैं । इन में कभी भी तीर्थंकर का
जन्म आदि नहीं होता ।

जम्बूद्वीप में भरत क्षेत्र की मर्यादा करने वाले हिमवत्पर्वत के पूर्वभाग और
पश्चिमभाग से वक्र आकार की दो-दो दाढाएँ निकली हैं । इसी प्रकार ऐरवत क्षेत्र की
मर्यादा करने वाले शिखरिपर्वत के पूर्व और पश्चिम भागों से दो दो वक्राकार दाढाएँ
कटोराने छीनवी लेवा भाटे मृत्यु सामे न उबेलो छे. ओ कारखुथी तमे विरतिइपी
अमृतना स्वादना सुभधी वञ्चित रहेशो नहि

अकर्मभूमितु कथन—

पाच हैमवत, पाच हरिवर्ष, पाच रम्यक वर्ष, पाच ऐरण्यवत, पाच
देवकुरु, अने पाच उत्तरकुरु, आ तीस, अने छपन अन्तरद्वीप, आ सर्व अकर्म-
भूमि छे अतर द्वीप पण्य युगलीया क्षेत्र डोवाना कारखु. अकर्मभूमि न छे, तेभा
कौध पण्य स्थणे तीर्थंकरने जन्म आदि थतो नथी.

जम्बूद्वीपमां भरत क्षेत्रनी मर्यादा करवावाणा हिमवत पर्वतना पूर्वभाग अने
पश्चिम भागथी वक्र आकारनी जे-जे दाढो नीकणी छे ओ प्रकारे ऐरवत क्षेत्रनी
मर्यादा करवावाणा शिखरी पर्वतना पूर्व अने पश्चिम भागथी जे-जे वक्राकार
दाढो निकणी छे

पर्वतस्य पूर्व-पश्चिमान्तभागद्वयाद् वक्राकारे द्वे द्वे दृष्टे निःसृते स्वः । अप्यासु
 ईन्द्रासूर्ध्वभागे सप्त सप्तान्तरद्वीपाः सन्ति । एवं पश्यन्नास्रन्तरद्वीपा भवन्ति ।
 अन्तरद्वीपत्रया अप्यकर्मभूमिनाः । तत्रोभयेषां मनुष्याणां चारादिषु संमूर्च्छिमा
 मनुष्या उभयविधासु भूमिषु जायन्ते ।

तत्र गर्भिणा मनुष्या एकोत्तरस्रतम् (१०१), पर्याप्तापर्याप्तमेवाद्
 द्वयधिकस्रतस्रतम् (१०२), संमूर्च्छिममनुष्या अपर्याप्तमात्रतया-एकोत्तरस्रतमेव
 (१०१), सर्वेषु संमिळितेषु श्युत्तरस्रतत्रयं (३०३) मनुष्याणां वेदाः भवन्ति ।

देवनिर्णयः-

देवाश्चतुर्विधाः-मवनपति १-अन्तर २-ज्योतिष्क ३-वैमानिक ४-मेवात् ।

निष्करी है । इन आठ दाहो पर सात-सात अन्तरद्वीप हैं । इस प्रकार छपन अन्तरद्वीप
 हैं । अन्तरद्वीपत्रय (अन्तरद्वीप में उत्पन्न हुए) और भी अकर्मभूमि (अकर्मभूमि में उत्पन्न हुए)
 अन्तरद्वीप हैं । इन दोनों प्रकार के मनुष्यों के मूल आदि में, दोनों भूमियों में संमूर्च्छिम
 मनुष्य उत्पन्न होते हैं ।

गर्भिण मनुष्य एक सौ एक (१०१) प्रकार के हैं । इनके प्रजांत और अपर्याप्त
 मेव करने से दो सौ दो (२०२) मेव होते हैं । संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त ही होते हैं,
 अतः उनके एक सौ एक (१०१) मेव मिला देने से मनुष्यों के कुल मेव तीन सौ तीन
 (३०३) हो जाते हैं ।

देवनिर्णयः-

देव चार प्रकार के हैं-(१)मवनपति (२) अन्तर (३) ज्योतिष्क और (४) वैमानिक ।

आ आठ दाहो पर सात-सात अन्तरद्वीप छे आ प्रभावे छपन अन्तरद्वीप छे
 अन्तरद्वीपत्रय (अन्तरद्वीपमें उत्पन्न बनारा) एव पण अकर्मभूमि (अकर्म
 भूमिमें उत्पन्न बनारा) अहेवाव छे आ जने प्रकारना मनुष्योनां मण आदिमां
 जे जने भूमिओमां संमूर्च्छिम मनुष्य उत्पन्न जाव छे

अर्थात् मनुष्य जेकसे जेक (१०१) प्रकारना छे तेना पर्याप्त जने अपर्याप्त
 सेव अस्वाधी जसे छे (२०२) सेव जाव छे संमूर्च्छिम मनुष्य अपर्याप्त एव होव
 छे ते अस्वाधी तेना जेकसे जेक (१०१) सेव तेमां मणववाधी मनुष्योना कुल त्रयसे
 त्रय (३०३) सेव जाव छे

देवनिर्णयः-

देव चार प्रकारना छे-(१) मवनपति, (२) अन्तर, (३) ज्योतिष्क जने
 (४) वैमानिक

(१) भवनपतिदेवभेदाः—

तत्र भवनपतयो दशविधाः—(१) असुरकुमाराः, (२) नागकुमाराः, (३) सुवर्णकुमारा, (४) विद्युत्कुमाराः, (५) अग्निकुमाराः, (६) द्वीपकुमाराः, (७) उदधिकुमाराः, (८) दिशाकुमाराः, (९) वायुकुमाराः, (१०) स्तनितकुमाराश्च ।
कुमारा इव सुकुमारा मनोहरा मृदुमधुरललितगतयः कुमारवदभिव्यक्तरागाः केलिविलोलितचेतसः कुमारवच्चोद्धतरूपवेषभाषाभरणप्रहरणावरणयानवाहनाश्वेत्यतः 'कुमारा' इत्युच्यन्ते । जम्बूद्वीपे सुमेरुपर्वतस्याधस्तादक्षिणोत्तरभागयोस्तिर्यग्भागेऽनेककोटिकोटिलक्षयोजनं यावद् भवनपतयो निवसन्ति ।

(१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दश प्रकार के हैं—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार, (९) वायुकुमार और (१०) स्तनितकुमार ।

कुमार के समान सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललित गतिवाले, कुमार के समान राग व्यक्त करने वाले, क्रोडा में चित्त लगाने वाले, कुमार के समान ही उद्धत रूप, वेष, भाषा, आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करने वाले होने से ये देव, कुमार कहलाते हैं । जम्बू द्वीप में सुमेरु पर्वत के नीचे दक्षिण भाग और उत्तर भाग के तिरछे भाग में अनेक कोडा—कोडी लाख योजन तक भवनपति देव निवास करते हैं ।

(१) भवनपतिदेव—

भवनपति देव दस प्रकारना छे—(१) असुरकुमार, (२) नागकुमार, (३) सुवर्णकुमार, (४) विद्युत्कुमार, (५) अग्निकुमार, (६) द्वीपकुमार, (७) उदधिकुमार, (८) दिशाकुमार (९) वायुकुमार, अने (१०) स्तनितकुमार

कुमार प्रभाषे, सुकुमार, मनोहर, मृदु, मधुर, ललितगतिवाणा, कुमारना समान राग व्यक्त करवा वाणा, क्रीडाभा चित्त लगाववा वाणा, कुमारना प्रभाषे उद्धत—रूप, वेष, भाषा आभूषण, आयुध, यान, वाहन आदि धारण करवा वाणा होवाथी ते देव, कुमार कहेवाय छे जम्बूद्वीपभा सुमेरु पर्वतनी नीचे दक्षिणभाग अने उत्तर भागना तिछा भागभा अनेक कोडा—कोडी लाख योजन सुधी भवनपति देव निवास करे छे

तत्र बहवोऽसुरकुमारा आवासेषु, तथा कदाचिद् भवनेषु च निवसन्ति ।
 तथा नागकुमारादयः सर्वे प्रायशो भवनेष्वेव प्रतिवसन्ति । रत्नप्रमापृष्ठी-
 पिण्डार्धमयश्लोकैकसहस्रयोजनं विहायैकसप्ताष्टसप्ततिसहस्रयोजनानि तु रत्न-
 प्रमातोऽभस्तामपतिसहस्रयोजनपरिमाणमाग एव भवन्ति, तत्र भवनानि दक्षिणा
 पूर्वाभिपतीनां चमरेन्द्रादीनाम्, उचरार्थाभिपतीनां बलीन्द्रादीनाम् । महामण्डप
 यदावासाः, भवनानि नगरसदृशानि भवन्ति, परन्तु तानि भवनानि बहिर्द्वानि,
 अभ्यन्तरे समचतुष्कोणानि, तस्मात् तद्द्वारं तु पुष्करकर्णिकावद् भवन्ति । अभ्यादयः
 परमाधार्मिका अपि असुरकुमारजातीयाः पञ्चदश सन्ति—१अम्बारम्बरीय-

श्री बहुत से असुरकुमार आवासों में और कमी-कमी भवनों में निवास करते हैं ।
 नागकुमार सब प्राय भवनों में ही रहते हैं । रत्नप्रमा पृष्ठी के पिण्ड से ऊपर और
 नीचे एक-एक हजार योजन छोड़कर एक लाख अठारह हजार योजन परिमाण में अभ्य
 माग में सभी जगह असुरकुमार देवों के आवास हैं, किन्तु भवन रत्नप्रमा पृष्ठी के
 नीचे कम्बे हजार योजन परिमित माग में ही हैं । वहाँ दक्षिणापूर्वाभिपति चमरेन्द्र आदि के
 और उचरार्थाभिपति बलीन्द्र आदि के भवन हैं । महामण्डप के समान आवास हैं ।
 नगर के समान भवन हैं, किन्तु वे बाहर गोष्मकार और भीतर समचतुष्कोण हैं । उनका
 तस्मात् कर्म की कर्णिका के समान होता है । अभ्य आदि पन्द्रह परमाधार्मिक भी
 असुरकुमार जाति के हैं । उनके नाम—(१) अम्ब (२) अम्बरीय, (३) क्याम (४) शम्ब,

त्यां यथा अमुष कुभाषा, आवासेर्भां अने केर्ष केर्ष वजत अवनेर्भां निवास
 करे छे नागकुमार सब प्राय. अवनेर्भां निवास करे छे. रत्नप्रमा पृष्ठीना पिण्डी
 उपर अने नीचे ज्येक-ज्येक हजार योजन छोड़िने, ज्येक लाख अठारह हजार योजन
 परिमाणमा अभ्यमागमां सब जग्याजे असुरकुमार देवोना आवास छे. परन्तु
 भवन रत्नप्रमा पृष्ठीनी नीचे (६००००) नेनुं हजार योजन परिमित मागमां व
 छे. त्यां दक्षिणापूर्वाभिपति चमरेन्द्र आदिना अने उत्तरार्थाभिपति बलीन्द्र आदिना
 भवन छे महामण्डपी समान आवास छे नगरना समान भवन छे परन्तु ते
 अवने जहारवी योष्मकार अने अहरवी समचतुष्कोण छे तेने तणीअनेना भाज
 कर्मलनी कर्णिकासमान होय छे अभ्य आदि पहर परमाधार्मिक पञ्च असुरकुमार
 जातिना छे. तेभोना नाम जेभई—(१) अम्ब, (२) अम्बरीय, (३) क्याम (४)

३श्याम४शबल५रुद्र६वैरुद्र७काल८महाकाल९असिपत्र१०धनुः११कुम्भ१२वालुक१३
वैतरणी१४खरस्वर१५महाघोष-भेदात् ।

(२) व्यन्तरदेवाः—

रत्नप्रभाकाण्डस्य सहस्रयोजनपरिमाणयुक्तस्याधस्तादेकशतयोजनमूर्ध्वं च
तथैकशतयोजनं विहायाष्टशतयोजनपरिमाणयुक्तरत्नप्रभाकाण्डे व्यन्तरदेवाना-
मसंख्यातानि नगराणि सन्ति । तथैव भवनानि तेषामावासाश्च सन्ति । तत्र
वालवत् स्वेच्छया शक्रादिदेवेन्द्राज्ञया वा चक्रवर्त्यादिपुरुषाज्ञया वा प्रायेणा-
नियतगतिप्रचारा भवन्ति । मनुष्यान्पि केचिद् भृत्यवदुपचरन्ति । विविधेषु च
शैलरुन्दरान्तरवनविवरादिषु प्रतिवसन्ति; अतो व्यन्तरा इत्युच्यन्ते ।

(५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०) धनुष, (११) कुम्भ,
(१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष ।

(२) व्यन्तर देव—

एक हजार योजन परिमाण वाले रत्नप्रभाकाण्ड के नीचे और एक सौ योजन
ऊपर तथा एक सौ योजन छोड़कर आठ सौ योजन परिमाण युक्त रत्नप्रभाकाण्ड में
व्यन्तर देवों के असंख्यात नगर हैं । उसी प्रकार भवन और उनके आवास हैं ।
वालकों के समान अपनी इच्छासे, शक्र आदि देवों की आज्ञा से, या चक्रवर्ती आदि की आज्ञासे
प्राय अनियतगति वाले होते हैं । ये देव किन्हीं-किन्हीं मनुष्यों की दास के समान सेवा
करते हैं । ये विविध प्रकार के पर्वतों की गुफाओं में और वनविवर आदि में निवास करते
हैं अत इन्हें व्यन्तर कहते हैं ।

शबल, (५) रुद्र, (६) वैरुद्र, (७) काल, (८) महाकाल, (९) असिपत्र, (१०)
धनुष, (११) कुम्भ, (१२) वालुक, (१३) वैतरणी, (१४) खरस्वर, (१५) महाघोष.

(२) व्यन्तरदेव—

एक हजार योजन परिमाणवाणा रत्नप्रभाकाण्डनी नीचे अने एकसौ योजन
ऊपर तथा एकसौ योजन छोड़ने आठसौ योजन परिमाणयुक्त रत्नप्रभाकाण्डमा
व्यन्तर देवाना असंख्यात नगर छे ते प्रमाणे भवन अने तेना आवासो छे
आण्डोनी जेभ पोतानी धिच्छाथी, धद्र आदि देवोनी आज्ञाथी अथवा चक्रवर्ती
आदिनी आज्ञाथी प्राय अनियत गतिवाणा होथ छे. आ देव कोछ कोछ मनुष्यनी
दासनी समान सेवा करे छे ते विविध प्रकारना पर्वतोनी शुक्राओमा अने वन-
शुक्राओ आदिमा निवास करे छे.

अन्तरा पोष्यविधाः- १ पिशाच-२ मूत-३ यक्ष-४ राक्षस-५ किन्नर
 ६ किंपुरुष ७ महोरग-८ गन्धर्वा-९ प्रज्ञप्तिक-१० पञ्चप्रज्ञप्तिक-११ श्रुतिवादिक् १२ मूत-
 वादिक् - १३ कन्दित - १४ महाकन्दित १५ कृष्णाण्ड-१६ परतंग मेधात् । (स्या
 स्या २ उ ३)

भृमका अपि अन्तरदेवा दश सन्ति । यथा-(१) अन्नभृमकाः
 (२) पानभृमकाः, (३) वज्रभृमका, (४) क्षयनभृमका, (५) शयनभृमकाः,
 (६) पुष्पभृमकाः, (७) फलभृमकाः, (८) पुष्पफलभृमकाः, (९) विद्याभृमकाः,
 (१) अभ्यक्तभृमकाः ।

(६) ज्योतिष्कदेवाः-

ज्योतीषि-प्रमापुञ्जस्वरूपाणि समुज्ज्वलानि विमानानि, तत्र मवाः

अन्तर देव सोढू हैं-(१) पिशाच (२) मूत (३) यक्ष (४) राक्षस (५) किन्नर,
 (६) किंपुरुष (७) महोरग, (८) गन्धर्व (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक, (११)
 श्रुतिवादिक्, (१२) मूतवादिक्, (१३) कन्दित (१४) महाकन्दित, (१५) कृष्णाण्ड और
 (१६) परतंग (स्या स्या २ उ ३)

भृमका अन्तर देव भी दश प्रकार के हैं । जैसे—

(१) अन्नभृमका, (२) पानभृमका, (३) वज्रभृमका (४) क्षयनभृमका (५) शयनभृमका,
 (६) पुष्पभृमका (७) फलभृमका, (८) पुष्पफलभृमका, (९) विद्याभृमका और (१) अभ्यक्त-
 भृमका ।

(३) ज्योतिष्क देव

प्रमा के पुञ्ज के समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानों में उड़ान होने वाले

अन्तर देव सोढू छे (१) पिशाच, (२) मूत (३) यक्ष, (४) राक्षस (५)
 किन्नर, (६) किंपुरुष, (७) महोरग, (८) गन्धर्व (९) अप्रज्ञप्तिक, (१०) पञ्चप्रज्ञप्तिक,
 (११) श्रुतिवादिक् (१२) मूतवादिक् (१३) कन्दित, (१४) महाकन्दित, (१५)
 कृष्णाण्ड अने (१६) परतंग (स्या. स्या २ उ. ३)

भृमका अन्तर देव पञ्च दश प्रकारना छे जेम-(१) अन्नभृमका (२)
 पान भृमका (३) वज्रभृमका (४) क्षयनभृमका (५) शयनभृमका (६) पुष्प भृमका
 (७) फलभृमका (८) पुष्पफलभृमका (९) विद्याभृमका अने (१०) अभ्यक्तभृमका

(३) ज्योतिष्कदेवाः—

प्रमाणा पुञ्ज समान अत्यन्त उज्ज्वल विमानोंमें उड़ाने वाला देव

ज्योतिष्काः । ज्योतिष्कदेवास्तिर्यग्लोके ज्योतिःप्रकाशं कुर्वन्ति । ज्योतिष्कदेवाः पञ्चविधाः—(१) चन्द्र—(२) सूर्य—(३) ग्रह—(४) नक्षत्र—(५) तारा—भेदात् । इमे पञ्च समयक्षेत्रान्तर्वर्तिनश्चरस्वभावाः सन्ति । अपरे पञ्च चन्द्रादयः समयक्षेत्राद् बहिः स्थिरा एव तिष्ठन्ति ।

(४) वैमानिकदेवाः—

ऊर्ध्वलोके विमानेषु वसन्तीति वैमानिकाः । यद्वा—विशेषेण मानयन्ति=विशंति यत्र विशिष्टसुकृतिन इति विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः । यद्वा—वि=विशिष्टं मानं=ज्ञान यत्र, समदर्शितया, अन्यदेवापेक्षया च हेयोपादेयज्ञान-विशिष्टा भवन्ति यत्र तानि विमानानि, तत्र भवा वैमानिकाः ।

देव ज्योतिष्क कहलाते हैं । ज्योतिष्क देव मध्यम लोक में प्रकाश करते हैं । ज्योतिष्क देव पांच प्रकार के हैं—

१ चन्द्र, २ सूर्य, ३ ग्रह, ४ नक्षत्र, और ५ तारागण । ये पांचों समयक्षेत्र (अर्द्ध द्वीप) में चलते हैं और समयक्षेत्र से बाहर स्थिर स्वभाव वाले हैं ।

(४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्व लोक में विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा जहाँ विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करते हैं उन्हें विमान कहते हैं, और विमानों में वास करने वाले वैमानिक कहलाते हैं । अथवा समदर्शी होने के कारण जहाँ विशिष्ट ज्ञान हो, या अन्य देवों की अपेक्षा जहाँ हेय उपादेय का विशिष्ट ज्ञान हो, वे विमान हैं और उन में होने वाले वैमानिक हैं ।

न्योतिष्क ऋडेवाय छे न्योतिष्क देव मध्य लोकमा प्रकाश करे छे न्योतिष्क देव पांय प्रकारमा छे (१) चन्द्र, (२) सूर्य, (३) ग्रह, (४) नक्षत्र अने (५) तारागण्य आ पांय समयक्षेत्र (अर्द्धद्वीप)मा आदे छे अने समयक्षेत्रनी षडार स्थिर स्वभाववाणा छे

(४) वैमानिक देव—

ऊर्ध्वलोकमा विमानोमा वास करवा वाणा वैमानिक ऋडेवाय छे, अथवा न्या विशिष्ट पुण्यात्मा प्रवेश करे छे तेने विमान ऋडे छे अने विमानोमा वास करवा वाणा वैमानिक ऋडेवाय छे, अथवा—समदर्शी छेवाना करण्ये न्या विशिष्ट ज्ञान होय, अथवा अन्य देवोनी अपेक्षाय्ये, न्या हेय—उपादेयनु विशिष्ट ज्ञान होय ते विमान छे, अने तेमां थवा वाणा वैमानिक छे -

वैमानिकदेवानां द्वौ मेद्वी-कल्पोपपन्नाः कल्पतीताम् । कल्पाः=आधारः
 स वेहेन्द्रसामानिकप्रायस्त्रिंशदिव्यवहाररूपस्तदुपगताः कल्पोपपन्नाः=सौषर्मादि
 देवलोकोत्पन्ना वैमानिका देवाः । यद्वा-कल्पयु सौषर्मादिषु उपपन्नाः सौषर्मादि
 देवलोकोत्पन्ना वैमानिकदेवाः कल्पोपपन्नाः । यद्वा-कल्पेन=नियमेन इन्द्रसामा
 निकादिस्वामिसेवकादिमापरूपमर्यादयोपपन्नाः=युक्ताः=कल्पोपपन्ना ।

१ इन्द्र- २ सामानिक - ३ शायस्त्रिंश - ४ श्लोकपाल- ५ पारिषदा- ६ नीका-
 उत्तररथक- ७ऽऽमियोगिक- ९ मकीर्णाः, किञ्चिपिकाभ १० स्वस्वमर्यादापालकृतया
 कल्पोपपन्ना इत्युच्यन्ते । तत्रेन्द्राः - सामानिकादिदेवानामधिपतयः ।
 इन्द्रसमानाः-सामानिकाः । मन्त्रिपुरोहितस्वानीयास्त्रिंशदाः । सीमारसका

वैमानिक देव दो प्रकार के हैं-कल्पोत्पन्न और कल्पतीत । कल्प का अर्थ
 है-आधार । यहाँ इन्द्र, सामानिक प्रायस्त्रिंश आदि का व्यवहार कल्प माना गया है,
 और यह कल्प बिन में पाया जाय वे कल्पोपपन्न कहलाते हैं । सौषर्मा आदि देवलोको
 में निवास करने वाले वैमानिक देव कल्पोपपन्न हैं । अथवा कल्प से अर्थात् नियम से
 अर्थात् इन्द्र, सामानिक आदि, या स्वामी-सेवक आदिमापरूप मर्यादा से युक्त देव
 कल्पोपपन्न कहलाते हैं ।

इन्द्र, सामानिक, शायस्त्रिंश, श्लोकपाल, पारिषदा आनीक, उत्तररथक,
 आमियोग्य प्रकीर्णक और किञ्चिपिक ये दश अपनी-अपनी मर्यादा का पालन
 करते हुए कल्पोत्पन्न कहलाते हैं ।

सामानिक आदि देवा के अधिपति इन्द्र कहलाते हैं । इन्द्र के समान

वैमानिक देव दो प्रकारके हैं-(१) कल्पोत्पन्न अने (२) कल्पतीत. कल्पने
 अर्थ है-आधार. अर्थात् इन्द्र सामानिक प्रायस्त्रिंश आदिनि व्यवहार कल्प माने
 हैं अने जो कल्प नेनाथं नेनाथं आवे है ते कल्पोत्पन्न कहेंवाय है. सौषर्मा
 आदि देवलोकोत्पन्ना निवास करवावाज्य वैमानिक देव कल्पोत्पन्न है अथवा कल्पभी
 अधीन नियमभी अधीन इन्द्र सामानिक आदि, अथवा स्वामी-सेवक आदि
 मापरूप मर्यादासी युक्त देव कल्पोत्पन्न कहेंवाय है

इन्द्र सामानिक, शायस्त्रिंश, श्लोकपाल, पारिषदा, आनीक उत्तररथक आमियोग्य,
 प्रकीर्णक अने किञ्चिपिक पित-पितानी मर्यादायु पालन करवा यहा कल्पोत्पन्न
 कहेंवाय है.

सामानिक आदि देवाने अधिपति इन्द्र कहेंवाय है. इन्द्रना समान सामानिक

लोकपालाः । मित्रस्थानीयाः पारिषदाः । सैनिकाः सेनाधिपतिरूपाश्च-आनीकाः ।
इन्द्रशरीररक्षाकारका आत्मरक्षकाः । दासस्थानीयाः सेवका आभियोग्याः ।
नागरिक-पौरजनसमानाः प्रकीर्णकाः । अन्त्यजसमानाः कल्विपिकाः । सौधर्मादि-
द्वादशकल्पेषु दशविधा इन्द्रसामानिकादयो देवाः भवन्ति । व्यन्तरज्योतिष्कदेवेषु
त्रायस्त्रिंशत् लोकपालाश्च न भवन्ति ।

कल्पोपपन्नदेवानां निवासस्थानानि द्वादश सन्ति-१सौधर्म-२ऐशान-३सन-
त्कुमार-४माहेन्द्र-५ ब्रह्मलोक-६लान्तक-७महाशुक्र-८सहस्रार-९ऽऽनत १०प्राणत-
११ऽऽरणा-१२ऽऽच्युताः । इमे द्वादश देवलोकः कल्पविमानानि । तत्र सौधर्मस्य

सामानिक होते हैं । मन्त्री और पुरोहित जसे त्रायस्त्रिंशत् देव हैं । सीमा की रक्षा करने वाले
लोकपाल हैं । मित्र के समान पारिषद हैं । सैनिक और सेनाधिपतिरूप आनीक हैं । इन्द्र
के शरीर की रक्षा करने वाले आत्मरक्षक कहलाते हैं । नागरिक-पौरजनके समान प्रकीर्णक
देव हैं । दास के समान देव आभियोगिक कहलाते हैं, और अन्त्यजों के समान किल्विपिक
हैं । ये इन्द्र सामानिक आदि दशप्रकारके देव सौधर्म आदि सभी कल्पों में होते हैं । व्यन्तरों
और ज्योतिष्क देवों में त्रायस्त्रिंशत् और लोकपाल नहीं होते ।

कल्पोपपन्न देवों के निवासस्थान वारह हैं—

१ सौधर्म, २ ऐशान, ३ सनत्कुमार, ४ माहेन्द्र, ५ ब्रह्मलोक, ६ लान्तक,
७ महाशुक्र, ८ सहस्रार, ९ आनत, १० प्राणत, ११ आरण, १२ अच्युत । ये
वारह देवलोक कल्पविमान हैं । सौधर्म कल्प की बराबरी पर ऐशान कल्प है । ऐशान

होय छे मन्त्री अने पुरोहित जेवा त्रायस्त्रिंशत् देव छे सीमानी रक्षा करनारा ते लोकपाल छे
मित्रनी समान पारिषद छे, सैनिक अने सेनाधिपतिरूप आनीक छे इन्द्रना शरीरनी
रक्षा करवावाणा आत्मरक्षक कहेवाय छे नागरिक-पौरजननी समान प्रकीर्णक देव छे,
दासना समान सेवक देव आभियोगिक कहेवाय छे, अन्त्यजनेनी समान किल्विपिक छे,
आ इन्द्र, सामानिक आदि देव सौधर्म आदि सर्व कल्पोभा होय छे व्यन्तरों
अने ज्योतिष्क देवोंमां त्रायस्त्रिंशत् अने लोकपाल होता नथी

कल्पोपपन्न देवाना निवासस्थान आर छे (१) सौधर्म, (२) ऐशान (३)
सनत्कुमार (४) माहेन्द्र (५) ब्रह्मलोक (६) लान्तक, (७) महाशुक्र, (८) सहस्रार,
(९) आनत, (१०) प्राणत, (११) आरण, (१२) अच्युत

आ आर देवलोक कल्प विमान छे सौधर्म कल्पनी बराबरी पर ऐशन कल्प छे

कल्पस्य समानदेशे ऐशानः कल्पः । पश्चानस्योपरि सनत्कुमारः कल्पः । सनत्कुमारस्योपरि माहेन्द्रः कल्पः । एवमुपर्युपरि सर्वे कल्पाः सन्ति ।

सत्रन्योतिष्कलोकावूर्ध्वम सरस्यातयोमनकोटिकोटिपुमार्गमास्त्र रूपलक्षित्वं
शिवमागे गगनप्रदेशे सौधर्मकल्पस्तपैशानकल्पश्चास्ति । सौधर्मकल्पः पूर्व
पश्चिमदीर्घः, उत्तरदक्षिणविस्तीर्णोऽर्धचन्द्राकारः सूर्यचक्रास्वरः, आयामविक्रममाभ्यां
परिषेफतभाजसंस्पेययोमनकोटिकोटयः, सर्वरत्नमयः लोकान्तविस्तारोऽस्ति ।
एतन्मध्येमागे सर्वरत्नमयाशोक-सप्तपर्ण-चम्पका-ऽऽन्न - सौधर्माशतसकमुद्योमितः
शक्रावासः । एतन् सुधर्मा नाम शक्रस्य देवेन्द्रस्य समा तस्मिन् कल्पेऽस्तीति
सौधर्म कल्पः ।

के ऊपर सनत्कुमार कल्प है । सनत्कुमार के ऊपर माहेन्द्र कल्प है । इसीप्रकार ऊपर-ऊपर
सभी कल्प समझने चाहिए ।

न्योतिष्क मण्डल से ऊपर अर्धचन्द्रात् कोटिकोटी योजन ऊपर बाहर मेरु से उपलक्षित
दक्षिण माग में आकाश-प्रदेश में सौधर्मकल्प और ऐशान कल्प हैं । सौधर्मकल्प पूर्व पश्चिम
में चन्द्रा उत्तर-दक्षिण में विस्तीर्ण और अर्धचन्द्र के आकार का है । सूर्य के समान चम्पका-
वार, चम्पक, शोडार्ध और परिषे से अशोकपात कोटिकोटी योजन सर्वरत्नमय और लोक के
अन्तर्गत विलीन है । उसके मध्य भाग में सर्वरत्नमय अशोक, सप्तपर्ण, चम्पक, आन्न, एवं
सौधर्माशतसक से उद्योमित शक्र का आवास है । शक्र देवेन्द्र की सुधर्मानामक समा विस
कल्प में ही यह सौधर्मकल्प कहा जाता है ।

ऐशानना उपर सनत्कुमार कल्प ए सनत्कुमारना उपर माहेन्द्र कल्प ए. जे
प्रमाणे उपर उपर तत्राभ कल्प समस्तान् जेध जे.

न्योतिष्कमण्डली उपर अस च्यात् डोहा-डोही योजन उपर अर्धने मेरुधी
उपलक्षित दक्षिण आशम आकाश-प्रदेशमां सौधर्मकल्प जने ऐशान कल्प ए सौधर्मकल्प
पूर्व पश्चिममां जामे। उत्तर-दक्षिणमां विस्तीर्ण जने अर्धचन्द्राकारे ए सूर्यना समान
अभङ्गार एनाथ शोडार्ध जने परिषेथी अस च्यात् डोहाडोही योजन, सप्त रत्नमय
ए, जने डोहना अत सुधी विलीन ए तेना मध्य भागमां सप्त रत्नमय जयोऽ
सप्तपर्ण चम्पक आन्न, जेव सौधर्माशतसधी योमित एतने आवास ए. शक्र
देवेन्द्रनी सुधर्मा नामनी सभा जे कल्पमा डोह, ते सौधर्म कल्प कहेवाय ए.

तथैशानकल्पोऽप्यर्धचन्द्राकारोऽस्ति । उभौ मिलितौ पूर्णचन्द्रकारेणा-
वस्थितौ स्तः ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटिपूपरि समानप्रदेशे सनत्कुमार-
माहेन्द्रौ कल्पौ वर्तेते । अर्धचन्द्राकार इव सनत्कुमारस्तथैव माहेन्द्रोऽपि ।
उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्रसदृशाकारेण स्तः । ततोऽसंख्यातयोजनकोटिकोटियुपरि
ब्रह्मलोकः पूर्णचन्द्राकारोऽस्ति । एवमेव लान्तक-महाशुक्र-सहस्रास्तावत्ताव-
द्योजनोर्ध्वमुपर्युपरि प्रत्येकं पूर्णचन्द्राकाराः सन्ति ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि-
कोटियुपरि समानगगनप्रदेशे आनत-प्राणतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ
स्तः । उभौ मिलित्वा पूर्णचन्द्राकारेण भवतः । ततोऽप्यसंख्यातयोजनकोटि-
कोटियुपरि-आरणाच्युतलोकौ प्रत्येकमर्धचन्द्राकारौ स्तः । उभौ मिलित्वा
पूर्णचन्द्राकारं भजतः ।

ऐशानकल्प भी अर्धचन्द्राकार है । दोनों कल्प मिलकर पूर्ण चन्द्रमा के समान हैं ।
इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर समान देश में सनत्कुमार और माहेन्द्र कल्प हैं ।
सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार है और माहेन्द्र कल्प भी इसी प्रकार का है । दोनों मिलकर
पूर्णचन्द्रमा के सदृश आकार वाले हैं । इन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर ब्रह्मलोक
पूर्णचन्द्राकार है । इसी प्रकार लान्तक, महाशुक्र, और सहस्रार उतने-उतने योजन ऊपर-ऊपर
प्रत्येक पूर्णचन्द्रमा के समान अवस्थित हैं । उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर
आकाश प्रदेश में आनत और प्राणत बराबरी पर प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर
पूर्णचन्द्रके आकार के हो जाते हैं । उन से असंख्यात कोडाकोडी योजन ऊपर आरण और
अच्युत लोक प्रत्येक अर्धचन्द्राकार है । ये दोनों मिलकर पूर्णचन्द्र के आकार के जैसे
हो जाते हैं ।

ऐशान कल्प पणु अर्धचन्द्राकार छे अन्ने कल्पो भणीने पूरुं चन्द्रमानी समान
छे. तेनाथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर समान देशमा सनत्कुमार अने माहेन्द्र
कल्प छे सनत्कुमार कल्प अर्धचन्द्राकार छे अने माहेन्द्र कल्प पणु अे प्रकारनो छे
अन्ने भणीने पूरुं चन्द्रमानी पराअर आकारवाणा छे तेनाथी असंख्यात कोडा-कोडी
योजन ऊपर ब्रह्मलोक पूरुं चन्द्राकार छे अे प्रमाणे लान्तक, महाशुक्र अने सहस्रार तेटला-
तेटला योजन ऊपर-ऊपर प्रत्येक, पूरुं चन्द्रमामान अवस्थित छे तेथी असंख्यात
कोडा-कोडी योजन ऊपर आकाशप्रदेशमा आनत अने प्राणत पराअरी पर प्रत्येक
अर्धचन्द्राकार छे अे अन्ने कल्पो भणीने पूरुं चन्द्रमाना आकारना थछि नथ छे.
तेथी असंख्यात कोडा-कोडी योजन ऊपर आरण अने अच्युत लोक प्रत्येक अर्ध
चन्द्राकार छे अे अन्ने भणीने पणु पूरुं चन्द्राकार जेवा थछि नथ छे.

इत्युक्त्यनिवासिनामिन्द्राणां नामानि यथा-सौभर्मकल्पस्य शक्रः १, पेशानस्येशानः २, सन्तकुमारस्य सन्तकुमारः ३, माहेन्द्रस्य माहेन्द्रः ४, ब्रह्मश्लोकस्य ब्रह्मेन्द्रः ५, सान्तकस्य-सन्तकः ६, महाशुक्रस्य महाशुक्रः ७, सहस्रारस्य सहस्रारः ८, आनत-प्राणतयोः कल्पयोः एक-एव प्राणतनामा सुरपति ९, आरणान्युतयोरपि तयैवैकोऽप्युतनामा देवराजोऽस्ति १० ।

एषु नव श्लोकान्तिकाः-सारस्वता १-ऽऽदित्य २-वह्नि ३-वरुण ४-गर्दतोय ५-तुपिता ६-अभ्याबाधा ७-ऽऽग्नेय ८-रिष्ट ९-नामान सन्ति । प्रथमलोके श्लोकान्तिका निवसन्ति । ईशानकोपे सारस्वताः १, पूर्वस्यामादित्याः २, आग्नेयकोणे वह्नयः ३, दक्षिणस्यां वरुणाः ४, नैऋत्ये गर्दतोयाः ५, पश्चिमायां तुपिताः ६, पायम्पकोणे-अभ्याबाधाः ७, उत्तरस्याम् अग्निष्वा (आग्नेयाः) ८, मध्ये रिष्टाः ९ निवसन्ति ।

आर्य कल्पवासी इन्द्रो के नाम इस प्रकार हैं-सौभर्म कल्प का शक्र १, पेशान का ईशान २, सन्तकुमार का सन्तकुमार ३ माहेन्द्र का माहेन्द्र ४, ब्रह्मश्लोक का ब्रह्मेन्द्र ५, सान्तक का सन्तक ६, महाशुक्र का महाशुक्र ७, सहस्रार का सहस्रार ८ और आनत-प्राणत कल्पों का एक प्राणतनामक इन्द्र है ९ । आरण और अप्युत कल्पों का अप्युत नामक एक ही इन्द्र है १ ।

इन में नौ श्लोकान्तिक देव हैं-(१) सारस्वत (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण (५) गर्दतोय, (६) तुपित, (७) अभ्याबाध (८) आग्नेय और, (९) रिष्ट । ये श्लोकान्तिक देव प्रथमलोक में निवास करते हैं । ईशान कोण में सारस्वत, पूर्व में आदित्य आग्नेय कोण में वह्नि, दक्षिण में वरुण, नैऋत्य में गर्दतोय, पश्चिम में तुपित पायम्प में अभ्याबाध उत्तर में अग्निष्वा (आग्नेय) और मध्य में रिष्ट निवास करते हैं ।

आर्य कल्पवासी इन्द्रो के नाम आ प्रभावे उ-सौभर्मकल्पना शक्रः (१) ईशानना पेशान (२) सन्तकुमारस्य सन्तकुमार (३) माहेन्द्रस्य माहेन्द्र, (४) ब्रह्मश्लोकना ब्रह्मेन्द्र, (५) सान्तकना सन्तक (६) महाशुक्रना महाशुक्र (७) सहस्रारस्य सहस्रार जने आनत-प्राणत कल्पना जेक प्राणत नामना इन्द्र उ आरण जने अप्युत कल्पना अप्युत नामना जेक इन्द्र उ (१०) तेभाम नव श्लोकान्तिक देव उ-(१) सारस्वत, (२) आदित्य, (३) वह्नि, (४) वरुण, (५) गर्दतोय, (६) तुपित, (७) अभ्याबाध (८) आग्नेय, जने (९) रिष्ट आ श्लोकान्तिक देव प्रथमलोकना निवास करे उ ईशानकोणभां सारस्वत, पूर्वभां आदित्य, आग्नेयकोणभां वह्नि, दक्षिणभां वरुण, नैऋत्यभां गर्दतोय पश्चिमभां तुपित, पायम्पभां अभ्याबाध, उत्तरभां अग्निष्वा (आग्नेय) जने मध्यभां रिष्ट निवास करे उ

કલ્પાતીતા:—

કલ્પમતીતા:—અતિક્રાન્તા: કલ્પાતીતા: । સૌધર્માદિદ્વાદશકલ્પવદિર્ભૂતા: સ્વામિસેવકાદ્યાચારવર્જિતા:, સ્વાતન્વ્યાદહમિન્દ્રનામ્ના પ્રસિદ્ધા:, મદ્રાદિનવગ્રૈવેયક-વિમાન-વિજયાદિપશ્ચાનુત્તરવિમાનાધિગાસિનો દેવા: કલ્પાતીતા: ।

સૌધર્માદિદ્વાદશકલ્પતથ્ચોર્ધ્વમસંખ્યાતયોજનકોટિકોટિપૃપરિ નવગ્રૈવેય-કાનિ વિમાનાન્યુપર્યુપરિ સન્તિ । પુરુષાકારલોકસ્ય ગ્રીવાસ્થાનીયતયા વિમાનાનિ ગ્રૈવેયકાન્યુચ્યન્તે । તદ્વાસિનો દેવા અપિ ગ્રૈવેયકા ઉચ્યન્તે । સર્વોપરિતનગ્રૈવેયક-વિમાનાદૂર્ધ્વમસંખ્યાતયોજનકોટિકોટ્યુપરિ પશ્ચાનુત્તરવિમાનાનિ સન્તિ । તત્રૈકં મધ્યભાગે, ચતુર્દિક્ષુ ચત્વારિ । અનુત્તરવિમાનગાસિનો દેવા અનુત્તરા ઉચ્યન્તે ।

કલ્પાતીત—

જો દેવ કન્ય પે પરે હૈ વે કન્યાતીત કહલાતે હૈ, અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પા સે વાહર, સ્વામી, સેવક આદિ મર્યાદા સે રહિત—સ્વતત્ર હોને કે કારણ અહમિન્દ્ર નામ સે પ્રસિદ્ધ મદ્ર આદિ નૌ ગ્રૈવેયકોં મેં તથા વિજય આદિ પાચ અનુત્તર વિમાનોં મેં નિવાસ કરને વાલે દેવ કલ્પાતીત કહલાતે હૈં ।

સૌધર્મ આદિ વારહ કલ્પોં સે ડપર અસખ્યાત કોડાકોડી યોજન જાકર નૌ ગ્રૈવેયક વિમાન એક દૂસરે કે ડપર અવસ્થિત હૈં । પુરુષાકાર લોક કી ગ્રીવા કે સ્થાન પર જો વિમાન હૈં, વે ગ્રૈવેયક વિમાન કહલાતે હૈ । સવ સે ડપર કે ગ્રૈવેયક વિમાન સે ડપર અસખ્યાત કોડાકોડી યોજન જાકર પાચ અનુત્તર વિમાન હૈં । ડન મેં સે એક મધ્ય ભાગ મેં હૈ ઓર ચાર ચારોં દિગાઓં મે હૈં । અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહલાતે હૈં ।

કલ્પાતીત—

જે દેવો કલ્પથી બહાર છે તે કલ્પાતીત કહેવાય છે અર્થાત્ સૌધર્મ આદિ કલ્પોથી બહાર સ્વામી—સેવક આદિ મર્યાદાથી રહિત, સ્વતત્ર હોવાના કારણે અહમિન્દ્ર નામથી પ્રસિદ્ધ છે ભદ્ર આદિ નવગ્રૈવેયકમા, તથા વિજય આદિ પાચ અનુત્તર વિમાનોમા નિવાસ કરવા વાળા દેવ તે કલ્પાતીત કહેવાય છે

સૌધર્મ આદિ બાર કલ્પોથી ડપર અસખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને નવ ગ્રૈવેયક વિમાન એક બીજાની ડપર અવસ્થિત છે પુરુષાકાર લોકની ગ્રીવા (ડોક) ના સ્થાન પર જે વિમાન છે તે ગ્રૈવેયક વિમાન કહેવાય છે

સૌથી ડપરના ગ્રૈવેયક વિમાન ડપર અસખ્યાત કોડા—કોડી યોજન જઈને પાચ અનુત્તર વિમાન છે તેમાથી એક મધ્ય ભાગમા છે, ચાર ચારેય દિશાઓમા છે અનુત્તરવિમાનવાસી દેવ અનુત્તર કહેવાય છે

नक्षत्रैवेयकनामानि यथा - १ मद्र - २ सुमद्र - ३ सुमात - ४ सुमानस - ५ सुदर्शन - ६ प्रियदर्शना - ७ अमोघ - ८ सुप्रतिमद्र - ९ यशोधराणि ।

पञ्चानुचरविमानानि यथा - १ विमय - २ वैजयन्त - ३ जयन्ता - ४ अपरामित - ५ सर्वाभिस्त्रिणास्यानि । अबिद्यमानानुचर-सुत्कृष्ट विमानादि येभ्यस्तान्यनुचराणि । तानि च विमानानि-अनुचरविमानानि ।

तीर्थङ्करादीनां समवसरणान्दौ कल्पोपपन्नेदेव गमनागमनं कुर्यन्ति । कल्पान्तीक्ष्णदेवास्तु स्वस्थानादन्यत्र न गच्छन्ति ।

पञ्चजीवनिकायमेव-संकलनम्

पञ्चजीवनिकायानां त्रिपष्टुचरपञ्चज्ञानानि (५६३) मेदाः । तथाहि पृथिव्यप्तेजोवायुकायानां प्रत्येकं वातर-सूक्ष्म-मेदाश्च द्विविधेऽप्येवम् । तेषां

नौ प्रैवेयको के नाम-(१) मद्र (२) सुमद्र, (३) सुमात (४) सुमानस (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन (७) अमोघ (८) सुप्रतिमद्र, और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुचर विमान-(१) विमय (२) वैजयन्त (३) जयन्त (४) अपरामित और (५) सर्वाभिस्त्रि । फिर से ऊपर अर्थात् उत्कृष्ट और कर्षे विमान नहीं वे अनुचर विमान कहल्यते हैं । तीर्थङ्कर आदि के समवसरण आदि में कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीक्ष्ण देव अपने स्थान से अन्य जगह नहीं जाते ।

पञ्चजीवनिकाय के मेदों का संकलन-

पञ्चजीवनिकाय के कुल पांचसौ त्रेसठ (५६३) मेद हैं । वे इस प्रकार हैं- पृथिवी, वायु, तेज, और वायुकाय के वातर और सूक्ष्म के मेद से आठ मेद हुए ।

नक्षत्रैवेयकना नाम-(१) मद्र, (२) सुमद्र, (३) सुमात, (४) सुमानस (५) सुदर्शन, (६) प्रियदर्शन, (७) अमोघ, (८) सुप्रतिमद्र और (९) यशोधर हैं ।

पांच अनुचर विमान-(१) विमय (२) वैजयन्त, (३) जयन्त, (४) अपरामित और (५) सर्वाभिस्त्रि । तैनाथी उत्तर अर्थात् उत्कृष्ट कर्षे विमान न होकर वे अनुचर विमान कहल्यते हैं । तीर्थङ्कर आदिना समवसरण आदिमें कल्पोपपन्न देव गमनागमन करते हैं । कल्पातीक्ष्ण देव अपने स्थानसे अन्य जगहसे नहीं जाते ।

पञ्चजीवनिकायना केराने नाम

पञ्चजीवनिकायना कुल पांचसौ त्रेसठ (५६३) मेद हैं । वे इस प्रकार हैं- पृथिवी, वायु, तेज और वायुकाय, तेजा वातर और सूक्ष्मना सेदही आठ मेद हुए ।

પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદાદ્ દ્વૈવિધ્યે ષોડશ (૧૬) ભેદાઃ । વનસ્પતિકાયસ્ય સૂક્ષ્મ-
સાધારણપ્રત્યેકભેદાત્ ત્રૈવિધ્યમ્, ત્રિવિધસ્ય વનસ્પતિકાયસ્ય પર્યાપ્તાપર્યાપ્ત-
ભેદેન પ્રત્યેક દ્વૈવિધ્યે તસ્ય षઢ્ ભેદાઃ, इत्थं (૨૨) દ્વાવિંશતિર્ભેદાઃ સ્થાવર-
પञ्चकस्यैकेन्द्रियजीवस्य भवन्ति ।

દ્વીન્દ્રિય-ત્રીન્દ્રિય-ચતુરિન્દ્રિયાણાં પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદેન પ્રત્યેકં દ્વૈવિધ્યે
षड् भेदाः । सर्वसकलनयाऽष्टाविंशति (૨૮) ભેદાઃ ।

तिर्यक्पञ्चेन्द्रियाः—जलचर-स्थलचर-खेचरो—रःपरिसर्पभुजपरिसर्प—मेदात्-
पञ्चविधाः । तेषां पञ्चाना संज्ञसंज्ञिभेदेन द्वैविध्ये दश भेदाः । तेषां पर्याप्ता-
पर्याप्तभेदेन विंशति(२०)भेदाः । पूर्वोक्ताष्टाविंशतिसकलनतोऽष्टचत्वारिंशद्
(४८) भेदास्तिरश्चाम् ।

इन आठों के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से सोलह भेद होते हैं । वनस्पतिकाय—सूक्ष्म,
साधारण और प्रत्येक के भेद से-तीन प्रकार का है । इन तीनों के पर्याप्त और अपर्याप्त भेद
करने से छह भेद हुए । इस प्रकार पांच एकेन्द्रिय स्थावर जीवों के बाईस (२२)भेद है ।

દ્વીન્દ્રિય, ત્રીન્દ્રિય ઓર ચતુરિન્દ્રિય કે પર્યાપ્ત અપર્યાપ્ત ભેદ સે છહ ભેદ । સઘ્કો
જોહ દેને પર અઠ્ઠાઈસ (૨૮) ભેદ હુણ ।

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय—जलचर, स्थलचर, खेचर, उर परिसर्प और भुजपरिसर्प के भेद से
पाच प्रकार के हैं । पांचों के सज्ञी, असज्ञी के भेद से दश हुए, इन के पर्याप्त, अपर्याप्त भेद
करने से बीस (२०) भेद हुए । इन बीस में पूर्वोक्त अट्ठाईस और मिलाने से तिर्यञ्चों के
अडतालीस (४८) भेद होते हैं ।

તે આઠના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્તના ભેદથી સોળ ભેદ થાય છે વનસ્પતિકાય સૂક્ષ્મ,
સાધારણ અને પ્રત્યેકના ભેદથી ત્રણ પ્રકારના છે એ ત્રણેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત
ભેદ કરવાથી છ ભેદ થયા આ પ્રમાણે પાચ એકેન્દ્રિય સ્થાવર જીવોના આવીસ ભેદ છે

એકેન્દ્રિય, ત્રણ-ઇન્દ્રિય અને ચૌદેન્દ્રિયના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્તના ભેદથી છ ભેદ
થયા તે સર્વને એક કરવાથી અઠાવીસ (૨૮) ભેદ થયા

तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय—जलचर, स्थलचर, खेचर, उर परिसर्प અને भुजपरिसर्पના
ભેદથી પાચ પ્રકારના છે તે પાચના સજ્ઞી અને અસજ્ઞીના ભેદથી દસ થયા, તેના
પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી વીસ (૨૦) ભેદ થયા, તે વીસમા પૂર્વોક્ત અઠાવીસ
ભેદવાથી તિર્યંચોના અડતાલીસ (૪૮) ભેદ થાય છે

रत्नप्रमादयः सप्त नरकभूमयः । तत्र महा नारकाः सप्तविधाः, तेषां पर्याप्तापर्याप्तमेवेन द्वैविध्ये चतुर्दश भेदाः

मनुष्याणां श्युत्तरशतत्रय (३०३) भेदाः पूर्वमेव उत्पन्नकरणे सुस्पष्टं कथिताः ।

वैशानामएनवत्सुत्तरशत (१९८) भेदाः । तत्र भवनपत्तीनां दश भेदाः असुरकुमारारक्षयः । परमाधार्मिकाः पञ्चदश । एव (२५) पञ्चविंशतिर्भेदाः । अन्यतराणां पञ्चविंशतिर्भेदाः । तत्र पिशाचादयः षोडश, अन्नभ्रंशकादयो दश (२६) । ज्योतिष्कानां दश भेदाः । तत्र चन्द्रादयः पञ्च । तेषां पञ्चानां धर-स्फिरमेवेन द्वैविध्ये दश भेदाः (१०) सन्ति । वैमानिकानामष्टविंशद् भेदाः । तत्र सुषर्मादयो द्वादश, सारस्वतादयो नव, किस्विपिकाक्षयः, प्रैवेयकाः-मद्रादयो

रत्नप्रमा आदि सात नरकभूमियों में सात प्रकार के नारकी हैं । उनके पर्याप्त, अपर्याप्त भेद करने से षोडश भेद होते हैं ।

मनुष्यों के तीसरी तीन (३०३) भेद पहले स्पष्ट करे जा चुके हैं ।

देवों के एकसौ अष्टानवे (१९८) भेद हैं । वे इस प्रकार-भवनपत्तियों के असुर कुमार आदि दस परमाधार्मिक पन्द्रह, सब पञ्चस (२५) भेद हुए । अन्यतरों के छत्तीस भेद हैं-सोलह पिशाच आदि और दस अन्नभ्रंशक आदि (२६) । चन्द्रमा आदि पाँच के धर और अचर भेद होने से ज्योतिष्क देवों के दस (१०) भेद हैं । वैमानिकों के अष्टवीस भेद हैं-सुषर्मा आदि बारह सारस्वत आदि नौ किस्विपिक आदि तीन, मद्र आदि प्रैवेयक नौ विषय आदि पाँच अनुत्तर विमान (३८) । इन सब का योग करने से

रत्नप्रमा आदि सात नरकभूमिज्योर्भा सात प्रकारका नारकी छे. तेना पर्याप्त अने अपर्याप्त भेद करवायी और भेद थाय छे.

मनुष्योना त्रयसोत्रय (३०३) भेद प्रथम स्पष्ट करी गइया छीजे. देवोना कोइसो अष्टय (१९८) भेद छे. भवनपत्तियोना असुरकुमार आदि इस परमाधार्मी पंद्रह, सब पञ्चस भेद कया अन्यतराणा छत्तीस भेद छे-सोण पिशाच आदि, अने इस अत्रय लक्ष-आदि चन्द्रमा आदि चरिना धर अने अचर भेद होवायी ज्योतिष्क देवोना दश (१०) भेद छे वैमानिक देवोना अष्टवीस (३८) भेद छे-सुषर्मा आदि बार सारस्वत आदि नव, किस्विपिक आदि त्रय लक्ष आदि प्रैवेयक नव, विषय आदि पाँच अनुत्तर विमान, आ सब ने कोइ म भा.-३८

નવ, વિજયાદયઃ પશ્ચાનુત્તરવિમાનાઃ (૩૮) । સર્વેપાં સંકલનેન (૯૯) નવ-
નવતિભેદાઃ । તેપાં પર્યાપ્તાપર્યાપ્તભેદેન દ્વૈવિધ્યે સત્યઘ્નવત્યુત્તરશતં (૧૯૮) ભેદાઃ
દેવાનાં ભવન્તિ । इत्थं सकलभेदसकलनया षड्जीवनिकायानां त्रिषष्ट्युत्तर-
पञ्चशतानि (५६३) भेदाः सन्ति ।

जीवानां संख्या—

जीवा अनन्ताः सन्ति । तथाहि—

- | | |
|--|------------------------------------|
| (१) संज्ञिनो मनुष्याः संख्याताः । | (२) असंज्ञिनो मनुष्या असंख्याताः । |
| (३) नारकिणोऽप्यसंख्याताः । | (४) देवाः संख्याताः । |
| (५) तिर्यञ्चः पञ्चेन्द्रिया असंख्याताः । | (६) द्वीन्द्रिया असंख्याताः । |
| (७) त्रीन्द्रिया असंख्याताः । | (८) चतुरिन्द्रिया असंख्याताः । |

નિન્યાનવે (૯૯) ભેદ હોતે હૈં, ઓર ઇન કે પર્યાપ્ત અપર્યાપ્ત કે ભેદ સે ઇકસૌ અઢ્ઢાનવે
(૧૯૮) ભેદ દેવોં કે હૈં । ઇસ પ્રકાર સબ ભેદોં કા જોડ કરને સે પાંચસૌ ત્રેસઠ (૫૬૩)
ષડ્જીવનિકાય કે ભેદ હોતે હૈં ।

जीवों की संख्या—

जीव अनन्त हैं । वे इस प्रकार—

- | | |
|-------------------------------------|------------------------------|
| (१) सज्ञी मनुष्य संख्यात । | (२) असज्ञी मनुष्य असंख्यात । |
| (३) नारकी असख्यात । | (४) देव असख्यात । |
| (५) तिर्यञ्च षच्चेन्द्रिय असख्यात । | (६) द्वीन्द्रिय असख्यात । |
| (७) त्रीन्द्रिय असख्यात । | (८) चतुरिन्द्रिय असख्यात । |

કરવાથી નવાણુ (૯૯) ભેદ થાય છે અને તેના પર્યાપ્ત અપર્યાપ્ત ભેદ કરવાથી એકસો
અઢાણુ (૧૯૮) ભેદ દેવોના છે આ પ્રમાણે ઉપર કહેલા સર્વ ભેદોને એકઠા કરવાથી
પાંચસો ત્રેસઠ (૫૬૩) ષડ્જીવનિકાયના ભેદ થાય છે.

જીવોની સંખ્યા—

જીવ અનન્ત છે, તે આ પ્રકારે છે —

- | | |
|-------------------------------------|---------------------------------|
| (૧) સંજ્ઞી મનુષ્ય સંખ્યાત છે | (૨) અસંજ્ઞી મનુષ્ય અસંખ્યાત છે. |
| (૩) નારકી અસંખ્યાત છે | (૪) દેવ અસંખ્યાત છે |
| (૫) તિર્યંચ પંચેન્દ્રિય અસંખ્યાત છે | (૬) દ્વિન્દ્રિય અસંખ્યાત છે. |
| (૭) ત્રીન્દ્રિય અસંખ્યાત છે | (૮) ચતુરિન્દ્રિય અસંખ્યાત છે. |

- (९) पृथिवीकाया असंख्याताः । (१०) अपृष्ठाया असंख्याताः ।
 (११) तेजस्कृया असंख्याताः । (१२) वायुकाया असंख्याताः ।
 (१३) प्रत्येक जनस्पतिकृया अपृष्ठायाः । (१४) तदपेक्षया सिद्धधीया अनन्ताः ।
 (१५) तेजोऽपि कन्दमूलादिरूपा (१६) सूक्ष्मनिगोदधीयाः ।
 बादरनिगोदधीया अनन्तगुणा । सर्वतोऽनन्तगुणाः ।

कर्मवादिसंकरणम्—

यः पुनरेवं पृथ्वीवनिकायस्वरूपनिरूपणपरः स एव लोकवादी वस्तुतः कर्मवादीत्याह—'कर्मवादी' इति । कर्म=ज्ञानापरणीयादि, तद् वदितुं धीस्मस्येति कर्मवादी—कर्मस्वरूपकथनशीलः । पृथ्वीवनिकायतत्त्वज्ञः सल्ल लोकवादी ज्ञाना

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात । (१) अपृष्ठाया असंख्यात । —
 (११) तेजस्कृया असंख्यात । (१२) वायुकाय असंख्यात ।
 (१३) प्रत्येकजनस्पतिकृया असंख्यात । (१४) इह से सिद्ध धीय अनन्त-
 (१५) बादरनिगोदधीय कन्दमूल आदि सिद्धा से (१६) सूक्ष्म निगोदधीय सब से
 भी अनन्तगुणा । अनन्त गुणा ।

कर्मवादिसंकरणम्—

जो इस प्रकार पृथ्वीवनिकाय का स्वरूप निरूपण करने वाला है, वही लोकवादी वास्तव में कर्मवादी है । ज्ञानावरण आदि कर्मों का कथन करना जिस का समाप्त हो, वह कर्मवादी है । पृथ्वीवनिकाय का सत्य समझने वाला लोकवादी ज्ञानावरण

- (९) पृथ्वीकाय असंख्यात छे । (१०) अपृष्ठाया असंख्यात छे ।
 (११) तेजस्कृया असंख्यात छे । (१२) वायुकाय असंख्यात छे ।
 (१३) प्रत्येकजनस्पतिकृया असंख्यात छे । (१४) तेनाधी सिद्धलप अनन्त छे ।
 (१५) बादर निगोद लप कन्दमूल आदि (१६) सूक्ष्म निगोद लप धीधी
 सिद्धीधी पद्य अनन्त छे अनन्तगुणा छे ।

कर्मवादीप्रकरणम्—

जे आ प्रमाणे पृथ्वीवनिकायना स्वरूपनु निरूपण करवावाचा छे ते लोकवादी वास्तविकरीते कर्मवादी छे । ज्ञानावरण आदि कर्मोनु कथन करणु ते जेना स्वरूप होय, ते कर्मवादी छे । पृथ्वीवनिकायना वचने समज्यावाच्या लोकवादी ज्ञानावरण

वरणीयाद्यष्टविधकर्मैव नरकादिचतुर्गतिभ्रमणकारणतया विजानाति । ज्ञाना-
वरणीयादिकर्मबन्धादेव हि जीवाश्चतुर्विधासु गतिषु परिभ्रमन्तः सम्यग्ज्ञानचारित्र-
प्राप्तिसन्तरेण संसारदावाग्निपतितमात्मानं समुद्धर्तुं न प्रभवन्ति । एवं कर्मबन्धवेदी
भगवः कर्मवादी बोद्धव्य इत्यर्थः ।

(१) कर्मस्वरूपम्—

अत्र कर्मप्रसङ्गेन तत्स्वरूपं निरूप्यते—

जीवेन मिथ्यात्वादिहेतुभिः क्रियते यत्, तत्र कर्म । यथा तप्तायो-
गोलकः सलिले निक्षिप्तः सन् सर्वतः सलिलमाकर्षति तथाऽनादिमिथ्यात्वा-

आदि आठ कर्मों को ही नरक आदि चार गतियों में भ्रमण का कारण जानता है ।
ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के बन्ध के कारण ही जीव चार गतियों में परिभ्रमण करते
हुए सम्यग्ज्ञान और चारित्र की प्राप्ति के बिना ससाररूपी दावानल में पड़े हुए आत्मा
का उद्धार करने में समर्थ नहीं होते । इस प्रकार कर्मबन्ध के वेत्ता (जाननेवाले) भग्यजीव
कर्मवादी कहलाते हैं ।

(१) कर्मका स्वरूप—

कर्म का प्रसङ्ग होने से उसके स्वरूप का निरूपण करते हैं :—

जीव के द्वारा मिथ्यात्व आदि कारणों से जो कियाजाय वह कर्म है । जैसे-
तपा हुआ लोहे का गोला जल में डाल दिया जाय तो वह सभी तरफ से जल को
स्वीचता है, उसी प्रकार अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणों से आत्मा निरन्तर

आदि आठ कर्मोंसे नरक आदि चार गतियोंमा भ्रमणतु कारण जलुं छे ज्ञानावरणीय आदि
कर्मोंना अघना कारणथीज एव चार गतियोंमा परिभ्रमणु करतो थके सम्यग्ज्ञान अने
चारित्रनी प्राप्ति विना ससाररूपी दावानलमा पडला आत्माने उद्धार करवामा
समर्थ थतो नथी, आ प्रकारे कर्मअघने जलुनार भग्यएव कर्मवादी कहेवाय छे.

(१) कर्मणु स्वरूप—

कर्मणो प्रसंगं होवाथी तेना स्वरूपतु निरूपणु करे छे—

एवद्वारा मिथ्यात्वआदि कारणथी जे करवामा आवे ते कर्म छे जेवी
रीते अजिन्थी तपावेले होलाने गोणे पाणीमा नाभवामा आवे तो ते आरैय
तरक्षथी पाणीने जेथे छे, ते प्रमाणे अनादिकालीन मिथ्यात्व आदि कारणथी आत्मा

विहेतुभिर्निरन्तरमपमात्मा रागद्वेषपरिणत्या स्वस्मिन् सकलप्रदेशेषु कर्मवर्गणा
रूपं पुद्गल समाकर्षन् क्षीरनीरन्यायेन तादात्म्यसमापनं करोति तदेव कर्मोच्यते ।

(२) कर्मजः सिद्धिः—

आत्मत्वधर्मेण सर्वेषामात्मनामेकरूपत्वेऽपि देवनारकमनुष्यतिर्यगादि
रूपं सुखि-दुःखि-सपन-निर्धन-सुरूप-दुरूप-सबला-ऽबल-नीरोग-सरोगादिरूपं वा
यद् वैचित्र्यं तन्न निर्हेतुकं भक्तिमुद्दति, सदा मयाऽभाषद्वेषप्रसगात् ।
निर्हेतुकत्वे देवनारकादिमवः प्राणतिकः स्यात्, तथा देवनारकादिमवा

रागद्वेषरूप परिणामो छे अपने समस्त आत्मप्रदेशों में कर्मवर्गणा के पुद्गलों को लीनता है
और क्षीर-नीर को तरह तरूप बना लेता है जहाँ को कर्म करते हैं ।

(२) कर्मकी सिद्धि—

सब आत्माओं में अक्षय्य समान होने पर भी कोई देव है, कोई नरक
कोई मनुष्य है, कोई तिर्यक कोई सुखी है, कोई दुःखी, कोई सपन, कोई निर्धन,
कोई सुरूप कोई दुरूप, कोई सबल, कोई निबल, कोई रोगी है, कोई नीरोगी है,
यह सब विचित्रता निष्कारण नहीं हो सकती, अगर इसका कोई कारण न होता तो
या तो यह विचित्रता होती ही नहीं, अगर होती भी तो सर्वत्र के लिए होती । निष्कारण
ही देवगति या नरकगति होती तो यह निश्चय होती । तथा देव नरक आदि सबका

निरन्तर रागद्वेषरूप परिवृत्ताधी घेताना समस्त आत्मप्रदेशोंमें कर्मवज्जाना पुद्ग
लोंने जेके छे अने क्षीर-नीर प्रभावे तरूप जन्मवी ले छे, तेने कर्म कहे छे

(२) कर्मनी सिद्धि—

सर्व आत्मज्येमां आत्मत्व समान होवा छत्वाय पञ्च कोर्ष देव छे कोर्ष नरकी;
कोर्ष मनुष्य छे; कोर्ष तिर्यक कोर्ष सुखी छे कोर्ष दुःखी छे कोर्ष धनवान् छे कोर्ष
निर्धन छे; कोर्ष सबूपवान् छे कोर्ष दुरूप छे कोर्ष सबल छे कोर्ष निबल छे कोर्ष
रोगी छे कोर्ष निरोगी छे. आ सर्व विचित्रता कोर्ष कारण विना कोर्ष शक्ये नही. तेनु
कोर्ष कारण न होय तो आनी विचित्रता पञ्च होय नही. अने होय तो जही ते उच्येयां
भाटे शक्ये शक्ये. कोर्ष पञ्च कारण विना देवगति अथवा नरकगति होय तो ते नित्य
होय, तथा देव अने नरक आदि जगन्ते आचार पञ्च नित्य होत जे प्रभावे

भावोऽपि शाश्वतिकः स्यात्, एवं यः सुखी, तस्य सर्वदा सुखमेव स्यात्, यश्च दुःखी, तस्य सर्वदा दुःखमेव स्यात्—सर्वदा सुखाभावस्तस्य स्यात् ।

अत एव—“नित्यं सत्त्वं वा हेतोरन्यानपेक्षणात्” इत्याहुः । सहेतुकत्वस्वीकारे च य एवास्य हेतुः स एवास्माकं कर्मेति । उक्तञ्च—

“आत्मत्वेन विशिष्टस्य, वैचित्र्यं तस्य यद्वशात् ।

नरादिरूप तच्चित्रमदृष्टं कर्मसञ्ज्ञितम्” ॥ १ ॥

अभाव ही शाश्वतिक होता । इसी प्रकार जो सुखी है वह सदा के लिए सुखी होता । जो दुःखी है उसे सदैव दुःख ही होता—उस के लिए सदैव सुख का अभाव होता । इसी लिए कहा गया है कि—“जो वस्तु किसी कारणकी अपेक्षा नहीं रखती वह, या तो आकाश की भाँति सदैव विद्यमान रहती अथवा खरविषाण की तरह कदापि नहीं होती ।” अगर इस विचित्रता का जो कारण है उसी कारण को हम कर्म कहते हैं । कहा भी है—

“आत्मत्व की समानता होने पर भी जिस कारण से मनुष्यादिरूप विचित्रता होती है वही अदृष्ट है । उसी को कर्म कहते हैं, वह नाना प्रकार का है ॥ १ ॥”

जे सुभी छे ते हुमेशा भाटे सुभीज डोत अने जे दु भी छे ते हुमेशा दु भीज रडेत, तेने हुमेशा भाटे सुभने अलाव रडेत जे डारणुथी कहु छे जे—“जे वस्तु डोर्ष डारणुनी अपेक्षा राभती नथी ते आकाश प्रमाणे सदैव विद्यमान रहे छे, अथवा भर-विषाणु (गधेडाना शिंजडा)नी प्रमाणे कदापि होय नही” अगर आ विचित्रताडु डोर्ष डारणु मानवामा आवे तो ते डारणुने अमे कर्म कहीजे छीजे, कहुं छे—

“आत्मत्व—(आत्मापणु)नी समानता होवा छता पणु जे डारणुथी मनुष्या-दिरूप विचित्रता होय छे—हेभाय छे. ते अदृष्ट छे तेने कर्म कहे छे अने ते नाना प्रकारना छे—अर्थात् घणु प्रकारना छे” ॥ १ ॥

एतत् कर्म पुद्गलस्वरूपं, नामूर्तमस्ति, अमूर्तत्वे हि कर्मणः सकाशात्
आत्मनामनुग्रहोपपातासम्भवात्, शगनाविबत् । उक्तञ्च—

“तुस्यमतापोद्यमसाहसानां,
केचिच्छमन्त निप्रकार्यसिद्धिम् ।
परे न तां मिथ । निगद्यतां मे,
कर्मास्ति हित्वा यदि कोऽपि हेतुः ? ॥१॥”

अपरञ्च—

“निवध्य मासाद्यथ गर्भमध्ये,
बहुमकारैः कल्लादिभावैः ।
उद्धर्त्य निष्काशयते सविभ्याः,
को गर्भतः कर्म विहाय पूर्वम् ?” इति ।

यह कर्म पुद्गलस्वरूप है, अमूर्त नहीं। अगर कर्म अमूर्त माना जाय तो उस से आत्मा का अनुग्रह और उपपत्त होना असंभव है, जैसे आकाश से नहीं होता। कहा भी है—

“समान प्रताप, उद्यम और साहस वालों में से कोई कोई अपना कार्य सिद्ध करलेते हैं और दूसरे नहीं करपाते। मित्र ! कर्म के सिवाय इस का और कोई कारण हो तो क्यो ? क्योंकि कर्म ही इस का एकमात्र कारण है” ॥ १ ॥
और भी कहा है—

“गर्भ में नौ महीने तक कल्ल अदि अनेक रूपों में बढाकर माता के गर्भ से पूर्वकर्म के सिवाय और कोन कारण निकालता है ?” ॥ १ ॥

ये कर्म पुद्गलस्वरूप से अमूर्त नहीं, जबवा कर्मने अमूर्त भवनवाभं आवे तो तेनाथी आत्मने अनुग्रह अने उपपात भवे। असंभव से, जेभ आकाशधी भवे। उक्त पद्य से—

“समान प्रताप, उद्यम, अने साहसवाणी अहित्योभां केरु-केरु पोत्तनुं कथ सिद्ध करी ले से अने केरु केरु नहीं करी सकती मित्र ! अथ जालतभा कर्म विना जीवु केरु कारण होय तो क्यो ? क्योंकि कर्म ही अने अने मात्र कारण है” ॥१॥
जीवु पद्य उक्त से—“जर्मभां नष मास सुधी कल्ल (अथनु प्रथम स्वरूप) अदि अनेक रूपों में बढि आमीने अत्ताना जलभाधी पूर्वकर्म सिवाय जीवु केरु जदर करे से ?” ॥१॥

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संघारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः ? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहमाकारवृक्षरक्तनीलपीतादिभावेन वैचित्र्यं विभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादिशिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरिगृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत् ? ।

शङ्का—जैसे कर्म के बिना भी भौतिक-भौतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं, उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख-दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है ? ।

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख-दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी ? ।

शङ्का—जैसी रीते कर्म विना पशु-सात-सातना मेघ आदिना विकारो जेवामा आवे छे, ते प्रमाञ्जे कर्मना अभावमां पशु ससारी जेवामा सुख-दुःख आदिनी विचित्रता होय छे अथ मानवामां शुं हानि छे ?

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत आदि रूपमा विचित्रता धारण करे छे त्यां स्वभावथी परिणत इन्द्रधनुष आदि पुद्गलना परिणामोनी विचित्रता जेवामा आवे छे परन्तु चित्रकार आदि कौं शिल्पीद्वारा गृहीत चित्रमा अङ्कित, लेप्य, काष्ठ आदि पुद्गलो मा तेनाथी पशु अधिक विशिष्टता जेवामा आवे छे तो पशु जेवद्वारा ग्रहण करेला आन्तरिक कर्मपुद्गलोनी सुख-दुःख आदि नाना (बूझा-बूझा) रूपमा परिणमननी विशिष्टतर विचित्रता केम न होय ?

, ननु अन्नादिवत् कर्मपुत्रानां विचित्रपरिणतिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर मेव सुखदुःखादिनानास्त्वयथा विचित्रपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्त्वद् वैचिष्यहेतुभूतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वमावात् एव सर्वस्यापि पुद्गलपरिणाम वैचिष्यस्य सिद्धत्वाविति चेत्, अशेषेहि—

अन्नादेषु शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामाङ्गीकारे यदि परितोष मपि, तर्हि कर्मापि ननु तद्वरेण, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यपेहि । धीषेन सहातिसङ्घट्टत्वाद्दीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कर्मणं शरीरम्, औदारिकं तु बाह्यं स्थूलमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विच्छेपो दृश्यते ।

सुखा-अन्न-मेघ आदि के समान कर्मपुत्रों का विचित्र परिणामन स्वीकार करते हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख-दुःख आदि नामों में विचित्र परिणामन करता है, कर्म को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या काम है ?; पुत्रों को शरीर विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान-अन्न आदि के समान शरीर का ही सुख-दुःख आदि विचित्र परिणामन अङ्गीकार करने में आप को संतोष मिळता है तो कर्म भी तो शरीर ही है, और वही कर्मशरीर विचित्र परिणामन करता है, ऐसा समझ लीजिए । जीव के साथ अनिष्ट सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर और सूक्ष्म कह्यता है, तथा औदारिक शरीर बाह्य और स्थूल है । वस इत्या ही दोनों शरीरों में अन्तर है ।

शुभा-अन्न (मिथ) आदिना समान कर्मपुत्राद्येऽनु विचित्र परिणामन स्वीकार इति चेत् तेषां 'बाह्य शरीर च सुख-दुःख आदि नामां द्वेषेभ्यो विचित्र परिणामन इति चे' ज्ञेयं यत् माटे मानता नवी ? कर्मने जे विचित्रतायुं कारण मानवाधी तुं वासु छे ? पुद्गलान्ती परिणामान्ती तन्नाम विचित्रता स्वभावधील सिद्ध छे

समाधान-मेघ आदिना समान शरीरनु पक्ष सुख दुःख आदि विचित्र परिणामन अङ्गीकार इत्याभां आपने संतोष भजे छे तो कर्म ते शरीरल छे, जने ते कर्म-शरीर विचित्र परिणामन इति छे जे प्रमाद्ये समल स्वे। एतन्ती साथे अनिष्ट सम्बन्ध डोषाना कारणे जने अतीन्द्रिय डोषाना कारणे कर्म-शरीर आभ्यन्तर जने सूक्ष्म कहेवाच छे तथा औदारिक शरीर बाह्य जने-स्थूल छे जे तद्वत् ल जे जे शरीरानां अन्तर छे

ननु यथा कर्म विनाऽपि विचित्रा अभ्रादिविकारा दृश्यन्ते तथा संसारिणां सुखदुःखादिभावेन वैचित्र्यं यदि विनाऽपि कर्म भवेत्, तर्हि का हानिः? इति चेत्, उच्यते—

अभ्रविकारा गन्धर्वनगरशक्रधनुरादयो गृहप्राकारवृक्षरक्तनीलपीतादिभावेन वैचित्र्यं विभ्रति तत्र विस्रसापरिणतेन्द्रधनुरादिपुद्गलपरिणामवैचित्र्यं दृश्यते, तदपेक्षया विशिष्ट परिणामवैचित्र्यं प्रायेण चित्रन्यस्तानां चित्रकरादिशिल्पपरिगृहीतानां लेप्यकाष्ठकर्मानुगतपुद्गलानामुपलभ्यते, तर्हि जीवपरिगृहीतानामान्तरकर्मपुद्गलानां सुखदुःखादिनानारूपतया कथं न विशिष्टतरं परिणामवैचित्र्यं संभवेत्? ।

शुद्धा—जैसे कर्म के बिना भी भ्रांति-भ्रांतिके मेघ आदि के विकार देखे जाते हैं उसी प्रकार कर्म के अभाव में भी ससारी जीवों में सुख-दुःख आदि की विचित्रता हो तो क्या हानि है? ।

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त, नील, पीत, आदि रूप में विचित्रता धारण करते हैं वहाँ स्वभाव से परिणत इन्द्रधनुष आदि, पुद्गल के परिणामों की विचित्रता देखी जाती है, लेकिन चित्रकार आदि किसी शिल्पी के द्वारा गृहीत चित्र में अङ्कित, लेप्य काष्ठ आदि पुद्गलों में उस से भी अधिक विशिष्टता दिखाई देती है तो फिर जीवद्वारा ग्रहण किये हुए आन्तरिक कर्मपुद्गलों की सुख-दुःख आदि नाना रूपों में परिणमन की विशिष्टतर विचित्रता क्यों न होगी? ।

शुद्धा—जैसी रीते कर्म बिना पथु भात-भातना मेघ आदिना विकारो जेवामा आवे छे, ते प्रभावे कर्मना अभावमा पथु ससारी जेवामा सुख-दुःख आदिनी विचित्रता होय छे अम मानवामा शुं हानि छे? ।

समाधान—मेघविकार-गन्धर्वनगर, इन्द्रधनुष आदि, गृह, प्राकार, वृक्ष, रक्त नील, पीत आदि रूपमा विचित्रता धारण करे छे त्या स्वभावथी परिणत इन्द्रधनुष आदि पुद्गलना परिणामानी विचित्रता जेवामा आवे छे परन्तु चित्रकार आदि कोर्द शिल्पीद्वारा गृहीत चित्रमा अङ्कित, लेप्य, काष्ठ आदि पुद्गलना मा तेनाथी पथु अधिक विशिष्टता जेवामा आवे छे तो पथी जेवद्वारा ग्रहण करेला आन्तरिक कर्मपुद्गलानी सुख-दुःख आदि नाना (बूझा-बूझा) रूपमा परिणमननी विशिष्टतर विचित्रता कर्म न होय? ।

ननु अन्नादिबन्धु कर्मपुत्रलानां विविधपरिणमिस्वीकारे बाह्यमिदं शरीर
मेव सुखदुःखादिनाकारूपतया विविधपरिणामं करोतीत्येव मन्यतां, किं पुनस्तद्
वैविध्यहेतुयुतस्य कर्मणः परिकल्पनया, स्वभावात् एव सर्वस्यापि पुत्रस्परिणाम
वैविध्यस्य सिद्धत्वादिति चेत्, अत्रवेदि—

अन्नादेरिव शरीरस्य सुखदुःखादिविचित्रपरिणामास्वीकारे यदि परितोष-
मेपि, तर्हि कर्मापि ननु तदुरेव, सेयं कर्मतनुस्तनुते विचित्रपरिणाममित्यवेदि ।
धीमेन सहाति संश्लिष्टत्वाद्दीन्द्रियत्वाच्चाभ्यन्तरं सूक्ष्मं च कामं शरीरम्,
भौतिकं तु बाह्यं स्पृष्टमित्येतावानेव द्वयोः शरीरयोर्विशेषो दृश्यते ।

शुद्धा—अन्न—मेव आदि के समान कर्मपुत्रको का विचित्र परिणमन स्वीकार करते
हो तो यह क्यों नहीं मान लेते कि बाह्य शरीर ही सुख—दुःख आदि गूना रूपों में विचित्र
परिणमन करता है, कम को इस विचित्रता का कारण मानने से क्या काम है ? पुत्रको की
सारी विचित्रता स्वभाव से ही सिद्ध है ।

समाधान—अन्न आदि के समान शरीर का ही सुख—दुःख यदि विचित्र
परिणमन स्वीकार करने में आप को संतोष मिळता है तो कर्म भी तो शरीर ही है,
और वही कर्मशरीर विचित्र परिणमन करता है, ऐसा समझ लीजिए । जीव के साथ
बन्धु सम्बन्ध होने के कारण और अतीन्द्रिय होने के कारण कर्मशरीर आभ्यन्तर
और सूक्ष्म कहलाता है, तथा भौतिक शरीर बाह्य और स्पृष्ट है । वस इतना ही दोनों
शरीरों में अन्तर है ।

शुद्धा—अन्न (मेव) आदिना समान कर्मपुत्रको विचित्र परिणमन स्वीकार
करे तो तो पत्नी, 'बाह्य शरीर व सुख—दुःख आदि गूना रूपों में विचित्र परिणमन
करे' के समान शरीर मानना नहीं ? कर्मने के विचित्रता का कारण मानना ही शु-
द्धा है ? पुत्रको की परिणमन की वराम विचित्रता स्वभावसे ही सिद्ध है

समाधान—मेव आदिना समान शरीरतु पक्ष सुख दुःख आदि विचित्र परिणमन
स्वीकार कस्वामां आपने सतोष भजे है तो कर्म तो शरीर है अने तो कर्म—शरीर
विचित्र परिणमन करे है, के प्रमथ्ये समस्त द्वयोः अतीन्द्रिय साथे बन्धु सम्बन्ध होवाना
कारण अने अतीन्द्रिय होवाना कारणे कर्म—शरीर आभ्यन्तर अने सूक्ष्म कहलावे है
तथा भौतिक शरीर बाह्य अने—स्पृष्ट है, अतएव व के मे शरीरोंमा अन्तर है

ननु बाह्यशरीरस्य स्थूलत्वात् प्रत्यक्षदृष्टत्वाच्चाभ्रादिसादृश्येन बाह्य-
शरीरस्यैव सुखदुःखादिविचित्रपरिणामोऽस्तु किं पुनरप्रत्यक्षभूतस्य कर्मरू-
पातीन्द्रियशरीरस्य कल्पनेन, कर्मणशरीरानङ्गीकारे यदि कोऽपि दोष आप-
तति, ततोऽर्थापत्तेरेव कर्मवैचित्र्यमङ्गीकरिष्यामः ? इति । अत्रोच्यते—

मरणसमये प्रत्यक्षदृष्टत्वाह्यस्थूलशरीराद् विमुक्तस्य जीवस्य भवान्त-
रीयबाह्यस्थूलशरीरग्रहणे कारणभूतं सूक्ष्म कर्मणशरीरं विनाऽग्रिमदेहग्रहणा-
भावरूपो दोषः समापद्यते, तत्रश्च देहान्तरग्रहणानुपपत्तेर्मरणानन्तरं सर्वस्यापि
जीवस्य शरीराभावात् संसारोच्छेदः स्यात् । न च दृश्यते संसारसमुच्छेदः ।

शङ्का—बाह्य शरीर स्थूल है और प्रत्यक्ष दिखाई देता है, अत एव बाह्य
शरीर के साथ ही अन्न आदि की समानता है, ऐसी स्थिति में बाह्य शरीर का ही सुख
दुःख आदिरूप परिणामन मानना चाहिए । कभी प्रत्यक्ष दिखाई न देने वाले कर्मरूप
अतीन्द्रिय शरीर की कल्पना करने का कष्ट क्यों उठाते हैं ? हाँ !, कर्मणशरीर को स्वीकार
न करने से अगर कोई दोष आया तो फिर अर्थापत्ति प्रमाण से ही कर्म की विचित्रता
स्वीकार कर लेंगे ? ।

समाधान—मृत्यु के समय प्रत्यक्ष दीखने वाले बाह्य स्थूल शरीर को ग्रहण
करने का कारणभूत सूक्ष्म शरीर न हो तो जीव आगामी शरीर को ग्रहण ही नहीं कर
सकेगा । सूक्ष्म शरीर न मानने से यह दोष आता है । जीव अगर अगले शरीर को ग्रहण
न करे तो मृत्यु के पश्चात् अशरीर होने के कारण सभी जीव मुक्त हो जाएँगे, और

श. का.—बाह्य शरीर स्थूल छे अने प्रत्यक्ष देखाय छे, अे कारणुथी बाह्य शरीरनी
साथेन न्नेध आदिनी समानता छे अेवी स्थितिमा बाह्य शरीरनुन सुख-दुःख
आदि रूप परिणामन मानी लेवुं न्नेधअे केध वअत प्रत्यक्ष नहि देखाता अेवा
कर्मरूप अतीन्द्रिय शरीरनी कल्पना करवानु कष्ट शा भाटे उकावे छे ? हाँ ! कर्मरूप
शरीरने स्वीकार नहि करवाथी न्ने केध दोष आवशे तो पछी अर्थापत्ति प्रमाणुथीन
कर्मनी विचित्रता स्वीकारी लधशुं

समाधान—मृत्युना समये प्रत्यक्ष देखातां बाह्य स्थूल शरीरथी एव अलग थध
नय छे आगता भवमा बाह्य स्थूल शरीरने अडणु करवाना कारणुभूत सूक्ष्म शरीर
नहि होय तो एव आगामी शरीरने अडणुन करी शकथे नहि सूक्ष्म शरीर नहि
मानवाथी आ दोष आवे छे एव न्ने मृत्यु पछी भीन शरीरने अडणु न करे तो मृत्यु
पछी अशरीर होवाने कारणे सर्व एवे मुक्त थध नशे अने संसार थध थध नशे.

शरीरान्तरग्रहण व निष्कारण न समवति । तस्मात् । स्थूलशरीकारणभूतं सूक्ष्म-
कार्मणशरीरमस्तीत्यवश्यमङ्गीकर्तव्यम् ।

ननु कर्मरहित शुद्धजीवो नानाविधशरीरादीनां कर्ताऽस्तु, तयेश्वरः,
स्वभावो यच्छा या विविधशरीरादिकं करोतीत्येष मन्यते, किं कर्मकल्पनेन ?
अत्रोच्यते—

अयं जीवेश्वरादिकर्मा न शरीरसुखदुःखादीनां कर्ता, उपकरणमाभात्,
वृष्टाद्युपकरणरहितकुम्भकारवत् । कर्म विनाऽन्यदुपकरणं शरीराधारम्भकं
जीवेश्वरादीनां न संभवति, गर्माद्यवस्थास्वन्योपकरणसंभवात्, कर्म विना
शुक्रवोहितादिग्रहस्याप्यनुपपत्ते ।

संसार मिट जायगा, मगर संसार का मिटना दिखाई नहीं देता, और बिना कारण के
शरीर का प्रहण नहीं हो सकता, अत एव स्थूल शरीर का कारण सूक्ष्म कार्मणशरीर का
अस्तित्व अङ्गीकार करना चाहिए ।

शुक्रा-कर्मरहित शुद्ध जीव को नाना प्रकार के शरीरों का कर्ता मान लिया जाय,
या ईश्वर, स्वभाव अथवा यदुपकरण को कर्ता स्वीकार कर लिया जाय, कर्म की कल्पना
से क्या साम है ? ।

समाधान-कर्मरहित जीव या ईश्वर आदि, शरीर, सुख-दुःख आदि का कर्ता
नहीं है, क्योंकि उसके पास उपकरण नहीं हैं वृष्ट आदि उपकरणों से रहित कुम्भ
के समान । कर्म के सिवाय, शरीर आदि रचने में ईश्वर आदि को और कोई भी उपकरण
नहीं हो सकता । कर्म के अतिरिक्त और कोई उपकरण न होने के कारण गर्म आदि अवस्थाओं
में शुक्र वोगित आदिका प्रहण भी नहीं हो सकता ।

परन्तु संसार लक्ष अथो तेषु जेवामां अपवर्तु नशी. अने कारणे विना शरीरेतु अदस्य
कोर्ष शके नदीं जे कारणेभी रक्षत शरीरेतु कारणे अक्षम-कारण शरीरेतु अस्तित्वने
अनीकार करवे जेर्षजे.

शुक्र-कर्मरहित शुद्ध जीवने नाना प्रकारना शरीरेतु कर्ता भाणी जेर्षजे, अथवा
ईश्वर स्वभाव या यदुपकरणे कर्ता भाणी जेर्षजे तो पछी कर्मनी कल्पना करवावी गुं ठाल ? ।

समाधान-कर्मरहित जीव अथवा तो ईश्वर आदि शरीर अथवा, दुःखना कर्ता नशी.
कारण के तेनी पासे उपकरण- (अथवा साधन) नशी, इद आदि प्रधान साधने विनाने
जेभ कुम्भार, ते प्रभावे, कर्म विना शरीर आदि रचवामां ईश्वर वजेरेने नीलु कोर्ष
पय उपकरणे कोर्ष शके नदीं कर्मना विना नीलु कोर्ष प्रधान साधन नदि दोषाने
कारणे जेर्ष आदि अपरवायेभामां शुके शैलित वजेरेतु अदस्य पयु जेर्ष शके नदी.

यद्वा—अकर्मा शरीरादिकं नारभते, निश्चेष्टत्वात्, अमूर्तत्वात्, आकाशवत् । तथा—एकत्वात् एकपरमाणुवत् ।

यदि शरीरवानीश्वरः करोति विविधशरीरादिकमित्युच्यते तदाऽनवस्था-
दोषः समापद्यते । तथाहि—शरीरस्थेश्वरस्य जगद्वैचित्र्यकर्तृत्वस्वीकारे स्वशरीर-
कर्तृत्वमकर्मणस्तस्येश्वरस्य न संभवति, निरूपकरणत्वात्, दण्डादिरहितकुम्भकारवत् ।
अथान्यः कोऽपीश्वरस्तदीयशरीरकरणाय प्रवर्तते ततः सोऽपि शरीरवान् अशरीरो
वा ? यद्यशरीरस्तर्हि नासौ शरीरकर्ता निरूपकरणत्वात् । शरीरवांश्चेत्—तर्हि

अथवा—जो कर्मरहित है वह शरीर आदि का उत्पादक नहीं हो सकता, क्यों कि वह चेष्टारहित है, अथवा अमूर्त है । जो चेष्टाहीन या अमूर्त होता है वह शरीर आदि का जनक नहीं होता, जैसे आकाश । तथा वह एक होने के कारण भी शरीर आदिका जनक नहीं हो सकता, जैसे एक परमाणु ।

कदाचित् यह कहा जाय कि सशरीर ईश्वर विविध शरीर आदिका कर्ता है तो अनवस्था दोष आता है । वह इस प्रकार—जब सशरीर ईश्वर जगत् की विचित्रता का कारण है तो वह बिना शरीर के अपना शरीर भी नहीं बना सकेगा, क्यों कि वह उपकरणहीन है, दण्डआदि से रहित कुमार के समान । अब यह कहा जाय कि कोई दूसरा ईश्वर, पहले ईश्वर का शरीर बनाने के लिए प्रवृत्त होता है तो उसके विषय में भी वही प्रश्न उपस्थित होता है कि—वह सशरीर है अथवा अशरीर है ? अगर वह अशरीर है तो उपकरणहीन होने के कारण शरीर का कर्ता

अथवा—जे कर्मरहित छे ते शरीर आदिना उत्पादक थर्छ शकै नहि, अरषु के ते चेष्टारहित छे अथवा अभूर्त्त छे जे चेष्टाहीन अथवा अभूर्त्त होय छे, ते शरीर आदिना उत्पन्न करनार होय नहि जेवी रीते—आकाश, तथा ते अेक होवाना कारणे पषु शरीर आदिना उन्न करनार होय नहि. जेवी रीते अेक परमाणु.

कदाचित् अेभ कडेवामा आवे के—सशरीर ध्म्वर विविध शरीर आदिना कर्ता छे तो अनवस्था दोष आवे छे ते आ प्रमाणे के—न्यारे सशरीर ध्म्वर जगतनी विचित्रतातुं कारणे छे तो ते, शरीर बिना पोतानु शरीर पषु बनावी शकशे नही, कारणे के ते उपकरणहीन छे, जेभ दऽ आदिथी रहित कुलार डवे जे अेभ कडेवामा आवे के केछ भीजे ध्म्वर प्रथमना ध्म्वरनु शरीर बनाववामा प्रवृत्त थाय छे, तो ते विषयमा पषु अे प्रश्न उलो थाय छे के—ते सशरीर छे अथवा अशरीर छे ? अगर जे अशरीर छे तो उपकरणहीन

सच्छरीरारम्भेऽपि तुल्यता प्रथमस्य । सोऽप्यकर्मा निमग्नरीरं नारमते निरुपकरण
 त्वात् । यदि सच्छरीरकर्माऽप्यः कोऽपि, तर्हि सोऽपि धरौरवान् अशरीरो वा ?
 इत्थं चानवस्था । अनिष्टं च सर्वमेतत् । तस्मात्पितरो देहादीनां कर्ता, किन्तु
 कर्मसहितो जीव एव स्वकीयं देहादिकं करोति ।

किञ्च-ईश्वरस्य देहादिकरणं मिथ्ययोजनमिति तदोन्मत्ततुरपता स्यात् ।
 सप्रयोजनकर्तृत्वे तु तस्यानीश्वरत्वप्रसङ्गः । किञ्चानादिशुद्धस्य तस्मिन्श्वरस्य
 देहादिकरणेच्छा नोपपद्यते, इच्छाया रागरूपत्वात् ।

नहीं हो सकता । अगर सशरीर है तो उसका शरीर बनाने वाला कोई तीसरा ईश्वर मानना
 पड़ेगा । वह तीसरा ईश्वर मौ अशरीर है या सशरीर है ?, इत्यादि विकल्प फिर उपस्थित
 होनेके कारण बनवस्था दोष जाता है ।

यह सब अनीष्ट नहीं है । बत देह व्यक्ति का कर्ता ईश्वर नहीं हो सकता, बल्कि
 कर्मसहित जीव ही अपने शरीर व्यक्ति का कर्ता है ।

दूसरी बात यह है कि ईश्वर, बिना किसी प्रयोजन के ही अगर शरीर व्यक्ति को
 रचना करता है तो वह उन्मत्त के समान होगा । अगर उसका कोई प्रयोजन है तो वह
 ईश्वर नहीं रहेगा ।

एक बात और-जनादि काल से हुए ईश्वर को देह व्यक्ति रचने में इच्छा
 ही नहीं हो सकती, क्योंकि इच्छा एक प्रकार का राग है और रागी ईश्वर नहीं हो सकता ।

बोधाना कारणे शरीरकृती बर्ध शकतो नथी अजर सशरीर छे तो तेज शरीर जना
 नवावाणि केअ त्रीजे छिपर मानवे पक्षी ते त्रीजे छिपर पक्षु सशरीर छे अथवा
 सशरीर छे ? छिवादि विकल्प हरीने उपस्थित बोधाना कारणे अनवस्था दोष आवे
 छे ते सब अनीष्ट नथी, ते कारणथी देह आविना कर्ता छिपर बर्ध शकता नथी
 परन्तु कर्मसहित जीव पीताना शरीर आविने कर्ता छे ।

नील वात को छे के-छिपर केअ प्रयोजन बिना को शरीर आविनी रचना
 करे छे तो ते उन्मत्तनी समान जखुथी अथवा तो तेने केअ प्रयोजन छे तो ते
 छिपर नहीं रहे केके नील वात को छे के-जनादि काणथी शुद्ध छिपरनी, देह
 आवि रचनामां प्रयोजन रहेती नथी, कारण के छिपर केके प्रकारने राज छे जने
 रात्री छिपर बर्ध शकता नथी ।

नापि स्वभावो देहादीना कर्ता भवितुमर्हति । स स्वभावः विशेषो वा ? अकारणता वा ? वस्तुधर्मो वा ? , तत्र न तावद् वस्तुविशेषे वस्तुविशेषरूपत्वे प्रमाणाभावात् । प्रमाणरहितस्यापि वस्तुत्वस्वीकारे कथं नाङ्गीकरोपि ? , त्वन्मते कर्मणोऽपि प्रमाणरहितत्वात् ।

किञ्च-वस्तुविशेषरूपः स स्वभावो मूर्त्तौ वा स्यादमूर्त्तौ । मूर्त्तस्तर्हि स्वभाव इति नामान्तरेण कर्मैव सिध्यति । यदि पुनरमूर्त्तस्तर्हि स्वभावो देहादीनां कर्ता भवितुमर्हति, अमूर्त्तत्वात् निरूपकरणत्वाच्च, न

स्वभाव भी देह आदि का कर्ता नहीं हो सकता । आखिर स्वभाव क्या है ? स्वभाव कोई वस्तु है ? अथवा कोई भी कारण न होना स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है ? । स्वभाव कोई वस्तु तो है नहीं, क्यों कि उसे वस्तु कोई प्रमाण नहीं है । प्रमाण के अभावमें ही स्वभाव को वस्तु मान तो कर्म मानने में क्या आपत्ति है ? तुम्हारे मत के अनुसार कर्म मानने प्रमाण नहीं है ।

स्वभाव अगर कोई वस्तु है तो वह मूर्त्त है या अमूर्त्त ? , अगर तो स्वभाव और कर्म एक ही वस्तु है । आप कर्म को ही से कहते हैं तो कह लीजिये । स्वभाव को अमूर्त्त मानते हैं तो आदिका कर्ता नहीं हो सकता, क्यों कि वह अमूर्त्त है और उपकरण है, जैसे आकाश । मूर्त्त शरीर का अनुरूप कारण मूर्त्त ही होना चाहिए

स्वभाव पक्ष डेह आदिना कर्ता थछ शकते। नथी छेवट स्वभावने अर्थ थुं । स्वभाव कोठ वस्तु छे ? अथवा कोठपक्षु कारषु नथी कोठु ते स्वभाव छे ? अथवा वस्तुने धर्म छे ? स्वभाव कोठ वस्तु तो छे नथी, कारषु के तेने वस्तु मानवाम प्रभाषु नथी, प्रभाषुना अभावमा पक्षु स्वभावने वस्तु मानी छेवाम आवे तो मानवाम थुं आपत्ति छे ? तमारा मत प्रभाषु कर्म मानवाम पक्षु कोठ प्रभाषु ।

स्वभाव अगर कोठ पक्षु वस्तु छे तो ते मूर्त्त छे अथवा अमूर्त्त छे ? ने छे तो स्वभाव अने कर्म अेकव वस्तु छे, तमे कर्मने स्वभाव-शुधथी कोठ छे शुधीथी कोठे ने स्वभावने अमूर्त्त मानथे तो ते डेह आदिना कर्ता थछ शकथे न कारषु के ते अमूर्त्त छे अने उपकरण (प्रधान साधना) रहित छे नेवी ।

मूर्तस्य शरीराधिकार्यस्यानुरूपं कारणं मूर्तमेव समवति, यथा घृत्पिण्डो घटस्य ।

अकारणत्वरूपः स्वभावः ? इति चेत्, एव सति शरीरादिक्रमकारण-
मेवेत्यघटे, इत्ययमर्थः स्यात्, तथा सति कारणामावस्य समानत्वादेकस्मिन्नेव
समये सकलशरीरोत्पत्तिप्रसंगः ।

यदि स्वभावो वस्तुधर्म इत्युच्यते, तथापि यदि विज्ञानादिब्रह्मात्मनो
धर्मस्त्वर्हि नासौ स्वभावः शरीरकारण भवितुमर्हति, अमूर्तत्वात्, आकाशवदित्युक्त
मागेव । यदि स स्वभावो मूर्तवस्तुधर्मस्त्वर्हि सिद्धसाधनम्, कर्मापि पुत्ररूप
पदेति वयं ब्रूमः । तस्मात् कर्मैव जगद्वैचिभ्यकारणमिति सिद्धम् ।

बैते घट का कारण मिट्टी का पिण्ड है ।

अगर कोई भी कारण न होना ही स्वभाव है तो इसका धर्म यह हुआ कि शरीर
आदि निष्कारण ही उत्पन्न हो जाते हैं । अगर निष्कारण ही शरीर को उत्पत्ति होती है तो
फिर ससार के समस्त शरीर एक साथ क्यों नहीं हो जाते ? ।

स्वभाव किसी वस्तु का धर्म है, यह कहना भी युक्तिसंगत नहीं है ।
अगर वह ज्ञान आदि के समान आत्मा का धर्म है तो आकाश की तरह अमूर्त होने के
कारण शरीर का कर्ता नहीं हो सकता यह पहले ही कहा जा चुका है । स्वभाव
अगर किसी मूर्त वस्तु का धर्म है तो यह हमें भी इष्ट है, क्योंकि हमारे कथनानुसार
कर्म ही पुत्र का जन्मदायी धर्म है, अत एव यह सिद्ध हुआ कि कर्म ही अमूर्त की
विचित्रता का कारण है ।

भूत शरीरानु अनुरूप कारणं मूर्तं च होतुं नोद्यते, नोभ वानु कारणं भाटीने पिठे छे
अथवा कोई व कारण न होय जेवो व स्वभाव छे तो तेने अथ जे वसे
के शरीर आदि निष्कारण उत्पत्त वर्य नय छे अने निष्कारण व शरीरनी उत्पत्ति
भाव छे तो यही सत्कारण अमर्त शरीर जेक साथे केम वर्य नकी अर्था ?

‘स्वभाव कोई वस्तुने धर्म छे जे प्रभावे कहेवु ते वस्तुवृत्तिसत्त नधी,
अथवा तो ते ज्ञान आदिना समान आत्माने धर्म छे तो अकारणनी भादके अमूर्त
होवाना कारणे शरीरना कर्ता वर्य शक्ये नही, आ कर्तव्य प्रपञ्चीव कही जाधी
छे, स्वभाव जे कोई मूर्त वस्तुने धर्म छे तो ते बात अग्यरे वस्तु भान्य छे
कारण के अभावा कहेवा प्रभावे कर्म वस्तु पुद्गलवत्त्व छे, जे भाटे जेम सिद्ध वस्तु
के कर्म व अगतनी विचित्रानु कारण छे

(૩) કર્મણો મૂર્તત્વમ્—

નન્વતીન્દ્રિયસ્ય કાર્મણશરીરસ્ય મૂર્તત્વે કિં માનમ્ ? અત્રોચ્યતે—

શરીરાદિકાર્યદર્શનાત્ત્કારણમૂત્તં કર્મ સિધ્યતિ ચેત્ તર્હિં કાર્યાનુરૂપમેવ કારણં ભવિતુમર્હતીતિ શરીરાદિકાર્યાણાં મૂર્તત્વાત્ત્કારણં કર્માપિ મૂર્તમેવ । યથા મૂર્તસ્ય ઘટાદિકાર્યસ્ય કારણં પરમાણુપુદ્ગલાસ્તે મૂર્તા એવ સન્તિ । યચ્ચ પુનરમૂર્ત કાર્ય તસ્ય કારણમપિ—અમૂર્તમ્ , યથા જ્ઞાનસ્યાત્મેતિ ।

નતુ સુખદુઃસ્વાદયોઽપિ કર્મણઃ કાર્યં તર્હિં તેષામમૂર્તત્વાત્ કર્મણોઽ મૂર્તત્વમપિ પ્રાપ્નોત્તિ, નહિ મૂર્તાદમૂર્તોત્પત્તિઃ સંભવતિ, યથા પુદ્ગલાદ્ જ્ઞાનપર્યાયઃ,

(૩) કર્મ કા મૂર્તપન—

શઙ્કા—અતીન્દ્રિય કાર્મણ શરીર કે મૂર્ત હોને મેં કયા પ્રમાણ હૈ ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોં કે દેખને સે અનેકે કારણમૂત કર્મ કો સિદ્ધિ હોતી હૈ, ઓર કારણ, કાર્ય કે અનુરૂપ હી હોતા હૈ, અત એવ જવ શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત હૈં તો અને કા કારણ કર્મ મી મૂર્ત હી હોના ચાહિયે । જૈસે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોં કે કારણમૂત પુદ્ગલ પરમાણુ મી મૂર્ત હી હૈ, જો કાર્ય અમૂર્ત હોતા હૈ, ઉસકા કારણ મી અમૂર્ત હી હોતા હૈ, જૈસે જ્ઞાન કા કારણ આત્મા ।

શઙ્કા—સુખ ઓર દુઃખ આદિ કા કારણ મી કર્મ હૈ, ઓર સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત હૈં, અત અને કા કારણ કર્મ અમૂર્ત મી હોના ચાહિયે । મૂર્ત સે અમૂર્ત કી ઉત્પત્તિ નહી હો સકતી, જૈસે પુદ્ગલ સે જ્ઞાનપર્યાય કી ઉત્પત્તિ નહીં હો

(૩) કર્મણુ મૂર્તપણુ—

શંકા—અતીન્દ્રિય કાર્મણુ શરીરમાં મૂર્તપણુ હોવામાં શું પ્રમાણુ છે ?

સમાધાન—શરીર આદિ કાર્યોના દેખવાથી તેના કારણમૂત કર્મની સિદ્ધિ થાય છે, અને કારણુ, કાર્યના અનુરૂપજ હોય છે એ કારણુથી ન્યાયે શરીર આદિ કાર્ય મૂર્ત છે, તો તેનું કારણુ કર્મ પણ મૂર્તજ હોવું જોઈએ જેવી રીતે મૂર્ત ઘટ આદિ કાર્યોના કારણમૂત પુદ્ગલપરમાણુ પણ મૂર્ત છે એ કાર્ય અમૂર્ત હોય છે તેનું કારણુ પણ અમૂર્ત જ હોય છે, જેમકે જ્ઞાનનું કારણુ આત્મા

શંકા—સુખ અને દુઃખ આદિનું કારણુ કર્મ છે, અને સુખ દુઃખ આદિ અમૂર્ત છે, તેથી તેનું કારણુ કર્મ પણ અમૂર્તજ હોવું જોઈએ. મૂર્તથી અમૂર્તની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, જેવી રીતે પુદ્ગલથી જ્ઞાનપર્યાયની ઉત્પત્તિ થઈ શકતી નથી, અને એકજ

नाप्येकस्यैव कर्मणो मूर्तसममूर्तत्व च युज्यते, किद्वत्त्वाविति चेत् ? उच्यते—
 अत्र कारणशब्देनोपादानकारणं परिगृह्यते; न तु निमित्तकारणम्,
 सुखदुःखादीनां निमित्तकारणमेव कर्म, यथाऽन्नपानादयो विषादया वा सुख
 दुःखादीनां निमित्तकारणमस्ति । उपदानकारण तु तेषामात्मैव सुखदुःखादीना-
 मारम्भमत्वाविति नास्ति दोषलेखोऽपि ।

(४) जीवकर्मणोः सम्बन्धः ।

ननु कर्म मूर्तमस्तीत्युक्तं परन्तु मूर्तस्य कर्मणोऽमूर्तेन जीवेन सह
 क्य संयोगसम्बन्धः ? इति चेन्नैकम्, यथा मूर्तस्य घटस्यामूर्तेन गगनेन
 संयोगसम्बन्धः सम्बन्धस्त्वथाऽत्रापि जीवकर्मणोः सम्बन्धोऽस्तीति । उक्तम्—

सकृती । और एक ही कर्म मृत भी हो और अमृत भी हो, यह कैसे हो सकता है ? ये
 दोनों धर्म विरोधी हैं एक साथ नहीं रह सकते ।

समाधान—यहाँ कारण-शब्द से उपदान कारण प्रधान किया गया है, निमित्त
 कारण नहीं । कर्म सुख-दुःख के प्रति निमित्त कारण ही है, जैसे अन्न, पान, विष आदि
 सुख-दुःख के निमित्त कारण हैं । सुख दुःख का उपदान कारण तो आत्मा ही है, क्यों
 कि वे आत्मा के धर्म हैं, अतः यहाँ दोष का भेग भी नहीं है ।

(४) जीव और कर्म का सम्बन्ध—

सुझा—आपने कर्म को मूर्त सिद्ध किया मगर मृत कर्म का अमूर्त जीव के साथ
 सम्बन्ध किस प्रकार हो सकता है ?

समाधान—ऐसा न कहिए । जैसे मृत घट का अमूर्त आकार के साथ संयोग-
 सम्बन्ध है, उसी प्रकार जीव और कर्म का भी सम्बन्ध है । कहा भी है —

कर्म मूर्तं पक्षु षोषं जने अमूर्तं पक्षु षोषं, जे देवी रीते षोषं शक्ये ? अथ जन्ने
 धर्मं विरोधी छ तेथी जेक जन्मजे रही शक्यता नथी ।

समाधान—जदि कारण-शब्दभी उपदान कारण प्रधान कर्तव्य कर्तव्यां जाने छे, निमित्त
 कारण नहिं । कर्म सुख-दुःख यथाभां निमित्त कारण छे जेवी रीते अन्न पान,
 विष आदि सुख-दुःखना निमित्त कारण छे परन्तु सुख-दुःखनु उपदान कारण तो
 आत्मा छे, कारण के ते आत्माने धर्म छे तेथी तेभां वैश पक्षु षोष नथी ।

(४) एव जने कर्मना सम्बन्ध—

शुभा—आपने कर्मना मूर्त छे जेभ सिद्ध कर्तुं तो पछी मूर्त कर्मना अमूर्त
 एवनी साथे सम्बन्ध देवी रीते षोषं शक्ये छे ?

समाधान—आ प्रभावे नहिं कहे ? जेभ मूर्त घटने अमूर्त आकारानी साथे
 संयोगसम्बन्ध छे ते प्रभावे एव जने कर्मना पक्षु सम्बन्ध छे कसु पक्षु छे—

“ યથા હ્યરૂપમાકાશં, રૂપિદ્રવ્યાદિભાજનમ્ ।

તથા હ્યરૂપ આત્માપિ, રૂપિકર્માદિભાજનમ્ ॥૧૧॥ ”

યથા વા - અમૂર્તયાઽઽકુશ્વનાદિક્રિયયા સહ મૂર્તદ્રવ્યસ્યાઽઽગુલ્યાદેઃ
સમ્બન્ધસ્તથાઽઽત્રાપિ જીવકર્મણોઃ સમ્બન્ધ ઇતિ વોધ્યમ્ ।

યદ્વા-યથા વાહ્યશરીરમિદ જીવેન સહ સમ્બન્ધં પ્રત્યક્ષદૃષ્ટમેવાસ્તિ,
એવં ભવાન્તરં ગચ્છતા જીવેન સહ કાર્મણશરીર સમ્બન્ધમેવેતિ ।

યદિ વાહ્યશરીરસ્ય જીવેન સહ સમ્બન્ધે ધર્માધર્મયોઃ કારણતાઽસ્તી-
ત્યુચ્યતે તર્હિ તાવપિ ધર્માધર્મૌ મૂર્તૌ સ્યાતામમૂર્તૌ વા ? । યદિ મૂર્તૌ તર્હિ

“ જૈસે અરૂપી આકાશ રૂપી દ્રવ્ય આદિ કા આધાર હૈ, ઉસી પ્રકાર અરૂપી આત્મા
કર્મૌ કા આધાર હૈ ” ॥ ૧ ॥

અથવા જૈસે-આકુશ્વન (સિકોડના) આદિ અમૂર્ત ક્રિયા કે સાથ અંગુલી આદિ
મૂર્ત દ્રવ્ય કા સમ્બન્ધ હોતા હૈ, ઉસી પ્રકાર યહાં જીવ ઓર કર્મ કા સમ્બન્ધ સમજ
લેના ચાહિયે ।

અથવા જૈસે વાહ્ય શરીરકા જીવ કે સાથ સમ્બન્ધ હૈ, વહ પ્રત્યક્ષ સિદ્ધ હૈ, ઉસી
પ્રકાર ભવાન્તર મેં જાતે જીવ કે સાથ કાર્મણ શરીર કા સમ્બન્ધ હૈ ।

અગર કહા જાય કિ જીવ કે સાથ વાહ્ય શરીર કા સમ્બન્ધ હોને મેં ધર્મ
ઓર અધર્મ કારણ હૈ તો પ્રશ્ન સ્વડા હોતા હૈ કિ-ધર્મ અધર્મ મૂર્ત હૈં યા અમૂર્ત હૈ ?

“ જેવી રીતે અરૂપી આકાશ, રૂપી દ્રવ્ય આદિનો આધાર છે તે પ્રમાણે અરૂપી
આત્મા, રૂપી કર્મોનો આધાર છે ” ॥૧૧॥

અથવા-જેવી રીતે-સ કોચલું આદિ અમૂર્ત ક્રિયાની સાથે આગલી આદિ મૂર્ત
દ્રવ્યનો સમ્બન્ધ હોય છે તે પ્રમાણે જીવ અને કર્મનો સમ્બન્ધ સમજ લેવો જોઈએ.

અથવા જેવી રીતે આ બાહ્ય શરીર જીવની સાથે સબધ છે તે પ્રત્યક્ષથી સિદ્ધ
છે. તે પ્રમાણે ભાવાન્તરમા જતા જીવની સાથે કાર્મણ શરીરનો સબધ છે

અથવા તો એમ કહેવામાં આવે કે જીવની સાથે બાહ્ય શરીરનો સમ્બન્ધ હોવામાં
ધર્મ અને અધર્મ કારણ છે તો પ્રશ્ન ઉભો થાય છે. કે-ધર્મ અધર્મ મૂર્ત છે કે અમૂર્ત
છે ? જો તે મૂર્ત છે એમ કહે તો અમૂર્ત જીવની સાથે તેનો સબધ કેવી રીતે થયો ?

तयोरप्यमूर्तेन जीवेन कथं सम्बन्धः ?, यदि कथञ्चित् सम्बन्धस्तर्हि कर्मणोऽपि जीवेन सह सम्बन्धः कृतो न स्यात् । यद्यमूर्तो धर्माधर्मौ तर्हि पाप्मेन स्थूल-
शरीरेण मूर्तेन सह तयोः कथं सम्बन्धः ? तस्मत्ते मूर्तामूर्तयोः सम्बन्धासमवात् ।
यद्यमूर्तयोरपि धर्माधर्मयोर्बाह्यशरीरेण मूर्तेन सह सम्बन्धोऽङ्गीक्रियते तर्हि
जीवेन सह कर्मणः सम्बन्धे कथं दोषः ? ।

नन्वमूर्तस्य जीवस्य मूर्तेन कर्मणा कथं सुखदुःखाद्यनुग्रहोपघातौ
स्याताम्, न चमूर्तस्याकाशस्य मूर्तेः अकचन्दनाग्निज्वालादिभिरनुग्रहोपघातौ जायेते ? ।

अगर वे मूर्त हैं तो अमूर्त जीव के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हुआ !, अगर किसी प्रकार उनका
सम्बन्ध हो गया तो कर्म का सम्बन्ध क्यों नहीं हो सकता ? । अगर धर्म अधर्म अमूर्त हैं
तो बाह्य स्थूल और मूर्त शरीर के साथ उनका सम्बन्ध कैसे हो गया !, आपके मत से
मूर्त और अमूर्त का तो सम्बन्ध हो नहीं सकता । अगर अमूर्त धर्म अधर्म का मूर्त शरीर के
साथ सम्बन्ध होना स्वीकार करते हो तो जीव के साथ कर्म का सम्बन्ध मानने में
क्या दोष है ? ।

सङ्गा—अमूर्त जीव का मूर्त कर्म के द्वारा सुख दुःख आदिरूप अनुग्रह और उपघात
कैसे हो सकता है, मूर्त मात्र पवन अग्नि आकाश आदि से अमूर्त आकाश का अनुग्रह
और उपघात नहीं होता ?

अथवा कौर्ध प्रकारे तेनो सम्बन्धे कथं ज्ञेयो ते। कर्मिणो सम्बन्धे सा भवते नहि कथं
शक्ये ? अत्र धर्म अधर्म अमूर्त उ ते। बाह्य स्थूल जने मूर्त शरीरिणी साधे तेनो
सम्बन्धे देवी शीते कथं ज्ञेयो ? आपन्ना भव प्रभाषे ते। मूर्त जने अमूर्तानो सम्बन्ध-
न कथं शक्ये नही। परन्तु जने अमूर्त धर्म-अधर्मने मूर्त शरीरिणी साधे सम्बन्धे
कथं ते स्वीकार कस्ता हो। एवमि साधे कर्मिणो सम्बन्धे मानवार्थं दोष शु उ ?

शंका—अमूर्त एवमेव, मूर्त कर्मद्वारा सुख-दुःख आदिरूप अनुग्रह जने
उपघात कथं शक्ये कथं शक्ये ? मूर्त मात्र पवन, अग्नि, ज्वाला आदिरूप अमूर्त
आकाशने अनुग्रह जने उपघात कथं शक्यते नही।

શૃણુ—યથામદિરાપાનૈર્વિપપિપીલિકાદિભિર્મક્ષિતૈરમૂર્તાનામપિઠૃતિસ્મૃતિ—મેઘા-
 દીનામાત્મગુણાનામુપઘાતો જાયતે, “મેઘાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ-
 વચનાત્, તથા પયઃશર્કરાઘૃતાદિમિશ્રાનુગ્રહઃ ક્રિયતે તથૈવામૂર્તસ્યાત્મનો મુર્તેન
 કર્મણાઽનુગ્રહોપઘાતો જાયતે । ઇદં ચ જીવસ્યામૂર્તત્વમઙ્ગીકૃત્ય સમાહિતમ્,
 ન હ્યેકાન્તરૂપેણાઽમૂર્તેવાત્મા કિન્તુ વહ્નયયોગોલઋવત્ ક્ષીરનીરવચ્ચ કાર્મણશરીરા
 મેદરૂપતા પ્રાપ્તઃ કથચ્ચિન્મૂર્તોઽપીતિ । તસ્ય મૂર્તેન કર્મણાનુગ્રહોપઘાતો ભવત
 એવ । આકાશસ્ય તુ તૌ ન ભવતઃ, તસ્યેકાન્તરૂપેણામૂર્તત્વાદચેતનત્વાચ્ચ ।

સમાધાન—સુનિચે એસે—મદિરા કા પાન કરને સે, વિપમક્ષણ સે ઓર કીડી
 આદિ કે સ્વાચે જાને સે અમૂર્ત ધૈર્ય, સ્મૃતિ ઓર બુદ્ધિ આદિ આત્મિક ગુણો કા ઉપઘાત
 હોતા હૈ, “મેઘાં પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચન સે, તથા દૂધ, ઝાકર ઓર ઘૃત
 આદિ સે અનુગ્રહ હોતા હૈ, ઊસી પ્રકાર અમૂર્ત આત્મા કા મૂર્ત કર્મ દ્વારા અનુગ્રહ ઓર
 ઉપઘાત હોતા હૈ । જીવ કો અમૂર્ત અઙ્ગીકાર કરકે યહ સમાધાન ક્રિયા હૈ, કિન્તુ જીવ
 એકાન્તરૂપ સે અમૂર્ત નહીં હૈ । ક્ષીર—નીર કો તરહ અથવા અગ્નિ ઓર લોહે કે ગોળે કી
 તરહ આત્મા કાર્મણશરીર સે કથચ્ચિત્ અભિન્ન હૈ, અત એવ મૂર્ત મી હૈ । કર્મ-
 લિપ્ત આત્મા મૂર્ત હોને કે કારણ મૂર્તે કર્મો સે ઊસકા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત હોતા હી હૈ ।
 હાં ! આકાશ કા અનુગ્રહ ઓર ઉપઘાત નહીં હોતા, ક્યો કિ વહ એકાન્તત અમૂર્ત ઓર
 અચેતન હૈ ।

સમાધાન—સાલળો ! જેમ મદિરાનુ પાન કરવાથી, વિષભક્ષણથી, અથવા કીડી
 આદિ પેટમાં ખાઈ જવામાં આવવાથી અમૂર્ત ધૈર્ય, અને બુદ્ધિ આદિ આધ્યાત્મિક
 ગુણોનો ઉપઘાત થાય છે “મેઘા પિપીલિકા હન્તિ” ઇત્યાદિ વચનેથી, તથા દૂધ,
 ઝાકર અને ઘી આદિથી અનુગ્રહ થાય છે, તે પ્રમાણે અમૂર્ત આત્માનો મૂર્ત કર્મ
 અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાય છે

જીવને અમૂર્ત અંગીકાર કરીને આ સમાધાન કર્યું છે, પરંતુ જીવ એકાન્તથી
 અમૂર્ત નથી ક્ષીર—નીરની પ્રમાણે અથવા અગ્નિ અને લોહાના ગોળાની માફક
 આત્મા કાર્મણશરીરથી કથચિત્ અભિન્ન છે આ કારણથી મૂર્ત પણ છે કર્મલિપ્ત
 આત્મા મૂર્ત હોવાના કારણે મૂર્ત કર્મથી તેનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થાયજ છે.
 હા ! આકાશનો અનુગ્રહ અને ઉપઘાત થતો નથી, કારણ કે તે એકાન્તથી અમૂર્ત
 અને અચેતન છે.

(५) कर्मणोऽनादित्वम्—

अनादि' कर्मणः प्रवाहः । शरीरकर्मणोः परस्परं कार्यकारणभावात्, बीजाङ्कुरवत् । यथा बीजादङ्कुरो जायते, अङ्कुरादपि क्रमेण बीजमुपजायते । एव शरीरात् कर्म जायते कर्मवस्तु शरीरमित्यथ पुनः पुनरपि परस्परमनादिकास्तः कार्यकारणभावसम्भावोऽस्ति । इह ययो परस्परं कार्यकारणभावावस्तयोरनादि प्रवाहो दृश्यते यथा बीजाङ्कुरयोः, यथा वा कुकुटाण्डयोः, तथा शरीरकर्मणो- रनादिप्रवाह इति ।

(५) कर्मों का अनादिपन—

कर्मों की परस्पर अनादिकाहीन है, यथा कि शरीर और कर्म का परस्पर कार्य- कारणभाव है, जैसे बीज और अङ्कुर का । तात्पर्य है कि जैसे बीज से अङ्कुर उत्पन्न होता है, और अङ्कुर से कमलाः बीज की उत्पत्ति होती है, इसी प्रकार शरीर से कर्म और कर्म से शरीर उत्पन्न होता है । यह पारस्परिक कार्यकारणभाव अनादि काल से चला आता है । किन्तु पशुओं में परस्पर कार्य-कारणभाव होता है उनका प्रवाह अनादिकाहीन देखा जाता है, जैसे पूर्वोक्त बीज और अङ्कुर का अथवा मुर्गी और अण्डे का । इस प्रकार शरीर और कर्म का प्रवाह अनादिकालीन है ।

(५) कर्मोंनु अनादिपङ्क—

कर्मोंनी पर परा अनादिकाहीन छे कारण दे-शरीर अने कर्मोंनी परस्पर कार्य- कारणभाव छे, जेवी रीते बीज अने अङ्कुरेन। तात्पर्य जे छे दे-जेवी रीते बीजकी अङ्कुर उत्पन्न बाब छे अने अङ्कुरकी कमलाः (कर्म-कर्म) बीजनी उत्पत्ति बाब छे ते प्रकृत्ये शरीरकी कर्म अने कर्मकी शरीर उत्पन्न बाब छे अ परस्परने कार्य- कारण भाव अनादि कालकी व्याप्ति आवे छे । जे पशुकीमा परस्पर भाव-कारणभाव होय छे तेना प्रवाह अनादिकाहीन जेवामा आवे छे जेवी रीते पूर कठेस बीज अने अङ्कुरेने, अथवा अरथी अने उद्यने जे प्रभावे शरीर अने कर्मोंनी प्रवाह अनादिकाहीन छे ।

(६) अकर्मवादिमतनिराकरणम्—

यः पुनरदृष्टं कर्म नास्तीति मन्यते स च नास्तिकः प्रष्टव्यः—अयमदृष्टाभावः किम् अप्रत्यक्षत्वात्, विचाराक्षमत्वात्, साधकाभावाद् वा मन्यसे ?

अप्रत्यक्षत्वान्नादृष्टाभावः सिध्यति, यतस्तत्र यदप्रत्यक्षं तत्रास्तीति स्वीकारे त्वदीयपितामहादेरप्यभावः स्यात्, तस्य त्वज्जन्मतः पूर्वमेवातीतत्वेन त्वाप्रत्यक्षत्वात् । तथा च भवन्मते पितामहादेरतीतकालिकसत्ताया अभावेन भवतोऽपि सत्ता कथमुपपद्येत ? ।

(६) अकर्मवादी के मत का निराकरण—

जो नास्तिक यह मानता है कि—अदृष्ट कर्म का सद्भाव नहीं है, उससे पूछना चाहिए कि—तुम अदृष्ट के अभाव को क्यों मानते हो ? प्रत्यक्ष न होने से, विचार को सहन न करने से अर्थात् विचारके योग्य नहीं होने से, या साधक प्रमाणों का अभाव होने से अदृष्ट का अभाव कहते हो ?

प्रत्यक्ष न होने मात्र से अदृष्ट का अभाव सिद्ध नहीं हो सकता । जो तुम्हें प्रत्यक्ष नहीं दिखाई देता वह होता ही नहीं है, ऐसा मान लिया जाय तो तुम्हारे पितामह आदि का भी अभाव हो जायगा । वह तुम्हारे जन्म से पहले ही गुजर चुके हैं, अतः तुम्हें प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे सकते । ऐसी अवस्था में तुम्हारे पितामह आदि की भूतकालीन सत्ता का अभाव होजाने के कारण तुम्हारी सत्ता भी खतरे में पड़ जायगी ।

(६) अकर्मवादीना मततु निराकरणम्—

जे नास्तिक जेवु माने छे के—अदृष्ट कर्मनो सद्भाव (अस्तित्व) नथी, तेमने पूछवु जेध जे के—तमे अदृष्टनो अभाव शा भाटे मानो छे ? प्रत्यक्ष नही होवाथी, विचारने सहन नही करवाथी अर्थात्—विचारवायोग्य नहि होवाथी, अथवा साधक प्रमाणनो अभाव होवाथी अदृष्टनो अभाव डहो छे ?

प्रत्यक्ष नही होवा मात्रथी अदृष्टनो अभाव सिद्ध थर्द शकतो नथी, जे वस्तु तमने प्रत्यक्ष जेवामा न आवे ते वस्तु होयज नही, जे प्रमाण जे मानी बेशे तो तमारा पितामह (प्रायने प्राय) आदिनो अभाव थर्द जथे, कारण के ते तमारा जन्मता पड़ेवाज गुजरी गया छे तेथी तमने ते प्रत्यक्ष जेवामा आवता नथी, जेवी अवस्थामा तमारा पितामह आदिनी भूतकालीन सत्तानो अभाव थर्द जवाथी तमारी सत्ता पथु अतरामा (भयमा) पडी जथे.

अथ सर्वप्रमातृणां यदप्रत्यक्षं तन्मास्तीत्यपि न संभवति । यतः सर्वे मदीन्द्रियं वस्तु सर्वप्रमातृणां प्रत्यक्षं न भवति, तादृशज्ञानसंस्तरमावात् । अस्मा मित्तु समस्तमावावमासनभास्करः सर्वज्ञः स्वीक्रियते ।

विद्यारताऽज्ञमत्वमपि न युक्तं, कर्कश(दुर्भय)वर्कैस्तर्क्यमानस्य कर्मणः सद्भावसंभवात् ।

साक्षकामावावपि नादृष्टामावा, पूर्वोक्तागमानुमानयोस्तत्साधकयोः सत्त्वात् । यथा व-शुभः पुण्यस्य, अशुभः पापस्यस्पागम । शुभयोगः पुण्यस्य, अशुभयोगः पापस्य कारणमित्यर्थः ।

अथ कदा वाच्य किं एक-दो के अप्रत्यक्ष होने से किसीका अभाव नहीं होता वस्तु जो वस्तु सभी के अप्रत्यक्ष है, उसका अभाव होता है । यह कबन भी ठीक नहीं है, क्योंकि कि सब अतीन्द्रिय वस्तुएँ सब प्रमाताओं के प्रत्यक्ष नहीं होती, इसका कारण विशिष्ट ज्ञानशक्ति का अभाव है । मगर हम छात्र छा सभस्त पदार्थों को प्रकाशित करने में सर्व के समान सर्वज्ञ स्वीकार करते हैं ।

अदृष्ट, विचार को सहन नहीं करता अर्थात् विचारने के योग्य नहीं है, यह कबन भी युक्त नहीं, कठोर सबों द्वारा विचार करने से कर्म का अस्तित्व सिद्ध हो ही जाता है ।

साक्ष्य प्रमाणों का अभाव होने से कर्म का अभाव बतलाना भी ठीक नहीं, क्योंकि कि पूर्वोक्त आगम और अनुमान प्रमाण उसका सत्भाव सिद्ध करते हैं । 'शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' वह आगमप्रमाण है । अर्थात् शुभयोग पुण्य का और अशुभ योग पाप का कारण होता है ।

अथवा कहेगी के को-बिना अप्रत्यक्ष होवाधी कहेगिने अभाव भवता नहीं परन्तु ने वस्तु सर्वने अप्रत्यक्ष छे तेने अभाव होय छे कोम कहेतुं ते पक्ष हीक नहीं, कारण के सर्व अतीन्द्रिय वस्तुओं प्रमाताओंने प्रत्यक्ष भवती नहीं तेनु कारण विशिष्ट ज्ञानशक्तिने अभाव छे अथवा अने तो सभस्त पदार्थोंने प्रकाशित कस्वार्थ सर्वना समान सर्वज्ञने स्वीकार करीये छीये ।

अदृष्ट विचारने सहन करता नहीं अर्थात् विचारना योग्य नहीं, कोम कहेतुं ते पक्ष युक्त नहीं, कठिन तर्कों द्वारा विचार करवाधी कर्मनु अस्तित्व सिद्ध यह न भव्य छे ।

साक्ष्य प्रमाणोंने अभाव होवाधी कर्मने अभाव ज्ञापयवे ते पक्ष हीक नहीं, कारण के पूर्वोक्त आगम अने अनुमान प्रमाण तेने सहजान (अस्तित्व-होवापत्त) सिद्ध करे छे शुभः पुण्यस्य अशुभः पापस्य' के आगमप्रमाण छे, अर्थात् शुभ योग पुण्य अशुभ योग पापनु कारण होय छे ।

कार्यविशेषेण कारणस्यानुमानं भवति यथा कार्यविशेषः सकारणकः,
कार्यत्वात्, कुम्भवत् । उक्तञ्च—

“तुल्याकृत्योश्च यमयो,—दृश्यते महदन्तरम् ।

चारित्र-वीर्य-विज्ञान,—विराग्या-रोग्य-संपदाम्” ॥१॥ इति ।

अदृष्टरूपकारणमन्तरेणेद महदन्तरं न सभवति, तस्मादवश्यं स्वी-
करणीयं कर्म ।

(७) वन्धस्वरूपनिरूपणम्—

अत्र वन्धशब्देन भाववन्धो गृह्यते, न तु निगडादिवन्धरूपो द्रव्यवन्धः ।
वन्धनं वन्धः । कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धानामात्मप्रदेशानां च परस्परं क्षीर-

कार्यविशेष से कारण का अनुमान होता है । जैसे—इस कार्य का कोई कारण है
क्यों कि कार्य है, जैसे—घट, कहा भी है—

“समान आकृति वाले यमल (जोड़ली सन्तान) में चारित्र, वीर्य, विज्ञान, विराग्य,
और सम्पत्ति का महान् अन्तर दिखाई देता है” ॥ १ ॥

अदृष्टरूप कारण के बिना यह महान् अन्तर नहीं हो सकता, अत एव कर्म अवश्य
स्वीकार करना चाहिए ।

(७) वन्ध के स्वरूपका निरूपण—

वन्ध—शब्द से यहाँ भाववन्ध का ग्रहण करना चाहिए । वेडी आदि द्रव्यवन्धका
नहीं । कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गलस्कन्धों का और आत्मप्रदेशों का आपस में दूध

कार्य—विशेषधी कारणनु अनुमान थाय छे जेवी रीते आ कार्यनु कोरि कारण
छे, कारण के कार्य छे, जेवी रीते घट. कहु पणु छे—

‘समान आकृति वाला यमल—जेडला सतानमा चारित्र, वीर्य, विज्ञान, विराग्य,
आरोग्य अने सम्पत्तिनु महान् अतर जेवामा आवे छे” ॥१॥

अदृष्टरूप कारण बिना आ महान् अन्त होरि शके नहि, जे कारणधी कर्मनो
अवश्य स्वीकार करी लेवे जेधजे

(७) धस्वरूपतु निरूपणम्—

ध—शब्दधी अहि लाव—धधतु अहलु करतु जेधजे, जेडी आदि द्रव्यधधतु
नहि, कर्मवर्गणाने योग्य पुद्गलस्कन्धोनो अने आत्म—प्रदेशोनो परस्पर दूध अने

नीरवत् सम्बन्धो वापः । यद्वा-बध्यते-अस्वातन्त्र्यमापद्यते आत्मा येन, सम्बन्धः ।
इति शीघ्रम्याज्जन्तज्ञानदर्शनसुखवीर्य-
रूपसामर्थ्यप्रतिबन्धकतया स्वातन्त्र्यविधातकं भवति ।

यद्यपि निश्चयनयेन रागद्वेषरहितोऽप्यमात्मा, तथाप्यसौ व्यवहारनयेन
रागद्वेषरूपमात्रकर्मणां ज्ञानावराणीयादिद्रव्यकर्मणां च कर्ता भवति । आत्मसंछन्न
शरीरावगाहनक्षेत्रावस्थितकर्मवर्गणायोग्यपुद्गलस्कन्धाः स्वकीयोपादानकारणवृत्तयैव
कर्मरूपामवस्थां प्राप्नुवन्ति । ते च कर्मपुद्गला आत्मप्रदेशैः सह परस्पर
मेकक्षेत्रावगाहकूपं बन्ध क्षीरनीरवत् प्राप्नोति । यथा समुद्गीयमानानि रजांसि

गौर पानी की तरह सम्बन्ध हो जाना बन्ध है । ज्ञान-वीर्य विस के द्वारा वाप
वाय-वराधीन किया वाय वह बन्ध है । ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की स्थिति,
वीर्य के अन्त ज्ञान इतना सुख गौर वीर्यरूप सामर्थ्य में बाधक होने के कारण
स्वतन्त्रता का घात करने वाली है ।

यद्यपि निश्चयनय से आत्मा राग-द्वेष से रहित है, किन्तु व्यवहारनय से
राग-द्वेषरूप मात्रकर्मों का तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मों का कर्ता है । विस आकाश-
क्षेत्र में आत्मा से संबद्ध शरीर है, इसी आकाशक्षेत्र में स्थित कर्मवर्गण के योग्य
पुद्गलस्कन्ध, अपनी उपादानकारण-शक्ति से ही कर्मरूप अवस्था को प्राप्त करते हैं । वे
कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशों के साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहकूप बन्ध को क्षीर-नीर की नाई
प्राप्त होते हैं । जैसे-उड़ती हुई रज तैल से चिक्ने घरे आदि पर चिपक जाती है,

पाणीनी प्रभावे सञ्ज भ बध् वये ते लभे छे आत्मा-एव केना हास लभार्थ
वाय-पराधीन बध् वाय ते लभ छे ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंनी स्थिति, एवमा
ज्जन्त ज्ञान, इतना सुख ज्ञाने वीर्यरूप सामर्थ्यमां बाधक होवना कारणे स्वत
त्रदाने घात करवा वाली छे.

जे के निश्चयनयणी आत्मा राग-द्वेषणी रहित छे परन्तु व्यवहारनयणी राग-
द्वेषरूप मात्रकर्मिणे, तथा ज्ञानावरण आदि द्रव्यकर्मिणि कर्ता छे जे आकाशक्षेत्रमां
आत्माणी सञ्ज शरीर छे ते आकाशक्षेत्रमां स्थित (रुद्धेण) कर्म-वर्गणाना योग्य
पुद्गलस्कन्ध चेतानी उपादान कारण-शक्तिणी च कर्मरूप अवस्था प्राप्त करे छे
ते कर्मपुद्गल आत्मप्रदेशेणी साथ परस्पर एकक्षेत्रावगाहकूप लभने क्षीर-नीरमा
न्वय प्रभावे प्राप्त वाय छे जेनी रीते उड़ती रज तैलमा चिक्का बडा आदिने

તૈલસ્નિગ્ધે ઘટાદૌ સંશ્લિષ્ટાનિ ભવન્તિ, તથા રાગદ્વેપરૂપતૈલસ્નિગ્ધમલિનાત્મ-
પ્રદેશેષુ કર્મવર્ગણાયોગ્યપુદ્ગલાઃ સ્વફીયોપાદાનશક્તયા જ્ઞાનાવરણીયાદિકર્મરૂપા-
મવસ્થાં પ્રાપ્ય સંશ્લિષ્ટા ભવન્તિ ।

પરમાણુરૂપા દ્વિપ્રદેશિપ્રભૃતિરકન્ધરૂપાશ્ચ પુદ્ગલા ઔદારિક-વૈક્રિયા-
-ડહારક-તૈજસ-ભાપા-શ્વાસોચ્છ્વાસ-મનઃ-કાર્મણ-મેદાદપ્ટવિધાઃ । તત્ર કર્મ-
વર્ગણાપુદ્ગલા અપિ સમસ્તલોકં વ્યાપ્ય વર્તન્તે, યત્ર સંસારિણાં શરીરાણિ
સન્તિ, તત્રાપિ તદ્વહિશ્ચાપિ સર્વત્ર તે વર્તન્તે, તત્ર કર્મયોગ્યપુદ્ગલા આત્મના પરિ-
ગૃહીતાઃ કર્મરૂપેણ પરિણતા ભવન્તિ ।

રાગદ્વેપપરિણત્યાડડ્રીકૃતસ્યાત્મનો

મનોવાક્રુકાયરૂપકરણસાહાય્યેન

ઉસીપ્રકાર રાગ-દ્વેષરૂપી તેલ સે ચિકને મલિન આત્મપ્રદેશો મેં, કર્મવર્ગણા કે યોગ્ય
પુદ્ગલ, અપની-અપની ઉપાદાનશક્તિ સે જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ અવસ્થા કો પ્રાપ્ત કર કે
ચિપક જાતે હૈં ।

પરમાણુરૂપ ઔર દ્વિપ્રદેશી વગૈરહ સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક,
તૈજસ, ભાપા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન ઔર કાર્મણ કે મેદ સે આઠ પ્રકાર કે હોતે હૈં । ઇન મેં
સે કાર્મણવર્ગણા કે પુદ્ગલ મી સમ્પૂર્ણ લોક મેં વ્યાપ્ત હૈ । જહાં સસારી જીવોં કે શરીર હૈં,
વહા મી હૈં, ઔર વાહર મી સર્વત્ર હૈં । યે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા જવ ગ્રહણ ક્રિયે જાતે
હૈં તવ કર્મરૂપ મે પરિણત હો જાતે હૈં ।

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિ સે યુક્ત આત્મા કા, મન, વચન, કાય, કી સહાયતા સે

ચોટી નય છે, તે પ્રમાણે રાગ-દ્વેષ રૂપી તેલથી ચિકણા અને મલિન આત્મપ્રદેશોમા
કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલ પોત-પોતાની ઉપાદાનશક્તિથી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ-રૂપ
અવસ્થા પ્રાપ્ત કરીને ચોટી નય છે

પરમાણુરૂપ અને દ્વિ-પ્રદેશી વગેરે સ્કન્ધરૂપ પુદ્ગલ ઔદારિક, વૈક્રિય, આહારક
તૈજસ, ભાપા, શ્વાસોચ્છ્વાસ, મન અને કાર્મણના લેહથી આઠ પ્રકારના હોય છે તેમાંથી
કાર્મણવર્ગણાના પુદ્ગલ પણ સમૂર્ણ લોકમા વ્યાપ્ત છે ન્યા સસારી જીવોના શરીર
છે ત્યા પણ છે અને બહાર સર્વત્ર પણ છે તે કર્મયોગ્ય પુદ્ગલ આત્માદ્વારા
ન્યારે ગ્રહણ કરવામા આવે છે ત્યારે તે કર્મરૂપમા પરિણત થઈ નય છે

રાગ-દ્વેષરૂપ પરિણતિયુક્ત આત્માની મન, વચન અને કાયની સહાયતાથી

वीर्यगुणपरिणामात्मिका शुमाशुभक्रिया भवति । इयं क्रिया चात्मनः प्रदेक्षानां परिस्फन्दः, कम्पनं, व्यापारो, योग इति बोध्यते । इयमेव मनोवाक्काययोग इति च कथ्यते । इयमात्मनो ज्ञानावरणाद्यष्टकर्मसम्बन्धरूपं भावे हेतुश्च ।

आत्मनः शुमाशुभक्रियायां सत्यामात्मसङ्गनानादिकर्मणश्चरीरेषा त्माऽनन्तानन्तप्रदेशिस्त्वन्यरूपांश्चतुःस्पर्शान् कर्मयोग्यपुद्गलानादाय कर्मणश्चरीर तथा परिभ्रमयति । आत्मसंस्पर्शनं यद्मादि कर्मणश्चरीरं, तद्धि आत्मैकपात् कर्म योग्यपुद्गलानां ग्रहणे स्वाधीनकरणे स्वस्मिभेकत्वपरिणामकरणे च समर्थं भवति । अनादिकर्मणश्चरीरसम्बन्धादेव संसारी जीवो मूर्तोऽस्ति । मूर्तत्वादेव च तस्य पौद्गलिककर्मसम्बन्धो भवति ।

वीर्यगुण के परिणामरूप शुमा-शुभ क्रिया होती है । इस क्रिया को व्यक्ता के प्रदेशों का परिस्फन्दन, कम्पन व्यापार या योग कहते हैं । यही मन वचन और काय का योग कहलाता है । यही क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों के रूप का कारण है ।

आत्मा को जब शुभ या अशुभ क्रिया होती है तो आत्मा के साथ पहले से बने हुए कर्मणश्चरीर के द्वारा आत्मा अनन्तानन्तप्रदेशी-स्वरूप चोत्सर्गी कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण कर के कर्मणश्चरीर के रूप में परिणत करता है । व्यक्ता से सम्बद्ध अनादिकालीन कर्मणश्चरीर व्यक्ता के साथ एकमेक होने के कारण कर्मयोग्य पुद्गलों को ग्रहण करने में, अपने अधीन करने में और अपने साथ एकमेक करने में समर्थ होता है । अनादिकालीन कर्मणश्चरीर के सम्बन्ध से ही संसारी जीव मूर्त है, और मूर्त होने के कारण ही उसका पौद्गलिक कर्मों के साथ सम्बन्ध होता है ।

वीर्यशुभना परिष्कृतमनुष्य शुभाशुभ क्रिया बाधे ते त्रिधाने आत्मन्य प्रदेशानु परिस्फन्दन, कम्पन, व्यापार अथवा योग कहे ते आत्म मन वचन अने बाधाने योग कहेवाय ते आ क्रिया ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोना जंघनु कारणे ते

आत्मान्नी अन्तरे शुभ अथवा अशुभ क्रिया बाधे ते आत्मान्नी साथे पहलेवासी अपिला कामणश्चरीरद्वारा आत्मा अनन्तानन्तप्रदेशी-स्वरूप, चोत्सर्गी कर्मयोग्य पुद्गलोंने प्रकल्प करीने कामणश्चरीरना इयमां परिष्कृत करे ते आत्माची सजद्ध अनादिकालीन कामणश्चरीर आत्मान्नी साथे एकमेक होवना कारणे कर्मयोग्य पुद्गलोंने प्रकल्प करवनां पोटाना अधीन करवनां अने पोटान्नी साथे एकमेक करी देवनां समर्थ बाधे ते अनादिकालीन कामणश्चरीरना सजद्धवीर्य व संसारी एव मूर्त होवना कारणे व तेना पौद्गलिक कर्मोनी साथे सम्बन्ध बाधे ते.

યથા દીપક ઝબ્મગુણયોગાદ્ વર્તિદ્વારા તૈલમાદાય જ્વાલારૂપેણ પરિણમ-
યતિ તથા રાગદ્વેષોબ્મગુણસમ્બન્ધાન્મનોવાગાદિયોગવત્પર્યાઽઽત્મદીપઃ કર્મયોગ્યપુદ્ગલ-
સ્કન્ધતૈલમાદાય કર્મજ્વાલારૂપેણ પરિણતં કરોતિ । મનોવાગાદિરૂપકરણસંયોગાદા-
ત્મનો વીર્યપરિણામો ભવતિ, અતો મનોવાગાદિવ્યાપારો યોગશબ્દેનોચ્યતે । યથા મૃન્મય-
ઘટસ્યાગ્નિસંયોગાદ્ રક્તત્વાદિપરિણતિર્ઘટસ્યૈવ ભવતિ તથા મનોવાગાદિસંયોગાદ્
શુભાશુભક્રિયારૂપા વીર્યપરિણતિરાત્મન એવ ભવતિ, ન તુ પુદ્ગલરૂપમનોવાગાદેઃ ।

યથા ચ તૈલાભ્યક્તે શરીરે જલાદે વસ્ત્રે વા ધૂલિરાશ્લિષ્ટા ભવતિ, તથા

જૈસે—દીપક ઝબ્મગુણ કે કારણ વત્તીદ્વારા તૈલ ગ્રહણ કર કે જ્વાલા કે રૂપ મેં
પરિણત કરતા હૈ, ઁસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષ રૂપ ઝબ્મગુણકે સમ્બન્ધ સે મન, વચન આદિ યોગોં
કી વત્તી દ્વારા આત્મરૂપી દીપક કર્મયોગ્યપુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ તૈલ કો ગ્રહણ કર કે કર્મરૂપ
જ્વાલા મેં પરિણત કર લેતા હૈ । મન, વચન ઁર કાયરૂપ કરણ કે દ્વારા આત્મા કા વીર્ય-
રૂપ પરિણમન હોતા હૈ । ઁસીલિલ્લે મન, વચન, આદિ કા વ્યાપાર યોગ કહલાતા હૈ । જૈસે
—અગ્નિ કે સયોગ સે મિટ્ટી કે ઘડે કી લલ્હાઈ આદિરૂપ પરિણતિ હોતી હૈ, ઁર વહ ઘડે કી
હી કહલાતી હૈ, ઁસીપ્રકાર મન, વચન આદિ કે સયોગ સે શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્ય કી
પરિણતિ આત્મા કી હી હોતી હૈ, પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિ કી નહી ।

જૈસે તેલ સે લિપ્ત શરીર પર યા મીંગે હુલ્લ વસ્ત્ર પર ઘૂલ લગ જાતી હૈ,

જેવી રીતે દીપક ઝબ્મગુણના કારણે બત્તીદ્વારા તેલને ગ્રહણ કરીને જ્વાળાના
રૂપમા પરિણત કરે છે તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપ ઝબ્મગુણના સમ્બન્ધથી મન
વચન આદિ યોગીની બત્તી દ્વારા આત્મારૂપી દીપક કર્મયોગ્ય—પુદ્ગલસ્કન્ધરૂપ
તેલને ગ્રહણ કરીને કર્મરૂપ જ્વાલામા પરિણત કરી લે છે મન, વચન અને
કાયરૂપ કરણદ્વારા આત્માને વીર્યરૂપ પરિણમન થાય છે, એ કારણથી મન, વચન
આદિનો વ્યાપાર યોગ કહેવાય છે જેવી રીતે અગ્નિના સયોગથી માટીના ઘડાની જ
લાલી (રાતાશપણ) રૂપ પરિણતિ થાય છે, અને તે ઘડાની જ કહેવાય છે. તે પ્રમાણે
મન, વચન આદિના સયોગથી શુભા—શુભક્રિયારૂપ વીર્યની પરિણતિ આત્માની જ
થાય છે પુદ્ગલરૂપ મન, વચન આદિની નહિ

જેવી રીતે તેલથી લિપ્ત શરીર પર, અથવા લિપ્તએલા વસ્ત્ર પર
ધૂળ લાગી જાય છે. તે પ્રમાણે રાગ—દ્વેષરૂપી તેલથી યુક્ત આત્માના કાર્મણ્શરીરરૂપ

रागादिरूपवैश्याम्यस्यस्यात्मनः कर्मणश्चरीरपरिणामो नवीनकर्मप्रश्लेषे योग्यतां संपादयति । आत्मश्चरीरयोरैक्ये सति सम्प्रज्ञानाभावरूपानामोग्दीर्यतः कर्मबन्धो भवति । इत्थं कर्मवर्गगायोग्यपुद्गलानां ज्ञानावरणीयादिकर्मतया परिणतानां सकृत्पापस्यात्मनः सकृत्प्रदेशेषु सोत्सीमाधो बन्ध इति बोध्यम् ।

(८) बन्धकारणनिरूपणम्—

बन्धस्य पञ्च साधारणकारणानि सिध्यात्वाऽविरति प्रमाद-रूपाय-योग-भेदात् ।

तथातएवे तस्वाभ्यवसायरूपो विपरीतावधानो मोहकर्मोदयजनित आत्म-परिणामो सिध्यात्तम् । यद्वा-कुदेव-कुगुरु-कुवर्मोऽपि मिथिलरूपमत्स्वार्थभ्रदानं

उसी प्रकार राग-द्वेषरूपी तेषु से युक्त आत्मा का कर्मणश्चरीररूप परिणाम नवीन कर्मों को प्रवृत्त करने में योग्य हो जाता है । आत्मा और शरीर के एकमेक होने पर सम्प्रज्ञान के अभावरूप अज्ञानयोग वीर्य से कर्मबन्ध होता है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मरूप में परिणत कर्मणश्चरीरानों के योग्य पुद्गल का कृपायुक्त-भ्रष्टता के समस्त प्रदेशों में एकमेक हो जाना बन्ध है ।

(९) बन्धके कारण-

बन्ध के साधारण कारण पाँच हैं—(१) सिध्यात्त्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कृपाय, और (५) योग ।

अतएव को तएव समस्तनेरूप मोहनीयकर्मबन्ध विपरीतज्ञानरूप आत्मपरिणाम को सिध्यात्त्व कहते हैं, अथवा कुदेव कुगुरु और कुवर्म में क्वचिरूप अतएव का

परिणाम नवीन कर्मों प्रवृत्त करवाभा योग्य बन्ध से आत्मा अपने शरीराना कोकर्मके अवाधी सम्प्रज्ञानना अज्ञानरूप अज्ञानयोग वीर्यशी कर्मबन्ध काय से

जो प्रमादों ज्ञानावरण आदि कर्मरूपों में परिणत कामयुक्त अज्ञान योग्य पुद्गलाना कृपायुक्त आत्माना समस्त प्रदेशों में एकमेक बन्ध के अर्थ से अर्थ है ।

(८) अतएव कारण—

अथवा साधारण कारण पाँच हैं—(१) सिध्यात्त्व, (२) अविरति, (३) प्रमाद, (४) कृपाय और (५) योग ।

अतएवने तएव समस्तने रूप मोहनीयकर्मबन्ध विपरीतज्ञानरूप आत्म परिणामने सिध्यात्त्व कहते हैं, अथवा कुदेव कुगुरु और कुवर्मों में क्वचिरूप अतएवने

मिथ्यात्वम् १ । सावध्ययोगेषु प्रवृत्तिरविरतिः २ । सदुपयोगाभावः प्रमादः, मोक्षमार्गं प्रति शैथिल्यं वा प्रमाद ३ । कप्यते=पुनःपुनर्मर्जन्ममरणादिक्लेशोऽनुभूयते येन स कपायः, मोहनीयकर्मोदयजनित आत्मपरिणतिविशेषः, यद्वा-कप्यते यत्र शारीरिकमानसिकदुःखैः, स कपः-संसारः, तस्य आयः-प्राप्तिकारण कपायः=क्रोधादि ४ । युज्यते-आत्माऽनेनेति योगः=मनोवाक्कायव्यापाररूपः ५ । उक्तञ्च-

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं १, अविरई २, पमाया ३, कसाया ४, जोगा ५” । (समवा० समवाय ५) ‘आसवदारा’ इति-आश्रवो बन्धकारणम् ।

श्रद्धान मिथ्यात्व कहलता है १ । सावध्य योगों में प्रवृत्ति करना अविरति है २ । सम्यक् उपयोग (यतना) का अभाव प्रमाद कहलता है, या मोक्षमार्ग के विषय में शिथिलता होना प्रमाद है ३ । जिस के द्वारा आत्मा कपा जाय अर्थात् वारवार जन्म-मरण का क्लेश भोगा जाय उसे कपाय कहते हैं । कपाय, मोहकर्म से उत्पन्न आत्मा की एक परिणति है । अथवा - जहाँ शारीरिक एवं मानसिक दुःखों से जीव कपा जाय (युक्त हो) उसे कप अर्थात् संसार कहते हैं और उस कप (संसार) की आय प्राप्ति जिस से हो वह कपाय कहलता है ४ । जिस से आत्मा व्याप्त हो, ऐसा मन, वचन और काय का व्यापार योग कहलता है ५ । कहा है—

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तं जहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया, जोगा” । (समवायाङ्ग, समवाय ५) यहाँ ‘आसवदारा’ का अर्थ है-आश्रव के द्वार अर्थात् बन्धके कारण ।

श्रद्धा तेने मिथ्यात्व कडे छे (१) सावध्य योगोभा प्रवृत्ति करवी ते अविरति छे (२) सम्यक् उपयोगेनो अभाव ते प्रमाद कडेवाय छे, अथवा मोक्षमार्गना विषयमा शिथिलता थवी ते प्रमाद छे (३) जेना द्वारा आत्मा कपाय अर्थात् वारवार जन्म मरणेना क्लेश भोगववाय तेने कपाय कडे छे कपाय, मोह कर्मथी उत्पन्न आत्मानी अेक परिणति छे अथवा-न्या शारीरिक अने मानसिक दुःखोथी एव कपाय अर्थात् पीडाय तेने कप अर्थात् संसार कडे छे, अने ते संसारनी आय-प्राप्ति जेनाथी छाय ते कपाय कडेवाय छे (४) जेनाथी आत्मा व्याप्त छाय जेवा मन, वचन अने कायाना व्यापार ते योग कडेवाय छे (५), कहुं छे के —

“पञ्च आसवदारा पण्णत्ता, तंजहा-मिच्छत्तं, अविरई, पमाया, कसाया जोगा” (समवायाङ्ग, समवाय ५,) अर्हि “आसवदारा” ने अर्थ अे छे के-आश्रवना द्वार, अर्थात् बन्धना कारण

एषु पञ्चसु कारणेषु कृपायाः प्रधानम् । स च क्रोधमानमायालोभ-
मेदास्तुर्विधः । स्तुर्विधोऽप्ययं कृपायो रागद्वेषान्तर्गत एवास्ति । उक्तञ्च—

“दोहि ठाणेहि पावकम्मा बंधति, तंजहा-रागेण य, दोसेण य । रागे
दुपिहे पण्णत्ते, तंजहा-माया य सोमे य । दोसे दुपिहे पण्णत्ते, तजहा-कोहे य
माणे य” (स्या० स्थान २ उ०)

बन्धस्तुर्विध-प्रकृति-स्थित्य-नुमान-प्रदेशमेदात् । उक्तञ्च—

“पउच्चिहे बंधे पण्णत्ते, तंजहा-पगइधत्ते१, ठिइधत्ते२, ञणुमापबंधे३,
पपसबंधे४ ।” (समवायाइ समवायध)

इन पाँच कारणों में कृपाय प्रधान है । क्रोध, मान, माया और लोभ के
मेदसे यह चार प्रकार का है । कृपाय के ये चारों मेद राग और द्वेष में ही बन्तर्गत हो
जाते हैं । कहा भी है—

“दो स्थानो से पाप कर्मों का बन्ध होता है । वह इस प्रकार-राग से
और द्वेष से । राग दो प्रकार का है-माया और लोभ । द्वेष भी दो प्रकार का है-क्रोध
और मान” । (स्या० स्थान २ उ २)

बन्ध चार प्रकार का है—(१) प्रकृति-बन्ध, (२) स्थिति बन्ध, (३) अनुमान-बन्ध,
और (४) प्रदेश-बन्ध । कहा भी है—

“बन्ध चार प्रकार का कहा गया है वह इस प्रकार—(१) प्रकृतिबन्ध, (२)
स्थितिबन्ध (३) अनुमानबन्ध (४) प्रदेशबन्ध” । (सम स ४)

आ पाप अणुत्थानां कृपाय प्रधानं च— सुख्यं च क्रोध भान्द माया जने
लोलना सेदधी ते चार प्रकारना छे । कृपायना ते चारे य सेद राज-जने द्वेषमा
समाधं जय छे कर्णुं छे के:-

छे स्थानोधी पापकर्मोनि जय बाध छे ते आ प्रमाद्ये छे-सामधी जने
द्वेषधी राज छे प्रकारना छे-माया जने लोल द्वेष पणुं के प्रकारना छे-कीध जने
मान” (स्या० स्थान २-उ २)

जय चार प्रकारना छे—(१) प्रकृतिबंध (२) स्थितिबंध, (३) अनुमानबंध
(४) प्रदेशबंध । कर्णुं पणुं छे—

जय चार प्रकारना छे (१) प्रकृतिबंध, (२) स्थितिबंध, (३) अनुमानबंध,
(४) प्रदेशबंध, (सम० सू. ४)

તત્ર પ્રકૃતિઃ—સ્વભાવઃ । આત્મપરિગૃહીતકર્મપુદ્ગલાનાં તચ્છક્તિરૂપેણ પરિણ-
મનમ્ । યથા નિમ્બસ્ય તિત્તક્તમ્, ગુહસ્ય મધુરત્વમ્ । પ્રકૃતિર્દ્વિવિધા—મૂલપ્રકૃતિઃ,
ઉત્તરપ્રકૃતિશ્ચ । મૂલરૂપઃ કર્મણઃ સ્વભાવો મૂલપ્રકૃતિઃ । મૂલપ્રકૃતિરષ્ટધા—જ્ઞાના-
વરણીય૧ — દર્શનાવરણીય૨ — વેદનીય૩ — મોહનીયા૪—ડ્યુષ્ય૫—નામ૬—ગોત્રા૭—
ન્તરાય૮—ભેદાત્ । ઉક્તશ્ચ—

“ અદૃ કમ્મપગહીઓ પળ્ણત્તાઓ, તંજહા-ળાળાવરણિજ્જં૧, ઢંસળાવરણિજ્જં૨,
વેયણિઞ્જ૩ મોહણિઞ્જ૪, આડય૫, નામ૬, ગોયં૭, અતરાદ્યં૮ ” । (પ્રજ્ઞાપના૦
પદ—૨૧ ડ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ । આત્મા કે દ્વારા પ્રહણ કિણ હુણ કર્મપુદ્ગલોં મેં અમુક-
અમુક પ્રકાર કી શક્તિ (સ્વભાવ) ઉત્પન્ન હો જાના પ્રકૃતિબન્ધ હૈ । જૈસે—નીમ મેં કટુકતા
ઔર ગુહ મેં મધુરતા હોતી હૈ ।

પ્રકૃતિ ઢો પ્રકાર કી હૈ—મૂલપ્રકૃતિ ઔર ઉત્તરપ્રકૃતિ । કર્મ કા મૂલ સ્વભાવ
મૂલપ્રકૃતિ કહલાતી હૈ । મૂલપ્રકૃતિ કે આઠ ભેદ હૈ—(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય,
(૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર, ઔર (૮) અન્તરાય ।
કહા મી હૈ —

“ આઠ કર્મપ્રકૃતિયાં હૈ, વે હસ પ્રકાર—(૧) જ્ઞાનાવરણીય, (૨) દર્શનાવરણીય,
(૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુષ્ય, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર, (૮) અન્તરાય । ”
(પ્રજ્ઞા પદ ૨૧ ડ ૧ સૂ ૨૮૮)

પ્રકૃતિ અર્થાત્ સ્વભાવ,—આત્માદ્વારા પ્રહણ કરેલા કર્મપુદ્ગલોમા અમુક-
અમુક પ્રકારની શક્તિ (સ્વભાવ) તુ ઉત્પન્ન થઈ જલુ તે પ્રકૃતિબન્ધ છે જેવી રીતે
લીબડામા કઠવાશ અને ગોળમા મધુરતા હોય છે

પ્રકૃતિ ષે પ્રકારની છે— (૧) મૂલપ્રકૃતિ અને (૨) ઉત્તરપ્રકૃતિ કર્મનો મૂલ
સ્વભાવ તે મૂલપ્રકૃતિ કહેવાય છે તે મૂલ પ્રકૃતિના આઠ ભેદ છે— (૧) જ્ઞાનાવરણીય,
(૨) દર્શનાવરણીય, (૩) વેદનીય, (૪) મોહનીય, (૫) આયુ, (૬) નામ, (૭) ગોત્ર
અને (૮) અતરાય કહ્યું છે કે —

“ આઠ કર્મપ્રકૃતિઓ છે, તે આ પ્રમાણે—જ્ઞાનાવરણીય, દર્શનાવરણીય, વેદનીય,
મોહનીય, આયુષ્ય, નામ, ગોત્ર, અતરાય ” (પ્રજ્ઞા પદ ૨૧ ડ. ૧ સૂ. ૨૮૮)

ज्ञानावरणीयं कर्म, जीवस्य ज्ञानगुणमाहणोति१ । दर्शनावरणीयं कर्म दर्शनगुणमृ२ । वेदनीयकर्म जीवस्याभ्यासाद्यगुण संख्यादि३ । मोहनीयकर्म जीवस्याविरतिं तत्त्वानभिरुचिं च जनयति४ । आयुष्यकर्म जीवस्यामरत्वं प्रतिवृत्तिः५ । नामकर्म जीवस्याऽमूर्तत्व प्रतिवध्नाति६ । गोत्रकर्म तस्यागुणसङ्घुगुणप्याहन्ति७ । अन्तरायकर्म जीवस्यानन्तवीर्यगुणं स्मदि८ ।

यथा—गवादिमसिततृपादयो दुग्धरूपेण परिणता भवन्ति, माधुर्य-
स्वभावाः सद्यैव जायते, स चैतावत्कालपर्यन्तस्वायीव स्थितिसमयमर्थादाऽपि
जायते माधुर्यं तीव्रमन्दभावादिभिःश्रेयोऽपि भवति, तस्य दुग्धस्य पौद्गलिक-

(१) ज्ञानावरणीय कर्म जीव के ज्ञानगुणको रोकता है, (२) दर्शनावरणीयकर्म दर्शनगुणको । (३) वेदनीयकर्म जीव के अभ्यासाद्यगुण को रोकता है और (४) मोहनीय-
कर्म जीव में अभिरुचि और तत्त्व के प्रति अरुचि उत्पन्न करता है । (५) आयुष्यकर्म जीव को
अमरता को रोकता है और (६) नामकर्म जीव के अमूर्तत्व गुण को रोकता है ।
(७) गोत्रकर्म अगुण-सङ्घुगुण गुण को मष्ट करता है और (८) अन्तरायकर्म जीव के अनन्त
वीर्य का घात करता है ।

जैसे गायशारा साधे हुए गुण आदि दूध रूप में परिणत होते हैं, और
उस में मधुरता का स्वभाव भी साथ ही उत्पन्न हो जाता है । उस में अमुक कालपर्यन्त
ठहरने की स्थिति-मर्माद्य भी उत्पन्न हो जाती है, और मधुरता में तीव्रता या मन्दता की
विशेषता भी आजाती है । उस दूध का पौद्गलिक परिणाम भी साथ ही उत्पन्न होता है ।

(१) ज्ञानावरणीय कर्म अपनी ज्ञान-शुद्धिने रोकता है, (२) दर्शनावरणीय
कर्म दर्शनशुद्धिने रोकता है (३) वेदनीय कर्म अपनी अभ्यासाद्य शुद्धिने, रोकता है
(४) मोहनीय कर्म अपनी अभिरुचि देने तथा अरुचि उत्पन्न करके रोकता है,
(५) आयुष्य कर्म अपनी अमरताने रोकता है (६) नाम-कर्म अपनी अमूर्तत्व शुद्धिने
रोकता है (७) गोत्र-कर्म अगुणसङ्घुगुण शुद्धिने नाश करे रोकता है (८) अन्तराय कर्म
अपनी अनन्तवीर्यने घात करे रोकता है ।

जैसी शीते लामे आदिहुं वास आदि रूप रूपमा परिणत भाव छे जने तेमां
मधुरतानो स्वभाव पक्ष साथै न उत्पन्न भाव छे तेमां अमुककालपर्यन्त स्थिर
रहेवानी स्थिति-मर्माद्य पक्ष उत्पन्न भए जस छे जने मधुरतामां तीव्रता मन्दता
भइवानी विशेषता पक्ष जानी भाव छे ते रूधनु पौद्गलिक परिणाम पक्ष साथै न

परिणामश्चापि सहैव प्रादुर्भवति तथा जीवेन परिगृहीतानां कर्मवर्गणायोग्य-
पुद्गलानां कर्मरूपेण परिणमने चतुर्विधा अंशा सहैव भवन्ति । त एवांशाः
बन्धभेदाः प्रकृत्यादयः सन्ति ।

कणिकागुडघृतकटुकादिद्रव्याणामौषधमोदकरूपेण परिणमने सहैवा-
नेकाकारपरिणामो भवति । यथा मोदको हि कश्चिद् वातपित्तहरणशीलः, कश्चिद्
बुद्धिवर्धनः, कश्चित् संमोहकारी, कश्चिन्मारकः, इत्यनेकाकारेण परिणमते
जीवसंयोगात्, तथा कर्मवर्गणायोग्यपुद्गलानामात्मसम्बन्धात्कर्मरूपेण परिणामे
कश्चित्कर्मपुद्गलः ज्ञानमावृणोति, कश्चिद्दर्शनमावृणोति ; अपरः सुखदुःखानुभवं जनयती
त्यादि योजनीयम् ।

इस प्रकार जीव द्वारा ग्रहण किए हुए कर्मवर्गणा के योग्यपुद्गोका कर्मरूप परिणमन
होने पर चार प्रकार के अश उन में साथ ही उत्पन्न होते हैं । वही अश बन्ध के प्रकृति
आदि भेद कहलाते हैं ।

आटा, गुड, घी और कटुक आदि द्रव्यों से बने हुए लड्डू में एक साथ अनेक
प्रकार के परिणमन होते हैं । कोई लाडूई वात-पित्त का नाशक होता है, कोई बुद्धिवर्धक
होता है, कोई सम्मोहजनक होता है, और कोई घातक होता है, इस प्रकार जीव के संयोग से
लड्डू अनेक आकारों में परिणत होता है । इसी प्रकार कर्मवर्गणा-योग्य पुद्गलों का आत्मा के
निमित्त से कर्मरूप परिणमन होने पर कोई कर्म, ज्ञान को आच्छादित करता है, कोई
दर्शनको कोई कर्म, सुख-दुःख का अनुभव कराता है । इत्यादि सब घटा लेना चाहिए ।

ઉત્પન્ન થાય છે એ પ્રમાણે ઊવદ્ધારા ગ્રહણ કરેલા કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોતુ
કર્મરૂપ પરિણમન થવાની સાથે ચાર પ્રકારના અશ તેમા સાથે જ ઉત્પન્ન થાય છે
તે અશ, બંધના પ્રકૃતિ આદિ ભેદ કહેવાય છે

હોટ, ગોળ, ઘી અને કટુક આદિ દ્રવ્યો નાંખીને બનાવેલા લાડુમા એક સાથે
અનેક પ્રકારતુ પરિણમન થાય છે, કોઈ લાડુ વાત-પિત્તનો નાશ કરનાર હોય છે કોઈ
બુદ્ધિપૂર્વક હોય છે કોઈ સમોહ ઉત્પન્ન કરનાર હોય છે અને કોઈ ઘાતક હોય
છે એ પ્રમાણે ઊવના સંયોગથી લાડુ અનેક આકારોમા પરિણત થાય છે તે
પ્રમાણે કર્મવર્ગણાયોગ્ય પુદ્ગલોતુ આત્માના નિમિત્તથી કર્મરૂપ પરિણમન થાય ત્યારે
કોઈ કર્મ જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરે છે કોઈ દર્શનને, કોઈ કર્મ સુખ-દુઃખનો અનુભવ
કરાવે છે એ પ્રમાણે સર્વ બાબતમા ઘટાવી લેવું જોઈએ.

यथा वा-नातहास्त्रिभ्यनिर्मितो मोदकः मकृत्या नातं इति, पित्तोपशम-
कद्रभ्यनिर्मितो मोदकः मकृत्या पित्तं नाशयति, कफापहारकद्रभ्यनिर्मितः कफं
इति । इत्येवं मोदकस्य नानाविधा मकृतिः । तस्यैव मोदकस्य स्थितिस्तु
कस्यचिदेकदिनभ्यापिनी, अपरस्य दिनद्वयस्यापिनी, अन्यस्य कस्मश्चिन्मासादि
काल भ्याप्य स्थितिर्भवति, तत परं तत्तन्मोदकस्य विनाशान् । एवं मोदकस्यानु
माशो मधुरकटुकपायादिक्रमः । रसस्तीक्ष्णमन्दभावेन कस्यश्चिन्मोदकस्यैकगुणः,
कस्यचिद् द्विगुणः, कस्यचित् त्रिगुणो भवति । मद्देशोऽपि मोदकस्य कस्यचिदेक-
कर्षमितः, कस्यचिद् द्विकर्षपरिमितः, कस्यचित्त्रिकर्षपरिमितो भवति ।

अथवा जैसे-बातहारक द्रव्यों से बना मोदक स्वभाव से वात का नाश करता है,
पित्तका नाश करने वाले द्रव्यों से बना मोदक पित्तका नाश करता है, कफहारी द्रव्यों से बना
मोदक कफको हर करता है, इस प्रकार मोदक की प्रकृति नाना प्रकार की है । कोई मोदक
एकदिन तक ही ठहर सकता है, कोई दो दिन तक और कोई गहने मरतक ठहर सकता है,
जैसेके पश्चात् मोदक में वह शक्ति नहीं रहती है । इसी प्रकार किसी मोदक का मधुर या
कटुक रस तीन होता है किसी का मन्द होता है, किसी मोदक में एकगुण रस होता है,
किसी में द्विगुण और किसी में तीन गुण । किसी मोदक का प्रदेशसमूह एक कर्ष
परिमित होता है, किसीका दो कर्ष परिमित होता है, और किसीका तीन कर्ष परिमित
होता है ।

अथवा-जैसे वायुनाशक द्रव्योंकी अनेकाला वायु स्वभावकी वायुने नाश करे छे
पित्तने शान्त करवा पाणा द्रव्योंकी अनेकाला वायु पित्तने नाश करे छे, करे नाश करनास
द्रव्योंकी अनेकाला वायु करने करे छे जे प्रभावे वायुनी प्रकृति वायु-वायु प्रकृति
छे, केरि वायु जेक दिनस सुधी रही शके छे केरि जे दिनस अने केरि भक्तिना सुधी
रही शके छे, ते पछी वायुमां ते प्रभमना जेनी शक्ति रहेती नथी, जे प्रभावे केरि
वायुने मधुर अथवा कटुक रस तीन होय छे केरिने म द होय छे केरि वायुमां जेक
शुष्क रस होय छे, केरिमा द्विशुष्क अने केरिमां त्रय शुष्क रस होय छे केरि वायुना
प्रदेशसमूह जेक कर्ष (जे तोला) परिमित होय छे केरिना जे कर्ष (चार तोला)
परिमित होय छे, अने केरिना त्रय कर्ष (छ तोला) परिमित होय छे

एवं कर्मणोऽपि कस्यचिद् ज्ञानावरणस्वभावा प्रकृतिः, अपरस्य दर्शना-
वरणरूपा, कस्यचित् सम्यग्दर्शनादिविघातस्वभावा ।

કર્મણઃ સ્થિતિશ્ચ કસ્યચિત્ ત્રિંશત્સાગરોપમકોટીકોટીરૂપા, અપરસ્ય
કસ્યચિત્ કર્મણઃ સપ્તતિસાગરોપમકોટીકોટીરૂપેત્યાદિ । રસસ્તુ કસ્યચિત્
કર્મણસ્તીવ્રઃ, કસ્યચિત્તીવ્રતરઃ, કસ્યચિત્તીવ્રતમઃ, કસ્યચિન્મન્દઃ, કસ્યચિન્મ-
ન્દતર ઇત્યાદિ વૌઘ્યમ્ ।

(૧) પ્રકૃતિવન્ધઃ—

॥ અષ્ટવિધ-મૂલપ્રકૃતિવન્ધ-લક્ષણમ્—

(૧) જ્ઞાનસ્ય (વિશેષવૌધસ્ય) આવરકં કર્મ જ્ઞાનાવરણીયમ્ ।

इसी प्रकार किसी कर्म की ज्ञानको आच्छादित करने की प्रकृति है, किसीका दर्शन
को ढँकने की है, किसी की सुख-दुःख का अनुभव कराने की प्रकृति है, और किसी की
सम्यग्दर्शन का घात करने की है । किसी कर्म की तीस कोडाकोडी सागरोपमकी स्थिति है,
किसी की सत्तर (७०) कोडाकोडी सागरोपम की है ।

इसी प्रकार किसी कर्म का रस तीव्र है, किसी का तीव्रतर है, किसी का तीव्रतम है ।
किसी का रस मन्द है, किसी का मन्दतर है । इत्यादि समझ लेना चाहिए ।

(૧) પ્રકૃતિવન્ધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મો કે વાષકો આચ્છાદિત કરને વાલ્ય કર્મ જ્ઞાનાવરણ
કહલતા હૈ ।

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મની જ્ઞાનને આચ્છાદિત કરવાની પ્રકૃતિ છે, કોઈની દર્શનને
ઢાકી દેવાની છે, કોઈની સુખ-દુઃખનો અનુભવ કરાવવાની પ્રકૃતિ છે, અને કોઈની
સમ્યગ્દર્શનનો ઘાત કરવાની પ્રકૃતિ છે.

કોઈ કર્મની ત્રીશ કોડાકોડી સાગરોપમની સ્થિતિ છે કોઈની સીતેર (૭૦)
કોડાકોડી સાગરોપમની છે.

આ પ્રમાણે કોઈ કર્મનો રસ તીવ્ર છે કોઈનો તીવ્રતર છે, અને કોઈનો
તીવ્રતમ છે. કોઈનો રસ મદ છે, કોઈનો મદતર છે ઇત્યાદિ સમજ લેવું જોઈએ

(૧) પ્રકૃતિવન્ધ

(૧) જ્ઞાન અર્થાત્ વિશેષ ધર્મોના ઓધને જે આચ્છાદિત કરવાવાળું કર્મ તે જ્ઞાના
વરણીય કહેવાય છે

- (२) दर्शनस्य (सामान्यबोधस्य) आवरक कर्म दर्शनान्तरणीयम् ।
- (३) सुस्तदुःखानुभवननकं कर्म वेदनीयम् ।
- (४) मदिरापन्नोद्भवनकं कर्म मोहनीयम् ।
- (५) मद्यभारणकारण कर्म आयुष्कम् ।
- (६) विशिष्टगतिव्यात्यादिमाप्तिकारणं कर्म नाम ।
- (७) उत्कर्षापकर्षप्राप्तिकारणं कर्म गोत्रम् ।
- (८) दानशामादिविपातकं कर्म अन्तराय ।

मूलरूपं कर्मणः स्वभावोऽप्यविभ इति मूलप्रकृतिरप्यविधा संक्षेपतः कथिता । अद्यानां मूलप्रकृतीनां प्रत्येकमवान्तरभेद एवोत्तरप्रकृतिः । सा च

(२) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधको अर्थात् अदित करन बास कर्म दर्शन-कर्म है ।

(३) सुस्त-दुःखको वेदन करने बास कर्म वेदनीय कहलाता है ।

(४) मदिरा के समान मोह उत्पन्न करने बास कर्म मोहनीय कहलाता है ।

(५) मद्यभारण का कारण कर्म आयुष्क कहलाता है ।

(६) विशेष प्रकार की गति, जाति आदि की प्राप्ति का कारण नामकर्म है ।

(७) उत्कर्ष और अपकर्ष की प्राप्ति का कारण गोत्रकर्म कहलाता है ।

(८) दान साम आदि में विपन्न होने बास अन्तराय कर्म कहलाता है ।

कर्म का मूल स्वभाव आठ प्रकार का ही है, अत आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया गया है इन आठ प्रकृतियों के अन्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते हैं ।

- (१) दर्शन अर्थात् सामान्य बोधने के अर्थात् अदित करन बास कर्म ते दर्शनान्तरणीयं
- (२) सुस्त-दुःखको वेदन करन बास कर्म ते वेदनीयकमं कहेवाच्यं
- (३) मदिराया समान मोह उत्पन्न करन बास कर्म ते मोहनीयं कहेवाच्यं
- (४) मद्य-भारण करन बास कर्म ते आयुष्कं कहेवाच्यं
- (५) विशेष प्रकार की गति-जाति आदि की प्राप्ति करन ते नामकर्म कहेवाच्यं
- (६) उत्कर्ष अने अपकर्ष की प्राप्ति करन ते गोत्रकर्म कहेवाच्यं
- (७) दान-शाम आदि में विपन्न नाशक कर्म ते अन्तरायं कर्म कहेवाच्यं

कर्मों के मूल स्वभाव आठ प्रकार के हैं। तभी आठ प्रकृतियों का संक्षिप्त कथन किया है। इन आठ प्रकृतियों के अन्तर भेदों को उत्तर-प्रकृति कहते हैं। अतः प्रकृतियों

વિસ્તરતો જિજ્ઞાસૂનાં બોધાય શાસ્ત્રે નિર્દિષ્ટા । જ્ઞાનાવરણીયાદિમૂલપ્રકૃતી-
નામષ્ટાનામવાન્તરમેદા યથાક્રમમ્—(૧) પञ्च, (૨) નવ, (૩) દ્વૌ, (૪) અષ્ટાવિંશતિઃ,
(૫) ચત્વારઃ, (૬) દ્વિચત્વારિંશત્, (૭) દ્વૌ, (૮) પञ्ચ સન્તિ । એતત્સર્વમાગમતોઽવ
વગન્તવ્યમ્ ।

(૨) સ્થિતિબન્ધઃ—

આત્મસંલગ્નાનાં કર્મપુદ્ગલાનાં યયા જઘન્યમધ્યમોત્કૃષ્ટકાલમર્યા-
દયાઽઽત્મપ્રદેશેષ્વવસ્થાનાં સા કાલમર્યાદા સ્થિતિબન્ધઃ । કિञ્ચ—અધ્યસાયવિશેષ-
ગૃહીતસ્ય કર્મદલિકસ્ય સ્થિતિકાલનિયમનં સ્થિતિબન્ધઃ ।

વેદનીયકર્મણો જઘન્યસ્થિતિદ્વાદશમુહૂર્તપ્રમાણા । નામ—ગોત્રકર્મણો-

વિસ્તાર સે જિજ્ઞાસુ પરુષો કી જાનકારી કે લિપે જાલ્લ મેં વર્ણન કિયા ગયા હૈ । જ્ઞાનાવરણીય
આદિ મૂલ પ્રકૃતિયોં કે અવાન્તર મેદોં કી સલ્યા ક્રમ સે પાંચ, નૌ, દો, અઠાઈસ, ચાર,
બયાલીસ, દો ઓર પાંચ હૈ । ઇન સબકો આગમ સે સમજ્ઞ લેના ચાહિપ્ ।

(૨) સ્થિતિબન્ધ

આત્મા કે સાથ લગે હુપે કર્મપુદ્ગલ જિસ જઘન્ય મધ્યમ યા ઉત્કૃષ્ટ કાલમર્યાદા સે
આત્મપ્રદેશોં મેં સ્થિર હૈ, ઁસ કાલમર્યાદાકો સ્થિતિબન્ધ કહતે હૈ । અથવા યોં કહિપે કિ-
અધ્યસાયવિશેષ દ્વારા પ્રહણ કિપે હુપે કર્મદલિયોં કે આત્મા મેં ઠહરને કે કાલસમ્બન્ધી નિયમન
કો સ્થિતિબન્ધ કહતે હૈ ।

વેદનીય કર્મ કી જઘન્ય સ્થિતિ બારહ મુહૂર્ત કી, તથા નામ ઓર ગોત્રકર્મ કી

બાલુવા માટે શાસ્ત્રમા વિસ્તારથી વર્ણનકરવામા આવ્યુ છે જાનાવરણીય આદિ મૂલ
પ્રકૃતિના અવાન્તર લેહોની સખ્યા ક્રમથી—પાચ, નૌ, ઁ, અઠાવીસ, ચાર, બતાલીસ,
ઁ, અને પાચ છે, આ સર્વને આગમથી સમજ્ઞ લેવુ બેઈએ

(૨) સ્થિતિબન્ધ

આત્માની સાથે લાગેલા કર્મપુદ્ગલ જે જઘન્ય, મધ્યમ, અને ઉત્કૃષ્ટ કાલ
મર્યાદાથી આત્મપ્રદેશમા સ્થિતિ છે, તે કાલમર્યાદાને સ્થિતિબન્ધ કહે છે અથવા એમ
કહીએ કે—અધ્યસાયવિશેષદ્વારા અહુષ્ય કરેલા કર્મદલિકોને આત્મામા ઠકી શકવાના
કાલસમ્બન્ધી નિયમનને સ્થિતિબન્ધ કહે છે

વેદનીય કર્મની જઘન્ય સ્થિતિ બાર મુહૂર્તની, તથા નામ અને ગોત્ર કર્મની

अन्य स्थितिरष्टमुहूर्तप्रमाणा । ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय मोहनीया-अप्युप्या-
 अन्तरायकर्मणा अन्यस्थितिरन्तमुहूर्तप्रमाणा ।

ज्ञानावरणीय - दर्शनावरणीय - वेदनीयाऽ - अन्तरायकर्मणास्तुष्टस्थिति
 त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोटयः, मोहनीयकर्मणा सप्ततिसागरोपमकोटीकोटयः
 स्थितिरुक्त्या । नाम-गोत्र-कर्मणोर्बिम्बितिसागरोपमकोटीकोटयः स्थितिरुक्त्या ।
 अप्युप्यकर्मणस्तुष्टिसागरोपमप्रमाणा स्थितिरुक्त्या । मध्यमा स्थितिस्तु
 सम्प्राप्तप्रकारा, कपायपरिष्णामतारतम्येन तस्या असंख्यातमेवात् ।

अथ मुहूर्त की है, ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु और अन्तराय कर्म की
 अप्युप्य स्थिति अन्तमुहूर्त की है ।

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, और अन्तराय कर्मों की उक्त स्थिति तीस
 कोटी-कोटी सागरोपम की मोहनीय कर्म की सत्तर कोटी-कोटी सागरोपम की, नाम और
 गोत्र कर्म की तीस कोटी-कोटी सागरोपम की है । अप्युप्य कर्म की तीस सागरोपम की
 है । मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकार की है, कपायरूप परिष्णमों की हीनता और अधिकता
 के कारण उसके असंख्य प्रकार होते हैं ।

स्थितिकथन कोष्टक टीका के अनुसार पृष्ठ ३३६ से समझ लेना चाहिए ।

अथ मुहूर्तनी छे । ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, आयु अने अन्तराय
 कर्मनी अप्युप्य स्थिति अन्तमुहूर्तनी छे ।

ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय, अने अन्तराय कर्मोंनी उक्त स्थिति तीस
 कोटी-कोटी सागरोपमनी मोहनीय कर्मोंनी सत्तर (७०) कोटी-कोटी सागरोपमनी
 नाम अने गोत्र कर्मोंनी तीस कोटी-कोटी सागरोपमनी, अप्युप्य कर्मोंनी तीस
 सागरोपमनी छे मध्यम स्थिति असंख्यात प्रकारनी छे । कपायरूप परिष्णमिनी
 हीनता अने अधिकताना कारणे तेना असंख्य प्रकार बाध छे ।

स्थितिकथन कोष्टक टीका अनुसार पृष्ठ ३३६ की समझ लेना चाहिए ।

स्थितिवन्ध-कोष्टकम् ।

कर्मणां नाम	उत्कृष्टा स्थितिः	जघन्या स्थितिः	उत्कृष्टः अवाधा- कालः	जघन्यः अवाधा- कालः	उत्कृष्टः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)	जघन्यः वाधाकालः (कर्मनिषेकः)
(१) ज्ञाना- वरणीय- कर्मणः	३० त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोट्यः	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्र- वर्षाणि	अन्तर्मुहूर्तः	३००० त्रिसहस्रवर्षो- न- त्रिंशत्साग- रोपमकोटी- कोट्यः	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(२) दर्शना- वरणीय- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(३) वेदनीय- कर्मणः	"	द्वादश १२ मुहूर्ताः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूना एकादश ११ मुहूर्ताः
(४) अन्तराय- कर्मणः	"	अन्तर्मुहूर्तः	"	"	"	अन्तर्मुहूर्त- न्यूनोऽन्त- र्मुहूर्तः
(५) मोहनीय- कर्मणः	७० सप्ततिसाग- रोपमकोटी- कोट्यः	"	७००० सप्तसहस्र- वर्षाणि	"	सप्तसहस्र- वर्षोऽसप्तति- सागरोपम- कोटीकोट्यः ।	"

कर्मणां नाम	उक्तुष्टा स्वितिः	अधन्या स्वितिः	उक्तुष्टा अधापा कालः	अधन्या अधापा कालः	उक्तुष्टः बाधाकालः (कर्मनिषेधः)	अधन्या बाधाकालः (कर्मनिषेधः)
(६) नाम कर्मणः	२० विंशति सागरोपम- कोटीकोट्यः	अष्टौ सूहर्षाः	२००० द्विसहस्र- पर्याणि	"	२००० द्विसहस्रपर्याण- विंशतिसाग- रोपमकोटी- कोटयः	अन्तर्मुहूर्त्त- न्यूनाः सप्त सूहर्षाः
(७) गोत्र- कर्मणः	"	"	"	"	"	"
(८) आयुष्य कर्मणः	पूर्वकोटि त्रि- मागाभिका नि ३३ अथ द्विसहस्रसाग- रोपमाणि ।	अन्त सूहर्षाः	पूर्वकोटि त्रिमागः	"	पूर्वकोटि त्रिमागोन्- अथद्विसह- सागरोपमाणि	अन्तर्मुहूर्त्त न्यूनोऽन्त सूहर्षाः

पूर्वकोटिप्रिमाग-३३ असाणि, ३३ सहस्राणि; ३ अतानि, ३३ पर्याणि,
२३ असाणि, ५२ सहस्रकोटिपर्याणि । अन्तर्मुहूर्त्तस्यासंख्यमेदाः सन्ति, तेनान्त
सूहूर्त्तरूपाया अधन्यस्वितेरन्तर्मुहूर्त्त एवाधापाकालः, तथाऽन्तर्मुहूर्त्तन्यूनोऽन्तर्मु-
हूर्त्तश्च बाधाकाल इति विशेषम् ।

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नत्तत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-
प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता
भवन्ति । यथा—दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न
यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी
अन्यरूप में पलटती नहीं है, जैसे—दर्शनमोहनीय, कर्मी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं है। कैध पञ्च मूलप्रकृतिनी कैध उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी कैध
भील उत्तर प्रकृतिना इपमा पञ्च परिष्कृत थर्ध शके छे, कार्थके कर्मपुद्गलमा अे प्रभाणे
परिष्कृतनी शक्ति विद्यमान छे त्या प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमा रहेले अनुभाव
अदली गयेली उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मन्द इल आपे छे.

जेम—मतिज्ञानावरणीय न्यारे श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना
रूपमा पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयना अनुभाव पञ्च श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव
प्रभाणे श्रुतज्ञाननु आवरण करे छे

उत्तरप्रकृतिओमा केटलीक अेवी पञ्च प्रकृतिओ छे के जे सजातीय होवा छताय
पञ्च अन्यइपमा पलटती नहीं है। जेवी रीते—दर्शनमोहनीय कैध वप्रत चारित्रमोहनीयना

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा मारकायुष्य तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा तदा युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिबन्धविवये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽप्यवसाय-
सामर्थ्यात् स्थविररसयोःपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिण-
मति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एवमुत्कृष्ठा स्थविरैर्बन्धनरूपेण
परिणमति, बध्न्या चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभाषानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मणः फलमनुभूयं भवति चेत्
तदा उत्कर्मप्रदेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽप्यमता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुष्पाः संस्पन्ना
भवन्ति ।

कवच्छा, और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पकड़ता । उसी प्रकार
नरकायु कमी तिर्यंयायु के रूप में नहीं पकड़ती और तिर्यंयायु किसी अन्य आयुके रूप
में नहीं कवच्छती ।

यह सब परिवर्तन जैसे प्रकृतिबन्ध के विषय में होता है उसी प्रकार
बन्धवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कमी तीव्र रस मन्द रस के
रूप में कवच्छ जाता है, और कमी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता
है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति बध्नरूप में और बध्न स्थिति उत्कृष्टरूप में
कवच्छ जाती है ।

अनुभाष के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग किया जाता है,
उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशा से हट जाते हैं—फिर वे आत्मा के साथ नहीं
जो रहते हैं ।

इपमां जडत्वात् नधी जने चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीयता इपमां जडत्वात् नधी,
जे प्रभावे नरकायु डोर्ध्वजत पक्षु तिर्यंय आयुना इपमां पकड़तुं नधी, जने तीव्रंयायु
पीका डोर्ध्व आयुना इपमां पकड़तुं नधी.

आ तमम परिवचन जेपी रीते प्रकृतिबधना विषयभा साथ छे ते प्रभावे
बन्धवसायनी शक्तिपी स्थिति जने रसभ पक्षु साथ छे—क्यारेक तीव्ररस भदरसना
इपमां जडत्वात् जाय छे, जने क्यारेक भदरस, तीव्ररसना इपमां परिवर्तित बध्न जाय
छे. जे प्रभावे उत्कृष्ट स्थिति बध्न इपमां जने बध्न स्थिति उत्कृष्ट इपमां
जडत्वात् जाय छे.

अनुभाषप्रभावे डोर्ध्व कर्मतु तीव्र अथवा भद इव भोगपी वेचय तो ते कर्मना
प्रदेश आत्मप्रदेशीकी छटी जाय छे—पछी ते आत्मानी साथे जायेला रहेला नधी.

(३) अनुभावबन्धः ।

कर्मपुद्गलानामेव शुभोऽशुभो वा घात्यघाती वा यो रसो विपाकः सोऽनुभावबन्धः । कर्मणां विशिष्टो विविधो वा पाको विपाकः । कर्मबन्धस्य फलं विपाकस्तस्योदयोऽनुभाव इति बोध्यम् । किञ्च—कर्मणा विविधफलदानशक्तिर्विपाकः सोऽनुभावः ।

बन्धकारणस्य कषायपरिणामस्य तीव्रमन्दभावानुसारेण प्रत्येककर्मणि तीव्रमन्दफलदानशक्तिः प्रादुर्भवति । इदं च फलोत्पादनसामर्थ्यम्—अनुभवः, तत्तत्फलानुभवनं चेति ।

(३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलों का शुभ या अशुभ अथवा घाती या अघाती रूप जो रस है वही अनुभाव कहलता है । गृहीत कर्मपुद्गलों में यह रस उत्पन्न हो जाना अनुभाव या अनुभाग बन्ध है । कर्मों का विशिष्ट या विविध प्रकार का पाक विपाक कहलता है । तात्पर्य यह है कि—कर्म का फल विपाक है, और उसका उदय अनुभाव कहा जाता है । अथवा कर्मों की भौति-भौतिकी फल देने की शक्ति को विपाक कहते हैं, और वही अनुभाव है, और तत्तत्फल का अनुभव भी अनुभाव है ।

बन्ध के कारण कषायरूप परिणाम की तीव्रता और मन्दता के अनुसार प्रत्येक कर्म में तीव्र या मन्द फल देने की शक्ति उत्पन्न हो जाती है, इस फल को उत्पन्न करने का सामर्थ्य अनुभाव है ।

(३) अनुभावबन्ध—

कर्मपुद्गलानामेव शुभ अथवा अशुभ, अथवा-घाती के अघातीरूप के रस के ते अनुभाव कडेवाय के गृहीत कर्मपुद्गलानामेव रसनु उत्पन्न थवु ते अनुभाव, अथवा अनुभाग बन्ध के कर्मोना विशिष्ट अथवा विविध प्रकारनो पाक ते विपाक कडेवाय के तात्पर्य के के के—कर्मनु इल ते विपाक के, अने तेनो उदय ते अनुभाव कडेवाय के अथवा कर्मोनी तरेड-तरेडनी इण देवानी शक्ति तेने विपाक कडे के अने तेन अनुभाव के अने ते ते इणनो अनुभाव पषु अनुभाव के *

अधना कारण कषायरूप परिणामनी तीव्रता अने मन्दताना प्रमाणे प्रत्येक कर्मोना तीव्र अथवा मन्द इल देवानी शक्ति उत्पन्न थथ नय के, ते इणने उत्पन्न करवानु सामर्थ्य ते अनुभाव के

* “अणुभागे, अणुभावे, विभागे, रसे-त्ति एगट्ठा” अनुभागोऽनुभावो, विपाको रस, इत्येकार्थका । अनुभाग, अनुभाव, विपाक अने रस अे अथा अेकार्थक के.

कर्मणः फलप्रदानशक्तिरूपोऽयमनुभावो यत्कर्मनिष्ठस्तत्कर्मस्वभावानुसारं फल प्रयच्छति, न त्वन्यकर्मस्वभावानुसारम् । यथा-ज्ञानावरणीयकर्मणोऽनुभाव-स्तत्कर्मस्वभावानुरूपं ज्ञानावरणमेव तीव्रं मन्द वा फलं समुत्पादयति, न तु दर्शनावरणीय-वेदनीयादि-कर्मप्रकृत्यनुसारं दर्शनावरणं सुखदुःखानुभवादिरूपं फलम् । एव दर्शनावरणीयकर्मणोऽनुभावस्तीक्ष्णमन्दादिरूपेण दर्शनावरणमेव फलं ददाति, न तु ज्ञानावरणादिकमन्यकर्मप्रकृत्यनुसारम् ।

अनुभावबन्धस्य चायं कर्मप्रकृत्यनुरूपेणैव फलदाननियमोऽपि ज्ञाना-

कर्म का फलदान-शक्तिरूप अनुभाव जिस कर्म में रहता है वह कर्म अपने स्वभाव के अनुसार ही फल देता है-इससे कर्म के स्वभाव के अनुसार नहीं । जैसे ज्ञानावरणीय कर्म का अनुभाव ज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार ही होता है अर्थात् वह तीव्र या मन्द रूप में ज्ञान का आच्छादन ही करता है । उस से दर्शनावरणीय या वेदनीय कर्म की प्रकृति के अनुसार दर्शन का आवरण अथवा सुख-दुःख का वेदन नहीं होता । इसी प्रकार दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव तीव्र या मन्द रूप में दर्शन का आवरण करना ही है, ज्ञान का आच्छादन करना या अन्य कर्मप्रकृति के अनुसार फल देना नहीं ।

अनुभावबन्ध का अपनी कर्मप्रकृति के अनुसार फल देने का यह नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियों में ही समूह होता है; उत्तरप्रकृतियों के स्थित

कर्मना इत्यज्ञानशक्तिरूप अनुभाव ने कर्मों में रहे थे, ते कर्मों पीछाना स्वभाव प्रमाद्येव इत्यत्रापि थे जीव्य कर्मना स्वभाव प्रमाद्ये नहि, जेवी रीते के-ज्ञानावरणीय कर्मना अनुभाव ज्ञानावरणीयना स्वभावना प्रमाद्येव ज्ञेयं छे अर्थात्-ते तीव्र अथवा मद्धर्मों ज्ञानरूप आच्छादन करे छे तेनाही दर्शनावरणीय अथवा वेदनीय कर्मनी प्रकृति अनुसार दर्शननु आवरण अथवा सुख-दुःखनु वेदन यत् नथी, जे प्रमाद्ये दर्शनावरणीय कर्मने अनुभाव तीव्र अथवा मद्धर्मों दर्शननु आवरण करेते छे परन्तु ज्ञानरूप आवरण करेते अथवा अन्य कर्मप्रकृति अनुसार ज्ञान आवरण ते नथी.

अनुभाव अथवा पीछानी कर्मप्रकृतिना अनुसार ज्ञान आवरणे का नियम ज्ञानावरणीय आदि आठ मूलप्रकृतियोंमें मात्र लागू था, परन्तु उत्तर प्रकृतियों में आठे

वरणीयाद्यष्टविधमूलप्रकृतिष्वेव प्रवर्तते, नतूत्तरप्रकृतिषु । कस्यापि मूल-
प्रकृतिरूपकर्मबन्धस्य काचिदुत्तरप्रकृतिस्तदीयेतरोत्तरप्रकृतिरूपेण विपरिणता
भवति, कर्मपुद्गलस्य तादृशपरिणमनसामर्थ्यात् । तत्र प्राक्तनोत्तरप्रकृतिगतानु-
भावः परिवर्तितोत्तरप्रकृतिस्वभावानुरूपं तीव्रं मन्दं वा फलं प्रदत्ते ।

यथा—मतिज्ञानावरणीयं यदा श्रुतज्ञानावरणीयादिसजातीयोत्तर-
प्रकृतिरूपं प्राप्नोति तदा मतिज्ञानावरणीयानुभावोऽपि श्रुतज्ञानावरणीयादिस्वभा-
वानुरूपमेव श्रुतज्ञानादीनामावरणं विधत्ते ।

उत्तरप्रकृतिषु कतिचित् सजातीया अपि प्रकृतयो नान्यरूपेण परिणता
भवन्ति । यथा-दर्शनमोहश्चारित्रमोहरूपेण न परिणमति; तथा चारित्रमोहोऽपि न
यह नियम नहीं है । किसी भी मूलप्रकृति की कोई उत्तरप्रकृति उसी मूलप्रकृति
की किसी दूसरी उत्तरप्रकृति के रूप में भी परिणत हो सकती है, क्यों कि कर्मपुद्गल
में इस प्रकार के परिणमन की शक्ति विद्यमान है । वहाँ पहले वाली उत्तरप्रकृति में
रहा हुआ अनुभाव बदली हुई उत्तरप्रकृति के स्वभाव के अनुसार तीव्र या मन्द फल
देता है ।

जैसे—मतिज्ञानावरणीय जब श्रुतज्ञानावरणीयसजातीय उत्तरप्रकृति के रूप में पलटता
है तब मतिज्ञानावरणीय का अनुभाव भी श्रुतज्ञानावरणीय के स्वभाव के अनुसार श्रुतज्ञान
का आवरण करता है ।

उत्तरप्रकृतियों में कुछ ऐसी भी प्रकृतियाँ हैं जो सजातीय होते हुए भी
अन्यरूप में पलटती नहीं हैं, जैसे—दर्शनमोहनीय, कमी चारित्रमोहनीय के रूप में नहीं

आ नियम नहीं है । कोई पक्ष मूलप्रकृतिनी कोई उत्तरप्रकृति ते मूलप्रकृतिनी कोई
भील उत्तर प्रकृतिना रूपमा पक्ष परिशुत थर्ध शके छे, कारणके कर्मपुद्गलमा अे प्रभाषे
परिशुमननी शक्ति विद्यमान छे त्या प्रथम वाणी उत्तरप्रकृतिमा रहेले अनुभाव
अदली गयेली उत्तर प्रकृतिना स्वभाव अनुसार तीव्र अथवा मन्द इल आपे छे

जेम—मतिज्ञानावरणीय न्यारे श्रुतज्ञानावरणीय—सजातीय उत्तर प्रकृतिना
रूपमा पलटाय छे, त्यारे मतिज्ञानावरणीयना अनुभाव पक्ष श्रुतज्ञानावरणीयना स्वभाव
प्रभाषे श्रुतज्ञाननु आवरण करे छे

उत्तरप्रकृतिओमा डेटलीठ ओवी पक्ष प्रकृतिओ छे डे जे सजातीय होवा छताय
पक्ष अन्यरूपमा पलटती नहीं है । जेवी रीते—दर्शनमोहनीय कोई वपत चारित्रमोहनीयना

दर्शनमोहरूपेण, एवं यथा नारकायुष्य तिर्यगायुष्यरूपेण न परिणमति तथा उदा
युष्यमपि न पुनरन्यायुष्यरूपेण ।

एतत्सर्वं प्रकृतिमन्वविषये परिवर्तनं यथा भवति तथाऽप्यवसाय-
सामर्थ्यात् स्थितिरसयोस्तपि परिवर्तनं भवति । तीव्रादिर्मन्दादिभावेन परिण-
मति, मन्दादिरपि तीव्रादिभावेन परिणमति । एवमुत्कृष्टा स्थितिर्ब्रह्मरूपेण
परिणमति, ब्रह्मन्वा चोत्कृष्टरूपेण ।

अनुभाषानुसारं तीव्रं मन्दं वा यस्य कर्मण्य फलमनुभूतं भवति चेत्
तदा तत्कर्मप्रवेशा आत्मप्रदेशेभ्योऽप्यमता भवन्ति, न पुनस्ते कर्मपुद्गलाः संसन्ना
भवन्ति ।

बदलता और चारित्रमोहनीय दर्शनमोहनीय के रूप में नहीं पकड़ता । उसी प्रकार
नरकायु कमी तिर्यचायु के रूप में नहीं पकड़ती और तिर्यचायु किसी अन्य आयुके रूप
में नहीं बदलती ।

यह सब परिवर्तन बैठे प्रकृतिकण के विषय में होता है उसी प्रकार
अप्यवसाय की शक्ति से स्थिति और रस में भी होता है । कमी तीव्र रस, मन्द रस के
रूप में बदल जाता है, और कमी मन्द रस, तीव्र रस के रूप में परिवर्तित हो जाता
है । इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति ब्रह्मरूप में और ब्रह्म स्थिति उत्कृष्टरूप में
बदल जाती है ।

अनुमान के अनुसार जिस कर्म का तीव्र या मन्द फल भोग लिया जाता है,
उस कर्म के प्रदेश आत्मप्रदेशों से हट जाते हैं—फिर वे अणुमा के साथ नहीं
जुड़े रहते हैं ।

रूपमां जडवाती नशी, अने चरित्रमोहनीय दर्शनमोहनीयता रूपमां जडवाती नशी
जे प्रभाष्ये नरकायु डोई वज्र पञ्च तिर्य्य आयुना रूपमां पकटातुं नशी, अने तीव्रायु
नीत्य डोई आयुना रूपमां पकटातुं नशी ।

आ तत्रात्र परिवर्तन केनी हीते प्रकृतिजनना विषयमा भाव से ते प्रभाष्ये
अप्यवसायनी शक्तिभी स्थिति अने रसमा पञ्च भाव से—क्यारेक तीव्ररस मन्दरसवा
रूपमां जडवाती नश्य से अने क्यारेक मन्दरस, तीव्ररसना रूपमां परिवर्तित कर्तव्य
से जे प्रभाष्ये उत्कृष्ट स्थिति ब्रह्मरूप रूपमां अने ब्रह्मरूप स्थिति उत्कृष्ट रूपमां
पकटाती भाव से ।

अनुमानप्रभाष्ये डोई कर्मनु तीव्र अथवा मन्द इस सोचनी लेकाय तो ते कर्मना
प्रदेश आत्मप्रदेशोंकी कटी नश्य से—कही ते अणुमांनी साथे लावेला रहेला नशी ।

इदमत्र तत्त्वम्—कर्मणां फल विविधं भवति । कर्मैव मूलप्रकृतिः । सर्वासां-
मूलप्रकृतीनां फलविविधत्वं तथाऽन्यथा चेति प्रकारद्वयेन भवति ।

येनाध्यवसायप्रकारेण यादृक्स्वभावं कर्म वदं, तत् तथा=तेनैव प्रकारेण
अन्यथा च=प्रकारान्तरेणापि विपच्यते=तस्य विपाको भवति । स च तीव्र-
मन्दाद्यवस्थाभेदेन शुभस्तथाऽशुभोऽपि । तत्र कदाचिच्छुभमप्यशुभरसतयाऽनु-
भूतये कर्म, अशुभं च शुभरसतयेति बोध्यम् ।

सकपायजीवेन मनोवागादिद्वारेण क्रियाविशेषस्य कर्ता भिन्नभिन्नस्वभा-
वानां कर्मपुद्गलानां स्वभावानुसारं तत्तत्परिमाणविभागेन सम्बन्धः प्रदेशवन्धः ।

तात्पर्यं यह है कि कर्मों का फल विविध प्रकार का होता है । कर्म ही मूल
प्रकृति है । समस्त मूलप्रकृतियों का फल उसी रूप में या अन्यथा रूप में दो प्रकार
से होता है ।

जिस प्रकार के अध्यवसाय से जिस स्वभाव वाला कर्म बँधा है वह उसी रूप में
या अन्यथा रूप में फल देता है । वह फल तीव्र या मन्द अवस्था—भेद से शुभ भी होता है
और अशुभ भी होता है । कभी शुभ भी अशुभ रस के रूप में और कभी अशुभ शुभ रस के
रूप में भोगा जाता है ।

(४) प्रदेशवन्ध—

मन वचन आदि के द्वारा क्रियाविशेष करने वाले कपाययुक्त जीव के साथ भिन्न-भिन्न
स्वभाव वाले कर्मपुद्गलों का स्वभाव के अनुसार अमुक—अमुक परिमाण विभाग के साथ
सम्बन्ध होना प्रदेशवन्ध है ।

तात्पर्यं એ છે કે — કર્મોના ફલ વિવિધ પ્રકારના હોય છે કર્મજન મૂલપ્રકૃતિ
છે તમામ મૂળપ્રકૃતિઓનું ફલ તે રૂપમા અથવા બીજાં રૂપમા, એમ બે પ્રકારથી હોય છે

બે પ્રકારના અધ્યવસાયથી બે સ્વભાવવાળા કર્મ બાધ્યા છે તે એજ રૂપમા
અથવા બીજા રૂપમા ફલ આપે છે તે ફલ તીવ્ર અથવા મદ અવસ્થા—ભેદથી શુભ
પણુ હોય છે, અને અશુભ પણુ હોય છે, કેઈ વખત શુભ પણુ અશુભ રસના રૂપમા
અને કેઈ વખત અશુભ તે શુભ રસના રૂપમા ભોગવવામા આવે છે

(૪) પ્રદેશબંધ—

મન, વચન આદિ દ્વારા ક્રિયા-વિશેષ કરવા વાળા કપાયયુક્ત જીવની સાથે ભિન્ન-
ભિન્ન સ્વભાવ વાળા કર્મપુદ્ગલોના સ્વભાવ અનુસાર અમુક—અમુક પરિમાણવિભાગની
સાથે સમ્બન્ધ થવો તે પ્રદેશબંધ છે

(१) ज्ञानावरणीयादिकर्मणां कारणीभूताः, (२) सर्वदिश्वबस्विताः,
 (३) तीक्ष्णमन्दादिभेदाद् मनोवाङ्मनायक्रियाविशेषसंयोगाद् कर्मवर्गभायोग्याः
 पुद्गलाः सर्वात्मप्रदेशेषु बद्धा भवन्ति । (४) औदारिक-वैक्रिया-ऽऽहारक-
 तैजस-माया-वासोऽङ्गीस-मनोवर्गणा-पेक्षयाऽपि सूक्ष्मपरिणतिरूप्या एव कर्मवर्गणा
 योग्याः बद्धाः भवन्ति, न तु बाधराः । (५) तथापि च एव पुद्गला बद्धा भवन्ति
 ये स्तु यथाकाले जीवोऽवगाहन्तत्रैव वर्तमानाः, न तु तद्वह्निःश्लेषवर्तिनः ।

(६) तथापि च अपि पुद्गलाःस्थिता एव बद्धा भवन्ति, न तु गतिपरिगताः,
 पचलितस्वभाक्त्वेन वन्द्यान्वित्वात् । (७) अस्तंभ्यात्प्रदेशिनो जीवस्यैकैकः

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों के कारणभूत (२) समस्त दिशाओं में स्थित,
 (३) तीक्ष्ण मन्द आदि के भेद से मन, वक्त्र और काय की क्रियाविशेष के संयोग से
 कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं । (४) औदारिक
 वैक्रिय आहारक, तैजस माया वासोऽङ्गीस और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म
 परिणतिरूप कर्मवर्गणा के योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, बाध नहीं बंधते । (५) उन में
 भी वही पुद्गल बंधते हैं जो एकत्रैवावगाह हा, अर्थात् जिन आकाशप्रदेशों में जीव है
 उन्हीं आकाशप्रदेशों में स्थित हो बाहर के क्षेत्र में अगवाहन करने वाले नहीं बंधते ।
 (६) एसे पुद्गल भी स्थित ही बंधते हैं पकले-फिरते हुए पुद्गल नहीं बंधते पकित
 स्वभाव बाध होने के कारण वे कल्प के योग्य नहीं हैं, (७) अस्तंभ्यात्प्रदेशी जीव का

(१) ज्ञानावरणीय आदि कर्मों का कारणभूत (२) समस्त दिशाओं में स्थित, (३)
 तीक्ष्ण, मन्द आदिना भेदशी मन, वक्त्र और काय की क्रिया-विशेषना संयोगशील कर्मवर्गणा
 योग्य पुद्गल समस्त आत्मप्रदेशों में बद्ध हो जाते हैं (४) औदारिक वैक्रिय, आहारक
 तैजस माया, वासोऽङ्गीस और मनोवर्गणा की अपेक्षा भी सूक्ष्म परिणतिरूप कर्म
 वर्गणा योग्य पुद्गल ही बंधते हैं, बाध नहीं बंधते, (५) जेमें पक्ष ते पुद्गल बंधते
 हैं ते जे जे क्षेत्रावगाह योग्य अर्थात्-जे आकाशप्रदेशों में एव ते जे आकाशप्रदेशों में
 स्थित होते, अर्थात् क्षेत्र में अवगाहन करवावणा जाता नहीं. (६) जेवा पुद्गल
 पक्ष जे स्थिर होता ते अवगाहते पक्ष आकृत्य हस्तां पुद्गलैव जाता नहीं कारण ते
 स्थित स्वभाववाग्य होवना कारण ते अवगाहने योग्य नहीं. (७) असंभ्यात् प्रदेशी एवने

प्रदेशोऽनन्तैर्ज्ञानावरणीयकर्मस्कन्धैर्वद्धः । एवमनन्तैर्दर्शनावरणीयादिकर्मस्कन्धैर्वद्धः ।
(८) तत्र ते स्कन्धा अपि प्रत्येकमनन्तानन्तप्रदेशिनः सन्ति । इति प्रदेशवन्धेऽष्ट
हेतवः ।

पुण्यपापकर्मनिरूपणम्—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधं पौद्गलिक कर्म प्रत्येकं द्विविधम्—पुण्यपापभेदात् ।
शुभकर्म—पुण्यम् । अशुभं कर्म—पापम् । ननु विनाऽपि पुण्यपापाभ्यां स्वभावत
एव जगद्वैचित्र्यं जायते किं पुनस्तत्कल्पनया ? उच्यते—शृणु—स्वभावादेव हि
त्रयो विकल्पाः समुत्पद्यन्ते यथा—(१) स्वभावः किं वस्तुरूपः ? (२) कारणाभावो

एक—एक प्रदेश अनन्त ज्ञानावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ बघता है, उसी प्रकार
अनन्तदर्शनावरणीय आदि कर्मस्कन्धों के साथ भी बघता है । (८) कर्म के वे स्कन्ध भी
अनन्तानन्तप्रदेशी होते हैं । प्रदेशवन्ध में ये आठ हेतु हैं ।

पुण्यकर्म और पापकर्म—

ज्ञानावरणीय आदि प्रत्येक पौद्गलिक कर्म दो—दो प्रकार का है, पुण्यरूप और
पापरूप । शुभ कर्म पुण्य और अशुभ पाप कहलाता है ।

शङ्का—पुण्य और पाप के विना ही स्वभाव से जगत् की विचित्रता हो सकती है, फिर
पुण्य पाप की कल्पना करने से क्या लाभ है ? ।

समाधान—स्वभाववाद में तीन विकल्प हो सकते हैं, जैसे स्वभाव कोई
वस्तु है ?, या कारण का अभाव ही स्वभाव कहलाता है ?, अथवा स्वभाव किसी

એક એક પ્રદેશ અનન્ત જ્ઞાનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે એ
પ્રમાણે દર્શનાવરણીય આદિ કર્મસ્કંધોની સાથે પણ બંધાય છે (૮) કર્મના તે સ્કંધ
પણ અનન્તાનન્તપ્રદેશી હોય છે પ્રદેશ બંધના આ આઠ હેતુ છે.

પુણ્યકર્મ અને પાપકર્મ—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ પ્રત્યેક પૌદ્ગલિક કર્મ બે—બે પ્રકારના છે—(૧) પુણ્યરૂપ અને
(૨) પાપરૂપ શુભ કર્મ—પુણ્ય અને અશુભ કર્મ પાપ કહેવાય છે

શંકા—પુણ્ય અને પાપ વિનાજ, સ્વભાવથી જગતની વિચિત્રતા હોઈ શકે છે,
તો પછી પુણ્ય પાપની કલ્પના કરવાથી શું લાભ છે ?

સમાધાન—સ્વભાવવાદમાં ત્રણ વિકલ્પ (તર્ક—વિતર્ક) થઈ શકે છે, જેમકે સ્વભાવ
શું કોઈ વસ્તુ છે ? અથવા કારણનો અભાવજ સ્વભાવ કહેવાય છે ? અથવા સ્વભાવ કોઈ

या स्वभावः ? अथवा (३) स्वभावः कोऽपि वस्तुवर्गः ? । इति विकल्पप्रयगत-
दोषाणां कथन पूर्व कृतमासीदतो धिरम्यते, तस्मात् पुण्यपापे कर्मणी पौत्रास्तिके
विद्येते, इत्यवश्यं स्वीकरणीयम् ।

पुण्यपापसङ्गावे युक्तीस्तास्तु मदर्थयामः—

पुण्यपापे द्वे अपि भिन्ने स्वतन्त्रे स्तः, तत्कार्यभूतयोः सुखदुःखयो-
पीगपधेनानुभवामावात्, अतोऽनेनैव भिन्नकार्यवर्धनेन तत्कारणभूतयोः
पुण्यपापयोर्भिन्नताऽनुमीयते । जीवकर्मणोः परिणामरूपे पुण्यपापे कारणतः
कार्यतयानुमीयेते ।

दानादिक्रियाणां हिंसादिक्रियाणां च कारणरूपत्वात् तत्कार्यरूपपुण्य

वस्तु का कर्म है । इन तीनों विकल्पों में जाने बाड़े दोषों का कथन पहले किया था चुका
है, अत एव यहाँ पुनरुक्ति नहीं की जाती । अत एव पुण्य और पाप को पौत्रस्तिक कर्म ही
स्वीकार करना चाहिए ।

पुण्य और पाप के सङ्गाव में युक्तियाँ दिसलाते हैं—

पुण्य और पाप दोनों भिन्न और स्वतन्त्र हैं, क्योंकि उनका फल सुख और दुःख
एक साथ नहीं भोगा जाता । कार्य की यह भिन्नता देखने से उनके कारणभूत पुण्य और
पाप की भिन्नता का अनुमान होता है । जीव और कर्म के परिणामरूप पुण्य और पाप का
अनुमान कारण से और कार्य से होता है ।

दानादि क्रियाएँ और हिंसा आदि क्रियाएँ कारण हैं, अत एव उनका कर्म

वस्तुने भवते ? आ त्रयेषु विकल्पेषु आश्रयवाप्या रोषेण कश्चन प्रथमं कश्चि वृक्षया
धीमे, अदृष्टा इत्युच्यते यदि पुनरुक्तिं कर्त्वा नञ्चि न्ने भाटे पुण्य कर्त्वा पापने
पौत्रस्तिके कर्मण स्वीकार कर्त्वे। नोऽप्ये

पुण्य कर्त्वा पापना सहसावभां युक्तिभ्यो जतावे । —

पुण्य कर्त्वा पाप कर्त्वा कर्त्वा कर्त्वा स्वतन्त्रे च इत्युच्यते तेन कृणुते पुण्य कर्त्वा
इत्युच्यते साधे ज्ञानवामां ज्ञापतुं नञ्चि। कर्त्वा नी ज्ञा भिन्नता नोवाची तेन इत्युच्यते
पुण्य कर्त्वा पापनी भिन्नतां अनुमानं भावते इत्युच्यते कर्त्वा परिणामरूपे पुण्य
कर्त्वा पापनु अनुमानं इत्युच्यते कर्त्वा भावते इत्युच्यते

दान आदि क्रियाओं कर्त्वा हिंसा आदि क्रियाओं इत्युच्यते ते भाटे तेन भाव

पापात्मको जीवकर्मपरिणामोऽस्ति । यथा—कृप्यादिक्रियाणां शालि—यव—मोधूमादिकं नियमेन फलं भवति । इदमनुमान कारणतो भवति ।

एवं कार्यतोऽपि कारणस्यानुमानं भवति । यथा—अस्ति शरीरादीनां कारणं, तेषां कार्यरूपत्वात् । यथा—घटस्य मृदण्डचक्रादिसामग्रीसहितः कुम्भकारः कारणम् ।

न च, दृष्ट एव मातापितादिकः शरीरादीनां कारणमस्तु, इति वाच्यम्, दृष्टकारणस्य समानत्वेऽपि सुरूपकुरूपादिभावेन शरीरादीना वैचित्र्यदर्शनात्तस्य

भी अवश्य होना चाहिए, और वही कार्य जीव और कर्म का परिणामरूप पुण्य और पाप है । जैसे कृषि आदि क्रियाओं का शालि, जौ, गेहूँ आदि फल नियम से होता है । यह कारण से अनुमान है ।

इसी प्रकार कार्य से भी कारण का अनुमान होता है, जैसे शरीर आदि का कारण अवश्य है, क्यों कि वह कार्य है, जैसे घटका कारण मिट्टी, दण्ड, चक्र आदि सामग्री से युक्त कुम्भकार होता है ।

शुद्धा—शरीर आदि का कारण प्रत्यक्ष से प्रतीत होने वाले माता—पिता आदि ही मानना चाहिए ।

समाधान—दिखाई देने वाले कारण की समानता होने पर भी शरीर में सुरूपता कुरूपता आदि की विचित्रता देखी जाती है, अतः उन्हें कारण नहीं माना जा सकता,

पणु अवश्य होवुं जेधये, अने ते कार्य एव अने कर्मना परिष्ठाभरूप पुण्य अने पाप छे जेवी रीते जेती आदि क्रियाज्येभा शालि—डागर, जव, धड आदि इद नियमथी थाय छे आ कारणथी अनुमान छे

आ प्रभावे कार्यथी पणु कारणनु अनुमान थाय छे जेभ शरीर आदिनु कारण जर छे, कारण के ते कार्य छे, जेवी रीते घटनु कारण माटी, दड, अक—आकणो, आदि सामग्रीथी युक्त कुम्भकार होय छे

शुद्धा—शरीर आदिनु कारण प्रत्यक्षथी जणुता माता—पिता आदि मानवा जेधये

समाधान—देखावावाणा कारणनी समानता होवा छताय पणु शरीरमा सुरूपता कुरूपता आदिनी विचित्रता जेवाभा आवे छे, तेथी तेभने कारण मानी शकशे नहि

तत्कारणत्वासिद्धे । तद्वैचित्र्यस्य चाष्टकर्मव्यवहृतं विनाऽभावात् । शुभ शरीरस्त्रीनां पुण्यकार्यत्वात्, अशुभशरीरास्त्रीनां पापकार्यत्वाच्च पुण्यपापभेदेन तस्य कर्मणो द्वैविध्यं सिद्धम् ।

पुण्यं पापं चेति द्वे कर्मणी भिन्ने स्वतन्त्ररूपे स्तः, इत्यभागमोऽपि प्रमाणम् । उक्तञ्च स्वानाङ्गसूत्र-“एणे पुण्ये । एणे पावे” इति । एवमेव समवायाङ्गोऽपि ।

सर्वपातिप्रकृतयः—

- (१) केवलज्ञानावणीयम् । (२) केवलसर्वज्ञानावणीयम् । (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा, (५) प्रबला, (६) प्रबलाप्रबला, (७) स्थानार्दिः, (८-११) अनन्तानुबन्धिकपायवस्तुष्यम्, (१२-१५) अपत्यास्पानकपायवस्तुष्यम्,

यद् विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्म के बिना नहीं हो सकती, शुभ शरीर आदि पुण्य का कार्य है और अशुभ शरीर आदि पाप का कार्य है । अतः पुण्य और पाप के भेद से कर्म दो प्रकार का सिद्ध होता है ।

पुण्यकर्म और पापकर्म दोनों स्वतन्त्र-भिन्न हैं, इस विषय में अगम भी प्रमाण है । स्वानाङ्ग सूत्र में कहा है- ‘पुण्य एक है पाप एक है’ । इसी प्रकार समवायाङ्ग सूत्र में भी कहा है ।

सर्वपाती प्रकृतियाँ—

- (१) केवलज्ञानावणीयम्, (२) केवलसर्वज्ञानावणीयम्, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा (५) प्रबला (६) प्रबलाप्रबला (७) स्थानार्दिः, (८-११) अनन्तानुबन्धी-कोष मान, माया छेद (१२-१५) अपत्यास्पानावरण-कोष मान, माया छेद (१६-१९) अपत्यास्पाना

व्य विचित्रता अदृष्ट कारण-कर्मना बिना नहीं होके नहि शुभ शरीर आदि पुण्यवस्तु कार्य है अने अशुभ शरीर आदि पापवस्तु कार्य है ते कारणही पुण्य अने पापवस्तु दोहरी कर्म के प्रकारों सिद्ध बाय है

पुण्यकर्म अने पापकर्म अने स्वतन्त्र-भिन्न है अा विषयमां अाजम पद्य प्रकृत्य है, स्वानाङ्ग सूत्रमा कहुं है- पुण्य जोक है, पाप जोक है” अे व प्रमाणे समवायाङ्ग-सूत्रमा पद्य कहुं है

सर्वपाती प्रकृतियाँ—

- (१) केवलज्ञानावणीय (२) केवलसर्वज्ञानावणीय, (३) निद्रा, (४) निद्रानिद्रा (५) प्रबला, (६) प्रबलाप्रबला, (७) स्थानार्दिः (८-११) अनन्तानुबन्धी-कोष, मान, माया, छेद, (१२-१५) अपत्यास्पानावरण-कोष, मान, माया, छेद, (१६-१९) अपत्यास्पानावरण

(१६-१९) प्रत्याख्यानकपायचतुष्टयम्, (२०) मिथ्यात्वं च, एता विंशतिः प्रकृतयः सर्वघातिन्यः ।

समस्तावरणक्षयादाविर्भूतं सकलद्रव्यपर्यायग्राहिं केवलज्ञानं, तदाच्छादनकृत् केवलज्ञानावरणीयम् । इदं हि केवलज्ञानोपघातेन सर्वमेव द्रव्यपर्यायज्ञानं प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते ।

ननु—सर्वजीवानां केवलज्ञानस्यानन्तभागोऽनादृत एवावतिष्ठते, तस्याप्यावरणे तु जीवस्याजीवत्वमापद्येत तर्हि कथं केवलज्ञानावरणीयस्य सर्वघातित्वसंभवः ? इति चेत्, उच्यते—

यथा घनीभूतघनपटलेन सूर्यचन्द्रमसोर्वहुतरप्रभासमावरणे सर्वाऽपि प्रभा

वरण, क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व । ये वीस प्रकृतियाँ सर्वघाती हैं ।

केवलज्ञान समस्त आवरणों के क्षय से प्रकट होने वाला तथा समस्त द्रव्यों और पर्यायों को ग्रहण करने वाला है । इसे आच्छादित करने वाला कर्म केवलज्ञानावरणीय कहलाता है । यह कर्म केवलज्ञान का घात करके समस्त द्रव्य पर्यायों के ज्ञान का घात करता है, अत एव यह सर्वघाती कहलाता है ।

शुद्धा—सब जीवों के केवलज्ञान का अनन्तवाँ भाग प्रकट रहता है, अगर उतना भी प्रकट न रहे तो जीव अजीव हो जायगा । ऐसी स्थिति में केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती कैसे हो सकता है ?

समाधान—जैसे अत्यन्त सघन मेघपटल के द्वारा सूर्य या चन्द्रमा की बहुत सी प्रभा छिप जाने के कारण लोक में कहा जाता है कि सूर्य—चन्द्र की सारी प्रभा छिप

—क्रोध, मान, माया, लोभ, (२०) मिथ्यात्व आ वीस प्रकृतियोंो सर्वघाती छे

केवलज्ञान समस्त आवरणोंना क्षयथी प्रकट थवावाणु, तथा समस्त द्रव्यो अने पर्यायोंने ग्रहणु करवा वाणु छे, तेने आच्छादित करवावाणु कर्म केवलज्ञानावरणीय कडेवाय छे अे कर्म केवल ज्ञानने घात करीने समस्त द्रव्य—पर्यायोंना ज्ञानने घात करे छे अेटला भाटे ते सर्वघाती कडेवाय छे

शुद्धा—सर्व एवोंने केवलज्ञानने अनन्तमे भाग प्रकट रहे छे पणु ने अेटला पणु प्रकट न रहे तो एव, अएव थर् नशे आवी स्थितिमा केवलज्ञानावरणीय सर्वघाती केवी रीते थर् शके छे ?

समाधान—केवी रीते अत्यन्त, सघन मेघपटल (घनघोर वादल) द्वारा सूर्य अथवा चन्द्रमानी धृषीपरी प्रभा—काति ठकाठ नवाथी लोकमा कडेवाय छे के सूर्य—चन्द्रनी

तयोसावृतेति श्लोकव्यवहारस्तु जीवस्य सर्वज्ञानावरण केवलज्ञानावरणीयमकृत्या क्रियते, इति व्यपदिश्यते ।

मतिज्ञानादिविषयान् अर्थान् न जानाति जीवस्तत्र मतिज्ञानावरणीयादि प्रकृत्युदय एव मतिज्ञानादिकमावृणोति, न तु केवलज्ञानावरणीयोदयस्तत्र कारणं मक्तीति बोध्यम् । एवं कवचवर्धनस्यानन्तमागोऽप्यनावृत एव, तथापि मेघवृष्टान्तानुसारेणावरणव्यवहारमादाय केवलदर्शनावरणीयस्य सर्वभातित्वमुपपद्यते । तथापि अलुर्दर्शनावरणीयादिप्रकृत्युदयादय जीववस्तुवर्धनादिविषयानर्थान् ज्ञातुं न शक्नोति, न तु केवलवर्धनावरणीयोदयस्तत्र कारणमिति बोध्यम् ।

गर्भ । इसी प्रकार 'केवलज्ञानावरण प्रकृति जीव के समस्त ज्ञानका आवरण करती है' ऐसा कहा जाता है ।

जीव मतिज्ञान के विषयमूल पदार्थों को नहीं जानता, इस में मतिज्ञानावरणीय प्रकृति का उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलवर्धन का अन्तर्भाव मात्र उपाध्य रहता है । वहाँ भी मेघ के उदय के अनुसार आवरण का व्यवहार समस्त कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वभाती प्रकृति समझना चाहिए । यहाँ भी अलुर्दर्शन आदि के विषयमूल पदार्थों को जीव अलुर्दर्शनावरणीय आदि के उदय से ही नहीं जानता । वहाँ केवलवर्धनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

तन्मात्र भाति-प्रकाश उभाधे जर्भ जे प्रभाद्ये देवदशानवरण प्रकृति एवना समस्त ज्ञानं आवरण उदे छ जेभ उदेवाध छ

एव मतिज्ञाना विषयमूल पदार्थों को नहीं जानता, तथा मतिज्ञानावरणीय प्रकृति-इसमें उदय ही कारण है, वही मतिज्ञान को रोकता है । इस में केवलज्ञानावरणीय का उदय कारण नहीं है । इसी प्रकार केवलवर्धन का अन्तर्भाव मात्र उपाध्य रहता है । वहाँ भी मेघ के उदय के अनुसार आवरण का व्यवहार समस्त कर केवलदर्शनावरणीय को सर्वभाती प्रकृति समझना चाहिए । यहाँ भी अलुर्दर्शन आदिना विषयमूल पदार्थों को जीव अलुर्दर्शनावरणीय आदिना उदय से ही नहीं जानता, तथा केवलवर्धनावरणीय कारण नहीं समझना चाहिए ।

ननु केवलज्ञानावरणीयस्य केवलदर्शनावरणीयस्य च क्षये सत्यपि मतिज्ञानादीनां चक्षुर्दर्शनादीनां च विषया ज्ञातुमशक्याः स्युः, तेषां केवलज्ञानावरणीय-केवलदर्शनावरणीय-प्रकृत्योर्विषयाभावात्, मतिज्ञानावरणीयादीनां च क्षयाभावात्ताभिर्मतिज्ञानादीनां समावृत्तत्वादिति चेत् ? उच्यते—

केवलज्ञानलाभे शेषावबोधलाभस्य तदन्तर्गतत्वात् । यथा—ग्रामलाभे क्षेत्रलाभो ग्रामलाभान्तर्भूत एव भवति ।

निद्रादिपञ्चक्रमपि सकलपदार्थावबोधं प्रतिहन्तीति सर्वघाति भवति । यदि पुनः स्वापदशायामपि किञ्चिद् ज्ञानमस्तीति संभाव्यते, तर्हि तत्रापि जलधरदृष्टान्तमाश्रित्य समाधेयम् ।

शङ्का—केवलज्ञानावरणीय और केवलदर्शनावरणीय का क्षय होने पर भी मतिज्ञान आदि और चक्षुर्दर्शन आदि के विषयभूत पदार्थों का जानना अशक्य होना चाहिए, क्यों कि वे केवलज्ञानावरणीय, और केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियों के विषय नहीं हैं, और मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियों का क्षय नहीं हुआ है, उन्हीं से मतिज्ञान आदि आवृत्त होते हैं ।

समाधान—केवलज्ञान की प्राप्ति होने पर शेष ज्ञानों की प्राप्ति उसी में अन्तर्गत हो जाती है । जैसे ग्राम मिलने पर खेत आप ही मिल जाता है ।

निद्रा आदि पाच प्रकृतियाँ भी सकल पदार्थों के ज्ञान का घात करती हैं, अत एव सर्वघाती हैं । अगर निद्रा—अवस्था में भी किञ्चित् ज्ञान की संभावना की जा सकती है तो वहाँ भी मेघ का दृष्टान्त लेकर समाधान करना चाहिए ।

शंका—केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीयने क्षय थवा छताय पषु मतिज्ञान आदि अने चक्षुर्दर्शन आदिना विषयभूत पदार्थोने जलधरो ते अशक्य होउ जेईये, डारणु के ते केवलज्ञानावरणीय अने केवलदर्शनावरणीय प्रकृतियोने विषय नथी अने मतिज्ञानावरणीय आदि प्रकृतियोने क्षय थये नथी, तेनाथी मतिज्ञान आदि आवृत्त थाय छे.

समाधान—केवल ज्ञाननी प्राप्ति थवाथी शेष ज्ञानोनी प्राप्ति तेभा अन्तर्गत थई जय छे जेवी रीते गाम भणवाथी जेतरे पोतेज भली जय छे

निद्रा आदि पाच प्रकृतियो पषु तभाम पदार्थोना ज्ञानोना घात करे छे, जे भाटे ते सर्वघाती छे अथवा निद्रा अवस्थाभा पषु किञ्चित् ज्ञाननी संभावना कराय छे. तो त्या पषु मेघनु दृष्टान्त लखने समाधान करी लेवुं जेईये

अनन्तानुबन्ध्यादयो द्वादश कृपायाः प्रत्येक यथाक्रमं सम्यक्त्वं दशविरति
 पारित्रं सर्वविरतिचारित्रं च सर्वमेव घ्नन्ति, तस्मादेते द्वादश कृपायाः सर्वपातिन
 इत्युच्यन्ते । तेषां प्रबलोदयेऽपि कुलाचारप्रभृतिकारणवशाद्दुष्टदाहारादिविरमण
 दर्शनात् सर्वपातित्वं न संभवतीति नाशङ्कनीयम्, नवीनपनघटादृष्टान्ता
 भयणेन तस्यापि समाधेयत्वात् । मिथ्यात्वं तु सम्यक्त्वं तत्त्वार्थभेदानरूप
 सर्वमपि प्रतिहन्ति, तस्मात् सर्वघातीत्युच्यते । यदि मिथ्यात्वस्य प्रबलोदयेऽपि
 मनुष्यपश्चाद्विषसुषिपयक सम्यक्त्वमस्ति, कथं तर्हि सर्वपातित्वं मिथ्यात्वस्यति
 संभाव्यते, उदाऽप्राप्युक्तजलद्राक्षसीदृष्टान्तः शरबीकरणीयः ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कृपाय क्रमशः सम्यक्त्व का देशविरति का और
 सर्वविरतिका पूर्णरूप से घात करते हैं, अतः ये बारह कृपाय भी सर्वपाती कहाते हैं । यह
 शङ्का नहीं करनी चाहिए कि-इन कृपाओं का प्रकृत उदय होने पर भी कुलाचार आदि
 कारणों से बलुद्ध आहार आदि का त्याग देना जाता है अत एव इन्हें सर्वपाती नहीं कहा
 जा सकता, क्यों कि नवीन मेघघटाका दृष्टान्त लेकर इस शङ्का का भी समाधान किया जा
 सकता है ।

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थभेदानरूप सम्यक्त्व का पूर्णरूप से घात करती
 ही है, अतः वह सर्वघाती है । यदि मिथ्यात्व का प्रकृत उदय होने पर भी मनुष्य
 पशु आदि वस्तुओं सम्वन्धी सम्यक्त्व रहता है तो मिथ्यात्व को सर्वपाती कैसे कहा
 जा सकता है ? इस शङ्का के समाधान के लिए भी उक्त मेघघटक के ही दृष्टान्त का आशय
 लेना चाहिए ।

अनन्तानुबन्धी आदि बारह कृपाय क्रमशः सम्भूतत्वने देशविरतिने अने सर्व
 विरतिने पूर्णरूपसे घात करे छे, तेथी के बारह कृपाय पशु सर्वघाती ठहरेवाच छे कोवी
 शङ्का नहिं करनी कोछको के-के कथायेना प्रथम उदय वजते पशु कुलाचार आदि
 कारणोंसे बलुद्ध आहार आदिने त्याग लेवामां आवे छे ते भये तेने सर्वघाती कही
 शक्यो नहिं; कारण के नवीन मेघ घटानु द्रष्टाव लछने आ शंकां समाधान करी शक्य छे

मिथ्यात्व प्रकृति तो तत्त्वार्थभेदानरूप सम्भूतत्वने पूर्णरूपसे घात करे छे
 तेथी ते सर्वघाती छे के मिथ्यात्वने प्रथम उदय होव ते वजते पशु-मनुष्य, पशु आदि
 वस्तुओंसे भी सम्यक्त्व रहे छे तो मिथ्यात्वने सर्वघाती केवी रीते कही शक्यो । के
 शङ्का समाधान भाटे पशु अजल ठहरे मेघघटानु द्रष्टावने आशय लेवो कोछको

देशघातिप्रकृतयः—

अथ देशघातिप्रकृतयः कथ्यन्ते— (१) मतिज्ञानावरणीयम्, (२) श्रुतज्ञानावरणीयम्, (३) अवधिज्ञानावरणीयम्, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीयम्, एतानि चत्वारि ज्ञानावरणीयानि ४ । (१) चक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीयम्, (३) अवधिदर्शनावरणीयम्, इति त्रीणि दर्शनावरणीयानि ७ । सज्वलनरूपाः क्रोधमानमायालोभाश्चत्वारः कषायाः ११ । हास्य-रत्य-रति-भय-शोक-जुगुप्सा-स्त्रीवेद-पुवेद-नपुसकवेदभेदतो नवसंख्यका नोकषायाः २० । तथा दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यभेदात् पञ्चविंशतिः २५ प्रकृतयो देशघातिन्यः सन्ति । मतिज्ञानावरणीयादिचतुष्टयी प्रकृतिः केवलज्ञानावरणीयादृत दैशिकं ज्ञान हन्ति, तस्माद्देशघातिनीयमुच्यते ।

देशघाती प्रकृतियों—

अब देशघाती प्रकृतियों का कथन किया जाता है—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, ये चार ज्ञानावरणीय ४ । तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, ये तीन दर्शनावरणीय ७ । तथा सज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय ११ । हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद के भेद से नौ नोकषाय २० । तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय, ये पांच अन्तराय २५ । सब मिलकर पच्चीस देशघाती प्रकृतियाँ हैं ।

मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत एक देश ज्ञानका घात करती हैं, अत एव उन्हें देशघाती प्रकृतियाँ कहते हैं,

देशघाती प्रकृतियों—

हुवे देशघाती प्रकृतियोंनु कथन-निष्पद्य-करवाभा आवे छे—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मनःपर्ययज्ञानावरणीय, आ चार ज्ञानावरणीय छे ४, तथा (१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, आ त्रय दर्शनावरणीय, ७, तथा सज्वलन-क्रोध, मान, माया, लोभ, ये चार कषाय, ११, हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद ना लेदथी नव नोकषाय, २०, तथा दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, अने वीर्यान्तराय आ पाच अन्तराय २५, अधी भणीने पच्चीस देशघाती प्रकृतियों छे । मतिज्ञानावरणीय आदि चार प्रकृतियों केवलज्ञानावरणीयद्वारा आवृत एक देश ज्ञानको घात करे छे, तेदका भाटे तेने देशघाती प्रकृति कहे छे ।

मतिज्ञानादिविषयाणामर्थानामवबोधो यत्र भवति, तत्र मतिज्ञानापरपीयादिबहुष्टयमकृत्युदयादेव । यत्र मतिज्ञानाधविषयाणामनन्तपदार्यानां ज्ञानं न भवति तत् केवलज्ञानापरणीयमकृत्युदयादेव ।

अधुर्वर्षनापरणीयादिमयी प्रकृतिः केवलद्वर्षनापरणीयानाहतं केवलद्वर्षनैकदेशं ज्ञानं इतीति दृष्टपातिष्य सिद्धम् । अमुरादिद्वर्षनविषयभूतानामर्थानां दर्शनं यत्र भवति, तत् अमुरादिद्वर्षनापरणीयमकृत्युदयादेव; यत्र द्विषयभूतामनन्तगुणान् न पश्यति, तत् केवलद्वर्षनापरणीयोदयादेव ।

तथा—संश्लेषनाभत्वारः कथायास्तथा नप नोकपायाय लभ्यस्य

मतिज्ञान आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो मतिज्ञानापरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से ही समझना चाहिए । और जो पदार्थ मतिज्ञान आदि के विषय नहीं हैं, उनके ज्ञानका अभाव केवलज्ञानापरणीय प्रकृति के उदय से होता है ।

अधुर्वर्षनापरणीय आदि तीन प्रकृतियों केवलद्वर्षनापरणीयशरणा अन्वहत केवलद्वर्षन के एकदेश ज्ञानका भाव करती हैं, अतः वे देशवादी हैं । अधुर्वर्षन आदि के विषयभूत पदार्थों का जो ज्ञान नहीं होता सो अधुर्वर्षनापरणीय आदि प्रकृतियों के उदय से समझना चाहिए और केवलद्वर्षन के विषयभूत अनन्त गुणों के ज्ञानका जो अभाव होता है सो केवलद्वर्षनापरणीय के उदय से ही समझना चाहिए ।

चार संश्लेषन कथय और नौ नोकपाय प्राप्त हुए चारित्र के एक देश का

मतिज्ञान आदिना विषयभूत पदार्थानां ज्ञानं नप नधी ते मतिज्ञानापरणीय आदि प्रकृतिभ्याम् उदयशील समस्तैषु ज्ञेयैः ज्ञाने ज्ञे पदार्थ मतिज्ञानादिना विषय नधी तेना ज्ञानेना अभाव देवतज्ञानापरणीय प्रकृतिना उदयशी ज्ञाने ।

अधुर्वर्षनापरणीय आदि त्रय प्रकृतिभ्यां देवतद्वर्षनापरणीय द्वारा अनावृत देवतद्वर्षनना ज्ञेयदेश ज्ञानेना घात करे छे ज्ञे अरघुशी ते देशवादी छे अधुर्वर्षन आदिना विषयभूत पदार्थानां ज्ञानं नप नधी ते अधुर्वर्षनापरणीय आदि प्रकृतिभ्याम् उदयशी समस्तैषु ज्ञेयैः ज्ञाने देवतद्वर्षनना विषयभूत अनन्त सुक्षेप्त ज्ञानेना ज्ञे अभाव ज्ञाय छे ते देवतद्वर्षनापरणीयना उदयशील समस्तैषु ज्ञेयैः ।

आर संश्लेषन कथय ज्ञाने नप नोकपाय प्राप्त कथेता आदिना ज्ञेय देशानां

शोभ्यताया अभावादशक्त्यानुष्ठानत्वादिति मन्तव्यम् ।

वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि सर्वं वीर्यं न इतीति देशघातिन्येव । तथाहि सूक्ष्मनिगोदजीवात् प्रभृति आक्षीणमोहनीयजीवं वीर्यान्तरायस्य क्षयोपशम-
विशेषाद् वीर्यं कस्यचिदस्यं, कस्यचिद् बहु, कस्यचिद् बहुतरं, कस्यचिद् बहुतरं
मवति, वीर्यान्तरायकर्मबोऽभ्युदये सूक्ष्मनिगोदस्यापि आहारपरिष्मनकर्मदक्षिण
प्रहृण्यगत्यन्तरगमनादिक विधते । एतच्च वीर्यं विना न संभवति । तस्मादेकत
एव वीर्यं वीर्यान्तरायप्रकृत्या ह्यप्यते, न तु सर्वतः । यदि पुनरियं सर्वघातिनी

प्रहृण्य और धारण करने की योग्यता न होने के कारण अक्षम्यानुष्ठान से समस्त न्याय्य ।

वीर्यान्तराय प्रकृति भी समस्त वीर्य का घात नहीं करती अतः देशघाती है ।
सूक्ष्म निगोदिका जीव से लेकर क्षीणमोह-गुणस्वान पर्यन्त के जीवों में वीर्यान्तराय के
क्षयोपशम से किसी जीव में अन्य वीर्य (शक्ति) होता है, किसी में बहुत वीर्य होता
है, किसी में बहुत अधिक वीर्य होता है और किसी में अल्पत अधिक वीर्य होता
है । वीर्यान्तराय कर्मका उदय होने पर भी सूक्ष्म निगोद का जीव आहार का परिष्मन
करता है, कर्मदक्षियों को प्रहृण्य करता है और दूसरी गति में घाता है । ये सब
कार्य वीर्य के बिना नहीं हो सकते । इस से यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय कर्म वीर्य
को एकदशा से ही घात करता है, सर्वदेश से नहीं । अगर यह प्रकृति स्वघाती मानी जाय
तो जैसे सर्वघाती सिप्याय के उदय में सम्यक्त्वन देशमात्र नहीं होता, और

धरतु कस्यापि योग्यता नहि होवाना कारणे अशक्त्यानुष्ठानयी समस्तु नैष्टजे ।

वीर्यान्तराय प्रकृति पञ्च समस्त वीर्यो घात करती नहीं, तेही ते देशघाती छे
सूक्ष्मनिगोदिका एवधी लघुनी क्षीणमोहगुणस्थान सुधीना एवेषां वीर्यान्तरायना क्षयोप
शमधी केऽह एवेषां अल्पवीर्यं (शुद्धी शक्ति) होय छे । केऽह एवेषां बहु वीर्यं होय छे,
केऽह एवेषां बहु अधिक वीर्यं होय छे, अने केऽहं अल्पत अधिक वीर्यं होय छे
वीर्यान्तराय कर्मने उदय होय त्परे पञ्च सूक्ष्म निगोदिका एव आहारनु परिष्मन करे
छे, कर्मदक्षिणने प्रहृण्य करे छे अने जीव अतिमां जाय छे आ तमम कर्म वीर्यं विना
यह शक्ये नहीं, तेही जे सिद्ध वस्तु के - वीर्यान्तराय कर्म वीर्यना अने देशमात्र घात
करे छे सर्वदेशना नही । अथवा तो अ प्रकृतिने सब घाती मानयमां आने तो जेही रीते
सर्वघाती निष्ठावना उदयमां सम्प्रहृण्य देशमात्र पञ्च होय नही, अने जेभ

ઉત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીયાદ્યષ્ટવિધકર્મણામુત્તરપ્રકૃતિસંખ્યા અષ્ટચત્વારિંશદધિકશતં ૧૪૮
ભવન્તિ । તથાહિ—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયસ્ય—મતિ—શ્રુતા—સ્વધિ—મનઃપર્યય—કેવલજ્ઞાનાવરણીય—
મેદાત્ પશ્ચ ।

(૨) દર્શનાવરણીયસ્ય—ચક્ષુર્દર્શના—અચક્ષુર્દર્શના—સ્વધિદર્શન—કેવલદર્શનાવર-
ણીયાનિ ચત્વારિ, તથા—નિન્દ્રા—નિદ્રાનિદ્રા—પ્રચલા—પ્રચલાપ્રચલા—સ્ત્યાનદ્વિમેદાત્
પશ્ચ મિલિત્વા નવ ભવન્તિ ।

(૩) વેદનીયસ્ય શાતાશ્ચાતમેદેન દ્વૌ મેદૌ સ્તઃ ।

ઉત્તરપ્રકૃતિયોંકી સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોં કી ઉત્તર પ્રકૃતિયોં કી સંખ્યાઈ (મધ્યમવિવક્ષા સે)
૧૪૮ હૈં । વે ઇસ પ્રકાર—

(૧) જ્ઞાનાવરણીય કી પાંચ—(૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય, (૩)
અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય ।

(૨) દર્શનાવરણીય કી નૌ—(૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રાનિદ્રા,
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનદ્વિ, યે પાંચ નિદ્રાઈ મિલકર કુલ નૌ
પ્રકૃતિયાં હૈં ।

(૩) વેદનીય કી દ્વૌ—સાતાવેદનીય ઓર અસાતાવેદનીય ।

ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા—

જ્ઞાનાવરણીય આદિ આઠ કર્મોંની ઉત્તરપ્રકૃતિઓની સંખ્યા (મધ્યમ વિવક્ષાથી)
એકસોને અડતાલીસ (૧૪૮) છે તે આ પ્રમાણે—

(૧) જ્ઞાનાવરણીયની પાંચ — (૧) મતિજ્ઞાનાવરણીય, (૨) શ્રુતજ્ઞાનાવરણીય,
(૩) અવધિજ્ઞાનાવરણીય, (૪) મન પર્યયજ્ઞાનાવરણીય, (૫) કેવલજ્ઞાનાવરણીય

(૨) દર્શનાવરણીયની નવ છે (૧) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય,
(૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રા
(૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનદ્વિ, આ પાંચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ
નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

(४) मोहनीयरथ-अष्टाविंशतिर्मेदा भवन्ति । तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-मेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति चारिप्रमोहनीयानि मिलित्वाऽष्टाविंशतिः । चारिप्रमोहनीयरथ पञ्चविंशतिर्मेदाः, यथा - कषायमोहनीय १ - नोकषायमोहनीय २ - मेदेन चारिप्रमोहनीय द्विविधम् । तत्र कषायमोहनीयरथ षोडश मेदा भवन्ति, यथा-अन्तानुबन्धी क्रोधो मानो, माया, शोमः ४, अनन्त-संसारो नारक तिर्यग्-मनुष्य-देव अन्म-जरा-मरण परम्परासप्तकः, तदनुबन्धादन-तानुबन्धिनः क्रोधमानमायाशोमा-अस्वारः कषायाः ४ । तत्र क्रोधः-कृत्याकृत्यविभेकोन्मूलकाऽज्ञानरूप आत्म परिणामः । मानो-गर्भः, माया-घाठपम्, शोमो-गृन्नुता । अन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अष्टाविंशति-सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय, ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पञ्चीस चारिप्रमोहनीय की कुल अष्टाविंशति प्रकृति हैं । चारिप्रमोहनीय की पञ्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारिप्रमोहनीय के दो भेद हैं-कषायचारिप्रमोहनीय, और नोकषायचारिप्रमोहनीय । कषायचारिप्रमोहनीय के सोलह भेद हैं, जैसे-अन्तानुबन्धी क्रोध मान माया, शोम । नो कषाय, नारक, तिर्यग, मनुष्य और देवगति में अन्म जरा-मरणरूप अन्त संसार का अनुबंध करे, वह अन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-जोध, मान, माया और शोम । कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को गड़ कर देने वाला अस्वाम्यरूप अज्ञान का परिणाम क्रोध कहलाता है । गर्भको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गृह्णिभाव (अलस) शोम कहलाता है । अन्तानुबन्धी कषायचतुष्क में क्रोध को पर्वत की राधि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टाविंशति (१) सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, अने मिथ्यात्वमोहनीय, आ त्रय दर्शनमोहनीयनी, तथा पञ्चीस चारिप्रमोहनीयनी, जे प्रभावे कुल अष्टाविंशति प्रकृतिजो छे । चारिप्रमोहनीयनी पञ्चीस प्रकृतिजो आ प्रभावे छे-चारिप्रमोहनीयनी जे सेह छे (१) कषायचारिप्रमोहनीय अने (२) नोकषायचारिप्रमोहनीय, कषायचारिप्रमोहनीयना शोम सेह छे जेभडे-अन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, दोल जे कषाय नारक तिर्यग, मनुष्य, अने देवगतिमां अन्म, जरा, मरणरूप अन्त संसारने अनुबंध करे ते अन्तानुबन्धी छे तेना चार सेह छे, क्रोध, मान, माया अने दोल, कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाश करवाण्य अज्ञानरूप अज्ञानने परिणाम ते क्रोध कहवाय छे गर्भने मान कह छे । मायाने अर्थ कपट छे । अलस ते दोल कहवाय छे अन्तानुबन्धी कषायचतुष्कमां क्रोधने पर्वतनी राधिनु (पर्वत कषायधी

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वासार-ऽऽतपो३-उद्योता४-अगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कर्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कर्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

आर कषायानो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशथी पषु होय नही, ते प्रमाणे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय तथा लेशमात्र पषु वीर्यगुण प्रकट थवो नही नोठये, परन्तु अे प्रमाणे थतु नथी, अे कारणथी सिद्ध थयु के-वीर्यान्तराय प्रकृति पषु देशघातीन छे

अघाती प्रकृतिभ्यो—

अघाती प्रकृतिभ्यो पचोत्तर (७५) छे ते आ प्रमाणे छे—(१) पराघात, (२) उर्ध्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिभ्यो अघाती छे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कर्मण शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिभ्यो छे, (१३) त्रषु उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच नतिभ्यो, (३३) चार गति, ३७ मे विद्यथे

नानि६ । पञ्च नातयः५ । चतस्रो गतयः४ । द्वे स्नाती२ । अतस्रः आनु
पूर्व्याः४ । आर्युपि चत्वारि४ । प्रसदशकम्१० । स्वावरदशकम्१० । उन्वैर्गोश्रम्१ ।
नीचैर्गोश्रम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ण-गन्ध-रस-स्पर्शाग्न्या
अतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतयः कमपि ज्ञानादिगुणं न इन्दीत्यघातिन्य उच्यते ।
इमा सर्वघातिप्रकृतिभिः सह घेषमाना स्वयमघातिन्योऽपि सर्वघातिकल
पदर्शयन्ति । देशघातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेषमानाः स्वयमघातिन्योऽपि देशघातिरसं
दर्शयन्ति । यथा—स्वयमघोरबीरैः सह वर्धमानधौर इषाभमासते उद्भूत् ।

छह सहनन२८ पांच अस्तिर्गो३३, चार गस्तिर्गो३७ दो विहायोगतिर्गो३९, चार
आनुपूर्वी३३, चार आर्यु३७, प्रसदशक५७ स्वावरदशक६७ उन्वगोत्र६८ नीचगोत्र६९
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१ तथा वर्ण रस, गन्ध, और स्पर्शानामक चार
प्रकृतिर्गो७५ ।

य प्रकृतिर्गो ज्ञान अग्नि किसी गुणका घात करती हैं । इसी क्रिये ये अघाती
अरुअती हैं । जब इनका सर्वघाती प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब य स्वयं अघाती
होते हुए भी सर्वघाती रसका प्रकट करती हैं, और देशघाती प्रकृतियों
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अघाती होने पर भी देशघाती रस को प्रकट करती हैं ।
ऐसे कोई पुरुष जोर न हो किन्तु पोरों के साथ हो तो वह भी पोर बैसा ही प्रतीत होता है ।
अबो हाक इन अघाती प्रकृतियों का है ।

अति, (३६) आर अनुपूर्वी, (४३) अर आनु, (४७) प्रसदशक, (५७) स्वावरदशक,
(६७) उन्वगोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)
यथा वर्ण रस, गन्ध, अग्ने स्पर्श नामनी आर प्रकृतिर्गो (७५)।

आ प्रकृतिर्गो ज्ञान अग्नि कोई शून्यता घात करती नबो. अतस्ता माटे तेने
अघाती प्रकृति कहे छे परन्तु सर्वघाती प्रकृतिर्गोनी साथे अघाते तेनु वेदन साथ छे
ते। पीते अघाती होना उन्वाय यक्ष को सनघातीनु इण प्रदर्शित करे छे अथवा
देशघाती प्रकृतिर्गोनी साथे तेनु वेदन होय तो पीते अघाती होना उन्वाय यक्ष
देशघाती रसने प्रकट करे छे. कोणी सीते कोई पुरुष और न होय परन्तु औरोनी साथे होय
ते। ते यक्ष और कोबो न होय छे. जे प्रभक्षेण आ अघाती प्रकृतिर्गो बिरे समर्थ

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कपायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुण नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उच्छ्वास२-ऽऽतपो३-उद्योत४-अगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिक, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कार्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे वारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर लेगमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं ८ । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कार्मण शरीर, ये पाच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

चार कषायोंको उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशी पक्ष छोड़ नहीं, ते प्रमाणे वीर्यान्तराय कर्मको उदय तथा देशमात्र पक्ष वीर्यगुण प्रकट थवो नहीं लेछे, परन्तु अे प्रमाणे थतु नहीं, अे कारण्थी सिद्ध थयु के-वीर्यान्तराय प्रकृति पक्ष देशघाती छे

अघाती प्रकृतिभ्यो—

अघाती प्रकृतिभ्यो पचोत्तर (७५) छे ते आ प्रमाणे छे—(१) पराघात, (२) उच्छ्वास, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिभ्यो अघाती छे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कार्मण शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिभ्यो छे, (१३) त्रय उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच वृत्तिभ्यो, (३३) चार गति, ३७ के विधायो

नानिष । पञ्च जातयः५ । षतस्रो गतयः४ । द्वे स्वगतीर । षतस्रः आनु
पूर्व्यः४ । आर्युपि षत्वारि४ । त्रसदशकम्१० । स्यादरदशकम्१० । उन्वैर्गोमम्१ ।
नीचैर्गोमम्१ । सातवेदनीयम्१ । असातवेदनीयम्१ । वर्ष-गन्ध-रस-स्पर्शास्या
षतस्रः प्रकृतयः४ । ७५ ॥

एताः प्रकृतय कमपि ज्ञानादिगुण्य न इतीत्यपाठिन्य उच्यते ।
इमा सर्वपातिप्रकृतिभिः सह वेद्यमाना स्वयमपाठिन्योऽपि सर्वपातिफलं
प्रदर्शयन्ति । देशपातिप्रकृतिभिः सह पुनर्वेद्यमाना स्वयमपाठिन्योऽपि देशपातिरसं
प्रदर्शयन्ति । यथा-स्वयमचौरबीरैः सह वर्धमानबीर इषापमासते तद्वत् ।

छह सहनन२८ पांथ बलियै३३, पार गसियै३७ दो विद्यायोगतियै३९ चार
आनुपूर्वी४३, चार आधु४७, त्रसदशक५७ स्यादरदशक६७ उन्वयोत्र६८ नीचगोत्र६९
सातावेदनीय७०, असातावेदनीय७१, तथा वर्ण, रस, गन्ध, और स्पष्टनामक पार
प्रकृतियै७५ ।

ये प्रकृतियां ज्ञान आदि किसी गुणका प्राप्त नहीं करती हैं । इसी लिये ये अपाठी
कहलती हैं । जब इनका सर्वपाठी प्रकृतियों के साथ वेदन होता है तब ये स्वयं अपाठी
होते हुए भी सर्वपाठी रसको प्रकट करती हैं, और देशपाठी प्रकृतियां
के साथ इनका वेदन हो तो स्वयं अपाठी होने पर भी देशपाठी रस को प्रकट करती हैं ।
कैसे कोई पुरुष चार न हो किन्तु पत्नी के साथ हो तो वह भी पोर कैसा ही प्रतीत होता है ।
यही हाल इन अपाठी प्रकृतियां का है ।

अति, (३६) चार आनुपूर्वी, (४३) चार आधु, (४७) त्रसदशक, (५७) स्यादरदशक,
(६७) उन्वयोत्र, (६८) नीचगोत्र, (६९) सातावेदनीय, (७०) असातावेदनीय, (७१)
तथा वर्ण, रस, गन्ध अने स्पष्ट नामनी चार प्रकृतियै (७५)

आ प्रकृतियों सप्त आदि केवल सुखने प्राप्त करती नबो. ज्येष्ठता भटे तेने
अपाठी प्रकृति कहे छे, परन्तु सर्वपाठी प्रकृतियोंनी साथे अपाठी तेनु वेदन साथ छे
तो पीते अपाठी होना ज्येष्ठता पक्ष ज्ये सर्वपाठीनुं इण प्रदर्शित करे छे अथवा
देशपाठी प्रकृतियोंनी साथे तेनु वेदन होय तो पीते अपाठी होना ज्येष्ठता पक्ष
देशपाठी रसने प्रकट करे छे. जेथी रीते केवल पुरुष चार न होय परन्तु पत्नीनी साथे होय
तो ते पक्ष चार जेवा न होय छे. ज्ये प्रकृतियै आ अपाठी प्रकृतियै बिदे समजनुं

स्यात् तदा सर्वघातिनो मिथ्यात्वस्य कषायद्वादशकस्य चाभ्युदये यथा जघन्यमपि सम्यक्त्वं देशसंयमः सर्वसंयमश्च नोपलभ्यते, तथा वीर्यान्तरायस्योदयेऽपि जघन्यमपि वीर्यगुणं नोपलभ्येत, न चैवं भवति, तस्मात् वीर्यान्तरायप्रकृतिरपि देशघातिनीति सिद्धम् ।

अघातिप्रकृतयः—

अघातिन्यः प्रकृतयः पञ्चसप्ततिः सन्ति । तथाहि—प्रत्येकं प्रकृतयः पराघातो१-उर्ध्वीसा२-ऽऽतपो३-उद्योता४-ऽगुरुलघु५-तीर्थकर६-निर्माणो७-पघात८-रूपा अष्टौ सन्ति । (१) औदारिकं, (२) वैक्रियम्, (३) आहारकं, (४) तैजसं, (५) कर्मणं चेति पञ्च शरीराणि ५। त्रीण्युपाङ्गानि३ । षट् संस्थानानि६ । षट् संहन-

जैसे बारह कषायों का उदय होने पर देशविरति और सर्वविरति, एक देश से भी नहीं होती उसी प्रकार वीर्यान्तराय कर्म का उदय होने पर देशमात्र भी वीर्यगुण प्रकट नहीं होने चाहिए, मगर ऐसा नहीं होता, अतः यह सिद्ध हुआ कि वीर्यान्तराय प्रकृति भी देशघाती ही है ।

अघाती प्रकृतियां—

अघाति प्रकृतियाँ पचहत्तर ७५ हैं, वे इस प्रकार—(१) पराघात, (२) उर्ध्वीस, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, ये आठ प्रत्येक प्रकृतियाँ अघाती हैं । औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, और कर्मण शरीर, ये पांच शरीर अघाती प्रकृतियाँ हैं १३ । तीन उपाङ्ग १६, छह संस्थान २२,

आर कषायानो उदय तथा समये देवविरति अने सर्वविरति अेकदेशथी पषु डोय नडी, ते प्रभाषे वीर्यान्तराय कर्मनो उदय तथा देशमात्र पषु वीर्यगुणु प्रगट थवो नडी अेधअे, परन्तु अे प्रभाषे थतु नथी, अे कारणथी सिद्ध थयु के-वीर्यान्तराय प्रकृति पषु देशघाती अे अे

अघाती प्रकृतिओ—

अघाती प्रकृतिओ पचोतेर (७५) अे ते आ प्रभाषे अे —(१) पराघात, (२) उर्ध्वीस, (३) आतप, (४) उद्योत, (५) अगुरुलघु, (६) तीर्थकर, (७) निर्माण, (८) उपघात, आ आठ प्रत्येक प्रकृतिओ अघाती अे (१) औदारिक, (२) वैक्रिय, (३) आहारक, (४) तैजस अने (५) कर्मणु शरीर, आ पाच शरीर अघाती प्रकृतिओ अे, (१३) त्रषु उपाङ्ग, (१६) छह संस्थान, (२२) छह संहनन, (२८) पाच अतिओ, (३३) आर गति, ३७ अे विडायो

(४) मोहनीयस्य-अष्टाविंशतिर्भेदा मवन्ति । तथाहि-सम्यक्त्वमोहनीय-
मिथ्यात्वमोहनीय-मिश्रमोहनीय-भेदेन त्रीणि दर्शनमोहनीयानि । पञ्चविंशति
चारित्रमोहनीयानि मित्रिस्ताज्ज्याविंशतिः । चारित्रमोहनीयस्य पञ्चविंशति
भेदाः, यथा - कपायमोहनीय १ - नोकपायमोहनीय २ - भेदेन चारित्रमोहनीय
द्विविधम् । तत्र कपायमोहनीयस्य षोडश भेदा मवन्ति, यथा-अनन्तानुबन्धी
क्रोधो मानो, माया, छेमः ४, अनन्तः=संसारो नारक तिर्यग्-मनुष्य-देव
अन्य-अरा-मरण परम्परासङ्गः, तदनुबन्धादन तानुबन्धिनः क्रोधमानमायाछेमा-
वत्पारः कपायाः ४ । तत्र क्रोध-कृत्याकृत्यविवेको मूलकाऽसमारूप आत्म-
परिणामः । मानो-गर्वाः, माया-घाटयम्, लोभो-घृणुता । अनन्तानुबन्धि-

(४) मोहनीय की अष्टाविंश-सम्यक्त्वमोहनीय मिश्रमोहनीय और मिथ्यात्वमोहनीय,
ये तीन दर्शनमोहनीय की, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीय की कुछ अष्टाविंश प्रकृतियाँ हैं ।
चारित्रमोहनीय की पञ्चीस प्रकृतियाँ इस प्रकार हैं-चारित्रमोहनीय के दो भेद हैं-कपायचारित्र
मोहनीय, और नोकपायचारित्रमोहनीय । कपायचारित्रमोहनीय के सोडह भेद हैं, जैसे-अनन्तानुबन्धी
क्रोध मान माया, छेम । जो कपाय, नारक, तिर्यक्, मनुष्य और देवगति में अनन्त-अरा-मरण
रूप अनन्त संसार का अनुबन्ध करे, वह अनन्तानुबन्धी है । उस के चार भेद हैं-क्रोध,
मान, माया और छेम । कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट कर देने वाला अज्ञमारूप आत्मा
का परिणाम क्रोध कहलाता है । गर्वको मान कहते हैं । माया का अर्थ कपट है । गृध्रिमात्र
(अल्प) छेम कहलाता है । अनन्तानुबन्धी कपायचतुष्टय में क्रोध को पर्वत की राशि

(४) मोहनीयकर्मनी अष्टाविंशतिः । (१) सम्यक्त्वमोहनीय, मिश्रमोहनीय, अने
मिथ्यात्वमोहनीय, आ त्रय दर्शनमोहनीयनी, तथा पञ्चीस चारित्रमोहनीयनी, जे
प्रभावे कुछ अष्टाविंशति प्रकृतियों छे । चारित्रमोहनीयनी पञ्चीस प्रकृतियों आ प्रभावे छे-
चारित्रमोहनीयना जे सेह छे (१) कपायचारित्रमोहनीय अने (२) नोकपायचारित्रमोहनीय,
कपायचारित्रमोहनीयना जे सेह छे जेभड़े-अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया दोह
जे कपाय नारक तिर्यक्, मनुष्य, अने देवगतिमां जन्म, अरा, मरणरूप अनन्त
संसारने अनुबन्ध करे ते अनन्तानुबन्धी छे तेना चार सेह छे क्रोध, मान, माया
अने दोह, कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नारा अरुधवाण्य अज्ञमारूप अज्ञानने
चरित्रात्मा ते क्रोध कहेवाय छे गर्वने मान कहे छे । भावाने अर्थ कपट छे अल्प ते
दोह कहेवाय छे अनन्तानुबन्धी कपायचतुष्टयमां क्रोधने पर्वतनी राशिनु (पर्वत कपायनी

उत्तरप्रकृतिसंख्या—

ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकशतं १४८ भवन्ति । तथाहि—

(१) ज्ञानावरणीयस्य—मति—श्रुता—ऽवधि—मनःपर्यय—केवलज्ञानावरणीय—भेदात् पञ्च ।

(२) दर्शनावरणीयस्य—चक्षुर्दर्शना—ऽचक्षुर्दर्शना—ऽवधिदर्शन—केवलदर्शनावरणीयानि चत्वारि, तथा—निन्द्रा—निद्रानिद्रा—प्रचला—प्रचलाप्रचला—स्त्यानर्द्धिभेदात् पञ्च मिलित्वा नव भवन्ति ।

(३) वेदनीयस्य शाताश्रातभेदेन द्वौ भेदौ स्तः ।

उत्तरप्रकृतियोंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मों की उत्तर प्रकृतियों की संख्याएँ (मध्यमविवक्षा से) १४८ हैं । वे इस प्रकार—

(१) ज्ञानावरणीय की पांच—(१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय ।

(२) दर्शनावरणीय की नौ—(१) चक्षुर्दर्शनावरणीय, (२) अचक्षुर्दर्शनावरणीय, (३) अवधिदर्शनावरणीय, (४) केवलदर्शनावरणीय, तथा (५) निद्रा, (६) निद्रानिद्रा, (७) प्रचला, (८) प्रचला-प्रचला, (९) स्त्यानर्द्धि, ये पांच निद्राएँ मिलकर कुल नौ प्रकृतियाँ हैं ।

(३) वेदनीय की दो—सातावेदनीय और असातावेदनीय ।

उत्तरप्रकृतिओंकी संख्या—

ज्ञानावरणीय आदि आठ कर्मोंकी उत्तरप्रकृतिओंकी संख्या (मध्यम विवक्षार्थी) अष्टसोने अस्तालीस (१४८) છે તે આ પ્રમાણે—

(१) ज्ञानावरणीयनी पांच — (१) मतिज्ञानावरणीय, (२) श्रुतज्ञानावरणीय, (३) अवधिज्ञानावरणीय, (४) मन पर्ययज्ञानावरणीय, (५) केवलज्ञानावरणीय

(२) दर्शनावरणीयनी नव છે (१) ચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૨) અચક્ષુર્દર્શનાવરણીય, (૩) અવધિદર્શનાવરણીય, (૪) કેવલદર્શનાવરણીય, તથા (૫) નિદ્રા, (૬) નિદ્રા-નિદ્રા (૭) પ્રચલા, (૮) પ્રચલા-પ્રચલા, (૯) સ્ત્યાનર્દ્ધિ, આ પાંચ નિદ્રાઓ મળીને કુલ નવ પ્રકૃતિઓ થાય છે.

(૩) વેદનીયની બે (૧) સાતાવેદનીય અને અસાતાવેદનીય.

प्रत्याख्यानावरणीयत्व = अप्रत्याख्यानावरणीयम् । यद्वा-अत्यापौ नञ्, अत्यं प्रत्याख्यानम् = अप्रत्याख्यानम्, तस्यावरणीयमिति । अत्यं = देशविरतिरूपं प्रत्याख्यानं समाह्वयति कृपायत्तुष्टयम्, तस्मात्प्रत्याख्यानावरणीयमित्युच्यते । य कृपायः स्वत्यं देशविरतिरूपमाह्वयति स सर्वविरतिरूपं प्रत्याख्यानमाह्वयति स्पेवेति नात्र चिप्रम् । यत्कर्मोदयादाविर्भूताः कृपायाः केवलं विरतिमात्रमाह्वयन्ति ते स्वप्रत्याख्यानावरणीयाः कृपायाः ।

एवं प्रत्याख्यानावरणीयकृपायाः क्रोधादयमत्कारः । अप्र प्रत्याख्यान-
 लक्षणेन सर्वविरतिपरिग्रहः । य पुनः कृपायाः सर्वविरतिमेव प्रतिबन्धन्ति, न
 'तु देशविरति ते प्रत्याख्यानावरणीया इति ।

कहना है । जबका 'नञ्' अल्प-अर्थ में है, जबकि अप्र प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहलाता है, उसका आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय है । यह कृपायत्तुष्टय अप्र अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यान को आहत करता है, इस कारण यह अप्रत्याख्यानावरणीय कहलाता है । जो कृपाय स्वयं देशविरति को भी नहीं होने देता वह सर्वविरति को न होने दे, इस में आश्चर्य ही क्या है ? । किन्तु कर्म के उद्यम से आनिर्भूत कृपाय केवल विरतिमात्र को रोकते हैं, वे अप्रत्याख्यानावरणीय कहलते हैं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय हैं । महा प्रत्याख्यान शब्द से सर्वविरति का ग्रहण किया गया है । जो कृपाय सिर्फ सर्वविरति का ही पात करते हैं, देशविरति का नहीं वे प्रत्याख्यानावरणीय कहलते हैं ।

अप्र प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यान कहेंवाय छ तेलु आवरणीय अप्रत्याख्यानावरणीय छ अ कृपायत्तुष्टय अत्र अर्थात् देशविरतिरूप प्रत्याख्यानने आवृत्त करे छ (संकी र्हे छ) जे कृपायदी जे अप्रत्याख्यानावरणीय कहेंवाय छ जे कृपाय स्वयं देश-
 विरतिने पक्ष बन्ना देता नहीं, ते सर्वविरतिने नहि बन्नाटे, जेभां आनिर्भूत छ ?
 जे कर्मना उद्यमदी आनिर्भूत (उत्पन्न बनेला) कृपाय केवल विरतिमात्रने रोके छ,
 ते अप्रत्याख्यानावरणीय कहेंवाय छ

आ प्रभावे क्रोध आदि चार प्रत्याख्यानावरणीय छ, किन्ति प्रत्याख्यान शब्दही सर्वविरतिनु अहंलु कर्तुं छ जे कृपाय, मात्र सर्वविरतिने पात करे छ, देशविरतिने नहीं, ते प्रत्याख्यानावरणीय कहेंवाय छ

કપાયચતુષ્ટયે ક્રોધસ્ય પર્વતરાજિઃ, માનસ્ય શૈલસ્તમ્ભઃ, માયાયાઃ-વંશમૂલ,
લોભસ્ય-કૃમિજરાગઃ, ઉદાહરણમ્ ।

एत्रमप्रत्याख्यानानावरणीयकपायाः क्रोधादयश्चत्वारः४ । तत्र प्रत्याख्यानं
द्विविधम् - देशविरति-सर्वविरति-भेदात् । प्रत्याख्यानमित्यत्र प्रतिशब्दः । प्रति-
पेधवाची, प्रतिपेधस्याख्यानं=प्रकाशनम्-प्रत्याख्यानम् । 'सर्वान् प्राणिनो
न हन्मि यावज्जीवम्' इत्यादि भावतः स्वाचार्यादि समीपे
प्रकाशनमित्यर्थः । प्रत्याख्यानस्यावरणीयम् प्रत्याख्यानानावरणीयम्, न
प्रत्याख्यानानावरणीयम् = अप्रत्याख्यानानावरणीयम् । अत्रोपमार्थो 'नञ्' - शब्दः ।

(પર્વત ફટને સે ઉત્પન્ન હુઈ દરાર,) કા, માન કો શૈલસ્તમ્ભકા, માયાકો વાંસકી જડકા
ઔર લોભકો કિરમિચી રગકા ઉદાહરણ દિયા ગયા હૈ ।

इसी प्रकार अप्रत्याख्यानानावरण के क्रोध आदि चार भेद हैं । प्रत्याख्यान दो
प्रकारका है—देशविरति और सर्वविरति । 'प्रत्याख्यान' शब्द में 'प्रति' उपसर्ग निषेध-
वाचक है, अर्थात् प्रतिषेध का प्रकाश करना प्रत्याख्यान है, अर्थात् "मैं जीवनपर्यन्त किसी भी
प्राणीकी हिंसा नहीं करूँगा" इत्यादि प्रकार से भावपूर्वक अपने आचार्य आदि के समक्ष प्रकाशित
करना प्रत्याख्यान है । प्रत्याख्यान का आवरणीय प्रत्याख्यानानावरणीय कहलाता है । जो
प्रत्याख्यानानावरणीय न हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय है । यहाँ 'नञ्' शब्द उपमा के अर्थ
में है, अर्थात् जो कषाय प्रत्याख्यानानावरणीय के समान हो वह अप्रत्याख्यानानावरणीय

ઉત્પન્ન થયેલી ક્રોધ-ચીર) માનને શૈલસ્તમ્ભ, માયાને વાસની જડકા અને લોભને
કિરમીચ રંગકા ઉદાહરણ આપ્યું છે

આ પ્રમાણે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણના ક્રોધ આદિ ચાર ભેદ છે પ્રત્યાખ્યાન બે
પ્રકારના છે—દેશવિરતિ અને સર્વવિરતિ 'પ્રત્યાખ્યાન' શબ્દમાં 'પ્રતિ' ઉપસર્ગ નિષેધ-
વાચક છે અર્થાત્ પ્રતિષેધનો પ્રકાશ કરવો તે પ્રત્યાખ્યાન છે અર્થાત્ "હું જીવન સુધી
કોઈ પણ પ્રાણીની હિંસા કરીશ નહીં" ઇત્યાદિ પ્રકારે ભાવપૂર્વક પોતાના આચાર્ય આદિના
સમક્ષ પ્રકાશિત કરવું તે પ્રત્યાખ્યાન છે પ્રત્યાખ્યાન નો આવરણીય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય
કહેવાય છે જે પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય ન હોય તે અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય છે અહિં 'નજ્' શબ્દ
ઉપમાના અર્થમાં છે અર્થાત્—જે કષાય પ્રત્યાખ્યાનાવરણીયની સમાન હોય તે
અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહેવાય છે અથવા 'નજ્' અદ્ય-થોડું—એવા અર્થમાં છે અર્થાત્

प्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टय क्रोधस्य-बालुकाराणि, मानस्य-
काष्ठस्तम्भः, मायाया-गच्छवृक्षलीषर्दमृत्रिका, उोमस्य-स्रञ्जनरागः ।

संभवजनकषायचतुष्टये क्रोधस्य-सस्त्रिराणि, मानस्य-सृष्टस्तम्भः,
मायाया-रथकारतसितकाष्ठसंभस्त्रिरथक्, उोमस्य-श्चिद्राराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्यं, रतिः, अरति, शोकः,
मयं, सुगुप्सा, पुरुषवेदः, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-तैर्यग्-मानुष-देवायुर्भेदात् । यस्यो
प्यात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बालू में
स्त्रीची हुई सफ़ीर है । मान का उदाहरण काठका लता है । माया का उदाहरण चक्रे हुए
कैर के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी सफ़ीर है और ओम का उदाहरण स्रञ्जन-राग है ।

संभवजन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बल में बनाई हुई
सफ़ीर है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण बर्दे हाथ छीले हुए
काठका छिन्ना है, और ओम का उदाहरण इच्छरी का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य रति, अरति, शोक, मय, सुगुप्सा, पुरुषवेद,
स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, त्रिभुवायु, मनुष्यायु और देवायु ।
जिस कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् जिस कर्म के उदय से
उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कषायकी चौकड़ीनु उदाहरण-क्रोधनु उदाहरण-रतीमां हरेली
लीटी से माननु उदाहरण-हास्येना धांलसे से भाषानु उदाहरण-बालुका जगदीशाना
भूतनी बांकी-वृक्षी लीटी से अने दोलनु उदाहरण-स्रञ्जन-राग से

संभवजन कषायकी चौकड़ीना उदाहरण-क्रोधनु उदाहरण-पाय्नीमां हरेली लीटी
से माननु उदाहरण तलजलाने धांलसे से भाषानु उदाहरण लच्छ द्वारा (सुत्वार
द्वारा) छेत्तेला लच्छानी छल से अने दोलनु उदाहरण-स्रञ्जन-राग से

नोकषायमोहनीयना नव भेद से-हास्य, रति अरति, शोक, मय, सुगुप्सा,
पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अने नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य-कर्मना चार भेद से-नरकायु, त्रिभुवायु, मनुष्यायु अने देवायु
से कर्मना प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी, अर्थात् जे कर्मना उदयमा ते-ते अतिशेय्य
प्रकृतिविशेषमा स्थित आत्मा नारकी आदिना रूपमा लवे से, अने जेना कषयी भरव

प्रत्याख्यानस्य देशविरतिसर्वविरतिरूपस्य परिणामद्वयस्योत्पत्तेर्विधा-
तकत्वात् प्रत्याख्यानावरणीया उच्यन्ते, न तु विद्यमानस्य प्रत्याख्यानस्य
विघातकतयेति तच्चम् ।

एवं संज्वलनकषायाः क्रोधादयश्चत्वारः ४ । समस्तसावधयोगविरतं
संयमरतर्माप यतिं दुःसहपरिपहसपाते सज्वलयन्ति=मालिन्यमापादयन्ति - इति
संज्वलनाः । (१६) ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचतुष्टये दृष्टान्ता उच्यन्ते-क्रोधस्य-
तडागभूमिराजिः, मानस्यास्थिरतम्भः, मायायाः मेपशृङ्गः, लोभस्य कर्दमरागः ।

देशविरति और सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की उत्पत्ति का घातक होने से इसे प्रत्या-
ख्यानावरणीय कहते हैं, पहले से विद्यमान प्रत्याख्यान का घातक होने से नहीं ।

इसी प्रकार क्रोध आदि चार सज्वलन कषाय हैं । सब प्रकार के सावध योग से
निवृत्त समय में लीन मुनि को दुःसह परीषह उपस्थित होने पर जलाने वाला अर्थात् मलिनता
उत्पन्न करने वाला कषाय सज्वलन कहलाता है ।

अप्रत्याख्यानावरणीयकषायचौकड़ी के दृष्टान्त बतलाते हैं-क्रोध का दृष्टान्त तडाग-
भूमिराजि है, अर्थात् तालाब की भूमि फटने से उत्पन्न होनेवाली दरार के समान यह क्रोध
होता है । मान का उदाहरण हड्डीका स्तम्भ है । मायाका उदाहरण मेढाका सींग है और
लोभ का दृष्टान्त गाड़ी का ओंगन (गाड़ी के पैये में दिये हुए तेल का कीटा) है ।

देशविरति અને સર્વવિરતિરૂપ પ્રત્યાખ્યાનની ઉત્પત્તિનું ઘાતક હોવાથી તેને
પ્રત્યાખ્યાનાવરણીય કહે છે, પહેલાથી વિદ્યમાન પ્રત્યાખ્યાનનું ઘાતક હોવાથી નહિ.

એ પ્રમાણે ક્રોધ આદિ ચાર સજ્વલન કષાય છે, સર્વ પ્રકારના સાવધ યોગથી
નિવૃત્ત, સંયમમાં લીન મુનિને દુઃસહ પરીષદ આવી પ્રાપ્ત થતા જલાવવાવાળા અર્થાત્
મલિનતા ઉત્પન્ન કરવાવાળા કષાય સજ્વલન કહેવાય છે

અપ્રત્યાખ્યાનાવરણીય-કષાય-ચોકડીનું દૃષ્ટાન્ત બતાવે છે-ક્રોધનું દૃષ્ટાન્ત તલાવની
ભૂમિરાજિ છે. અર્થાત્ તલાવની ભૂમિ ફાટવાથી ઉત્પન્ન થયેલી ફાટ-ચીરના સમાન
એ ક્રોધ હોય છે. માનનું ઉદાહરણ હાડકાનો સ્તંભ છે. માયાનું ઉદાહરણ મેદાના સીંગ
છે, અને લોભનું દૃષ્ટાન્ત ગાડીની મળી (ગાડીનાં પૈડાંમાં અપાયેલા તેલનું કીટું) છે

प्रत्याख्यानावरणीयकषायक्षतुष्टये क्रोधस्य-वाङ्मकाराणि, मानस्य-
कामस्तम्भाः, मायाया-गच्छद्बलीवर्दमूत्रिका, लोमस्य-स्वठजनरागः ।

संखलनकषायक्षतुष्टये क्रोधस्य-सखिलराजिः, मानस्य-तृणस्तम्भाः,
मायाया-रथकारसखितकाष्ठसंबलितत्वक्, लोमस्य-इन्द्रियाराग इति ।

नोकषायमोहनीयस्य नव भेदाः सन्ति-हास्य, रतिः, भरति, शोकः,
मयं, जुगुप्सा, पुरुषवेद, स्त्रीवेदः, नपुंसकवेद इति २५ ।

(५) आयुष्यकर्म चतुर्विधम्-नारक-सैर्यग्-मानुष-देवायुर्भेदात् । यस्यो
दयात् प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायीभूत आत्मा नारकादिभावेन जीवति, यस्य च

प्रत्याख्यानावरणीय कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण बाण में
सीधी हुई छद्म है । मान का उदाहरण काठका संभा है । माया का उदाहरण पत्थे हुए
कैक के मूत्र की टेढ़ी-मेढ़ी छद्म है और क्रोध का उदाहरण संबल-राग है ।

संखलन कषाय की चौकड़ी के उदाहरण-क्रोध का उदाहरण जल में पत्थर हुई
छद्म है । मानका उदाहरण तिनके का स्तम्भ है । माया का उदाहरण पथर द्वारा छिपे हुए
काठका छिम्ब्र है, और क्रोध का उदाहरण इन्द्रिय का रंग है ।

नोकषाय मोहनीय के नौ भेद हैं-हास्य, रति भरति, शोक, मय, जुगुप्सा, पुरुषवेद,
स्त्रीवेद और नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य कर्म के चार भेद हैं-नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु और देवायु ।
मिथ कर्म के उदय से प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी अर्थात् मिथ कर्म के उदय से
उस-उस गतियोग्य प्रकृतिविशेष में स्थित आत्मा नारक आदि के रूप में जीता है

प्रत्याख्यानावरणीय कषायकी चौकड़ीके उदाहरण-क्रोधके उदाहरण-पथरकी सीधी
लीटी है । मानके उदाहरण-काठके संभाके उदाहरण-मायाके उदाहरण-पत्थरके जलमें
पत्थरकी बांधी-बूझी लीटी है अने दोसके उदाहरण-जलमें-राग है

संखलन कषायकी चौकड़ीके उदाहरण-क्रोधके उदाहरण-पत्थरकी सीधी लीटी
है । मानके उदाहरण-तिनकेके संभाके उदाहरण-मायाके उदाहरण-पत्थरके द्वारा
(सुताए द्वारा) छिपेके काठके छिम्ब्रके उदाहरण-इन्द्रियके रंग है

नोकषायमोहनीयके नव भेद है-हास्य, रति भरति शोक, मय, जुगुप्सा,
पुरुषवेद, स्त्रीवेद, अने नपुंसकवेद २५ ।

(५) आयुष्य-कर्मके चार भेद है-नरकायु, तिर्यचायु, मनुष्यायु अने देवायु
के कर्मके प्रायोग्यप्रकृतिविशेषानुशायी, अर्थात् के कर्मके उदयके ते-ते गतियोग्य
प्रकृतिविशेषमें स्थित आत्मा नारकी आदिके रूपमें लीटे है, अने के-के कर्मके भरण

ક્ષયાન્મૃત ઉચ્યતે, તદાયુઃ । યદ્વા-આનીયન્તે શેષપ્રકૃતયઃ ઉપભોગાય જીવેન યસ્મિન્, તદાયુઃ । યથા-કાંસ્યાદિપાત્રે શાલ્યોદનવ્યવ્જનાદયો ભોક્ત્રા ભોક્તુ-માનીયન્તે, તદ્વત્ ।

(૬) નમયતિ=પ્રાપયતિ નારકાદિસંજ્ઞાં જીવમિતિ નામ । નામકર્મ-ળક્ષિનવતિર્ભેદાઃ ભવન્તિ ।

તત્ર મૂલભેદાઃ દ્વિચત્વારિંશત્ । તથાહિ—

(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અદ્જોપાદ્ધનામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સંઘાતનામ, (૮) સંસ્થાનનામ, (૯) સંહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શ-

ઔર જિસ કે ક્ષય સે મર જાતા હૈ, ઉસે આયુકર્મ કહતે હૈં । અથવા જિસ મેં જીવ ભોગને કે લિપ્ અન્ય પ્રકૃતિયોં કો લાતા હૈ વહ આયુ હૈ, જૈસે કાસે આદિ કે માજન મેં યાવલ, ઓદન, વ્યજન આદિ વસ્તુએં ભોગને વાલા પુરુષ લાતા હૈ, ઉસી પ્રકાર શેષ પ્રકૃતિયોં આયુ મેં ભોગી જાતી હૈં ।

(૬) નામ-કર્મ કે તેરાનવે (૧૩) ભેદ-જો કર્મ જીવ કો નારક આદિ સજ્ઞાઓં કા પાત્ર વનાતા હૈ, વહ નામકર્મ કહલાતા હૈ । ઉસકે તેરાનવે ભેદ હૈં । ઉન મેં મી મૂલ ભેદ વચાલીસ હૈં, વે હિસ પ્રકાર—(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અદ્જોપાદ્ધ-નામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સઘાતનામ, (૮) સસ્થાનનામ, (૯) સહનનામ (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ,

પામે છે, તેને આયુકર્મ કહે છે અથવા જેમા જીવ અન્ય પ્રકૃતિઓને ભોગવવા માટે લાવે છે તે આયુ છે જેમ કે કાસા આદિના વાસણુમા ચોખા, ભાત, વ્યજન (શાક) આદિ વસ્તુઓ ભોગવવાવાળા પુરુષ લાવે છે તે પ્રમાણે શેષ-પ્રકૃતિઓ આયુમા ભોગવાય છે.

(૬) નામકર્મના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે જે કર્મ જીવને નારકી આદિ સજ્ઞાઓતુ પાત્ર બનાવે છે, તે નામકર્મ કહેવાય છે, તેના ત્રાણુ (૯૩) ભેદ છે તેમા પશુ મૂલ ભેદ જે તાલીસ છે તે આ પ્રમાણે—(૧) ગતિનામ, (૨) જાતિનામ, (૩) શરીરનામ, (૪) અદ્જોપાદ્ધ-નામ, (૫) નિર્માણનામ, (૬) વન્ધનનામ, (૭) સઘાતનામ, (૮) સસ્થાનનામ, (૯) સહનનામ, (૧૦) વર્ણનામ, (૧૧) ગન્ધનામ, (૧૨) રસનામ, (૧૩) સ્પર્શનામ, (૧૪) આનુપૂર્વાનામ, (૧૫)

नाम, (१४) आनुपूर्वीनाम, (१५) अग्रस्तधुनाम, (१६) उपधातनाम,
 (१७) पराधातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम, (२०) उच्छ्रासनाम,
 (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारणशरीरनाम,
 (२४) प्रसनाम, (२५) स्वाबरनाम, (२६) सुमगनाम, (२७) दुर्मगनाम,
 (२८) सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम, (३०) धुमनाम, (३१) अधुमनाम, (३२)
 सूक्ष्मनाम, (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिर
 नाम, (३७) अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञोनाम,
 (४१) अयज्ञोनाम, (४२) तीर्थकुरनाम ।

पठे मूलमेशः पिण्डप्रकृतिनाम्नापि कथ्यन्ते । अत्र गस्यादिषु पूर्वेषु पिण्ड
 प्रकृतीनामुपरमकृतयः— पञ्चपष्टिः (६५) ।

(१५) अग्रस्तधुनाम, (१६) उपधातनाम, (१७) पराधातनाम, (१८) आतपनाम (१९)
 उद्योतनाम, (२०) उच्छ्रासनाम, (२१) विहायोगतिनाम (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३)
 साधारणशरीरनाम, (२४) प्रसनाम, (२५) स्वाबरनाम (२६) सुमगनाम (२७) दुर्मगनाम,
 (२८) सुस्वरनाम (२९) दुस्वरनाम, (३०) धुमनाम, (३१) अधुमनाम, (३२) सूक्ष्मनाम,
 (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७) अस्थिर-
 नाम, (३८) आदेयनाम (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञकर्मिनाम, (४१) अयज्ञ कर्मि
 नाम, और (४२) तीर्थकुरनाम—कर्म ।

इन ब्याजरीस प्रकृतियों में बिन प्रकृतियों के अन्तर्गत मेरु हैं, उन्हें पिण्ड
 प्रकृति कहते हैं । गति अथि चौखर पिण्डप्रकृतियाँ हैं और उनके पैसठ (६५) मेरु
 होते हैं ।

अनुसुप्तधुनाम, (१६) उपधातनाम, (१७) पराधातनाम, (१८) आतपनाम, (१९) उद्योतनाम,
 (२०) उच्छ्रासनाम, (२१) विहायोगतिनाम, (२२) प्रत्येकशरीरनाम, (२३) साधारण
 शरीरनाम, (२४) प्रसनाम, (२५) स्वाबरनाम, (२६) सुमगनाम, (२७) दुर्मगनाम, (२८)
 सुस्वरनाम, (२९) दुस्वरनाम (३०) धुमनाम, (३१) अधुमनाम, (३२) सूक्ष्मनाम,
 (३३) बादरनाम, (३४) पर्याप्तनाम, (३५) अपर्याप्तनाम, (३६) स्थिरनाम, (३७)
 अस्थिरनाम, (३८) आदेयनाम, (३९) अनादेयनाम, (४०) यज्ञकर्मिनाम, (४१)
 अयज्ञकर्मिनाम, (४२) तीर्थकुरनाम—कर्म

आ मेतादीस प्रकृतियोंमें ७ प्रकृतियोंका अन्तर्गत सेरु उ तेने पिण्डप्रकृति
 कहे छे अति आदि और पिण्डप्रकृतियों उ अने पांसठ (६५) तेन सेरु छे

[૧] ગતિનામ્નઃ પિષ્ઠપ્રકૃતેશ્ચત્વારો ભેદાઃ— નરકગતિનામ, તિર્યગ્ગતિનામ, મનુષ્યગતિનામ, દેવગતિનામ ચ ।

[૨] જાતિનામ્નો ભેદાઃ પञ्च—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ ।

[૩] શરીરનામ પञ્ચવિધમ્—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, કાર્મણશરીરનામ ।

[૪] અહ્નાન્યુપાહ્નિ ચ યસ્ય કર્મણ ઉદયાદ્યવન્તિ, તદ્દ્વોપાહ્નનામકર્મ । તત્ ત્રિવિધમ્—ઔદારિક—વૈક્રિયકા—સહારક—ભેદાત્ । તત્રાહ્નાન્યઘ્નૌ—ઉરઃ, શિરઃ,

[૧] ગતિનામકર્મ કે ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યગ્ગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ ઓર દેવગતિનામકર્મ ।

[૨] જાતિનામકર્મ કે પાચ ભેદ હૈ—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ ઓર પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ—કર્મ ।

[૩] શરીરનામકર્મ કે પાચ ભેદ હે—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ ઓર કાર્મણશરીરનામ—કર્મ ।

[૪] જિસ કર્મ કે ઉદય સે અહ્ન ઓર ઉપાહ્ન હોતે હૈ વહ અહ્નોપાહ્નશરીરનામકર્મ, કહલાતા હૈ । ડસકે તોન ભેદ હૈ ઔદારિક—અહ્નોપાહ્ન, વૈક્રિય—અહ્નોપાહ્ન ઓર આહારક અહ્નોપાહ્ન । ઇન મેં અહ્ન આઠ હોતે હૈ—છાતી, સિર, પીઠ, પેટ, ડો હાથ ઓર ડો પૈર । વન્દના કરને મેં પાચ અહ્ન પ્રશસ્ત માને જાતે હૈ—ડો પૈર, ડો હાથ, ઓર સિર । યહૌ

(૧) ગતિનામકર્મના ચાર ભેદ—નરકગતિનામકર્મ, તિર્યગ્ગતિનામકર્મ, મનુષ્યગતિનામકર્મ અને દેવગતિનામકર્મ.

(૨) જાતિનામકર્મના પાચ ભેદ છે—એકેન્દ્રિયજાતિનામ, દ્વીન્દ્રિયજાતિનામ, ત્રીન્દ્રિયજાતિનામ, ચતુરિન્દ્રિયજાતિનામ, અને પञ્ચેન્દ્રિયજાતિનામ—કર્મ.

(૩) શરીરનામકર્મના પાચ ભેદ છે—ઔદારિકશરીરનામ, વૈક્રિયશરીરનામ, આહારકશરીરનામ, તૈજસશરીરનામ, અને કાર્મણશરીરનામ—કર્મ.

જે કર્મના ઉદયથી અગ અને ઉપાગ થાય છે તે અગોપાગશરીરનામકર્મ કહેવાય છે તેના ત્રણ ભેદ છે ઔદારિકઅગોપાગ, વૈક્રિયઅગોપાગ અને આહારકઅગોપાગ તેમા અગ આઠ હોય છે—છાતી, શિર, પીઠ, પેટ જે હાથ અને જે પગ વંદના કરવામા પાચ અગ પ્રશસ્ત માન્યા છે. જે પગ જે હાથ અને શિર—માથુ. અહિં

पृष्ठम्, उदरं, कर्तौ, पादौ च । बन्दने तु पञ्चाङ्गान्येष प्रशस्तानि— द्रौ चरणौ, द्रौ कर्तौ, शिरसेति । एतत् चरणावित्यनेन भातुनी सूत्रेते । एतानि पञ्चाङ्गानि मृगाचारोप्य बन्दनं पञ्चाङ्गबन्दनम् । अष्टानामङ्गानामेकैकस्योपाङ्गमनेकप्रकारम्, एतत् शिरोऽङ्गस्योपाङ्गनामानि— यथा— मस्तिष्क— कपाल— कृकाटिका— शूल— ललाट— ताड— कपोल— हनु— प्लिङ्गु— वक्षनी— पृष्ठ— भ्रू— नयन— कर्ण— नासादीनि । एतत् मस्तिष्कं शिरोऽङ्गस्यारम्भकोऽवयवः ।

ननु मस्तिष्कं चातुर्विधेषो न त्वङ्गं नाप्युपाङ्गम् ? इति चेत्, उच्यते— कपालादिवत् शिरोऽङ्गस्यारम्भकत्वान्मस्तिष्कमप्युपाङ्गं शिरोऽङ्गगन्तव्यम् ।

स्वावरपञ्चके सूरभ्रमसुवीन्यङ्गानि न सन्ति ।

पैरो का अमिप्राय पुटया समकन्या पाद्विप । इन पाँचों अङ्गों को मूँढि पर टिका कर बन्दन करना पम्पाङ्गबन्दना है । इन आठों अङ्गों में से प्रत्येक अङ्ग के अनेक उपाङ्ग हैं । उन में से शिरःअङ्ग के उपाङ्ग इस प्रकार हैं— मस्तिष्क, कपाल, कृकाटिका, शूल, ललाट, ताड, कपोल, हनु, दाढ़ी, प्लिङ्गु (ठोड़ी) दाँत थोड़ा मौँड़, नेत्र कान, नाक, आदि । मस्तिष्क, शिररूप अङ्ग का आरम्भक अवयव है ।

मस्तिष्क एक प्रकार की धातु है, अङ्ग नहीं है और न उपाङ्ग ही है' इसका समाधान यह है कि— कपाल आदि के समान शिररूप अङ्गका आरम्भक होने के कारण मस्तिष्क शिर का उपाङ्ग ही है ।

पाँच रथावरों में ज़ाटी आदि अङ्ग नहीं होते ।

यजनेन अग्निप्रथम पुटयु समकतुं कोष्ठये । अथ पाँच अङ्गाने अग्निपर अङ्गदीने बन्दना करवी ते यथात्र बन्दना छे । अथ आठे अङ्गिमांशी प्रत्येके अङ्गना अनेक उपाङ्ग छे तेमांशी शिर-अङ्गना उपाङ्ग अथ प्रमाद्ये छे— मस्तिष्क कपाल, कृकाटिका (शीवाने उन्नत देस) शूल (कूर्चसमीपतु अस्थि) ललाट ताड, नाक, दाढ़ी, प्लिङ्गु (दंढपञ्ची पथ्येने छालर आठे) दाँत, थोड़ा, मौँड़, नेत्र, कान, नाक आदि । मस्तिष्क शिररूप अङ्गनु आरम्भक अवयव छे ।

मस्तिष्क अनेक प्रकारनी धातु छे, अज नहीं अने अथज पक्ष नहीं तेनु समाधान अने छे— कपाल आदि प्रमाद्ये शिररूप अङ्गनु आरम्भक होखाना कारणे मस्तिष्क शिरनु उपाङ्ग छे ।

पाँच रथावरोंमें ज़ाटी आदि अङ्ग नहीं ।

(५) शरीरनामकर्मोदयाद् गृहीतेषु गृहमाणेषु वा तद्योग्यपुद्गलेष्वात्म-
प्रदेशस्थितेषु शरीराकारेण परिणामितेष्वपि जतुकाष्टवत् परस्परमवियोगलक्षणं
बन्धननाम । यदीदं न स्यात् ततो बालुकापुरुषवद् विचटितानि शरीराणि स्युः ।
बन्धननाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

(६) काष्ठपिण्डमृत्पिण्डायःपिण्डवत् बद्धानामपि पुद्गलानां संघातविशेष-
जनकं संघातनाम । यदि संघातनामरूपः कर्मभेदो न स्यात्तर्हि पुरुषयोपिद्-
गवादिरूपनानाशरीरभेदो न स्यात् । संघातविशेषजनकाऽन्यकर्मविशेषाभावात् ।

[५] शरीरनामकर्म के उदय से ग्रहण किये हुए या ग्रहण किये जाते हुए आत्म-
प्रदेशों में स्थित और शरीर के आकार परिणत किये हुए शरीर के योग्य-पुद्गलों में लक्ष
और लकड़ी के समान परस्पर अवियोग होना बन्धननामकर्म है, अगर बन्धननामकर्म न
होता तो बाळ से बनाये हुए पुरुष के समान विस्तर जाता । औदारिक आदि के भेद से
बन्धन के भी पांच भेद हैं ।

[६] काष्ठपिंड, मृत्पिंड या लोह के पिंड के समान बद्ध पुद्गलों में भी एक
विशेष प्रकार का संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करने वाला कर्म संघातनामकर्म कहलाता
है, और संघातनामकर्म न होता तो पुरुष स्त्री गो आदिरूप भेद शरीर में न होता,
क्यों कि संघातविशेष उत्पन्न करने वाला अन्य कर्म ही नहीं है । कार्य, कारण जैसा

(५)-शरीरनामकर्मना-उदयथी-अदृश्य करेला-अथवा-अदृश्य-करवाभा-आवता
आत्मप्रदेशोभा स्थित अने शरीरना आकारे परिणत करेला शरीरना योग्य पुद्गलोभा
लाभ अने लाकडीना समान अवियोग होवुं ते अ धननामकर्म छे अथवा अ धननाम
कर्म न होत तो देतीथी अनावेला पुरुषनी-समान विचैराध जत. औदारिक आदिना
लेहथी अ धनना पक्ष पाय लेह छे

(६) काष्ठपिंड, मृत्पिंड, अथवा लोहाना पिंड समान बद्ध पुद्गलोभा पक्ष
अथ विशेष प्रकारना संघात (घनिष्ठता) उत्पन्न करवावाणा कर्म ते संघात-
नामकर्म कहेवाय छे अथवा संघातनामकर्म न होय तो पुरुष, स्त्री, गाय आदि
पुरुषलेह शरीरभा होय नहि कारणके संघात-विशेष उत्पन्न करवावाणा अन्य कर्म नथी

कारणानुसृतं हि कार्यं दृष्टम् । संघातविशेषादेव हि विभागेन पुरुषादिशरीरस्यपवेष्टी भवति । संघातनाम पञ्चधा-औदारिकादिभेदात् ।

[७] षष्ठ्यमात्रेषु शरीरयोग्यपुद्गलेषु यस्य कर्मण उदयात् आकाश-विशेषो भवति तत् संस्थाननाम । एतच्च पञ्चविधम्-(१) समचतुरस्रनाम-(२) न्यग्रोषपरिमण्डलनाम-(३) सादिनाम-(४) कुम्भनाम-(५) वामननाम-(६) हुण्डनाममेवात् ।

[८] सहननाम-अस्मां बन्धविशेषः । एष पञ्चविधम्-(१) ब्रह्मर्षम नाराचनाम, (२) अर्षब्रह्मर्षमनाराचनाम, (३) नाराचनाम, (४) अर्षनाराचनाम, (५) कीलिकानाम, (६) सेवार्थनाम च ।

ही होता है । संघात की भिन्नता के कारण ही शरीरों में भी, पुरुष आदिका भेद-सम्यक्कार होता है । औदारिक आदि के भेद से संघात भी पांच प्रकार का है ।

[७] षष्ठी वाले हुए शरीरयोग्य पुद्गल में किस कर्म के उदय से आकाश-विशेष बनता है उसे संस्थाननामकर्म कहते हैं । संस्थान छह प्रकारका है—

(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोषपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुम्भक-संस्थान (५) वामन-संस्थान, (६) हुण्डक-संस्थान ।

[८] अस्मिन्को के बन्धविशेष को सहननामकर्म कहते हैं । उसके छह भेद हैं—
(१) ब्रह्मर्षमनाराच-संहनन (२) अर्षब्रह्मर्षमनाराच-सहनन (३) नाराच-संहनन (४) अर्षनाराच-संहनन, (५) कीलिका-सहनन और (६) सेवार्थ-संहनन ।

अर्थ आस्य केवांश्च कोषे से संघातनी किन्तुत्या आस्येण शरीराभां भी, पुरुष आदिना लोह-अपहार कोषे से औदारिक आदिना लोहभी संघात पञ्च पांच प्रकारका से

(७) लोधाता शरीरयोग्य पुद्गलैर्मां के कर्मना उदयमी आकृतिविशेष होने से तेने संस्थाननामकर्म कहे से संस्थान छ प्रकारका से—(१) समचतुरस्र-संस्थान, (२) न्यग्रोषपरिमण्डल-संस्थान, (३) सादि-संस्थान, (४) कुम्भक-संस्थान, (५) वामन-संस्थान (६) हुण्डक-संस्थान

(८) अस्मिन्कोना लब्धविशेषने सहननामकर्म कहे से तेना छ लोह से—
(१) ब्रह्मर्षमनाराचसंहनन, (२) अर्षब्रह्मर्षमनाराचसंहनन, (३) नाराचसंहनन, (४) अर्षनाराचसंहनन, (५) कीलिकासंहनन जने (६) सेवार्थसंहनन

(૯) ઔદારિકાદિષુ શરીરેષુ યસ્ય કર્મણ ઉદયાત્ કર્કશાદિઃ સ્પર્શ-વિશેષો જાયતે, તત્ સ્પર્શનામ । સ્પર્શનામાપ્ટયા-કર્કશ-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-સ્નિગ્ધ-રુક્ષ-શીતો-ષ્ણનામભેદાત્ ।

(૧૦) રસનામ પશ્ચવિધમ્-તિક્ત-કટુ-કપાયા-ઞ્મ્લ-મધુરભેદાત્ । લવણો મધુરાન્તર્ગત इति કેचित્ ।

(૧૧) શરીરવિપય સૌરમં દુર્ગન્ધિત્વં ચ યસ્ય કર્મણો વિપાકાન્નિર્વર્તતે, તદ્ ગન્ધનામ । ગન્ધનામ દ્વિવિધમ્-સુગન્ધ-દુર્ગન્ધભેદાત્ ।

(૧૨) યસ્યોદયાચ્છરીરેષુ કૃષ્ણાદિપશ્ચવિધવર્ણનિષ્પત્તિર્ભવતિ તદ્ વર્ણનામ, તત્ પશ્ચવિધમ્-કૃષ્ણ-નીલ-લોહિત-પીત-શુક્લભેદાત્ । સર્વાણિ ચૈતાનિ સ્પર્શના-માદીનિ વર્ણનામાન્તાનિ શરીરવર્તિષુ પુદ્ગલેષુ પરિણતાનિ ભવન્તિ ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોં મેં જિસ કર્મ કે ઉદય સે કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન હોતા હૈ ઉસે સ્પર્શનામકર્મ કહતે હૈં । સ્પર્શનામકર્મ આઠ પ્રકાર કા હૈ-કઠોર, કોમલ, મારી, હલકા, ચિકના, રુસ્તા, શીત, ઔર ઉષ્ણ ।

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-તીલા, કડુવા, કસૈલા, સ્વદા ઔર મીઠા । કિસી કે મત સે લવણ મધુર રસ કે અન્તર્ગત હૈ ।

(૧૧) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીર મેં સુગન્ધ યા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન હોતી હૈ ઉસે ગન્ધનામકર્મ કહતે હૈં । ઉસકે દો મેદ હૈં-સુગન્ધનામ ઔર દુર્ગન્ધનામ ।

(૧૨) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીરોં મેં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોં કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, વહ વર્ણનામકર્મ હૈ । ઇસ કે પાંચ મેદ હૈં-કૃષ્ણ, નીલ, રક્ત, પીત ઔર શુક્લ, સ્પર્શ સે લેકર વર્ણ તક યે સબ, શરીરવર્તી પુદ્ગલોં મેં હી પરિણત હોતે હૈં ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, મારી, હલકો, ચિકણો રૂખો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકારે છે-તીજો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગંધ અથવા દુર્ગંધ ઉત્પન્ન થાય છે તેને ગંધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે-સુગંધનામ અને દુર્ગંધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાંચ ભેદ છે-કાળો, નીલો, રાતો, પીજો અને ઘોળો સ્પર્શથી લઈને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તી પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ पर्वमानस्य तदभिमुखमानुष्याणां [वच्छेदकमेव] तद्यत्प्रापणसमर्षमानुपूर्वीनाम् । गत्यन्तरं गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदयात् विद्येतेन तद्वदमानुशुभ्यं स्यात्, तदपि—आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा—वारिवेगो बलीवर्द्धिः, यथा वा नस्योतस्य बलीवर्द्धस्य नासारज्ज्यां प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकत्वमोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिश्च यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति ताम्-
त्काष्ठीकी गतिः । सा त्रिविधा—ऋज्वी, धका च । तत्र यदा श्रुज्या समय

(१३) नरक आदि गति में जाने वाला जीव—जो कि अन्तर्गति (विप्रगति) में पर्वमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभिमुख करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुचाने में जो कर्म समर्ष होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि—
गत्यन्तर में अर्थात् हुए जीव को जिस कर्म के उदय होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस लिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे अक्षय प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच देता है । जबवा जैसे गाड़ीवान बैलको नाच पकड़ कर अपनी ओर मोड़ देता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म—जीवने जिस गतिकी कर्म बाधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस लिये वह गति में पहुँचाने के लिये सरावक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् जीवकी गतिकी अन्तर्गति—विप्रगति—कहते हैं । वह दो प्रकार की है—सरक और चक । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरक (सीधी)

(१३) नरक आदि अतिमां व्याख्या एव नो हे—अन्तर्गति (विप्रगति)मां पर्वमान से तेने ते नरक आदि अतिमां नी तद्वदभिमुख करीने आनुपूर्वीकी अर्थात् ते ते स्थानका क्रमशी ते ते अतिमांमां पड़ोवाकवानां ने कर्म समर्ष होय छे ते कर्मने आनुपूर्वी कर्म कहे छे जे हे आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने क्रम, जेवा छे ते पञ्च अत्यन्तरमां जते एवने ने कर्मने उदय बवाणी ते अतिमां ते ते स्थानका क्रमशी जतु होय छे आटला भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे जेम पाणीने प्रवाह जगरीवाने पीतानी तद्वद जेभी दे छे, जबवा जेम गाड़ीवाने जगरीवाने तेनी नाच पकड़ीने पीतानी आलु भाडी दे छे तेज प्रमाणे आनुपूर्वीकर्म—एव नो अतिमां कर्म लाधु छे ते अतिमां तेने पड़ोवाकी दे छे भाटे ते अतिमां पड़ोवाकवाने भाटे सहायक छे

ज्यां सुधी मनुष्य पीतानी मनुष्यगतिने भूरीने नरक आदि जीव अतिमां नधी पड़ोवाके त्वां सुधीनी अर्थात् पक्षी अतिने अन्तर्गति—विप्रगति कहे छे, ते जे प्रकारनी होय छे—सरक जने चक, एव जेवा जेकसमयप्रमाणवाली सरक (सीधी) अतिमां

(९) औदारिकादिषु शरीरेषु यस्य कर्मण उदयात् कर्कशादिः स्पर्श-
विशेषो जायते, तत् स्पर्शनाम । स्पर्शनामाष्टधा-कर्कश-मृदु-गुरु-लघु-स्निग्ध-
रूक्ष-शीतो-ष्णानामभेदात् ।

(१०) रसनाम पञ्चविधम्-तिक्त-कटु-कपाया-ज्वल-मधुरभेदात् । लवणो
मधुरान्तर्गत इति केचित् ।

(११) शरीरविषयं सौरभं दुर्गन्धित्वं च यस्य कर्मणो विपाकान्निर्वर्तते, तद्
गन्धनाम । गन्धनाम द्विविधम्-सुगन्ध-दुर्गन्धभेदात् ।

(१२) यस्योदयाच्छरीरेषु कृष्णादिपञ्चविधवर्णनिष्पत्तिर्भवति तद् वर्णनाम,
तत् पञ्चविधम्-कृष्ण-नील-लोहित-पीत-शुक्लभेदात् । सर्वाणि चैतानि स्पर्शना-
मादीनि वर्णनामान्तानि शरीरवर्तिषु पुद्गलेषु परिणतानि भवन्ति ।

(९) औदारिक आदि शरीरों में जिस कर्म के उदय से कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न
होता है उसे स्पर्शनामकर्म कहते हैं । स्पर्शनामकर्म आठ प्रकार का है-कठोर, कोमल, भारी,
हल्का, चिकना, रूखा, शीत, और उष्ण ।

(१०) रसनामकर्म पाच प्रकार का है-तीखा, कड़ुवा, कसैला, खट्टा और मीठा ।
किसी के मत से लवण मधुर रस के अन्तर्गत है ।

(११) जिस कर्म के उदय से शरीर में सुगन्ध या दुर्गन्ध उत्पन्न होती है उसे गन्ध-
नामकर्म कहते हैं । उसके दो भेद हैं-सुगन्धनाम और दुर्गन्धनाम ।

(१२) जिस कर्म के उदय से शरीरों में कृष्ण आदि पांच वर्णों की उत्पत्ति होती है,
वह वर्णनामकर्म है । इस के पांच भेद हैं-कृष्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल, स्पर्श से लेकर
वर्ण तक ये सब, शरीरवर्ती पुद्गलों में ही परिणत होते हैं ।

(९) औदारिक आदि शरीरमा के कर्मना उदयथी कठोर आदि स्पर्श उत्पन्न
थाय छे तेने स्पर्शनामकर्म कडे छे स्पर्शनामकर्मना आठ प्रकारना छे-कठोर, कोमल,
भारी, हलके, चिकणे ३णो, शीत अने उष्ण.

(१०) रसनामकर्म पाच प्रकारे छे-तीखा, कडुवा, कसायेला, खट्टो अने मीठो
केटलाकना मतथी लवण मधुर रसनी अन्तर्गत छे

(११) के कर्मना उदयथी शरीरमा सुगंध अथवा दुर्गंध उत्पन्न थाय छे.
तेने गंधनामकर्म कडे छे तेना छे लेह छे-सुगंधनाम अने दुर्गंधनाम

(१२) के कर्मना उदयथी शरीरमा कृष्ण आदि पाच वर्णोनी उत्पत्ति थाय छे ते
वर्णनामकर्म कडेवाय छे तेना पाच भेद छे-कृष्ण, नीलो, रातो, पीणो अने धोणो.
स्पर्शथी लधने वर्ण सुधी अे अधाय शरीरवर्ती पुद्गलोमाज परिणत थाय छे.

(१३) नारकादिगति गन्तुरन्तर्गतौ चर्तमानस्य त्वमिमुत्समानुपूर्वा [वचनेऽङ्गमेव] त्वत्प्रापणसमर्षमानुपूर्वीनाम । गत्यन्तरे गच्छतो जीवस्य यत्कर्मोदपाद विषयेन तद्गमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीशब्दवाच्यं भवति । यथा-पारिवेगो बलीश्वरिः, यथा वा नस्योत्स्य बलीश्वरस्य नासारब्ध्यां प्रतिबद्धा रब्धुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिषु पादमनुष्यो नरकादिषाच्यमुत्पत्तिस्त्वन न प्राप्नोति तान् स्वसिद्धी गतिः । सा द्विषिषा-श्रद्धा, यथा च । तत्र यदा श्रद्धया समप-

(११) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (निष्कृति) में चर्तमान है, उसको उस नरक आदि गतियों की ओर अमिमुत्स कस्के आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्ष होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-गत्यन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उद्भव होने पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस क्रिये उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे एकका प्रवाह बैलको अपनी ओर खींच करता है । अथवा जैसे गाड़ीवान बैलको नाच पकड़ कर अपनी ओर मोड़ केता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जीवने जिस गतिका कर्म बाँपा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस क्रिये वह गति में पहुँचाने के क्रिये सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् जीवकी गतिको अन्तर्गति-निष्कृति-कहते हैं । वह जो प्रकार की है-सरल और बद्ध । जीव जब एकसमयप्रमाणवाली सरल (सीधी)

(१२) नरक आदि अतिमां अत्यावाण्य एव जे हे-अन्तर्गति (निष्कृति)मां चर्तमान उ तेने ते नरक आदि अतिजोनी तरु अलिमुत्स करीने आनुपूर्वींशी अर्थात् ते ते स्थानना कर्मशी ते ते अतिजोमां पडोऽवाडवाभां जे कर्म समर्ष होय छे ते कर्मने आनुपूर्वीं कर्म ठहरे छे जे हे आनुपूर्वीं शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कर्म, जेवा छे ते पशु अत्यन्तरमां जते एवने जे कर्मने उदय बनायी ते अतिमां ते ते स्थानना कर्मशी अर्जु होय छे, आटव्य माटे ते कर्मने आनुपूर्वीं ठहरे छे जेम पाप्मिने प्रवाह जगदीवाने पितानी तरु जेयी ते छे, अथवा जेम आदीवाणे जगदीवाने तेनी नाच पकडीने पितानी आनु शोडी ते छे तेम प्रभावे आनुपूर्वीकर्म-एव जे अतिनु कर्म जांछु छे ते अतिमां तेने पडोऽवाडी हे छे माटे ते अतिमां पडोऽवाडवाने माटे खडाव्य छे ।

न्यां सुधी मनुष्य पितानी मनुष्यगतिये मूढिये नरक आदि जीव अतिमां नशी पडोऽव्ये । त्यां सुधीनी अर्थात् नरकी अतिने अन्तर्गति-निष्कृति ठहरे छे । ते छे अक्षरनी शब्द छे-अथ जने पक्ष एव अथ जे अक्षरमात्रमात्रवाणी अथव (सीधी) अतिशी

(૯) ઔદારિકાદિષુ શરીરેષુ યસ્ય કર્મણ ઉદયાત્ કર્કશાદિઃ સ્પર્શ-વિશેષો જાયતે, તત્ સ્પર્શનામ । સ્પર્શનામાષ્ટયા-કર્કશ-મૃદુ-ગુરુ-લઘુ-સ્નિગ્ધ-રુક્ષ-શીતો-ષ્ણનામભેદાત્ ।

(૧૦) રસનામ પશ્ચવિધમ્-તિક્ત-કટુ-કપાયા-ઝ્મ્લ-મધુરભેદાત્ । લવણો મધુરાન્તર્ગત ઇતિ કેચિત્ ।

(૧૧) શરીરવિપયં સૌરમં દુર્ગન્ધિત્વં ચ યસ્ય કર્મણો વિપાકાન્નિર્વર્તતે, તદ્ ગન્ધનામ । ગન્ધનામ દ્વિવિધમ્-સુગન્ધ-દુર્ગન્ધભેદાત્ ।

(૧૨) યસ્યોદયાચ્છરીરેષુ કૃષ્ણાદિપશ્ચવિધવર્ણનિષ્પત્તિર્ભવતિ તદ્ વર્ણનામ, તત્ પશ્ચવિધમ્-કૃષ્ણ-નાલ-લોહિત-પીત-શુક્લભેદાત્ । સર્વાણિ ચૈતાનિ સ્પર્શના-માદીનિ વર્ણનામાન્તાનિ શરીરવર્તિષુ પુદ્ગલેષુ પરિણતાનિ ભવન્તિ ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોં મેં જિસ કર્મ કે ઉદય સે કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન હોતા હૈં ઉસે સ્પર્શનામકર્મ કહતે હૈં । સ્પર્શનામકર્મ આઠ પ્રકાર કા હૈ-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલ્કા, ચિકના, રુસ્વા, શીત, ઔર ઉષ્ણ ।

(૧૦) રસનામકર્મ પાંચ પ્રકાર કા હૈ-તીસ્લા, કડુવા, કસૈલા, સ્વદા ઔર મીઠા । કિસી કે મત સે લવણ મધુર રસ કે અન્તર્ગત હૈ ।

(૧૧) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીર મેં સુગન્ધ યા દુર્ગન્ધ ઉત્પન્ન હોતી હૈં ઉસે ગન્ધ-નામકર્મ કહતે હૈં । ઉસકે દો ભેદ હૈં-સુગન્ધનામ ઔર દુર્ગન્ધનામ ।

(૧૨) જિસ કર્મ કે ઉદય સે શરીરોં મેં કૃષ્ણ આદિ પાંચ વર્ણોં કી ઉત્પત્તિ હોતી હૈ, વહ વર્ણનામકર્મ હૈ । ઇસ કે પાંચ ભેદ હૈં-કૃષ્ણ, નીલ, રક્ત, પીત ઔર શુક્લ, સ્પર્શ સે લેકર વર્ણ તક યે સબ, શરીરવર્તીં પુદ્ગલોં મેં હી પરિણત હોતે હૈં ।

(૯) ઔદારિક આદિ શરીરોમા જે કર્મના ઉદયથી કઠોર આદિ સ્પર્શ ઉત્પન્ન થાય છે તેને સ્પર્શનામકર્મ કહે છે સ્પર્શનામકર્મના આઠ પ્રકારના છે-કઠોર, કોમલ, ભારી, હલકો, ચિકણો રૂષો, શીત અને ઉષ્ણ.

(૧૦) રસનામકર્મ પાચ પ્રકારે છે-તીષો, કડવો, કસાએલો, ખાટો અને મીઠો કેટલાકના મતથી લવણ મધુર રસની અન્તર્ગત છે

(૧૧) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા સુગંધ અથવા દુર્ગંધ ઉત્પન્ન થાય છે તેને ગંધનામકર્મ કહે છે તેના બે ભેદ છે-સુગંધનામ અને દુર્ગંધનામ

(૧૨) જે કર્મના ઉદયથી શરીરમા કૃષ્ણ આદિ પાચ વર્ણોની ઉત્પત્તિ થાય છે તે વર્ણનામકર્મ કહેવાય છે તેના પાચ ભેદ છે-કાળો, નીલો, રાતો, પીળો અને ઘોળો. સ્પર્શથી લઇને વર્ણ સુધી એ બધાય શરીરવર્તીં પુદ્ગલોમાજ પરિણત થાય છે.

(१३) नारकादिगतिं गन्तुरन्तर्गतौ सर्वमानस्य तदभिमुखमानुपूर्व्या [तच्छेषकमेण] तत्प्रप्रापणसमर्पमानुपूर्वीनाम । गत्यन्तरं गन्तव्यो जीवस्य यत्कर्मोदयात् विद्ययेन तद्रमनानुगुण्यं स्यात्, तदपि-आनुपूर्वीद्वयवाच्यं भवति । यथा-चारिबेगो बलीश्वरदिः, यथा वा नस्योतस्य बलीश्वरस्य नासारज्ज्वा प्रतिबद्धा रज्जुः, तथाऽऽनुपूर्वीकर्म जीवस्य गत्यन्तरप्रापणार्थं समाकर्षकतयोपग्रहस्वरूपम् ।

अन्तर्गतिषु यावन्मनुष्यो नरकादिवाच्यमुत्पत्तिस्थानं न प्राप्नोति तासु तद्व्यभिक्ती गतिः । सा त्रिविधा-ऋज्वी, पक्वा च । तत्र यदा ऋज्व्या समय

(१२) नरक आदि गति में जाने वाला जीव-जो कि अन्तर्गति (विग्रहगति) में वर्तमान है, उसको उन नरक आदि गतियों की ओर अभियुक्त करके आनुपूर्वी से अर्थात् उस उस स्थान के क्रम से उन २ गतियों में पहुँचाने में जो कर्म समर्थ होता है, उस कर्म को आनुपूर्वीकर्म कहते हैं । यद्यपि आनुपूर्वी शब्द का अर्थ उस उस स्थानका क्रम है तथापि-यत्कन्तर में जाते हुए जीव को जिस कर्म के उदय होना पर उस गति में उस उस स्थान के क्रम से जाना होता है, इस स्थिति उस कर्म को भी आनुपूर्वी कहते हैं । जैसे पक्का प्रवाह बेलको अपनी ओर सींच देता है । अथवा जैसे गाड़ीमान बेलको नाथ पकड़ कर अपनी ओर मोड़ देता है, उसी प्रकार आनुपूर्वीकर्म-जैसे कि जिस गतिकी कर्म बाँधा है उस गति में उसको पहुँचा देता है, इस स्थिति वह गति में पहुँचाने के स्थिति सहायक है ।

जब तक मनुष्य अपनी मनुष्यगति को छोड़कर नरक आदि किसी गति में नहीं पहुँचा है, तब तक की अर्थात् वीचकी गतिको अन्तर्गति-विग्रहगति-कहते हैं । वह दो प्रकार की है-सरल और कर्क । जीव जब एकसमयप्रमाणवासी सरल (सीधी)

(१३) नरक आदि अतिमां व्यापणाय एव जे हे-अन्तर्गति (विग्रहगति)मां वर्तमानं छे तेने ते नरक आदि अतिज्योनी तरु अविभुज ठरीने आनुपूर्वीभी अर्थात् ते ते स्थानना कमभी ते ते अतिज्योमां पछेआवधानां जे कर्म समर्थ होय छे ते कर्मने आनुपूर्वी कर्म कहे छे जे हे आनुपूर्वी शब्दने अर्थ ते ते स्थानने कम, ज्येवो छे ते पक्ष अत्यन्तरमां जते एवने जे कर्मने उदय वनाभी ते अतिमां ते ते स्थानना कमभी जनु होय छे आदला भाटे ते कर्मने आनुपूर्वी कहे छे जे म थाकीने प्रवाह जगदीवाने पीतानी तरु जे वी डे छे, अथवा जे म आदीवाणे जगदीवाने तेनी नाथ पकडीने पीतानी जालु मोडी डे छे ते म प्रमासे आनुपूर्वीकर्म-एव जे अतिनु कम जांधु छे ते अतिमां तेने पछेआदी डे छे भाटे ते अतिमां पछेआवधाने भाटे कदायक छे

ज्यां सुधी मनुष्य पीतानी मनुष्यगतिने भुझीने नरक आदि जीव अतिमां नभी पछेआवे त्यां सुधीनी अर्थात् पक्षी अतिने अन्तर्गति-विग्रहगति कहे छे ते जे प्रकाशनी होय छे-सरल जने पक्षे एव व्यापे जे कसमयप्रमाणवाणी सरल (सीधी) गतिभी

પ્રમાણયા ગચ્છતિ, તદાઽઽયુષ્યકર્મણૈવાત્પત્તિસ્થાનં પ્રાપ્નોતિ । તવાનુપૂર્વીનામ્નઃ કશ્ચિદુપયોગો ન ભવતિ । વક્રગત્યા પુનઃ પ્રવૃત્તઃ કૂર્પર- (વક્રાકારરચાવયવ)-લાઙ્ગલ-ગોમૂત્રિકાલક્ષણયા દ્વિત્રિચતુઃસમયમાનયા વક્રારમ્ભકાલે પુરસ્કૃત-માયુરાદત્તે, તદૈવ ચાનુપૂર્વીનામાપ્યુદેતિ ।

નનુ ચ યથૈવ ઋજ્વ્યાં ગતૌ વિનાઽઽનુપૂર્વીનામકર્મણા ગતિં પ્રાપ્નોતિ, તદ્વદ્ વક્રગત્યામપિ કસ્માન્ન ? ઇતિ ચેત્, ઉચ્યતે-ઋજ્વ્યાં-પૂર્વાયુષ્કર્મવ્યાપારેણૈવ ગચ્છતિ, યત્ર તત્ પૂર્વાયુષ્કર્મ ક્ષીણં, તત્ર તસ્યાધ્વયષ્ટિસ્થાનીયસ્યાનુપૂર્વીનામકર્મણ ઉદયો ભવતિ ।

ગતિ સે જાતા હૈ તવ આયુ કર્મ કે દ્વારા હી ઉત્પત્તિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર લેતા હૈ, વહા આનુપૂર્વીનામકર્મ કા કોઈ ઉપયોગ નહીં હોતા । જવ જીવ કૂર્પર (રથ કા ટેઢા અવયવ) હલ યા ગોમૂત્રિકા સરીલી ઓર દો તીન યા ચાર સમયવાલી વક્ર ગતિ સે જાતા હૈ તવ મોઢકે આરમ્ભ-સમય મેં આગે કી આયુ પ્રહણ કરતા હૈ, ઉસી સમય આનુપૂર્વી કર્મકા ઉદય હોતા હૈ ।

શઙ્કા-જૈસે સરલગતિ મેં આનુપૂર્વીકર્મ કે વિના હી ગતિ પ્રાપ્ત કરતા હૈ, ઉસી પ્રકાર વક્ર ગતિ મેં મી ક્યોં નહીં ગતિ કરતા ?

સમાધાન-સરલ ગતિ મેં પહેલે કે આયુકર્મ કે વ્યાપાર સે હી જીવ ગતિ કરતા હૈ । જહાં વહ આયુ ક્ષીણ હો જાતી હૈ વહાં માર્ગયષ્ટિ કે સમાન આનુપૂર્વીનામકર્મ કા ઉદય હોતા હૈ ।

નય છે, ત્યારે આયુકર્મદ્વારાજ ઉત્પત્તિ સ્થાનને પ્રાપ્ત કરી લે છે ત્યા આનુપૂર્વી નામકર્મને કાઈ ઉપયોગ થતો નથી ન્યારે જીવ કૂર્પર (રથનો વાંકો એક ભાગ) હલ અથવા ગોમૂત્રિકા સરખી અને છે, ત્રણ અથવા ચાર સમયવાળી વક્રગતિથી નય છે ત્યારે વળવાના આરભ સમયમા આગળની આયુ ગ્રહણ કરે છે તે સમય આનુપૂર્વી કર્મને ઉદય થાય છે

શંકા-જેમ સરલગતિમા આનુપૂર્વીકર્મ વિનાજ ગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે પ્રમાણે વક્રગતિમા ગતિ શા માટે કરતા નથી ?

સમાધાન-સરલગતિમા પ્રથમના આયુકર્મના વ્યાપારથીજ જીવ ગતિ કરે છે ન્યા તે આયુ ક્ષીણ થઈ નય છે ત્યા માર્ગયષ્ટિ-માર્ગની લાકડી-ના સમાન આનુપૂર્વી નામકર્મને ઉદય થાય છે.

आनुपूर्वीनाम चतुर्विधम्—नरकागत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, देवगत्यानुपूर्वीनाम च ।

(१४) लम्बि—शिक्षिदि—प्रत्ययस्याकाशगमनस्य जनकं नाम विहायोगतिः सामान्य गमनरूपा गतिरपि विहायोगति रित्युच्यते न तु केवलाकाशगमनरूपेति । सा विधा—शुभा—शुभमेवात् । तत्र—इस गम—इषादीनां शुभा । उष्ट्रजगत्तादीनाम् अशुभा । तत्र—लम्बिर्देवादीनां दत्त्वोत्पत्त्यविनाभाविनी । शिक्षया ऋदिः, शिक्षिदिः, लम्ब्या शिक्षिदृषां च तपस्विनां, शिक्षिदृषां प्रवचनमधीयानानां विधाधावर्तनमभावाद् वा आकाशगमनस्य जनकं विहायोगतिनामकर्म ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है—नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लम्बि एवं शिक्षाऋदिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करने वाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलता है । वह सामान्य गमनरूप गति भी विहायोगति कहलती है, नहीं कि मात्र आकाशगमनरूप । इस के दो भेद हैं—शुभ और अशुभ । इस, गम, इषम ऋदि की गति के समान शुभविहायोगति है और उंष्ट्र सितार ऋदि की गतिके अनुसार अशुभविहायोगति है । देव के रूप में उत्पन्न होने के साथ ही उत्पन्न होने वाली लम्बि देवों को प्राप्त होती है । शिक्षा से प्राप्त होने वाली ऋदि शिक्षा—ऋदि कहलती है । लम्बि एवं शिक्षा—ऋदि से तपस्वियों का आकाशगमन होता है । प्रवचन का प्रवचन करने वालों का विधा ऋदि के आवर्तन के प्रभाव से या शिक्षाऋदि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति है ।

आनुपूर्वीनामकर्म चार प्रकार का है—नरकगत्यानुपूर्वीनाम, तिर्यग्गत्यानुपूर्वीनाम, मनुष्यगत्यानुपूर्वीनाम, और देवगत्यानुपूर्वीनाम ।

(१४) लम्बि एवं शिक्षा—ऋदिकारणक आकाशगमन उत्पन्न करनेवाला कर्म विहायोगतिनामकर्म कहलता है । सामान्य गमनरूप गति पक्ष विहायोगति कहलता है । उंष्ट्र आकाशगमनरूप गति नहीं । तेना ये वेद छे—शुभ और अशुभ । इस, इषा, अशुभ नीचेरेनी गति समान शुभविहायोगति छे । अने उंष्ट्र शिक्षा से नीचेरेनी गति अनुसार अशुभविहायोगति छे । देवना इषमां उत्पन्न होवानी साथे उत्पन्न होवानी लम्बि देवाने प्राप्त साथ छे शिक्षा से प्राप्त होवानी ऋदि शिक्षाऋदि कहलता है । लम्बि एवं शिक्षाऋदि से तपस्वियों का आकाशगमन करे छे । प्रवचन का प्रवचन करनेवालों का विधा ऋदि के आवर्तन प्रभाव से या शिक्षाऋदि से जो आकाशगमन होता है वह विहायोगति छे ।

(७) गोत्रकर्म द्विविधम्—उच्चनीचभेदात् । तत्र उच्चगोत्रं—देश-जाति-कुल-स्थान-मान-सत्कारै-श्वर्याद्युत्कर्षजनकम् । तद्विपरीतं नीचगोत्रम्—अनार्यदेश-चाण्डालादिजातिदास्य-निर्वर्तकम् ।

(८) अन्तरायकर्म-पञ्चविधम्—दान-लाभ-भोगो-पभोग-वीर्यान्तरायभेदात् ।

एवं च सर्वसंकलनेनाष्टविधकर्मणामुत्तरप्रकृतिसंख्या अष्टचत्वारिंशदधिकैरुशत (१४८) भवन्ति ।

कर्मक्षयविचारः—

ज्ञानक्रियाभ्यां कर्मक्षयो भवति । उक्तपङ्क्तिव्यवस्थानामां यथार्थ-

(७) गोत्रकर्म दो प्रकार का है—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र से देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न होता है । नीचगोत्र इस से विपरीत है । इस से अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न होती है ।

(८) अन्तराय कर्म के पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय, और वीर्यान्तराय ।

इस प्रकार सबका योग करने पर आठों कर्मों की उत्तरप्रकृतियाँ एक सौ अड़तालीस (१४८) होती हैं ।

कर्मक्षय का विचार

ज्ञान और क्रिया से कर्मों का क्षय होता है । पूर्वोक्त पञ्चविधकर्मणाम् के वास्तविक

(७) गोत्रकर्म के प्रकार दो हैं—उच्चगोत्र और नीचगोत्र । उच्चगोत्र ही देश, जाति, कुल, स्थान, मान, सत्कार, ऐश्वर्य आदि का उत्कर्ष उत्पन्न था है । नीच गोत्र तेनाथी विपरीत है तेनाथी अनार्य देश, चाण्डाल आदि जाति और दासता उत्पन्न था है

अन्तरायकर्मना पांच भेद हैं—दानान्तराय, लाभान्तराय, भोगान्तराय, उपभोगान्तराय और वीर्यान्तराय ।

आ प्रमाणों सर्वना योग करता आठ कर्मों की उत्तरप्रकृतियों अष्टसो अड़तालीस (१४८) था है

कर्मक्षयना विचार—

ज्ञान और क्रिया ही कर्मों का क्षय था है । पूर्वोक्त पञ्चविधकर्मणाम् के वास्तविक

स्वरूपस्य विस्तरेण संक्षेपेण वा अथबोधो ज्ञानम् । एतिसमितिस्माराधनपूर्वकं
शास्त्रविधिना तपःसंयमाभरणं क्रिया ।

अष्टकर्मणां मस्मसात्कथरक तपः । तस्यानक्षनादयो द्वादश भेदाः ।
सावद्य क्रियाः सम्यक् परित्यज्य निरवद्यक्रियास्तु प्रवृत्तिः संयमः । तस्य पृथिवीकाय
संयमादयः सप्तदश भेदाः ।

उक्तपह्नीनिकायस्वरूपं सम्यग विज्ञाय संयमपूर्वकतपधरणेनामिनकर्म
मवेशामासः, पूर्वोपचितकर्मपरित्यज्य भवति । तत्रैवं क्रमः—

अष्टमशुभस्थानादात्मा क्षपकमेणिं समारोहति । असौ क्षपको मर्म
वधमं शुभस्थानं समाह्वयं द्वादशं शुभस्थानमारोहति । तत्र शुभस्थानस्य द्वितीय

स्वरूप का विस्तारपूर्वक या संक्षिप्त बोध-ज्ञान कहलाता है । गुप्ति समिति का अराधन
करते हुए शास्त्रोक्त विधि के साथ तप और संयम का आराधन करना क्रिया है ।

अष्ट कर्मों का मस्म करता तप है । तप के अनशन आदि बाह्य भेद हैं ।
सावद्य क्रियाओं का सम्यक् प्रकार से परित्याग करके निरवद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति करना
संयम है । पृथ्वीकायसंयम अग्नि के भेद से यह सत्तर (१७) प्रकार का है ।

उक्त पह्नीनिकाय का स्वरूप समीचीन प्रकार से जानकर संयमपूर्वक तप का
आचरण करने से मर्मी कर्मों का अना कर्म जाता है और पहले के संचित कर्मों का क्षय
होता है । कर्मक्षय का काम यह है—

आत्मा आठवें गुणस्थान से क्षपकमेणी पर आकर होता है । यह क्षपक
आत्मा नौवें दशवें गुणस्थानों पर आकर हो कर बाहरवें गुणस्थान पर पहुँचता है ।

स्वरूपने विस्तारपूर्वक अथवा संक्षिप्त विधि से ज्ञान कहेवाक छे सुप्ति, समितिनी
अराधना करता शास्त्रोक्त विधि प्रभावे तप करने अथवा अराधन करने से ते क्रिया
छे आठ करीने जाणी नाजवा ते तप छे तपना अनशन आदि जार सेठ छे आनय
क्रियाओंने अथवा प्रकारे परित्याग करीने निरवद्य क्रियाओंनां प्रवृत्ति करनी ते संयम छे
पृथ्वीकायसंयम आदिना सेठथी ते सत्तर (१७) प्रकारने छे आनय कहेला पह्नीनिकायना
स्वरूपने सारी सेते आठवें संयमपूर्वक तपनु आचरण करवायी नवीन करीनु आनय
शेठार्थ अथ छे अने पडेखाना संक्षिप्त करीने क्षय वाक छे कर्मक्षयने कर्म अने छे—
आत्मा आठवां शुभस्थानवी क्षपकमेणीपर आकर साथ छे अथ क्षपक आत्मा
नववां, दसवां शुभस्थाने पर आकर यधने आठवां शुभस्थान पर अर्ध पडेयि छे.

(૭) ગોત્રકર્મ દ્વિવિધમ્—ઉચ્ચનીચમેદાત્ । તત્રઉચ્ચગોત્રં—દેશ—જાતિ—કુલ—સ્થાન—માન—સત્કારૈ—શ્વર્યાદ્યુત્કર્પજનકમ્ । તદ્વિપરીતં નીચગોત્રમ્—અનાર્યદેશ—ચાણ્ડાલાદિજાતિદાસ્ય—નિર્વર્તકમ્ ।

(૮) અન્તરાયકર્મ-પञ્ચવિધમ્—દાન-લાભ-ભોગો-પમોગ-વીર્યાન્તરાયમેદાત્ ।

એવં ચ સર્વસંકલનેનાષ્ટવિધકર્મણામુત્તરપ્રકૃતિસંલ્યા અષ્ટચત્વારિશદધિકૈકશતં (૧૪૮) ભવન્તિ ।

કર્મક્ષયવિચાર:—

જ્ઞાનક્રિયાભ્યા કર્મક્ષયો ભવતિ । ઉક્તપદ્જીવનિક્રાયાના યથાર્થ—

(૭) ગોત્રકર્મ દો પ્રકાર કા હૈ—ઉચ્ચગોત્ર ઓર નીચગોત્ર । ઉચ્ચગોત્ર સે દેશ, જાતિ, કુલ, સ્થાન, માન, સત્કાર, એશ્વર્ય આદિ કા ઉત્કર્ષ ઉત્પન્ન હોતા હૈ । નીચગોત્ર ઇસ સે વિપરીત હૈ । ઇસ સે અનાર્ય દેશ, ચાણ્ડાલ આદિ જાતિ ઓર દાસતા ઉત્પન્ન હોતી હૈ ।

(૮) અન્તરાય કર્મ કે પાચ મેદ હૈ—દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપમોગાન્તરાય, ઓર વીર્યાન્તરાય ।

ઇસ પ્રકાર સબકા યોગ કરને પર આઠો કર્મો કી ઉત્તરપ્રકૃતિયાં એક સૌ અડતાલીસ (૧૪૮) હોતી હૈ ।

કર્મક્ષય કા વિચાર

જ્ઞાન ઓર ક્રિયા સે કર્મો કા ક્ષય હોતા હૈ । પૂર્વોક્ત પદ્જીવનિક્રાય કે વાસ્તવિક

(૭) ગોત્રકર્મ ષે પ્રકારત્ર છે—ઉચ્ચગોત્ર અને નીચગોત્ર. ઉચ્ચગોત્રથી દેશ, જાતિ, કુલ, સ્થાન, માન, સત્કાર, એશ્વર્ય આદિનો ઉત્કર્ષ ઉત્પન્ન થાય છે નીચ ગોત્ર તેનાથી વિપરીત છે તેનાથી અનાર્ય દેશ, ચાણ્ડાલ આદિ જાતિ અને દાસપણું વગેરે ઉત્પન્ન થાય છે

અ તરાયકર્મના પાચ ભેદ છે—દાનાન્તરાય, લાભાન્તરાય, ભોગાન્તરાય, ઉપમોગાન્તરાય અને વીર્યાન્તરાય.

આ પ્રમાણે સર્વનો યોગ કરતા આઠ કર્મોની ઉત્તરપ્રકૃતિઓ એકસો અડતાલીસ (૧૪૮) થાય છે

કર્મક્ષયનો વિચાર—

જ્ઞાન અને ક્રિયાથી કર્મોનો ક્ષય થાય છે. પૂર્વોક્ત પદ્જીવનિક્રાયના વાસ્તવિક

एवमात्ममदक्षेभ्यः सफलकर्मज्ञानपरागे सत्पूर्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साधन-
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेयं स्वानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाभ्यामेवं सकलकर्मक्षय-
स्ततो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्पदाज्ञानं यथार्थविषयकतया प्रकृतत्वेन मिथ्याज्ञानं
निवर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते ।
कारणभावे कार्यस्यानुत्पत्तात् । रागाद्यभावे च उत्कलमूला मनोवाङ्मनसा-
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यभावे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरम्भकार्ययोश्च

आत्मप्रदेशो से समस्त कर्मों के हटवाने पर उर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा
सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । अत एव सिद्ध
हुआ कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्पदाज्ञान यथार्थ पदार्थ को विवक्ष करता
है अतः वह बन्धान् है, और बन्धान् होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।
मिथ्याज्ञान जब हट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं
होती क्योंकि क्रम के अभाव में काम उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि
का अभाव होने पर उस से होने वाली मन चक्षुष और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । अतः का कर्म

आत्मप्रदेशीयों से समस्त कर्मों दूर तथा पक्षी उर्ध्वगतिशील होकर आरक्ष्य
आत्मा सादि-अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नामका स्थानने प्राप्त करे
से अटके से सिद्ध बन्धु के ज्ञान करने क्रियाशी सकल कर्मोंका क्षयरूप मोक्षने
प्राप्त थाव है

केवलक मायसेतुं कहेतुं जे से से-सम्पदाज्ञान यथार्थ पदार्थको विवक्ष करे
से जे आरक्ष्यी ते जगवान से अने जगवान होवाना आरक्ष्य मिथ्याज्ञानने दूर करे से
मिथ्याज्ञान अथरे दूर बधि अथ से तो तेना आरक्ष्य उत्पन्न यथावाण सज-आदिनी
उत्पत्ति भती नही, केमके आरक्ष्यना अभावभां जय उत्पन्न नहु नही, का प्रकार-सज-आदिनी
अभाव यथाशी तेनाही यथा वाणी मन, चक्षुष अने आधानी प्रवृत्ति अटकी अथ से
प्रवृत्तिना अटकावशी पुण्यकर्म अने पाप कर्मनी उत्पत्ति भती नही, सेतु आर्थ आरक्ष
प्र वा-७८

पादे प्रथमं मोहनीयं कर्म क्षपयति । तदनु ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीया-अन्तराय-कर्माणि युगपदेव क्षपयित्वा द्वादशगुणस्थानान्ते त्रयोदशगुणस्थानादौ सर्वद्रव्य-पर्यायविषयं पारमैश्वर्यमनन्तं केवलं ज्ञानदर्शनं प्राप्य शुद्धो बुद्धः सर्वज्ञः सर्वदर्शी जिनः केवली भवति । ततः सयोगिकेवली प्रतनु-शुभ-चतुष्कर्मावशेषः, आयुः-कर्मसंस्कारवशाद् भव्यजनबोधनाय भूमण्डले विहरति, विविधं कर्मरजो भव्यानां हरति च ।

असौ तत्पश्चाद् अयोगिकेवली भूत्वा चतुर्दशगुणस्थाने-आयुष्यकर्मपरिसमाप्तौ सत्यां, वेदनीय-नाम-गोत्रकर्माणि क्षपयति । एवं मूलप्रकृतिवाच्यमष्टविधं ज्ञाना-वरणीयादिसकलकर्म क्षीयते ।

वहाँ शुक्ल ध्यान के द्वितीय पाये में सर्व प्रथम मोहनीय कर्म का क्षय करता है । तत्पश्चात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्मों को एक ही साथ क्षय करके त्रारहवें गुणस्थान के अन्त में और तेरहवें गुणस्थान की आदि में समस्त द्रव्य पर्याय को विषय करने वाला परम ऐश्वर्य को प्राप्त होने योग्य अनन्त केवलज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त करके शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन और केवली हो जाता है । फिर वह सयोगी केवली चार हल्के अघातिया कर्म शेष रहने पर आयुर्कर्म के संस्कार वश हो कर भव्य जीवों को बोध देने के लिए भूमण्डल में विहार करते हैं ।

तत्पश्चात् अयोगी केवली हो कर चौदहवें गुणस्थान में आयुर्कर्म की समाप्ति होने पर वेदनीय नाम आयु गोत्र कर्मों का क्षय करते हैं । इस प्रकार मूलप्रकृति कहलाने वाले आठों ही कर्मों का क्षय हो जाता है ।

त्या शुक्ल ध्यानना भीज पायाभा सर्वप्रथम मोहनीय कर्मोना क्षय करे छे ते पछी ज्ञानावरण, दर्शनावरण अने अतराय कर्मोना ओझी साथे क्षय करीने, आरभा शुष्-स्थानना अतमा अने तेरभा शुष्स्थाननी आदिमा समस्त द्रव्य-पर्यायने विषय करवावाणा परम ऐश्वर्यने प्राप्त थवा योग्य अनन्त केवलज्ञान अने केवलदर्शन प्राप्त करीने शुद्ध, बुद्ध, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, जिन अने केवली थई नय छे पछी ते सयोगी केवली आर डलका अघातिया कर्म आकी रहैवा पर आयुर्कर्मना संस्कारवश थईने लव्यलवोने बोध आपवा भाटे पृथ्वीमा विहार करे छे

ते पछी अयोगी केवली थईने चौदहा शुष्स्थानमा आयुर्कर्मनी समाप्ति थया पछी वेदनीय, नाम अने गोत्रकर्मोना क्षय करे छे आ प्रभाजे भूणप्रकृति कहेवाता आठ कर्मोना क्षय थई नय छे ।

एवमात्मप्रदेशेभ्यः सफलकर्मणामपगमे सत्यूर्ध्वगमनस्वभावतयाऽऽत्मा साधन-
न्तमपुनरावृत्तिसिद्धिगतिनामधेय स्थानं प्राप्नोति । ज्ञानक्रियाम्यामेवं सफलकर्मस्य
उत्सवो मोक्षो भवतीति सिद्धम् ।

केचित्तु-सम्यग्ज्ञानं यथार्थक्रियकृतया बलवत्तत्वेन मिथ्याज्ञानं
निवर्तयति । मिथ्याज्ञाने निवृत्ते सति मिथ्याज्ञानमूला रागादयो न समुत्पद्यन्ते ।
कारणमात्रे कार्यस्यानुत्पादात् । रागाद्यमात्रे च तत्फलभूता मनोबाह्यकाम-
प्रवृत्तिर्न भवति । प्रवृत्त्यमात्रे च पुण्यपापयोरनुत्पत्तिः । आरम्भकार्ययोग्य

आत्मप्रदेशो से समस्त कर्मों के इटवाने पर ऊर्ध्वगतिशील होने के कारण आत्मा
सादि-अनन्त पुनरागमनरहित सिद्धिगतिनामक स्थान को प्राप्त करता है । मत एव सिद्ध
हुमा कि ज्ञान और क्रिया से सफल कर्मोंका क्षयरूप मोक्ष प्राप्त होता है ।

कुछ लोगों का कथन यह है कि-सम्यग्ज्ञान यथार्थ प्रयास को विषय करता
है, मत यह सम्मान है, और सम्मान होने के कारण मिथ्याज्ञान को दूर करता है ।
मिथ्याज्ञान कम इट जाता है तो उसके कारण उत्पन्न होने वाले रागादि की उत्पत्ति नहीं
होती, क्योंकि कि कारण के बमाल में काज उत्पन्न नहीं होता । इस प्रकार रागादि
का बमाल होने पर उस से होने वाली मग बचन और काय की प्रवृत्ति रुक जाती है ।
प्रवृत्ति के रुक जाने से पुण्यकर्म और पापकर्म की उत्पत्ति नहीं होती । भिन का काज

आत्मप्रदेशो से समस्त कर्मों दूर तथा पछी ऊर्ध्वगतिशील होवाना कारण
आत्म सादि-अनन्त, पुनरागमनरहित सिद्धिगति नामना स्थानने प्राप्त करे
छे । जेटवे से सिद्ध सतु के ज्ञान अने क्रियाशी बकल कर्मोंना क्षयरूप मोक्षने
प्राप्त बाय छे ।

इदं ताक भावसेतु कहेतु से छे के-अम्यग्ज्ञान यथार्थ प्रयासने विषय करे
छे से करवृत्ती ते जगवान छे अने जगवान होवाना कारण मिथ्याज्ञानने दूर करे छे
मिथ्याज्ञान अगरे दूर बरु जाय छे तो तेना कारणे उत्पन्न भवावाणा राज-आदिनी
उत्पत्ति भती नथी, केभडे कारणना जगवचमां बाय उत्पन्न सतु नथी । आ प्रकारे-सम्यग्ज्ञान
जगव भवावरी तेनाशी अवा बावी भन, वजन अने काषानी प्रवृत्ति अटकी जाय छे
प्रवृत्तिना अटकावरी पुण्यकर्म अने पाप कर्मनी उत्पत्ति भती नथी । जेटु कार्य आरका
म आ-४८

પુણ્યપાપકર્મણોરુપભોગાદેવ પ્રક્ષયો ભવતિ; સચ્ચિત્તરુપયોસ્તુ પુણ્યપાપકર્મણોસ્તત્ત્વ-
જ્ઞાનાદેવ પ્રક્ષયઃ । એવં કર્મક્ષયો ભવતિ । ઉક્તચ્ચ—

“ જ્ઞાનાગ્નિઃ સર્વકર્માણિ, ભસ્મસાત્ કુરુતે તથા ” । ડતિ । તથા “ નાશ્ચુક્તં
ક્ષીયતે કર્મ, કલ્પકોટિશતૈરપિ ” ઇતિ ચ ।

કેચિચ્ચ—સંચિતકર્મણામપિ પ્રક્ષયો ભોગાદેવ ભાવતીત્યુક્તં તપ્રાનુમાનં
પ્રમાણં ચ પ્રદર્શિતમ્ । તથાદિ—પૂર્વકર્માણ્યુપભોગાદેવ ક્ષીયન્તે, કર્મત્વાત્ । યત્ યત્
કર્મ તત્ તત્ ઉપભોગાદેવ ક્ષીયતે, યથા—આરબ્ધશરીરં કર્મ, તથા ચૈતત્ કર્મ, તસ્મા-
દુપભોગાદેવ ક્ષીયતે ।

ન ચોપભોગાત્ કર્મપ્રક્ષયસ્વીકારે કર્માન્તરસ્યાવશ્યમ્ભાવાત્ સંસારાનુચ્છેદઃ
શ્ચિતિ વાચ્યમ્ ,

આરમ્ભ હો ચુકા હૈ, એસે પાપ—પુણ્ય કા, ઉપભોગ સે ક્ષય હોતા હૈ ઓર સચ્ચિત પુણ્ય—પાપ
કા, તત્વજ્ઞાન સે । ઇસ પ્રકાર સમસ્ત કર્મોં કા ક્ષય હો જાતા હૈ । કહા મી હૈ—

“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોં કો મસ્મ કર ડાલતી હૈ ” । તથા—“ કરોડોં સૈકડોં
કલ્પોં મેં મી કર્મ કા મોગે વિના ક્ષય નહીં હોતા ” ।

કિસી કા કહના હૈ કિ—સચ્ચિત કર્મોં કા ક્ષય મી મોગ સે હી હો જાતા હૈ । ઇસ
વિષય મેં અનુમાન પ્રમાણ મી દિયા ગયા હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર હૈ—પૂર્વસચ્ચિત કર્મ ઉપભોગ
સે હી ક્ષીણ હોતા હૈ, ક્યોં કિ વહ કર્મ હૈ । જો જો કર્મ હોતા હૈ વહ વહ ઉપભોગ સે હી
ક્ષીણ હોતા હૈ, જૈસે આરબ્ધ શરીરકર્મ । સચ્ચિતકર્મ મી કર્મ હૈં અત વે મી ઉપભોગ સે હી
ક્ષીણ હોતે હૈં ।

ઉપભોગ સે કર્મોં કા ક્ષય સ્વીકાર કિયા જાય તો નવીન કર્મોં કી ઉત્પત્તિ અવશ્ય
હોગી ઓર ફલત્ જન્મ—મરણ કા કર્મી નાશ નહીં હોગા । એસી આશઙ્કા કરના
ઉચિત નહીં હૈ ।

થઈ ચૂકયુ છે, એવા પાપ—પુણ્યને ઉપભોગથી ક્ષય છે, અને સચ્ચિત પુણ્ય—પાપને
તત્વજ્ઞાનથી ક્ષય થાય છે આ પ્રકારે સમસ્ત કર્મોને ક્ષય થઈ જાય છે કહ્યું પણ
છે કે—“ જ્ઞાનરૂપી અગ્નિ સમસ્ત કર્મોને બાળી નાખે છે ” તથા “ કરોડો સે કડો
કલ્પોમા પણ કર્મ ભોગવ્યા વિના ક્ષય થતા નથી ”

કેટલાક કહે છે કે—સચ્ચિત કર્મોને ક્ષય પણ ભોગથી જ થઈ જાય છે આ
વિષયમા અનુમાન પ્રમાણ પણ આપવામા આવ્યું છે તે આ પ્રમાણે છે—પૂર્વસ-
ચ્ચિતકર્મ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે, કારણ કે તે કર્મ છે, જે જે કર્મ હોય છે તે
તે ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે, જેવી રીતે આરબ્ધ શરીરકર્મ સચ્ચિત કર્મ પણ કર્મ
છે, એ કારણથી તે પણ ઉપભોગથી જ ક્ષીણ થાય છે

ઉપભોગથી કર્મોને ક્ષય સ્વીકાર કરવામા આવે તો, નવીન કર્મોની ઉત્પત્તિ અવશ્ય
થશે અને ફલત્ જન્મ મરણનો ક્યારેય નાશ નહિ થાય, આવી શકા કરવી તે ઉચિત નથી.

समाधिबलेनोत्पन्नतत्त्वज्ञानस्य ज्ञानस्य कर्मज्ञानसामर्थ्यात्पुरुषमोगार्थमक्षेप शरीरमुत्पाद्याक्षेपमोगादेव पूर्वकर्मक्षयाः, पुनस्तस्य तत्त्वज्ञानिनो मिथ्याज्ञानाभावात्सन्नित्तसंस्कारस्याप्यभावेन कर्मान्तरानुत्पत्तिश्च । तथा चोपमोगादेव सफलकर्मक्षयस्वीकारेऽपि नास्ति कोऽपि दोषोऽप्येव इति ।

न च पुण्यपापकर्मजोर्बन्धान्तरशरीरोत्पादने सहकारि कारणं मिथ्या ज्ञानजनितसंस्कारोऽस्ति; तस्याभावादेव तत्त्वज्ञानिनां विद्यमाने अपि कर्मबीजं न बन्धान्तरशरीराप्युत्पादयति, अस्त्येषां कर्मसत्त्वेऽपि न काऽपि हानिरिति वाच्यम् ।

समाधि के बल से उत्पन्न तत्त्वज्ञान वाले पुरुष के कर्मज्ञान के सामर्थ्य से कर्म का उपमोग करने के लिए अशेष शरीर उत्पन्न करके अशेष मोग से ही पूर्वकर्म का क्षय हो जाता है । उस तत्त्वज्ञानी पुरुष में मिथ्याज्ञान नहीं होता और मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाला संस्कार भी नहीं होता । इस कारण नवीन कर्म की उत्पत्ति भी नहीं होती । ऐसी स्थिति में उपमोग से ही समस्त कर्मों का क्षय मान लेने में त्रुटि मात्र भी दोष नहीं है ।

मिथ्याज्ञान से उत्पन्न होने वाले संस्कार बन्धान्तर के शरीर की उत्पत्ति में सहकारी कारण होता है । यह संस्कार तत्त्वज्ञानी में नहीं रहता । उस का अभाव हो जाने पर पुण्य—पाप कर्म मछे ही विद्यमान रहें मगर वे शरीर उत्पन्न नहीं कर सकते । अत एव उन में कर्म का सद्भाव होने पर भी कोई हानि नहीं होती । यह सब कथन सत्य नहीं है ।

समाधिना ज्ञानधी उत्पन्न तत्त्वज्ञान बाणा पुरुषना कर्मज्ञाननां सामर्थ्यादी कर्मिना उपमोग करवा भाटे अशेष शरीर उत्पन्न करीने अशेष सौजधीव पूर्वकर्मिना क्षय घटि जाय छे ते तत्त्वज्ञानी पुरुषना मिथ्याज्ञान नशी अने मिथ्याज्ञानशी उत्पन्न कवाबाणा संस्कार पद्यु नशी. आ हास्युभी नवीन कर्मिनी उत्पत्ति पद्यु बती नशी जेनी स्थितिमा उपमोगशीव अस्त कर्मिनि क्षय भानी देवामां देव भात्र पद्यु होय नशी

मिथ्याज्ञानशी उत्पन्न कवाबाणा संस्कार बन्धान्तरना शरीरनी उत्पत्तिमा सहाकारी हास्यु जाय छे ते संस्कार तत्त्वज्ञानीमा रहैता नशी. तेना अभाव बर्ध कवावी, पुण्य—पापकर्म अतेने विद्यमान रहै. पस्तु ते शरीर उत्पन्न करी सकतां नशी, जेठका भाटे तेमां कर्मिनि कवाबाण होवा छताय पद्यु देछि प्रकारे हानि बती नशी आ सर्व कथन सार्थां नशी.

जन्यपदार्थस्य नित्यत्वापत्तिः स्यादित्येव महान् दोषः समापद्येत ।
तथाहि—पुण्यपापरूपकर्मणोः स्वफलानुत्पादनेन तत्सत्तास्वीकारे कार्यरूपयोरपि
तयोर्नित्यत्वप्रसङ्ग । किञ्च—भविष्यत्काले पुण्यपापकर्मणोरनुत्पत्तिस्वीकारे तत्त्व-
ज्ञानिनां प्रत्यवायपरिहारार्थं नित्यनैमित्तिकानुष्ठानं कथमुपपद्येत ? इति वदन्ति ।
अत्रोच्यते—

यत्तु—उक्तम्—आरब्धकार्ययोः पुण्यापुण्यकर्मणोरुपभोगात् प्रक्षयः संचित-
योश्च तयोः प्रक्षयस्तत्त्वज्ञानादित्यादि, तदपि न संगतम् । तथाहि—उपभोगात्
कर्मप्रक्षये तदुपभोगकालेऽमिलाषपूर्वकमनोवाक्कायव्यापारस्यापरकर्मकारणस्य

सब से पहले महान् हानि तो यही है कि जन्य पदार्थ (काय) भी नित्य हो
जायगा । वह इस प्रकार—पुण्य—पाप रूप कर्मों के फल को उत्पन्न न कर के सत्ता स्वीकार
की गई है, सो कार्यरूप होने पर भी उन में नित्यता का प्रसङ्ग आता है । दूसरी बात यह
है कि—आगामी काल में पुण्य—पाप की उत्पत्ति न स्वीकार करने पर तत्त्वज्ञानियों के लिए,
प्रत्यवाय (दोष) का परिहार करने के लिए नित्य—नैमित्तिक अनुष्ठान करना किस प्रकार
संगत होगा । ऐसा इन का कथन है,

इस पर विचार किया जाता है—

कार्यरूप में परिणत पुण्य और पाप कर्मों का उपभोग से क्षय होता है और
संचित कर्मों का तत्त्वज्ञान से, इत्यादि कथन भी संगत नहीं है । उपभोग से कर्मों का
क्षय मानने पर कर्मों का उपभोग करते समय इच्छापूर्वक मन वचन और कायाका व्यापार

सौथी प्रथम महान् हानि तो ओं छे के जन्य पदार्थ (कार्य) यत्तु नित्य
थर्ध नश्ये ते आ प्रभाञ्जे—पुण्यपापरूप कर्मोना क्षणने उत्पन्न न करता नित्यतानो
स्वीकार करवाभा आये छे ते कार्यरूप होवा छ्ताय यत्तु तेमा नित्यतानो प्रसंग
आवे छे भील वात ओ छे के—आगामी कालमा पुण्यपापनी उत्पत्ति नहि
स्वीकारवाथी तत्त्वज्ञानीओ माटे प्रत्यवाय (दोष) नो परिहार करवा माटे नित्य-
नैमित्तिक अनुष्ठान करवुं ते केवी रीते संगत थशे आ प्रभाञ्जे तेमनु कथन छे.

तेना पर विचार करवाभा आवे छे —

कार्यरूपमा परिष्णत पुण्य अने पाप कर्मोना उपभोगथी क्षय थाय छे. अने
संचित कर्मोना तत्त्वज्ञानथी धल्यादि कथन यत्तु संगत नथी उपभोगथी कर्मोना क्षय
मानवाथी, कर्मोना उपभोग करवा समये इच्छापूर्वक मन, वचन अने कायाको व्यापार

संभवात् पुनः मञ्जुरतरप्रुष्यपापकर्मसङ्गात्वे कथमात्यन्तिक कर्मक्षयः स्यात् ।

नहि केवलस्य सम्यग्ज्ञानस्य आगामिकर्मानुत्पत्तिसामर्थ्यं विद्यते, किन्तु पारित्रसहितस्यैव सम्यग्ज्ञानस्य संक्षितकर्मक्षये आगामिकर्मानुत्पत्तौ च सामर्थ्यं समाप्यते । सम्यग्ज्ञानेन हि मिथ्याज्ञानस्य निवृत्तिः । ततश्च रागद्वेषाद्यभावेन हिंसादिपापक्रियानिवृत्तिरूपपारित्रसहायोगाद् नवीनकर्मानुत्पत्तिर्मवसि । तद्वत् संक्षित कर्मक्षयोऽपि पारित्रसहाकृतसम्यग्ज्ञानादय मवति । यद्यपि ज्ञानमात्रेण नाममात्रेण वा न व्याधिं निवर्तयति, किन्तु तत्संबन्धादिक्रियापरिणत्यैव, तद्वत् पारित्रसहितसम्यग्ज्ञानेनैव कर्मक्षयः ।

होगा, और यह व्यापार नवीन कर्मबन्ध का कारण है, इस लिए फिर बहुत से पुण्यकर्म और पापकर्म संक्षित हो जायेंगे । ऐसी दशा में आत्यन्तिक कर्मक्षय किस प्रकार होगा ?

अनेक्य सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ नहीं है । हाँ पारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संक्षित कर्मों के क्षय में और आगामी कर्मों की उत्पत्ति रोकने में समर्थ हो सकता है । सम्यग्ज्ञान से मिथ्याज्ञान की निवृत्ति होती है । फिर राग-द्वेष आदि का अभाव हो जाने से हिंसादि पाप क्रिया की निवृत्तिरूप पारित्र की सहायता से नवीन कर्मों की उत्पत्ति रुकती है । इसी प्रकार संक्षित कर्मों का क्षय भी पारित्र से युक्त सम्यग्ज्ञान से ही होता है । जैसे—जोपधि ज्ञानमात्र से या नाम देने मात्रसे व्याधि को दूर नहीं करती किन्तु सेवन करने से ही दूर करती है, उसी प्रकार पारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञान से ही कर्मों का क्षय होता है ।

क्यों, जाने ते व्यापार नवीन कर्मोपधनुं कपयुं छे जे भाटे इरी अर्थात् उपध-पाप कर्म संक्षित कर्म क्यो क्योनी अत्यान्तिक कर्मक्षय करी रीते क्यो ?

केवल सम्यग्ज्ञान आगामी कर्मोनी उत्पत्तिने रोकना समर्थ नहीं है । पारित्रसहित सम्यग्ज्ञान संक्षित कर्मोना क्षयमां जाने आगामी कर्मोनी उत्पत्ति रोकनामां समर्थ नहीं रहे छे सम्यग्ज्ञानकी मिथ्याज्ञानकी निवृत्ति बाध छे । पछी राग-द्वेष वजरेना अभाव कर्म क्योनी हिंसादि पापक्रियानी निवृत्तिरूप पारित्रकी सहायताकी नवीन कर्मोनी उत्पत्ति बन्दे छे जे प्रभावे संक्षित कर्मोना क्षय पयु पारित्रकी युक्त सम्यग्ज्ञानकी बाध छे । ऐसी रीते जोपधना ज्ञानमात्रकी अथवा जोपधनुं नाम देवाकी व्याधि दूर करी नहीं, परन्तु सेवन करवाकी व दूर बाध छे । ते प्रभावे पारित्रयुक्त सम्यग्ज्ञानकी कर्मोना क्षय बाध छे

યથા—ઉષ્ણસ્પર્શસ્યાગામિશીતસ્પર્શાનુત્પાદનસામર્થ્યં પૂર્વકાલિકશીતસ્પર્શઘ્ન-
સેડપિ ચ સામર્થ્યં લોકે દૃષ્ટમ્, તદ્વચારિત્રસહિતસમ્યગ્જ્ઞાનસ્યાપિ સકલ-
કર્મક્ષયસામર્થ્યં ભવતિ ।

ઇદમત્રાવધેયમ્—સમ્યગ્જ્ઞાનં તદેવાસ્તિ, યત્ સ્વલ્પ પરિણામિજીવાજીવાદિવિ-
ષયકમ્, ન ત્વેકાન્તતોડપરિણામિકૂટસ્થનિત્યાત્માદિવિષયકમ્, તસ્ય વિપરીતાર્થવિષય-
કતયા મિથ્યાત્નરૂપત્વાત્ । યદિ પુનઃ સ્વરૂપચારિત્રસહિતસમ્યગ્જ્ઞાનસ્યાગ્નિરૂપત્વં
સ્વીકૃત્ય નિઃશેષકર્મક્ષયસામર્થ્યમડ્ગીક્રિયતે, “યથૈધાંસિ સમિદ્વોડગ્નિઃ” ઇત્યાદિ-
વચનેન તર્હિ મન્મતસિદ્ધ એવાર્થસ્તેન સાધિત ઇતિ ।

જૈસે ઉષ્ણ સ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શ કી ઉત્પત્તિ કો રોકતા હૈં ઓર પૂર્વ કાલીન
શીતસ્પર્શ કા નાશ કરને મેં મી સમર્થ હોતા હૈ, યહ વાત લોક મેં દેસ્વી જાતી હૈ । ડસી
પ્રકાર ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન મી સમસ્ત કર્મોં કૈ ક્ષય મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

સારાશ યહ હૈ કિ—સમ્યગ્જ્ઞાન વહી હૈ જો જીવ—અજીવ આદિ કો પરિણામી
જાનતા હૈ । આત્મા આદિ કો એકાન્તઅપરિણામી, કૂટસ્થ નિત્ય સમજને વાલા જ્ઞાન
સમ્યગ્જ્ઞાન નહીં હૈ । યહ જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુ કા બોધક હોને સે મિથ્યા હૈ । હાં, અગર
સ્વરૂપ ચારિત્ર સે યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાન કો અગ્નિ કૈ સમાન માન કર ડસકો સવ કર્મોં કૈ
ક્ષય કા કારણ માનતે હો, જૈસા કિ કહા હૈ— “વઢી હુર્ડ અગ્નિ ઇન્ધન કો મસ્મ
કરતી હૈ” યહ તો હમારે હી મત કા સમર્થન કિયા ગયા હૈ, અર્થાત્ યહ કથન હમેં મી
ઇષ્ટ હી હૈ ।

જેવી રીતે ઉષ્ણસ્પર્શ, આગામી શીતસ્પર્શની ઉત્પત્તિને રોકે છે, અને પૂર્વ
કાલીન શીતસ્પર્શનો નાશ કરવામા પણ સમર્થ થાય છે. આ વાત લોકમા જોવામા
આવે છે, તે પ્રમાણે ચારિત્રસહિત સમ્યગ્જ્ઞાન પણ સમસ્ત કર્મોના ક્ષય માટે સમર્થ
થાય છે

સારાશ એ છે કે—સમ્યગ્જ્ઞાન તેજ છે કે જે—જીવ—અજીવ આદિને પરિણામી
બને છે આત્મા આદિને એકાન્ત અપરિણામી, કૂટસ્થ, નિત્ય સમજવાવાળું જ્ઞાન તે
સમ્યગ્જ્ઞાન નથી. તે જ્ઞાન વિપરીત વસ્તુનું બોધક હોવાથી મિથ્યા છે હા. અગર
સ્વરૂપ ચારિત્રથી યુક્ત સમ્યગ્જ્ઞાનને અગ્નિસમાન માનીને તેને સર્વ કર્મોના ક્ષય
કારણ માનો છે, જેવી રીતે કહ્યું છે કે—“જેમ વધેલી અગ્નિ લાકડાને બાળી નાખે
છે.” એ તો અમારાજ મતનું સમર્થન કર્યું છે, અર્થાત્ તે કથન તો અમારે પણ ઇષ્ટ છે.

इति संक्षेपतः कर्मवादिप्रकरणं वर्णितम् । विस्तरस्तु यथास्तत्र
मवगन्तव्यम् ।

॥ अथ क्रियावादिप्रकरणम् ॥

यः पुनरेवं कर्मबन्धवेदी मन्व्यः कर्मस्वरूपनिरूपणपरः स एव कर्मवादी
कस्तुतः क्रियावादीत्याह—‘क्रियावादी’ इति । कर्त्तव्यं क्रिया । क्रियते जीवेन इति
वा क्रिया । कर्मबन्धनिबन्धना चेष्टा । एषा मनोवाङ्कायसम्बन्धिनी यथासंभवं
योगं ठप्स्यते । अथवा—पुनक्ति जीवो यं वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं
पर्यायं स योगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं मनोयुक्तात्ममवेशगतवीर्यपरिणमनं
मनोयोगः । वीर्यान्तरायक्षयोपशमजनितं वाक्संयुक्तात्ममवेशगतवीर्यपरिणमनं

इस प्रकार संक्षेप में कर्मवादी के प्रकरण का वर्णन किया गया है । अधिक विवरण
ग्रन्थों से समझ लेना चाहिए ।

क्रियावादी का प्रकरण ।

जो मन्व जीव इस प्रकार कर्मबन्ध का श्राता है, और कर्म के स्वरूप का निरूपण
करने वाला है वही कर्मवादी सन्धा क्रियावादी है ।

कर्त्तव्य क्रिया है । जन्मा जीव के द्वारा जो की शाय वह क्रिया है । कर्मबन्ध
का कारण चेष्टा क्रिया है । मन, वचन काय सम्बन्धी यह क्रिया यथासम्भव योग
कहालती है । जन्मा जिस के द्वारा जीव वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम से जन्मित
पर्याय से युक्त बनता है, उसको योग कहते हैं । वीर्यान्तराय के क्षयोपशम से जन्मित
मन-युक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन मनोयोग कहालता है । वीर्यान्तराय
के क्षयोपशम से जन्मित वचनयुक्त आत्मप्रदेशों में रहे हुए वीर्य का परिणमन वचनयोग

आ प्रभाष्ये संक्षेपतः कर्मवादीनां प्रकरणं वर्णितं कर्त्तव्यं आन्तुं छि, अधिक
विवरणं शास्त्रोदी धर्मल जैवु ज्येष्ठं जे.

क्रियावादीनु प्रकरणं.

जे जन्म एव आ प्रभाष्ये कर्मबन्धना श्राता छि जने कर्मना स्वरूपं निरूपण
करनावाला छि; तेन कर्मवादी आत्मा क्रियावादी छि

कस्तु ते क्रिया छि जन्म एव द्वारा जे कर्त्तव्यं आवे ते क्रिया छि कर्मबन्धनु
कारणं चेष्टा, क्रिया छि मन, वचन, काय सम्बन्धी जे क्रिया यथासम्भव योग कहेवाय छि
जन्मना जेना द्वारा एव वीर्यान्तराय-कर्मना क्षयोपशमभी उत्पन्न यथासंयुक्त जने
छि, तेने योज कहे छि वीर्यान्तरायना क्षयोपशमभी उत्पन्न, मनयुक्त आत्म-
प्रदेशीमां रहेवा वीर्यना परिणमन ते मनोयोग कहेवाय छि वीर्यान्तरायना क्षयोपशमभी

વાગ્યોગઃ । વીર્યાન્તરાયક્ષયોપશમજનિતં કાયયુક્તાત્મપ્રદેશગતવીર્યપરિણમનં
કાયયોગઃ । સા ચ ક્રિયા સકલકર્મવન્ધસ્ય કારણમ્, અતઃ કર્મવાદી ભવ્યઃ
ક્રિયાં સકલકર્મકારણસ્વરૂપતયાઽસ્તમપરિણતિરૂપત્વેન ચ વિજાનાતિ, તસ્માત્
સકલકર્મવન્ધકારણમાત્મપરિણતિરૂપા ચ ક્રિયેતિ વેદિતા, ક્રિયાવાદી-ક્રિયાસ્વરૂપ-
કથનસ્વભાવો વેદિતવ્ય ઇત્યર્થઃ ।

ક્રિયા કર્મણઃ કારણમિતિ ભગવતા ભગવતીસૂત્રે નિગદિતમ્, તથાહિ—

“મંડિઅપુત્તા ! જાવં ચ ણં સે જીવે સયા સમિયં ઇયઙ્, વેયઙ્, ચલઙ્,
ફંદહ, ઘટ્ટઙ્, યુન્મઙ્, ઉદીરઙ્, ત તં ભાવં પરિણમઙ્, તાવં ચ ણં સે જીવે આરંભઙ્
સારંભઙ્ સમારંભઙ્, આરંભે વટ્ટઙ્ સારંભે વટ્ટઙ્, સમારંભે વટ્ટઙ્, આરંભમાણે સારંભમાણે
સમારંભમાણે આરંભે વટ્ટમાણે સારંભે વટ્ટમાણે સમારંભે વટ્ટમાણે વહૂણં પાણાણ
ભૂયાણં જીવાણં સત્તાણં દુક્ખાવણયાણ, સોયાવણયાણ, ઘ્રૂરાવણયાણ, તિપ્પાવણયાણ,
પરિયાવણયાણ વટ્ટઙ્, સે તેણ્ણેણ મંડિઅપુત્તા ! ઇવં વુચ્છઙ્-જાવ ચ ણં સે જીવે
સયા સમિય ઇયઙ્ જાવ પરિણમઙ્, તાવં ચ ણં તસ્સ જીવસ્સ અંતે અંતકિરિયા ન
ભવઙ્” (ભગવતી ૩. શત ૩૭.)

કહલાતા હૈ । વીર્યાન્તરાય કે ક્ષયોપશમ સે જનિત, કાયયુક્ત આત્મપ્રદેશો મેં રહે હુએ વીર્ય
કા પરિણમન કાયયોગ કહલાતા હૈ । યહ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધ કા કારણ હૈ, ઇસ લિએ
ભવ્ય પુરુષ ક્રિયા કો સબ કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ સમજ્ઞતા હૈ, અત
“ક્રિયા, સમસ્ત કર્મોં કા કારણ ઓર આત્મા કી પરિણતિરૂપ હૈ” ઇસ પ્રકાર જાનને વાલેકો
ક્રિયાવાદિક્રિયા કે સ્વરૂપ કા કથન કરને વાલા સમજ્ઞના ચાહિએ ।

ક્રિયા, કર્મ કા કારણ હૈ, યહ વાત ભગવાન્ ને ભગવતીસૂત્ર મેં કહી હૈ, વહ
ઇસ પ્રકાર —

ઉત્પન્ન, વચન-યુક્ત આત્મપ્રદેશોમા રહેલા વીર્યના પરિણમન કાયયોગ કહેવાય છે
આ ક્રિયા સકલ કર્મવન્ધનુ કારણ છે એટલા માટે ભવ્ય પુરુષ ક્રિયાને સર્વ કર્મોંનું
કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ સમજે છે તે કારણથી “ક્રિયા સમસ્ત કર્મોંનું
કારણ અને આત્માની પરિણતિરૂપ છે” આ પ્રમાણે બાણવાવાળાને ક્રિયાવાદી-ક્રિયાના
સ્વરૂપનુ કથન કરવા વાળા સમજવા જોઈએ

ક્રિયા એ કર્મનુ કારણ છે, એ વાત ભગવાને ભગવતીસૂત્રમા કહી છે, તે આ
પ્રમાણે છે—

छाया-मण्डितपुत्र ! यावत् स्वस्तु स जीवः सदा समित एवते व्यनते वसति
 स्पन्दते पडते धूम्यति उदीरयते सं स मां परिणमति, तावत् स्वस्तु स जीव आरमते
 संरमते समारमते, आरमते वर्तते सरमते वर्तते समारमते वर्तते, आरममाणः,
 संरममाणः समारममाणः । आरमते वर्तमानः, संरमते वर्तमानः समारमते
 वर्तमानो बहूनां प्राणानां भूतानां जीवानां सत्त्वानां, दुःस्वापन्नतया घोषापन्नतया
 श्वापन्नतया तेषापन्नतया पित्रापन्नतया परित्रापन्नतया वर्तत स्तु सेनार्थेन मण्डितपुत्र !
 एवम् उच्यते-यावत् स्वस्तु स जीवः सदा समित एवते यावत् परिणमति, तावत्
 स्वस्तु तस्य जीवस्य अन्ते अन्तक्रिया न भवति ।

भाषार्थः—

मनोवाक्काययोगसहितस्य जीवस्य सर्वदा क्रियापरिणत्या कम्पन-
 स्वानान्तरगमन-किञ्चिच्चलन-सर्वदिग्गमन-पृथिव्यादिसोम्य-बलात्कारपूर्वकप्रेरयो-
 त्क्षेपणा-पक्षेपणा-स्फुटन-प्रसारणादिपरिणामं प्राप्तस्य पृथिव्यादिजीवानामुप-
 द्रवकरणेन वा, विनाशसकल्पनेन वा, परित्रापनेन वा, मरणसकलदुःख-
 प्रापणतया वा, मियत्रियोगादिदुःखप्रापणतया वा, शोकप्रापणतया वा, शोकाधिक्यजन्य-

“मन वचन और काययोग से सहित जीव सदा क्रियारूप परिणति से कम्पन
 विविध कम्पन, एक स्थान से दूसरे स्थान पर गमन, किञ्चित् चलना सब दिशाओं में
 गमन करना, पृथ्वी आदि को धूम्य करना बलात्कार से प्रेरित करना ऊपर उठाना,
 नीचे करना, सिद्धोदना, फैलना इत्यादि परिणामों को प्राप्त होता है । इस परिणाम के
 कारण जीव को पृथिवीकाय आदि के जीवों को उपद्रव करने से, घातका संकल्प करने से,
 परित्राप पहुँचाने से शत्रुरूप दुःख पहुँचाने से इष्टविभोग व्यदि का कष्ट पहुँचाने से शोक

मन, वचन जने काययोगशी सहित एव सदा क्रियारूप परिवृत्तिशी कचन,
 विविध कचपन, जोक स्थानशी जीवत स्थानपर गमन, किञ्चित् चालनु, सब दिशाओभां
 गमन करनु, पृथ्वी आदिने धूम्य करनु, बलात्कारशी प्रेरित करनु, उपर उग्रवनु, नीचे
 करनु, सिद्धोदनु, फैलानु, इत्यादि परिणामोने प्राप्त आय से आ परिव्यामन्य कारणे
 एवने पृथ्वीकाय आदिना एवोने उपद्रव करवाशी घातने स चक्ष करवाशी, परित्राप
 पहुँचानावाशी, शत्रुरूप दुःख पहुँचानावाशी, शोकनी अधिकताशी भवावाशी शरीरनी

तत्र—कायिक्याधिकरणिकीमाद्वेषिकीभिः क्रियामिस्त्रिक्रियो बीबः कर्माणि प्रमाति । कायिकीनाम—इस्तपादादिभ्यापारब्धम् । अधिकरणिकी—सङ्गतीक्ष्णीकरणादिकम् । माद्वेषिकी—‘एनं मारयामी—स्पष्टममनःसंप्रचारमिति ।

प्राणातिपातं कर्तुंशीबस्य चतुष्क्रियता—कायिक्याधिकरणिकीमाद्वेषिकी पारिवापनिकीमिभ्रत्सुभिः क्रियामिर्मभवति । तत्र—पारिवापनिकीनाम—सङ्गादिघातेन पीडाकरणम् । पञ्चक्रियता उदा भवति यदा प्राणातिपातक्रियाऽपि पञ्चमी भवति । प्राणातिपातक्रियानाम—मीक्षिताद् व्यपरोपणम् । उक्तरीत्या ज्ञानावरणी

कामिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी, इन तीन क्रियाओं का एक होकर बीब कर्मकथ फलता है । हाथ—पैर आदि का छिन्नना कुठाना कौरह कायिकि' क्रिया है । तलवार को तीक्ष्ण करना कौरह 'आधिकरणिकी' क्रिया है । 'इसे मारूंगा' इस प्रकार मन में अशुभ विचार करना 'प्राद्वेषिकी' क्रिया है ।

प्राणातिपात करने का एक बीब चार क्रिया वाला होता है—कामिकी, आधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी और पारिवापनिकी, ये चार क्रियाएँ उस फलती हैं । तलवार आदिका आघात कर के पीछे पहुँचाना 'पारिवापनिकी' क्रिया है । जब प्राणातिपात क्रिया भी बीब कर बाध्या है तब उसे पाना क्रियाएँ फलती हैं । किसी प्राणी को बीबन से विपुक्त कर देना 'प्राणातिपातिकी' क्रिया है । इस प्रकार ज्ञानावरण आदि कर्मों के कारणमूल

कामिकी आधिकरणिकी अने प्राद्वेषिकी, आ चतु क्रियाज्येवाणा बधने एव कर्मकथ करे छे हाथ—पैर आदिने कटावपु—इत्येवु वजेरे कायिकी क्रिया छे । तलवार वजेरेने तीक्ष्ण करवी विजेरे आधिकरणिकी क्रिया छे अने भारीश आ प्रहारने भनभा अशुभ विचार करवे ते प्राद्वेषिकी क्रिया छे

प्राणातिपात करवावाणा एव चार क्रियावाणा होय छे—कामिकी, आधिकरणिकी प्राद्वेषिकी अने पारिवापनिकी, आ चार क्रियाज्ये तेने लावे छे तलवार आदिने आघात करीने पीछे पहुँचाववी ते पारिवापनिकी क्रिया छे अथार प्राणातिपात क्रिया चतु एव करी नाजे छे अथार तेने पाना क्रियाज्ये लावे छे अथार प्राणातिपात एव नधी विमुक्त (मुक्त) करी देवु ते प्राणातिपातिकी क्रिया छे आ अभावे ज्ञानावरणीय आदि

शरीरजीर्णताप्रापणया वा, अश्रुपातादिप्रापणया वा, शरीरपीडोत्पादनया वा, ग्लानिजननेन वा सकलकर्मक्षयात्मिका मुक्तिर्न भवतीत्यर्थः । एवम्भूतस्य जीवस्य चतुर्गतिकदुःखमयसंसारदुस्तरमहारण्यपरिभ्रमणाद् विरामो न संभवतीति भावः ।

क्रियायाः पञ्चविंशतिर्भेदा इति स्थानाङ्गसूत्रे (स्था २ उ. १ । स्था. ३ उ. ३)

कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातः—

प्राणातिपातं कुर्वन् जीवः सप्ताष्टौ वा ज्ञानावरणीयादीनि कर्माणि वध्नाति । तत्रायुर्वन्धे सत्यष्टौ कर्माणि, आयुर्वन्धाभावे सप्त कर्माणि वध्नाति ।

तत्र जीवः कतिभिः क्रियाभिः प्राणातिपातं निष्पादयति ? उच्यते— कदाचित् तिसृभिः क्रियाभिः, कदाचिच्चतसृभिः क्रियाभिः, कदाचित्, पञ्चभिः क्रियाभिः ।

पहुँचाने से शोक की अधिकता से, होने वाली शरीर की जीर्णता पहुँचाने से, अश्रुपात आदि करवाने से, शरीर में पीडा उत्पन्न करने से, ग्लानि उत्पन्न करने से समस्त कर्मों का क्षयरूप मोक्ष प्राप्त नहीं होता । तात्पर्य यह है कि—इस प्रकार के जीव के चार गति के दुःखों से परिपूर्ण ससाररूपी विकट अटवी में भ्रमण करने का अन्त नहीं आता । ”

क्रिया के पच्चीस भेद स्थानाङ्गसूत्र में कहे हैं । (स्था २ उ १, स्था ३ उ. ३)

प्राणातिपात कितनी क्रियाओं से होता है ?

प्राणातिपात करता हुआ जीव ज्ञानावरणीय आदि सात या आठ कर्मों का बन्ध करता है । आयु का बन्ध हो तो आठ कर्मों का अन्यथा सात कर्मों का बन्ध करता है ।

जीव कितनी क्रियाओं से प्राणातिपात करता है । इस का उत्तर यह है—कदाचित् तीन क्रियाओं से, कदाचित् चार क्रियाओं से, कदाचित् पांच क्रियाओं से ।

एषुता पडोयाउवाथी, आंसु पडाववाथी, शरीरमा पीडा उत्पन्न करवाथी, ग्लानि उत्पन्न करवाथी समस्तकर्मोना क्षयश्च मोक्ष प्राप्त थतो नथी तात्पर्यं अ्ये छे के — आ प्रभाष्ये एवनेो आरगतिना दु मोथी परिपूष्युं स साररूपी विकट अटवी (वन)मा भ्रमण्य करवानो अत आवतो नथी

क्रियाना पच्चीस भेद स्थानाङ्ग सूत्रमा कक्षा छे (स्था २-उ-१ स्था. ३-३)

प्राणातिपात केटली क्रियाओथी थाय छे ?

प्राणातिपात करनार एव ज्ञानावरणीय आदि सात अथवा आठ कर्मोना अंध करे छे आयुनेो अथ डोय तो आठ कर्मोना—अन्यथा सात कर्मोना अथ करे छे

एव केटली क्रियाओथी प्राणातिपात करी शके छे ? तेनेो उत्तर अ्ये छे केः—कदाचित् त्रयु क्रियाओथी, कदाचित् आर क्रियाओथी, कदाचित् पांच क्रियाओथी.

बदे सति तु मृगे तस्य हुम्भकस्य पारितापनिकी, पारितापनप्रयोजना क्रिया भवति ।
पाठिते च सति मारुकरूपा प्राणातिपातक्रिया ।

पूर्व क्रियया ज्ञानावरणीयादिक कर्म जन्यते । तत्तत्कर्मफलानुभवनरूपा वेदना
च तत्सम्भावेण भवति । उक्तम्—

“ पुंश्च मते ! किरिया पच्छा वयणा ? पुंश्च वेय्या तच्छा किरिया ?
मंठिमपुत्रा ! पुंश्च किरिया पच्छा वेय्या, नो पुंश्च वेय्या, पच्छा किरिया ” ।

(मग ३ अ ३ उ)

छत्रया-पूर्वं भवन्त ! क्रिया पश्चाद् वेदना ? पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया ?
मोमभित्तपुत्र । पूर्वं क्रिया पश्चाद् वेदना, नो पूर्वं वेदना पश्चात् क्रिया ॥

कुश्यादौ लोहसुत्तिपतः क्रिया-

लोहं लोहमतापनार्थे कुशुले लोहमयेन संदधनेनोत्तिपन् मक्षिपन् वा
प्राक्षेपिकी क्रिया क्मती है । मृग के रंध बाणे पर शिकारी को पारितापनिकी क्रिया
कमती है । मृग का घात करने पर हिंसारूप प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ।

पहले क्रिया से ज्ञानावरण आदि कर्मों का बंध होता है और उस का फल
भोगनारूप वेदना बाद में ही होती है । क्या भी है—

“ हे मगवन् ! पहले क्रिया और फिर वेदना होती है ! अथवा पहले वेदना और
पश्चात् क्रिया होती है ? हे मंठितपुत्र ! पहले क्रिया पश्चात् वेदना होती है । पहले वेदना
और पश्चात् क्रिया नहीं होती ” (मगवती. श ३ उ ३)

कुशुल आदि में लोहा डालने वाले को क्रिया-

तपान के लिए कुशुल (मृग) में लोहे को संदासी से लोहा डालने वाले को

क्रिया बाध है मृग उपर अवावस्था केरधी प्राक्षेपिकी क्रिया बाधे है मृगना लक्ष्य
अथवा शिकारीने पारितापनिकी क्रिया बाधे है मृगने घात करवाधी हिंसारूप
प्राणातिपातिकी क्रिया बाध है

प्रथम क्रियाधी ज्ञानावरण आदि कर्मिना लक्ष बाध, है अने तेनुं इण लोअववा
इय वेदना यधीधीय बाध है इह उ है—

“ हे मगवन् ! पहले क्रिया अने पछी वेदना बाध है ? केपडेबां वेदना अने
पछीधी क्रिया बाध है ? हे मंठितपुत्र ! पहले क्रिया, अने पछीधी वेदना बाध है
पछेसी वेदना अने पछीधी क्रिया घती नभी. ” (मग. श. ३ उ ३)

मृग आदिमां लोह नाभनास्ने क्रिया-

तपाय्य भाटे मृगमां, लोहानी सावृत्तीधी लोह नाभनावाग्ने वाचिकीधी बाधने

યાદિકર્મણાં કારણીભૂતસ્ય પ્રાણાતિપાતસ્ય નિષ્પત્તિસ્ત્રિક્રિયતયા, ચતુષ્ક્રિયતયા પञ्ચક્રિયતયા વા ત્રિધા મવતિ । एवं ચતુर्विंशतिदण्डकेषु विज्ञेयम् ।

મૃગવધોદ્યતસ્ય ક્રિયા—

મૃગવધોદ્યતો લુબ્ધકઃ સ્વલુ વનપર્વતજલાશયાદિષુ મૃગવધાર્થં ગત્વા મૃગગ્રહણાય ગર્તાદિકં તવન્ધનાર્થં ચ પાશં રચયતિ, તદા મૃગવધાર્થં ગમનગર્ત-પાશાદિકરણાત્ તસ્ય કાયિક્યાદિક્કાઃ ક્રિયા મવન્તિ । તન્ન ગમનધાવન-ગ્રહણાદિના ગમનાદિકાયચેષ્ટારૂપા કાયિકી, ગર્તપાશાદિરૂપેણાધિકરણેન નિર્વૃત્તા ક્રિયા આધિકરણિકી, યશ્ચ મૃગેષુ પ્રદેષસ્તેન નિર્વૃત્તા પ્રાદેષિકી ક્રિયા મવતિ ।

પ્રાણાતિપાત કી નિષ્પત્તિ કહીં તીન, ચાર તથા કહીં પાંચ ક્રિયાઓં સે, ઁસે તીન પ્રકાર સે હોતી હૈ । ચૌવીસોં ઢણ્ડકોં મેં ઁસી પ્રકાર સમજના ચાહિણ ।

મૃગવધ મેં ઉદ્યતકો ક્રિયા—

મૃગ મારને કે લિણ ઉદ્યત હુઆ શિકારી વન પર્વત ઁર જલાગય આદિ મેં મૃગકા વધ કરને કે લિણ જાકર મૃગ પકડને કે લિણ સ્વહુા વનાતા હૈ ઁર ઉસે વાંધને કે લિણ જાલ રચતા હૈ । ઉસ સમય મૃગવધ કે લિણ ગમન કરને સે, તથા સ્વહુા ઁવ પાશ તૈયાર કરને સે, ઉસે કાયિકી આદિ ક્રિયાઈ લગતી હૈ । જાના ઢૌડના, પકડના આદિ સે કાયિકચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લગતી હૈ । સ્વહુા ઁર જાલરૂપ અધિકરણોં કે કારણ આધિકરણિકી ક્રિયા હોતી હૈ, મૃગ પર હોને વાલે દેષ કે કારણ

કરોના કારણુભૂત પ્રાણાતિપાતની ઉત્પત્તિ કોઈ સ્થળે ત્રણ, કોઈ ઠેકાણે ચાર તથા કોઈ ઠેકાણે પાચ ક્રિયાઓથી ઁવા ત્રણ પ્રકારથી હોય છે ઁવીશીય ઢડકોમાં આ પ્રમાણે સમજવું નોઈ ઁ

મૃગવધમાં તૈયાર થનારને ક્રિયા—

મૃગને મારવા માટે તૈયાર થયેલો શિકારી વન, પર્વત અને જલાશય આદિમાં મૃગનો વધ કરવા માટે જઈને મૃગ પકડવા માટે ખાડો ખનાવે છે, અને તેને બાંધવા માટે જાલ રચે છે તે સમયે મૃગના વધ માટે ગમન કરવાથી, તથા ખાડો અને પાશ તૈયાર કરવાથી તેને કાયિકી આદિ ક્રિયાઓ લાગે છે. જુ, હોડવું, પકડવું આદિથી કાયિક ચેષ્ટારૂપ કાયિકી ક્રિયા લાગે છે ખાડો અને જાલરૂપ અધિકરણોના કારણે આધિકરણિકી

पयति, स्यान्तः स्यानात्तरं नयति, नीविताद् व्यपरोययति । तत्र कायिक्यादि प्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

वृष्टिज्ञानाय इस्तादिक प्रसारयतः क्रिया—

राशौ निविडान्स्कारे बहुदर्शनामावे सति वृष्टि विज्ञातुमाकाशे यः सक्तु इस्त पाद वा बाहु वा ऊर्ध्वं वा यावत्काल प्रसारयेत् संकोपयेत् तावत्काल एवासौ कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परिष्ठापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर लेजाता है, धीबन से श्रुत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पाँचों क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पाँचों ही क्रियाएँ उसे छगती है ।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले को क्रियाएँ—

राशि के समथ घोर अन्धकार में—बहुदर्शन का समाव होने पर, बर्षा धानने के लिए आकाश में जो हाथ पैर, बाहु, या ऊर्ध्व जब तक प्रसारता है, सिकोछता है, तब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पाँचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीते भस्तिपयना करे छे, ओठ स्थानधी धीबल स्थानमां लर्ध नय छे लयनधी श्रुत (विशुद्ध) करे छे ओवी रीते कस्वामां ते कश्चिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी पञ्चम क्रियाओधी स्पृष्ट याव छे ज्योत् तेने पञ्चम क्रियाओ लावे छे

वृष्टिज्ञान मरे हाथ आदि फैलाववा वालाने क्रियाओ—

राशिनो घोर अन्धकारमां, बहुदर्शनने आभाव होवाधी वरसाड आवे छे के नदि । जे लयवा मरे, आकाशमां ले हाथ, यत्र जाहु अथवा छे जे जे सुधी प्रसारे छे, सकोछे छे, त्मां सुधी ते कश्चिकी आदि प्राणातिपातिकीसुधीनी पाच क्रियाओ तेने स्पर्श छे.

कायिक्यादि-प्राणातिपातिकीपर्यन्ताभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति । एवं लोहेन फालपरशुकुठारकुदालदात्रादिनिर्माणे लोहकारादीना पञ्चक्रियत्वं भवति, अविरत्तिसद्भावात् । एवं घनोपरि स्थापनेन कुट्टनेन भस्त्रया धमापनेन विध्यापनेन प्रज्वालितेन शैत्यकरणार्थं जले तप्तलोहप्रक्षेपेण प्रत्येकतत्तद्व्यापारे पञ्चभिः पञ्चभिः क्रियाभिः स्पृष्टो भवति ।

धनुषा विध्यतः क्रिया-

धनुर्धरः शरैर्व्यापादयन् यावत् धनुर्गृह्णाति, वनुः प्रसारयति, कर्ण-पर्यन्तमाकर्षति, वर्तुलीकरोति, वाणं संयोजयति, ऊर्ध्वं प्रक्षिपति, स्वाभिमुख-मागच्छतो हन्ति, अन्योन्यगात्रं सहतीकरोति, मनाक् स्पृशति, समन्ततः परिता-

कायिकी से प्राणातिपातिकी पर्यन्त पांच क्रियाओं का स्पर्श होता है । इसी प्रकार लोहे से फाल, फरसा, कुल्हाडा, कुदाल, दातला आदि के बनाने में लुहार वगैरह को पांच क्रियाएँ लगती हैं, क्यों कि उस में अविरति मौजूद है । इसी प्रकार घन के ऊपर रखने में, कूटने में, घौं करने में, आग बुझाने में, प्रज्वलित करने में, ठंडा करनेके लिए जल में लोहा डालने में, इस प्रत्येक में पांच २ क्रियाएँ लगती हैं ।

धनुष से वेधने में क्रिया-

धनुर्धारी पुरुष वाण से मारता हुआ जब तक धनुष ग्रहण करता है, धनुष फैलाता है, कानपर्यन्त खींचता है, गोल करता है, उस में वाण जोड़ता है, ऊपर फेंकता है, अपने सामने आते को मारता है, शरीर को सिकोड़ता है, जरा-सा स्पर्श

प्राणुतिपात सुधीनी पाय क्रियाभ्यामेना स्पर्शं थाय छे अये प्रभाष्ये वेदाढाना इल-हुणनी डेस, इरसी, कुवाडा, डेदाढी, दातला आदि अनाववामा लुडार वगेरेने पाय क्रियाभ्यो लागे छे, डारष्य डे तेमा अविरति हुणर छे आ अकारे धषुने उपर राअवामा, इटवामां धोडनीथी धोडवामा, अग्नि धुआवामा, प्रज्वलित करवामा अने वेडुं ठडुं करवा भाटे पाषुीमा नाअवामा. आ प्रत्येक कार्यमा पाय क्रियाभ्यो लागे छे

धनुषथी विधवामा क्रिया-

धनुष धारष्य करनार पुश्च आषुथी मारतो न्यासुधी धनुष अडष्य करे छे, धनुष इलावे छे, डान सुधी जेये छे, गोण करे छे, तेमा आषु जेडे छे, उपर इडे छे, पोताना सामे आवनारने मारे छे, शरीरने स डेये छे, थोडा अवेदा स्पर्श करे छे,

पयति, स्थानतः स्थानात्तर नयति, क्षीयिताद् व्यपरोपयति । तत्र कायिक्यादि
प्राणातिपातिकीपयन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

वृष्टिज्ञानाय इत्यादिक मसारपतः क्रिया—

राशौ निषिडन्स्कारे चक्षुर्दर्शनाभावे सति वृष्टिं पित्रातुमाकाशे पः
सक्त इस्त पाद वा बाहु वा ऊरुं वा यावत्फल मसारयेत् संक्षोचयेत् तावत्काष्ठ
एवासी कायिक्यादिप्राणातिपातिकीपर्यन्तामिः पञ्चमिः क्रियामिः स्पृष्टो भवति ।

करता है, पूरी तरह परित्यापना करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर फैलता है,
जीवन से श्रुत करता है, ऐसा करने में वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पाँचों
क्रियाओं से स्पृष्ट होता है । अर्थात् पाँचों ही क्रियाएँ उसे लगती हैं ।

वृष्टिज्ञान के लिए हाथ आदि फैलाने वाले की क्रियाएँ—

शक्ति के समान शोर अन्वकार में—चक्षुर्दर्शन का अभाव होने पर, वर्षा जानने के
लिए आकाश में जो हाथ पैर, बाहु, या ऊरु धर तक पसारता है, सिफोड्या है,
जब तक ही वह कायिकी आदि प्राणातिपातिकी पर्यन्त पाँचक्रियाओं से स्पृष्ट होता है ।

पूरी रीति परित्यापना करे तो जोर स्थानकी पीछे स्थानमां लक्ष आर से लवनकी
श्रुत (विमुक्त) करे तो जेवी रीति करणमां ते क्षयिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी
पश्चिम क्रियाओंकी स्पृष्ट बाध से अर्थात् तेने पश्चिम क्रियाओं आवे से

वृष्टिज्ञान भये हाथ आदि फैलानेवा वाजाने क्रियाओं—

शक्ति का शोर अन्वकारमां चक्षुर्दर्शनमां अभाव होनेकी वरसाह आवे से के
नकि ? जो अलुवा भये, आकाशमां जे हाथ पज, बाहु अथवा उरु अथ सुधी प्रसार से,
अर्थात् से तया सुधी ते क्षयिकी आदि प्राणातिपातिकी सुधीनी अथ क्रियाओं तेने स्पृष्ट से

॥ તાલમારુહ તત્કલ પાતયતઃ ક્રિયા ॥

તાલવૃક્ષમારુહ તત્કલં પાતયન્નપિ તાવત્કાલત એવ પશ્ચભિઃ કાયિકયાદિ-
ક્રિયાભિઃ સ્પૃષ્ટો ભવતિ ।

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનાનિ—

(૧) પ્રાણાતિપાતઃ—

જીવાનાં પ્રાણાતિપાતાધ્યવસાયેન પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । હિંસાપરિણામ-
કાલ એવ પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । પ્રાણાતિપાતાદીનામધ્યવસાયમાત્રાદપિ જ્ઞાના-
વરણીયાદિ કર્મ જન્યતે । ઉક્તશ્ચ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંવમાણાણં ” ઇતિ ।

તાલવૃક્ષ પર ચઢ કર ફલ ગિરાનેવાલે કો ક્રિયાઈ—

તાલ વૃક્ષ પર ચઢ કર ઉસ કે ફલ ગિરાતા હુઆ તવ તક કાયિકી આદિ પાંચ
ક્રિયાઓં સે સ્પૃષ્ટ હોતા હૈ ।

અઠારહ પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોં કા પ્રાણાતિપાત કરને કે અધ્યવસાય સે પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । હિંસા-
રૂપ પરિણામ કે સમય હી પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । પ્રાણાતિપાત કા અધ્યવસાય હોને
માત્ર સે મી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—

“ પરિણામિયં પમાણં ણિચ્છયમવલંવમાણાણં ”

અર્થાત્ પ્રાણાતિપાત કરને કા નિશ્ચય કરને વાલે કા પરિણામ હી કર્મવન્ધ કા કારણહૈ

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓનો
સ્પર્શ કરે છે

અઠાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસા-
રૂપ પરિણામના સમયે જ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા
માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે કે—

“ પરિણામિય પમાણ ણિચ્છયમવલંવમાણાણ ”

અર્થાત્—પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામ જ કર્મવન્ધનું કારણ છે.

इयं च प्राणातिपातक्रिया पशुजीवनिकायविषये भवति । यथा—रम्वादी सर्पादिबुद्ध्या मारणाभ्यवसायोऽपि जीवविषयक एव । तत्र हि—‘सर्वोऽप्य’ मितिबुद्ध्या मारणाभ्यवसायो ज्ञायते, तस्मात् रज्जुं प्रति सर्पवपमावयुक्तः सर्पवपमन्यया प्राणातिपातक्रियया स्पृष्टो भवति । अग्नीविषयको मारणाभ्यवसायस्तु नैव संभवति, यथा रज्जुं रज्जुस्त्वेन पिश्याय न कश्चिद्रज्जुविषये मारणाभ्यवसायं करोति तस्मात् पशुं जीवनिकायेष्वेव प्राणातिपातक्रिया भवति, न त्वजीवविषय इति । उक्तञ्च—

“कश्चि न मते । जीवायं पाप्माद्वाणं किरिया कश्चि । । गोयमा छसु जीविकापसु” इति

मह प्राणातिपात क्रिया पशुजीवनिकाय के विषय में होती है । रस्ती आदि में सर्प आदि की भावना से मारने का अभ्यवसाय होना भी जीवविषयक ही अभ्यवसाय है । वहाँ ‘यह सर्प है’ इस प्रकार की भावना से मारने का अभ्यवसाय होता है, अत एव वहाँ रस्ती में सर्प के बचके भाव से कुछ पुरुष सर्पवपमन्य प्राणातिपात क्रिया से स्पृष्ट होता है । अग्निविषयक मारने का अभ्यवसाय तो हो ही नहीं सकता है—रस्ती को रस्ती समझ कर कोई रस्ती में मारने की भावना नहीं करता अतः पशुजीवनिकायों में ही प्राणातिपातिकी क्रिया प्रवृत्त होती है, अग्नेय में नहीं । कहा भी है—

“मगवन् । किन् में जीवो को प्राणातिपातिकी क्रिया होती है ! गौतम ! एह जीविकायो में” ।

अथ प्राणातिपात क्रिया पशुजीवनिकायना विषयमां ज्ञायते । तस्मात् अग्निमां सर्पआदिनी ज्ञाननाथी मारणानो अभ्यवसाय यतो ते पशु लवविषयक अभ्यवसाय उ त्वां आ सर्प उ’ अथ प्रकारनी ज्ञाननाथी मारणानो अभ्यवसाय ज्ञायते ज्ञेयता कारणथी त्वां रस्ती-दोशमां-सर्पना वधनी ज्ञाननाथुक्त पुरुष सर्पवपमन्य प्राणातिपात क्रियाने स्पृष्टे उ । अलवविषयक मारणना अभ्यवसाय ते अर्धं ज्ञेयता नथी-रस्तीने रस्ती (दोशनी) समलने ज्ञेय रस्ती-दोशमां मारणानी ज्ञाननाथ ज्ञेयता नथी ते आटे पशुजीवना ज्ञाननाथ प्राणातिपातनी क्रिया प्रवृत्त ज्ञेय उ अलवमां नदि कश्चु पशु उ—

“अत्रवन् । जेमां ज्ञेयाने प्राणातिपातिकी क्रिया ज्ञायते । गौतम । एह जीविकायोमां ।

॥ તાલમારુહ તત્કલ પાતયતઃ ક્રિયા ॥

તાલવૃક્ષમારુહ તત્કલં પાતયન્નપિ તાવત્કાલત એવ પશ્ચમિઃ કાયિકયાદિ-
ક્રિયામિઃ સ્પૃષ્ટો ભવતિ ।

અષ્ટાદશ પાપસ્થાનાનિ—

(૧) પ્રાણાતિપાતઃ—

જીવાનાં પ્રાણાતિપાતાધ્યવસાયેન પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । હિંસાપરિણામ-
કાલ એવ પ્રાણાતિપાતક્રિયા ભવતિ । પ્રાણાતિપાતાદીનામધ્યવસાયમાત્રાદપિ જ્ઞાના-
વરણીયાદિ કર્મ જન્યતે । ઉક્તશ્ચ—

“ પરિણામિયં પમાણં ગિચ્છયમવલંબમાણાણં ” ઇતિ ।

તાલવૃક્ષ પર ચઢ કર ફલ ગિરાનેવાળે કો ક્રિયાઈ—

તાલ વૃક્ષ પર ચઢ કર ઉસ કે ફલ ગિરાતા હુઆ તવ તક્ર કાયિકી આદિ પાંચ
ક્રિયાઓં સે સ્પૃષ્ટ હોતા હૈ ।

અઠારહ પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોં કા પ્રાણાતિપાત કરને કે અધ્યવસાય સે પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । હિંસા-
રૂપ પરિણામ કે સમય હી પ્રાણાતિપાતક્રિયા હોતી હૈ । પ્રાણાતિપાત કા અધ્યવસાય હોને
માત્ર સે મી જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન હોતે હૈ । કહા મી હૈ—

“ પરિણામિયં પમાણં ગિચ્છયમવલંબમાણાણં ”

અર્થાત્ પ્રાણાતિપાત કરને કા નિશ્ચય કરને વાલે કા પરિણામ હી કર્મવન્ધ કા કારણહૈ

તાલવૃક્ષપર ચઢીને ફલ પાડનારની ક્રિયાઓ—

તાલવૃક્ષ પર ચઢીને તેના ફળ પાડે છે ત્યા સુધી કાયિકી આદિ પાંચ ક્રિયાઓના
સ્પર્શ કરે છે

અઠાર પાપસ્થાન—

(૧) પ્રાણાતિપાત—

જીવોના પ્રાણાતિપાત કરવાના અધ્યવસાયથી પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે હિંસા-
રૂપ પરિણામના સમયેજ પ્રાણાતિપાતક્રિયા થાય છે પ્રાણાતિપાતનો અધ્યવસાય થવા
માત્રથી પણ જ્ઞાનાવરણ આદિ કર્મ ઉત્પન્ન થાય છે કહ્યું છે કે —

“ પરિણામિયં પમાણં ગિચ્છયમવલંબમાણાણં ”

અર્થાત્-પ્રાણાતિપાત કરવાનો નિશ્ચય કરવાવાળાના પરિણામજ કર્મજ ધનુ કારણ છે

मत्स्येषु रूपसहस्रेषु स्रपादियु विपयेषु सवति, न तु सकलस्रविपये ।
 उक्तञ्च—

“कस्मिं च मेते । जीवात्म्यं मेदुष्येणं किरिया कञ्जइ ? । गोयमा ! स्वेषु
 वा रूपसहस्रेषु वा दम्बेषु” इति (मग १ उ ६ उ)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः—स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । स च प्राणिनामपिकलीमाह समस्त-
 पस्तुविपये प्राहुर्मवति ।

कृत्याकृत्यविवेकोन्मूक्तोऽक्षमारूप आत्मपरिणामः क्रोधः ६ । मानो=
 गर्भः ७ । माया=बाह्यम् ८ । सोमो=मृच्छुता ९ । राग=भीतिरासक्तिर्वा १० ।

मी सब वस्तुओं में नहीं होता । चित्र, कप्य, या काष्ठ आदि में अद्विष्ट क्रिये जाने वाले
 रूपों में या बी आदि में ही मैथुन का अभ्यवसाय होता है । कहा मी है—

“मगन् । किस विषय में बीज मैथुन किया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और
 रूप-सुख विषयों (चित्रों आदि) में । (मग वा. १, उ. ६)

(५) परिग्रहः—

“यह वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ” इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह
 करते हैं । प्राणियों में क्रम की अपिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो
 सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अक्षमारूप भ्रमा का परिणाम
 (६) क्रोध कहलता है । गर्भ को (७) मान और कपट को (८) माया करते हैं ।

पक्ष सर्व वस्तुषोऽर्थां नशी चित्र दोष्य अथवा काष्ठ आदिभिः चितस्वभावां आवेत्वा
 इषिभिः अथवा श्री आदिभावां मैथुननां अभ्यवसाय साध उ कर्तुं पक्ष उ :—

“कस्यवन् । क्या विषयों में एव मैथुन किया करे उ ?

गौतम ! रूपों में और रूपसुख विषयों (चित्रों आदि) में (मग ०१ उ-१-६)

(५) परिग्रहः—

“जो वस्तु भारी उ-हुं तेने भाविक उ ” का प्रशस्नी भूषनि परिग्रह
 कहे उ मूर्च्छाभावां दोषान्नी अपिकता दोषान्ना कश्चे सर्व वस्तुषोऽर्थां भूषो दोष उ
 कर्तव्य-अकर्तव्यना विवेकने नाश करवावाण, अक्षमात्पच अत्तमानु परिणाम ते
 दोष कहेवाच उ (१) मग ने मान (७) अने कपटने भाषा कहे उ (८) शक्ति ते

(૨) મૃષાવાદઃ—

સતોऽપલાપોઽસતશ્ચ પ્રરૂપણં મૃષાવાદઃ । સ સર્વદ્રવ્યપર્યાયવિશેષયે ભવતિ ।

(૩) અદત્તાદાનમ્—

અદત્તસ્ય=દેવગુર્વાદિભિરનનુજ્ઞાતસ્યાદાનં=પ્રહણમ્=અદત્તાદાનમ્, યદ્ વસ્તુ ગ્રહીતું ધારયિતું વા શક્યતે, તદ્વસ્તુમાત્રત્રિપયકમાદાનં ભવતિ, ન તુ તદન્યવસ્તુ-વિષયકમ્, ઉક્તञ્ચ—

“કમ્હિ ણં મંતે ! જીવાણં અદિન્નાદાણેણં કિરિયા કજ્જઙ્ઠ ? । ગોયમા ગહણધારણિજ્જસુ દવ્વેસુ” । ઇતિ (ભગ. ૧ શ. ૬ ઉ.)

(૪) મૈથુનમ્—

સ્ત્રીપુંસયોઃ કર્મ-મૈથુનમ્ । મૈથુનાધ્યવસાયોઽપિ ચિત્રલેપ્યકાષ્ટાદિકર્મ-

(૨) મૃષાવાદ—

સત્ કા અપલાપ કરના ઓર અસત્ કા પ્રરૂપણ કરના મૃષાવાદ હૈ । મૃષાવાદ સમસ્ત દ્રવ્યો ઓર પર્યાયો કે વિષય મેં હોતા હૈ ।

(૩) અદત્તાદાન—

અદત્ત અર્થાત્ દેવ એવ ગુરુ આદિ દ્વારા જિસ કી આજ્ઞા પ્રાપ્ત ન હુઈ હો ઉસકો પ્રહણ કરના અદત્તાદાન હૈ । જો વસ્તુ પ્રહણ કી જા સકતી હૈ યા ધારણ કી જા સકતી હૈ ઉસી વસ્તુ કા આદાન હો સકતા હૈ, અન્ય વસ્તુ કા નહીં । કહા મી હૈ.—

“ભગવન્ ! કિસ વસ્તુ મેં અદત્તાદાન કે દ્વારા ક્રિયા કી જાતી હૈ ? ગૌતમ ! પ્રહણ કરને ઓર ધારણ કરને યોગ્ય દ્રવ્યો મેં (ભગ., શ ૧, ઉ ૬)

(૪) મૈથુન—

મિથુન અર્થાત્ સ્ત્રી ઓર પુરુષ કા કાર્ય મૈથુન કહલાતા હૈ । મૈથુન કા અધ્યવસાય

મૃષાવાદ—

સત્-ને ખોટું કહેવું અને અસત્-ને સાચું કહી તેનું પ્રત્યક્ષ કરવું તે મૃષાવાદ—સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોના વિષયોમા થાય છે.

(૩) અદત્તાદાન—

અદત્ત અર્થાત્ દેવ-ગુરુ આદિદ્વારા જેની આજ્ઞા મળી ન હોય, તેવી વસ્તુને અહંબુ કરવી તે અદત્તાદાન છે જે વસ્તુ અહંબુ કરી શકાય છે, અથવા ધારણ કરી શકાય છે તે વસ્તુનું આદાન થઈ શકે છે ખીજી વસ્તુનું નહિ કહ્યું પણ છે—

ભગવન્ ! કઈ વસ્તુમા અદત્તાદાન દ્વારા ક્રિયા થઈ શકે છે ? ગૌતમ ! અહંબુ કરવા અને ધારણકરવા યોગ્ય દ્રવ્યોમા.” (ભાગ શ ૧ ઉ. ૬)

(૪) મૈથુન—

મૈથુન અર્થાત્ સ્ત્રી અને પુરુષનું કાર્ય મૈથુન કહેવાય છે, મૈથુનના અધ્યવસાય

मतरूपेषु रूपसङ्गतोपे सुखादिषु विषयेषु भवति, न तु सकम्बस्तुविषये ।
उक्तञ्च—

“कम्बिं वां मते ! जीवान् मेहुषेणं किरिया कज्जइ ? । गोवमा ! रूपेसु
वा रूपसङ्गापसु वा दम्बेसु” इति (मग १ उ १ उ)

(५) परिग्रहः—

परिग्रहः—स्वस्वामिभावेन मूर्च्छा । उ च प्राणिनामधिक्येनात् समस्त-
वस्तुविषये प्रादुर्भवति ।

कृत्याकृत्यविशेषकोन्मूलकोऽज्ञमारूप आत्मपरिग्रामः क्रोधः ६ । मानो=
गर्भः ७ । माया=शठपम् ८ । लोभो=गुञ्जुता ९ ? । राग=वीविरासक्तिर्वा १ ।

भी सब वस्तुओं में नही होता । चित्र, केम्प, या काष्ठ आदि में अधिकृत किये जाने वाले
रूपों में या जी आदि में ही मैथुन का अभ्यवसाय होता है । कहा भी है—

“भागवन् ! किं विषय में जीव मैथुन किया करते हैं ? गौतम ! रूपों में और
रूप-युक्त विषयों (स्त्रियों आदि) में । (मग १, उ १)

(५) परिग्रहः—

‘यद् वस्तु मेरी है मैं इसका स्वामी हूँ’ इस प्रकार की मूर्च्छा को परिग्रह
कहते हैं । प्राणियों में ज्ञान की अधिकता होने के कारण सभी वस्तुओं में मूर्च्छा हो
सकती है ।

कर्तव्य-अकर्तव्य के विवेक को नष्ट करने वाला अज्ञमारूप भ्रमा का परिग्राम
(१) क्रोध कहलाता है । गर्भ को (७) मान और कपट को (८) माया कहते हैं ।

यसु सर्व वस्तुज्जोभां नधी । चित्र देष्य अथवा काष्ठ आदिमां जितस्वामां ज्ञवेत्ता
इषिमां अथवा जी आदिमां मैथुनोना अभ्यवसाय भाव उ कहुं यसु उ ।—

“लगवन् । क्या विषयमा एव मैथुन किया करे उ ?

गौतम ! रूपोंमां अने इपयुक्त विषयो (स्त्रियो आदि)मां (मग ०१ उ १-१-७)

(५) परिग्रहः—

“ज्य वस्तु भारी उ-हुं तेने भक्ति छ आ प्रकारनी भूछिने परिग्रह
कहे उ प्रकृतीज्जोभां डोअनी अधिकवा डोअना कारणे सर्व वस्तुज्जोभां भूछो डोअ उ
उत न्य-अकर्तव्यना विवेकने नाथ कस्यवाणा, अज्ञमारूप अरभाहुं परिक्रम ते
डेअ इडेवाय उ (१), जर् ने भान (७), अने कपटने अथा कहे उ (८), अदि ते

द्वेष=अप्रीतिः ११ । कलहो=विरोधः १२ । अभ्याख्यानम्=असदोपारोपणम् १३ ।
 पैशुन्यं=कर्णान्तिकादीं परोक्षे विद्यमानस्याविद्यमानस्य वा दोषस्योद्घाटनम् १४ ।
 परपरिवादः=प्रभूतजनसमक्षं परदोषप्रकाशनम् १५ । रत्यरतिः=विषयेष्वनुरागो
 रतिः, धर्मेऽनभिरुचिररतिः, रतिसहिता-अरतिः रत्यरतिः, इदमेक पापस्थानम् १६ ।
 मायामृषा=मायासहितो मृषावादः, इदमप्येकं पापस्थानम् १७ । मिथ्यादर्शन-
 शल्यम्=मिथ्यादर्शनं मिथ्यात्वं तदेव शल्यमिव विविधव्यधाजनकत्वात् मिथ्या-

गृह्णि-(९) लोभ है, प्रीति या आसक्ति (१०) राग हैं, और अप्रीति को (११) द्वेष
 कहते हैं, (१२) कलह अर्थात् विरोध । (१३) अभ्याख्यान अर्थात् किसी को झूठा
 दोष लगाना । चुगली वगैरह को (१४) पैशुन्य कहते हैं, अर्थात् विद्यमान या अविद्य-
 मान दोष को पीठ पीछे प्रकाशित करना । बहुत से लोगों के समक्ष दूसरे के दोष
 प्रकाशित करना (१५) परपरिवाद है । विषयों में अनुराग होना रति और धर्म में
 अनुराग न होना अरति है, रतिसहित अरति को (१६) रत्यरति कहते हैं । यह एक
 पापस्थानक है । माया से युक्त मृषावाद (१७) मायामृषा कहलाता है, यह भी
 एक पापस्थानक है । शल्य के समान विविध प्रकार की व्यथाएँ उत्पन्न करने वाला
 मिथ्यात्व (१८) मिथ्यादर्शनशल्य कहलाता है, अर्थात् कुदेव कुगुरु और कुधर्म को

दोष है (९). प्रीति अथवा आसक्ति ते राग छे (१०) अने अप्रीतिने द्वेष कहे छे
 (११). कलह अर्थात् विरोध (१२) अभ्याख्यान अर्थात् कोठना पर जुठो आरोप भूकवो
 ते (१३) चुगली वगैरेने पैशुन्य कहे छे, अर्थात् विद्यमान अथवा अविद्यमान दोषोने
 पाछणथी प्रकाशित करवा (१४). धरुा दोडोना समक्ष भीजना दोषो प्रकाशित करवा
 ते परपरिवाद छे (१५) विषयोमा अनुराग थवो ते रति छे, अने धर्ममा अनुराग
 नहि थवो ते अरति छे, रतिसहित अरतिने रत्यरति कहे छे आ पषु ओक पाप
 स्थानक छे (१६) मायाथी युक्त मृषावाद ते मायामृषा कहेवाय छे ते पषु ओक
 पापस्थानक छे (१७) शल्यनी प्रभाण्णे विविध प्रकारनी पीडाओ उत्पन्न करवावाजा
 मिथ्यात्व मिथ्यादर्शनशल्य कहेवाय छे, अर्थात् कुदेव कुशुइ अने कुधर्मने सुदेव

दर्शनस्यम्—कुदेव—सुगुरु—सुधर्मेषु सुदेवावियुद्धिः १८। एतान्यष्टादश पापस्थानानि।
एताभिः क्रियामिर्जाय कर्म बन्धाति ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियायादिमकरणम् ॥

क्रिया क्रियात्मनः परिणामः। तेन क्रियावत्त्वं कर्तृत्वं चात्मनः सिध्यति।
तत्कालिकक्रियासम्बन्धादात्मनस्त्रिकाच्छवित्त्वं च सिध्यतीत्याशयेनाह “अकरिस्सं”
इत्यादि।

॥ सूत्रम् ॥

अकरिस्सं चर्द्धं, कारवेसुं चर्द्धं, करभो यावि समजुन्ने भविस्सामि। एयावति
सन्धावति हागसि कम्मसमारंभा परिजाभियब्धा भवंति ॥ सू. ६ ॥

सुदेव सुगुरु और सुधर्म समझना मिथ्यादर्शनस्य है। ये अष्टादश पापस्थानक हैं।
इन अष्टादश प्राणतिपात आदि क्रियाओं से जीव को कर्मों का बन्ध होता है। ॥ सू. ५ ॥

॥ इति क्रियानादिमकरणम् ॥

क्रिया आत्मा का एक परिणाम है। उस से आत्मा का क्रियावत्त्व या कर्तृत्व
सिद्ध होता है, और अमुक—अमुक—कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध से यह भी सिद्ध होता है
कि—“आत्मा त्रिकास्वर्गी है” यह बात जब बतलाई जाती है—‘अकरिस्सं चर्द्धं’
इत्यादि।

मूलार्थ—मैंने क्रिया या मैं करता हूँ और करने वाले को मैं अनुमोदना करूँगा।
यह सब लोक में कर्मसमास्म जानने चाहिए। सू. ६ ॥

सुसुद्धं कर्णे सुधर्मं समज्ज्वाते भिक्खादर्शनस्यम् छे (१८). आ अदार पाप स्थानक
छे आ अदार प्राणतिपात आदि क्रियाओंकी लपने कर्मोना लप बन्ध छे (सू. ५)
अति क्रियायादिमकरणम्

क्रिया आत्मनु जोक परिणाम छे तेनाथी आत्मनु क्रियावत्त्व लपवा कर्तृत्व
सिद्ध बाध छे, कर्णे अमुक—अमुक—कालीन क्रियाओंना स लपथी के पद्य सिद्ध बाध छे
हे—आत्मा त्रिकास्वर्गी छे. ते पद्य कने लतापवार्मा आने छे—अकरिस्सं चर्द्धं इत्यादि
मूलावर्ति—मे कथुं मे कथन्तु कर्णे कथवाचणने मे अनुमोदन आत्तु
आ अर्द्धं दोहर्मा कर्म—सम्भरण लपुवा जोधजे (सू. ६)

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाह, कुर्वतश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ टीका ॥

‘अकार्षं चाहम्’ इति । अत्र ‘च’-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानु-
मोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं
कुर्वन्तमन्यमन्वमृमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । ‘कारयामि चाहम्’ इति, अत्र
‘च’-शब्देन वर्तमानकालिककृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, । तेन-(१)
अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-‘अकरिस्स चऽहं’ यहाँ जो ‘च’ का प्रयोग किया है, उस से यह अर्थ
समझना चाहिए कि-“मैंने अनुमोदन किया था ।” इस प्रकार मैंने किया, करवाया और
अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

‘कारवेसुं चऽहं’ यहाँ भी ‘च’ पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः
मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ, इन तीन भेदों का कथन
समझना चाहिए ।

“करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि” यहाँ भी ‘च’ पद से भविष्यकालीन
करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन करूंगा, मैं
स्वयं करूंगा और मैं कराऊंगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ अर्हि जे ‘च’ नेा प्रयोग कर्यो छे, तेथी जे
अर्थ समजवो जेछे जे के-‘जे करव्युं छुं’ आ प्रभाषे ‘जे’ क्युं, करव्युं,
अने जे अनुमोदन आप्यु, आ त्रषु जेहोनुं कथन समजवुं जेछे जे

‘कारवेसुं चऽहं’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी जे क्रियाज्येनुं अहंषु थाय छे. तेथी ‘जे’
क्युं, जे करव्युं, अने जे अनुमोदन आप्यु’ आ त्रषु जेहोनुं कथन समजवुं जेछे जे.

‘करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी भविष्यकालीन करीश
अने करवीश. ते अर्थ जेवो जेछे जे करव्युथी ‘करवावाणाने हुं अनुमोदन
करीश, हुं स्वयं करीश अने हुं करवीश’ जे क्रियाना त्रषु जेहं समज जेवो जेछे जे.

कुर्वतेऽपि समनुद्धो मविष्यामि, इति । अप्रापि 'च'-शब्दोपादानेन मविष्य-
त्कातिक्रुतकारितक्रियाद्वयस्यापि प्रथमम् । 'समनुद्धः' इत्यस्य समनुद्धाता अनुमो-
दयितेत्यर्थः । तथा च—(१) अहमन्यस्य कुर्वतोऽनुमोदयिता मविष्यामि, (२)
स्वयमहं करिष्यामि, (३) अहं करयिष्यामि, इति मेदन्वय क्रियायाः भवति ।
कुर्वतेऽप्यपीत्यत्र 'अपि'—शब्दोपादानेन घास्तां नानां क्रियाणां मनोवाक्यमेवेन
सप्तविधतिर्मज्ञा भवन्ति ।

आत्मवाचकमहमिति पदे पुरस्कृत्य 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदोपादानात्
"सर्वाः क्रिया आत्मपरिणामरूपाः" इति बोधितम् । एतेन "आत्मा निष्क्रियः"
इति सांख्यसिद्धिर्निराकृतम् ।

'यापि' शब्द में जो 'अपि' पद है, उस से यह समझना चाहिए कि—इन नौ क्रियाओं
के मन बचन और कर्मके भेद से सचाईस भेद हो जाते हैं । अर्थात् प्रत्येक नौ क्रियाएँ
मन से की जाती हैं बचन से की जाती हैं, और कर्म से भी की जाती हैं, अतः उनके
सचाईस भेद हो जाते हैं ।

आत्मा के वाचक अहम् (मैं) पदको प्रधान करके 'अकार्षम्' इत्यादि क्रियापदों
का प्रथम करने से यह सूचित किया गया है कि—ये सब क्रियाएँ आत्मा का ही परिणाम
हैं । इस सूचना से आत्माको निष्क्रिय मानने वाले सांख्य आदि मतों का निराकरण हो
सका है ।

'यापि' शब्दों को 'अपि' पर से तैली को सम्बन्ध जोड़ने से नव
क्रियाओंका मन, बचन करने कर्त्तव्यता सेटली सत्तावीश भय भय से, अर्थात् पूर्वोक्त
नव क्रियाओंका मनभी करी शक्य है बचनभी करने कर्त्तव्यी चयु करी शक्य है,
तैली तेना सत्तावीश सेट बर्ध भय से

आत्माने वाचक अहम् ई-पहने प्रधान सपीने अकार्षम् अदि क्रिया-
पदोंका प्रथम करवायी जो सूचन करवायां जानु से से—को सब क्रियाओंका आत्मानुव
चरिष्याम से आ सूचनभी आत्माने निष्क्रिय मानवावाण्ड सांख्य आदिना मतनु
निराकरण बर्ध भय से

॥ छाया ॥

अकार्षं चाहं, कारयामि चाहं, कुर्वन्तश्चापि समनुज्ञो भविष्यामि । एतावन्तः सर्वे लोके कर्मसमारंभाः परिज्ञातव्या भवन्ति ॥सू. ६॥

॥ टीका ॥

‘अकार्षं चाहम्’ इति । अत्र ‘च’-शब्दोपादानेन भूतकालिककारितानु-
मोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, तेन-(१) अहमकार्षम् (२) अहमचीकरम् (३) अहं
कुर्वन्तमन्यमन्वमूमुदम्, इति भेदत्रयं भवति । ‘कारयामि चाहम्’ इति, अत्र
‘च’-शब्देन वर्तमानकालिकृतानुमोदितक्रियाद्वयस्यापि ग्रहणम्, । तेन-(१)
अहं कारयामि, (२) अहं करोमि, (२) अहमनुमोदयामि, इति भेदत्रयं भवति ।

टीकार्थ-‘अकरिस्स चऽहं’ यहाँ जो ‘च’ का प्रयोग किया है, उस से यह अर्थ
समझना चाहिए कि-“मैंने अनुमोदन किया था ।” इस प्रकार मैंने किया, करवाया और
अनुमोदन किया, तीन भेदों का कथन हुआ है ।

‘कारवेसुं चऽहं’ यहाँ भी ‘च’ पद से दो क्रियाओं का ग्रहण होता है, अतः
मैं कराता हूँ, मैं करता हूँ, और मैं अनुमोदन करता हूँ, इन तीन भेदों का कथन
समझना चाहिए ।

“करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि” यहाँ भी ‘च’ पद से भविष्यकालीन
करने और कराने का अर्थ लेना चाहिए, अतः करने वाले का मैं अनुमोदन करूँगा, मैं
स्वयं करूँगा और मैं कराऊँगा । ये क्रिया के तीन भेद समझ लेने चाहिए ।

टीकार्थ-‘अकरिस्सं चऽहं’ अर्हि जे ‘च’ नेा प्रयोग कर्थो छे, तेथी जे
अर्थ समजवेो जेधं जे के-‘मे कराव्युं हतुं’ आ प्रभाषे ‘मे’ कथुं, कराव्युं,
अने मे अनुमोदन आप्यु, आ त्रषु वेदोनुं कथन समजवुं जेधं जे

‘कारवेसुं चऽहं’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी जे क्रियाओनुं ग्रहणुं थाय छे तेथी ‘मे’
कथुं, मे कराव्यु, अने मे अनुमोदन आप्यु’ आ त्रषु वेदोनुं कथन समजवुं जेधं जे.

‘करओ यावि समणुन्ने भविस्सामि’ अर्हि पषु ‘च’ पदथी भविष्यकालीन करीश
अने करावीश. ते अर्थ लेवेो जेधं जे जे करवुथी ‘करवावाणाने हुं अनुमोदन
करीश, हुं स्वयं करीश अने हुं करावीश’ जे क्रियाना त्रषु वेद समजुं लेवेो जेधं जे.

मविष्यामीति चिन्तान्तेन कोटरस्यपद्धिना मरुदुम इव सततोऽस्मीति भावः ।

लोके=जिनशासने, सर्वे कर्मसमारम्भाः=कर्मोपि ज्ञानावरणीयादीनि समारम्भे न्यनयन्ति ये क्रियाविशेषास्ते कर्मसमारम्भाः । एतावन्त एव, नातोऽपिका इत्यर्थः, परिष्ठातव्या मवन्ति-परिष्ठापिपयीकृत्य ज्ञेया ज्ञेयाश्च भवन्तीत्यर्थः । परिष्ठा दि विधिषा-इपरिष्ठा, प्रत्याख्यानपरिष्ठा च । तत्र इपरिष्ठाया सप्तविंशतिमङ्गरूपाः कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः विज्ञेयाः । प्रत्याख्यानपरिष्ठाया च सर्वे कर्मसमारम्भाः क्रियाविशेषाः कर्मबन्धहेतवः प्रत्याख्यातव्या इति भावः ॥ सू० ६ ॥

धीपी से बर्बरित हो जाता है । जब मैं तु समझ सतार से किस प्रकार छुटकारा पाऊँगा ? इस तरह की चिन्तारूपी जन्मि से मैं ऐसा संतप्त हूँ जैसे 'कोटरस्थ जन्मि से धीपी कुछ मीटर ही मीटर मरम् हो जाता है ।

— "लोके में बर्बरित जिनशासने में रहने ही ज्ञानावरणीय ज्ञानि कर्मों को उत्पन्न करने वाले कर्मसमारम्भ हैं, इन से न्यून या अधिक नहीं" । यह परिष्ठा विषय करने योग्य है, बर्बरित परिष्ठा से ही ये सब ज्ञेय और ज्ञेय होते हैं । परिष्ठा दो प्रकारकी है- इ-परिष्ठा और प्रत्याख्यान-परिष्ठा । इन में से सत्तर्कस संग रूप कर्मसमारम्भ (क्रियाविशेष) इपरिष्ठा से जानने चाहिए, और प्रत्याख्यान-परिष्ठा से कर्म के कारण समस्त कर्मसमारम्भों का त्याग करना चाहिए ॥ सू. ६ ॥

वचनाजोप्रधी बर्बरित बर्ध ज्ञेय उ उवे तु दुःखमय स साधवी सुदुःखो देवी रीते धाम्नीय ? अ-प्रभावे चिन्तारूपी जन्मिधी दु-जोवे-संतप्त सु-के-जोम-कोटरस्थ (कठनी जजोवभा स्तेतु) जन्मिधी लुप्त वृक्ष जदरने जदरज अरभ बर्ध ज्ञेय उे.

दोहमें जघोत् चिन्तासतभं जनावरणीय ज्ञानि कर्मोने उत्पन्न ; ज्ञेयाव्याज्या ज्ञातव्याश्च कर्मसमारम्भ उे, तेनाधी ज्ञाज के बधारे नहीं. ज्ञ परिष्ठा विषय कत्या योग्य उे जघोत् परिष्ठाधी ज्ञा-जघा जेव जने-जेव धाय उे परिष्ठा से प्रकारनी उे (१) स-परिष्ठा जने (२) प्रत्याख्यान-परिष्ठा, तेनाधी सत्तर्कस संग रूप कर्म समारम्भ (क्रिया-विशेष) स-परिष्ठाधी जघोत् जेधजे, जने प्रत्याख्यान-परिष्ठाधी कर्मोने उत्पन्न समस्त कर्मसमारम्भोने त्याज करवे जेधजे. (सू० ६)

एकस्य चात्मनस्त्रिकालवर्तितत्क्रियासम्बन्धेन क्षणिकवादोऽपि निरस्तः । किञ्च-
आत्मपरिणतिरूपा क्रियां कुर्वन्नात्मा स्वस्य त्रिकालस्थायित्वं मतिज्ञानमात्रेण
जानातीति भगवता बोधितम् । तेनात्मनि विषये प्रत्यभिज्ञाऽप्येवं प्रादुर्भूति-

येन मया मृगतृष्णाम्भसा मृगवद् विविधविषयैराकृष्टेन गर्ते मुग्ध-
मृगवन्मोहगर्ते निपतितेन सुखलिप्सयाऽऽरम्भपरिग्रहरूपसावधक्रियापरायणतया
वृथायुः क्षपितम्,

स एवाहं सप्रति वातैर्गिरिशिखरद्रुम इव जन्मजरामरणाधिव्याधि-
विविधदुःखसंपृक्ततुच्छसुखभोगैर्जर्जरीकृतः कथमस्माद् दुःखजालससारान्मुक्तो

एक ही आत्माका त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओं के साथ सम्बन्ध दिखलानेसे
क्षणिकवाद का भी खण्डन किया गया है । भगवान्ने यह भी प्रकट कर दिया है
कि-अपनी परिणतिरूप क्रियाएँ करता हुआ आत्मा मतिज्ञान से ही यह जान लेता है कि-
यह (आत्मा) त्रिकालवर्ती है । इससे आत्मा के विषयमें इस प्रकारका प्रत्यभिज्ञान
उत्पन्न होता है—

“जैसे मृगतृष्णा में फँसकर मूढ मृग कण्ट पाता है उसी प्रकार भ्रंति-भ्रंति
के विषयों से आकृष्ट हो कर मोहरूपी गडहे में गिर कर सुख की लालसा से जिसने
आरम्भ-परिग्रह-रूप सावध क्रियामें उद्यत हो कर वृथा आयु गँवाई थी वही मैं आज
जन्म, जरा, मरण, आधि, व्याधि वगैरह विविध प्रकार के दुःखों से परिपूर्ण और तुच्छ
इन्द्रिय-भोगोद्धार ऐसा जर्जरित कर दिया गया हूँ, जैसे पर्वत के उपर का पेड़

येकज आत्मानु त्रिकालवर्ती अमुक-अमुक क्रियाओंनी साथे सम्बन्ध देभाऽ
वाथी क्षणिकवादनुं पणु अंडन करवाभा आऽयु छे लगवाने ये पणु प्रगट करी
दीधु छे के-पेतानी परिणतिरूप क्रियाओं करतो आत्मा मतिज्ञानथीज् ये लक्ष्मी दे
छे के-ते त्रिकालवर्ती छे ये कारणथी आत्माना विषयभा आ प्रकारनु प्रत्यभिज्ञान
उत्पन्न थाय छे

जेम मृगतृष्णामा इसाधने मूढ मृग कष्ट पाभे छे ते प्रभाणु जल-जलना
विषयोथी आकृष्ट थधने-जे साधने मोहरूपी भाडामा पडी जधने सुभनी लालसाथी जे
आरल परिग्रहरूप सावध क्रियामा उद्यमी थधने वृथा आयु गुमाऽयु छेत्तुं, ते हुं आने
जन्म-जरा-मरण-आधि-व्याधि वगेरे विविध प्रकारना हुं जोथी परिपूर्ण अने तुच्छ
इन्द्रियभोगो द्वारा येवे जर्जरित करवाभा आऽयो छु के जेम-पर्वत उपरनुं आऽ

कृतं कर्म=कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा । अज्ञातापरित्यक्त
 ज्ञानापरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यावदयं बीजः क्रिया-
 स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यक्तवि, तावद् द्रव्य
 मासोमयविधां दिष्टं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति—'अनेकरूपाओ' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

अनेकरूपाओ बीबीओ संवेद, विस्वरूपे फासे पडिसंवेद ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा यानीः संपपति, विस्वरूपात् स्पष्टान् प्रति संवेदयति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा बीजः अनेकरूपा=विधिधाः योनीः=प्राग्जिनामुत्पत्ति
 स्वानानि, संपपति=प्राप्नोति । अयमात्मा पूर्वमव नाशानन्तरं क्षीरान्तरग्रहणाय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं । भाष्य यह है कि—संसारी जीव अतक कर्मरूप की कारणभूत
 क्रियाओं को जान नहीं लेता और त्याग नहीं देता, तबतक वह द्रव्यभावकम होने का प्रकार
 को विषयों में परिभ्रमज करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं— अनेकरूपाओ इत्यादि ।

मूलार्थ—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अनेकरूप योनिना को प्राप्त होता है और नान्य
 प्रकार की यातनाओं को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा बीज विविध प्रकार की योनियों को अर्थात् जीवों के
 उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वमव का अन्त होने के अनन्तर बीज मदीन धरति

ये ठे ठे—संसारी एव अर्थात् सुधी कर्मजधनी कारणभूत क्रियाजोने जाड़ी देता नहीं
 जाने तबत देता नहीं तब सुधी ते द्रव्य-भावकम अन्ते प्रकृष्टनी दिष्टाजोभां परि
 भ्रमज करते रहे थे (सू० ७).

ये अर्थने इरी अधिक स्पष्ट करे थे— अनेकरूपाओ " इत्यादि.

मूलार्थ—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अनेकरूप योनिजोने प्राप्त याव थे अने
 नान्य प्रकृष्टनी यातनाजोने भोगते थे. (८)

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा एव विविध प्रकारनी योनिजोने अर्थात्-एवोना
 उत्पत्तिस्थानेने प्राप्त करे थे. पूर्वमवने अन्त कवा अनन्तर एव नवीन शरीर अर्थात्

॥ મૂલમ્ ॥

અપરિણાયક્રમ્મા खलु अयं पुरिसे जो इयाओ दिसाओ अणुदिसाओ
अणुसंचरह, सन्वाओ दिसाओ सन्वाओ अणुदिसाओ साहेह ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अपरिज्ञातकर्मा खलु अयं पुरुषः यः इमा दिशा अनुदिशा वा अनुसंचरति,
सर्वा दिशाः सर्वा अनुदिशाः सहैति ॥ सू० ७ ॥

टीका—

‘अपरिणायक્રम્મા’ इत्यादि । यः इमा दिशा अनुदिशा अनुसंचरति-
कर्मपरतन्त्रः संश्रुतुर्गतिकसंसारं प्राप्य दिक्षु विदिक्षु च परिभ्रमति । तथा-सर्वा-
दिशा अनुदिशाः सहैति । इह सर्वशब्देन द्रव्यभावोभयविधदिशो ग्रहणम् ।
द्रव्यभावदिशः सह=ज्ञानावरणीयादिकर्मभिः साकम् एति=गच्छति प्राप्नोतीत्यर्थः ।
यत्तच्छब्दयोर्निश्चयसाकाङ्क्षतयाऽत्र यच्छब्देन स इति परामृश्यते । सः अयं पुरुषः=
जीवः खलु=निश्चयेन अपरिज्ञातकर्मा अस्तीति शेषः । न परिज्ञातं=परिज्ञाविषयी-

मूलार्थ—अपरिज्ञातकर्मा यह पुरुष इन दिशाओं और विदिशाओं में परिभ्रमण करता
है और सब दिशाओं एव अनुदिशाओं को प्राप्त होता है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—कर्म से परतन्त्र जीव चार गतिरूप ससार को प्राप्त होकर दिशाओं
में और विदिशाओं में परिभ्रमण करता है । तथा समस्त दिशाओं और अनुदिशाओं को
प्राप्त होता है, अर्थात् द्रव्य-दिशाओं एव भाव-दिशाओं (ज्ञानावरण आदि कर्मों) के
साथ प्राप्त होता है । वह जीव निश्चयपूर्वक अपरिज्ञातकर्मा है । कर्म की कारणमूल
क्रियाओं का स्वरूप जिसने न जाना हो वह अपरिज्ञातकर्मा कहलाता है । अथवा जिसने
ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों की कारणमूल क्रियाओं का त्याग न किया हो उसे भी

मूलार्थ—अपरिज्ञात कर्मा आ पुत्र आ दिशाओ अने विदिशाओमां परि
भ्रमण करे छे, अने सर्व दिशाओ ओव अनुदिशाओने प्राप्त थाय छे. (७)

टीकार्थ—कर्मથી પરતન્ત્ર જીવ ચાર ગતિરૂપ સસારને પ્રાપ્ત થઇને દિશાઓમા
અને વિદિશાઓમા પરિભ્રમણ કરે છે, તથા સમસ્ત દિશાઓ અને અનુદિશાઓને
પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ દ્રવ્યદિશાઓ અને ભાવદિશાઓની સાથે પ્રાપ્ત થાય છે તે
જીવ નિશ્ચયપૂર્વક અપરિજ્ઞાતકર્મા છે; કર્મની કારણમૂલ ક્રિયાઓના સ્વરૂપને જે નજીક
નથી તે અપરિજ્ઞાતકર્મા કહેવાય છે. અથવા જેને જ્ઞાનાવરણ આદિ આઠ કર્મોની
કારણમૂલ ક્રિયાઓનો ત્યાગ ન કર્યો હોય તેને પણ અપરિજ્ઞાતકર્મા કહે છે. આશય

कृतं कर्म—कर्मकारणीभूतक्रियास्वरूपं येन, सोऽपरिज्ञातकर्मा । अज्ञातापरित्यक्त
 ज्ञानावरणीयाघटविषकर्मबन्धकारणभूतक्रियास्वरूप इत्यर्थः । यत्प्रदयं जीवः क्रिया-
 स्वरूपं न जानाति, नापि यावत् कर्मबन्धनिबन्धनक्रियाः परित्यजति, तावत् द्रव्य
 माधोमयविधां दिष्टं परिभ्रमतीति भावः ॥ सू० ७ ॥

उक्तार्थमेव स्पष्टयति—'अनेकरूपायो,' इत्यादि ।

॥ सूत्रम् ॥

अनेकरूपायो बोणीभो संवेद, विरूपरूपे फास पडिसंवेद्य ॥ सू० ८ ॥

छाया—

अनेकरूपा यानीः संभवति, विरूपरूपात् स्वर्धान् प्रतिसंवेदयति ॥ सू० ८ ॥

॥ टीका ॥

अपरिज्ञातकर्मा बीजः अनेकरूपा=विविधाः योनीः=आश्रितान्मुत्पत्ति
 स्वानानि, संभवति=प्राप्नोति । अयमात्मा पूर्वमव नाज्ञानन्तरं क्षीरान्तरप्रवृत्त्याय

अपरिज्ञातकर्मा कहते हैं । आद्यम यह है कि—संसारी जीव एकटक कर्मबन्ध की कारणभूत
 क्रियाओं को ध्यान नहीं करता और त्याग नहीं देता, तबतक वह प्रथममात्ररूप दोनों प्रकार
 को दिव्यभोगों में परिभ्रमण करता रहता है । ॥ सू. ७ ॥

इसी अर्थ को और अधिक स्पष्ट करते हैं— अनेकरूपायो इत्यादि ।

सूत्रार्थ—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अनेकरूप योनियों को प्राप्त होता है और नाना
 प्रकार की वास्तव्यों को भोगता है ॥ ८ ॥

टीकार्थ—अपरिज्ञातकर्मा बीज विविध प्रकार की योनियों को धर्वात् बीजों के
 उत्पत्तिस्थानों को प्राप्त करता है । पूर्वमव का अन्त होने के अनन्तर जीव नवीन शरीर

को ले ले—संसारी जीव अर्थात् सुधी कर्मलक्षणी आश्रयभूत विद्याज्ज्ञाने लक्ष्मी लेता नहीं
 जाने तथा लेता नहीं तथा सुधी ते प्रथम-मात्ररूप अने प्रकारनी विद्याज्ज्ञाना परि-
 भ्रमण करते रहे थे. (सू० ७).

वे अर्थने इरी अधिक स्पष्ट करे थे—'अनेकरूपायो' इत्यादि

सूत्रार्थः—(अपरिज्ञातकर्मा बीज) अनेकरूप योनियों को प्राप्त थावे थे अने
 नाना प्रकारनी वास्तव्यों को भोगते थे. (८)

टीकार्थः—अपरिज्ञातकर्मा बीज विविध प्रकारनी योनियों को धर्वात्-लक्ष्योना
 उत्पत्तिस्थानोंने प्राप्त करे थे. पूर्वमवने अत दवा अनन्तर जीव नवीन शरीर लक्ष्य

શરીરાન્તરપ્રાપ્તિસ્થાને યાન્ પુદ્ગલાન્ યૃહ્લાતિ તાન્ વાહ્યપુદ્ગલાન્ કાર્મણેન સહ તપ્તાયઃપિન્ડજલગ્રહણવત્ મિશ્રયતિ ચમ્મિન્-સ્થાને, તત્ સ્થાનં યોનિઃ । પ્રાદુર્ભાવમાત્રં શરીરિણાં જન્મ, इति योनि-जन्मनोभेदः । सा नवविधा । (१) सचित्ता, (२) अचित्ता, (३) सचित्ताचित्ता, (४) शीता, (५) उष्णा, (६) शीतोष्णा, (७) संवृता, (८) विवृता, (९) सवृतविवृता । उक्तञ्च—

“કહવિદ્યાણં મંતે ! જોણી પળ્ણત્તા ? ગોયમા ! તિવિદ્યા જોણી પળ્ણત્તા, તંજહા-સીયા જોણી, ઉસિણા જોણી, સીઆસિણા જોણી । તિવિદ્યા જોણી પળ્ણત્તા, તંજહા-સચિતા જોણી, અચિતા જોણી, મીસિયા જોણી ।

પ્રહણ કરને કે લિષે નવીન શરીર કી પ્રાપ્તિ કે સ્થાન પર જિન વાહ્ય પુદ્ગલો કો પ્રહણ કરતા હૈ, ઉન્હેં જિસ જગહ પર કાર્મણશરીર કે સાથ તપે લોહે કે ગોલે ઓર જલકે સમાન ઇકમેક કરતા હૈ, વહ સ્થાન યોનિ કહલાતા હૈ । જીવોં કા પ્રાદુર્ભાવ હોના જન્મ હૈ । યહ યોનિ ઓર જન્મ મેં અન્તર હૈ । જન્મ કા આધાર યોનિ હૈ, અત યોનિ ઓર જન્મ મેં આધારાધેયભાવ-સમ્બન્ધ હૈ । યોનિ કે નૌ ભેદ હૈ—(૧) સચિત્ત, (૨) અચિત્ત, (૩) સચિત્તાચિત્ત, (૪) શીત, (૫) ઉષ્ણ, (૬) શીતોષ્ણ, (૭) સવૃત, (૮) વિવૃત ઓર (૯) સવૃત-વિવૃત । કહા મી હૈ—

“મગવન્ ! યોનિ કિતન પ્રકાર કો કહી ગઈ હૈ ? ગૌતમ ! તીન પ્રકાર કી યોનિ કહી ગઈ હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ ઓર શીતોષ્ણયોનિ । તથા તીન પ્રકાર કી યોનિ કહી હૈ । વહ ઇસ પ્રકાર—સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ ઓર મિશ્રયોનિ ।

કરવા માટે નવીન શરીરની પ્રાપ્તિના સ્થાન પર જે વાહ્ય પુદ્ગલોને પ્રહણ કરે છે. તેને જે જગ્યા પર કાર્મણશરીરની સાથે તપેલા લોહાનો ગોળો અને જલની સમાન એકમેક કરે છે તે સ્થાન યોનિ કહેવાય છે અને તે પ્રાદુર્ભાવ થવા તે જન્મ છે યોનિ અને જન્મમા એજ અન્તર છે, જન્મનો આધાર યોનિ છે, તેથી યોનિ અને જન્મમા આધાર-આધેય ભાવ સબધ છે યોનિના નવ ભેદ છે—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત (૩) સચિત્તાચિત્ત (૪) શીત (૫) ઉષ્ણ (૬) શીતોષ્ણ (૭) સવૃત (૮) વિવૃત અને (૯) સવૃત-વિવૃત કહ્યું પણ છે—

“લગવન્ ! યોનિ કેટલા પ્રકારની કહી છે ? ગૌતમ ! ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે—શીતયોનિ, ઉષ્ણયોનિ, અને શીતોષ્ણયોનિ. તથા ત્રણ પ્રકારની યોનિ કહી છે તે આ પ્રમાણે છે—સચિત્તયોનિ, અચિત્તયોનિ અને મિશ્રયોનિ, ફરી પણ ત્રણ

सिद्धिवा बोधी पण्णाचा, संवहा-संवुठा बोधी, चिपडा बोधी, संवुडचिपडा बोधी" । (प्रश्नाः योनिपद १९)

जीवप्रदेशैरभिष्टिता योनिः सचिचा, जीवप्रदेशैरसचिष्टिता योनिरचिचा । कचिदंशे जीवप्रदेशैरभिष्टिता, कचिदनभिष्टिता सा सचिचाऽचिचा । यत्र शीतस्पर्शः सा शीवा । यत्रोष्णस्पर्शः सा योनिर्लुण्णा । यत्र कचिदंशे शीतस्पर्शः, कचिदुष्णस्पर्शः सा शीतोष्णा । अमकटिवा संवुठा । प्रकटिवा सिद्धा । यत्र कचिदंशे प्रकटिवा, कचिदप्रकटिवाः सा संवुतचिद्धा योनिः ।

कस्य जीवस्य का योनिर्भवती ?-स्युच्यते-देवनारकाणामचिचा योनिः । देवानां मच्छदपददेवभूष्यान्तरालं योनिः, तत्र जीवप्रदेशैरभितम् । नाराकानां तु

चि चि मी तीन तरह की योनि कही है । वह इस प्रकार-संवृतयोनि विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि । (प्रश्ना योनिपद ९)

जीवप्रदेशों से अभिष्टित योनि अचित्त कहलाती है और जो जीवप्रदेशों से अभिष्टित न हो वह अचित्त कहलाती है । जो योनि कही जीवप्रदेशों से अभिष्टित है और कही अभिष्टित न हो वह मित्र योनि है । वहाँ शीत स्पर्श हो वह शीतयोनि, वहाँ उष्ण स्पर्श हो वह उष्णयोनि और जिस में कही शीत और कही उष्ण स्पर्श हो वह शीतोष्णयोनि है । अमकट योनि संवृत कहलाती है । प्रकट को विवृत कहते हैं और जो कही अमकट और कही प्रकट हो वह संवृतविवृतयोनि है ।

किस जीव की कौन-सी योनि होती है ? वह बताते हैं-देव और नारकी जीवों की अभिष्टित योनि होती है । देवों की योनि मच्छदपद और देवभूष्य के बीच में होती है,

प्रकाली योनि कही है तो क्या प्रभावे उः-संवृतयोनि, विवृतयोनि और संवृत-विवृतयोनि" (प्रश्ना योनिपद ६)

एवमप्रदेशोष्णी अभिष्टिता योनि सचित्त इहेवाय उः अने के एवमप्रदेशोष्णी अभिष्टित न होय ते अचित्त इहेवाय उः ने योनि कहां स्थले एवमप्रदेशोष्णी अभिष्टित होय अने कहां स्थले अभिष्टित न होय ते मित्रयोनि इहेवाय उः अर्थां शीत स्पर्श होय ते शीतयोनि, अर्थां उष्णस्पर्श होय ते उष्णयोनि, अने अर्थां उष्ण शीत अने इत्थं उष्ण स्पर्श होय ते शीतोष्ण योनि उः अमकट योनि संवृत इहेवाय उः अने प्रकट योनिने विवृत इहे उः, अने के कर्थां प्रकट अने कर्थां अमकट होय ते संवृत-विवृत योनि उः

क्या एवमी कर्था योनि उः ? ते बतावे उः-देव-नारकी एवोनी अभिष्टितयोनि होय उः देवोनी योनि मच्छदपद अने देवभूष्यता वचनं होय उः अने ते एव

વજ્રમયવાતાયનકલ્પાઃ કુમ્ભયો યોનયઃ, તા અપિ જીવપ્રદેશરહિતાઃ । યે ગર્ભ-
જાસ્તિર્યશ્ચો મનુષ્યાસ્તેષાં મિશ્રાસચિત્તાચિત્તરૂપા યોનિઃ । સ્યાવરપચ્ચ
કસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપઠ્ઠ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં સમૂર્ઙ્ગિમમનુષ્યાણાં ચ ત્રિવિધા
સચિત્તા ઋચિત્તા, સચિત્તાચિત્તા ચ ।

ગર્ભજમનુષ્યતિરશ્વાં દેવાનાં ચ શીતોષ્ણા યોનિઃ । તેજસ્કાયસ્ય ઉષ્ણા ।
સ્યાવરચતુષ્ટયસ્ય વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય અગર્ભજપઠ્ઠ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં સમૂર્ઙ્ગિમમનુષ્યાણાં
નારકાણાં ચ ત્રિવિધા શીતા, ઉષ્ણા, શીતોષ્ણા ચ યોનિઃ ।

નારકાણાં દેવાનામેકેન્દ્રિયાણાં ચ સંવૃતા યોનિઃ । ગર્ભજાનાં
પઠ્ઠ્વેન્દ્રિયતિરશ્વાં મનુષ્યાણાં ચ સંવૃતવિવૃતા યોનિઃ । વિકલેન્દ્રિયત્રયસ્ય

ઔર વહ જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈ । નારકોં કી યોનિ વજ્રમય વાતાયન કે સમાન કુમ્ભિયોં હૈ ।
વે મી જીવપ્રદેશો સે રહિત હૈ । ગર્ભજ તિર્યંચો ઔર મનુષ્યોં કી મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ
હોતી હૈ । પાંચ સ્થવરોં કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો કી તથા
સમૂર્ઙ્ગિમ મનુષ્યોં કી યોનિ ત્રીનોં પ્રકાર કી (સચિત્ત, અચિત્ત ઔર મિશ્ર) હોતી હૈ ।

ગર્ભજ—મનુષ્યો, તિર્યંચો ઔર દેવોં કી શીતોષ્ણ યોનિ હોતી હૈ । તેજસ્કાય કી
ઉષ્ણ યોનિ હૈ । ચાર સ્થાવરોં કી, ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોં કી
સમૂર્ઙ્ગિમ મનુષ્યોં કી ઔર નારકોં કી ત્રીનોં પ્રકાર કી (શીત ઉષ્ણ ઔર મિશ્ર) યોનિ
હોતી હૈ ।

નારકોં દેવોં ઔર એકેન્દ્રિયોં કી સંવૃત યોનિ હૈ । ગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોં
ઔર મનુષ્યોં કી સંવૃતવિવૃત યોનિ હોતી હૈ । ત્રીન વિકલેન્દ્રિયોં કી, અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય

પ્રદેશોથી રહિત છે. નારકીઓની યોનિ વજ્રમય વાતાયન (બારી)ની સમાન કુમ્ભિયો
છે તે પણ પ્રદેશોથી રહિત છે

ગર્ભજ તિર્યંચો અને મનુષ્યોની મિશ્ર (સચિત્તાચિત્ત) યોનિ હોય છે. પાંચ
સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની તથા સમૂર્ઙ્ગિમ
મનુષ્યોની યોનિ ત્રણ પ્રકારની (સચિત્ત, અચિત્ત અને મિશ્ર) હોય છે

ગર્ભજ મનુષ્યો, તિર્યંચો અને દેવોની શીતોષ્ણ યોનિ હોય છે. તેજસ્કાયની
ઉષ્ણ યોનિ છે આર સ્થાવરોની, ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની, અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચોની
સમૂર્ઙ્ગિમ મનુષ્યોની અને નારકોની ત્રણ પ્રકારની (શીત, ઉષ્ણ અને મિશ્ર) યોનિ હોય છે

નારકી, દેવો, અને એકેન્દ્રિયોની સંવૃત યોનિ છે ગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય તિર્યંચો
અને મનુષ્યોની સંવૃત-વિવૃત યોનિ હોય છે. ત્રણ વિકલેન્દ્રિયોની અગર્ભજ પચ્ઠ્વેન્દ્રિય

अगर्मरूपवेन्द्रियतिरबां समूर्द्धिममनुष्याणां च विवृता योनिः ।

यद्वा—चतुरशीतिस्त्रयस्रमेवेनामेकरूपा योनयः सन्ति, तथा हि—पृथिव्यप्तेजो-
वायुनां मत्स्येकं सप्त सप्त सप्तानि २८, मत्स्येकजनस्पतीनां दश सप्तानि ३८,
साधारणजनस्पतीनां चतुर्दश सप्तानि, ५२, विकलेन्द्रियजनस्य मत्स्येकं द्वे द्वे स्रसे,
इति तेषां बहु सप्तानि ५८, देव-नारक-पञ्चेन्द्रियतिरबां मत्स्येकं चत्वारि सप्तानि इति
तेषां द्वादश सप्तानि ७०, मनुष्याणां चतुर्दश सप्तानि ८४ । एवं सर्वसंक्रमणे
चतुरशीतिस्त्रयस्रानि जीवानां योनयो भवन्ति ।

अनेकविधयोनिप्राप्तौ सत्यामपरिष्कारकर्मा जीव कर्मफलं यथाऽजु
मवति तत् मवर्द्धयति—'विस्मरूपान् प्रतिर्ववेदयति' इति, विस्मरूपान्-दुःख-
तिर्वेदो जीवौ समूर्द्धिम मनुष्यो जीव विवृतयोनि होती है ।

अन्वा-योनियों के चौरसी अस्र मेव भी हैं । वे इस प्रकार हैं—पृथ्वीकाय,
अपकाय, तेजकाय, और वायुकाय, जी सात-सात अस्र योनियों हैं २८, प्रत्येक जनस्पति
की दश अस्र ३८, साधारण जनस्पति की चौदह अस्र ५२, तीन विकलेन्द्रि जी प्रत्येक
की दो-दो अस्र अर्थात् विकलेन्द्रिय की कुल छह अस्र ५८, देवों नारकों और पञ्चेन्द्रिय
तिर्वेदों में प्रत्येक की पार-पार अस्र, कुल बारह अस्र ७०, मनुष्यों की चौदह अस्र ८४,
इस प्रकार कुल चौरसी अस्र जीवयोनियाँ हैं ।

अनेक प्रकार की योनियाँ प्राप्त होने पर अपरिष्कारकर्मा जीव किस प्रकार
कर्मफल मोलता है, सो बतलाने हैं—दुःखजनक होने के कारण इन्द्रियों के अनिष्ट विषयों

तिर्वेदानी अने समूर्द्धिम मनुष्योनी विवृत योनि होय उ

अन्वा-योनियोंना चौरसी बाज सेव पक्ष उ, ते अ् प्रभावे उ—पृथ्वीकाय,
अपकाय, तेजकाय, अने वायुकायनी सात-सात बाज योनियों उ (२८), प्रत्येक
जनस्पतिनी दशबाज (३८) अथवाएक जनस्पतिनी चौदहबाज (५२) अथ विकलेन्द्रियनी
प्रत्येकनी दो दो बाज, अर्थात् विकलेन्द्रियनी कुल छ बाज (५८), देवो नारकीयो,
अने पञ्चेन्द्रिय तिर्वेदोनी प्रत्येकनी पार-पार बाज, तन्नाम मनी बार बाज
(७०) मनुष्योनी चौद बाज (८४) अ् प्रभावे कुल चौरसी बाज एवयोनि उ ।

अनेक प्रकारनी योनियों प्राप्त बना ज्वांअ अपरिष्कारकर्मा एव डेनी रीते
कर्मफल होयवे उ ? ते अन्वावे उ—दुःख जनक करनार होयाना कारणे अन्द्रियोंना अनिष्ट

वज्रमयवातायनकल्पाः कुम्भयो योनयः, ता अपि जीवप्रदेशरहित
जास्तिर्यश्चो मनुष्यास्तेषां मिश्रासचित्ताचित्तरूपा योनिः ।
कस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्वां समूर्च्छिममनुष्याण
सचित्ता अचित्ता, सचित्ताचित्ता च ।

गर्भजमनुष्यतिरश्वां देवानां च शीतोष्णा योनिः । तेजस्का
स्थावरचतुष्टयस्य विकलेन्द्रियत्रयस्य अगर्भजपञ्चेन्द्रियतिरश्वां सं
नारकाणां च त्रिविधां शीता, उष्णा, शीतोष्णा च योनिः ।

नारकाणां देवानामेकेन्द्रियाणां च संवृता योनिः
पञ्चेन्द्रियतिरश्वां मनुष्याणां च संवृतविवृता योनिः ।

और वह जीवप्रदेशों से रहित है । नारकों की योनि वज्रमय वातायन के
से भी जीवप्रदेशों से रहित हैं । गर्भज तिर्यचों और मनुष्यों की मिश्र
होती है । पांच स्थवरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, अगर्भज पञ्चेन्द्रि
समूर्च्छिम मनुष्यों की योनि तीनों प्रकार की (सचित्त, अचित्त और मि
गर्भज—मनुष्यों, तिर्यचों और देवों की शीतोष्ण योनि ह
उष्ण योनि है । चार स्थावरों की, तीन विकलेन्द्रियों की, आगर्भज
समूर्च्छिम मनुष्यों की और नारकों की तीनों प्रकार की (शीत उ
होती है ।

नारकों देवों और एकेन्द्रियों की संवृत योनि है । ग
और मनुष्यों की संवृतविवृत योनि होती है । तीन विकलेन्द्रियों

प्रदेशोत्थी रहित छे नारकीयोनोनी योनि वज्रमय वातायन (१
छे ते पञ्च एवप्रदेशोत्थी रहित छे

गर्भज तिर्यचो अने मनुष्योनी मिश्र (सचित्ताचि-
स्थावरानी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अगर्भज पञ्चेन्द्रिय
मनुष्योनी योनि त्रयेय प्रकारनी (सचित्त, अचित्त अने

गर्भज मनुष्यो, तिर्यचो अने देवोनी शीतोष्ण
उष्णयोनि छे. आर स्थावरानी, त्रय विकलेन्द्रियोनी, अ
समूर्च्छिम मनुष्योनी अने नारकोनी त्रयेय प्रकारनी (शीत,

नारकी, देवो, अने एकेन्द्रियोनी संवृत योनि
अने मनुष्योनी संवृत-विवृत योनि छेय छे. त्रय विः

चातुर्भवति । एवं ज्ञपक्रिया विज्ञाप प्रत्याख्यानपरिज्ञया सावधक्रिया परिस्थान्येति मयप्रता बोधितमिति । इदं च ज्ञानं सहसम्मत्या (अवधि-मनःपर्यय-केवलज्ञानैर्नाधि स्तृत्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्माद्विषयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गं प्रवृत्तिरेव जीवस्य हितकारिणी, अन्यैव हि परमपदं मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःखफलेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीव ? इत्याशङ्क्य पामाह- 'इमस्त चेव' इत्यादि ।

मूलम्-इमस्त चेव जीवियस्त परिवर्तनमाध्याययुक्त्या च आहमरणमोषनाय दुःखस्वद्विषयाहेतु ॥ सू० १० ॥

छाया-मस्त चेव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-आधिमरणमोष नाय दुःखप्रतिपातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

कनेक प्रकार की दुस्सह यातनाएँ मोगता है, इस प्रकार ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यान-परिज्ञा से सावध क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार मयबान्धने उपदेश दिया है । यह बोध-अवधि, मन-पर्यय, केवलज्ञान और आधिस्तरण से होता है, वा मतिज्ञान से होता है । इस क्रिये विषयव्यवहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के सिद्धि हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावध क्रियाएँ दुःख का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशङ्क्य का समाधान करते हैं- 'इमस्त चेव' इत्यादि ।

मूलार्थ-इस जीवन के सिद्धि, परिवन्दन, मानन और पूजन के सिद्धि, कर्म मरण से मुक्त होने के सिद्धि, दुःख दूर करने के सिद्धि, (जीव पापक्रिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १ ॥

सावध व्यापार करता है वह संसारमाँ परिश्रमवत् करे से जाने नरक निषेध आदि-की कनेक प्रकारनी कठिन यातनाओं से। वा प्रभयसे सं-परिज्ञाशी लक्ष्मीने प्रत्या ख्यान-परिज्ञाशी सावध क्रिया त्यागना योग्य है, वा प्रभयसे सावधाने उपदेश आये। से। वा बोध-अवधि, मन-पर्यय, केवलज्ञान अथवा आधिस्तरणशी वाय से ज्ञानना तो अतिज्ञानशी सावध से जो आटे निश्चय-व्यवहाररूप संयममार्गमाँ प्रवृत्ति करनी केव लपने आटे हितकर से जाने ज्ञानशी परमपद मोक्ष प्राप्त से (सू० ९)

ये के सावध क्रियाओं दुःखनु हारण से तो तेमाँ लप प्रवृत्ति या आटे करे से ? जो यो ज्ञानु समाधान करे से- इमस्त चेव उत्तरति ।

मूलार्थ-य लपने आटे, परिबदन, मानन, जने पूजन आटे, व म मरणशी मुक्त था आटे, दुःख दूर करवा आटे (लप पापक्रियामाँ प्रवृत्त थाय से) (१०)

हेतुत्वादशोभनं रूप=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः=अनिष्टाः, तान्, स्पर्शान्= इन्द्रियाणां विषयैः सह सम्बन्धाः स्पर्शाः, तान् प्रतिसंवेदयति=पुनः पुनरनुभवति । अनिष्टविषयसंयोगैः पुनः पुनर्दुःखमेव प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यद्वा—विरूपं=विभिन्नरूपं विभिन्नात्मकं रूपं=स्वरूपं येषां ते विरूपरूपाः =नानाविधस्वरूपाः, तान् स्पर्शान्=दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयति । लक्षणया कार्य-कारणयोरभेदाद्वा स्पर्शजन्या अपि दुःखसंपाताः स्पर्शा इति व्यपदिश्यन्ते । अत्र स्पर्शानित्युपलक्षणं, तेन मानसानामपीष्टवियोगादिजन्यदुःखसंपातानां संग्रहः ।

यद्वा—स्पर्शान्=स्पर्शनेन्द्रियवेद्यान् दुःखसंपातान् प्रतिसंवेदयतीत्यर्थः ।

को भोगता है । इस प्रकार अनिष्ट विषयों का संयोग होने के कारण वह जीव पुन-पुन-दुःख ही अनुभव करता है ।

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाले—नानाप्रकार के दुःखजनक स्पर्शों का संवेदन करता है । लक्षणावृत्ति से, अथवा कार्य-कारण के अभेद की विवक्षा से स्पर्शजन्य दुःख भी स्पर्श ही कहलाते हैं । यहाँ स्पर्श उपलक्षण मात्र है, उस से इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखों का भी ग्रहण समझना चाहिए ।

अथवा—स्पर्श का अर्थ है—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख । जीव उन्हें भोगता है । तात्पर्य यह है कि—जीव अपरिज्ञातपापकर्मा होकर—निर्गोद—आदि नाना

इ प्रकारक विषयेने लोगवे छे, अे प्रभावे अनिष्ट विषयेने संयोग होवाना कारणे ते एव कुरी-कुरी दुःखने अनुभव करे छे

अथवा—विरूप अर्थात् भिन्न-भिन्न स्वरूपवाला नाना प्रकारना दुःखजनक स्पर्शान् संवेदन करे छे लक्षणावृत्तिथी, अथवा कार्यकारणना अभेदनी विवक्षाथी स्पर्शजन्य दुःख पण स्पर्श कहेवाय छे अडि स्पर्श उपलक्षण मात्र छे, तेमां इष्टवियोग आदि मानसिक दुःखानु अडण पण समए लेवुं जेठ अे

अथवा—स्पर्शने अर्थ छे—स्पर्शनेन्द्रियविषयभूत दुःख, एव तेने लोगवे छे तात्पर्य अे छे छे—एव अपरिज्ञातपापकर्मा थधने नरक-निर्गोद आदि अनेके येनिअेमा

अपरिष्ठातकर्मवया नरकनिगोदाघनेकविषयोनीः संमाप्य सर्वे जीवाः विविचकर्मो
व्यात् स्वकर्मफलं नानाविधं दुःस्वमेवानुभवन्तीति भाव ॥ ८ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी बन्धुस्वामिने भगाद-'कृत्ये'-इत्यादि ।

मूमम्—

कृत्य स्वतु भगवया परिष्ठा पवेइया ॥ सू० ९ ॥

छाया—

यत्र स्वतु भगवता परिष्ठा प्रवेदिता ॥ सू० ९ ॥

टीका—

हे बन्धु ! अपरिष्ठातकर्मा जीवो विभावपरिष्णाम कृषन् नानाविध
योनिषु पुनः पुनर्दुःस्वमेव समते । तत्र-अपरिष्ठातकर्मणो जीवस्य कृतकारि
वानुमोदितादिपेदेनोक्तस्य विविचकर्मणो रूपसावयवक्रियासुष्ठानामरकनिगोदादिनाभि
षयानिषु पुनः पुनर्दुःस्वानुभवविषये भगवता भीमहाबीरस्वामिना परिष्ठा

योनिषो में उत्पन्न होकर विविच कर्मों के उद्वेग से अपने-अपने कर्मों का नामविषय दुःस्व-
रूप फल अनुभव करते हैं ॥ सू. ८ ॥

सुधर्मा स्वामी बन्धु स्वामी से कहते हैं-' कृत्य स्वतु इत्यादि ।

सुधर्म्य-भगवान् ने परिष्ठा का उपदेश दिया है ॥ सू. ९ ॥

टीका- हे बन्धु ! अपरिष्ठातपापकर्मा जीव विभाव परिष्णाम धारण करता
हुआ नाना प्रकार की योनिषो में बारंबार दुःख पता है । अपरिष्ठातपापकर्मा जीव के
इस कर्मित अनुमोदय भावि के म्पेद से सचाईस ममरूप सावयवक्रिया के अनुष्ठान से
कर्म निगोद भावि नाना प्रकार की योनिषो में पुनः पुन दुःस्वानुभव करने के विषयमें

कृत्य स्वतु इत्यादि विविचकर्मोना कृत्यधी पेत-पेताना कर्मोना जनेक भूताना इत्यत्र
इत्येना अनुभव करे ३ (सू० ८)

सुधर्मा स्वामी बन्धु स्वामीने कहे ३- कृत्य स्वतु इत्यादि.

सुधर्म्य-भगवाने परिष्ठाने उपदेश आप्ये ३. (६)

टीका- हे बन्धु ! अपरिष्ठातपापकर्मा जीव विभाव परिष्णाम धारण करता
वैको नाना प्रकारकी योनिषोमें बारंबार दुःख पाये ३ अपरिष्ठात-पापकर्मा जीवना
कृती कर्मित जने अनुमोदय भाविना केशधी सचाईस ममरूप सावयव क्रियाना अनुष्ठानधी
मरक-निगोद भावि नाना प्रकारका योनिषोमें पुनः पुनः दुःस्वानुभव इत्यादिना विषयमें
५. भा-१२.

खलु प्रवेदिता । तत्तद्दुःखकारणकर्मबन्धसमुच्छेदार्यं जीवने परिज्ञाञ्चश्यं शरणी-
 करणीयेति भगवता प्रबोधितमिति भावः परिज्ञा=सम्यग्बोधः । परिज्ञा
 द्विविधा ज्ञ-प्रत्याख्यान-भेदात् । 'सावधव्यापारेण कर्मबन्धो भवती'ति ज्ञानं
 ज्ञ-परिज्ञा । कर्मबन्धकारणस्य सावधव्यापारस्य परित्यागः प्रत्याख्यान-परिज्ञा ।
 अत्रेदमवगन्तव्यम्-अतीतकाले मनसा वाचा कायेन च मया सावध-
 क्रिया कृता, कारिता, अनुमोदिता च, तथा वर्तमानकाले सावधक्रियां करोमि,
 कारयामि, कुर्वन्तमप्यन्यमनुमोदयामि । एवं यदि भविष्यत्कालेऽपि सावधक्रियां
 करिष्यामि, कारयिष्यामि करिष्यमाणमन्यमनुमोदयिष्यामि । इत्थमनेकविधसा-
 वधव्यापारं कुर्वन् जीवः संसारे परिभ्रमति, नरकनिगोदाधनेकविधदुस्सहयातनां

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञा की प्ररूपणा की है । दु खों के कारणभूत कर्मों के
 बन्ध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञा का शरण अवश्य ग्रहण करना चाहिए,
 ऐसा भगवान् ने कहा है । परिज्ञा का अर्थ है-सम्यग्ज्ञान । परिज्ञा दो प्रकार की है-
 ज्ञ-परिज्ञा और प्रत्याख्यान परिज्ञा । सावध व्यापार से कर्मबन्ध होता है 'ऐसा जानना
 ज्ञ-परिज्ञा है । और कर्म बन्ध के कारण सावध व्यापारों का परित्याग कर देना प्रत्याख्यान
 परिज्ञा है । यहाँ यह समझना चाहिए कि-भूतकाल में मैंने मन, वचन, काय से सावध क्रिया
 की, कराई और उस की अनुमोदना की, तथा वर्तमान काल में सावध क्रिया करता हूँ, कराता
 हूँ और दूसरे करने वाले का अनुमोदन करता हूँ, इसी प्रकार भविष्यकाल में भी सावध
 क्रिया करूँगा, कराऊँगा, और दूसरे का अनुमोदन करूँगा । इस प्रकार भौतिक-भौतिक का
 सावध व्यापार करता हुआ जीव संसार में परिभ्रमण करता है और नरक निगोद आदि की

भगवान् महावीर स्वामीने परिज्ञानी प्ररूपणा करी छे । दु.खोना कारणभूत कर्मोना
 अ धनो नाश करवा भाटे छवने परिज्ञानु शरणु अवश्य अरुणु करवुं लेछिं अ, अ
 प्रभाणु भगवाने कहु छे परिज्ञानो अर्थ छे सम्यग्ज्ञान परिज्ञा जे प्रकारनी छे-
 (१) ज्ञ-परिज्ञा अने (२) प्रत्याख्यान-परिज्ञा 'सावध व्यापारथी कर्मबंध थायं छे'
 आ प्रकारे समजवुं ते ज्ञ-परिज्ञा छे, अने कर्मबंधना कारणथी सावध व्यापारोने
 त्याग करी देवो ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे अरुं आ प्रभाणु समजवुं लेछिं अ के-
 भूतकालमा मे मन, वचन, कायाथी सावध क्रिया करी छे, करावी छे अने तेने
 अनुमोदन आण्यु छे तथा वर्तमान कालमा सावध क्रिया करे छु, करावु छु, अने
 धीन करवावाणाने अनुमोदन आणुं छु आ प्रभाणु भविष्यकालमा पणु सावध क्रिया
 करीश. करावीश अने धीनने अनुमोदन आणीश आ प्रभाणु अनेक तरेकेना बूढा-बूढा

पान्दुमवति । एवं जपरिग्रया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिग्रया सावधक्रिया परित्याग्येति मगदता बोधितमिति । इदं च द्वानं सहसम्मत्या (अवधि-भनःपर्यय-केवलज्ञानैर्जाति स्युस्या वा) मतिज्ञानेन वा भवति, तस्माच्चिद्वयव्यवहारस्वरूपसंयममार्गे प्रवृत्तिरेव जीवस्य हितकारिणी, अनप्यैव हि परमपद मोक्षो लभ्यते ॥ सू० ९ ॥

ननु तर्हि दुःस्वप्नेषु तेषु क्रियाविशेषेषु किमर्थं प्रवर्तते जीव ? इत्याशङ्क्या पामाह- 'इमस्स वैव' इत्यादि ।

मूलम्—इमस्स वैव जीवियस्स परिवर्तनमावणपुष्पात् आहमरणमोक्ष्यात् दुस्वप्नविधायहेतुं ॥ सू० १० ॥

छाया—अस्य वैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन-पूजनाय-जातिमरणमोक्ष नाय दुःस्वप्नविधातहेतुम् ॥ सू० १० ॥

अन्य प्रकार की दुःसह यातनाय मोगता है, इस प्रकार जपरिग्रह से जानकर प्रत्याख्यान-परिग्रह से सावध क्रिया त्यागने योग्य है । इस प्रकार मगदन्ते उपदेश दिया है । यह बोध-भवधि, मन-पर्यय केवलज्ञान और जातिस्मरण से होता है, वा मतिज्ञान से होता है । इस क्रिये निश्चयमन्वहाररूप संयममार्ग में प्रवृत्ति करना ही जीव के सिद्ध हितकर है और इसी से परमपद-मोक्ष प्राप्त होता है ॥ सू० ९ ॥

अगर सावध क्रियार्थे दुःस का कारण है तो उन में जीव प्रवृत्ति क्यों करता है ? इस आशङ्का का समाधान करते हैं- 'इमस्स वैव' इत्यादि ।

पूरुकार्य—इस जीवन के सिद्ध, परिवन्दन, मानन और पूजन के सिद्ध, अन्न मरण से मुक्त होने के सिद्ध, दुःस हर करने के सिद्ध, (जीव पापकिया में प्रवृत्त होता है) ॥ सू. १ ॥

सावध व्यापार करते हुए असारमां परिग्रहण करे से अने नरक निवेदित आदिपी अनेक प्रकारकी कष्टित यातनाओं को जये से । वा प्रभाषे य-परिग्रहाधी व्यप्रीने प्रत्या ख्यान-परिग्रहाधी सावध क्रिया त्यागना योग्य से वा प्रभाषे अजयने उपदेश आश्रयो से वा बोध-भवधि, मन-पर्यय, केवलज्ञान अथवा जातिमरणमोक्षी वाय से अथवा तो मतिज्ञानधी वाय से जे आटे निश्चय-अवधारणपु संयममार्गमां प्रवृत्ति करणी जेव अपने आटे हितकर से अने जेनाधी परमपद मोक्ष वाय से (सू० ९)

ये हे सावध क्रियाओं दुःखानुं शरण्य से तो तेषां एव प्रवृत्ति या आटे करे से ? जे य कानुं समाधान करे से— इमस्स वैव इत्यादि ।

शुद्धार्थ—वा अपने आटे, परिवन्दन, मानन, अने पूजन आटे, अ म मरणधी मुक्त वना आटे, दुःख हर करणा आटे (एव पापकियां प्रवृत्त वाय से) (१०)

टीका—‘अस्य’ इति-अस्य=प्रत्यक्षमनुभूयमानस्य वारितरङ्गवच्चञ्चलतरस्य, सन्ध्यारागवच्चरितभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य चिरसुखार्थमपरिज्ञातकर्मा जीवः कर्मबन्धहेतुभूतेषु क्रियाविशेषेषु प्रवर्त्तते । यथा-जीवनार्थं लावकतिचिरादिपक्षिणाम्, अजमेपमृगमृगराजादिपशूना वधरूपघोरकर्मसमाचरणम् । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय, तत्र-परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-स्वख्यातिप्राप्त्यर्थं सापराध-निरपराध-प्राणिना हिंसनम् । माननम्=अभ्युत्थानासनदानादिरूपः सत्कारः, स्वाज्ञा-स्वीकारो वा, तदर्थम्, यथा-माननार्थं परेषां हिंसनादिकरणम् । पूजनम्-रत्नवस्त्रादि-पुरस्कारः, प्रतिमादीना पूजाप्रतिष्ठादि च, तदर्थं, प्राण्युपमर्दनरूपहिंसादिसावध-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव किये जाने वाले, जलकौ तरङ्ग के समान अतिशय चञ्चल, सन्ध्या की लालिमा के समान भङ्गुर-जीवन के चिरकालीन सुख के लिए अपरिज्ञातकर्मा जीव कर्मबन्ध की कारणभूत क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । जैसे-जीवित रहने के लिए, लावा, तीतर आदि पक्षियों का और बकरा, मेढा, हिरन एवं सिंह आदि पशुओं का वधरूप घोर पापकर्म का आचरण करना ।

तथा परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए जीव पापकर्म करता है । ‘परिवन्दन’ का अर्थ है प्रशंसा । प्रशंसा के लिए सापराध और निरपराध प्राणियों का घात किया जाता है । उठकर खड़ा होना, आसन देना आदि सत्कार, अथवा अपनी आज्ञा स्वीकार कराना ‘मानन’ कहलाता है, इस के लिए भी दूसरा की हिंसा की जाती है । रत्नों और वस्त्रों आदि का पुरस्कार ‘पूजन’ कहलाता है, और प्रतिमा आदि की पूजा-

टीकार्थ-प्रत्यक्ष अनुभव करवाया आवेला जलना तर गैानी समान अतिशय चञ्चल, सन्ध्यानी लालाश (रातापष्ठा)नी समान लङ्गुर लुवनना लाभा समयना सुभ भाटे अपरिज्ञातकर्मा लुव कर्मबन्धनी कारणभूत क्रियाओंभा प्रवृत्त थाय छे जेवी रीते लुवित रहेवा भाटे लावा तेतर, आदि पक्षीओंना अने बकरा, मेढा, हरण अं प्रभाछे सिंह आदि पशुओंना वधरूप घोर पापकर्मनु आचरण करवुं

तथा परिवन्दन, मानन अने पूजन भाटे पशु लुव पाप कर्म करे छे ‘परिवन्दन’ने अर्थ छे-प्रशंसा, प्रशंसा भाटे अपराधवाणा अने अपराध विनाना प्राणीओंना घात करवाया आवे छे उठीने उला थर्ष जलु आसन आपुलु आदि सत्कार अथवा पोतानी, आज्ञा स्वीकार करावनी ते ‘मानन’ कहेवाय छे, ते भाटे पशु जीवनी हिंसा करवाया आवे छे रत्न अने वस्त्रो आदिना पुरस्कार ते पूजन कहेवाय छे, अने प्रतिमा-

क्रियां करोति । जातिमरणमोषनाय=जातिर्मन्य, तदर्थं भवान्तरसुखपाप्त्यर्थं
 श्रमपापादादिकं समाधरति । मरणार्थम्=मरणं यथा पित्रादीनां संनार्तं, तदर्थं
 पिण्डदानादिक्रियासु प्रवर्तते । यद्वा मरणं=वधस्तदर्थं, वधं निमित्तीकृत्य वैरिनि
 र्यापनार्थम् । यद्वा-मरणार्थं=मृत्युनिवृत्त्यर्थं मिथ्यात्वमुदघा देशीपूजादौ
 बलिदानादिकरणम् । मोषनम्=आत्मन कर्मभन्वापगमस्तदर्थं विपरीतमत्या
 पञ्चाश्रितापादौ प्राण्युपमर्दनकर्मणि प्रवर्तते । तथा दुःखमतिपातहेतुं=दुःखानां
 प्रतिपातो=विष्वंसस्तस्य हेतुं क्रियाविशेषं हिंसादिकं करोति, यथा-भ्याभि

प्रतिष्ठा कौरव मो 'पूजन' है उसके लिये भी मनुष्य प्राणियों का उपमर्दनरूप हिंसा कौरव
 साक्ष्य क्रियार्थ करता है ।

। कर्म और मरण से छुटकारा पाने के लिये साक्ष्य क्रियार्थ की जाती है ।
 जाति -कर्म के लिये जैसे भागामी भव मं मुख प्राप्त करने के उद्देश से भीम
 कपापात-(कर्मि तथा पाणीमें पड़कर भयना उमरसे गिरकर मरना) जाति का
 आभरण करता है । मरण-पिता जाति का मरण होने पर उनके लिये पिण्डदान जाति
 क्रियाओं में प्रवृत्त होता है । वधना-मृत्यु को निमित्त बनाकर वैर का प्रतिपोष (बदला) देने
 के लिये पाप करता है । वधना मृत्यु गळने की मिथ्यामुक्ति से देवी कौरव के लिये बलिदान
 जाति करता है । तथा 'मोषन के लिये कर्मात् अपना कर्मकर्म हटाने के लिये विपरीतमति हो
 कर पंचाश्रिताप जातिरूप प्राणि हिंसा में प्रवृत्त होता है । तथा 'दुःखमतिपातहेतुं' दुःखों
 को निवारण करने के लिये हिंसा जाति पाप करता है । जैसे रोग मिटाने की बुद्धि से मांस

(भूति) जातिनी पूजा-प्रतिष्ठा वजरे पक्ष 'पूजन' से तेना भा? पक्ष लव प्राणिज्जानु
 उपमर्दनरूप हिंसा वजरे सावध हिंसाओ करे छ

ए म जाने भरखुषी छुटवा भाटे पक्ष सावध हिंसाओ करवाभा आवे छ जाति-ए म
 भाटे, एम जाजाभी लवभां सुण प्राप्त करवाना विशेषी लव ल पापात (जाति के पापीभां
 पक्षीने भरखु बलिधी पक्षुं मुहूर्तु) जातिनु जाअरख करे छ 'भरखु पिता जातिनी भरखु
 प्रयजे तेना भाटे पिण्डदान जाति हिंसाओभां प्रवृत्त थाय छ वधना मृत्यु निवारखु भाटे
 मिथ्यालुद्धिधी देवी वजरेने बलिदान जाति आप्पनां, तथा मोषन भाटे कर्मात् पोताना
 कर्म लक्षणे दूर करवा भाटे विपरीत मतिधी पञ्चाश्रिताप जातिरूप हिंसाभा प्रवृत्त थाय छ
 तथा 'दुःखमतिपातहेतु' -दुःखोनु निवारखु करवा भाटे हिंसाजाति, पाप करे छ ऐम शैख

विध्वंसनबुद्ध्या मासं भक्षयति, मदिरादिकं पिबति, वनस्पतिमूलत्वक्पत्रनिर्घासादि-
शतपाकसहस्रपाकादितैलार्थं बह्विवनस्पत्याधारम्भं करोति । अत्र कारितानुमोदित-
भूतभविष्यत्कालादिभेदेन कर्मसमारम्भरूपाः क्रियाविशेषा अन्येऽप्यवगन्तव्याः ।

एवमपरिज्ञातकर्मतया संसारिणो जीवाः कर्मसमारम्भरूपैः क्रियाविशेषैः
संसारे सर्वदिक्षु परिभ्रमन्तो विविधयोनिषु दुःखमेव प्राप्नुवन्तीति विज्ञाय भव्यः
कर्मसमारम्भरूपा सकलसावधक्रियाविशेषास्त्याज्या इति भावः ॥ सू. १० ॥

कर्मसमारम्भरूपान् क्रियाविशेषान् अनुस्मारयितुं प्रागुक्तमपि पुनः कथयति-
' एयावन्ति ' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस वगैरह
निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का
आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के
भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण ससारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं
द्वारा संसार में समस्त दिशाओं में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव
करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावध क्रियाओं का त्याग करना
चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते
हैं—“ एयावन्ति. ” इत्यादि ।

भटाइवानी बुद्धिथी भास भाय छे, मदिरा वगेरेतुं पान करे छे, वनस्पतिना मूल, छाल,
पादस रस वगेरे काठे छे शतपाक, सहस्रपाक आदि तेलो भाटे अग्नि अने वनस्पति
आदिने आरभ करे छे अर्द्धि करायवुं अने अनुमोदन आपवु, तथा भूत भविष्य
काल आदि ना लेहथी कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाओ पृष्ठ समल लेवी जेध अये.

आ प्रभाषे अपरिज्ञातपापकर्मा खोवाना कारणे, ससारी एव कर्मसमारम्भरूप
क्रियाओद्वारा संसारमा, समस्त दिशाओमा भ्रमण करतो अनेक योनिओमा दुःख
नोण अनुभव करे छे आ प्रभाषे समलने भव्य एवोअे पापकर्मजनक सावध
क्रियाओनो त्याग करवो जेध अये (सू० १०)

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषोनु स्मरण करायवा भाटे पूर्वोक्त अर्थने करी
रहे छे—‘ एयावन्ति ’ इत्यादि.

मृतम्—एषां वति सव्यां वति सोर्गसि कम्मसमारंभा परिज्जांभियष्वा ववति ॥ सू ११ ॥

छाया—एषा वन्तः सर्वे लोके कर्मसमारम्भाः परिह्वतव्या भवन्ति ॥ सू ११ ॥

टीका—‘एषा वन्तः’ इति—लोके—बिन्धासनने कर्मसमारम्भाः—कर्मबन्धहेतवः क्रियाविधेयाः सर्वे एषा वन्तः । कृतकारितानुमोदितमेवेन त्रिविधानां कर्मसमारम्भाणां प्रत्येकमतीतवर्षमानानागतत्रयमेवेन नवविधानां पुनर्मनोवाक्यप्रयमेवेन प्रत्येकं त्रैविध्ये सति सप्तविधतिर्मज्ञा भवन्तीति रीत्या पूर्वकवितसप्तविधति मङ्गवन्तः, न तु तेम्बोजषिका इत्यर्थः । एते च कर्मसमारम्भाः परिह्वतव्या भवन्ति, एतत्परिह्वानार्थं यत्नो विधेय इत्यर्थः । इतं सति पुन पुनरस्यानुस्मरणं करणीयं, न स्वप्न ममाहः कार्य इति भावः ॥ सू ११ ॥

कर्मसमारम्भपरिह्वानस्य फलमाह—‘अस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—बिन्धासन में इतने कर्मसमारम्भ जानने योग्य हैं ॥ सू ११ ॥

टीका—बिन्धासन में कर्मबन्ध के कारण इतने ही हैं । इत, कारित, और अनुमोदित के भेद से तीन प्रकार के कर्मसमारम्भोंका अतीत वर्तमान और भविष्य काल के साथ गुणाकार करने पर नौ भेद होते हैं । ये नौ भेद मन, बचन, कर्म के भेदसे सत्तार्इस मङ्गरूप हो जाते हैं । इस प्रकार सत्तार्इस तरह के कर्मसमारम्भ जानने चाहिए, इनसे न कम है और न अधिक है । उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए । जान लेने के पश्चात् अन्तका बार—बार स्मरण करना चाहिए । इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भ के जानका फल कहलाते हैं— अस्सेते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—बिन्धासनमें आठवा कर्मसमारम्भ जानना योग्य है (११)

टीका—बिन्धासनमें कर्मबन्ध के कारण आठवा कर्म है अर्थात् कर्मबन्ध होने के बाद भी मन, वाक्य, कर्म के भेदसे सत्तार्इस मङ्गरूप हो जाते हैं । इनसे न कम है और न अधिक है । उन्हें जानने के लिए यत्न करना चाहिए । जान लेने के पश्चात् अन्तका बार—बार स्मरण करना चाहिए । इस विषय में प्रमाद नहीं करना चाहिए ॥ ११ ॥

कर्मसमारम्भका ज्ञान फल कहलाते हैं— अस्सेते’ इत्यादि

વિધ્વંસનવુદ્ધયા માંસં મધયતિ, મદિરાદિકં પિવતિ, વનસ્પતિમૂલત્વક્રૂપત્રનિર્યાસાદિ-
શતપાકસહસ્રપાકાદિતૈલાર્થં વહ્નિવનસ્પત્યાધારમ્ભ કરોતિ । અત્ર કારિતાનુમોદિત-
ભૂતભવિષ્યત્કાલાદિભેદેન કર્મસમારમ્ભરૂપાઃ ક્રિયાવિશેષા અન્યેऽપ્યવગન્તવ્યાઃ ।

પ્રથમપરિજ્ઞાતકર્મતયા સસારિણો જીવાઃ કર્મસમારમ્ભરૂપૈઃ ક્રિયાવિશેષૈઃ
સંસારે સર્વદિક્ષુ પરિભ્રમન્તો વિવિધયોનિષુ દુઃખમેવ પ્રાપ્નુવન્તીતિ વિજ્ઞાય ભવ્યૈઃ
કર્મસમારમ્ભરૂપા સકલસાવઘક્રિયાવિશેષાસ્ત્યાજ્યા इति भावः ॥ सू. १० ॥

કર્મસમારમ્ભરૂપાન્ ક્રિયાવિશેષાન્ અનુસ્મારયિતું પ્રાગુક્તમપિ પુનઃ કથયતિ-
'પ્યાવંતિ' इत्यादि ।

खाता है, मदिरा आदि का पान करता है, वनस्पति की जड़, छाल, पत्ता, रस वगैरह निकालता है, शतपाक एव सहस्रपाक आदि तैलों के लिए अग्नि और वनस्पति आदि का आरम्भ करता है । यहाँ कराना और अनुमोदन करना तथा भूत, भविष्य काल आदि के भेद से कर्मसमारम्भरूप अन्य क्रियाएँ भी समझ लेनी चाहिए ।

इस प्रकार अपरिज्ञातपापकर्मा होने के कारण ससारी जीव कर्मसमारम्भरूप क्रियाओं द्वारा संसार में समस्त दिग्गोचों में भ्रमण करते हुए नाना योनियों में दुःख का ही अनुभव करते हैं । ऐसा समझकर भव्य जीवों को पापकर्मजनक सावध क्रियाओं का त्याग करना चाहिए ॥ सू० १० ॥

कर्मसमारम्भरूप क्रियाविशेषों का स्मरण कराने के लिए पूर्वोक्त अर्थ को फिर कहते हैं—“प्यावत्ति.” इत्यादि ।

મટાડવાની યુદ્ધિથી માંસ ખાય છે, મદિરા વગેરેનું પાન કરે છે, વનસ્પતિના મૂળ, છાલ, પાદડા રસ વગેરે કાઢે છે શતપાક, સહસ્રપાક આદિ તેલો માટે અગ્નિ અને વનસ્પતિ આદિનો આરભ કરે છે અહિં કરાવવુ અને અનુમોદન આપવું, તથા ભૂત ભવિષ્ય કાલ આદિ ના ભેદથી કર્મસમારભરૂપ અન્ય ક્રિયાઓ પણ સમજી લેવી જોઈએ.

આ પ્રમાણે અપરિજ્ઞાતપાપકર્મા હોવાના કારણે, સસારી જીવ કર્મસમારભરૂપ ક્રિયાઓદ્વારા સંસારમા, સમસ્ત દિશાઓમા ભ્રમણ કરવો અનેક યોનિઓમા દુઃખ-
નોજ અનુભવ કરે છે આ પ્રમાણે સમજીને ભવ્ય જીવોએ પાપકર્મજનક સાવધ ક્રિયાઓનો ત્યાગ કરવો જોઈએ (સૂ. ૧૦)

કર્મસમારભરૂપ ક્રિયાવિશેષોનું સ્મરણ કરાવવા માટે પૂર્વોક્ત અર્થને ફરી કહે છે — 'પ્યાવતિ' इत्यादि

सकृद्ब्रह्मण्यया साक्षात् श्रुतं त्वं ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वयुदिपरिकल्पितम् । यतः स्वयुद्धया कथने श्रुतज्ञानस्याभिनयो भवति, किञ्च-उपस्थानां ह्युयोप्यपूर्णा भवन्ति तस्मात् यथाभवात्प्रतिपादितमेव त्वं ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अत्र सकृद्ब्रह्मण्यया-
“सुष्णाभस्त भविगञ्जो, परिहरणिञ्जो सुहारिल्लासीहिं ।

छउमत्याभं दिह्ठी, पुष्णा भत्थि-त्थ सुइय इइमा ॥ १ ॥” इति ।

सावयक्रियायाः पञ्चवीचनिकार्यं प्रति श्रुतवदुपघातकतया सावयक्रिया-
स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य शस्त्रपरिहया अध्यदेशः ॥ सू १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

मुनिका विभरना को तीर्थकर भगवान् महावीर के समिकट मैने साक्षात् सुना है वही 'ब्रवीमि' = मैं कहता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं कहता । अपनी बुद्धिसे-तीर्थकरकी भागी की अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से श्रुतज्ञान का अभिनय होता है । दूसरी बात यह है कि उपस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित तत्त्व ही मैं तुम से कहता हूँ । यहाँ यह सद्ब्रह्मण्यया है—

'सुस के अभिज्ञापी भयों को श्रुतज्ञान के अभिनय का त्याग करना चाहिए उपस्थ की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यहाँ इति' शब्द से सूचित किया गया है ॥ १ ॥

सावय क्रिया पञ्चवीचनिकार्य के लिए शस्त्र के समान घातक है, अतः सावय क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शस्त्रपरिज्ञा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विश्वश्रुं के तीर्थकर भगवान् महावीर पासे मे साक्षात् सुनायुं से तेज 'ब्रवीमि' = मैं कहूँ तु तु पीतानी बुद्धिभी कल्पित कहेंगे तो नहीं पीतानी बुद्धिभी-तीर्थकरनी बाकीनी अपेक्षा नहीं रखीने कहीजे तो श्रुतज्ञानने अभिनय साथ से पीछे बात को से है—उपस्थनी दृष्टि पूरा अपूर्ण होय से ते कल्पुषी भगवान् द्वारा प्रतिपादन कतजेहुं तदवज हुं तमने कहुं तु अर्द्धि न्य सद्ब्रह्मण्यया से—

श्रुतना अभिज्ञापी लब्धेजे श्रुतज्ञानना अभिनयने त्याग कस्वे नोर्धजे उपस्थानी दृष्टि पूरा होय नहीं, के प्रभाजे 'इति शब्दभी सूचना कस्वामां आनी से.' (७)

सावय क्रिया पञ्चवीचनिकार्य भाटे शस्त्र (कधीन्यार) समान घातक से के कल्पुषी सावय क्रियाना स्वरूपने बोध कस्वामां न्य प्रथम-अध्ययन से, तेनु शस्त्रपरिज्ञानम पशुं से.

नामके प्रथम अध्ययनने प्रथम उद्देश

संपूर्ण (१-१)

मूलम्—जस्सेते लोगंसि कम्मसमारंभा परिण्णया भवंति से इ मुणी
परिण्णायकम्मे—त्तिवेमि ॥ सू० १२ ॥

छाया—यस्य एते लोके कर्मसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः
परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १२ ॥

टीका—‘यस्य’ इति—लोके यस्य=भव्यजीवस्य एते=प्रागुक्ताः कर्मसमारम्भाः=
ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मणः समुत्पादकाः, सावद्यक्रियाविशेषा इत्यर्थः परिज्ञाता
भवन्ति=‘ एते हिंसादयः सप्तविंशतिभङ्गवन्तः सावद्यक्रियाविशेषा आत्मनः कर्मबन्धे
हेतवो भवन्ति ’ इत्येवं ज्ञपरिज्ञया ज्ञाता भवन्ति स परिज्ञातकर्मा=ज्ञपरिज्ञया
कर्मबन्धनिबन्धनत्वेन विज्ञाय, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्तसकलसावद्यक्रियाविशेषो
निश्चयेन मुनिः=सर्वसावद्यक्रियोपरतिप्रतिज्ञावान् भवतीत्यर्थः ।

इति=आत्मतत्त्वस्वरूपनिरूपणं, कर्मबन्धहेतुभूतसकलसावद्यक्रियास्वरूपप्रदर्शनं,
सावद्यक्रियानिश्चितपुरस्सर मुनेर्विहरण चेति यत् तीर्थङ्करस्य भगवतो महावीरस्य

मूलार्थ—लोक में जो कर्मसमारम्भ जान लेता है, वह मुनि निश्चय से परिज्ञातकर्मा
है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० १२ ॥

टीकार्थ—लोक में जिस भव्य को पूर्वोक्त कर्मसमारम्भ अर्थात् ज्ञानावरणीय आदि
आठ कर्मों के उत्पादक सावद्यव्यापार ज्ञात हो जाते हैं, अर्थात् जो पूर्वोक्त सत्ताईस भगों
वाले हिंसादिक क्रियाविशेषों को अपने कर्मबन्धों का कारण समझ लेता है, वह परिज्ञात-कर्मा
है । जो ज्ञ-परिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझ कर प्रत्याख्यान परिज्ञा से सम्पूर्ण सावद्य क्रिया-
ओंका त्याग करता है वह निश्चय से परिज्ञातकर्मा मुनि है ।

‘त्ति वेमि’ इति=इस प्रकार का आत्मा के स्वरूप का निरूपण, कर्मबन्ध के
कारणभूत समस्त सावद्य व्यापारों के स्वरूप का प्रदर्शन, और सावद्य क्रिया की निश्चितपूर्वक

मूलार्थ—लोकमा जे कर्मसमारंभे ज्ञाने ले छे, ते मुनि निश्चयथी परिज्ञात-
कर्मा छे जे प्रमाणे हु कहु छु. (सू० १२)

टीकार्थ—लोकमा जे लव्य एवने पूर्वोक्त कर्मसमारंभ अर्थात् ज्ञानावरणीय
आदि आठ कर्मोना उत्पादक सावद्य व्यापार ज्ञानेवाभा आवी ज्य छे अर्थात् जे पूर्व
कहेला सतावीस लगेवाणा हिंसादिक्रियाविशेषोने पोताना कर्मण धनुं कारखु समलु वे छे
ते परिज्ञातकर्मा छे जे ज्ञ-परिज्ञाथी कर्मण धनुं कारखु समलुने प्रत्याख्यान-परि-
ज्ञाथी सम्पूर्ण सावद्य क्रियाओना त्याग करे छे ते निश्चयथी परिज्ञातकर्मा मुनि छे

त्ति वेमि’-इति=आ प्रमाणे आत्माना स्वरूपनुं निरूपखु, कर्मबन्धना कारखुभूत
समस्त सावद्य व्यापारोना स्वरूपनुं-प्रदर्शनं, अने सावद्य क्रियाणी निश्चितपूर्वक मुनिवृ

सकाशान्मया साक्षात् भुव तद् ब्रवीमि=कथयामि न तु स्वबुद्धिपरिकल्पितम् । यतः
स्वबुद्ध्या कथने भुतज्ञानस्याविमयो भवति, किञ्च-उपस्थानां दृष्टयोप्यपूर्णा भवन्ति
तस्मात् यथाभगवत्प्रतिपादितमेव त्वां ब्रवीमि=उपदिशामीत्यर्थः । अथ सद्ब्रह्मगाथा-

“सुम्नाणस्स अविण्णो, परिहरिण्णो सुहारितासीहि ।

छउमत्स्याणं दिट्ठी, पुण्णा भत्ति चि सुइय इइगा ॥ १ ॥” इति ।

सावयक्रियाया पद्दजीवनिकार्यं प्रति अत्रवदुपधातकतया सावयक्रिया-
स्वरूपबोधकस्य प्रथमाध्ययनस्य अत्रपरिष्ठाप्यपदेशः । ॥ सू १२ ॥

प्रथमाध्ययनस्य प्रथमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-१ ॥

मुनिः किञ्चिन्मा बो तीर्षकर भगवान् महावीर के समिच्छत मने साक्षात् सुना है वही
'ब्रवीमि' मैं करता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं करता । अपनी बुद्धिसे-तीर्षकरकी
बाणी को अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से भुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात
यह है कि उपस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित बात ही मैं
तुम से करता हूँ । यही यह सद्ब्रह्मगाथा है—

सुस के अविनाशी मयों को भुतज्ञान के अविनय का त्याग करना चाहिए उपस्थों
की दृष्टि पूर्ण नहीं होती, ऐसा यही इति शब्द से सूचित किया गया है ॥ १ ॥

सावय क्रिया पद्दजीवनिकार्य के लिए शब्द के समान बातक है, अतः सावय
क्रियाके स्वरूपके बोधक इस प्रथम अध्ययन का शत्रुपरिष्ठा नाम हुआ है ॥ सू. १२ ॥

प्रथम अध्ययनका प्रथम उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-१ ॥

विचारतुं मे तीर्षकर भगवान् महावीर पासे मे साक्षात् अविण्णुं उ तेव
'ब्रवीमि' मैं करता हूँ अपनी बुद्धिसे कल्पित नहीं करता । अपनी बुद्धिसे-तीर्षकरकी
बाणी को अपेक्षा न रखते हुए कथन करने से भुतज्ञान का अविनय होता है । दूसरी बात
यह है कि उपस्थ की दृष्टि भी अपूर्ण होती है, अतः भगवान् द्वारा प्रतिपादित बात ही मैं
तुम से करता हूँ । यही यह सद्ब्रह्मगाथा है—

“सुम्नाणा अविनाशी अण्येणो भुतज्ञानेण अविनयने त्याज करेवो जेहिंणे.
उपस्थेणो दृष्टि पूर्ण नही, मे प्रथमे 'इति' शब्दकी सूचना करवाया गयी है.” (७)

सावय क्रिया पद्दजीवनिकार्य भाटे शब्द (कथनीकार) समान बातक है जो अत्रवदुप
सावय क्रियाका स्वरूपको बोधक इस प्रथम अध्ययन से तबुं शत्रुपरिष्ठा नाम
पहुं उ

नामक प्रथम अध्ययनको प्रथम उद्देश

स पृष्ठ (१-१)

अथ प्रथमाध्ययनस्य

द्वितीयोद्देशः ।

प्रथमोद्देशे सामान्यरूपेणात्मनः स्वरूपं निरूपितम्, तस्यैव विशेषरूपेण बोधनाय द्वितीयोद्देशः प्रारभ्यते, तस्येदमादिमुत्रम्—‘अद्वे’ इत्यादि ।

तथा—इह ‘पूर्वभवस्मृतिरूपं विशिष्टं ज्ञानं न भवति केषाञ्चि’—दिति प्रथमोद्देशे निगदितम्, अथ तत् कथं न भवतीति जिज्ञासायामुच्यते—‘अद्वे’ इत्यादि ।

प्रथम 'अध्ययनका

द्वितीय उद्देश ॥

पहले उद्देश में सामान्यरूपसे आत्मा के स्वरूप का निरूपण किया गया है । अब विशेषरूप से आत्मा का स्वरूप समझाने के उद्देश्य से दूसरा उद्देश आरम्भ किया जाता है, उसका यह आदिसूत्र है—‘अद्वे’ इत्यादि ।

तथा—पहले उद्देशमें बतलाया गया था कि—किन्हीं—किन्हीं जीवों को पूर्व भव का स्मरणरूप विशिष्ट ज्ञान नहीं होता । वह ज्ञान क्यों नहीं होता ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—‘अद्वे’ इत्यादि ।

पडोला अध्ययननो - भीले उद्देश

पडोला उद्देशमा सामान्यरूपेण आत्माना स्वरूपं निरूपणं कर्तव्यम् आभ्यु
छे इवे विशेषरूपेण आत्मानु स्वरूपं समलववाना उद्देशेण भीले उद्देशनो आरभ
कर्तव्यम् आवे छे, तेनुं आ आदिसूत्र छे—‘अद्वे’ इत्यादि

तथा—पडोला उद्देशमा बतलववामा आभ्यु छे हे-कोई-कोई जीवोने पूर्व-
भवना स्मरणरूप विशिष्ट-उत्तम असाधारण ज्ञान थतु नथी ते ज्ञान केम थतुं नथी ?
केवी अज्ञासा थवाथी छे छे—‘अद्वे’ इत्यादि.

तथा-अपमात्मा परिहृतकर्मवया सकलस्वानपक्रियानिवृत्तः सन् मुनि
 र्मस्तीत्युपदिष्टम्, अथ यः पुनरपरिहृतकर्मां स सत्तु कीदृशो भवतीत्याकाङ्क्षा
 यामाह-‘ अहं ’ इत्यादि ।

अहं सोऽपरिहृणो दुस्तंबोहो भविजानप, अस्मिं सोऽप पञ्चरिप उत्प कल्प
 पुरो पास, आतुरा अस्मिन् परिवापयन्ति ॥ सू १ ॥

छाया—

वार्तः शोकः परिहृतः (पस्तीर्षः) दुःसंबोधः अविज्ञानकः अस्मिन् शोके
 मध्यस्थिते तत्र तत्र पूर्वक पश्य, आतुरा अस्मिन् परिवापयन्ति ॥ सू १ ॥

तथा-अहं कदा अप बुद्ध है कि आत्मा कर्मों का स्वरूप समझ कर, और समस्त
 साक्ष्य व्यापरीं से विरत हो कर मुनि हो जाता है, मगर किसने कर्मों का स्वरूप नहीं
 समझा है, उस आत्मा को कैसी स्थिति होती है, ऐसी जिज्ञासा होने पर करते हैं-
 ‘ अहं ’ इत्यादि ।

सूक्ष्मार्थः-(कर्मकथ का स्वरूप न समझने वाला) वार्त शोक परिशीर्ण है-असमर्थ
 है, बोध पाने में अशक्त है, अज्ञान है, इस शोक में व्यथित है, पूर्वक-पूर्वक जीवों को
 देखो । वे आतुर-अज्ञानी-होकर जीवोंको परिवाप पहुँचाते हैं ॥ १ ॥

तथा-अहं प्रभवे कही बुद्ध्या जीजे के आत्मा कर्मोंका स्वरूपने समझने जाने
 समस्त सावध व्यापारोकी विरत (अहं) अर्धने मुनि यर्ध अथ से पद्य केजो कर्मोंका
 स्वरूपने समझया नहीं ते आत्मान्नी स्थिति केनी बाध से ? जेनी लक्षासा क्यथी
 कहे से:-‘ अहं ’ इत्यादि

सूक्ष्मार्थः-(कर्मकथना स्वरूपने नहीं समझवावाला) वार्तशोक परिहृत्यं से
 असमर्थ से ज्ञान प्राप्तवार्मा अशक्त से अज्ञान से, न्या बोधार्मा दुःखी से अहं-अहं
 लवेने लुजे ते आतुर-अज्ञानी यधने लवेने परिवाप पहुँचाते से (१)

टीका-

लोकः=पृथिव्यादिपञ्चजीवनिकायः खलु ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध-
हेतुभूतसावधक्रियाविशेषस्वरूपानवबोधेन आर्तः=विषयसुखतृष्णाव्याकुलो भवति ।
अत एव परिद्वूनः=शारीरमानसादिदुःखानलसंतप्तः । यद्वा-परिजीर्णः=क्षायोपशमिक-
भावाभावेन मोक्षमार्गप्रवृत्तावक्षमः, अत एव-दुःसबोधः=ब्रह्मदत्तचरणकरण-
शिक्षां ग्रहीतुमसमर्थः, अत एव अविज्ञानकः=सम्यग्ज्ञानरहितो भवति, अत एव
पूर्वभवस्मृतिरूपमपि विशिष्टं ज्ञानं न भवतीति भावः । 'पश्य' इति पदेन शिष्येति
संबोधनपदस्याध्याहारः—हे शिष्य ! प्रव्यथिते=पूर्वोपार्जितकर्मोदयेन क्षुधा-

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथिवीकाय आदि छह प्रकार के जीव, ज्ञाना-
वरण आदि आठ प्रकार के कर्मों के बन्धके कारणभूत सावध व्यापारों का स्वरूप न
समझकर आर्त होते हैं—विषयसुख की तृष्णा से व्याकुल होते हैं । अतएव वे शारीरिक और
मानसिक दुःखों की आग से सतप्त हैं । अथवा क्षायोपशमिक भावों के अभाव के कारण
मोक्षमार्ग में प्रवृत्ति नहीं कर सकते । इसी कारण वे ब्रह्मदत्त की तरह चरण और
कारण की शिक्षा लेने में भी असमर्थ हैं । ऐसे जीव अविज्ञानक अर्थात् सम्यग्ज्ञान
से रहित होते हैं, इसी कारण उन्हें पूर्व भव की स्मृतिरूप विगिष्ट (जातिस्मरण) ज्ञान
भी नहीं होता ।

'पश्य' (देखो) इस पद के द्वारा शिष्य के संबोधन का अध्याहार किया
गया है । हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मों के उदय से भूख, व्यास, त्रास, इष्टवियोग,

टीकार्थ—लोक अर्थात् पृथ्वीकाय आदि छ प्रकारना एवसभूद्ध ज्ञानावरण
आदि आठ प्रकारना कर्मोना अघना कारणे सावध व्यापारोना स्वरूपने नहि समझने
आर्त थाय छे विषय सुभनी तृष्णुथी व्याकुल थाय छे, ते कारणुथी ते शारीरिक
अने मानसिक दुःखोनी आगथी सतप्त-भूणतपेला छे अथवा क्षायोपशमिक लावोना
अभावना कारणे मोक्षमार्गमा प्रवृत्ति करी शकता नथी अे कारणुथी ते ब्रह्मदत्तनी
पेठे अरु अने करणुनी शिक्षा लेवामा पणु असमर्थ छे, अेवा एव अविज्ञानक
अर्थात् सम्यग्ज्ञानथी रहित होय छे आ कारणुथी तेने पूर्वभवनी स्मृतिरूप विशिष्ट
(जातिस्मरण) ज्ञान पणु थतु नथी

'पश्य' (देखो-जुवो) आ पदथी 'शिष्यना स'
आन्थुं छे, हे शिष्य ! पूर्वोपार्जित कर्मोना उदयथी

अध्याहार
त्रास, ...

पिपासा-त्रास-प्रियविभोगा-ऽऽधि-व्याधि-परिपीडित, अस्मिन् लोके तत्र-तत्र=सर्वे
 माण्डियु पृथक्=प्रत्येकं पश्य । आत्तुराः=विषयसुखवृष्णाव्याकुला अज्ञानिनः अस्मिन्
 लोके परितापयन्ति=पृथिव्याविज्जीवान् परिपीडयन्ति, इति पश्येत्यर्थः ।

यद्वा-लोकः-यद्भीषनिकायः, आर्तः=परिपीडितः अस्तीति शेष ।
 कुतः कारणाद् आर्तः ? इत्यत आह-'परिजृग्णे' इति । यतः परिज्वीर्णं =मोक्ष
 मार्गप्रवृत्तावलमः । क्व परिज्वीर्णः ? इत्यत आह-'दुःसंबोधे' इति, यतो
 दुःसंबोधः ब्रह्मदत्तवचनकरजक्षिणां ग्रहीतुमसमर्थः । दुःसंबोधः कुतोऽस्ती ?-
 इत्यत आह-यतः-अविज्ञानक =विज्ञानरहितः, पूर्वमवान्वितपोस्तरहिंसादिदुरितकर्म

मानसिक पीडा, शारीरिक पीडा आदि से पीडित इस लोक में कौनों पृथक्-पृथक् प्राणियों
 को देखो । वे विषयसुख के लिए व्याकुल एवं ज्ञानहीन हो कर सत्कार में सत्ताप मोग रहे
 हैं । वे पृथिवीकाय आदि जीवों को पीडा पहुंचाते हैं (यह देखो) ।

अथवा-यद्भीषनिकायरूप यह लोक आर्त है-पीडा मुगत रहा है । यह
 किस कारण से व्यर्त है ? इस प्रश्न का उत्तर यह है कि-यह परिज्वीर्ण अर्थात् मोक्षमार्ग
 में प्रवृत्ति करने में असमर्थ है । यह परिज्वीर्ण क्यों है ? इस का समाधान यह है कि-
 यह दुःसंबोध है अर्थात् ब्रह्मदत्त की भाँति वरण-हरण की शिक्षा ग्रहण करने में अशक्त
 है । यह दुःसंबोध क्यों है ? इस का कारण यह है कि-यह ज्ञानहीन है अर्थात्
 पूर्वजन्म में उपासक किय हुए पारस्पर हिंसा आदि पापकर्मोंके बरा हो कर एवं अशक्त

मानसिक पीडा शारीरिक पीडा, आदिभी पीडित आ लोकमें कर्म-तर्मा बुद्धा-बुद्ध
 प्राणीज्जाने लुब्धे, ते विषयसुख भाटे व्याकुल ज्येव ज्ञानहीन वर्धने सत्कारमा
 सत्ताप लोअवी रथा छे ते पृथिवीकाय आदि लुवेन पीडा पहुँचाडे छे ते लुब्धे.

अथवा यद्भीषनिकायरूप आ लोक आर्त छे-पीडा लोअवी रथा छे ते दुः
 कारणभी आर्त छे ? आ प्रश्नने उत्तर जे छे के-ते परिज्वल अर्थात् मोक्ष मार्गमा
 प्रवृत्ति करवने असमर्थ छे ते परिज्वल था भा? छे ? तेनु समाधान जे छे के-ते
 दुःसंबोध छे अर्थात् ब्रह्मदत्तनी प्रभाजे अरण्य-हरणनी शिक्षा अक्षय करवाभा असक्त
 छे ते दुःसंबोध था भाटे छे ? तेनु कारण जे छे के-ते ज्ञानहीन छे अर्थात् पूर्व
 जन्ममा उपासक करेवा पारस्पर हिंसा आदि पापकर्मने बरा वर्धने जेभ-जे प्रभाजे

વશતઃ પ્રગાઢમિથ્યાત્વમોહનીયોદયાત્ પ્રગાઢમોહાક્રાન્ત ઇત્યર્થઃ । એવં સ્વકર્મવશતઃ પરિપીડિતમપિ નિતાન્તદયનીયમપિ રાગદ્વેષમોહાન્ધાઃ પરિતાપયન્તીત્યાહ-અસ્મિન્ લોકે' ઇત્યાદિ । અસ્ય વ્યાખ્યા પૂર્વવત્ ચોષ્યા ।

'પશ્ય' ઇતિ પદેન ભાગવતા માં સંવોઘ્ય યથોપદિષ્ટં તથા કથયામીતિ જન્મ્સ્વામિનં શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રતિવોધયતિ ।

'પ્રવ્યથિતે' ઇતિ વિશેષણપદં ચ સ્વસ્વકર્મણૈવ નાનાવિધવેદના-સમન્વિતાનામપિ પૃથિવ્યાદિષદ્જીવનિકાયાનાં પરિપીડને વિષયસુખતૃષ્ણાક્રાન્તાના-

ગાઢે મિથ્યાત્વમોહનીય કે ઉદય સે મોહયુક્ત હૈ । ઇસ પ્રકાર અપને કર્મો સે પીડિત ઓર અત્યન્ત દયનીય પૃથ્વીકાય આદિ જીવોં કો રાગ-દ્વેષ ઓર મોહ સે અન્વે પુરુષ પીડા પહુચાતે હૈં । 'અસ્મિન્ લોકે'-(ઇસ લોક મેં) ઇત્યાદિ કી વ્યાખ્યા પહેલે કે સમાન સમજ્ઞ લેના યાહિય

'પશ્ય' (દેલો) ઇસ પદ સે શ્રીસુધર્મા સ્વામી જન્મ્સ્વામી સે કહતે હૈ કિ-મુલે સવોધન કરકે ભગવાન્ ને જૈસા ઉપદેશ દિયા હૈ વૈસા હી મૈં કહતા હૂં ।

'પ્રવ્યથિતે' પદ સે યહ સૂચિત ક્રિયા ગયા હૈ કિ-વેચારે ષટ્કાય કે જીવ અપને-અપને કર્મોં કે કારણ નાના પ્રકાર કી વેદનાઈં ભોગ હી રહે હૈં, ઇસ પર મી વિષય-સુખ કે લોલુપ લોગ ડુહૈં ઓર સતાતે હૈં । ડુહૈં ડુ સ્ત્રી દેલ કર મી ઇનકે

અત્યન્ત ગાઢા મિથ્યાત્વમોહનીયના ઉદયથી મોહયુક્ત છે એ પ્રકારે પોતાના કર્મોથી પીડિત અને અત્યન્ત દયાપાત્ર પૃથ્વીકાય આદિ જીવોને રાગ-દ્વેષ અને મોહથી અધ થયેલ પુરુષ પીડા પહોચાડે છે 'અસ્મિન્ લોકે' (આ લોકમાં) ઇત્યાદિની વ્યાખ્યા પ્રથમ પ્રમાણે સમજ લેવી જોઈએ

'પશ્ય' (જુઓ) આ પદથી શ્રી સુધર્મા સ્વામી જન્મ્સ્વામીને કહે છે કે-મને સવોધન કરીને ભગવાને જેવો ઉપદેશ આપ્યો છે તેવોજ હુ કહુ છુ

'પ્રવ્યથિતે' પદથી એ સૂચિત કરવામાં આવે છે કે-ખિચારા ષટ્કાયના જીવ પોતા-પોતાના કર્મોના કારણે નાના પ્રકારની વેદનાઓ ભોગવીજ રહ્યા છે તે ઉપરાંત પણ વિષય-સુખના લોલુપ માણસો તેને વધારે સતાવે છે. તેને હુ ખી જોઈને પણ

मत्तुरामां हृदयं मनागापि न ब्रूवति; प्रस्तुतं वृगान् ह्युचितव्याघ्र इव ते पृथिव्यादि प्राणिगर्भं प्रभिन्नन्ति, इति ससूचयति ॥ सू १ ॥

तत्र पृथ्वीनिःकरणरूपे लोके प्राचम्यात् पृथिवीकायस्याधिकारमाह—' संति पात्रा ' इत्यादि ।

मूलम्—

संति पात्रा पुत्रो सिया स्रष्टवमात्रा पुत्रा पात्र । अणगारमो-सि एगे पद्यमाणा जमिणं विरूक्कयेहिं सत्येहिं पुत्रविक्रमसमारमेयं पुत्रविसत्यं समारममाणा जन्मे भवेगरूपे पात्रे विहिंसत् ॥ सू २ ॥

छाया—

सन्ति प्राणाः पृथक् भिन्नाः सन्प्रमानाः पृथक् पश्य । अणगाराः स्म इति एके प्रवृत्तमानाः, यदिर्दं विकल्प्यैः स्रष्टैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीकर्म समारम्भमाया अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ २ ॥

मम में दवा नहीं जाती, प्रस्तुत नूला बाप जैसे एगों को मारता है उसी प्रकार विष-कोटप छोला उन बीजों की हिंसा करते हैं ॥ सू. १ ॥

पृथ्वीनिःकरणरूप लोक में पृथ्वीकाय प्रसन्न है, अतः पृथ्वीकाय का अधिकार करते हैं—' संति पात्रा ' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वी में अणु-अणु प्राणी हैं । पृथ्वीकाय के धारण की निवृत्ति करने वाले (सुनियों) को पृथक् समझो । ' हम अणुगार हैं ' इस प्रकार करनेवाले प्रत्यक्षिणी माना प्रकार के पृथ्वीतन्त्रों से पृथ्वीकर्म का समारम्भ करके पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हुए अनेक प्रकार के अन्य प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ॥ सू २ ॥

तेना मनभां इवा ज्ववती नधी, परस्तु शून्यो वाय जेभ भुजेते भारे छे, ते प्रभावे विष-वाह्युप दौक ते लवेनी द्विसा करे छे (१)

पृथ्वीनिःकरणरूप दौकभां पृथ्वीकाय प्रथम छे, ते काश्चधी पृथ्वीकायने अधिकार करे छे—' संति पात्रा ' इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथ्वीकाय अणु-अणु प्राणी छे. पृथ्वीकायना अणुभनी निवृत्ति करवावाला (सुनियों)ने अणु अणु-परस्तु अणु अणु-साधु सुनि छीजे. ' अणु प्रभासु करवावाला अणुद्विगी (विष काश्च करवावा) ना-अ-प्रकाश-अणु-अणु पृथ्वी कर्मने समारम्भ करीने पृथ्वीकायने अणु अणु दौक भां अनेक प्रकारना अणु प्राणीजोनी पश्य द्विसा करे छे (२)

ટીકા—

પ્રાણાઃ=પ્રાણાઃ સન્તિ યેષામિત્યર્થઃચત્યયઃ, પ્રાણિન ઇત્યર્થઃ । પૃથક્=મિન્નમિન્નતયા શ્રિતાઃ=સ્વસ્વશરીરાધિષ્ટિતાઃ સન્તિ । યદ્વા-શ્રિતાઃ-પૃથિવ્યાશ્રિતાઃ=અઙ્ગુલાસંખ્યાતભાગપ્રમાણસ્વશરીરાવગાહિનઃ પૃથિવ્યામવસ્થિતાઃ પૃથિવીકાયિકાઃ, પ્રાણાઃ=જીવાઃ, પૃથક્=પૃથગ્ભાવેન સન્તિ, ઇતિ વચ્ચ । ઇદમુક્તં ભવતિ-પૃથિવ્યા એકદેવતારૂપત્વં મન્યમાના ભ્રાન્તાઃ, વસ્તુતસ્તુ પ્રત્યેકશરીરરૂપાણામસંખ્યાત-પૃથિવીકાયિકજીવાનાં સમુદાયઃ પૃથિવી । એવં ચ પૃથિવી સચિત્તાઽનેકજીવાધિષ્ટિતા ચેતિ ।

અથ દ્વારપ્રદર્શનેન વસ્તુસ્વરૂપં સમ્યગ્ નિર્ણયતે તસ્માદ્ દ્વારણિ

ટીકાર્થ—પ્રાણ કા અર્થ હૈ પ્રાણી । પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત હૈ અર્થત્ અલગ-અલગ પ્રાણી અપને-અપને શરીર મેં રહતે હૈ । અથવા 'શ્રિત' કા અર્થ હૈ-પૃથ્વી મેં આશ્રિત । અગુલ કે અસંખ્યાતવે ભાગ અવગાહના વાલે જીવ પૃથ્વી-આશ્રિત હૈ, એસે પૃથ્વીકાય કે જીવ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । યહ દેસ્કો । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૃથ્વી કો એક હી દેવતા માનને વાલે લોગ ભ્રમ મેં હૈ । વાસ્તવ મેં પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીર વાલે અસંખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવો કા પિંડ હૈ । ઇસી પ્રકાર પૃથ્વી સચિત્ત હૈ ઓર અનેક જીવો સે અધિષ્ટિત હૈ ।

દ્વારોં કે પ્રદર્શન સે વસ્તુ કા સ્વરૂપ સ્પષ્ટ હો જાતા હૈ, અત યહાં દ્વાર

ટીકાર્થ—પ્રાણનો અર્થ પ્રાણી છે પ્રાણી પૃથક્-પૃથક્ આશ્રિત છે, અર્થાત્ અલગ-અલગ પ્રાણી પોત-પોતાના શરીરમાં રહે છે અથવા 'શ્રિત'નો અર્થ છે 'પૃથ્વીમાં આશ્રિત' આગલના અસખ્યાતમાં ભાગની અવગાહનાવાળા એ એવ પૃથ્વી-આશ્રિત છે એવા પૃથ્વીકાયના એવ બ્રહ્મા-બ્રહ્મા છે તે બુદ્ધિ

તાત્પર્ય એ છે કે —પૃથ્વીને એક જ દેવતા માનવાવાળા લોક ભ્રમમાં છે વાસ્તવિક રીતે તો પૃથ્વી પ્રત્યેક શરીરવાળા અસખ્યાત પૃથ્વીકાયિક જીવોનો પિંડ છે આ પ્રમાણે પૃથ્વી સચિત્ત છે, અને અનેક જીવોથી અધિષ્ટિત છે દ્વારોના પ્રદર્શનથી વસ્તુનું સ્વરૂપ સ્પષ્ટ થઈ જાય છે, એટલે અહિં દ્વાર બતા

प्रदर्शयते-(१) लक्षणं, (२) प्ररूपणा, (३) परिमाणं, (४) वधः, (५) शक्तम्, (६) उपमोगः, (७) वेदना, (८) निवृत्तिरूपेण। उक्तञ्च—

“सम्पूरण १ प्ररूपणा २ स्वरूप, परिमाण ३ वद ४ तद्वेन सत्यं ५ च । उपमोग ६ वेदनावि ७ य, निवृत्ती ८ अद्व दाराई ॥ १ ॥”

(१) सम्पूरणद्वारम्—

ननु पृथिवी सचेतनाऽस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—अनुमानमेव तात्पर्यम् गृह्यात् । पृथिवी सचेतना तद्विच्छिन्नशरीरोपलब्धे, गवांश्चादिवत् ।

तत्साधये चाते हैं—(१) लक्षण (२) प्ररूपणा (३) परिमाण (४) वध (५) शक्तम्, (६) उपमोग (७) वेदना और (८) निवृत्ति । ये आठ द्वार हैं । कहा भी है—

“सम्पूरण १ प्ररूपणा २ स्वरूप परिमाण ३ वद ४ तद्वेन सत्यं ५ च । उपमोग ६ वेदनावि ७ य, निवृत्ती ८ अद्व दाराई ॥ १ ॥” इति ।

लक्षण, प्ररूपणा परिणाम, वध, शक्त उपमोग वेदना और निवृत्ति, ये आठ द्वार कहे गये है । ॥ १ ॥

सङ्गा—पृथ्वी सजीव है इस विषयमें क्या प्रमाण है ?

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही सीधिये—पृथ्वी सचेतन है, क्या कि उसमें चेतना से विच्छिन्न शरीर की उपलब्धि होती है गाय और अश्व के समान ।

क्याभां आवे उ है—(१) लक्षण, (२) प्ररूपणा (३) परिमाण, (४) वध (५) शक्त, (६) उपमोग (७) वेदना अने (८) निवृत्ति, आ आठ द्वार उे अद्व पद उे है —

“सम्पूरण १ प्ररूपणा २ स्वरूप परिमाण ३ वद ४ तद्वेन सत्यं ५ च । उपमोग ६ वेदनावि ७ य निवृत्ती ८ अद्व दाराई ॥ १ ॥” इति ।

“लक्षण, प्ररूपणा परिमाण, वध शक्त, उपमोग वेदना अने निवृत्ति आ आठ द्वार अद्व उे. (१)

(१) लक्षणद्वारम्—

शंका—पृथ्वी सजीव उे अे विषयमें अु प्रमाण उे ?

समाधान—प्रथम अनुमान प्रमाणने लक्ष्ये—पृथ्वी सचेतन उे कारण है तेषां चेतनाधी विच्छिन्न शरीरकी उपलब्धि साथ उे गाय अने अश्वकी समान

टीका—

प्राणाः=प्राणाः सन्ति येषामित्यर्थऽच्यत्ययः, प्राणिन इत्यर्थः । पृथक्=भिन्नभिन्नतया श्रिताः=स्वस्वशरीराधिष्ठिताः सन्ति । यद्वा-श्रिताः-पृथिव्याश्रिताः=अङ्गुलासंख्यातभागप्रमाणस्वशरीरावगाहिनः पृथिव्यामवस्थिताः पृथिवीकायिकाः, प्राणाः=जीवाः, पृथक्=पृथग्भावेन सन्ति, इति पश्य । इदमुक्तं भवति-पृथिव्या एकदेवतारूपत्वं मन्यमाना भ्रान्ताः, वस्तुतस्तु प्रत्येकशरीररूपानामसंख्यात-पृथिवीकायिकजीवानां समुदायः पृथिवी । एवं च पृथिवी सच्चित्ताऽनेकजीवाधिष्ठिता चेति ।

अथ द्वारप्रदर्शनेन वस्तुस्वरूपं सम्यग् निर्णयते तस्माद् द्वारणि

टीकार्थ—प्राण का अर्थ है प्राणी । प्राणी पृथक्-पृथक् आश्रित हैं अर्थात् अलग-अलग प्राणी अपने-अपने शरीर में रहते हैं । अथवा 'श्रित' का अर्थ है-पृथ्वी में आश्रित । अंगुल के असंख्यातवे भाग अवगाहना वाले जीव पृथ्वी-आश्रित हैं, ऐसे पृथ्वीकाय के जीव पृथक्-पृथक् हैं । यह देखो । तात्पर्य यह है कि पृथ्वी को एक ही देवता मानने वाले लोग भ्रम में हैं । वास्तव में पृथ्वी प्रत्येक शरीर वाले असंख्यात पृथ्वीकायिक जीवों का पिंड है । इसी प्रकार पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अधिष्ठित है ।

द्वारों के प्रदर्शन से वस्तु का स्वरूप स्पष्ट हो जाता है, अत यहाँ द्वार

टीकार्थ—प्राणुना अर्थ प्राणी छे प्राणी पृथक्-पृथक् आश्रित छे, अर्थात् अलग-अलग प्राणी पौत-पौताना शरीरमां रहे छे अथवा 'श्रित'ना अर्थ छे 'पृथ्वीमा आश्रित' आगलना असंख्यातमा लागनी अवगाहनावाणा अथ एव पृथ्वी-आश्रित छे अथवा पृथ्वीकायना एव नूदा-नूदा छे ते नुयो

तात्पर्य अथ छे के —पृथ्वीने अनेक देवता मानवावाणा लोक भ्रममा छे वास्तविक रीते तो पृथ्वी प्रत्येक शरीरवाणा असंख्यात पृथ्वीकायिक जीवोना पिंड छे आ प्रमाद्ये पृथ्वी सचित्त छे, अने अनेक जीवोथी अधिष्ठित छे

द्वारोना प्रदर्शनथी वस्तुनु स्वरूप स्पष्ट थर्छ जाय छे, अरुदे अर्छि द्वार पत्ता

कापोतवैजसलेश्याभृष्टयं, सूक्ष्मपृथिवीकायस्यापलेश्याभयम् । तथा—आहारादि
सम्भवा अपि । तथा—वेदनारूपायमारणान्तिकसमुद्रावाऽसत्किञ्चित्, नपुंसकवेदः । पर्याप्ति-
भृष्टयम् । तथा पृथिवीकायजीवा निरन्तरं सततमुच्छ्वसन्ति निम्बसन्ति च ।
एवमुपयोगादिभासोच्छ्वासान्तर्जीवसङ्गण समन्वितत्वान्मनुष्यवत्पृथिवीसचिदाऽस्तीति
सिद्धम् ।

ननु—उपयोगादीनि क्षीयसङ्गणानि पृथिवीकायबीषेषु कश्चिन्नोपलभ्यन्ते, तथा
सचि—अस्तित्वेनैव उपयोगादिजीवसङ्गण कथं पृथिव्याः सचिचत्वं साध्यते ? ।

उच्यते—पृथिवीकायबीषेषुमासन्तुमुष्यक्तान्युपयोगसङ्गणानि, अथ्यक्तानि

सूक्ष्मपृथ्वीकाय में भाषि की तीन केश्याएँ हैं । आहार भाषि संज्ञाएँ भी उसमें हैं ।

पृथ्वी में वेदना कथाम और मारणात्मिक समुद्रात हैं असांज्ञिक है, नपुंसक वेद है
और चार पर्याप्तियाँ भी हैं पृथ्वीकाय के जीव निरन्तर आसोच्छ्वास करते रहते हैं । इस प्रकार
उपयोग से समाकर आसोच्छ्वास पर्यन्त जीव के सङ्गणों से मुक्त होने के कारण पृथ्वी मनुष्य
के समान सचिच है, यह बात सिद्ध हुई ।

सङ्गण—जीव के सङ्गण उपयोग बगैरह पृथ्वीकाय के जीवों में कहीं भी उपलब्ध नहीं
होते । ऐसी स्थिति में बड़ा उपयोग भाषि जीव के सङ्गणों का होना असिद्ध है । असिद्ध
कथन से पृथ्वी की सचिचता किस प्रकार सिद्ध हो सकती है ?

समाधान—पृथ्वीकाय के जीवों में मस्तीमति व्यक्त उपयोग भाषि सङ्गण मळे

सूक्ष्मपृथ्वीकायमां भाषिनी त्रय वेद्यान्ते । आहार भाषि संज्ञायां पञ्च तेषां च

पृथ्वीमां वेदना कथाम अने मारणात्मिकसमुद्रात च अक्षरीपञ्च च नपुंसक
वेद च अने चार पर्याप्तियां पञ्च च पृथ्वीकायना एव निरन्तर आसोच्छ्वास वेदा
रहे च आ प्रमाद्ये उपयोगबी लभने आसोच्छ्वास पर्यन्त एवना लक्षणाबी मुक्त
केवापी पृथ्वी मनुष्य प्रमाद्ये सचिच च ते वात सिद्ध भवति ।

शंका—एवमु उपयोग बनेर पृथिवीकायना एवमां काष्ठ स्थले उप-
लब्ध कतां नशी, केवी स्थितिमां न्यां उपयोग भाषि एवना लक्षणाद्यु डेवु ते
नशी नशी के असिद्ध कथनपी पृथ्वीनी सचिचता केवी वाते सिद्ध भवति शंके च ?

समाधान—पृथिवीकायना एवमा सारी रीते (१५७) अत्र उपयोग भाषि

કિન્ચ-જીવસ્ય યાનિ લક્ષણાનિ તાનિ પૃથિવીકાયસ્ય સન્તિ, કેવલમત્રસ્ત્યાનર્દિના-મદર્શનાવરણકર્મોદયાદુપયોગશક્તિર્જ્ઞાનદર્શનરૂપા નાસ્તિ વ્યક્તા इत्यव्यक्तरूपेणोपयोगो वर्त्तते । तथौदारिक-तन्मिश्र-कार्मणशरीरात्मकः काययोगो वृद्धयष्टिवत् तस्यालम्बनाय वर्त्तते । तथा मानसिकचिन्ताविशेषवत्सूक्ष्मा आत्मपरिणामविशेषरूपा अव्यवसाया-स्तत्र सन्ति । तथा साकारोपयोगान्तर्गतमतिश्रुतरूपमज्ञानद्वयं च तत्रास्ति । तथा स्पर्शनैन्द्रियमात्रस्य सद्भावादचक्षुर्दर्शनं च । तथा सेवार्त्तसंहननं, चन्द्रमसूर-संस्थानं वास्ति । तथा-मिथ्यात्वादिसद्भावादष्टविधकर्मबन्धोऽपि । कृष्णनील-

દૂસરી વાત યહ હૈ કિ-જીવ કે જો લક્ષણ હૈ વે સવ પૃથ્વી મેં પાયે જાતે હૈ । હાં, પૃથ્વીકાય મેં સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણ કર્મ કે ઉદય સે જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગશક્તિ પ્રકટરૂપ મેં નહીં હૈ । પૃથ્વી મેં અવ્યક્તરૂપ સે ઉપયોગ રહતા હૈ ।

તથા ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર ઔર કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષ કી લકડીકે સમાન ઉસ કે આલમ્બન કે લિષ્ટ વિધમાન હૈ । પૃથ્વી મેં આત્મા કે પરિણામ માનસિકચિન્તા-રૂપ અવ્યવસાય મી મૌજૂદ હૈ ।

પૃથ્વી મેં સાકાર-ઉપયોગ કે અન્તર્ગત મતિ ઔર શ્રત-અજ્ઞાન મી પાયે જાતે હૈ । અકેલી સ્પર્શનિન્દ્રિય હોને સે અચક્ષુદર્શન મી હૈ । ઔર સેવાર્ત સહનન, ઈવ ચન્દ્રમસૂર સસ્થાન મી હૈ । મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિધમાન હોને સે આઠ પ્રકારકા કર્મબન્ધ હોતા હૈ । કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત ઔર તૈજસ યે ચાર લેચ્યાઈ મી પૃથ્વીકાય મેં હૈ ।

ખીલ વાત આ છે કે-જીવના જે લક્ષણ છે તે સર્વ પૃથ્વીમા જોવામા આવે છે. હા પૃથ્વીકાયમા સ્ત્યાનર્દિનામક દર્શનાવરણીય કર્મના ઉદયથી જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપ-યોગશક્તિ પ્રકટ રૂપમા નથી પૃથ્વીમા અવ્યક્ત રૂપમા ઉપયોગ રહે છે

તથા-ઔદારિક ઔદારિકમિશ્ર અને કાર્મણ શરીરરૂપ કાયયોગ વૃદ્ધપુરુષની લાકડી સમાન તેના આલમ્બન માટે વિધમાન છે. પૃથ્વીમા આત્માના પરિણામ, માનસિકચિન્તારૂપ અવ્યવસાય પણ મોજૂદ છે

પૃથ્વીમા સાકાર ઉપયોગના અન્તર્ગત મતિ અને શ્રુત અજ્ઞાન પણ જોવામા આવે છે એકલી સ્પર્શનિન્દ્રિય હોવાથી અચક્ષુદર્શન પણ છે અને સેવાર્ત સહનન, એ પ્રમાણે ચન્દ્ર-મસૂર સસ્થાન પણ છે

મિથ્યાત્વ આદિ કારણ વિધમાન હોવાથી આઠ પ્રકારના કર્મબન્ધ પણ થાય છે કૃષ્ણ, નીલ, કાપોત, અને તૈજસ આ ચાર લેચ્યાઓ પણ પૃથ્વીકાયમા છે.

एवं च मनुष्यवद् व्रजस्थानमरवस्वस्य चेतनात्मकस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यथा—पृथिवी सजीवा, दैनिकवर्षणोपचयसंदर्शनात्, चरमत्तञ्चत्, तद्यथा—चरमत्तञ्चत् धूम्यते पुम्यति च, तद्वत् पृथिव्यपि प्रत्यहं धूम्यते, उपचीयते च; तस्मात्तस्याः समीपत्वम् ।

अथवा—विद्रुमपापाणिरूपा पृथिवी सचेतना, काठिन्ये सत्यपि हृदयादि दर्शनात्, शरीरस्थिताभ्यादिषु । तद्यथा—शरीरस्थितमस्यादिक कमठपृष्ठकठिन स्यपि चित्तवद्भूयमानस्युपचयं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान पाप का मरना भी चेतना का एक स्वरूप है, और वह पृथ्वी का भी निश्चय है ।

अथवा—पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उस में प्रतिदिन बिसना और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तलु की तरह । तात्पर्य यह है कि—जैसे पैर का तन्मात्राग घिसता है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन बिसती है और मर जाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा—मृगा, पापाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उसमें कठिनता होने पर भी बृद्धि आदि देसी जाती है, जैसे शरीर को हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर को हड्डी आदि कसुवे की पीठ की मांसि कठोर होने पर भी सन्नित मांस्य होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई दिखाई देती है, इसी प्रकार मृगा—विलम्ब

ते प्रमाद्ये मनुष्यना समान वाप्यनु कस्यत् ननु ते पक्ष्ये चेतनानु लक्षण्ये ते चने ते पृथ्वीकायमा विद्यमाने च

अथवा—पृथिवी सत्य है, शरदु के तेम प्रतिदिन बजातुं चने वधतुं ते नेवामां आवे च वचना तनीजानी प्रमाद्ये तारुषं जे च के-नेम पयना तनी चाने चान वसत्ये च चने हरी पाञ्च पुष्ट वधं अथ च ते प्रमाद्ये पृथिवी पक्ष्य प्रतिदिन वसत्ये च चने हरी पञ्ची कस्यत् अथ च तेभी पृथिवी पक्ष्य सत्ये च

अथवा—मृगा (परवाण) पापाण आदि रूप पृथ्वी सत्य है किमहे-तेम कठिनता होवा उत्तम पक्ष्य वृद्धि वजेरे नेवामां आवे च नेवी रीते शरीरना कस्यत् आदि तारुषं जे च के-नेवी रीते शरीरना कस्यत् आदि कस्यतानी पीठ नेवा कठोर होवा उत्तम पक्ष्य सन्नित मांस्य चने च, चने वृद्धिने प्राप्त वत्त होवा तेम देवत्ये च, ते

तु तत्र सन्त्येव, यथा—रुस्यचिन्मनुष्यस्य अत्युत्कटमदिरातिपानजनित-
पित्तोद्वयमूर्च्छितस्य चेतनाया अव्यक्तत्वेऽपि न तस्याचित्तरूपता विज्ञायते, एवं
पृथिवीकायजीवेष्वव्यक्तचेतना संभवति ।

न चाव्यक्तचेतनाऽभिव्यञ्जकमुच्छ्वासादिकं मद्यमूर्च्छितमनुष्यस्य सचित्त-
रूपमावेदयति, इह तु न किञ्चिच्चेतनालक्षणं लक्ष्यत इति वाच्यम् ।

यथा मनुष्यशरीरे क्षतस्थान मांसादिरिक्तमपि पश्चात्क्षतादिनिवृत्तौ स्वयं
भ्रियते, तथैव खनितं खनिभूम्यादिकं सजातीयवयवैर्भ्रियमाणं दृश्यते ।

ही न हों, मगर अव्यक्तरूप में तो विद्यमान है ही । जैसे कोई मनुष्य खूब नसैली मदिराका
डॉक्टर पान कर ले और पित्त के प्रकोप से मूर्च्छित हो जाय तो उसको भी चेतना अव्यक्त
हो जाती है, फिर भी उसे अचित्त (अचेतन) नहीं कहा जा सकता । इसी प्रकार पृथ्वीकाय
के जीवों में अव्यक्त चेतना है ।

शङ्का—अव्यक्त चेतना के बोधक उच्छ्वास वगैरह मद्यमूर्च्छित मनुष्य की सचित्तता
को प्रकट करते हैं, मगर यहाँ (पृथ्वीमें) तो चेतना का कोई भी लक्षण नहीं दिखाई देता ।
ऐसी स्थिति में पृथ्वी की सचेतनता किस प्रकार मानी जाय ?

समाधान—जैसे—मनुष्य के शरीर में घाव हो जाता है तो उस स्थान
में मांस आदि नहीं रहता । पश्चात् घाव मिट जाने पर वह भर जाता है । इसी प्रकार
खोदी हुई खान आदि की भूमि अपने सजातीय अवयवों से भरजाती दिखाई देती है ।

लक्षण लक्ष्मि न लोभ, परन्तु अव्यक्त रूपमा तो विद्यमान छे न्नेम कोर्ध मनुष्य
भूष पेटलरीने धृषा नीसावाणी मदिरानु पान करी ले अने पित्तना प्रकोपथी
मूर्च्छित थर्ध न्य तो तेनी पषु चेतना अव्यक्त थर्ध न्य छे, अटले तेने
अचित्त कही शकता नथी अे प्रभाषे पृथ्वीकायना शुवोभा अव्यक्त चेतना छे

शङ्का—अव्यक्त चेतनाना बोधक तरीके उच्छ्वास वगैरे मनुष्यनी सचित्तताने
प्रकट करे छे परन्तु अर्हि (पृथ्वीमा) तो चेतनानु कोर्ध पषु लक्षण लोवाभा आवर्तु
नथी अेवी स्थितिमा पृथ्वीनी सचेतनता केवी रीते मानी शकय ?

समाधान—जेवी रीते मनुष्यना शरीरमा घाव-छेडा न्नेम थर्ध न्य छे तो
ते स्थानमा मांस आदि रहेतु नथी पाछणथी घाव इअर्ध न्ता ते मासथी लराध न्य
छे. अे प्रभाषे जोदेदी आषुनी भूमि पोताना सजातीय अवयवोथी लराध न्य छे.

एवं च मनुष्यवद् ब्रह्मस्थानमरुगरूपस्य चेतनालक्षणस्य पृथिवीकायेऽपि सत्त्वात् ।

यद्वा-पृथिवी सजीवा, दैनिकवर्षणोपचयसंबन्धनात्, चरणतन्त्रवत्, तद्यथा-चरणतलं घृष्यते पुष्पति च, तद्वत् पृथिव्यापि प्रत्यहं घृष्यते, उपशीयते च; तस्मात्तस्याः समीपत्वम् ।

अथवा-विद्रुमपाषाणिरूपा पृथिवी सचेतना, फाटिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादि दर्शनात्, शरीरस्थित्वास्थ्यादिवत् । तद्यथा-शरीरस्थितमस्थ्यादिक कमठपृष्ठकठिनस्यपि चित्तवद्वद्भूयमानसुषण्यं च गच्छत् संदृश्यते । एवं विद्रुमशिलायात्मिकायाः

इस प्रकार मनुष्य के समान घब का मरना भी चेतना का एक लक्षण है, और वह पृथ्वी कायमें विद्यमान है ।

अथवा-पृथ्वी सजीव है क्योंकि उसमें प्रतिदिन विसर्ग और उपचय होना देखा जाता है, पैर के तल की तरह । तात्पर्य यह है कि-जैसे पैर का तलमाग विसर्ग है और फिर पुष्ट हो जाता है, उसी प्रकार पृथिवी भी प्रतिदिन विसर्ग है और मर जाती है । अतः पृथिवी भी सजीव है ।

अथवा-मृगा पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है, क्योंकि उसमें कठिनता होने पर भी वृद्धि आदि देखी जाती है, जैसे शरीर की हड्डी आदि । तात्पर्य यह है कि जैसे शरीर की हड्डी आदि कस्तुर की पीठ की माँति कटोरे होने पर भी सन्निक मांसम होती है और उपचय को प्राप्त होती हुई बिसर्ग देती है, इसी प्रकार मृग-शिला

ते प्रमाद्ये मनुष्यना समान धावतु कश्चिं चतु ते पद्य जेक चेतनानु लक्षणं ते अने ते पृथ्वीकायमां विद्यमानं च

अथवा-पृथिवी सजीव है कारण है तेमा प्रतिदिन प्रसावुं अने वधतु ते नेवामां आवे च पत्रना तणीमाणी प्रमाद्ये तात्पर्य अने च है-जेम पत्रना तणी अनेमा भाग प्रसाव च अने इरी पाण पुष्ट बर्ध अम च ते प्रमाद्ये पृथिवी पद्य प्रतिदिन प्रसाव च अने इरी फली कश्चिं अम च तेषी पृथिवी पद्य सजीव चे.

अथवा-मृगा (पशुना) पाषाण आदि रूप पृथ्वी सजीव है क्योंकि-तेमा कठिनता होने पर भी वृद्धि वजरे नेवामां आवे च, जेवी रीते शरीरना कश्चिं आदि तात्पर्य अने च है-जेवी रीते शरीरना कश्चिं आदि कश्चिंमाणी पीठ नेवा कठोर होने पर भी वृद्धि अने प्रसाव पडे च, अने वृद्धिने प्राप्त भव्य होने तेम देखाय च ते

पृथिव्याः काठिन्ये सत्यपि वृद्ध्यादिकं प्रत्यक्षं दृश्यते तस्मात्तस्याः सचेतनत्वम् ।

अथ च—विद्रुमाद्यात्मिका पृथिवी सचित्ता, छेदादौ तत्सजातीयधातूपत्ति-दर्शनात्, अर्शोऽङ्कुरवत् । तथाथा—अर्शोऽङ्कुरे छिन्नेऽपि पुनस्तत्समान एवाङ्कुरः प्रादुर्भवति, एवं विद्रुमशिलाद्यात्मिकायाः पृथिव्याः खन्यादौ छेदेऽपि तत्सजातीय-धातुभिस्त्वद्रिक्तभागः परिपूर्यते, तस्मात् सिद्धं पृथिव्याः सचित्तत्वम् ।

किञ्च — यथा सास्नाचिपाणाद्यवयवसघातानां गोमहिष्यादिशरीराणां छिन्न-भिन्नो—त्क्षिप्त—स्पृष्ट—दृष्ट—द्रव्यत्वेन जीवशरीरत्व, तथैव पृथिव्यादीनां प्रत्यक्षदृष्टं

आदिरूप पृथ्वी में, कठिनता होने पर वृद्धि आदि प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इस कारण पृथिवी सचित्त है ।

अथवा—मूंगा आदि पृथ्वी सचित्त है, क्यों कि उसका छेदन होने पर वहा उसी की सजातीय धातु उत्पन्न होती है, अर्श (मरसा) के अङ्कुर के समान, जैसे अर्श के अङ्कुर एकवार काट देने पर भी फिर वहाँ उसी जाति के अङ्कुर उत्पन्न हो जाते हैं, उसी प्रकार मूंगा—शिला आदि रूप पृथिवी का खान आदि में छेदन कर देने पर भी उसी की सजातीय धातुओं से यह खाली स्थान भर जाता है, अतः पृथिवी की सचित्तता सिद्ध हुई ।

और भी लीजिए—जैसे सास्ना (गायके गले में लटकने वाली चमड़ी) सींग आदि अवयवों का समुदायरूप गाय, भैस आदि के शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट और द्रव्यत्व के कारण जीव के शरीर हैं, इसी प्रकार पृथिवी आदि में प्रत्यक्ष से

प्रमाणे मूंगा (परवाणा) शिला आदि रूप पृथ्वीमा कठिनता छोड़ा छूताय पण वृद्धि आदि प्रत्यक्ष जेवाभा आवे छे, आ कारणुथी पृथ्वी सचित्त छे

अथवा—मूंगा (परवाणा) आदि पृथ्वी सचित्त छे केमके—तेतु छेदन थवाथी त्यां तेनी सजातीय धातु, उत्पन्न थाय छे, अर्श (मरसा)ना अङ्कुर प्रमाणे, जेभ अर्शना अङ्कुर अेकवार कापी नाभवा छताय पणु इरीथी त्या ते नतिने अङ्कुर उत्पन्न थाय छे, ते प्रमाणे मूंगा—शिला आदि रूप पृथिवीतु भाणु आदिमा छेदन करी देवा छताय पणु तेनी सजातीय धातुआथी ते आली स्थान लराध जय छे, ते कारणुथी पृथ्वीनी सचित्तता सिद्ध थध

भीणु पणु प्रमाणु लध अे, जेभ सास्ना (गायना गणाभा लटकवावाणी आभडी) सींग आदि अवयवोना समुदायरूप—गाय, भेस आदिना शरीर छिन्न, भिन्न, उत्क्षिप्त, स्पृष्ट, दृष्ट, अने द्रव्यत्वना कारणुथी अवतु शरीर छे, ते प्रमाणे पृथ्वी आदिमा प्रत्यक्ष

छिन्नत्वादिकमपस्यपितु न क्षयते, तस्मात्पृथिव्यादीनामपि नीबन्दीरस्त्वं सिद्धयति । नीबन्दीरस्त्वेन निरूपितत्वात् पृथिव्यादीनामपि करचरणसंपाठानामिष कटाचिच्चैतन्त्यं सिद्धयति, नतु सर्वथा शान्तिकनिर्भावत्वे तेषां संभवति, कदाचिद्विचित्रत्वमपि क्षत्रोपहसत्वादेव भवति करचरणादिबदिति ।

पृथिव्याः सचित्तत्वेऽनेकजीवाभिच्छित्तत्वे भागमोऽपि प्रमाणम् । तथाहि—
 “पृथ्वी चित्तमंतमक्त्वाया अपेगजीवां पुडोसत्वा, अमस्य सत्यपरिचरण” (दश ४ अ)

पृथिवी चित्तपरी=समीवा-आख्याता=मगावता कथिता अनेकजीवा=

विसर्ग देने वाली छिन्नता आदि का अपकाय नहीं किया था सफ़ता अथ पृथिवी आदि जीव के शरीर हैं, इस प्रकारका निरूपण करने से हाथ पैर की तरह उन में भी किसी समय कैठय का अस्तित्व सिद्ध होता है, उनकी सदैव और सर्वा निर्वाणता सिद्ध नहीं हो सकती । पृथिवी आदि कदाचित् निर्वाण होती है तो उसका कारण शक्त का उपपन्न है । शक्त के प्रयोग से जैसे हाथ-पैर आदि अवयव निर्वाण हो जाते हैं उसी प्रकार पृथ्वी भी निर्वाण हो जाती है ।

पृथ्वी सचित्त है और अनेक जीवों से अभिच्छित्त है, इस विषय में भागमप्रमाण भी है यह इस प्रकार— पृथ्वी सचित्त कही गई है उसमें अनेक जीव हैं और उस सब की सत्ता एक-एक है,—एतत्परिणत पृथ्वी को छोड़कर ” (दश ४ अ)

अर्थात्—पृथ्वी सजीव है, ऐसा मगावाने कहा है । उस में अनेक ऐकेन्द्रिय जीव हैं ।

हेनाथ आवे तेनी छिन्नता आदिने अपकाय (छटी वस्तु देखाय ते ना कहेवी के नही देखाती) ठरी शक्यो नहि, जे भाटे पृथ्वी आदि पक्ष लवन् शरीर सिद्ध बाय छे पृथ्वी आदि लवन् शरीर छे, जे प्रकारनु निरूपण कयाथी काय-पजनी प्रभावे तेमां पक्ष हेअ सभय शैतन्त्यु अस्तित्व सिद्ध बाय छे तेनी कथियां अने शर्वथ निर्लपता सिद्ध कर् शकती नही पृथ्वी आदि कदाचित् निर्लप होय छे तो तेनु कस्यु शक्यो उपचात छे (कथिन्तरथी कयानु-जोहानु ते छे) शक्यता प्रयोजनी जेअ काय-पज अवयव निर्लप कर् नाय छे ते प्रभावे पृथ्वी पक्ष निर्लप कर् नाय छे.

पृथ्वी सचित्त छे अने अनेक लोकाधी अभिच्छित्त छे आ विषयमां आअम प्रभाय पक्ष छे ते आ प्रभावे—

पृथ्वी सचित्त कहेवामां आनी छे तेमां अनेक लव छे अने ते अपनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे, अत्यपरिच्छित्त पृथ्वीने जलने. (शश्वैकालिक ४-अ)

अर्थात्—पृथ्वी सलव छे, जेनुं लजवाने कहुं छे, तेमां अनेक ऐकेन्द्रिय लव छे

પૃથિવ્યાઃ કાઠિન્યે સત્યપિ વૃદ્ધ્યાદિક પ્રત્યક્ષ દૃશ્યતે તસ્માત્તમ્યાઃ સચેતનત્તમ્ ।

અથ ચ-વિદ્રુમાઘાત્મિકા પૃથિવી સચિત્તા, છેદાદૌ તત્મજાતીય યાતુત્પત્તિ-દર્શનાત્, અર્શોઽકુરવત્ । તદ્યાથા-અર્ગસોઽકુરે છિન્નેઽપિ પુનસ્તત્સમાન ઇવાકુરઃ પ્રાદુર્ભવતિ, એવં વિદ્રુમશિલાઘાત્મિકાયાઃ પૃથિવ્યાઃ સ્વન્યાદૌ છેદેઽપિ તત્સજાતીય ધાતુભિસ્તદ્રિક્તભાગઃ પરિપૂર્યતે, તસ્માત્ સિદ્ધં પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્ત્વમ્ ।

ક્રિચ્ચ - યથા સાસ્નાત્રિપાળાઘવ્યવસઘાતાના ગોમહિપ્યાદિશરીરાણાં છિન્ન-મિન્નો-ત્ક્ષિપ્ત-સ્પૃષ્ટ-દૃષ્ટ-દ્રવ્યત્વેન જીવશરીરત્વ, તથૈવ પૃથિવ્યાદીના પ્રત્યક્ષદૃષ્ટં

આદિરૂપ પૃથ્વી મેં, કઠિનતા હોને પર વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ દિશાઈ દેતા હૈ । ઇસ કારણ પૃથિવી સચિત્ત હૈ ।

અથવા-મૂગા આદિ પૃથ્વી સચિત્ત હૈ, ક્યોં કિં ડસકા છેદન હોને પર વહાં ડસી કો સજાતીય ધાતુ ડત્પન્ન હોતી હૈ, અર્ગ (મસ્સા) કે અકુર કે સમાન, જૈસે અર્ગ કે અકુર ઇકવાર કાટ દેને પર મી ફિર વહાં ડસી જાતિ કે અકુર ડત્પન્ન હો જાતે હૈ, ડસી પ્રકાર મૂગા-ગિલા આદિ રૂપ પૃથિવી કા સ્વાન આદિ મેં છેદન કર દેને પર મી ડસી કો સજાતીય ધાતુઓ સે યહ સ્વાલી સ્થાન મર જાતા હૈ, અત્ પૃથિવી કો સચિત્તા સિદ્ધ હુઈ ।

ઔર મી લીજિઈ-જૈસે સાસ્ના (ગાયકે ગલે મેં લટકને વાલી ચમડી) સીગ આદિ અવ્યવો કા સમુદાયરૂપ ગાય, મૈસ આદિ કે શરીર છિન્ન, મિન્ન, ડત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ ઔર દ્રવ્યત્વ કે કારણ જીવ કે શરીર હૈ, ઇસી પ્રકાર પૃથિવી આદિ મેં પ્રત્યક્ષ સે

પ્રમાણે મૂગા (પરવાળા) શિલા આદિ રૂપ પૃથ્વીમા કઠિનતા હોવા છતાંય પણ વૃદ્ધિ આદિ પ્રત્યક્ષ જોવામા આવે છે, આ કારણથી પૃથ્વી સચિત્ત છે

અથવા-મૂગા (પરવાળા) આદિ પૃથ્વી સચિત્ત છે કેમકે-તેનુ છેદન થવાથી ત્યાં તેની સજાતીય ધાતુ, ડત્પન્ન થાય છે, અર્શ (મસ્સા)ના અકુર પ્રમાણે, જેમ અર્શના અકુર એકવાર કાપી નાંખવા છતાંય પણ ફરીથી ત્યાં તે બલતિને અકુર ડત્પન્ન થાય છે, તે પ્રમાણે મૂગા-શિલા આદિરૂપ પૃથિવિનુ ખાણુ આદિમા છેદન કરી દેવા છતાંય પણ તેની સજાતીય ધાતુઓથી તે ખાલી સ્થાન ભરાઈ જાય છે, તે કારણથી પૃથ્વીની સચિત્તા સિદ્ધ થઈ

ખીણુ પણ પ્રમાણુ લઈએ, જેમ સાસ્ના (ગાયના ગળામા લટકવાવાળી ચામડી) સીગ આદિ અવ્યવોના સમુદાયરૂપ-ગાય, ભેસ આદિના શરીર છિન્ન, ભિન્ન, ડત્ક્ષિપ્ત, સ્પૃષ્ટ, દૃષ્ટ, અને દ્રવ્યત્વના કારણથી જીવનુ શરીર છે, તે પ્રમાણે પૃથ્વી આદિમા પ્રત્યક્ષ

मेदात् । तत्र द्रव्यशक्तं स्वकायपरकायतदुमयसङ्गणम् । तत्र स्वकायशक्तं पृथिव्या-
पृथिव्येव यथा-कृष्णमृत्तिकायाः शुद्धमृत्तिकेत्यादि । परकायशक्तं जलाग्निगोमय
परजम्बकचक्रादि । उमयकायशक्तं जलादिमिभ्रमृत्तिका । एवं च अत्रपरिणतायाः
पृथिव्या अविद्यतया न तत्रोन्धारमङ्गवगादिक्रियया घृनीनामर्हिसाम्रतस्त्विति ।

(२) प्ररूपणाद्वातम्-

पृथिवीजीवा द्विविधाः सूक्ष्मवातरमेदात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः,
वाटरनामकर्मोदयाद् वादरा, न तु वाटरनामकर्मोदयात्सूक्ष्मत्वं वादरस्य च ।

के स्थि शक्त है । शक्त के दो भेद हैं-द्रव्यशक्त और भावशक्त । स्वकाय परकाय और
उमयकायरूप द्रव्य-शक्त है । पृथ्वी का शक्त पृथ्वी-स्वकायशक्त है जैसे काली मिट्टी का
शक्त सफेद मिट्टी है । परकायशक्त जैसे-कल, अग्नि गोबर परण (पग) शकट (गड़दी)
का पैया आदि । कल आदि से मिली हुई मृत्तिका उमयकायशक्त है । इन प्रकार शक्त से
परिणत पृथ्वी अविद्यत हो जाती है, अत एव उस पर मल-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनियों
के अर्हिसाम्रत में कोई छति नहीं पहुँचती ।

(२) प्ररूपणा-द्वात-

पृथ्वी के सूक्ष्म और वाटर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म
और वाटरनामकर्म के उदय से वाटर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और वाटरता केर और आबके
की तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शक्तना के दो छे द्रव्यशक्त जाने भावशक्त, स्वकाय, परकाय जाने उमयकायरूप
द्रव्यशक्त छे पृथ्वीनु शक्त पृथ्वी स्वकाय-शक्त छे जेम हाथी भाटीनु शक्त सफेद
भाटी छे परकाय-शक्त जेमके कल, अग्नि जख, पग भाटीनु आक आदि कल-
पथी आदिथी भयेली भाटी उमयकाय-शक्त छे । आ प्रभाये शक्तथी परिणत पृथ्वी
अविद्यत कर्ष जाय छे । जेदहा भाटे तेना पर भण-भूवादि त्याग करवावाणा मुनि
जोना अर्हिसाम्रतमा कर्ष कानि पडोवती नथी ।

(२) प्ररूपणाद्वात-

पृथ्वीकायना छव सूक्ष्म जाने वाटरना केदधी के प्रकारना छे सूक्ष्मनामकर्मना
उमयकाय सूक्ष्म जाने वाटरनामकर्मना उदयथी वाटर काय छे अर्हिस सूक्ष्मता जाने
वाटरता केर जाने अर्हिसाम्रतनी प्रभाये सापेक्ष समलची नकि जेधके

अनेके=वहवो जीवा एकेन्द्रिया यस्यां सा तथोक्ता, पृथक् सत्त्वा=पृथक् पृथग्भूता अङ्गलासख्येयभागमात्रशरीरावगाहनामाश्रित्य विभिन्नरूपेण स्थिताः सन्नाः=स्पर्शनेन्द्रियवन्तो जीवा यस्या सा तथोक्ता 'आख्याता' इति पूर्वोक्तेन संबन्धः ।

ननु तर्हि तथाभूतायां सचित्तायां पृथिव्या गमनागमनादिक्रियां कुर्वतां सयतानामर्हिसात्रतस्य सरक्षण कथं भवति प्रत्युतावश्यकरणीयोच्चार-प्रस्रवणादिक्रियया हिंस्रं भवति, तस्मादर्हिसात्रतपालन वन्द्यापुत्रपालनवद-संभवम् ?—इत्यत आह—'अन्नत्थ सत्यपरिणएण' इति, शस्त्रपरिणताया अन्यत्र, शस्त्रपरिणता पृथिवीं वर्जयित्वाऽन्या पृथिवी सजीवा । शस्यते=हिंस्यते प्राणिगणोऽ-नेनेति शस्त्रं । यद् यस्य विनाशकारण तत्तस्य शस्त्रमित्यर्थः । तत् द्विविधं द्रव्यभाव-

वे सव जीव अगुल के असख्यातवें भागकी शरीर—अवगाहनावाले भिन्न-भिन्न रूप में स्थित है । यहाँ सत्व का अर्थ एकेन्द्रिय जीव समझना चाहिए ।

शङ्का—पृथ्वी अगर सचित्त है तो सचित्त पृथ्वी पर गमन—आगमन आदि क्रिया करने वाले साधुओं का अर्हिसात्र कैसे स्थिर रह सकता है ? प्रत्युत मल—मूत्र आदि का त्याग अनिवार्य है और इस से हिंसा होना भी अनिवार्य है । एसी स्थिति में अर्हिसा का पालन करना वध्या—पुत्र का पालन करने के समान असभव है ।

समाधान—शास्त्र में कहा है—'अन्नत्थ सत्यपरिणएण' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वी को छोड़कर दूसरी पृथ्वी सचित्त है । जिस के द्वारा प्राणिगण का हनन हो उसे शस्त्र कहते हैं । तात्पर्य यह है कि जो जिस के विनाश का कारण है, वह उस

ते सर्व एव अशुलना असभ्यातमा लागनी शरीर—अवगाहनावाणा भिन्न-भिन्न रूपमा स्थित छे अर्हि सत्त्वनेो अर्थ अकेन्द्रिय एव समजवेो जेधं अे.

शङ्का—पृथिवी अगर सचित्त छे तो सचित्त पृथ्वी पर जेवा आववानी क्रिया करवावाणा साधुअेनु अर्हिसात्रत स्थिर डेवी रीते रडी सके छे ? उलट्टु मल-मूत्र आदिनेो त्याग अनिवार्य छे, तेथी हिंसा थवी पणु अनिवार्य छे अेवी स्थितिमा अर्हिसात्रुं पालन करवुं ते वध्यापुत्रना पालन करवा समान असभव छे

समाधान—शास्त्रमा कहु छे डे—'अन्नत्थ सत्यपरिणएण' अर्थात् शस्त्र-परिणत पृथ्वीने त्ये ए भी ए पृथ्वी सचित्त छे जेना द्वारा प्राणिगणु हुनन (नाश) थाय तेने शस्त्र कडे छे. तात्पर्य अे छे डे—जे जेना विनाशनु कारणु छे ते तेना भाटे शस्त्र छे

मेवात् । तत्र द्रव्यशब्दं स्वकायपरकायतदुभयसङ्गणम् । तत्र स्वकायशब्दं पृथिव्याः पृथिव्येषु यथा-कृष्णसृष्टिकायाः शुद्धसृष्टिकेत्यादि । परकायशब्दं जलाम्बिगोमय चरजसकण्ठकादि । उभयकायशब्दं जलादिमिश्रसृष्टिका । एष च शस्त्रपरिभतायाः पृथिव्या अविचलता न तत्रोच्चारमस्रवणादिद्रियया ध्वनीनामहिसामतस्ततिः ।

(१) मरुपवाद्धारम्-

पृथिवीजीना द्विधाः सूक्ष्मबादरमेवात् । सूक्ष्मनामकर्मोदयात्सूक्ष्माः, बादरनामकर्मोदयाद् बादराः, न तु बदरामलकत्वदापेक्षिकं सूक्ष्मत्वं बादरत्वं च ।

के रूपेण शब्द है । शब्द के दो भेद हैं-द्रव्यशब्द और भावशब्द । स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्य-शब्द है । पृथ्वी का शब्द पृथ्वी-स्वकायशब्द है जैसे कासी मिठी का शब्द सफेद मिठी है । परकायशब्द जैसे-जल, जग्नि, गोबर, चरण (पग) शकट (गाड़ी) का पैसा आदि । जल आदि से मिली हुई सृष्टिका उभयकायशब्द है । इस प्रकार शब्द से परिष्कृत पृथ्वी अविचल हो जाती है, जल एव उस पर मरु-मूत्र आदि त्यागने वाले मुनिबों के अहिसाम्त में कर्षे कति नहीं पहुँचती ।

(२) मरुपणा-धार-

पृथ्वी के सूक्ष्म और बादर के भेदसे दो प्रकार हैं । सूक्ष्मनामकर्म के उदय से सूक्ष्म और बादरनामकर्म के उदय से बादर होते हैं । यहाँ सूक्ष्मता और बादरता बेर और भावके को तरह सापेक्ष नहीं समझनी चाहिए ।

शब्दना से भेद से द्रव्यशब्द जने भावशब्द, स्वकाय परकाय जने उभयकायरूप द्रव्यशब्द है । पृथ्वीनु शब्द पृथ्वी स्वकाय-शब्द से जेभे कासी भरीनु शब्द सफेद भाटी से परकाय-शब्द जेभेके जल, जग्नि, जग, चरण आदीनु आदि आदि जल-पानी आदिभी भरीली भाटी उभयकाय-शब्द है । जे प्रभयसे शकधी परिष्कृत पृथ्वी अविचल कर्षे जग है । अहिसा माटे तेना पर मज-भूत्रादि त्याज करवावणा मुनि-जोना अहिसामतमां कर्षे कानि पहुँचती नथी ।

(३) मरुपण्डाधार-

पृथ्वीकायना एव सूक्ष्म जने बादरना सेटधी से प्रकाशना से सूक्ष्मनामकर्मना उदयधी सूक्ष्म जने बादरनामकर्मना उदयधी बादर रूप से अहिसा सूक्ष्मता जने भावशब्द, जार जने अविचलनी प्रभयसे सापेक्ष समझनी नहिं जेईजे ।

तत्र सूक्ष्माः द्विविधाः—पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च, ते कज्जलकूपिकावत् सर्वलोक-
व्यापिनः ।

वादरा अपि द्विधा-पर्याप्तापर्याप्तभेदात् । तत्र वादराः पर्याप्ता
अपर्याप्ताश्च लोकस्यैकदेशे पृथिव्यष्टकाधोऽधःपाताल-भवन-नकरप्रस्तरादौ
सन्ति । ते विद्विधाः श्लक्ष्ण-खरभेदात् । तत्र श्लक्ष्णा वादरपृथिवी सप्तधाकृष्ण-
नील-लोहित-पीत-शुक्ल-पण्डु-पनकभेदात् । खरवादरपृथिव्यास्तु चत्वारिंशद् (४०)
भेदाः, तथाहि—

(१) शुद्धपृथिवी, (२) शर्करापृथिवी, (३) बालुकापृथिवी, (४) उपलः, (५) शिला,
(६) लवणः, (७) ऊषः (८) अयः, (९) ताम्रः, (१०) त्रपुः, (११) सीसकम्, (१२) रूप्यम्,
(१३) सुवर्णम्, (१४) वज्रः, (१५) हरितालः (१६) द्विङ्गुलकः, (१७) मनःशिला,

सूक्ष्म जीव भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । ये जीव काजल की कुप्पी के समान
सम्पूर्ण लोक में भरे हुए हैं ।

वादर भी पर्याप्त और अपर्याप्त—दो प्रकार के है । ये जीव लोक के एक देश में
हैं । इन के दो भेद हैं—श्लक्ष्ण और खर । श्लक्ष्णवादरपृथ्वी के सात भेद हैं—कृष्ण नील
लोहित (लाल) पीत शुक्ल पाण्डु और पनक खरवादर पृथ्वी के चालीस भेद हैं, वे इस
प्रकार—

(१) शुद्ध-पृथिवी, (२) शर्करा-पृथिवी, (३) बालुका-पृथिवी, (४) उपल,
(५) शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा,
(११) सीसा, (१२) चादी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगल,

सूक्ष्म एव पशु ये प्रकारना छे पर्याप्त अने अपर्याप्त-एव काजलानी कुप्पीनी
समान स पूर्य्य लोकाभा लरेला छे

आदर पशु पर्याप्त अने अपर्याप्त ज्येभ ये प्रकारना छे ज्ये एव लोकाभा
ज्येक देशमा छे तेना ज्ये लेह छे श्लक्ष्ण अने खर, स्वक्ष्ण आदर पृथ्वीना सात
लेह छे कृष्ण, नील, लोहित (लाल) पीत, शुक्ल, पाण्डु अने पनक खर-आदर
पृथ्वीना आदीस लेह छे-ते आ प्रमाण्ये छे —

(१) शुद्ध पृथिवी, (२) शर्करा पृथिवी, (३) बालुका पृथिवी, (४) उपल, (५)
शिला, (६) लवण-नमक, (७) ऊष-क्षार, (८) लोहा, (९) तांबा, (१०) रागा-कलाध,
(११) सीसा, (१२) चादी, (१३) सोना, (१४) वज्र, (१५) हरिताल, (१६) हींगल,

(१८) अक्षयकः-पारद, स्वनामस्यातो रत्नविशेष, (१९) अञ्जनं, (२०) प्रवालम्, (२१) अक्षयकम्, (२२) अक्षयकम् (अक्षयकपूर्णम्), (२३) गोमेदकः, (२४) रुचकः, (२५) अक्षयः, (२६) स्फटिकः, (२७) लोहितान्, (२८) मरकतः, (२९) मसारगण्ड, (३०) मुञ्जमोचक, (३१) इन्द्रनीलः, (३२) चन्दनम्, (३३) गेरिकम्, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगन्धिकः, (३७) चन्द्रप्रभा, (३८) वैदूर्यम्, (३९) मलकान्तः, (४०) सूर्यकान्तः। एते च शुद्धपृथिव्यादयः पृथिवीकायिकाः स्वाकरादौ सचिप्ता भवन्ति।

गोमय-कृषपर-सचिततापादिसंपर्कायु गतवेतना अपि भवन्ति। वादरपृथिव्या यत्रैको जीवस्तत्राजसंख्यातैर्नियमतो माभ्यम्।

एवमप्येवोपायुप्रत्येकवनसतिष्पि विज्ञेयम्। निगोदे तु यत्रैको

(१७) मैनसिह (१८) अक्षयक-पारा अक्षय रत्नविशेष, (१९) अञ्जन, (२०) प्रवाल (२१) अक्षयकम्, (२२) अक्षयकम् (अक्षयकपूर्णम्), (२३) गोमेद, (२४) रुचक, (२५) अक्षय, (२६) स्फटिक, (२७) लोहितान्, (२८) मरकत, (२९) मसारगण्ड, (३०) मुञ्जमोचक, (३१) इन्द्रनील, (३२) चन्दन (३३) गेरू, (३४) हंसगर्भ, (३५) पुलक, (३६) सौगन्धिक, (३७) चन्द्रप्रभा-चन्द्रकान्त, (३८) वैदूर्य, (३९) मलकान्त, (४०) सूर्यकान्त। ये शुद्ध पृथिवी अपि वास्तव्येन च अपने आकर (सान) में रहते हैं तो सचित होते हैं। गाबर कषरा सुरब को पूव आदि के संपर्क से अचेतन हो जाते हैं। जहाँ वादरपृथ्वीकाय का एक जीव होता है वहाँ असंख्यात जीव नियम से होते हैं।

इसी प्रकार जप, तेज, वायु और प्रत्येकवनसति में भी समझना चाहिए।

(१७) मैनसिह, (१८) पारद, (१९) अक्षय, (२०) अक्षय, (२१) अक्षय-रत्न, (२२) स्फटिक, (२३) लोहितान्, (२४) मरकत, (२५) मसारगण्ड, (२६) मुञ्जमोचक (२७) अक्षयनील, (२८) चन्दन, (२९) गेरू, (३०) हंसगर्भ (३१) पुलक (३२) सौगन्धिक (३३) चन्द्रप्रभा-चन्द्रकान्त, (३४) वैदूर्य (३५) मलकान्त, (३६) सूर्यकान्त। आ शुद्ध पृथ्वी अपि वास्तव्येन च अपने अचेतनां अकार-आयुर्मां रहे छे तो सचित होय छे। जप, कषरा, सुरबनेो तर्को। वनेरेन सपक भी ते अचेतन बर्धनय छे। जहाँ वादर पृथ्वीकायने जोक एव होय छे त्यां असंख्यात एव नियमशी होय छे।

जो प्रकारे जप, तेज, वायु अने प्रत्येकवनसतिमां पद्य समर्थतं लोभजे

નિગોદજીવસ્તત્ર નિયમતોઽનન્તાઃ ।

વાદરાણાં સૂક્ષ્માણા ચ પૃથિવીકાયાનાભેતે વક્ષ્યમાણા ભેદાઃ સન્તિ, તત્રોભયોઃ પર્યાપ્તાપર્યાપ્તિભેદઃ પ્રાગુક્તઃ, અન્યે ભેદા ઉચ્યન્તે-શરીરત્રયા-ઽગુલા-સંખ્યેયમાગશરીર-સેવાર્ત્તસહનન-મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન-કપાયચતુષ્ક-સઙ્ગાચતુષ્કા-ઽઽઘલેશ્યાત્રય-સ્પર્શનેન્દ્રિય-વેદનાકષાયમારણાન્તિકસમુદ્ધાતા-ઽસઙ્ગિત્વ-નપુસક-વેદ-પર્યાપ્તિચતુષ્ટય-મિથ્યાદર્શના-ઽચક્ષુદર્શના-ઽજ્ઞાન-કાયયોગ-સાકારાનાકારો-પયોગાઽઽહારાદિપ્રમૃતયઃ । તત્ર વિશેષસ્તુ વાદરપૃથિવીકાયાનાં લેશ્યા આઘાશ્ચતસ્રઃ, શેષં સર્વં સમાનમ્ । અસંખ્યેયાશ્ચ પ્રત્યેકમુભયે ।

નિગોદ મેં જહાં એક જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અનન્ત જીવ હોતે હૈ ।

વાદર ઓર સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોં કે ભેદ ઇસ પ્રકાર હૈ—દોનોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત ભેદ પહેલે કહે જા ચુકે હૈ । અબ અન્ય ભેદ કહતે હૈ—તોન શરીર, અંગુલકા અસંખ્યાતવા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઈ, પ્રારભ કી તોન લેશ્યાઈ, સ્પર્શનેન્દ્રિય, વેદના કષાય ઓર મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસજ્ઞીપન, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિયોં, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન તોન અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ । ઇન મેં વિશેષતા ઇતની હી હૈ કિ વાદરપૃથિવી-કાય મેં પહેલે કી ચાર લેશ્યાઈ હોતી હૈ । શેષ સબ બોલ સમાન હૈ । દોનોં હી અસંખ્યાત-અસંખ્યાત હૈ ।

નિગોદમા ન્યા એક જીવ હોય છે ત્યા નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે

વાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના ભેદ આ પ્રમાણે છે—ખન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ ભેદ પ્રથમ કહેવામા આવ્યા છે હવે બીજા ભેદ કહે છે—ત્રણ શરીર, અંગુલના અસંખ્યાતમા ભાગ શરીર, સેવાર્ત્ત સહનન, મસૂર-ચન્દ્ર સંસ્થાન, ચાર કષાય, ચાર સજ્ઞાઓ, પ્રારભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કષાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ધાત, અસજ્ઞીપણ, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ. તેમા વિશેષતા એટલી જ છે કે—વાદર પૃથિવીકાયમા પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે ખન્ને જ અસંખ્યાત-અસંખ્યાત છે

(३) परिमाणद्वारम्—

बाहरपर्याप्ताः पृथिवीकापृथ्वीयाः सर्वतः स्तोकाः । तदपेक्षया बाहरपर्याप्ताः अस्तस्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्माऽपर्याप्ता अस्तस्येयगुणाः । तदपेक्षया सूक्ष्मपर्याप्ता अस्तस्येयगुणाः । यदि अक्षरीषान्यकणप्रमाणपृथिव्यंशाभया जीवा एकैकं बहिर्निगत्य पृथक्-पृथक् कपोतमिदं कायं कुर्युस्तर्हि तेषां सप्तयोजनप्रमाणम्ब्रह्मीये समावेशोऽपि न संभवति ।

ननु अक्षरीषान्यकणमात्रे पृथिव्यंशे कयमिपन्तो जीवास्तिष्ठन्ति ? इति चेत् उच्यते—यथा सहस्रापचित्सिम्भवनिष्पन्नसहस्रपाकृतैस्स्यात्स्वीयसि

(३) परिमाणद्वार-

पर्याप्त बाहर पृथ्वीकाय के बीज सब से बड़े हैं । उन की अपेक्षा बाहर अपर्याप्त अस्तस्येय गुना अधिक है । उन से सूक्ष्म अपर्याप्त अस्तस्येय गुना है । उन से सूक्ष्म पर्याप्त अस्तस्येय गुना है । अगर अक्षर नामक धान्य के कण के बराबर ध्वी के बंश में गहने वाले बीज एक-एक करके बाहर निकल जाएँ और वे सब अपना शरीर क्यूतर के शरीर के बराबर बनाएँ तो एक सप्त योजन विस्तार वाले बम्बूद्वीप में उनका समावेश नहीं हो सकता ।

अतः—अक्षर के एक दाने के बराबर पृथिवी के बंश में इतने अधिक बीज किस प्रकार रह सकते हैं ?

समाधान—जैसे हजार बीजों के समिभ्रग से बने हुए सहस्र-पाक रीस के

(४) परिमाणद्वार-

पर्याप्त बाहर पृथ्वीकायना एव सौधी शोभा से तेनी अपेक्षा बाहर अपर्याप्त अस्तस्येय गुना अधिक है । तेनाभी सूक्ष्म अपर्याप्त अस्तस्येय गुना है । तेनाभी सूक्ष्म पर्याप्त अस्तस्येय गुना है । अगर अक्षर नामका धान्यना कणनी अक्षरपर पृथ्वीमां रहेवावाणा एव जेक-जेक कर्तने अक्षर निकले जने ते सब पीतानु शरीर क्यूतर-पाईवानां शरीर अक्षरपर अनाभी लीजे तो जेक बाज योजनना विस्तारवावा क्यू द्वीपमां तेना समावेश कर्त शके नहि ।

श. क. —अक्षरना जेक अक्षरनी अक्षरपर पृथ्वीमां जेकबा अधिक एव तेनी रीते रही शके से ?

समाधान—जेकी रीते अक्षर अपेक्षाना समिभ्रवशी जनेवा सहस्र-पाक रीतना

નિગોદજીવસ્ત્ર નિયમતોઽનન્તાઃ ।

વાદરાણા સૂક્ષ્માણાં ચ પૃથિવીકાયાનાભેતે વક્ષ્યમાણા મેદાઃ સન્તિ, તન્નોભયોઃ પર્યાપ્તાપર્યાપ્તમેદઃ પ્રાગુક્તઃ, અન્યે મેદા ઉચ્યન્તે—શરીરત્રયા—ઽગુલા-સંખ્યેયભાગશરીર—સેવાર્ત્તસહનન—મસૂરચન્દ્રસંસ્થાન—કપાયચતુષ્ક—સઙ્ગાચતુષ્કા—ઽઘલેશ્યાત્રય—સ્પર્શનેન્દ્રિય—વેદનાકપાયમારણાન્તિકસમુદ્ઘાતા—ઽસઙ્ગિજ્ઞત્વ—નપુંસક-વેદ—પર્યાપ્તિચતુષ્ટય—મિથ્યાદર્શના—ઽચક્ષુદર્શના—ઽજ્ઞાન—કાયયોગ—સાકારાનાકારો-પયોગાઽઽહારાદિમૃતયઃ । તત્ર વિશેષસ્તુ વાદરપૃથિવીકાયાનાં લેશ્યા આઘાશ્ચતસ્રઃ, શેષં સર્વં સમાનમ્ । અસંખ્યેયાશ્ચ પ્રત્યેકમુભયે ।

નિગોદ મેં જહાં એક જીવ હોતા હૈ વહાં નિયમ સે અનન્ત જીવ હોતે હૈ ।

વાદર ઓર સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોં કે મેદ ઇસ પ્રકાર હૈ—દોનોં કે પર્યાપ્ત ઓર અપર્યાપ્ત મેદ પહેલે કહે જા ચુકે હૈ । અવ અન્ય મેદ કહતે હૈ—ત્રીન શરીર, અગુલકા અસંખ્યાતવા ભાગ શરીર, સેવાર્ત સહનન, મસૂરચન્દ્રસસ્થાન, ચાર કપાય, ચાર સજ્ઞાઈ, પ્રારભ કી ત્રીન લેશ્યાઈ, સ્પર્શનેન્દ્રિય, વેદના કપાય ઓર મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, અસજ્ઞીપન, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિયોં, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન ત્રીન અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ । ઇન મેં વિશેષતા ઇતની હી હૈ કિ વાદરપૃથિવી-કાય મેં પહેલે કી ચાર લેશ્યાઈ હોતી હૈ । શેષ સર્વ બોલ સમાન હૈ । દોનોં હી અસંખ્યાત-અસંખ્યાત હૈ ।

નિગોદમા ન્યા એક જીવ હોય છે ત્યા નિયમથી અનન્ત જીવ હોય છે

વાદર અને સૂક્ષ્મ પૃથિવીકાયોના લેદ આ પ્રમાણે છે—અન્નેના પર્યાપ્ત અને અપર્યાપ્ત બેઉ લેદ પ્રથમ કહેવામા આવ્યા છે હવે બીજા લેદ કહે છે—ત્રણ શરીર, અગુલના અસખ્યાતમા ભાગ શરીર, સેવાર્ત સહનન, મસૂર—ચન્દ્ર સસ્થાન, ચાર કપાય, ચાર સજ્ઞાઓ, પ્રારભની ત્રણ લેશ્યાઓ, સ્પર્શ ઇન્દ્રિય, વેદના કપાય, અને મારણાન્તિક સમુદ્ઘાત, અસજ્ઞીપણ, નપુસકવેદ, ચાર પર્યાપ્તિઓ, મિથ્યાદર્શન, અચક્ષુદર્શન, ત્રણ અજ્ઞાન, કાયયોગ, સાકાર તથા અનાકાર ઉપયોગ, આહાર આદિ તેમા વિશેષતા એટલી જ છે કે—વાદર પૃથિવીકાયમા પ્રથમની ચાર લેશ્યાઓ હોય છે, બાકી તમામ બોલ સમાન છે અને જ અસખ્યાત—અસખ્યાત છે

य पृथिवीकायद्विसायां लज्जमानास्त्वे—अनगारा, ये तु सत्र मन्त्रास्ते द्रव्यसिद्धिनाः, इति बोधयितुमाह—‘लज्जमाना’ इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्वारम्भे परमकरुण्यया द्रवितहृदयतया सक्रोधमापद्यमाना पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि—मनःपर्यय—केचिन् परोक्षज्ञानिनो भाषितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्—पश्य ।

इमे सूक्ष्मवाटरपृथिवीकायारम्भकरणे मीतास्तुता उद्भिग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः पृथिवीकायारम्भपस्तियागिनो विषये चानवलोक्येत्यर्थः ।

एके पुनः=अन्ये तु—‘वयमगारा साधवः स्मः’ इति सामिमानं मरद्मानाः वयमेव पृथिवीकायमीषरक्षणपराः महाप्रतधारिणः’ इति ध्येयं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से बिरह होते हैं, वेही अनगार हैं । जो उस हिंसा में प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यसिद्धी हैं । यह बतलान के लिय कहते हैं—‘लज्जमाना’ इत्यादि ।

कोई—कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणागीस होने के कारण, द्रवित हृदय वाले होने से सक्रोध—वृत्ति करते हैं, उन में स कोई—कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भाषितात्मा अनगार हैं, इस प्रकार पृथक्—पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और वाटर पृथिवीकाय का आरम्भ करने में लग्न करते हैं व्रत होते हैं और तीनकरण, तीनयोग स पृथिवीकाय के आरम्भ के ल्यागी हैं ।

और कोई—कोई हम साधु हैं । ऐसा अभिमान के साथ कहते हुए ‘हम ही पृथिवीकाय की रक्षा में उत्तर हैं और महाप्रतधारी हैं’ । इस प्रकार क्या प्रकाप

ये पुरुष पृथिवीकायनी द्विसाधी विरत—निवृत्त याच उ तेन अद्यतार उ भुवि उ ये द्विसाधां प्रवृत्त उ ते द्रव्यसिद्धी उ ते जतापवा भाटे कहे उ—‘लज्जमाना’ इत्यादि ।

केत—केत पुरुष पृथिवीकायना आरम्भमां अत्यन्त करुणाशील दोषाना कारणे द्रवित हृदयवता दोषाधी अक्रोध—वृत्ति करे उ तेमांघी केत—केत प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात् अवधिज्ञानी, मनःपर्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने केत परोक्षज्ञानी अर्थात् आत्मा अद्यतार उ पृथक्=पृथक्प्रवर्धनी भुजे । अर्थात् ते पुरुषेःने भुजे के ये सूक्ष्म अने वाटर पृथिवीकायने आरम्भ करवानां लज्ज करे उ—शरभाय उ—नाथ पथे उ अने तज करण तज भोजनी पृथिवीकायना आरम्भना ल्यागी उ

अने केत—केत अमे साधु धीजे अथ अभिमाननी साथ कहे उ के—अमे तज पृथिवीकायनी रक्षाभां उत्तर धीजे, अने महाप्रतधारी धीजे । अथ प्रभावे वृथा—

સૂચ્યગ્રલગ્નવિન્દુમાત્રેऽપિ સહસ્રૌપધિસમાવેશસ્તથૈવ પૃથિવીકાયજીવાસ્તાવન્માત્રે પૃથિવ્યંશે તિષ્ઠન્તીતિ । યથા વા સહસ્રૌપધિસંમિશ્રણે કૃતે ચૂર્ણીકૃત્ય પરિપિપ્ય સ્વસસ્વસક્રણપ્રમાણગુટિકા ક્રિયતે, તત્ર પ્રત્યેકગુટિકાયાં સહસ્રૌપધિસમાવેશો દૃશ્યતે, તદ્વજ્જવારીધાન્યક્રણમાત્રેऽલ્પીયસિ પૃથિવ્યંશે પૃથિવીકાયજીવાસ્તિષ્ઠન્તીતિ નૈતચ્ચિત્રમ્ ।

યદિ લોકાકાશસ્ય પ્રત્યેકપ્રદેશે, એકૈકઃ પૃથિવીકાયજીવઃ સ્થાપ્યતે તદા અસંખ્યાતા લોકા પૂરિતા ભવેયુઃ । પૃથિવીકાયજીવાનાં પરિમાણં તાવદસ્તિ, યદિ લોકા અસંખ્યાતા ભવેયુઃ, તેપામસંખ્યાતલોકાના યાવન્તઃ પ્રદેશઃ ભવેયુસ્તાવન્તઃ પૃથિવીકાયજીવાઃ સન્તીતિ વોધ્યમ્ ।

છોટે સે, સૂઈ કો નોક પર લગે હુએ એક બૂંદ મેં મી હજાર ઔષધોં કા સમાવેશ હો જાતા હૈ, ઇસી પ્રકાર જવાર કે એક દાને કે બરાબર પૃથ્વી કે અશ મેં ઇતને જીવ રહતે હૈં । અથવા જૈસે એક હજાર ઔષધોં કો મિલા દિયા જાય ઓર ઉનકા ચૂર્ણ બના લિયા જાય, ખૂવ પીસા જાય ઓર ઉસસે સ્વસ્વસ્વ કે દાને કે બરાબર ગોલી બના લી જાય તો ઉસ પ્રત્યેક ગોલી મેં હજાર ઔષધિયોં કા સમાવેશ જાન પડતા હૈ । ઇસ પ્રકાર જવાર બરાબર પૃથ્વી કે અશ મેં અગર ઇતને જીવ રહતે હૈં તો ઇસમેં આશ્ચર્ય કી કૌન સી વાત હૈ ?

અગર લોકાકાશ કે એક-એક પ્રદેશ મેં, એક-એક જીવ સ્થાપિત કિયા જાય તો અસંખ્યાત લોક મરજાઈં । પૃથિવીકાય કે જીવોં કા પરિમાણ ઇતના હૈ કિ-યદિ લોક અસંખ્યાત હોં ઓર ઉન અસંખ્યાત લોકોં કે જિતને પ્રદેશ હો, ઉતને હી પૃથિવીકાય જીવ હૈં, એસા સમજ લેના ચાહિએ ।

નાના એવા સોઈની અણી પર લાગેલા એક ટીપામા પણ હબર ઔષધોનો સમાવેશ થઈ નય છે એ પ્રમાણે જીવારના એક દાણાની ખરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે અથવા જેવી રીતે-એક હબર ઔષધોને મેળવવામા આવે અને તેનું ચૂર્ણ બનાવી લેવાય, અને તેને ખૂબ વાટવામા આવે અને તેમાથી ખસ-ખસના દાણા ખરાબર ગોળી બનાવવામા આવે તો પ્રત્યેક ગોળીમા હબર ઔષધીઓનો સમાવેશ થયેલો છે, એમ નહીં શકાય છે એ પ્રમાણે જીવાર ખરાબર પૃથ્વીમા એટલા જીવ રહે છે તો તેમા આશ્ચર્યની વાત શુ હોઈ શકે ?

અથવા લોકાકાશના એક એક પ્રદેશમા, એક-એક જીવ સ્થાપિત કરવામા આવે તો અસંખ્યાત લોક ભરાઈ નય પૃથિવીકાયના જીવોનું પરિણામ એટલું છે-જે લોક અસંખ્યાત હોય અને તે અસંખ્યાત લોકના જેટલા પ્રદેશો હોય એટલા જ પૃથિવીકાય જીવ છે. એમ સમજ લેવું નોઈ એ

य पृथिवीकायद्विस्तायां लज्जमानास्ते-जनगाराः, ये तु सत्र प्रवृत्तास्ते
द्रव्यसिद्धिनिः, इति बोधयितुमाह- 'लज्जमानाः' इत्यादि ।

एके=अन्ये, लज्जमानाः=पृथिवीकायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितद्दयतया
सकोषमापद्यमाना पृथक्=केचित् प्रत्यक्षज्ञानिनोऽवधि-मनःपर्यय-केवलिनः, केचित्
परोक्षज्ञानिनो भाषितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति, पृथक्-पश्य ।

इमे सूक्ष्मबाह्वरपृथिवीकायारम्भकरणे भीतास्तस्मा उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैः
पृथिवीकायारम्भपस्त्यागिनो विद्यन्ते तानक्लोकयेत्यर्थ ।

एके पुनः=अन्ये तु- 'वयमगाराः सापद्यः स्मः' इति सामिमानं
प्रवदमानाः वयमेष पृथिवीकायमीषरणपराः महाव्रतधारिणः' इति ध्येयं

जो पुरुष पृथिवीकाय की हिंसा से बिरत होते हैं, वेही जनगार हैं । जो उस हिंसा में
प्रवृत्त हैं, वे द्रव्यसिद्धि हैं । यह बात करने के लिए कहते हैं- 'लज्जमाना' इत्यादि ।

कोई-कोई पुरुष पृथिवीकाय के आरम्भ में अत्यन्त करुणशील होने के कारण, द्रवित
करन वाके होने से, सकोष-वृत्ति करते हैं, उन में से कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी अर्थात्
अवधिज्ञानी मन पर्ययज्ञानी और केवलज्ञानी, तथा कोई परोक्षज्ञानी भाषितात्मा अनगार हैं इस
प्रकार पृथक्-पृथक्भाव से देखो । अर्थात् उन पुरुषों को देखो जो सूक्ष्म और बाह्य पृथिवीकाय
का आरम्भ करने में लग्न करते हैं, प्रवृत्त होते हैं और तानकरण तानयाग से पृथिवीकाय
के आरम्भ के त्यागी हैं ।

और कोई-कोई हम साधु हैं । ऐसा समिमान के साथ कहते हुए 'इम ही
पृथिवीकाय की रक्षा में उत्तर हैं और महाव्रतधारी हैं' । इस प्रकार वृथा प्रकाप

ने पुरुष पृथिवीकाय की द्विस्तायी विस्त-निवृत्त साथ से तेज अप्यत्रा से मुनि
से, ने द्विस्तायी प्रवृत्त से ते द्रव्यसिद्धि से ते अतावत्ता भाटे कहे से- 'लज्जमाना' इत्यादि
कोई-कोई पुरुष पृथिवीकायना आरम्भ में अत्यन्त करुणशील होयाना कारणे
द्रवित दृश्यमाना होयाना अकोष-वृत्ति करे से तेषांभी कोई-कोई प्रत्यक्षज्ञानी
अर्थात् अवधिज्ञानी, अनापद्ययज्ञानी अने केवलज्ञानी अने कोई परोक्षज्ञानी अर्थात्
अवधि अत्यत्रा से पृथक्=पृथक्भावयती लुब्धे अर्थात् ते पुरुषोने लुब्धे के ने सूक्ष्म
अने बाह्य पृथिवीकायने आरम्भ करणमें लग्न करे से-सत्रभाव से-वाद्य जमि से
अने तत्र बस्य तत्र योत्रयी पृथिवीकायना आरम्भना त्यागी से
अने कोई-कोई 'अरे साधु छीजे ज्येथ समिमाननी साथे कहे से इ- अरे
पण पृथिवीकायनी रक्षामां उत्तर छीजे अने महाव्रतधारी छीजे, आ प्रभावे वृथा-

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-
शाक्यादयः सन्ति। तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं मृत्तिकास्नायिनो भवन्ति। केचित्स्वनिवासाय
गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमुपमर्दयन्ति। केचित् स्त्रोदर-
पूर्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति। केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति। पार्थिवी-
देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्रारो
भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

“ जिनभवनकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्टाई । भियगाणइसंधाणं,
सासयवुड्ढी य जयणा य ॥९॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सड्ढस्स ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं'। इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य
आदि हैं। इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं। कोई
अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों
द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं। कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि
करते हैं। कोई देवकुल आदि के लिए सावद्य उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव
प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,
ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“ जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“ शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें,
पथर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम
उत्तरोत्तर चढ़ते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना ” इत्यादि। भगवान की आज्ञाके

છીએ સર્વ આરભ અને પરિચરના ત્યાગી છીએ, ષટ્કાયના રક્ષક સાધુ છીએ' આ
પ્રમાણે કહેવાવાળા દડી શાક્ય આદિ છે તેમા કોઈ-કોઈ તો શરીરની શુદ્ધિ માટે
માટીથી સ્નાન કરે છે કોઈ પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવામા કેદાણી,
કોસ આદિ ખોદવાના સાધનો દ્વારા પૃથ્વીકાયનુ ઉપમર્દન કરે છે, કોઈ-કોઈ પોતાનુ
પેટ ભરવાના ઉદ્દેશથી ખેતી કરે છે, કોઈ દેવકુળ આદિને માટે સાવધ ઉપદેશ
કરે છે—દેવ, શુરૂ આદિની પાર્થિવ પ્રતિમા નિર્માણ કરાવવામા અને જીર્ણોદ્ધાર કરા
વામા ભવસાગરથી આત્મા તરી શકે છે, એવું માન છે અને કહે છે કે—

“ જિનમદિર બનાવવાની વિધિ આ પ્રમાણે છે :—શુદ્ધ ભૂમિ, શુદ્ધ ઈંટો, પથર,
કાષ્ટ આદિ જોઈએ કામ કરવાવાળા કારીગરોને પ્રસન્ન રાખવા, પોતાનાં પરિણામ ઉત્તરોત્તર
અદતા રાખીને યતનાપૂર્વક કાર્ય કરવું ” ઇત્યાદિ ભગવાનની આજ્ઞાના આરાધક શ્રાવકને

चित्रं सुहायुषधं, निन्वार्यं च निर्भिदेहि ॥ ४४ ॥ (पञ्चाङ्ग टीका ७ वि)

“ निममबभाई जे उदरंति मचीइ सडियपडियाइ ।

ते उदरंति अयं मीमाओ मवससुहाओ ॥ ” (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

छाया—“ जिनमबन्कारणविधि — दृष्ट्वा भूमिर्वलं च काष्ठादि ।

भुक्तकानतिसम्भानं स्वास्यपद्विभ्र (सामनास्यपद्विः) यतना च ॥

एतस्य फलं भवितं, इत्याहाकारिणस्तु भ्रातृस्य ।

चित्रं सुहायुषधं, निर्वाणान्त जिनैत्रै (मणितम्) ॥ ४४ ॥

जिनमबनानि जे उदरन्ति मक्त्या अटितपतितानि ।

ते उदरन्त्यात्मानं मीमाइ मवससुहात् ” इति च ॥

तथैव शास्त्रनिपिद्धे पूजाप्रतिष्ठादिसाध्यकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यसिद्धिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यते । ये पृथिवीश्वस्य प्रयुक्तानाः पद्मोपनिकाय

आरण्यक आर्यक को मगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—‘उसको अनेकनेक सुखा का अनुभव होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है’ । (पञ्चाङ्गटीका ७ वि)

“ जो पुरुष जो जिनमबनों का मकिते उदर करते हैं वे मीम मवसागर से अपनी आत्मा को तारते हैं ” । (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

इसी प्रकार दफनिकिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि साध्य कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यसिद्धि मी अपनाने आप को मुनि मानते है । आशय है कि—जो लोक पृथिवी-शक्त का प्रयोग करके पद्मोपनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और मगवानका नाम लेकर स्वयं सोटी प्रकृष्टा करते हैं अतः वे द्रव्य

अपनाने तेनु इह आ प्रभावे जतायु उ—तेने अनेकानेक सुभोने अनुजय याव उ; अने परम्पराधी भोइनी अचित याव उ । ” (पञ्चाङ्गटीका ७ वि)

“ जो पुरुष लयं यथेहं जिनमदिरे तेने अडितधी उदर करवे उ ते भवान् लवसागरधी पिताना आत्माने वारे उ ” (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

आज प्रभावे शास्त्रनिपिद्ध पूजा, प्रतिष्ठा आदि साध्य कार्यों में प्रवृत्ति करीने द्रव्यसिद्धि पक्ष पीते पीताने मुनि माने उ आशय जे उ है—जे लोक पृथिवीशक्तने प्रयोग करीने पद्मोपनिकायरूप समस्त लोकनी हिंसा करे उ अने मगवाननु नाम धरिने पीते पीटी प्रकृष्टा करे उ आटे ते द्रव्यसिद्धि उ, साध्य

પ્રલપન્તો દ્રવ્યલિङ્ગિનઃ સન્તિ તાન્ પૃથક્=પૃથગ્ભાવેન પઙ્ચ ।

(૪) વધદ્વાર, (૫) શસ્ત્રદ્વારં ચ ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—

यद्=यस्माद् विरूपरूपै=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः शस्त्रैः=लोष्टपापाणा-
दिभिः स्वकायरूपैः, अन्यादिभिः=परकायरूपै हलकुदालखनित्रादिभिस्तदुभयरूपैः
पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्याः कर्मसमारम्भः—पृथिवीकर्मसमारम्भः पृथिवी-
माश्रित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावद्यव्यापारः, तेन इम=
पृथिवीकायं विहिंसन्ति । पृथिवीकायर्हिंसायां प्रवृत्ताः खलु पद्भ्जीवनिकाय-

करते हुए द्रव्यलिंगी हैं उन्हें पृथक् देखो ।

(૪) વધ ઓર (૫) શસ્ત્રદ્વાર

अपने आप को अनगार समझने वाले ये द्रव्यलिङ्गी साधु के गुणों में तनिकभी प्रवृत्त नहीं होते, और न गृहस्थों के किसी कार्य का त्याग करते हैं, यह बात बतलाते हैं—

ये द्रव्यलिङ्गी लोग विभिन्न प्रकार के मिट्टी, पत्थर आदि स्वकाय-शस्त्रों से अग्नि आदि परकाय-शस्त्रों से, हल, कुदाल आदि खोदने के साधनरूप उभयकाय शस्त्रों से पृथिवीकर्मसमारम्भ करते हैं, अर्थात् पृथिवी के निमित्त से ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मबन्ध का कारण सावध व्यापार करते हैं, और उस से पृथिवीकाय को हिंसा करते हैं । पृथिवीकाय की हिंसा में प्रवृत्त होने वाला पुरुष लहों जीवनिकायों

મિથ્યા પ્રલાપ કરનારા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જૂઠા જૂઠા ભાવથી જુઓ

(૪) વધ અને (૫) શસ્ત્ર દ્વાર—

चोतेज चोताने अणुगार-साधु समजवावाणा ये द्रव्यलिंगी, साधुना गुणोभा
जरा पशु प्रवृत्त यता नथी अने गुडस्थाना कोर्ध कार्यनो त्याग करता नथी. ये
वात भतावे छे —

ये द्रव्यलिंगी लोठ जूढा-जूढा प्रकारनी माटी, पत्थर आदि स्वकाय शस्त्रोधी
अग्नि आदि परकाय शस्त्रोधी लुण, कौदाणी आदि जोढवाना साधनरूप उभयकाय
शस्त्रोधी पृथ्वीकर्मसमारम्भ करे छे. अर्थात् पृथ्वीना निमित्तथी ज्ञानावरणीय आदि
आठ प्रकारना कर्मबन्धना कारण सावध व्यापार करे छे, अने तेथी पृथ्वीकायनी हिंसा
करे छे पृथ्वीकायनी हिंसाभा प्रवृत्त थवावाणा पुरुष ललवनिकायोनी हिंसा करे छे.

रूपं लोके सर्वमेव विहिसन्तीत्याह—'पृथ्वीसत्त्वं'—इत्यादि ।

पृथिवीक्षेत्रम्=पृथिव्युपमर्षकं क्षेत्रम्, क्षस्यते=हिस्यते अनेनेति क्षेत्रम्, तद् द्विविधं-द्रव्य-भाव-भेदात् । तत्र द्रव्यक्षेत्रं=स्वकायपरकायतदुभयक्षेत्रम् । भाषाक्षेत्रम्=दृश्ययुक्तमनोभाकायलक्षणम्, समारमणाः=पृथिवीकार्यं प्रति स्थापारयन्तः, अन्यान् पृथिवीकायमिहान् अनेकरूपान् अपृकायादीन् स्थावरान्, हीन्द्रियादीन् व्रसांश्च विहिसन्ति ।

(६) उपमोगद्धारम्—

अगतिं सत्तु बहवो द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—'वयं पञ्चमहाप्रतपारिभः

की हिंसा करता है, यह कसछाने के स्थिर करते हैं—'पृथ्वीसत्त्वं' इत्यादि ।

पृथिवीक्षेत्रका अर्थ है—पृथिवीकाय की हिंसा करनेवाला शक्त । जिस से हिंसा हो वह शक्त कहलता है । शक्त दो प्रकार का है—(१) द्रव्यशक्त और (२) भावशक्त । स्वकाय, परकाय और समक-स्वपर-कायरूपसे द्रव्यशक्त तीन प्रकार का है । मन वचन और क्रयका दुभयोभा करना भावशक्त है ।

पृथ्वीकाय का आरंभ करनेवाले, पृथिवीकाय से मिन अनेक अपृकाय आदि स्थावर जीवों को, तथा हीन्द्रिय आदि व्रस जीवों को भी हिंसा करते हैं ।

(६) उपमोगद्धारम्—

सत्तर में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । जैसे— हम पञ्चमहाप्रतपारी हैं, सब आरंभ

के अलावा भाटे कहे छे :— पृथ्वीसत्त्वं इत्यादि ।

पृथ्वीक्षेत्रको अर्थ छे—पृथ्वीकायकी हिंसा करनेवालों शक्तो जेनाकी हिंसा अर्थ शक्ते ते शक्त कहेवाय छे शक्त जे प्रकारना छे (१) द्रव्य शक्त अने (२) भाव-शक्त-स्वकाय, परकाय, अने समक-स्व-परकायरूप द्रव्यशक्त त्रय प्रकारना छे मन, वचन अने कायना दु भयोग करना ते भावशक्त छे ।

पृथ्वीकायको आरंभ करनेवाला पृथ्वीकायकी मिन अनेक अपृकाय आदि स्थावर जीवोंकी तथा हीन्द्रिय आदि व्रस जीवोंकी पण हिंसा करे छे ।

(६) उपमोगद्धारम्—

स आरंभं सत्तु बहवो द्रव्यलिङ्गी साधु छे जेनी शक्ते " अने पञ्चमहाप्रतपारी म आ-५३

सर्वारम्भपरित्यागिनः षट्कायरक्षका अनगाराः (साधवः) स्मः' इति वदन्तो दण्डि-
शाक्यादयः सन्ति । तत्र केचिद्देहशुद्धयर्थं मृत्तिकास्नानयिनो भवन्ति । केचित्स्वनिवासार्थं
गृहादिनिर्माणकरणं कुदालखनित्रादिभिः पृथिवीकायमृपमर्दयन्ति । केचित् स्त्रोदर-
पूर्यर्थं कृष्यादिकर्म कुर्वन्ति । केचिच्च देवकुलाद्यर्थं सावद्यमुपदिशन्ति । पार्थिवी-
देव-गुर्वादि-प्रतिमानिर्माणे जीर्णोद्धारकरणे च महाभीमभवसमुद्रादात्मनः समुद्रारो
भवतीति मन्यन्ते, वदन्ति च—

“जिनभवनकारणविही, सुद्धा भूमी दलं च कट्टाई । भियगाणइसंघाणं,
सासयवुद्धी य जयणा य ॥९॥ एयस्स फलं भणियं, इय आणाकारिणो उ सहुँस्स ।

और परिग्रह के त्यागी हैं, षट्काय के रक्षक साधु हैं' । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य
आदि हैं । इन में कोई-कोई तो शरीर की शुद्धि के लिए मिट्टी से स्नान करते हैं । कोई
अपने रहने के लिए मकान आदि बनाने में कुदाल खनित्र (कुस) आदि खोदने के साधनों
द्वारा पृथ्वीकाय का उपमर्दन करते हैं । कोई-कोई अपना पेट भरने के उद्देश्य से खेती आदि
करते हैं । कोई देवकुल आदि के लिए सावध उपदेश देते हैं—देव गुरु आदि की पार्थिव
प्रतिमा निर्माण कराने से और जीर्णोद्धार कराने से भवसागर से आत्मा का तरना होता है,
ऐसा मानते हैं और कहते हैं कि—

“जिनभवन बनाने की विधि इस प्रकार है—“शुद्ध भूमि, शुद्ध ईंटें,
पत्थर, काष्ठ आदि होना, कार्य करने वाले कारीगरों को प्रसन्न रखना, अपने परिणाम
उत्तरोत्तर चढते हुए रखकर यतनापूर्वक कार्य कराना” इत्यादि । भगवान की आज्ञाके

धीअे सर्व आरल अने परिग्रहना त्यागी धीअे, षट्कायना रक्षक साधु धीअे' आ
प्रभाळुे ढडेवावाणा दडी शाक्य आदि छे तेमा डोए-डोए तो शरीरनी शुद्धि भाटे
भाटीथी स्नान करे छे डोए पोताने रडेवा भाटे मकान आदि बनाववामा डोहाणी,
डोस आदि पोहवाना साधनो द्वारा पृथ्वीकायनु उपमर्दन करे छे, डोए-डोए पोतानुं
पेट भरवाना उद्देशथी जेती करे छे, डोए देवकुल आदिने भाटे सावध उपदेश
करे छे—देव, शुद्ध आदिनी पार्थिव प्रतिमा निर्माण करवावामा अने जीर्णोद्धार कर
वामा भवसागरथी आत्मा तरी शके छे, जेवुं मान छे अने ढडे छे डे—

“जिनभदिर बनाववानी विधि आ प्रभाळुे छे :—शुद्ध भूमि, शुद्ध धटो, पत्थर,
काष्ठ आदि जेधअे काम करवावाणा कारीगराने प्रसन्न राखवा, पोताना परिष्काम उत्तरोत्तर
अढता राखीने यतनापूर्वक कार्य करवु” इत्यादि भगवाननी आज्ञाना आराधक श्रावकने

चित्तं सुहायुर्बन्धं, निम्ब्यायं त मिर्षिदेहि ॥ ४४ ॥ (पञ्चासक टीका ७ वि)

“ मिणमषणाइं जे उदरति मत्तीइ सडियपडियाइ ।

से उदरति अप्यं, मीमाजो मवसमुद्राजो ॥ ” (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

छाया—“ जिनमवनकारणविधि — श्लुष्या भूमिर्दलं च काष्ठादि ।

सूतकानतिसन्धानं स्वाश्रयवृद्धिश्च (शोमनाश्रयवृद्धिः) यतना च ॥

एतस्य फल मभित, इत्याहाकारिणस्तु भ्रातृस्य ।

वित्र सुत्वानुबन्धं, निर्वाणान्तं जिनेन्द्रैः (मणितम्) ॥ ४४ ॥

जिनमवनानि ये उदरन्ति मक्या सटिसपठितानि ।

ते उदरस्यात्मानं मीमावु मवसमुद्रावु ” इति च ॥

तथैव शास्त्रनिषिद्धे पूजाप्रतिष्ठाद्विसाधकार्ये प्रवृत्त्या द्रव्यलिङ्गिनोऽपि स्वात्मानं मुनिमेव मन्यन्ते । ये पथिवीश्वस्त्र प्रयुज्जानाः पद्मनीवनिष्काय

भारापक भावक को भगवान् ने इस का फल इस प्रकार बताया है—‘उसको जन्मेकालेक सुनो का अनुकम्प होता है और परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति होती है’ । (पञ्चासकटीका ७ वि)

जो पुरुष भीमं जिनमवनो का मक्तिसे उदार करता है वे भीम मवसागर से अपनी आत्मा को धारते है ” । (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

इसी प्रकार शास्त्रनिषिद्ध पूजा प्रतिष्ठा आदि साधन कार्यों में प्रवृत्ति करके द्रव्यलिङ्गी भी अपने आप को मुनि मानते हैं । अर्थात् है कि—जो लोक पृथिवी-पञ्च का प्रयोग करके पद्मनीवनिष्कारूप समस्त लोक की हिंसा करते हैं, और भगवानका नाम लेकर स्वयं मोटी प्रकृपणा करते हैं अतः वे द्रव्य

अवधाने तेनु इह वा प्रभाजे जलान्धु छे—तेने जनेकानेक सुभोने अनुजय थाय छे, जने परम्पराशी भोहनी श्रुति थाय छे ” (पञ्चासकटीका ७ वि)

“ जे पुरुष लज्ज बधेतुं जिनभद्रि तेने अजितधी उदार कसवे छे ते भवान अवसाजरीषी पितान्ना आत्माने धारे छे ” (धर्मसंग्रहटीका २ अधि)

आज प्रभाजे शास्त्रनिषिद्ध पूजा, प्रतिष्ठा आदि साधन भाषीमां प्रवृत्ति करीने द्रव्यलिङ्गी पलु घेने पीताने मुनि माने छे आशय जे छे ई—जे लोक पृथिवीपञ्चने प्रयोग करीने पद्मनीवनिष्कारूप अवस्तव दोहनी द्विसा करे छे जने अवधाननु न्यम लठने पीते मोदी प्रकृपणा करे छे आरे ते द्रव्यलिङ्गी छे साध्या

રૂપં લોકં સર્વમેવ વિદ્ધિસન્તિ તે દ્રવ્યલિદ્ધિનો નાનગારા ઇતિ ભાવઃ, ઉક્તશ્ચ—

“ સાવજ્ઞા કિરિયા જેસિં, સાવજ્ઞા દેસણા તહા ।

મમંતિ દીહસંસારે, તે સવ્વે દવ્વલિંગિણો ॥ ૧ ઇતિ ॥ સૂ. ૨ ॥

એવં શાક્યાદીનાં પૃથિવીકાયોપમર્દકત્વેન દ્રવ્યલિદ્ધિત્વં પ્રતિવોધિતં ભગવતેતિ જમ્બૂસ્વામિનં સુધર્મા સ્વામી કથયતિ—‘ તત્થે ’—ત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

તત્થે સ્વલુઃ ભગવયા પરિણ્ણા પવેહઆ, ઇમસ્સ ચેવ જીવિયસ્સ પરિવંદણ-
માણ્ણ-પૂય્ણાણ જાહમરણમોયણાણ, દુક્કસ્વપડિઘાયહેહં, સે સયમેવ પુઠવિ-
સત્થં સમારંભઙ્ઙ, અણ્ણોહિં વા પુઠવિસત્થં સમારંભાવેહ્, અણ્ણે વા પુઠવિસત્થં

લિંગી હૈં—સવ્વે અનગાર નહીં હૈં । કહા મી હૈ—

“ જિન કી ક્રિયા સાવધ હૈ ઓર જિનકા ઉપદેશ સાવધ હૈ, વે ઠીર્ઘ સસારમં પરિશ્રમ્ણ કરતે હૈં । ઉન સવ્કો દ્રવ્યલિંગી જાનના ચાહિણ ” ॥ સૂ. ૨ ॥

હસ પ્રકાર પૃથિવીકાય કા ઉપમર્દન કરને વાલે હોને સે શાક્ય આદિ કો ભગવાન્ ને દ્રવ્યલિંગી કહા હૈ । યહ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામી સે કહતે હૈં—‘ તત્થે સ્વલુઃ ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—ભગવાન્ ને પરિજ્ઞા કા ઉપદેશ દિયા હૈ । હસી જીવન કે લિણ-
વન્દના, માન ઓર પૂજન કે લિણ, જન્મ ઓર મરણ સે મુક્ત હોને કે લિણ, દુ સ્વ કા નાશ કરને કે લિણ વહ સ્વય હી પૃથિવીકાય કા આરમ કરતા હૈ, દૂસરો સે પૃથિવીકાયકા આરમ્ભ કરાતા હૈ, ઓર પૃથિવીકાયકા આરમ કરને વાલે દૂસરો કા અનુમોદન કરતા હૈ ।

અણ્ણુગાર—સાધુ નથી કહ્યું છે કે —

“ જેની ક્રિયા સાવધ છે, અને જેનો ઉપદેશ સાવધ છે, તે ઠીર્ઘ સસારમા પરિશ્રમણ કરે છે. તે સર્વને દ્રવ્યલિંગી જાણવા જોઈએ ” (સૂ. ૨)

એ પ્રમાણે પૃથ્વીકાયનું ઉપમર્દન—નાશ કરવાવાળા હોવાથી શાક્ય આદિને ભગવાને દ્રવ્યલિંગી કહ્યા છે આ વાત સુધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘તત્થે’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો ઉપદેશ આપ્યો છે, આ જીવનને માટે, વહના, માન અને પૂજન માટે, જન્મ અને મરણથી મુક્ત હોવાના માટે, દુ ખનો નાશ કરવા માટે તે પોતે જ પૃથ્વીકાયનો આરભ કરે છે, ખીજથી પૃથિવીકાયનો આરભ કરાવે છે, અને પૃથ્વીકાયનો આરભ કરનાર ખીજને અનુમોદન આપે છે. તે આરભ તેના

समारम्भेते समणुजाणः । त से अहियाए, त से अपोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र स्वस्तु मगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य
परिवन्दन-मानन-पूजनाय, आति-भरण-मोचनाय दुःस्वप्रतिपातहेतुं, स स्वयमेव
पृथिवीस्रस्त्रं समारम्भे, अन्यैर्वा पृथिवीस्रस्त्रं समारम्भयति, अन्पान् वा
पृथिवीस्रस्त्रं समारम्भयान् समनुनानाति । तत् तस्य अहिताय, तत् तस्य
अबोधये ॥ सू ३ ॥

टीका—

तत्र=पृथिवीकायसमारम्भे मगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्यग्बोधः
स्वस्तु प्रवेदिता=प्रबोधिता । कर्मबन्धसमुन्नेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवस्यं क्षरणीकरणी
येति मगवता प्रबोधितमिति भावः । परिज्ञा द्विविधा, इ-प्रत्याख्यान-वेदात् ।
'सावद्यस्यापार एव कर्मबन्धस्य कारण-मिति ज्ञानं-इपरिज्ञा, तद्व्यापारपरित्याग'
-प्रत्याख्यानपरिज्ञा ।

एह धरम उसके अहित के लिए और उसको अबोध के लिए है ॥ सू. ३ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय के समारम्भ के निमित्त मैं मगवान् श्री महावीर स्वामीने
सम्यग्बोधरूप परिज्ञा का सदुपदेश दिया है । तात्पर्य यह है कि—कर्मबन्ध को नष्ट
करने के लिए जीव को यह परिज्ञा अस्तव ही स्वीकार करनी चाहिए, ऐसा मगवान्ने
कहा है । परिज्ञा दो प्रकार की है—इपरिज्ञा और प्रत्याख्यानपरिज्ञा । सावद्य स्यापार
से ही कर्मबन्ध का कारण होता है' ऐसा जानना इ-परिज्ञा है, और सावद्यस्यापार का त्याग
करना प्रत्याख्यान-परिज्ञा है ।

अहित भाटे अने ते तेनी जगधि मा' छे (३)

टीकार्थ—पृथिवीकायस्य समारम्भस्य निमित्तम् अजयान श्री महावीर स्वामीने
सम्यग्बोधरूप परिज्ञानो सदुपदेश आप्नो छे तात्पर्यं जे छे हे-कर्मबन्धने नाश
करवा भाटे छवे ते परिज्ञा अवश्यम् स्वीकार करनी जेहि जे, जे प्रमाद्ये अजयाने
कहु छे परिज्ञा जे प्रकाशनी छे इपरिज्ञा, अने अज्ञानानपरिज्ञा । सावद्य स्यापार
कर्मबन्धुं कारण भाव छे जे प्रमाद्ये अजयाने ते इ-परिज्ञा छे अने सावद्य
स्यापारने त्याग करवा ते प्रत्याख्यान-परिज्ञा छे ।

जीवः कस्मै प्रयोजनाय पृथिवीकायं प्रति सावधव्यापारं करोती ?-स्याह-
 'इमस्स चेवे'-त्यादि । अस्यैव विद्युलताविलासवत्क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य जीवन-
 स्वार्थे चिरसुखार्थ, प्रासादसदनादिरचनार्थ, गमना-गमना-वस्थानो-पवेशन-पार्श्व-
 परिवर्तन-पुत्तलिकाप्रतिमादिकरणो-चारप्रसन्नवणादिकरणो-पकरणदिग्रहणनिक्षेपणा-
 ऽऽलेपन-प्रहरण-भूपण-क्रय-विक्रय-कृपिकरण-भाण्डादिनिर्माणार्थमित्यर्थः । तथा
 परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशसा, तदर्थं यथा *आश्वर्यगृहादि

जीव किस प्रयोजनके लिये पृथिवीकाय के विषय में सावध व्यापार करता है ? सो
 बतलाते हैं—

विजली की चमक के समान इस क्षणविनम्र जीवन के चिरकालीन सुख के उद्देश
 से महल, मकान आदि का निर्माण कराने के लिए, अथवा गमन, आगमन, अवस्थान
 (स्थित रहना), उपवेशन (बैठना), पार्श्व-परिवर्तन (पसवाडा बदलना), पुतली बनाना,
 प्रतिमा बनाना, मल-मूत्र त्यागना, उपकरण आदि ग्रहण करना, रखना, लेपकरना, प्रहण
 करना, सजाना, खरीदना, बेचना, खेती करना, तथा वर्तन आदि बनाना, इत्यादि
 कार्यों के लिए सावध व्यापार किया जाता है ।

इस के अतिरिक्त परिवन्दन मानन और पूजन के लिए भी सावध व्यापार
 किया जाता है । परिवन्दन अर्थात् प्रशसा के लिए, जैसे आश्वर्यगृह (आजायव घर)

एव कथा प्रयोजन भाटे पृथ्वीकायना विषयमा सावध व्यापार करे छे ? ते
 भतावे छे —

विजलीना चमकारानी समान आ क्षणविनम्र जीवनना चिरकालीन (लाभा
 समय सुधी) सुभना उद्देशधी, भडेल मकान आदि अनाववाने भाटे, अथवा गमन,
 आगमन, अवस्थान, (स्थित रहेवुं) उपवेशन, (भेसवुं) पार्श्व-परिवर्तन, (पडभा-
 बदलवा) पुतली अनाववी, प्रतिमा अनाववी, मल-मूत्र त्याग करवा, उपकरण आदि
 अडवुं करवुं, राभवुं, लेप करवा, प्रहरण करवुं, सजववुं, अरीदवुं, बेचवुं, खेती
 करवी तथा वासवुं अनाववा, इत्यादि कार्योंने भाटे सावध व्यापार करवाभा आवे छे

ते सिवाय परिवन्दन मानन पूजन भाटे यवुं सावध व्यापार करवाभा आवे छे
 परिवन्दन अर्थात् प्रशसा भाटे जेम आश्वर्यगृह-(अजायव घर) आदि अनाववाभा

* आश्वर्यगृहम्-‘म्युन्नियम’ ‘अजायवघर’ इति भाषामसिद्धम् ।

करणे, माननं=जनसत्कारः, तदय, यथा-कीर्तिस्तम्भादिकरणे पूजनं=पद्मरत्नादि-
 पुरस्कारलामस्तदर्थं, यथा-श्रित्पिनां रामदेवप्रतिमादिरचने । जातिमरणमोघ
 नाय-मातिः=मन्म, तदर्थं मवान्तरमुत्तमाप्यर्थं देवकुलादिकरणे, मरण-
 मरणं येषां जातं तदर्थं मृतपित्रादिस्मरणार्थमित्यर्थः, यथा स्तूपचैत्यादि-
 करण, मोचनं=मुक्तिस्तदर्थं, यथा-देवमदनप्रतिमादिकरणे । यथा जातिमरण
 मोचनाय=मन्ममरणविमुक्तये । तथा दुःखमपिपातहतं=दुःखविष्वंसार्थं, यथा

आदि बनवानेसे प्रशंसा होती है । मानन अर्थात् बनवाश्रा मिस्ने बास्य सत्कार । उस सत्कार
 के लिए कीर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनवाकर समारम्भ करते हैं । पूजन का अर्थ है-
 वस्त्र या रत्न आदि का पुरस्कार पाना । जैसे शिल्पी स्नेह पुरस्कार पाने के उद्देश्य से राजा
 या देवता की प्रतिमा बनाते हैं ।

जन्म, मरण और मुक्ति के लिए भी पृथिवीकायका समारम्भ किया जाता है । जन्म
 के लिए जैसे मवान्तर में मुक्त पाने के लिए देवकुल आदि का निर्माण करने में और मृत्यु
 के लिए जैसे मृत पिता आदि का स्मारक (स्तूप-चैत्य) बनवाने में, और मोचन के अर्थात्
 मुक्ति के लिए देवमदन एवं उनकी प्रतिमा बनवाने में, अथवा जन्म-मरण-
 मोचन का अर्थ है-जन्म और मरणसे मुक्त होना, उस के लिए पृथ्वीकाय का
 समारम्भ करते हैं ।

तथा दुःखका नाश करने के लिए भी पृथ्वीकाय का समारम्भ करते हैं, जैसे

अथरत्न करे छे मानन अर्थात् बनवा श्रा भगवावाणे सत्कार, ते अथर भाटे-
 कीर्तिस्तम्भ (मेमोरियल) आदि बनावने समारम्भ करे छे पूजनने अथ छे-वस्त्र
 अथवा रत्न आदिने पुरस्कार प्राप्त करवे। ते भाटे श्रित्पिनां रामदेवप्रतिमा
 प्रतिमा बनाववामां समारम्भ करे छे

जन्म मरण मोचन (मुक्तिवच) भाटे पञ्च पृथ्वीकायने समारम्भ करवाया आवे
 छे जन्मना भाटे जन्म जन्म-तरमां मुक्त प्राप्त करवा भाटे देवकुल आदिना निर्माण
 करवावामां, जने मृत्यु भाटे जन्म मृत पितृ आदिनुं स्मारक स्तूप-चैत्य बनाववामां,
 मोचन अर्थात् मुक्तिने भाटे देवमदन जेव तेनी प्रतिमा बनाववामां, अथवा जन्म-
 मरण-मोचनने अथ छे-जन्म जने मरणसे मुक्त होवते भाटे पृथ्वीकायने समारम्भ करे छे

तथा दुःखने नाश करवा भाटे पञ्च पृथ्वीकायने समारम्भ करे छे जन्म-मोचन

ग्रीष्मतापाटिनिवारणार्थं, स्वचक्रपरचक्रभयनिवृत्त्यै च भूमिगृहमाकारादिरचने ।
 सः=जीवनपरिवन्दनमाननपूजनाद्यर्थं जनः स्वयमेव पृथिवीशस्त्र
 समारभते=पृथिव्युपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं व्यापारयति । अन्यैर्जा पृथिवीशस्त्रं
 समारम्भयति=उद्योजयति पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् समनुजानाति=
 अनुमोदयति ।

एममतीतानागताभ्यां, तथा मनोवाक्यैश्च पृथिवीशस्त्रसमारम्भ-
 भेदा अवगन्तव्याः ।

(७) वेदनाद्वारम्—

पृथिवीशस्त्रं समारममाणः किं फल प्राप्नोतीत्याह—‘त से अहियाए’ इत्यादि ।

ग्रीष्म के ताप से बचने के लिए, अथवा स्वचक्र और परचक्र के भयकी निवृत्ति, के लिए, भोहरा या चहारदीवारी (प्रकोटा) बनवाना । इस प्रकार जीवन परिवन्दन मानन और पूजन आदि के लिए मनुष्य स्वयं ही पृथ्वीशस्त्रका समारम्भ करता है अर्थात् पृथिवी का घात करने वाले द्रव्य और भावशस्त्र का व्यापार करता है और पृथिवीशस्त्र का प्रयोग करने करानेवाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

इस प्रकार अतीत और अनागत से तथा मन, वचन और क्रायसे पृथिवीशस्त्र के आरम्भ के भेद समझलेने चाहिए

(७) वेदनाद्वार—

पृथिवीशस्त्र का आरम्भ करनेवाला क्या फल पाता है ? सो कहते हैं—‘त से अहियाए’ इत्यादि ।

तापथी अथवा भाटे अथवा स्वचक्र अने परचक्रना भयनी निवृत्ति भाटे लोथश अथवा डोट अनापवा

आ प्रभाञ्छे एवन, परिषदन, मानन, अने पूजन आदि भाटे मनुष्य चोतेञ्च पृथ्वी-शस्त्रने समारभ करे छे अर्थात् पृथ्वीने घात करवावाणा द्रव्य अने भाव शस्त्रना व्यापार करे छे तथा धीन पासे पृथ्वीशस्त्रने व्यापार करवे छे अने पृथ्वीशस्त्रने प्रयोग करवावाणा धीनने अनुमोदन आपे छे

आ प्रभाञ्छे अतीत अने अनागत (भूत-लविष्य)थी तथा मन, वचन अने क्रायाथी पृथ्वीशस्त्रना आरभना बेहोने समञ्छे वेवा लेधिये

(७) वेदनाद्वार—

पृथ्वीशस्त्रने आरभ करवावाणा शुं इण पासे छे ? ते कहे छे—‘त से अहियाए’ इत्यादि ।

तत्-पृथिवीकायसमारम्भेण तस्य=पृथिवीस्य समारम्भस्य अर्हि
 धाय=अकल्याणाय भवतीति शेषः । तत्-तदेव च पृथिवीकायसमारम्भमेव च
 तस्य पृथिवीस्य समारम्भस्य अर्धोपये=सम्यक्प्रकारमाय, जिनधर्ममाप्त्यभाषाय
 च भवति । पृथिवीकायसमारम्भेण हि कृतकारितानुमोदितमेवेन प्रविष्टं,
 तस्यातीतवर्तमानानागतमेवेन प्रत्येक प्रविष्टे मप्या भवति नवविषयापि
 पृथिवीकायसमारम्भस्य मनोवाक्याययोगमेवेन प्रत्येक प्रविष्टे सप्तविधिति
 र्मज्ञा भवन्ति । एवंविधपृथिवीकायसमारम्भप्रवृत्तः सत्तु पट्टकायारम्भसंपात्तत्रन्य-
 धोरतरदुरितार्थनेन दुरन्तससारदाधानसञ्चामन्तपार्त प्राप्यान्तनरकनिगोडादि
 दुस्त्वमनुभवन् न कदाचित्कल्याणं ध्यान्वत्सुखमद मौसमाग प्राप्नोतीति भावः ॥३॥

यह प्रविषीकाय का आरंभ आरंभ करने वाले के अर्द्ध के अर्द्ध और अर्धोप के
 अर्द्ध होता है । अर्द्ध आरंभ करने से सम्यक्त्व और जिनधर्म की प्राप्ति नहीं होती है ।

पृथिवीकाय का आरंभ—करना करना, और अनुमोदन के अर्थ से तीन प्रकार का
 है । इन तीनों अर्थों के अर्द्ध अर्द्ध और अर्द्ध के अर्थ से तीन-तीन अर्थ करने पर
 आरंभ नौ प्रकार होता है । इन नौ अर्थों का मन, बचन और काम से गुणाकार कर देने
 पर सचाईस अर्थ हो जाते हैं ।

इस प्रकार के पृथिवीकाय के आरंभ में प्रवृत्त पुरुष उन्हीं कामों का आरंभ करता
 है और अत्यन्त घोर पाप उपासन करके दुरन्त ससाररूपी दावानलकी आशामों में पड़कर
 नरक निगोड आदि के दुःख मोक्षता हुआ न कभी कल्याण की प्राप्ति करता है और न
 शक्यत सुख देनेवाले मोक्षमाग को पाता है ॥ ३ ॥

ते पृथ्वीकायने आरंभ करवावाजाना अर्द्धि भाटे जने अर्धोपिने भाटे अर्थ
 से अर्द्ध-आरंभ करवावी सम्भूतव जने जिनधर्मनी प्राप्ति वती नथी.

पृथ्वीकायने आरंभ-करवे, करवे जने करवावाजाने अनुमोदन आयवे।
 पवेरेण सेइवी त्रय प्रकारने छे जे त्रयेव सेइवेण भूतकाण, जनिभूतकाण जने नरत
 भावकाणना सेइवी त्रय त्रय सेइ करवावी आरंभ नव प्रकारने छे जे नव सेइवेने
 मन, बचन जने काम, ज्य त्रयवी शुद्धव बडे करी सत्तावीश सेइ अर्थ आय छे

ज्य अर्द्धे पृथ्वीकायना आरंभमां प्रवृत्त पुरुष छे करवेने आरंभ करे छे
 जने अत्यन्त घोर पाप उपासन करीने दुरन्तससाररूपी दावानलनी आशामोंमां
 पडीने, नरक-निगोड आदिनां दुःख सेइकरतां ठाई जन्त पक्ष करवावनी प्राप्ति करी
 शक्यता नथी जने शक्यत सुख देवावाणा मोक्षमार्गने पक्ष प्राप्त वता नथी. (३)

(८) निवृत्तिद्वारम्

येन तु तीर्थकरादीनां समीपे पृथिवीकायजीवस्वरूप ज्ञातं स एवं विजानातीत्याह—‘से त संघुञ्जमाणे ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से तं संघुञ्जमाणे आयाणीय समुद्राय सोच्चा खलु भगवओ अणगाराणं अत्तिए । इहमेगे सिणायं भवड—एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु मारे, एस खलु णरए, इच्चत्थं, गट्टिए लोए जमिणं यिरूवरूवेहिं सत्थेहिं पुढविकम्मसमारंभेणं पुढविसत्थ समारंभमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसड ॥ सू. ४ ॥

छाया—

स तत् संघुध्यमान आदानीय समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां-मन्तिके इहैकेपां ज्ञातं भवति-एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृह्यो लोकः, यदिसं विरूपरूपैः शस्त्रैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण पृथिवीशस्त्रं समारभमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्रणान् विहिंसति ॥ सू. ४ ॥

(८) निवृत्तिद्वार—

जिसने तीर्थकर आदिके समीप में पृथिवीकाय के जीवों का स्वरूप जान लिया है, वह इस प्रकार जानता है—‘से तं’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो पुरुष तीर्थकर भगवान् के अथवा अनगारों के निकट उपदेश सुनकर समझता है और उपादेश (चारित्र) को अङ्गीकार करके विचरता है उसे ज्ञात हो जाता है कि पृथिवीकायका यह आरभ ग्रथ है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । इस में आसक्त पृथ्वीगल का आरभ, करने वाला लोक तरह-तरह के शास्त्रों से पृथ्वीकायका आरभ करके अन्य अनेक प्रकार के प्राणीकी हिंसा करता है ॥ सू. ४ ॥

(९) निवृत्तिद्वार

नेणे तीर्थं कर आहिना समीपमा पृथ्वीकायना एवेणु स्वरूपं ज्ञाणी लीधुं छे, ते आ प्रभाण्णे ज्ञाण्णे छे—‘से तं ’ इत्यादि

मूलार्थ—ने पुरुष तीर्थं कर भगवान्नी अथवा अणुगारेनी समीप उपदेश साधणीने समने छे, अने उपादेश (चारित्र)ने अङ्गीकार करीने विचरे छे, तेने भाद्र्म पडे छे छे—पृथ्वीकायने आरभ अे ग्रथ छे, अे मोह छे, अे मार छे, अे नरक छे, अेमा आसक्त पृथ्वीशस्त्रने आरभ करवावाणा जत-जतना शस्त्रथी पृथ्वीकायने आरभ करीने अन्य अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे (४)

॥ टीका ॥

यः स्वष्ट मगवतः=श्रीरंकरस्य, अनगारागाम्=उदीयभ्रमणनिर्भवानाम्,
मन्तिके=समीपे, भ्रुत्वा=उपदेशं निश्चय्य, आदानीयम्, उपादेय सर्वसाधयोग-
परित्यागरूप चारित्रं समुत्पाय=भङ्गीकृत्य निहरति, स तत्=पृथिवीकायसमारम्भम्
संबुध्यमानः=अहिताबोधिमनस्त्वेन विज्ञात्वा मञ्जीति ।

स हि एवं विचारयति-इह मनुष्यलोके एकेषां=भ्रमणनिर्भ्रान्योपदेशसमात्
सम्पन्नबोधवैराग्याभामास्मारिणामेष ज्ञातं=विदित ममति । किं ज्ञातं मन्वी ?-
त्याकाङ्क्षायामाह-‘एष स्वष्ट गंधे’ इत्यादि ।

एषः पृथिवीसमारम्भः स्वष्ट=निश्चयेन मन्यः=ग्रह्यते=ब्रह्मतेऽनेनेति
ब्रह्मः=प्रष्टविषकर्मब्रह्मः १ कारणे कारणोपचारात् पृथिवीसमारम्भस्य

टीकार्थं-जो मगवान् श्रीरंकर के या उनके निर्गम भ्रमण के समीप उपदेश
सुनकर उपादेय को अर्थात् सर्वसाधयोग के त्यागरूप चारित्र को भङ्गीकार करके विचरता
है वह पृथ्वीकायके समारम्भ को अहितकर और अवोपेयनक समझता है ।

वह इस प्रकार विचार करता है-इस मनुष्य लोक में भ्रमण निर्भव्या के उपदेश
से किन्हीं सम्पन्नज्ञान और वैराग्य हो गया है उस आत्माकी पुरुषा को ही ज्ञात होता है ।
उन्हें क्या ज्ञात होता है ? ऐसी आकांक्षा होने पर कहते हैं- एष स्वष्ट गंधे ’
इत्यादि ।

वह पृथ्वीकाय का समारम्भ निश्चय ही भ्रम है अर्थात् आठ प्रकार के कर्मोका र्थ
है । कारण में कार्यका उपचार करके पृथिवीकाय के समारम्भ को यही मन्व कहा है ।

टीकार्थं-जो मगवान् श्रीरंकरस्य अथवा तेना निर्भ्रान्य भ्रमणोन्नी समीप
उपदेश सुनणी उपदेशने अर्थात् सर्वसाधयोगना त्याग्यूप चारित्रने मन्जीकार
करीनि विचरे छे, ते पृथ्वीकायना समारम्भने अहितकर अने अवोपेयनक समझे छे

ते आ प्रमाद्ये विचार करे छे हे-आ मनुष्य लोकमें भ्रमण निर्भव्याना उपदेशकी
सेने सम्पन्नज्ञान अने वैराग्य बर्ध जये छे ते आत्माकी उद्देशने आ लक्षणां डोय छे

ते शु लक्षणां डोय छे ? जेनी सहा बताई कहे छे- एष स्वष्ट गंधे इत्यादि
आ पृथ्वीकायना समारम्भ निश्चय्य प्रथ छे, अर्थात् आठ प्रकारना करिनि मन्व छे आ लक्षणां
कारिने उपचार करिने पृथ्वीकायना समारम्भने अहित कर कयो छे आशय जे छे-

ग्रन्थरूपत्वम्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा—एष एव पृथिवीसमारम्भः मोहः=विपर्यासः, विपरीतज्ञानरूपः । तथा—एष एव मारः=मरणम् निगोदादिमरणरूपः । तथा—एष खलु नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरं दुःखफलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृद्धः=विषयभोगासक्तः लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थं =एतदर्थमेव-कर्मबन्धमोहमरणनरकार्थमेव प्रवर्तते ।

यद्यपि—विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमानन-पूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं च पृथिवीशस्त्रसमारम्भं करोति

आशय यह है कि आरम्भ—ग्रन्थ (बध) का कारण होने से ग्रन्थ कहा गया है । इसी प्रकार का उपचार आगे के कथन में भी समझ लेना चाहिए ।

यह पृथिवीकायसमारम्भ मोह अर्थात् विपर्यास है—विपरीत ज्ञानरूप है, तथा यही आरम्भ, निगोद आदि मरणरूप है । तथा यही आरम्भ नरक है अर्थात् नारकी जीवों के लिए दश प्रकार की क्षेत्र वेदनाओं का स्थान है । इस समारम्भ के कारण कर्मबन्ध, मोह, मरण एव नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्तकर के भी अज्ञानी लोग बार—बार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा संसारी जीव विषयभोगों में आसक्त होता है अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के लिए ही अज्ञानी जीव प्रवृत्ति करते हैं ।

विषयभोगों में आसक्त जीव यद्यपि शरीर आदि को पुष्ट करने के लिए परिवन्दन, मानन और पूजन के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, दुःख का

आरम्भ—अथ (बध)नु कारणु ङोवाथी ग्रन्थ क्खो छे, आ प्रभाञ्जेने उपचार आगणना कथनमा पणु सम्भञ्जे देवे न्नेधञ्जे

आ पृथ्वीकाय-समारम्भ मोह अर्थात् विपर्यास छे, विपरीतज्ञानरूप छे, तथा ये आरम्भ निगोद आदि मरणरूप छे तथा ये आरम्भ नरक छे अर्थात् नारकीना लोको माटे दस प्रकारनी क्षेत्र वेदनाओनु स्थान छे आ समारम्भना कारणु कर्मबन्ध, मोह, मरण अने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पणु अज्ञानी लोक बार-बार तेनी इच्छा करे छे अथवा संसारी एव विषयभोगोमां आसक्त थाय छे, अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण अने नरकना माटेअ अज्ञानी एव तेमा प्रवृत्ति करे छे

विषयभोगोमा आसक्त एव ङणु पणु शरीर आदिने पुष्ट करवा माटे परिवन्दन, मानन, अने पूजनने माटे, जन्म मरणथी मुक्त थवा माटे दुःखनो नाश करवा माटे,

तथापि उत्कृष्टं कर्मबन्धमोहमरणरुपरूपमेव समन्ते, अतः पृथिवीकर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः । इत्यर्थमिति प्रयोगस्तु यथा-अथ संसारी लोके जायते मरणायैव, म्रियते च जननायैव, इति, तद्वत् ।

श्लोकं पुनः पुनः कर्मबन्धमोहमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव प्रवर्तते वा, इति प्रतिज्ञायां हेतुमाह- 'अमिषं' इत्यादि ।

यत्=यस्मात्=विरूपरूपैः = नानाविधैः शब्द = स्वकायपरकायतदुभयस्यैः पृथिवीकर्मसमारम्भेण=पृथिव्युपमर्दकसावधस्यापारकरोत्वेन, यद्वा-पृथिवीकायमुद्दि-
र्याएविकर्मसमुत्पादकसावधस्यापारोत्वेन, इमं = पृथिवीकार्यं विद्मिन्स्ति,

विनाश करने के लिए, पृथिवीशब्द का आरंभ करता है तथापि इस आरंभ का फल उसे कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक के रूप में ही मिलता है । अतः एक व्यक्त्य यह है कि-कोई किसी भी अमिषावा से पृथिवीकामका आरंभ करे मगर फल ठा बही कर्म-
बंध भादि ही होगा । (इत्यत्र) इस का प्रयोग यह मतस्मन के लिए किया गया है-मह संसारी लोक उत्पन्न होता है मरण के लिए और मरता है जनमन के लिए, इसी प्रकार वह प्रयोग है ।

श्लोक आरम्भ कर्मबंध भादि के लिए ही अमिषवाही है, अथवा-कर्मबंध के लिए ही प्रवृत्ति करता है । इस प्रतिज्ञा में हेतु कहते हैं- 'अमिषं' इत्यादि ।

बिना कारण से गूढ (असत्) श्लोक नाना प्रकार के शक्तों से-स्वकाय परकाय और उभयकायरूप शक्तों से-पृथिवीकाम का आरंभ करके अर्थात् पृथिवीकाम की रीति करने काय सावध व्यापार करके, अथवा पृथिवीकाम के निमित्त से आठों कर्म-जनक सावध

पृथ्वीशक्तने आरंभ करे छे तो पशु ते आरंभनु हण तेने कर्मबंध मोह मरण
जने नरकना इवमांश भजे छे जे भाटे आशय जे छे के-कौछि कौछि पशु जलि
सावधी पृथ्वीशक्तने आरंभ करे परन्तु हण तो ते कर्मबंध अदिव्य करे ।

'इत्यत्र जेने प्रयोग जे जतावना भाटे, कर्मो छे के ज्ञा स शरी एव उत्पन्न
याव छे मरवाने भाटे जने मरे छे ते न भ सेवा भाटे, ज्ञा प्रभाक्षे जे प्रयोग छे

लोक आरंभ कर्मबंध भादि भाटे अमिषवाही छे अथवा कर्मबंध भाटे
प्रवृत्ति करे छे, ज्ञा प्रतिज्ञाभां हेतु कहे छे- अमिषं इत्यादि

जे आरंभणी गूढ-आशयत लोको नाना प्रकारना शक्तोभी-स्वकाय, परकाय जने उभयकाय
रूप शक्तोभी-पृथ्वीशक्तने आरंभ करीने अर्थात् पृथ्वीशक्तनी क्रिया इत्याद्याना सावध
आचार करीने अथवा पृथ्वीशक्तना निमित्तभी आठ कर्मोने उत्पन्न करनार सावध व्यापारणी

छिनत्ति, भिनत्ति, प्राणरहितं करोति गृद्धो लोक इत्यादि । तथा पृथिवीशस्त्र= पृथिव्युपमर्द्धकं शस्त्रं स्वकायपरकायतदुभयरूपं समारभमाण.=व्यापारयन् अन्यान्= अप्कायादीन् अनेकरूपान्=त्रसान् स्थावराश्च, प्राणान्=प्राणिनो विहितस्ति । पृथिवीकायर्हिसया पृथिवीवनिकायरूपं लोक सर्वमेव प्रणिहन्तीति घोरतरं दुरितं कुर्वन् पुनः पुनः कर्मबन्धादिनरकान्तं प्राप्यापि तदर्थमेव प्रवर्तते न पुनर्मोक्षायेति भावः ॥ सू. ४ ॥

ननु पृथिवीकायजीवानां श्रोत्रनेत्रघ्राणरसनेन्द्रियाणि न सन्ति, नापि मनस्तेपा, कथं तर्हि दुःखवेदना संभवति ? ततश्च पृथिवीकायसमारम्भिणा

व्यापार से इस पृथिवीकाय का हनन करता है, छेदन करता है, भेदन करता है, उसे प्राणहीन बनाता है । तथा पृथिवीकाय के स्वकाय, परकाय, और उभयकायरूप शस्त्रों का उपयोग करता हुआ अप्काय आदि अनेक त्रस स्थावर प्राणियों की हिंसा करता है ।

तात्पर्य यह है कि—पृथिवीकाय की हिंसा के द्वारा समस्त पृथिवीवनिकायरूप लोक की हिंसा करता है । इस प्रकार अत्यन्त घोर पाप करता हुआ वारवार कर्मबंध करता है और यहाँ तक कि नरक को प्राप्त करके भी नरक के लिए ही प्रवृत्ति करता है, मोक्ष के लिए नहीं ॥ सू. ४ ॥

पृथिवीकाय के जीवों में श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, प्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय और मन नहीं है, फिर उन्हें दुःख का अनुभव कैसे हो सकता है ? और ऐसी अवस्था में पृथिवीकाय का आरंभ करनेवालों को कर्मबंध क्यों होता है ? इस गका का समाधान

आ पृथ्वीकायनेना घातं करे छे छेदनं करे छे छेदनं करे छे, तेने प्राणुहीनं भनावे छे. तथा पृथ्वीकायना स्वकाय, परकाय अने उलयकायरूप शस्त्रोने उपयोग करता थका अप्काय आदि अनेक त्रस-स्थावर प्राणुओनी हिंसा करे छे

तात्पर्य अये छे के—पृथ्वीकायनी हिंसा द्वारा समस्त पृथिवीवनिकायरूप लोकनी हिंसा करे छे आ प्रमाणे अत्यन्त घोर पाप करीने वारवार कर्मबंध करे छे. अने त्या सुधी के नरकने प्राप्त करीने पणु नरक भाटे न प्रवृत्ति करे छे, मोक्ष भाटे करता नथी (४)

पृथ्वीकायना लोकोभा श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसना—इन्द्रिय अने मन नथी, तो पछी तेने हु भने अनुभव केवी रीते थछं शकथे ? अने अयेवी अवस्थामा पृथ्वीकायने आरंभ करवावाजाने कर्मबंध केम थछं शकथे ? आ शकथुं

कर्म कर्मबन्धः ? इति मित्रासायामाह—' से बेमि ' इत्यादि ।

(मूलम)

से बेमि-अप्येगे अषमम्मे, अप्येगे अषमम्मे, अप्येगे पायमम्मे, अप्येगे पायमम्मे अप्येगे गुफमम्मेर, अप्येगे खंषमम्मेर, अप्येगे ज्ञाणुमम्मेर, अप्येगे उक्कमम्मेर, अप्येगे कटिमम्मेर, अप्येगे णामिमम्मेर, अप्येगे उयरमम्मेर, अप्येगे पासमम्मेर, अप्येगे पिड्डिमम्मेर, अप्येगे उरमम्मेर, अप्येगे डिययमम्मेर, अप्येगे यषमम्मेर अप्येगे खंषमम्मेर, अप्येगे बाहुमम्मेर, अप्येगे इत्थमम्मेर, अप्येगे अगुस्सिमम्मेर, अप्येगे बहमम्मेर, अप्येगे गीबामम्मेर, अप्येगे हणुयमम्मेर, अप्येगे होट्टमम्मेर, अप्येगे दंतमम्मेर, अप्येगे जीहमम्मेर, अप्येगे तात्तुमम्मेर, अप्येगे गल्लमम्मेर, अप्येगे गीहमम्मेर, अप्येगे कम्ममम्मेर, अप्येगे णात्तमम्मेर, अप्येगे अच्छिमम्मेर, अप्येगे मसुहमम्मेर, अप्येगे णिहात्तमम्मेर, अप्येगे सीत्तमम्मे, अप्येगे संपमारप् अप्येगे उरक्क ॥ सू ५ ॥

(जाया)

अथ धीवीमि-अप्येकः अन्यमामिन्धात् अप्येकः अन्यमाच्छिन्धात् । अप्येकः पादमामिन्धात्, अप्येकः पादमाच्छिन्धात् । अप्येकः गुरुमामिन्धात्, अप्येकः बहामामिन्धात्, अप्येकः ज्ञानु आमिन्धात्, अप्येकः उह आमिन्धात्, अप्येकः कटिमामिन्धात्, अप्येकः नामिमामिन्धात्, अप्येकः उदरमामिन्धात्, अप्येकः पार्श्वमामिन्धात्, अप्येकः पृष्ठिमामिन्धात्, अप्येकः उर आमिन्धात्, अप्येकः

कर्म के लिए सूत्र कहते हैं- से बेमि इत्यादि ।

मूलार्थ-नी कूटा हैं-कोई बन्धे को मेदे कोई बन्धे को लेदे कोई पैर को मेदे कोई पैर को लेने कोई गुल्फ को मेदे लेदे, कोई लिण्ठी को मेदे लेदे कोई घुटने को मेदे लेदे कोई बांध को मेदे लेदे कोई कमर को मेदे लेदे, कोई माम्मि को मेदे लेदे, कोई पेट को मेदे लेदे कोई पसबाहे को मेदे लेदे कोई पीठ को मेदे लेदे कोई छाती

समाधान ३९वा भाटे सूत्र ३६ छे- से बेमि इत्यादि ।

भूषार्थ-कुं कुं छे कोष्ठ आधिजाने सेहन ३९ कोष्ठ आधिजाने सेहन ३९, कोष्ठ पजने कोष्ठ कोष्ठ पजने छेरे कोष्ठ अक्क- (पुटी)ने सेरे छेरे कोष्ठ पीडिने सेरे, छेरे कोष्ठ घुटने सेरे छेरे कोष्ठ बाने सेरे छेरे कोष्ठ कमरने सेरे छेरे कोष्ठ नामि (दुटी)ने सेरे छेरे कोष्ठ पेटने सेरे छेरे कोष्ठ पसबाहेने सेरे छेरे कोष्ठ पीठने सेरे छेरे, कोष्ठ छातीने सेरे छेरे कोष्ठ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैष पोरतरवेदना मक्तीति मगसता केवलाशोकेन साक्षात्कृत्य मवेदितम् ।

अत्रैवान्यमपि दृष्टान्तमाह—“अप्येगे संपमारय अप्येग उद्वप” इति । एकः कश्चित् यथा सबीबयवयुक्तं कश्चित्प्राणिनं संपमारयेत्=तीव्रदोषावेक्षेन अन्नादिप्रहारैश्च वेष्टारारहित्यरूप्यां मूर्च्छामापादयेत् तथा एकः कश्चित् मूर्च्छापिन्नं उद्गासयेत्=प्राणैर्म्यो व्यपरोत्पयेत्, तस्य मूर्च्छाविक्षेण व्यक्त-वेदनाया अमावेऽपि अव्यक्ता पोरतरवेदना जायत एव, तथा पृथिवीजीवनामव्यक्ता पोरतरवेदना मक्तीत्येव ॥ सू ५ ॥

इत्य पृथिवीकायस्य जीवत्वं अन्नादापातेन वेदना च मदर्श्यं, अपुना

उसी प्रकार प्रगाह मोह अज्ञान धले स्यान्दि आदि कर्म के उदय से अप्रकट वेतना वाले पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अत्यन्त दारुण वेदना होती है । यह बात मगवान् मे केवलज्ञान से साक्षात् व्यनकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं—‘अप्येगे’ इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र रोग के आवेश के बंध हो कर शक्त आदि का प्रहार कर के वेष्टारहित-भूर्जित कर देता है, तथा कोई उस भूर्जित पुरुष को प्राणहीन करता है तो अथवा उस भूर्जित में व्यक्त वेदना नहीं है फिर भी अव्यक्त अत्यन्त पोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में पोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ६ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सन्नितता और शक्त आदि के आघात से होने वाली

(६६) मोह अज्ञानवाजा स्यान्दि आदि कर्मना उदयशी अप्रकट वेतनावाजा पृथ्वी काय आदि अवेने अप्रकट परन्तु अत्यन्त दारुण वेदना बाध छे, आ बात मगवाने केवल ज्ञानशी साक्षात् आधीने प्रकट करी छे

आ विषयगतं ज्ञेयं पीत्यु दृष्टान्तं कहे छे—‘अप्येगे’ इत्यादि, जेभ डोर्ध पुरुष, यत् अवयवोशी युक्त डोर्ध आधीने तीव्र रोगशी आवेशने वस्तु अर्धशक्त आदिना प्रहार करीने वेष्टारहित-भूर्जित करी नाछे छे तथा डोर्ध ते भूर्जित पुरुषने प्राणहीन करे छे ते भूर्जितभां अव्यक्त वेदना नहीं, तो पद्य अव्यक्त (अधी-जोर्ध शकाय नकि तेवी रीते) अत्यन्त पोर वेदना बाध छे जे प्रमाद्ये पृथ्वीकायभां पद्य पोर वेदना बाध छे ॥ पा

आ प्रमाद्ये पृथ्वीकायनी सन्नितता जने शक्त आदिना आघातशी अवावाजी

हृदयमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः स्तनमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः स्कन्धमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 बाहुमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः हस्तमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः अङ्गुलिमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 नखमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः ग्रीवामाभिन्ध्यात्२, अप्येकः हनु आभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 ओष्ठमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः दन्तमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः जिह्वामाभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 तालु आभिन्ध्यात्२, अप्येकः गलमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः गण्डमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 कर्णमाभिन्ध्यात्२; अप्येकः नासामाभिन्ध्यात्२, अप्येकः अक्षि आभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 भ्रुवमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः ललाटमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः शीर्षमाभिन्ध्यात्२, अप्येकः
 सप्रमारयेत्, अप्येकः उपद्रावयेत् ॥ सू ५ ॥

को भेदे छेदे, कोई हृदय को भेदे छेदे, कोई स्तन को भेदे छेदे, कोई कन्धे को
 भेदे छेदे, कोई बाहु को भेदे छेदे, कोई हाथ को भेदे छेदे, कोई उगली को भेदे
 छेदे, कोई नख को भेदे छेदे, कोई गर्दन को भेदे छेदे, कोई हनु (डाढी-ठोडी) को
 भेदे छेदे, कोई होठ को भेदे छेदे, कोई दांत को भेदे छेदे, कोई जीभ को भेदे
 छेदे, कोई तालु को भेदे छेदे, कोई गले को भेदे छेदे, कोई गडस्थल (कनपटी) को
 भेदे छेदे, कोई कान को भेदे छेदे, कोई नाकको भेदे छेदे, कोई आख को भेदे छेदे,
 कोई भौह को भेदे छेदे, कोई ललाट को भेदे छेदे, कोई सिरको भेदे छेदे, कोई मारकर
 बेहोश कर दे, या कोई मार ही डाले, इस प्रकार इन्द्रियबलहीन होने पर भी उसे वेदना का
 अनुभव होता ही है ॥ सू ५ ॥

हृदयने बेहे छेहे, कोअ स्तनने बेहे छेहे, कोअ कानधने बेहे-छेहे, कोअ कानधूने बेहे छेहे, कोअ
 बाधने बेहे छेहे, कोअ आगलीने बेहे-छेहे, कोअ नखने बेहे छेहे, कोअ गर्दनने बेहे छेहे,
 कोअ डाढीने बेहे-छेहे, कोअ डाढने छेहे बेहे, कोअ दातने बेहे छेहे, कोअ जीभने बेहे छेहे,
 कोअ तालु-(ताणवा)ने बेहे-छेहे, कोअ गणाने बेहे-छेहे, कोअ गडस्थल (कनध्या)
 कानपटीने बेहे-छेहे, कोअ कानने बेहे-छेहे, कोअ नाकने बेहे-छेहे, कोअ आखने
 बेहे-छेहे, कोअ आभरने बेहे-छेहे, कोअ ललाटने बेहे-छेहे, कोअ शिरने बेहे-छेहे,
 कोअ भारीने बेहोश करी हे, अथवा कोअ भारीन नाणे, या प्रमाणे इन्द्रियबलहीन
 होवा छता पण तेने वेदनाने अनुभव थाय छे (५)

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । अथेति प्रतिषाक्यमारम्भघोतनाय । अपीसि=पृथिवी
 कायस्य वेदनाविषये कथयामि । यथा-एकः=कश्चित् अन्य-अन्माष आमिन्धात्,
 तथा एकः=अपरा कश्चित् अन्यमपि आच्छिन्धात् ।

अथ अन्यमित्युपसृष्ट्यां अपिरमूक्यङ्गुममृतीनाम् । यः स्वच्छ अन्मान्बो जन्मवधिरो
 जन्ममूको जन्मपङ्गुर्मुगापुत्रवत्करघरणाघवयवविभागरहितः पूर्वमवार्जिताद्युमकर्मो
 दयात् स्वहितप्राप्त्यहितपरिहारासमोऽतिवयनीयवृक्षासुपगतः ।

एवंविधअन्मान्वादिकं कश्चित् कठोरहृदयो निर्दयतयाऽतिनिश्चितम्लहादिना भिनत्तिचेत्,
 सुवीर्यपरगुण्डाारादिना छिन्ति चेत्तदाऽसौ स्वाङ्ग मेदनच्छेदनसमयेमेदकं छेदकं न

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द नया वाक्य आरंभ करने को प्रकट करता है-‘करता हूँ’
 अर्थात् पृथिवीकाय को वेदना के विषय में करता हूँ । जैसे-कोई पुरुष यदि अर्थात् जन्म से
 अंगे को मेदे छेदे । वहाँ ‘अथ’ पद उपसृष्ट है, उस से बहिरा, मुंगा, अंगडा, आदि भी
 मरण कर केना चाहिए ।

जो जीव पृगाच्छेदक की तरह जन्मान्त है, जन्म से बहिरा है, जन्म से
 मुंगा है, जन्म से अंगडा है, हाथ-जौर आदि विभिन्न अवयवों का जिस के शरीर में
 मेद म्हा है, और जो पूर्वमव के अङ्गुम कर्मों के उदय से अपने हित की प्राप्ति तथा
 बहित के परिहार में असमर्थ है, अन्यत वयनीय वय को प्राप्त है, इस प्रकार के
 जन्मान्त वीरह को कोई कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय हो कर अवेस के साथ बहुत
 तीखे माके वीरह से मेदता है, अन्यत तीखे फरसी कुत्तर अग्नि से उखता है,

टीकार्थ-‘अथ’ शब्द ननु वाक्य आरंभ करवात प्रकट करे छे ‘कर्तुं छे’ अर्थात्
 पृथ्वीकायणी वेदनाया विषयमां कर्तुं छे-अथ के छे मनुष्य अन्य अर्थात्-अन्यभी
 अधने (आंधणे छे तेने) सेदे छेदे. अदि ‘अथ’स ते उपसृष्ट छे तेनाभी
 जेहेना भूजा, लज्जा आदि पय प्रकट करी लेना अर्थजे.

जे छेव भुजतोदानी अर्थजे अन्मांभ छे (अन्मभी आंधणे छे) अन्मभी,
 जेहे छे अन्मभीअ भूजा छे अन्मभी लज्जा छे अथ-पय आदि विभिन्न अवयवोना
 केन्य शरीरमां सेदे नभी, अने ते पूर्वकवना अङ्गुम कर्मोना उदयवी पीताना हितनी प्राप्ति
 तथा अहितना परिहारां अक्षमर्थे छे अन्यत उदाचार-इशाने प्राप्त छे आ प्रक्षरना
 अ मांभ वजेहेने के छे कठोर हृदयवाला पुरुष निर्दय अर्थजे अवेसनी साथे अङ्गुल तीक्ष्ण
 बाहा वजेहेनी सेदे छे (विपे छे) अन्यत तीखी भावनाणी इरसी, कुत्तर अग्निवी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु ववर्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्ग्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरूकटि-
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धबाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वातालु-
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्मादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन-छेदन के समय, अपने अग के भेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिल्लाता है, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरें, मूगे, लंगड़े आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढ़ी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँसू, भौह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेद छे, तो बेहद-छेदनना समये पोताना अंगनुं बेहद-छेदन करनारने ते देभते नथी, सालगतो नथी, उच्चा अवाञ्छी शोर-अकेर करी शकते नथी अेटलाभात्रथी तेभा अल्लवपल्ल अथवा वेदनाने अलाव निश्चित करी शकते नथी, तेम कडेवातु पल्ल नथी अे प्रमाळ्हे पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पल्ल थाय छे अे वात निश्चित थर्छ नथ छे. अर्थात् जेवी रीते मृगालोढीया प्रमाळ्हे-अडेरा, मूगा, लंगडा आदि पुरुषने वेदना थाय छे, ते प्रमाळ्हे पृथ्वीकायने पल्ल वेदना थाय छे

अथवा-स्पष्ट चेतनावाला जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय लोकोना पग, हँसलु, लघ, लनुं, उरू कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु हाथ, आंगुली, नख, ग्रीवा दाढ़ी, होठ, दात, ललाट, तालु, गला, कनपटी, कान, नाक, आँसू, लभर, ललाट, मस्तक आदिना बेहद-छेदवाची जेभ अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

पृथिव्यादीनामव्यक्तैश्च घोरतरवेदना मवतीति मगवता केवलासोकेन साक्षात्कृत्य मवेदितम् ।

अथैवान्यमपि दृष्टान्तमाह—“अप्येग संपमारए अप्येगे उडवए” इति । एकः कश्चित् यथा सर्वाद्यवयवयुक्त कश्चित्प्राणिन संपमारयेत्—तीव्रद्वेषावेशेन छत्रादिमहारेण घोरारहित्यरूपां मूर्च्छामापादयत् तथा एक कश्चित् मूर्च्छापन्नं उद्भूतयेत्—प्राणेषु व्यपरोपयेत्, तस्य मूर्च्छाविक्षेपेण व्यक्त-वेदनाया अभावेऽपि अव्यक्ता घोरतरवेदना आप्त एव, तथा पृथिवीजीवानामव्यक्ता घोरतरवेदना मवत्येष ॥ सू ५ ॥

इत्य पृथिवीकायस्य जीवत्वं छत्राद्यापातन वेदनां च मदर्श्य, अधुना

उसी प्रकार प्रगाढ मोह अज्ञान बाळे स्यान्ति आदि कम के उदय से अप्रकट चेतना बाळे पृथ्वीकाय आदि जीवों को अप्रकट किन्तु अव्यक्त वारुण वेदना होती है । यह बात मगवान् ने केवलज्ञान से साक्षात् जानकर प्रकट की है ।

इसी विषय में एक दृष्टान्त और कहते हैं—‘अप्येगे इत्यादि । जैसे—कोई पुरुष, सभी अवयवों से युक्त किसी प्राणी को तीव्र द्वेष के आवेश के बश हो कर शस्त्र आदि का प्रहार कर के घोररहित-मूर्च्छित कर देता है, तथा कोई उस मूर्च्छित पुरुष को प्राणहीन करता है तो यद्यपि उस मूर्च्छित में स्वक वेदना नहीं है फिर भी अत्यन्त घोर वेदना होती ही है, इसी प्रकार पृथिवीकाय में घोर अव्यक्त वेदना होती है ॥ सू. ५ ॥

इस प्रकार पृथिवीकाय की सच्चिदा और शस्त्र आदि के आघात से होम वाली

(६६) ग्रेह अज्ञानवाजा स्थानान्ति आदि गर्भना उडवधी अप्रकट चेतनावाना पृथ्वी काय आदि लोकोने अप्रकट परन्तु अव्यक्त वारुण वेदना बाव छे आ बात अज्ञवाने केवल ज्ञानशी साक्षात् लोकोने प्रकट करी छे

आ विषयमा ज्येष्ठ जीवु दृष्टान्त कळे छे—‘अप्येगे धियादि जेभ केश पुरुष, सर्व अवयवोशी युक्त केश अक्षीने तीव्र द्वेषशी आवेशने वय घर्ष शस्त्र आदिना प्रहार करीने केशरहित-मूर्च्छित करी लाये छे, तथा केश ते मूर्च्छित पुरुषने आयुहीन करे छे ते मूर्च्छितमां अव्यक्त वेदना नथी. तो पण अव्यक्त (अक्षी-ज्येष्ठ शकाय नकि तेवी रीते) अव्यक्त वार वेदना बाव छे. जे प्रमांजे पृथ्वीकायमां पण वार वेदना बाव छे. ॥ ५ ॥

आ प्रमांजे पृथ्वीकायनी सच्चिदा जने शस्त्र आदिना आघातशी अज्ञानशी

पश्यति न, शृणोति, नाप्युच्चैः क्रन्दति, तावता तस्याऽजीवत्वं वेदनाया अभावो वा निश्चेतु वक्तुं वा न शक्यते, एवं पृथिवी सचेतना वेदनासहिता चेति निश्चीयते । जात्यन्धवधिरमूकपङ्क्वादिगुणयुक्तपुरुषवत्, मृगापुत्रवत्, इत्यर्थः ।

यद्वा पञ्चेन्द्रियाणां सुव्यक्तचेतनानां पादगुल्फजङ्घाजानूरुकादि-
नाभ्युदरपार्श्वपृष्ठोरोहृदयस्तनस्कन्धवाहुहस्ताङ्गुलिनखग्रीवाहन्वोष्ठदन्तजिह्वातालु-
गलगण्डकर्णनासाक्षिभ्रूललाटमस्तकादिषु भिद्यमानेषु छिद्यमानेषु वा यथा घोरतर-
वेदना जायते तथा प्रगाढमोहाज्ञानवतां स्त्यानद्धर्षादिकर्मोदयाद् अव्यक्तचेतनानां

भेदन-छेदन के समय, अपने अग के भेदने-छेदने वाले को न देखता है, न सुनता है, न उची आवाज से चिह्लाता है, इतने मात्र से उस में अजीवपना या वेदना का अभाव निश्चित नहीं किया जा सकता, और नहीं कहा जाता । इसी प्रकार पृथिवी सचेतन है और उसे वेदना भी होती है, यह बात निश्चित हो जाती है । अर्थात् जैसे मृगालोढक की तरह बहिरै, मृगे, लंगड़े आदि पुरुष को वेदना होती है, उसी प्रकार पृथिवीकाय को भी वेदना होती है ।

अथवा स्पष्ट चेतना वाले पञ्चेन्द्रिय जीवों के पैर, गुल्फ, जांघ, जानु, उरू, कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कन्ध, बाहु, हाथ, अंगुली, नख, ग्रीवा, दाढ़ी, होठ, दात, जीभ, तालु, गला, कनपटी, कान नाक आँसू, मौँह, ललाट, मस्तक आदि के भिदने-छिदने पर जैसे अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न होती है

छेदे छे, तो बेहिन-छेहनना समये पोताना अंगुं बेहन-छेहन करनारने ते दृभतेो नथी, सासणतेो नथी, उ आ अवाजथी शोर-अडोर करी शकतेो नथी अेटलाभात्रथी तेभा अशुवपणु अथवा वेदनानेो अलाव निश्चित करी शकतेो नथी, तेम कडेवातु पणु नथी अे प्रभाणुे पृथ्वी सचेतन छे अने तेने वेदना पणु थाय छे अे वात निश्चित थर्ध जाय छे. अर्थात् जेवी रीते मृगाडोढीआ प्रभाणुे-अडेरा, मृगा, ल गडा आदि पुइधने वेदना थाय छे, ते प्रभाणुे पृथ्वीकायने पणु वेदना थाय छे

अथवा-स्पष्ट चेतनावाणा जन्मान्ध आदि पञ्चेन्द्रिय एवैना पग, र्हीयणु, नाँध, नाँनू, उरू कमर, नाभि, उदर, पार्श्व, पृष्ठ, उर-छाती, हृदय, स्तन, स्कंध, बाहु हाथ, आगली, नख, ग्रीवा दाढ़ी, होठ, दात, ललाट, तालु, गणु, लभणुा, कान, नाक, आँसू, लभर, ललाट, मस्तक आदिना बेदना-छेदनाथी जेभ अत्यन्त घोर वेदना उत्पन्न थाय छे, तेम प्रगाढ

मोक्षमार्गतो ह्यसमपगतो मवतीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

(८) विद्वच्छिद्वारम्-

पृथिवीकायसमारम्भपरिज्ञाने हि परिज्ञातकर्मा मुनिर्मवतीत्याह-'एत्य' इत्यादि ।
॥ सू० ७ ॥

एत्य सत्य असमारंभमात्मस्त इच्छेते आरंभा परिष्णाया मवति । तं परिष्णाय मेहावी नैव सयं पुढबिसत्त्व समारंभेज्जा, जेवणेहिं पुढबिसत्त्व समारंभावेज्जा, जेवणे पुढबिसत्त्व समारंभेते समजुभावेज्जा । जस्सेते पुढबिसत्त्वसमारंभा परिष्णाया मवति से इ मुनी परिष्णायकम्मे-चिबेमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इय सत्यपरिष्णाए बीओ उरेसो समपो ॥ १-२ ॥

॥ छाया ॥

अत्र अस्मात्समारंभस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता मवन्ति । तत् परिष्णाय मेहावी नैव स्वयं पृथिवीकस्य समारंभेत्, नैवान्यैः पृथिवीकस्य समारंभेत् नैवान्यात् पृथिवीकस्य समारंभत् समजुजानीयात्, यस्येते पृथिवीकस्यसमारंभाः परिज्ञाता मवन्ति स एव मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति धवीमि ॥ सू० ७ ॥

॥ इति अस्मत्परिष्णाय द्वितीय उरेसः समाप्तः ॥ १ । २ ॥

यद् धारिकरूप मोक्षमार्गं से ह्य ही रहता है ॥ सू. ६ ॥

पृथिवीकाय के समारम्भ का परिज्ञान होने पर ही परिज्ञातकर्मा मुनि होता है, इस बात को कहते हैं- 'एत्य' इत्यादि ।

सूत्रार्थ- पृथिवीकाय में सब का आरंभ न करने वाले को यह आरंभ श्रांत होता है । उन्हें जान कर बुद्धिमान् पुरुष न तब्यं पृथिवीकाय के सब का आरंभ करे, न हस्तों से पृथ्वीकाय के सबका आरंभ करावे और न पृथ्वीकाय का आरंभ करने वाले हस्तों की अनुमोदना करे । इन पृथिवीकस्यसमारंभों को जानने वाला ही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है, ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू. ७ ॥

अथेत्तुं कश्चिदुं च आ भाव्ये नदिं ज्ञेयाधी ते अस्मिन् रूपे भाव्यमार्जंभी इत्येव स्ते ॥६॥

पृथिवीकायना समारंभुं परिज्ञानं ज्ञेयाधी च परिज्ञातकर्मा मुनि ज्ञेयं च, आ पात भवावे च - एत्य' इत्यादि ।

सूत्रार्थ-पृथ्वीकायनां शक्यते अस्मिन् नदिं कश्चावाप्यने आ अस्मिन् अनी ज्ञेयं ज्ञेयं च, तेने ज्ञेयिने मुनिमान् पुरुष पाते पृथ्वीकायना शक्यते आरंभ करवा नधी, नीच जसे पक्षु पृथ्वीकायना शक्यते अस्मिन् कश्चावाप्यने नधी, अने पृथ्वीकायना आरंभ करवाप्यने नीचने अतुमेव न आप्या नधी, अने पृथ्वीकस्य-समारंभेने अतुमेव ज्ञेयं मुनि च, ते परिज्ञातकर्मा च, अने अभावे तुं तुं च (७)

तत्समारम्भे कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्थ’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्थ सत्थं समारंभमाणस्स इच्चेते आरंभा अपरिण्णाया भवंति ॥ सू. ६ ॥

॥ छाया ॥

अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति ॥ सू. ६ ॥

॥ टीका ॥

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्र=स्वकायपरकायतदुभयरूपं द्रव्यशस्त्र,

दुष्प्रणिहितमनोवाक्कायरूपं भावशस्त्रं वा समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते=

प्रागुक्ताः सप्तविंशतिभङ्गरूपाः, आरम्भाः=खननकृष्यादिरूपाः सावधव्यापाराः,

अपरिज्ञाता भवन्ति=कर्मबन्धहेतुत्वेन परिज्ञाता न भवन्ति, पृथिवीशस्त्र

समारभमाणः खननादिसावधव्यापारस्य कर्मबन्धकारणतामविज्ञाय चारित्ररूप-

वेदना प्रदर्शित कर के यह बताते हैं कि—पृथिवीकाय का आरभ करने में कर्म का बध होता है—‘एत्थ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—पृथिवीकाय का आरभ करने वाले को यह (पूर्वोक्त) आरभ ज्ञात नहीं होता है ॥ सू. ६ ॥

टीकार्थ—पृथिवीकाय में स्वकाय परकाय और उभयकायरूप द्रव्यशस्त्र का, तथा मन वचन कायका दुष्प्रणिधानरूप भावशस्त्र का व्यापार करने वाले को ज्ञात नहीं होता कि—पूर्वोक्त सत्ताईस प्रकार का खनन एव कृषि आदिरूप सावध व्यापार कर्मबध के कारण हैं । तात्पर्य यह है कि—जो पुरुष पृथिवीकाय का आरभ करता है, उसे यह माद्वम नहीं होता कि—यह सावध व्यापार कर्मबध का कारण है, यह माद्वम न होने के कारण

वेदना भतावीने डवे अे भतावे छे के—पृथ्वीकायनेो आरभ करवाभा कर्मनेो भध थाय छे—‘एत्थ’ इत्यादि

मूलार्थ—पृथ्वीकायनेो आरभ करवावाणाने आ (पूर्वोक्त) आरभ ज्ञान डोतुं नथी. (६)

टीकार्थ—पृथ्वीकायभा स्वकाय, परकाय अने उभयकायइय द्रव्यशस्त्रनेो तथा मन, वचन, कायाना दुष्प्रणिधान (भराभ भाव)रूप भावशस्त्रनेो व्यापार करवावाणाने भभर नथी डोती के—पूर्वोक्त (पूर्वे कडेला) सत्तावीस प्रकारना भनन (भोदवु) अे प्रभाअे कृषि—भेती आदिइय सावध—व्यापार कर्मभधनु कारण छे तात्पर्य अे छे के—अे पुइय पृथ्वीकायनेो आरभ करे छे, तेने अे माद्वम नथी के—आ सावध व्यापार कर्म

समारमान् विज्ञाय सर्वान् परित्यजेत् ।

एवं यस्य एते पृथिवीकर्मसमारम्भाः पृथिवीविषयाः स्नानकृप्यादिस्थाः सावधकृत्याविज्ञेयाः परिज्ञाता भवन्ति-इपरिज्ञया कर्मबन्धहेतुत्वेन विज्ञाताः, तथा मत्याज्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-विदितपरित्यक्त सकलसावधकृत्याविज्ञेयः मुनिर्भवति, न त्वपरो द्रव्यविहीनस्वर्धः । इति प्रथमि-पथा मगवाता कथितं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ ६० ७ ॥

॥ इति श्रद्धपरिज्ञानाभ्ययने द्वितीय उद्देशः समाप्तः ॥ १-२ ॥

पृथ्वीभयसमारम को आनकर सबका त्याग करना चाहिए ।

इस प्रकार जो पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी स्नेहना बोधना आदि सावध म्यापारो को उपरिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझता है, और प्रत्याज्यानपरिज्ञा से उन का त्याग कर देता है वही परिज्ञातकर्मा और सकल सावध कृत्याओं को जानने वाला पुरुष मुनि कहलता है, सिर्फ द्रव्यविहीनी मुनि नहीं कहलता । 'चिबेमि' मगवातने ऐसा कहा है ऐसा ही मैं करता हूँ ॥ ७ ॥

आचारज्ञ-सूत्र की आचारचिन्तामणि-टीका के हिन्दी-अनुवादमें श्रद्धपरिज्ञानामक प्रथम अध्यायनका द्वितीय उद्देश समाप्त ॥ १-२ ॥

वेदधी सचावीस प्रकारना पृथ्वीकायना समारमने लक्ष्मी करीने सबने त्याग करवे जेधजे.

आ प्रभावे ने पुरुष पृथ्वीकायसम्बन्धी जेइतुं, जेइतुं आदि सावध व्यापारने उपरिज्ञाधी कर्मबन्धनुं कारण समझे छे जने प्रत्याज्यानपरिज्ञाधी तेने त्याग करी दे छे ते परित्यक्तकर्मा जने सकलसावधकृत्याजने लक्षयवाण्य पुरुष मुनि कहेवाच छे, मात्र द्रव्यविहीनी मुनि कहेवाता नधी, जजवाने नेतुं कहू छे जेतुं न हूँ ठहुँ छ ॥७॥

आचारसंग सूत्रनी आचारचिन्तामणि टीकाना अनुवादी अनुवादमां श्रद्धपरिज्ञानामक प्रथम अध्यायनते पीले उद्देश समाप्त भया ॥१-२॥

टीका—

अत्र=पृथिवीकाये शस्त्रं=स्वकायपरकायादिकम् असमारभमाणस्य=अव्या-
पारयत इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावद्यक्रियाविशेषाः परिज्ञाता भवन्ति ।
ज्ञपरिज्ञाया सर्वान् पृथिवीकायसमारम्भान् कर्मबन्धहेतुत्वेन अनन्तनरकनिगोदादि-
दुःखजनकत्वेन च परिज्ञाय चारित्ररूपमोक्षमार्गे प्रवर्तत इति भावः ।
उपसंहारमाह—

तत्=पृथिवीकायसमारम्भण परिज्ञाय=बन्धहेतुत्वेनावबुध्य मेधावी=
सदसद्विवेकी पृथिवीशस्त्रं द्रव्यभावरूपं स्वयं नैव समारभते अपि च—अन्यैरपि
पृथिवीशस्त्रं नैत्र समारम्भयति, पृथिवीशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् नैव समनु-
जानाति । एवं मनोवाकायभेदेनातीतानागतवर्त्तमानकालभेदेन च पृथिवीकाय-

टीकार्थ—पृथिवीकाय मे स्वकाय परकाय आदि शस्त्रों का आरभ न करने
वाले को यह पूर्वोक्त सावद्यव्यापाररूप आरभ ज्ञात होता है । इन आरभों को जानने वाला
अर्थात् ज्ञपरिज्ञा से पृथिवीकायसवधी आरभों को कर्मबन्ध का कारण तथा अनन्त नरक
निगोद के दुःखों का कारण जानकर चारित्ररूप मोक्षमार्ग में प्रवृत्त होता है । उपसंहार
करते हैं—

पृथ्वीकाय के आरभ को बधका कारण जानकर बुद्धिमान् सत् असत् का भेद
समझने वाला, द्रव्य-भावरूप पृथ्वीशस्त्रका स्वयं व्यापार नहीं करता, दूसरे से व्यापार
नहीं कराता और व्यापार करने वाले को अनुमोदना भी नहीं करता । इसी प्रकार मन,
वचन, काय के भेद से और अतीत, अनागत, वर्त्तमान काल के भेद से सत्ताईस प्रकार के

टीकार्थ—पृथ्वीकायमा स्वकाय परकाय आदि शस्त्रोंने आरभ नहिं करवावाणाने
ये पूर्वोक्त सावद्य व्यापाररूप आरभनी अन्तर डोय छे, ते आरभोने लक्ष्णवावाणा अर्थात्
ज्ञपरिज्ञाथी पृथ्वीकायसम्बन्धी आरभोने कर्मअधनुं डारण्य, तथा अनन्त नरक निगोदना
दुःखोनु डारण्य लक्ष्णीने आरित्ररूप मोक्षमार्गमा प्रवृत्त थाय छे. हवे उपसंहार करे छे—

पृथ्वीकायना आरभने अधनुं डारण्य लक्ष्णीने बुद्धिमान् सत्-असत्ना लेहने
लक्ष्णवा-समन्वावाणा, द्रव्यसावरूप पृथ्वीशस्त्रने पोते व्यापार करता नथी, जीज
पासे व्यापार करावता नथी, अने व्यापार करवावाणाने अनुमोदन पण्य करता नथी
आ प्रमाण्ये मन, वचन, कायाना लेहथी, अने भूतकाण, लविष्यकाण, वर्त्तमानकाणना

सर्वविरतिरूपं पदं प्राप्तो मुनि पृथिवीकायादिसूक्ष्मजीवसमारम्भनिवृत्त्यादि
कर्मव्यतायामन्यपीयोऽपि प्रमादनातं स्वस्मिन् समुपेक्षते चेत् सर्वं पुनस्तत्राधिकतरं
स्वस्मिन् कर्तुं न शक्यते, तथापिपनियमानुसारिणी हि मनोवृत्तिः, अतः
स्वल्पमपि समयतः स्वस्मिन् यथा न मवेत् तथा प्रयत्नित्वं मुनिभिः ।

अत्र दृष्टान्तः प्रदर्शयते—

केनपिद् वास्यावस्थायामन्यस्य कपर्दिकांमात्र स्तेयवृत्त्याऽपहृत्य
स्वमातुरग्रे निहितम् । माता उद्वलोक्य दृष्ट्वा सती तस्मै मधुरं वस्तु ददौ ।
अथ पुनः पुनः स्तेयकर्मणि महत्तः स्वमातृहस्ताद् पारितोषिकं प्राप्तः क्रमेण

योग्यता विसमते हैं—सर्वविरतिरूप पदको प्राप्त मुनि पृथिवीकाय आदि छोटे—छोटे जीवों
के धारण का त्याग करने में यदि प्रमाद के कारण बोध से भी स्वस्मिन् की उपेक्षा करता है
तो फिर और अधिक स्वस्मिन् करने में भी संकोच नहीं करता । मनोवृत्ति का ऐसा ही
निष्पत्ति है कि—सिरी सो गिरती ही जाती है अत एव मुनियों को ऐसा प्रयत्न करना चाहिए
कि, जिस से समय में तनिक भी स्वस्मिन् न हो ।

इस विषय में दृष्टान्त कहते हैं—

किसी बालकने अपनी बाल्यावस्था में एक कौड़ी पुराकर अपनी माता के
पास रख दी । माता उसे देखकर हर्षित हुई और उसने इनाम के तौर पर बालक को
मीठी चीज दी । इस के बाद वह बारबार चोरी करने लगा और अपनी माता के हाथ से
पारितोषिक प्राप्त करने लगा । धीरे-धीरे वह ताम्रपण (सबि का सिक्का) कार्यापण

बतावे छे—सर्वविरतिरूप पदने प्राप्तो मुनि पृथ्वीकाय आदि नाना-नाना जिवाना
आरब्धो त्याग कर्त्तव्यतां नो प्रमादना कारणेनैषां पक्षे स्वस्मिन् (जुटी)नी उपेक्षा करे
छे, तो हरिने वधाये स्वस्मिन् कर्त्तव्यतां पक्षे अहोष्य करता नही, मनोवृत्तिने जिवेन
निष्पत्ति छे के—नीके पक्षे पछी वधाये नीके पक्षे जव छे जे कारणेनी मुनिजोको
जिवे प्रयत्न करवे जेधजे के—जेनाथी समयमां शोडु पक्षे स्वस्मिन् नही होय.

अथ विषयमां दृष्टान्त कहे छे —

कैरि जणके पीतानी जाल्यावस्थां जेके कौड़ी धारिने पीतानी मातानी पास
रखी थी; माता तेने जेधने सलु बर्ध जने तेने इनाम जाल्यावस्थां कर्त्तव्यतां जे
भीदी वस्तु जाली जार पछी ते जणके बारबार चोरी करवा लाये जने पीतानी
माता पासैषी (मातानी हाथै) इनाम भेजववा ला ये। धीरे धीरे ते ताम्रपण—तांबाना

અથ તૃતીયોદેશઃ ।

દ્વિતીયોદેશે પૃથિવ્યાઃ સચિત્તત્વં તત્ર પૃથક્પૃથગનેકપૃથિવીકાયજીવાશ્રિતત્વં
 ચ પ્રસાધિતમ્, તસ્ય હિંસયા કર્મવન્ધો ભવતીત્યુક્તમ્, અન્તતશ્ચ પૃથિવીકાયજીવ-
 હિંસાનિવૃત્ત્યા મુનિર્ભવતીતિ સિદ્ધાન્તિતમ્ । ઇદાનીમપાં સચિત્તત્વમનેકાપ્કાયજીવા-
 શ્રિતત્વ બોધયતા ભગવતાઽપ્કાયહિંસયા ષટ્કાયજીવહિંસાસંપાતાત્ કર્મવન્ધો ભવતિ,
 તથાઽપ્કાયહિંસાનિવૃત્ત્યા ચ મુનિત્વં ળભ્યત ઇતિ બોધયિતુ તૃતીયોદેશઃ પ્રારમ્બ્યતે-
 'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાયજીવસ્વરૂપવિચારણાયાં પ્રથમમનગારસ્ય યોગ્યતા દર્શયતિ-

તીસરા ઉદ્દેશ

દ્વિતીય ઉદ્દેશક મેં પૃથિવી કી સચિત્તતા સિદ્ધ કી ઓર પૃથિવી મેં પૃથક્-
 પૃથક્ અનેક પૃથિવીકાય કે જીવોં કા રહના સિદ્ધ કિયા । યહ મી બતલાયા જા સુકા હૈ
 કિ-ઉન જીવોં કી હિંસા કરને સે કર્મ કા બધ હોતા હૈ । અન્ત મેં યહ મી પ્રમાણિત
 કિયા હૈ કિ-પૃથ્વીકાય કે જીવોં કી હિંસા કા ત્યાગ કરને સે મુનિ હોતા હૈ । અબ
 યહ બતલાતે હૈ કિ-અપ્કાય સચિત્ત હૈ, અનેક અપ્કાય કે જીવોં સે આશ્રિત હૈ ઓર
 અપ્કાય કી હિંસા સે ષટ્કાય કે જીવોં કી હિંસા હોતી હૈ ઓર અપ્કાય કી હિંસા કા
 ત્યાગ કરને વાલા મુનિપન પાતા હૈ । યહ સબ બતલાને કે લિપ્ તીસરા ઉદ્દેશ આરમ કિયા
 જાતા હૈ-'સે વેમિ' ઇત્યાદિ ।

અપ્કાય કે જીવોં કે સ્વરૂપ કા વિચાર કરતે હુપ્ સર્વ પ્રથમ મનગાર કી

ત્રીજો ઉદ્દેશક-

બીજા ઉદ્દેશકમાં પૃથ્વીની સચિત્તતા સિદ્ધ કરી છે અને પૃથ્વીમા જૂઠા-જૂઠા
 અનેક પૃથ્વીકાયના જીવો રહે છે તે સિદ્ધ કર્યું છે એ પણ ખતાવવામા આવ્યું છે કે તે
 જીવોની હિંસા કરવાથી કર્મનો બધ થાય છે અન્તમા એ પણ પ્રમાણિત કર્યું કે
 પૃથ્વીકાયના જીવોની હિંસાનો ત્યાગ કરવાથી મુનિ થાય છે હવે તે ખતાવે છે કે-અપ્કાય
 સચિત્ત છે, અનેક અપ્કાયના જીવોથી આશ્રિત છે, અને અપ્કાયની હિંસાથી ષટ્કાયના
 જીવોની હિંસા થાય છે, અને અપ્કાયની હિંસાનો ત્યાગ કરવાવાળા મુનિપણને પામે છે.
 એ સર્વ ખતાવવા માટે ત્રીજા ઉદ્દેશકનો આરભ કરવામા આવે છે -'સેવેમિ' ઇત્યાદિ

અપ્કાયના જીવોના સ્વરૂપનો વિચાર કરતા થકા સૌથી પ્રથમ અણુગારની યોગ્યતા

तद्घोस्तरदुःखमदधूलारोपणफलपदाग्नी माणापह्नी, न तु मवान् । इत्युक्त्वा सर्वं पूर्ववृत्तं रात्रौ विहाययामासि । ततः स्क्लुतस्त्वैयकर्मणो विपाकं शुभारोपणं घोरतरवेदनां प्राप्नुवन्वृत । तस्मात् स्वल्पोऽपि दोषो महाज्जर्णाय मवतीति विहायात्मारिषिभिर्मुनिभिः संयमतः स्वरूपमपि स्वस्मनं यथा न भवेत् तथा वर्तितव्यम् ।

तपःसंयमे कदापिदाकस्मिकस्वस्मनसंपातस्वन्य एव, स्वस्मनोपेक्षण-मप्यन्यदेव, यतः स्वस्मनोपेक्षया पुनरुत्तरोत्तरस्वस्मनन्वृद्ध्या साधुत्वमेव नश्यतीति विहित्य जागृक्काः साधवो मवनबागन्तुकस्वस्मनपरंपराविरहिताः पूर्वज्ञातस्वस्मन-

घोर-महाराज । इसी के कारण मुझे घोर दुःख देने वाली शूलों पर चढ़ना पड़ रहा है, यही मेरा प्राण लेने वाली है, आप नहीं । यह कह कर घोरले अपना सम्पूर्ण पूर्व-वृत्तों तथा को मुन्य दिया ।

उत्पन्नात् अपने किये पौर्य कर्म का घोरवेदनारूप पत्र-शुद्धी पर बहमेरूप-को मंगला हुआ वह घोर मर गया ।

एत एव बोध-सा भी दोष महान् कर्तव्य का कारण बन जाता है, ऐसा समझकर अरमकन्याय के अभिजापी मुनियों को ऐसा प्रकृत करना चाहिए कि जिस से संयम में तनिक भी स्वस्मन न हो ।

तप और संयम में कदाचित् अकरमात् स्वस्मना की बात दूसरी है किन्तु स्वस्मना की उपेक्षा करना और बात है, उस का कारण यह है कि स्वस्मना की उपेक्षा करने से उत्तरोत्तर स्वस्मना बढ़ती ही जाती जाती है, ऐसा विचार करके स्वैव सावधान

घोर ठके-महाराज । जो आत्माना करके व आरि घोर दुःख आपवापाणी शूलों पर चढ़वानुं थाय से जो आरि आरु लेवापाणी से आप नहीं आ प्रभावे कहीने घोर पीतानी आरुगनी संपुषु कहीवत शब्दने स कण्ठवी, ते पछी पीतानुं करके घोरानुं कर्मनुं घोरवेदनाइए हू-शुद्धी पर चढ़वानुं ते खोजवते वडे ते घोर भरषु चम्भे।

जेटसे डे:-घोरों पक्ष दोष महान् कर्तव्यनुं करके वनी अथ से जो प्रभावे सभलने अरमकन्यायना अभिजापी मुनियोजे जेवो प्रबला करवे। जेडंजे डे जेनाधी सवमभां शैडुं क पक्ष रजवन न थाय.

उप करने सवमभां केशुं वधत अकरमात् रजवननी बात बूटी छे। पक्ष रजवननी उपेक्षा करनी ते जील बात से तेनुं करके जे छे डे-रजवननी उपेक्षा करवाधी उत्तरोत्तर रजवन(बुल)वधतुं व लय छे जेवो विचार करीने सदेव-कथिय सावधान रदेवापाण

तान्नपण-कार्षापण-रूप्यक - दीनार-रत्न - स्पर्ण-मणि- माणिक्यादिहरणप्रवीणः
 कस्यचिन्नृपस्य कोशागार प्रविष्टः । ततः प्रचण्डभुजदण्डकैस्तद्रक्षकैः सघोषणं धृतो
 राजान्तिकं समानीतः । तदपराधं विज्ञाय क्रोधाविष्टेन राज्ञा समादिष्टम्-अयं चौरः
 शूले समारोप्यताम्, इति ।

असौ पृष्ठश्च राज्ञा-तव काचिदिच्छा वर्तते? चेद् ब्रूहि । चौरैणोक्तम्-
 राजन् ! स्वमातुर्मिलनं प्रार्थयेः । अथ नृपाज्ञया तज्जननी तत्रागत्य मिलिता ।
 स चौरस्तत्र राज्ञः समक्षमेव सवेगमुत्थाय सत्वरं मातुर्नासिकां दन्तैश्चिच्छेद ।
 ततोऽसौ राज्ञा पृष्ठः-त्वया कथमेवं दुश्चरितमाचरितम् ? । चौरौऽवदत्-इयमेव ममै-

(चौबन्नी) रुपया, दीनार (सुवर्ण-मुहर), रत्न, सुवर्ण, मणि, माणिक्य आदि चुराने में भी
 प्रवीण हो गया । वह किसी राजा के खजाने में घुसा । खजाने के बलवान् पहरेदारों ने उसे
 पकड़ लिया और राजा के सामने पेश किया । राजा उसका अपराध सुनकर क्रोधित हुआ,
 उसने आज्ञा दी-‘इस चोर को शूली पर चढ़ा दो’ ।

राजाने उस से पूछा-अगर तुम्हारी कोई इच्छा हो तो कहो ।

चोरने कहा-‘महाराज ! मैं अपनी माता से मिलने की प्रार्थना करता हूँ ।

राजा की आज्ञा से चोर की माता वहाँ आकर मिली । चौरने राजा के सामने ही वेग
 के साथ उठ कर जल्दी से अपनी माता की नाक दांतों से काटली । यह देखकर राजाने
 पूछा-अरे ! तूने यह दुष्कर्म क्यों किया ?

शिक्षा, चार आनी, इपिआ, सोना भडोर, रत्न, सोनुं, भडि, भाषुड आदि चोरवाभा
 पणु प्रवीणु थर्ध गये (डेटवोड समय जता) ते डोर्ध रानना भननाभा धुसी
 गये भननाना भडवान् पडरेदारो रक्षकेअये तेने पकडी लीधी अने राननी सामे-
 डानर कथो रान तेने अपराध सालणीने डोघायमान थया, अने आज्ञा आपी डे
 अये चोरने शूली पर चढावी धो !

रानअये तेने पूछथुं डे तारी डार्ध धअ्या डोय तो डडो

चोरे डहु-‘मडाराज ! हुं मारी माताने भणवानी प्रार्थना डरु डु.’

राननी आज्ञाथी चोरनी माता त्या आगण आवी अने चोरने भणी, चोरे
 रानना सामेण वेगथी अेकडभ उठीने जह्ठीथी पोतानी मातानु नाक पोताना
 दांतथी डापी लीधु ते नेधने रानअये पूछथु-अरे ! ते आनुं डुष्टकर्म शा माटे कथुं ?

भुवं तत् कथयामि । स पृथिवीकथयन्ममसमारममाणः परिहृतपृथिवीकर्म
 समारम्भो यथा संपूर्णोऽनंगारो भवति, अपिच-यथाऽनंगारो न भवति,
 तद् द्वयमपि ब्रवीमि, ब्रूयति च-‘अनंगारामोचि एगे पश्यमाणा’ इत्यादि ।
 सावयक्रियाया गृहभयत्वाद् गृहपरित्याग एव मुनित्वे प्रदानकारणमिति बोधनाय
 साध्यादिसिद्धं परित्यज्य ‘अनंगार’-सम्बन्धोपादानम् । कथं सर्वथाऽनंगारो भवति ?
 इत्याकाङ्क्षायामार-

‘उज्जुकटे’ इति, ऋजुकृत, भर्जयति सान्त्यादिगुणानिति ऋजुः ।
 यद्वा-भर्जयति-सकलमाभिगणहितं दयास्वभावमिति ऋजुः । यदिवा-भर्जयति=
 यथावत्सिद्धात्मस्वरूपं प्रापयतीति ऋजुः । यद्वा-भर्जयति=प्रापयति दान्तिकं

प्रकार पूर्ण अनंगार होता है, और किस प्रकार पूर्ण अनंगार नहीं होता, य दोनों बातें मैं
 कहता हूँ-‘अनंगारा मोचि एगे पश्यमाणा’ इत्यादि सूत्र में आगे कहा जायगा ।

गृह में सावयक्रिया अवरय होती है, अत एव गृह का त्याग करना ही मुनिपद
 का प्रदान कारण है । यह बात प्रकट करने के लिए साधुवाचक अन्य शब्द जेडकर
 यही अनंगार शब्द का प्रयोग किया है । पूरा अनंगार किस प्रकार बनता है, एसी आकांक्षा
 होने पर कहते हैं-‘उज्जुकटे’ इति ।

उज्जुकटे का संस्कृत रूप है ‘ऋजुकृतः’ । समा आदि गुणों को उपासित
 करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा समस्त प्राणियों के हितरूप दया को उपासन
 करने वाला ऋजु कहलाता है । अथवा आत्मा को अपने असली स्वरूप पर पहुँचाने

असुखापाणा पुरुष, ने प्रभासे पूरा अजुगार भाव से जाने से प्रभासे ‘पूर्व’ अजु
 गार नहीं यदा, ते जाने वाते कुं कहुं छ - अनंगारा मोचि एगे पश्यमाणा इत्यादि
 सूत्रमां व्याखण कहेवाभां आवरी.

परमा सावयक्रिया अवरय भाव से जेडका भाटे घरने त्याग करने तेव मुनि
 पदपुं प्रदान करण छ जे बात प्रकट करवा भाटे साधुवाचक अन्य शब्द लखने
 अदि ‘अनंगार शब्दने प्रयोग कर्षी छ पूरा अजुगार केनी शीते जाने छ, जेनी
 धिया बवायो कहे छ- उज्जुकटे धति.

‘उज्जुकटे’तु संस्कृत रूप ऋजुकृत’ भाव से समा आदि शब्दोंतु उपासित
 करवावाजा ऋजु (सकल-सिद्धा) कहेवाच छ अथवा समस्त प्राणीजोना हितरूप दयाने
 उपासित करवावाजा ऋजु कहेवाच छ. अथवा आत्माने अथक स्वरूप सुधी पहुँचवा

दोषमपनेतुं शक्नुवन्ति । तदेव विशदयन् सुधर्मा स्वामी प्राह—‘से वेमि’ इत्यादि ।
द्वितीयोद्देशसमाप्तौ “जस्सेते पुढविकम्पसमारंभा परिण्णाय्या भवंति से हु
मुणी परिण्णायकम्मा” इत्युक्तम् । अधुना तु—न च तावतैव सर्वथा मुनिर्भवितुमर्हति ।
यथा भवति तथा दर्शयितुं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह—‘से वेमि’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

से वेमि—से जहावि अणगारे उज्जुकुडे नियागपडिवण्णे अमाय कुब्बमाणे
वियाहिए ॥ सू० १ ॥

॥ छाया ॥

तद् ब्रवीमि स यथापि अनगार ऋजुकृतः नियागप्रतिपन्नः अमायां कुर्वाणो
व्याख्यातः ॥ सू० १ ॥

॥ टीका ॥

‘से वेमि’ इत्यादि । तद् ब्रवीमि यदन्यच्च भगवदन्तिके मया

रहने वाले साधु नयी—नयी होने वाली स्खलना के दोषों से बच सकते हैं । यही बात स्पष्ट
करते हुए सुधर्मा स्वामी आगे कहते हैं—‘से वेमि’ इत्यादि ।

मूलार्थ (भगवान् के मुखारविन्द से जो सुना है,) सो कहता हूँ—ऋजुकृत
मोक्षमार्ग में प्राप्त और माया न करने वाला अनगार कहा गया है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—भगवान् के समीप और भी जो सुना है वह कहता हूँ । पृथ्वीकाय के
विषय में शत्रु का आरंभ न करने वाला पृथ्वीकाय के आरंभ को जानने वाला पुरुष जिस

साधु—नवी नवी थवावाणी स्खलना दोषोथी भयी शके छे, अये वात स्पष्ट करीने
सुधर्मा स्वामी आगण कहे छे—‘से वेमि’ इत्यादि

भीण्ड उद्देशकनी समाप्तिमा कहुं डंतु के—जे पुरेध पृथ्वीकायना आरंभने
जखुनी तेने त्युग करी आये छे, ते मुनि छे अडि अये भताववामा आवे छे के—
आटलु करवा मात्रथी जे केध पूरी रीते मुनि थध शकता नथी, मुनि थवाने माटे भीण्ड
—जे जे वातोनी (जखुवानो) आवश्यकता छे, तेने सुधर्मा स्वामि कहे छे—‘से वेमि’ इत्यादि.

मूलार्थ—(भगवानना मुखारविन्दी जे सालज्यु छे) ते कहुं छु—
ऋजुकृत, मोक्षमार्गमा प्राप्त अने माया नहि करवावाणा अणुगार कइया छे (१)

टीकार्थ—भगवाननी पासोथी भीण्ड पखु जे सालज्यु छे, ते कहुं छु—
पृथ्वीकायना विषयमा शत्रुने आरंभ नहि करवावाणा, पृथ्वीकायना आरंभने

तथा नियागप्रतिपन्नाः, नि-निश्चयेन यत्कि-सम्यग्गमनं कुर्वन्ति यत्र स
 नियागः=मोक्षमार्गं ज्ञानक्रियासङ्घाः । यद्वा-नि-निश्चयेन यत्कि-ददाति सिद्धि
 गतिमिति नियागः=ज्ञानत्यादिदशविधो यतिधर्मः, तं प्रतिपन्नः=प्राप्तः ।

तथा 'ब्रह्मायां ह्यर्वाणः' माया=वीर्याचारसंगोपनं परब्रह्मणे वा, न माया
 ब्रह्माया, तां ह्यर्वाणः अनगारो व्याख्याताः=भगवता दृष्टिताः ।

अयं भावः-न केवलं पृथिवीस्रस्रसमारम्भमात्रनिवृत्त्याऽनगारो भवति
 किन्तु यः सत्तु पृथिवीस्रस्रसमारम्भनिवृत्तः परिह्रावसकस्रसायधर्मा निरव-

भव 'नियागप्रतिपन्न' शब्दका अर्थ करते हैं । 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग'
 अर्थात् सम्यक् गमन अर्थात् किया जाता है उसे 'नियाग' या मोक्षमार्ग कहते हैं । ज्ञान और
 तिला मोक्ष का मार्ग है ।

अथवा 'नि' अर्थात् निश्चय से 'याग' अर्थात् सिद्धिगति देने वाला क्या
 अथवा इस प्रकार का यतिधर्म 'नियाग' कहलाता है, ऐसे नियाग को जो प्राप्त हो चुका
 हो वह नियागप्रतिपन्न है ।

तथा माया अर्थात् वीर्याचर का गोपन करना या दूसरे को गेह्य देना
 माया है । इस माया का सेवन न करने वाला जो वही अनगार है, ऐसा भगवान् मे
 कहा है ।

तत्पर्यं यह है कि-केवल पृथ्वीतत्त्व के कारण का त्याग कर देने मात्र से
 ही कोई अनगार नहीं हो जाता बल्कि जो पृथ्वीतत्त्व के कारण का त्याग कर के सकल

इसे 'नियागप्रतिपन्न' शब्दोंसे अर्थ करे उसे 'नि' अर्थात् निश्चयसे 'याग'
 अर्थात् सम्यक्गमन अर्थात् करनेवाला आवे उसे तेने नियाग अथवा मोक्षमार्ग कहे उसे
 ज्ञान अने किया मोक्षने मार्ग उसे अथवा 'नि' अर्थात् निश्चयसे 'याग' अर्थात्
 सिद्धिगति प्राप्तवाला अथवा आदि इस प्रकारसे यतिधर्म 'नियाग' कहेवाच उसे
 जेना नियागने के प्राप्त यत्तु कृत्वा उसे ते नियागप्रतिपन्न उसे तथा भाषा अर्थात्
 वीर्याचरतु गोपन करतु अथवा जीवने पीजे देवे ते भाषा उसे ते भाषातु सेवन
 नदि करवावाला के होय ते अणुगार उसे जे प्रभाक्षे जगवाने कसु उसे ।

तत्पर्यं जे उसे के-केवल पृथ्वीतत्त्वना कारणसे त्याग करी देवा मात्रसे ही
 अणुगार बत्ता नहीं परन्तु जे पृथ्वीतत्त्वना कारणसे त्याग करिनि, सकल सावय कर्मनि

શિવસ્થાનમિતિ - ઋજુઃ = વિપમભાવરહિતત્વાદ્ દુષ્પ્રણિહિતમનોવાકાયનિરોધરૂપઃ સયમઃ, સ કૃતઃ=અનુષ્ઠિતો યેન સ ઋજુકૃતઃ-મનોવાકાયજન્યસકલસાવધ-ક્રિયાનિવૃત્ત ઇત્યર્થઃ ।

યદ્વા-સંપૂર્ણસંવરસ્વરૂપસંયમેન સંયમિના મોક્ષસ્થાનગમનાર્થં ઋજુગતિઃ પ્રાપ્યતે, તત્ર ઋજુગતેઃ કારણં સંયમ ઇતિ કારણે કાર્યોપચારાત્સપ્તદશવિધ-સંયમોઽપિ ઋજુરિત્યુચ્યતે, સ કૃતઃ=સમાચરિતો યેનાસૌ ઋજુકૃતઃ કૃતસંપૂર્ણ-સંયમાનુષ્ઠાન ઇત્યર્થઃ ।

વાલા ઋજુ કહલતા હૈ । અથવા આત્મા કો શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહુચાને વાલા ઋજુ કહલાતા હૈ । અથવા ઋજુ કા અર્થ હૈ-સયમ । મન, વચન, કાય કે સ્વોટે વ્યાપાર કો રોકનારૂપ સયમ હૈ । જિસ ને ઇસા વ્યાપાર રોક દિયા હૈ વહ ઋજુકૃત કહલાતા હૈ । અર્થાત્ જો મન, વચન ઓર કાય સે હોને વાલી સમસ્ત સાવધ ક્રિયાઓ સે નિવૃત્ત હો ગયા હો વહ 'ઋજુકૃત' હૈ ।

અથવા-સમ્પૂર્ણસવરૂપ સયમ કે દ્વારા સયમી મોક્ષ મેં ગમન કરને કે લિષ્ઠ ઋજુગતિ પ્રાપ્તિ કરતા હૈ । ઇસ ઋજુગતિ કા કારણ સયમ હૈ । અતઃ કારણ મેં કાર્ય કા ઉપચાર કરને સે સત્રહ પ્રકાર કા સયમ મી 'ઋજુ' કહલાતા હૈ । ડસ 'ઋજુ' અર્થાત્ સયમ કા જિસને આચરણ કિયા હો વહ 'ઋજુકૃત' કહલાતા હૈ । તાત્પર્ય યહ હૈ કિ પૂર્ણ સયમ કા અનુષ્ઠાન કરને વાલા ઋજુકૃત હૈ ।

વાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા આત્માને શાશ્વત મોક્ષસ્થાન પર પહોચાડવાવાળા ઋજુ કહેવાય છે. અથવા ઋજુનો અર્થ છે સયમ-મન, વચન અને કાયના ખોટા વ્યાપારને રોકવા રૂપ સયમ છે. જેણે એવો વ્યાપાર રોકી આપ્યો છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે. અર્થાત્ જે મન, વચન અને કાયથી થવાવાળી સમસ્ત સાવધ ક્રિયા-ઓથી નિવૃત્ત થઈ ગયા હોય તે ઋજુકૃત છે.

અથવા-સ પૂર્ણસવરૂપ સયમદ્વારા સયમી મોક્ષમા ગમન કરવા માટે ઋજુગતિ પ્રાપ્ત કરે છે તે ઋજુગતિનું કારણ સયમ છે તેથી કારણમા કાર્યનો ઉપચાર કરવાથી સત્તર (૧૭) પ્રકારનો સયમ પણ 'ઋજુ' કહેવાય છે તે ઋજુ અર્થાત્ સયમનું જેણે આચરણ કર્યું છે તે 'ઋજુકૃત' કહેવાય છે તાત્પર્ય એ છે કે પૂર્ણ-સયમનું અનુષ્ઠાન કરવાવાળા ઋજુકૃત છે.

“किमाहो मार्गोऽस्ति न वा” इति सर्वांगमविपियका श्रद्धा सर्वश्रद्धा, तथा-
“किमपकायादयो जीवाः सन्ति न वा” इति देशश्रद्धा ।

केवलालोकेन विलोक्य भगवता विश्विष्य प्रवचने कथितत्वात् अपकायादयः
सन्ति जीवाः, इति पूर्वा कोटिः, चेतनास्वात्मरूपस्य सुस्पष्टमनुपलम्बेन सन्ति
अपकायादयो जीवाः, इत्युचरा कोटिः प्रादुर्भवति । पूर्वसयोग=मातापित्रादिसम्बन्धं,
पनधान्यस्वभनादिसम्बन्धं वा ।

इदमुपलक्षणम्-तेन पद्मास्तयोगमपि शशुरादिकृतं विहाय=परित्यज्य
निष्कामः=अन्तगारो मातः, तां श्रद्धाम् अनुपालयेदेव निरतिचारं रक्षेदित्यर्थः ।

और (२) देशश्रद्धा । अर्द्धन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तव में मोक्षमार्ग है
या नहीं ? पत्नी-श्रीका सर्वश्रद्धा है । अपकाय आदि के भाव हैं या नहीं ? यह देश
श्रद्धा है ।

भगवान्ने केवल ज्ञान से देखकर प्रवचन में अपकाय आदि के जीवों का
अस्तित्व प्रकट किया है, वह श्रद्धा की पूर्वकोटि है । आत्मा का चेतनालक्षण स्पष्ट
रूप से नहीं पाया जाता, अत एव अपकाय आदि भ्रमण हैं, वह श्रद्धा की दूसरी कोटि है ।

माता, पिता आदि का संबंध तथा धन, धान्य, स्वजन आदि का संबंध पूर्वसयोग ।
कर्मजता है । उपलक्षण से सास-ससुर आदि का संबंध पद्मास्तयोग कहसता है । इन दोनों
सयोगों की त्याग कर के जिस श्रद्धा के साथ अन्तगार हुआ है उसी श्रद्धा का पालन करे
अर्थात् उस की निरतिचार रक्षा करे ।

अने (२) देशश्रद्धा अर्द्धन्त भगवान द्वारा प्ररूपित मार्ग वास्तविक रीति मोक्ष
मार्ग है के नहीं ? आ भ्रमणनी श्रद्धा से सर्वश्रद्धा से अपकाय आदिना एव
से के नहीं ? आ देशश्रद्धा से

अन्तगारने केवलज्ञान बडे लोकेने प्रवचनमां अपकाय आदिना एवेानु अस्तित्व
प्रकट कर्तुं से आ श्रद्धानी पूर्वकोटि से आत्मानु चेतनालक्षण स्पष्टरूपधी लोकाभां
आपूर्तु नहीं तेषी अपकाय आदि अस्तु से आ श्रद्धानी जील कोटि से

माता-पिता आदिना सजभ तथा धन, धान्य स्वजन आदिना सजभ पूर्व
सयोग कहेवाच से, उपलक्षणधी सासु, सासुरा आदिना सजभ पद्मास्तयोग
कहेवाच से आ अन्ते सयोगने त्याग करेने से श्रद्धधी अन्तगार तथा से ते
अर्द्धानु पालन करे अर्थात् तेनी निरतिचार (विना अतिचार) रक्षा करे

શેષસંયમાનુષ્ઠાનપ્રવૃત્તઃ સમાશ્રિતમોક્ષમાર્ગઃ કર્પૂરવણ્ડવદન્તર્વહિરેકરૂપતયા
સ્વવીર્યસંગોપન-પરવશ્ચનલક્ષણમાયાચારરહિતો ભવતિ સ एव वस्तुतोऽनगारो
चोद्भव्य इति ॥ सू० १ ॥

ઉક્તરૂપસ્યાનગારસ્ય કર્તવ્યમાહ—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

॥ મૂલમ્ ॥

જાણ સદ્ધાણ નિક્ષંતો તમેવ અણુપાલિજ્જા વિજહિત્તા વિસોત્તિયં
પુવ્વસંજોગં ॥ સૂ० ૨ ॥

॥ છાયા ॥

યયા શ્રદ્ધયા નિષ્ક્રાન્તસ્તામેવાનુપાલયેત્ વિસ્ત્રોતસિકાં પૂર્વ-
સંયોગમ્ ॥ ૨ ॥

॥ ટીકા ॥

યયા શ્રદ્ધયા વિસ્ત્રોતસિકાં=શઙ્કાં, સર્વશઙ્કાં દેશશઙ્કાં ચેત્યર્થઃ ।

સાવધ કાર્યોં કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ઓર પૂર્ણ સયમ કે અનુષ્ઠાન મેં પ્રવૃત્ત હો તથા મોક્ષમાર્ગ કા આશ્રય લેતા હૈ । કપૂર કે ટુકડે કી મૌતિ મીતર-બાહર ઇકસા ઉજ્જ્વલ હોને કે કારણ અપની શક્તિ કા ગોપન નહીં કરતા ઓર દૂસરોં કો ધોંલા નહીં દેતા અર્થાત્ માયાચાર સે રહિત હોતા હૈ, ડસી કો વાસ્તવ મેં અનગાર સમક્ષના ચાહિણ ॥ સૂ ૧ ॥

ઉક્ત પ્રકાર કે અનગાર કા કર્તવ્ય બતલાતે હૈ—‘જાણ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—શઙ્કા કાઢ્ઠકા આદિ કા ત્યાગ કર કે ઓર પૂર્વકાલીક સયોગોં કા ત્યાગ કર કે જિસ શ્રદ્ધા કે સાથ નિકલા હૈ, ડસી શ્રદ્ધા કા નિરન્તર પાલન કરે ॥ સૂ ૨ ॥

ટીકાર્થ—‘વિસ્ત્રોતસિકા’ કા અર્થ હૈ શઙ્કા, શઙ્કા ડો પ્રકાર કી હૈ (૧) સર્વશઙ્કા

જ્ઞાતા-જ્ઞાનાર થાય છે અને પૂર્ણ સયમના અનુષ્ઠાનમા પ્રવૃત્ત થાય છે, તથા મોક્ષ માર્ગનો આશ્રય લે છે કપૂરના ટુકડાની માફક અદર અને બહાર એકજ પ્રકારે ઉજ્જ્વલ હોવાના કારણે પોતાની શક્તિનુ ગોપન કરતો નથી અને બીજાને દગો દેતો નથી અર્થાત્ માયાચારથી રહિત હોય છે, તેને વાસ્તવિક રીતે અણુગાર સમક્ષને જોઈએ (સૂ ૧)

ઉપર કહ્યા તેવા અણુગારનુ કર્તવ્ય બતાવે છે—‘જાણ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—શ ઠા, ઠાંકા વગેરેનો ત્યાગ કરીને અને પૂર્વ કાલના સયોગોનો ત્યાગ કરીને જે શ્રદ્ધાથી નિકળ્યા છે, તે શ્રદ્ધાનુ નિરન્તર પાલન કરવું (સૂ ૨)

ટીકાર્થ—‘વિસ્ત્રોતસિકા’નો અર્થ છે શ ઠા, શ ઠા જે પ્રકારની છે—(૧) સર્વશઙ્કા

अस्या ह्यस्यं तु अमसंवेगनिर्वेदानुकम्पाऽऽस्त्वियानां प्रादुर्भावः । तत्र पीत-
रागप्रतीतप्रवचनतत्त्वाभिनिवेशवशेनाऽनन्तानुबन्धिक्यापायामनुदयः अम इत्युच्यते ।
यद्वा विपयासक्तिनिवृत्तिः अमः ।

तथा संवेगाभिनप्रवचनानुसारेण नरकादिगतियु ननाविषदुःखापलो
क्याऽप्यु, यथा स्वकृतकर्मोदयान्तरकेषु—अप्रमन्यपीतोष्णादिदण्डविषवेदनासहन,
परमापामिकवेवकृतं परस्परोदीरितं चेति विविधं दुःखं, तथा तिर्य्यक्तु—ताडन-
तर्जना—मृत्पिपासा—पारवश्य—मारारोपजाघनेकविष दुःखं, मनुष्येषु—दारिद्र्य-

अम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और अस्तित्व का प्रकट हो जाना असा का विह है ।

पीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचन के अर्थ में गादी प्रीति होने से अनन्तानुबन्धी कथाओं
का (कोष, मान, भाषा, स्नेह का) उदय न होना अम कहलता है । अथवा विषयो के
प्रति आसक्ति हट जाना अम है ।

जिन मन्वान् के वचन के अनुसार नरक आदि गतियों में नाना प्रकार के दुःखों
को जानकर उन से भयभीत होना 'संवेग' है । जैसे—“अपने किये कर्मों के
उदय से नरकों में क्षेत्रक्य शीत—उष्ण (सर्दी—गर्मी) आदि इस प्रकार की वेदना,
परमापामी देवों द्वारा दीवाने वाली वेदना और परस्पर नारकी जीनों द्वारा होने वाली
वेदना नरक में यह तीन तरह की वेदना है । तिर्य्यक्तों में ताडना, तर्जना, मृत,
प्यास, परधीनता बोझा होना आदि अनेक प्रकार की वेदना है । मनुष्यों में दरिद्रता,

अम, संवेग, निर्वेद, अनुकम्पा अने अस्तित्व जैसे अजड अथ अथ ते
असातु विह है

पीतरागद्वारा प्ररूपित प्रवचननां तत्त्वोभां सञ्जड प्रीति अथापी अनन्तानु
बन्धी कथायोना (काष मान, भाषा होकने) उदय अथ नकि ते अम कहैवाथ
है । अथवा विषयो प्रति आसक्ति हटि अथ ते अम है

जिन अजमानना वचन—अनुसार नरक आदि जतिजोभा नाना प्रकारना दुःखोने
अपनी ने तेनापी अमभीत अर्जु ते 'संवेग' है अथके— पीताना अरेवां अर्जुना उदयभी
नरकोभां क्षेत्रक्य शीत—उष्ण (सर्दी—अरमी) आदि इस प्रकारनी वेदना परमापामी देवों
द्वारा से अथ है ते वेदना, अने परस्पर नारकी लोको द्वारा बनारी वेदना नरकभां अ
प्रमाक्षे अथ प्रकारनी वेदना है तिर्य्यक्तोभां ताडना, तर्जना (मारकुं—तरेअरकुं) मृत तरस,
पराधीनता, बोझा उदयना आदि अनेक प्रकारनी वेदना है । मनुष्योभां दरिद्रता, दुर्भाव,

ननु का नाम श्रद्धा, यया विनाऽनगारत्वं नोपलभ्यते ? उच्यते—जीवादितत्त्वेषु श्रद्धानं, रुचिः, अभिप्रीतिः, सम्यग्दर्शनं श्रद्धा, 'एतत्तत्त्वमेवमेवे'—त्यवधारणम्, "तमेव सच्चं नीसकं जं जिणेहिं पवेइय" इति वचनानुस्मरणेन जगदेकबन्धुना वीतरागेण भगवता यथा कथितं तथैवेदं जीवादितत्त्वं सत्यमिति निश्चय इति यावत् ।

यद्वा मिथ्यात्वमोहनीयकर्मण उपशमात् क्षयोपशमात् क्षयाद्वा आत्मनोऽपूर्वा ज्ञानावस्था जायते, आविलसलिलस्य कतकफलचूर्णसंयोगात्स्वच्छतावत् सैव श्रद्धा ।

शङ्का—यह श्रद्धा कौन—सी है जिस के विना साधुपन नहीं रह सकता ?

समाधान—जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करना, रुचि होना, अभिप्रीति होना, यह सम्यग्दर्शन—श्रद्धा है । 'यह तत्त्व ऐसा ही है' इस प्रकार पक्का निश्चय करना श्रद्धा है । 'जिन भगवान् ने जो कहा है वही सत्य और सदेह—रहित है' इस वचन के अनुसार यह निश्चय करना कि जगत के अद्वितीय बन्धु वीतराग भगवान् ने जैसा निरूपण किया है, उसी प्रकार जीवादितत्त्व सत्य है । यह श्रद्धा का स्वरूप है ।

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के उपशम से, क्षयोपशम से अथवा क्षय से आत्मा की एक अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न होती है । जैसे—मलिन जल में कतकफल का चूर्ण डालने से जल स्वच्छ हो जाता है । ऐसी स्वच्छ-निर्मल आत्मदशा श्रद्धा कहलाती है ।

शंका—ते श्रद्धा कौन है, के जेना विना साधुपणु रडी शके नहि ?

समाधान—जीवादि तत्त्वों पर श्रद्धा करवी, इच्छि थवी, अभिप्रीति थवी, ते सम्यग्दर्शनं श्रद्धा छे, "आ तत्त्व आतुंज छे" जे प्रभाणु पाडे निश्चय करवो ते श्रद्धा छे "जिन भगवाने जे कह्ये छे ते सत्य अने सदेहरहित छे" जे वचन प्रभाणु जे निश्चय करवो के जगतना अनेक बन्धु वीतराग भगवाने जेबु निरूपणु कर्युं छे, ते प्रभाणु जीवादि तत्त्व सत्य छे आ श्रद्धानु स्वरूप छे

अथवा—मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशमथी, क्षयोपशमथी, अथवा क्षयथी आत्मानी जेके अपूर्व ज्ञानावस्था उत्पन्न थाय छे जेभ मदीन पाण्डीभा कतकफल-निर्मलीक्षणु ब्रह्म नाभवाथी जल स्वच्छ थई जाय छे जेवी स्वच्छ—निर्मल आत्मदशा श्रद्धा कहेवाय छे.

काममोगाध्यवसायः स्वच्छ दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिक्रुद्धो नरकादि
मन्मफलमदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य
एवायमतिप्रयत्नेन' इत्येवंरूप आत्मपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

“निष्प्रेषणं मते! जीवे किं ज्ञणय? निष्प्रेषणं दिव्यमाणुसतेरिच्छिणसु
काममोगेसु निष्प्रेष्य इव्यमागच्छत् । सम्प्रविसणसु पिरञ्जत् । सन्नपिसणसु निरञ्जमाय
आरंमपरिष्वायं करेत् । आरंमपरिष्वायं करेमाणे संसारमर्मा वोच्छिदत्, सिद्धिमर्मा
पडिक्कने य इयत् ।” (उत्तरा० अ २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है। काममोगसम्बन्धी अध्यवसाय इस लोक में अत्यन्त दुःख-
दायक है, और परलोक में भी अत्यन्त कटुक नरक आदिरूप फल देने वाला है, अतः एक
काममोगसंबन्धी अध्यवसाय से मुक्त क्या केन-देन है। इसे तूत्र परिश्रम कर के त्याग ही
देना चाहिए। इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है। निर्वेद का स्वरूप
और फल इस प्रकार कहा गया है—

“मगबन्! निर्वेद से जीव को क्या काम होता है। निर्वेद से जीव को देवता मनुष्य
और सिद्धि संबंधी काम मोगों में शीघ्र ही निरक्ति उत्पन्न होती है। सब विषयों से जीव
निरक्त होकर आरंभ का परिणाम करता है। आरंभ का परिणाम करता हुआ संसारमार्ग
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को आधिकार करता है।” — (उत्तरा अ २९)

विषयों का आसक्ति था न कि ते निर्वेद से काममोगसम्बन्धी अध्यवसाय का त्याग का
अत्यन्त दुःखदायक से जाने परलोक में अत्यन्त कटुक नरकमति आदि रूप का
देवायत्त से जोड़ता आटे काममोगसम्बन्धी अध्यवसाय की आरे शु देवा देवा से
तेने तूत्र परिश्रम करीने त्यल देवा जोड़ने. का प्रकृतनु आत्मिक परिणाम ते
निवेद कहोवाय से. निर्वेदनु स्वयं अपने इस का प्रकार कहु से—

“मगबन्! निर्वेदही लपने शु त्याग थाय से।

निर्वेदही लपने देवता, मनुष्य जाने तिथि'वसम्बन्धी काममोगों का शीघ्र
निरक्ति उत्पन्न थाय से सब विषयों की लप निरक्त बर्ध जाय से सब विषयों की
निरक्त बर्धने आरंभने परित्याग करतो बडे। संसारमार्गने त्यल दे से जाने
मोक्षमार्गने आधिकार करे से ” (उत्तरा० अ २६)

જીવો જનયતિ । તયા ચ નરકાદિભવેષુ ધોરતરવહુતરાશાત્વેદનામવલોક્ય તદ્વયાન્મોક્ષમાર્ગે શરણીકૃત્ય મોક્ષાભિલાપરૂપં સંવેગં શીઘ્રં પ્રાપ્નોતિ । અનન્તાનુ-વન્ધિકષાયાન્ ક્ષપયતિ, નવીનં કર્મ ન વધ્નાતિ, તેન મિથ્યાત્વં ક્ષપયિત્વા ક્ષાયિકશુદ્ધસમ્યક્ત્વં નિરતિચારેણ પાલયતિ । એવમતિનિર્મલયા સમ્યક્ત્વવિશુદ્ધ્યા કશ્ચિદ્વ્યજીવસ્તેનૈવ ભવગ્રહણેન સિદ્ધિં પ્રાપ્નોતિ । એકઃ પુનઃ સમ્યક્ત્વસ્ય નિર્મલયા વિશુદ્ધ્યા તૃતીયં પુનર્ભવગ્રહણં નાતિક્રામતિ । મિથ્યાત્વ-મોહનીયકર્મણો નિરવશેષક્ષયાત્ શુદ્ધક્ષાયિકસમ્યક્ત્વવાન્ ભવત્રયમધ્યે મોક્ષં પ્રાપ્નોત્યેવેત્યર્થઃ ।

તથા નિર્વેદઃ—આર્હતવચનામિનિવેશાત્સર્વવિપયેષુ—અનાસક્તિઃ, 'હહ—અલોકે

શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હોતી હૈ । ઉસ શ્રદ્ધા સે નરક આદિ ગતિયોં મેં ધોર ઓર વહુ અસાતા કી વેદના દેખકર તથા ઉસ વેદના કે ભય સે મોક્ષમાર્ગ કા આશ્રય લેકર મોક્ષાભિલાષા—રૂપી સંવેગ કો શીઘ્ર હી સ્વીકાર કર લેતા હૈ । વહ અનન્તાનુબધી કષાયોં કા ક્ષય કરતા હૈ ઓર નવીન કર્મ કે વધ કો રોક દેતા હૈ । મિથ્યાત્વ કા ક્ષય કર કે શુદ્ધ ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વ કા નિરતિ-ચાર પાલન કરતા હૈ । ઇષ પ્રકાર અત્યન્ત નિર્મલ દર્શનવિશુદ્ધિ કે કારણ કોઈ—કોઈ ભવ્ય જીવ ઉસી ભવ મેં મુક્ત હો જાતા હૈ, ઓર કોઈ—કોઈ તીસરે ભવ કા ઉલ્લઘન નહીં કરતા અર્થાત્ મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મ કે સમ્પૂર્ણ ક્ષય સે શુદ્ધક્ષાયિકસમ્યક્ત્વી જીવ ત્રીન ભવોં મેં અવશ્ય મોક્ષ પાતા હૈ ।

અર્હન્ત ભગવાન્ કે પ્રવચન મેં પ્રગાઢ પ્રીતિ હોને કે કારણ સબ ઇન્દ્રિય-વિષયોં મેં

શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે, એ શ્રદ્ધાથી નરક આદિ ગતિઓમા ધોર અને બહુજ અસા તાની વેદના જોઈને તથા એ વેદનાના ભયથી મોક્ષમાર્ગનો આશ્રય લઈને મોક્ષા ભિલાષારૂપી સંવેગને શીઘ્રજ સ્વીકાર કરી લે છે તે અનન્તાનુબધી કષાયોનો ક્ષય કરે છે અને નવીન કર્મના બધને રોકી દે છે મિથ્યાત્વનો ક્ષય કરીને શુદ્ધ ક્ષાયિક સમ્યક્ત્વનુ નિરતિચાર પાલન કરે છે આ પ્રમાણે અત્યન્ત નિર્મલ દર્શનવિશુદ્ધિના કારણે કોઈ—કોઈ ભવ્ય જીવ એજ ભવમા મુક્ત થઈ જાય છે, અને કોઈ—કોઈ ત્રીજા ભવનુ ઉલ્લઘન કરતા નથી અર્થાત્ મિથ્યાત્વમોહનીય કર્મના સંપૂર્ણક્ષયથી શુદ્ધક્ષાયિક-સમ્યક્ત્વી જીવ ત્રણ ભવોમા અવશ્ય મોક્ષને પ્રાપ્ત કરે છે

૧. પ્રવચનમા પ્રગાઢ-સબજડ પ્રીતિ હોવાના કારણે સર્વ ઇન્દ્રિયોના

“संवेगेन मते । जीवे किं जगय ? संवेगेन भगुत्तरं धम्मसदं जणय ।
 अगुत्तराय धम्मसद्दाय संवेगं ह्यमागच्छ । अणत्ताणुवन्धिहमागमायालोमे स्ववे ।
 नवं च कम्म न वपय । तप्पच्चइयं च णं मिच्छधिसोहिं काऊज दंसणाराएय मवय ।
 दंसपविसोहीए य णं विसुद्धाय अत्थेगइए तेण्वेव भवमाहण्ण सिन्हा । विसोहीए य
 वं विसुद्धाय तन्वं पुणो भवमाहण नाइकम्म ॥ ” (उत्तरा० अ० २९)

छया—“संवेगेन मन्त । जीवः । क जगयति ? संवेगेन अनुत्तरं धर्मभद्रां
 जनयति । अनुत्तरया धर्मभद्रया संवेगो ह्यप्यमागच्छति, अन्तानुवन्धि-क्रोपमान
 मायालोमान् क्षपयति, नवं च कर्म न वधाति, तत्प्रत्ययिकां च स्वसु मिष्यास्वविशोधि
 क्त्वा दर्शनाराधको भवति, दर्शनविशोष्या च स्वसु विशुद्धया अप्यककस्तनेव भव-
 प्रहणन सिद्धयति । विशोष्या च स्वसु विशुद्धया तृतीयपुनर्मप्रहण नातिक्रामति ॥ ”

सुदेव-सुगुरु-सुपर्मेपु निश्चलानुरागरूपेण संवेगेन उत्कृष्टतमां धर्मधदा

“मगवान् ! संवेग से जीव को क्या जग होता है !

संवेग से सर्वश्रेष्ठ धर्मभद्रा उत्पन्न होती है, और धर्मधदा से संवेग क्षीय उत्पन्न हो
 जाता है । अन्तानुवन्धी क्रोय मान माया और छेम का वह क्षय करता है । नवीन कर्मों
 का बंध नहीं करता और इन कारणा से मिष्यास्व की विमुक्ति कर के जीव दर्शन का
 अग्रगण्य होता है । दर्शनविशुद्धता ब्रह्मबाने से कोई-कोई जीव उसी भव में सिद्ध हो जाता है,
 क्त्वा कोई उसी भव में मोक्ष न जावे तो तीसरे भव का उत्पन्न नहीं करता, जर्मात् तीसरे
 भव में वह अवश्य मोक्ष जाता है ” । —(उत्तराध्यायन अ. २९)

“सुदेव सुगुरु और सुपर्मे में निश्चल अनुरागरूप संवेग से जीव को सर्वश्रेष्ठ

“अजबन् सवेजधी एवने शुं ताज याव छे ? ” सवेजधी सर्वश्रेष्ठ धर्मभद्रा
 उत्पन्न याव छे अने धर्मभद्राधी सवेज शीघ्र उत्पन्न याव छे अन्तानुवन्धी क्रोय
 भान, भावा अने दोषाने ते क्षय करे छे नवीन कर्मोने जग करतो नधी, अने जे
 दर्शनधी मिष्यास्वनी विमुक्ति करीने एव दर्शनने आराधक याव छे । इयनविशुद्धता वधी
 जयाधी कौ-कौ जे भवमां सिद्ध भए जाव छे, कौ जे भवमां मोक्षे न आव तो जीव
 जन्तु उत्पन्न करवा नधी, जर्मात् तीव्र भवमां ते अग्रगण्य मोक्षे जाव छे ” (उत्तरा० अ. २६)

सुदेव, सुगुरु अने सुपर्मेमा निश्चल अनुरागरूप सवेजधी एवने सर्वश्रेष्ठ

દૌર્ભાગ્ય-જન્મ-જરા-મરણ-રોગ-શોક-સન્તાપાદિ, દેવેષુ-ઈર્ષ્યા-વિષાદ-પરપ્રેષ્ય-ત્વાદિદુઃખં જીવા અનુભવન્તિ, તસ્માદ્-‘યથા મમેદ્દશં દુઃખં ન સ્યાત્ તથા યત્નં કરોમિ’ ઇત્યાકારક આત્મિકપરિણામઃ સંવેગઃ ।

યદ્વા-સુદેવ-સુગુરુ-સુધર્મેષુ નિશ્ચલોઽનુરાગઃ સંવેગઃ । ઉક્તઞ્ચ—

“તથ્યે ધર્મે ધ્વસ્તહિંસાપબન્ધે, દેવે રાગદ્વેષમોહાદિમુક્તે ।

સાધૌ સર્વગ્રન્થસન્દર્ભદીને, સવેગોઽસૌ નિશ્ચલો યોઽનુરાગઃ ॥ ૧ ॥ ” ઇતિ ।

આગમોઽપ્યત્રાર્થે પ્રમાણમ્—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સતાપ આદિ કી વેદના હૈ । દેવોં મેં ઈર્ષ્યા, વિષાદ, આજ્ઞા-પાલન આદિ કે દુ સ્વ હૈં । જીવ ઇન દુ સ્વોં કા અનુભવ કરતે હૈં, અત ઇવ મેં ઇસા પ્રયત્ન કરૂં કિ-જિસ સે મુક્તે ઇસ પ્રકાર કે દુ સ્વ ન ભુગતને પડે ” । ઇસ પ્રકાર કા આત્મા કા પરિણામ ‘સંવેગ’ કહલાતા હૈ ।

અથવા સુદેવ, સુગુરુ ઓર સુધર્મ મેં અચલ અનુરાગ હોના ‘સંવેગ’ કહલાતા હૈ । કહા મી હૈ—

“હિંસા આદિ કી પરમ્પરા સે રહિત સન્ધે ધર્મ મેં, રાગ દ્વેષ ઓર મોહ આદિ સે રહિત દેવ મેં, તથા સબ પ્રકાર કે પરિગ્રહ સે રહિત ગુરુ-સાધુ મેં નિશ્ચલ અનુરાગ હોના સવેગ હૈ” ॥ ૧ ॥

ઇસ વિષય મેં આગમ પ્રમાણ મી હૈ—

જન્મ, જરા, મરણ, રોગ, શોક, સન્તાપ આદિની વેદના છે દેવોમાં ઈર્ષ્યા, વિષાદ, (શોક) આજ્ઞાપાલન આદિના દુષ્ટો છે ઇવ આ દુષ્ટોનો અનુભવ કરે છે. તે કારણથી હુ અવેા પ્રયત્ન કરે કે-જેથી મને આ પ્રકારનુ દુઃખ ભોગવવું પડે નહિ.” આ પ્રકારનું આત્માનુ પરિણામ તે સવેગ કહેવાય છે

અથવા સુદેવ, સુગુરુ અને સુધર્મના અચલ અનુરાગ-પ્રીતિ થવેા તે સવેગ કહેવાય છે કહ્યું પણ છે કે—

“હિંસા આદિની પરમ્પરાથી રહિત સાચા ધર્મના, રાગ દ્વેષ અને મોહ આદિથી રહિત દેવના, તથા સર્વ પ્રકારના પરિગ્રહથી રહિત ગુરુ-સાધુના નિશ્ચલ અનુરાગ થવેા તે સવેગ છે” ॥ ૧ ॥

આ વિષયના આગમ પ્રમાણુ પણ છે.—

काममोगाध्यवसायः स्वच्छ दुरन्तोऽनन्तदुःखफलदश्च, परलोकेऽप्यतिक्रुद्धो नरकादि
जन्मफलप्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य
एवायमतिप्रयत्नेन ' इत्येवंरूप आत्मकपरिणामो निर्वेदः ।

उक्तं च निर्वेदस्वरूपं तत्फलं च, तथाहि—

“ निष्प्रेषण मते! जीवे किं ब्रह्मयद् ? निष्प्रेषणं दिव्यमाधुसतेरिच्छिप्यसु
काममोगेसु निष्प्रेयं इवमागच्छद् । सम्बन्धिस्यसु विरज्जद् । सम्बन्धिस्यसु विरज्जमाणे
आरंभपरिष्वायं करेद् । आरम्भपरिष्वायं करेमाणे संसारमर्गं वोच्छिद्यद्, सिद्धिमर्गं
पठिक्त्वे य इषद् । ” (उत्तरा० अ २९)

आसक्ति न होना 'निर्वेद' है । 'काममोगेसु' अर्थात् काममोगेसु इत्यस्य क्लेश इत्यस्य क्लेशेण नरक-
दुःख-फल-प्रदः, इत्यतो न किञ्चित्प्रयोजनमनेन काममोगाध्यवसायेन, परित्याज्य
काममोगेसु निष्प्रेयं इवमागच्छद् । सम्बन्धिस्यसु विरज्जद् । सम्बन्धिस्यसु विरज्जमाणे
आरंभपरिष्वायं करेद् । आरम्भपरिष्वायं करेमाणे संसारमर्गं वोच्छिद्यद्, सिद्धिमर्गं
पठिक्त्वे य इषद् । इस प्रकार का आत्मिक परिणाम 'निर्वेद' कहलाता है । निर्वेद का स्वरूप
और फल इस प्रकार कहा गया है:—

“ भगवन् ! निर्वेद से जीव को क्या लाभ होता है ? निर्वेद से जीव को देखा मनुष्य
और त्रियम्बक सर्वथा काम मोगो में शीघ्र ही निरक्ति उत्पन्न होती है । सब विषया से जीव
निरक्त होकर आरम्भ का परित्याग करता है । आरम्भ का परित्याग करता हुआ संसारमार्ग
को त्यागता है और मोक्षमार्ग को बंगीकार करता है ” ।—(उत्तर अ २९)

विषयोर्मां आसक्तिं वाच नक्ति ते निर्वेदोऽथ । काममोगेसुसम्बन्धी अध्यवसाय आ लोकेर्मां
अनन्त दुःखफलप्रदोऽथ । अने परलोकेर्मां पक्ष आत्यन्त क्रुद्धो नरकागति आदि रूप इण
देवाद्यगणोऽथ । अने काममोगेसुसम्बन्धी अध्यवसायधी भावे शुं देवा देवा उ
तेने भूल परिष्वाय करीने त्वल देवा अने अने आ प्रकास्तु आत्मिक परिष्वाय ते
निर्वेद कहैवाय उ । निर्वेदनु स्वहृय अने इत्य आ प्रकारे कसु उ—

“ भगवन् ! निर्वेदधी लवने शुं त्वल वाच उ ?

निर्वेदधी लवने देवता, मनुष्य अने त्रियम्बकसम्बन्धी काममोगेसुसम्बन्धी शीघ्र
निरक्ति उत्पन्न वाच उ सर्वविषयोधी लव निरक्त वध् नाथ उ अर्थात् विषयोधी
निरक्त वध्ने आरम्भने परिष्वाय करेता वध् । संसारमार्गने त्वल दे उ अने
मोक्षमार्गने बंगीकार करे उ ” (उत्तरा० अ० २६)

जीवो जनयति । तथा च नरकादिभवेपु घोरतरबहुतराशातवेदनामवलोक्य तद्गयान्मोक्षमार्गं शरणीकृत्य मोक्षाभिलाषरूपं संवेगं शीघ्रं प्राप्नोति । अनन्तानुबन्धिकषायान् क्षपयति, नवीनं कर्म न वध्नाति, तेन मिथ्यात्वं क्षपयित्वा क्षायिकशुद्धसम्यक्त्वं निरतिचारेण पालयति । एवमतिनिर्मलया सम्यक्त्वविशुद्ध्या कश्चिद्भव्यजीवस्तेनैव भवग्रहणेन सिद्धिं प्राप्नोति । एकः पुनः सम्यक्त्वस्य निर्मलया विशुद्ध्या तृतीयं पुनर्भवग्रहणं नातिक्रामति । मिथ्यात्वमोहनीयकर्मणो निरवशेषक्षयात् शुद्धक्षायिकसम्यक्त्ववान् भवत्रयमध्ये मोक्षं प्राप्नोत्येवेत्यर्थः ।

तथा निर्वेदः—आर्हतवचनाभिनिवेशात्सर्वविषयेषु—अनासक्तिः, 'इह—अलोके

श्रद्धा उत्पन्न होती है । उस श्रद्धा से नरक आदि गतियों में घोर और बहु असाता की वेदना देखकर तथा उस वेदना के भय से मोक्षमार्ग का आश्रय लेकर मोक्षाभिलाषा—रूपी संवेग को शीघ्र ही स्वीकार कर लेता है । वह अनन्तानुबन्धी कषायों का क्षय करता है और नवीन कर्म के बध को रोक देता है । मिथ्यात्व का क्षय कर के शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व का निरतिचार पालन करता है । इस प्रकार अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धि के कारण कोई—कोई भव्य जीव उसी भव में मुक्त हो जाता है, और कोई—कोई तीसरे भव का उल्लघन नहीं करता अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्म के सम्पूर्ण क्षय से शुद्धक्षायिकसम्यक्त्वी जीव तीन भवों में अवश्य मोक्ष पाता है ।

अर्हन्त भगवान् के प्रवचन में प्रगाढ प्रीति होने के कारण सब इन्द्रिय-विषयों में

श्रद्धा उत्पन्न थाय छे, अे श्रद्धाथी नरक आदि गतिओभा घोर अने अहुण असा तानी वेदना नेछने तथा अे वेदनाना अथथी मोक्षमार्गनेा आश्रय लछने मोक्षा भिलाषाथी स वेगने शीघ्रं स्वीकार करी ले छे ते अनन्तानुबन्धी कषायोना क्षय करे छे अने नवीन कर्मना अधने रोक्ये दे छे मिथ्यात्वना क्षय करीने शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्वनु निरतिचार पालन करे छे आ प्रमाखे अत्यन्त निर्मल दर्शनविशुद्धिना करखे कोछ—कोछ अण्य एव अेअ अण्यमा मुक्त थछ अथ छे, अने कोछ—कोछ त्रीण अण्य उदल धन करता नथी अर्थात् मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना स पूर्यक्षयथी शुद्धक्षायिक-सम्यक्त्वी एव त्रय अण्यमा अवश्य मोक्षने प्राप्त करे छे

अर्हन्त भगवानना प्रवचनमा प्रगाढ-संलग्न प्रीति होवना कारणे सर्व इन्द्रियोना

मार्यमात्रप्राणिनां प्राणसंस्कृतान्मोषन च ।

आस्तिक्यम्—अग्निप्रणीतागमात्नुसारेण 'अस्ति जीवादिपदार्थसार्थ' इति मतिर्यस्य स आस्तिक्यः, तस्य भावः आस्तिक्यम् । 'मिनेन्द्रप्रबचनोपदिष्टा जीवपर लोकादयः सर्वेऽतीन्द्रियाः पदार्थाः सन्ति' इत्येवंरूप आत्मपरिणामः ।

एभिः शुभसंबेगादिभिर्मिथ्यानां भद्राऽवपुष्यते ।

। मिथ्यादृष्टेरपि भद्रामापि —

भद्रा निसर्गादपिगमाद्वा मापते । उक्तञ्च—

"सम्प्रदक्षणे दुबिहे पण्यत्ते तत्रद्वा—निसर्गसम्प्रदक्षणे चैव अपिगम

संस्कृत से लुप्ताना—अनुकम्पा है ।

'आस्तिक्य'— 'अग्निप्रणीत आगम के अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है " । एसी 'अस्तिक्य' की मति हो कर 'आस्तिक्य' है । अस्तिक्यपन को 'आस्तिक्य' कहते हैं । अग्निप्रबचन में उपदिष्ट जीव परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं " इस प्रकार का आत्म-परिणाम 'आस्तिक्य' है ।

इन राम संबेग आदि से मयों के सम्प्रसन्न का पता लगाता है ।

मिथ्यादृष्टि को भद्रामापि

अस्तिक्य ! (स्वभाव) से अथवा अपिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से भद्रा उपपन्न होती है । कदा भी है—

"सम्प्रदक्षन दो प्रकार का कदा गवा है—निसर्ग—सम्प्रदक्षन और अपिगम

संस्कृत से लुप्ताना ते अनुकम्पा है

आस्तिक्य— 'अग्निप्रणीत आगम अनुसार जीवादि पदार्थों का अस्तित्व है " अथवा एसी मति है ते आस्तिक्य है । आस्तिक्यपन को 'आस्तिक्य' कहते हैं अग्नि प्रबचन में उपदिष्ट जीव परलोक आदि सभी अतीन्द्रिय पदार्थ हैं " इस प्रकार का आत्मपरिणाम ते आस्तिक्य है

आ राम, संबेग, आदिभी लभ्येत्ता सम्प्रदक्षनेन पतेता जाते है ।

मिथ्यादृष्टिने भद्रानी प्राप्ति

निसर्ग (स्वभाव) से अथवा अपिगम (किसी के द्वारा सुनने आदि) से भद्रा उपपन्न होता है कदा भी है—

'सम्प्रदक्षन दो प्रकार का है—निसर्ग—सम्प्रदक्षन और (२) अपिगम

‘કદાઽહ સંસારં પરિત્યજેયમ્ ?’ इत्येवंरूपेण निर्वेदेन दिव्यमानुपतरंध्रेषु कामभोगेषु निर्वेदम्=अनासक्ति जीवः शीघ्रं प्राप्नोति । इममेवार्थं स्पष्टयति—सर्वविषयेषु विरज्यते—‘अलमेतैरनर्थहेतुभूतैर्विषयैः’ इत्येवंरूपं वैराग्यं प्राप्नोति । वैराग्यं प्राप्तश्च सावधव्यापारं परित्यजति । तत्परित्यागं कुर्यान् संसारमार्गं=मिथ्यात्वाविरतिप्रभृतिरूपं व्यवच्छिनत्ति, संसारमार्गव्यवच्छेदे च जीवः सिद्धिमार्गं=सम्यग्दर्शनादिरूपं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

अनुकम्पा—अनु=अनुकूलं कम्पनं=रक्षणचेष्टाकरणमनुकम्पा=जिनप्रवचनानुसारेणजीवानामुपरि कारुण्यं, प्राणातिपाताकरणं, परदुःखनिवारण, त्रियमाण-

‘कव मै ससार का त्याग करूँ ?’ इस प्रकार के निर्वेद से जीव को देव मनुष्य और तिर्यंच सबधी काम भोगों में अनासक्ति प्राप्त होती है । इसी विषय को स्पष्ट करते हैं कि—जीव सब विषयों से विरक्त हो जाता है, अर्थात् ‘इन अनर्थ के कारणभूत विषयों से बस करो !’ इस प्रकार का वैराग्य पाता है । वैराग्य पाकर जीव सावध व्यापार का त्याग कर देता है । सावध व्यापारका त्याग करता हुआ मिथ्यात्व अविरति आदि ससारमार्ग को छोड़ता है और ससारमार्ग का त्याग कर के सम्यग्दर्शन आदिरूप मोक्षमार्ग को प्राप्त कर लेता है ।

‘अनु’ अर्थात् अनुकूल ‘कम्पन’ अर्थात् रक्षा करने की चेष्टा करना—अनुकम्पा है । अर्थात् जिन भगवान् के उपदेश के अनुसार जीवों पर करुणाभाव होना, किसी के प्राणों का वियोग न करना, दूसरों का दुःख दूर करना, मरते हुए और मारे जाते हुए प्राणियों को प्राण

‘હુ ક્યારે સસારને ત્યાગ કરું ?’ આ પ્રકારના નિર્વેદથી જીવને દેવ, મનુષ્ય અને તિર્યંચ સમ્બન્ધી કામભોગોમાં અનાસક્તિ પ્રાપ્ત થાય છે, તે વિષયને સ્પષ્ટ કરે છે કે—જીવ સર્વ વિષયોથી વિરક્ત થઈ બંધ છે અર્થાત્ આ અનર્થના કારણભૂત વિષયોથી બસ કરો ?’ આ પ્રકારનો વૈરાગ્ય પામે છે વૈરાગ્ય પામીને જીવ સાવધ વ્યાપારનો ત્યાગ કરી દે છે સાવધ વ્યાપારનો ત્યાગ કરતો થકો મિથ્યાત્વ, અવિરતિ આદિ સસારમાર્ગને છોડે છે, અને સસારમાર્ગને ત્યાગ કરીને સમ્યગ્દર્શન આદિરૂપ મોક્ષમાર્ગને પ્રાપ્ત કરી લે છે.

अनु अर्थात् अनुकूल, कम्पन अर्थात् रक्षा करवानी चेष्टा करवी ते अनुकम्पा છે અર્થાત્—જિન ભગવાનના ઉપદેશ પ્રમાણે જીવો પર કરુણાભાવ થવો, કોઈના પ્રાણોનો વિયોગ કરવો નહિ, બીજાના દુઃખ દૂર કરવા, મરતા અને મરતા પ્રાણીઓને પ્રાણ-

अपन्यतोऽन्तर्गृह्यम्, स उत्कर्षतो देवोनार्द्रपुद्गलपरावर्तं स्वित्वा पुनः सम्पत्तं प्राप्स्यति, स सादिमिध्याहृष्टिर्मवति ।

यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एवमुपविद्यस्य मिध्याहृष्टेर्जीवस्य परिणामरूपाभ्यवसायः पूर्वं त्रयन्यं शुभपरिणाममज्ञीकृतस्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एव परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकरण'—मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य सव्यार्थस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्ति, क्रियते कर्मसंपन्नमननेति करणं=जीवस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति च तत्करणं च यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

वाद में अन्तानुबन्धी कथाय के उदय से फिर मिध्याहृष्ट आ गया किन्तु वह मिध्याहृष्ट बन्य अन्तर्गृह्यते तक और उद्भूत देशोत्तर्भर्द्रपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह भी सादिमिध्याहृष्टि है ।

यथाप्रवृत्तिकरण—

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिध्याहृष्टि जीवों का अभ्यवसाय पहले के अपन्य शुभ परिणाम से केन्द्र उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलता है । उसी परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का अर्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि कार्मिकरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलाता है । जिस से कर्मों का उदय क्रिया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति-

अन्तानुबन्धी कथायना उदयशी द्वितीया मिध्याहृष्ट आयी तस्य पक्षु ते मिध्याहृष्ट अपन्य अन्तर्गृह्यते सुधी अने उत्तुह देशोत्तर्भर्द्र पुद्गलपरावर्तन सुधी रहे उ ते एव सादिमिध्याहृष्टि उ ।

यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एव प्रकाशना अने मिध्याहृष्टि एवेना अभ्यवसाय रहेताना अपन्य शुभ परिणामशी अर्धने उत्तरोत्तर बढ़ता शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहेवाम उ ते परिणाम विशेषने यथाप्रवृत्तिकरण कहे उ "यथाप्रवृत्तिकरण ने शब्दात् आ प्रकारे उ— यथा अर्थात् अनादि कार्मिकरूपशी अनी 'प्रवृत्ति' कहे ते 'यथाप्रवृत्ति' कहेवाम उ अन्तर्गृह्यते कर्मसंपन्न कथा अने उ एवना ते शुभ परिणामने 'करण' कहे उ ।

પરિપાકવશેન શુભપરિણામરૂપાઽધ્યવસાયા ભવન્તિ, તેપાં મ્યાનાનિ મન્દ-મધ્ય-તીવ્રાણિ ભવન્તિ । તત્ર જઘન્યશુભપરિણામસ્ય સ્થાનં વિશુદ્ધં, તસ્માદુત્કૃષ્ટસ્ય વિશુદ્ધતરં, તતોઽપ્યુત્કૃષ્ટશુભપરિણામસ્ય વિશુદ્ધતમં સ્થાનં પ્રાપ્નુવતો જીવસ્ય વર્ધમાનશુભપરિણત્યા તાદૃકૂપરિણામવિશેષો જાયતે, યેન તીર્થઙ્કારાદ્યુપદેશ-મન્તરેણ સ્વત એવ જીવસ્ય કર્મોપશમાદિભ્યઃ શ્રદ્ધોત્પદ્યતે । તત્રાયં ક્રમઃ—

શ્રદ્ધાપ્રાપ્તયેઽધિકારી દ્વિવિધો ભવતિ, અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિઃ, સાદિ-મિથ્યાદૃષ્ટિશ્ચ । યઃ પૂર્વં કદાપિ સમ્યક્ત્વં ન લબ્ધવાન્ સોઽનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિઃ । યશ્ચ ભવ્યઃ પૂર્વં સમ્યક્ત્વં પ્રાપ્ય પશ્ચાદનન્તાનુવન્ધિકપાયોદયાદુપજાતમિથ્યાત્વઃ

અનાદિકાલ સે મિથ્યાદૃષ્ટિ હોને પર મી અમુક પ્રકાર કી ભવસ્થિતિ કા પરિપાક હોને સે ઉસકે શુભપરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન હોતે હૈં । ઉન અધ્યવસાયોં કે સ્થાન મન્દ, મધ્યમ ઓર તીવ્ર હોતે હૈં । ઇન મેં જઘન્ય શુભ પરિણામ કા સ્થાન વિશુદ્ધ હૈ, ઉસ સે ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર હૈ । ઓર ઉસસે મી ઉત્કૃષ્ટ શુભપરિણામ વિશુદ્ધતમ હૈ । ઇન સ્થાનોં કો પ્રાપ્ત જીવ કે વઢતે હુએ શુભ પરિણામોં સે એક એસા પરિણામ ઉત્પન્ન હોતા હૈ, જિસ કે દ્વારા તીર્થકર આદિ કે ઉપદેશ કે વિના હી સ્વયમેવ જીવ કો કર્મોં કા ઉપશમ આદિ હોને સે શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન હો જાતી હૈ ।

કમ ઇસ પ્રકાર હૈ—

દો પ્રકાર કે જીવ શ્રદ્ધા પાને કે અધિકારી હૈ—(૧) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ ઓર (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ । જિસ જીવને પહેલે કમી સમ્યક્ત્વ નહીં પાયા વહ અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ કહલાતા હૈ । જિસ ભવ્ય જીવને પહેલે સમ્યક્ત્વ પાયા કિન્તુ

થકા ભવ્ય એવ જ્ઞાન-દર્શનરૂપ ઉપયોગસ્વભાવવાળા હોવાના કારણે અનાદિ કાલથી મિથ્યાદૃષ્ટિ હોવા છતાય પણ અમુક પ્રકારની ભવસ્થિતિને પરિપાક હોવાથી તેને શુભ પરિણામરૂપ અધ્યવસાય ઉત્પન્ન થાય છે તે અધ્યવસાયોના સ્થાન મ દ, મધ્યમ અને તીવ્ર હોય છે તેમા જઘન્ય શુભ પરિણામનુ સ્થાન વિશુદ્ધ છે, તેનાથી ઉત્કૃષ્ટ વિશુદ્ધતર છે, અને એનાથી પણ ઉત્કૃષ્ટ શુભ પરિણામ વિશુદ્ધતમ છે આ સ્થાનોને પ્રાપ્ત એવના વધતા ગયેલા શુભ પરિણામોમાથી એક એવું પરિણામ ઉત્પન્ન થાય છે કે જેના દ્વારા તીર્થકર આદિના ઉપદેશ વિનાજ સ્વયમેવ, એવને કર્મોંના ઉપશમ આદિ થવાથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થઈ જાય છે

કમ આ પ્રકારે છે-

એ પ્રકારના એવ શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવાની અધિકારી છે (૧) અનાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ અને (૨) સાદિમિથ્યાદૃષ્ટિ જે એવે પહેલા ક્યારેય સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું નથી તે અનાદિ મિથ્યાદૃષ્ટિ કહેવાય છે. જે ભવ્ય એવે પહેલા સમ્યક્ત્વ પ્રાપ્ત કર્યું હતું પરન્તુ પછીથી

तथाऽप्रापि अनिष्टाधिकरणरूपं परिणामो निसर्गः सम्यक्त्वाकारेण वर्तत पूर्वाच्च स्वामपनुपावस्यान्तरमाप्तिः परिणामः, परिणामि जीवद्रव्यं तु ध्रुवमेव । परिणामोऽप्यत्र वैससिक एव, अक्षेत्रघनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति वाच्यम् ।

ननु भद्रा निसर्गतः कथमुत्पद्यत ? उच्यते—कर्मजोऽनादित्वात्पूर्वकर्मो दमेन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वेनैव कृतं तदपि कामैषशरीरेण सौख्यं कथ्यते कर्मत्वादिदानींतनकर्मवत् । एषविषयपूर्वगृहीतकर्मणः फलस्युपसृष्टज्ञानस्य मध्यमीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्याहृष्टेरपि तादृशमवस्थिति

मेद नहीं देखा जाता । जैसे परिणामन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी—अन्वयि इत्य एक होने से उस में सर्वथा मेद नहीं होता । उसी प्रकार यहाँ अनिष्टाधिकरणरूप परिणाम निसर्गसम्यक्त्व के रूप में परिणत हो जाता है—उसकी पूर्व—अवस्था मिटकर नवीन अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी—जीवद्रव्य—म्या का जो ध्रुव बना रहता है । परिणाम भी यहाँ वैससिक (स्वामाविक) केन्य वादिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह, फल एव परिणाम का कार्य—स्वभाव है ।

सङ्गा—यथा स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं । ।

समाधान—अन्वयि काष्ठ से खोने हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि जो—जो कर्म जीवन क्रिय हैं, वे सब कामेण शरीर के साथ ही बँधते हैं, क्योंकि वे कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पड़ेले प्रहण किये हुए कर्मों का फल मोगते हुए मध्य जीव ज्ञानदर्शनरूप उपबोगेस्वभावनासा होने के कारण

वाक्यात्तां देहं सर्वथा खेद भोवाभा आपतो नधी जेम—परिष्कृतन अनेक प्रकारतां होवा छत्ताय पयु परिष्कृती—अन्वयिद्रव्य अनेक होवाशी तेमां सर्वथा खेद यतो नधी ते प्रभावे अर्द्धि अनिवृत्तिहेतुरूप परिष्कृतनिसर्गसम्बद्धत्वात् इपमां परिष्कृत यर्ध अय छे—तेनी पूव अवस्था मधीने नवीन अवस्था उत्पन्न यर्ध अय छे पयु परिष्कृती—अन्वयि—अन्वयि छे तेम ध्रुव जनी पडे छे परिष्कृतन पयु अर्द्धि वैससिक (स्वामाविक) हेतु अनेके, मेघ तथा इन्द्रधनुषनी भाइके अने प्रभावे परिष्कृतनो अर्द्ध स्वभाव छे

शुद्धा—भद्रा स्वभाव (निसर्ग) की क्या प्रकार उत्पन्न भाव छे ?

समाधान—अन्वयि काष्ठ की खोलेला पूर्व कर्मोंना उदयशी ज्ञानावरणीय आदि जो—जो कर्म जिये कर्मां छे ते सब कामेण शरीरनी साथेच बंधाव छे—कर्मों ते कर्म छे, वर्तमानकालीन कर्मोंनी समान अना प्रकारतां पड़ेला अनेके कहेला कर्मोंनु इस सोजपते

सम्मर्दसणे चैय" (स्थानाङ्ग० स्था. २ उ. १)

तत्र निसर्गः, परिणामः, स्वभावः, इत्येकार्थकाः ।

अपूर्वकरणानन्तरं यद् भवत्यनिवृत्तिकरणं तन्निसर्ग इति कथ्यते । निसृज्यते कार्योत्पत्तौ सत्यामिति निसर्गः, कार्ये समुत्पन्ने सति कारणस्य न किञ्चित् प्रयोजनं भवति, उत्पन्ने सम्यक्त्वे प्रयोजनाभावादनिवृत्तिकरण परित्यज्यते । न चात्यन्तं परित्यागस्तस्येज्यते यतस्तदेव कारणं तेनाकारेण परिणतम्, यथा—उत्थितोऽपि पुरुषः पुरुष एव, आसीनो शयितो वा पुरुषः पुरुष एव, अवस्थामात्रभेदादवस्थावतो भेदः क्वापि न दृश्यते । तत्र-परिणामस्यानेकरूपत्वेऽपि परिणामिनोऽन्वयिद्रव्यस्य न तच्चात् सर्वथा भेदः,

सम्यग्दर्शन" । (स्थानाङ्ग स्था २ उ १)

निसर्ग, परिणाम, या स्वभाव, ये सव पर्यायवाचक हैं ।

अपूर्वकरण के पश्चात् होने वाला अनिवृत्तिकरण 'निसर्ग' कहलाता है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने पर जो त्याग दिया जाता है वह 'निसर्ग' है । कार्य की उत्पत्ति हो जाने के बाद कारण का कोई प्रयोजन नहीं रहता, क्यों कि सम्यक्त्व उत्पन्न होने पर प्रयोजन नहीं रहने से अनिवृत्तिकरण त्याग दिया जाता है, मगर उस का अत्यन्त परित्याग नहीं किया जाता, क्यों कि वही कारण उस आकार में—कार्यरूप में—परिणत हो जाता है । जैसे—खड़ा हुआ पुरुष—पुरुष ही है । बैठा हुआ या सोया हुआ पुरुष भी पुरुष ही है । अवस्थाओं में भेद होनेमात्र से अवस्थावाले में कहीं सर्वथा

सम्यग्दर्शन" (स्थानाङ्ग० स्था २ उ. १)

निसर्ग, परिणाम अथवा तो स्वभाव, या सर्व पर्यायवाचक शब्दों से अपूर्व करणही पछी थवावाणा अनिवृत्तिकरण निसर्ग कडेवाय से कार्यनी उत्पत्ति थई जवा पछी जे त्यल देवाभा आवे से ते निसर्ग से कार्यनी उत्पत्ति थई गया पछी करणनु कडे प्रयोजन रडेत्तु नथी केभके—सम्यक्त्व उत्पन्न होवा छताय पलु प्रयोजन नछि रडेवाथी अनिवृत्तिकरण त्यागी देवाभा आवे से अर्थात् प्रयोजन नछि रडेवाथी अनिवृत्तिकरणने त्याग करवाभा आवे से परन्तु तेने अत्यन्त परित्याग करवाभा आवतो नथी, करण के ते करण तेवा आकारमा—कार्यरूपमा—परिणत थई जाय से जेभ उलो रडेले। पुरुष, पुरुषण से, जेठेले अथवा सुतेले। पुरुष पलु पुरुषण से, अवस्थाओमा लेद थवा मात्रथी अवस्था-

तथा चापि अनिष्टचिह्नरूपपरिणामो निसर्गः सम्पत्त्वाकारेण वर्तते पूर्वाव
स्वामपनुष्ठावस्थान्तरप्राप्तिः परिणामः, परिणामि बीषद्रम्यं तु धुषमेव ।
परिणामोऽप्यत्र वैज्ञानिक एव, अत्रेन्द्रधनुरादिवदिति परिणामः स्वभाव इति
वाच्यम् ।

ननु भ्रदा निसर्गतः कथमुत्पद्यते? उच्यते-कर्मजोऽनादिस्वात्पूर्वकर्मो
व्येन यद्यदन्यत्कर्म ज्ञानावरणीयादिकं स्वैनेव कृतं तदपि कर्मजशरीरण सस्यै
वप्यते कर्मस्वादिदानींतनकर्मवत् । एवंविधपूर्वगृहीतकर्मणः फलमुपसृष्टज्ञानस्य
मम्यमीवस्य ज्ञानदर्शनोपयोगस्वभावतयाऽनादिमिथ्याहृष्टेरपि सादृश्यमवस्थिति

मेद नही देखा जाता । जैसे परिणामन, अनेक प्रकार का होने पर भी परिणामी-अन्वयि
इस्य एक होने से उस में सर्वथा मेद नही होता । उसी प्रकार यहाँ अनिष्टचिह्नरूप
परिणाम निसर्गसम्पत्त्व के रूप में परिणत हो जाता है-उसकी पूर्व-अवस्था मिटकर नवीन
अवस्था उत्पन्न हो जाती है, फिर भी परिणामी-बीषद्रम्य-ज्यों का भी धुन बना रहता है ।
परिणाम यी यहाँ वैज्ञानिक (स्वामाधिक) केना चाहिए, मेघ तथा इन्द्रधनुष की तरह,
अस एव परिणाम का अर्थ-स्वभाव है ।

सङ्गा-श्रद्धा, स्वभाव (निसर्ग) से किस प्रकार उत्पन्न होती हैं । ।

समाधान-अनादि कस्य से स्रोत हुए पूर्वकर्मों के उदय से ज्ञानावरणीय आदि
जो-जो कर्म जीवने किये हैं, वे सब कर्मण शरीर के साथ ही पड़ते हैं क्योंकि वे
कर्म हैं, वर्तमानकालीन कर्मों के समान । इस प्रकार के पहले प्रहण किये हुए कर्मों का
फल मोगते हुए मम्य बीष ज्ञानदर्शनरूप उपयोगस्वभावबाला होने के कारण

वाण्यभां डोर्ध सवैषा जेठ जेवाभां आवतो नधी जेभ-परिणामन अनेक प्रकारनां
डोवा उवांय पक्ष परिणामी-अ-वयिद्रम्य जेठ डोवाधी तेभां सवैषा जेठ यतो नधी
ते प्रभावे अदि अनिवृत्तिःरूपरूप परिणाम निसर्गसम्पत्त्वना रूपभां परिणत यध अत्र
उ-तेनी पूव अवस्था भट्टीने नवीन अवस्था उत्पन्न यध अत्र उ पक्ष परिणामी-
अ-वयिद्रम्य-जेभ उ तेम प्रव जग्री रहे उ परिणाम पक्ष अदि वैज्ञानिक (स्वामाधिक)
तेवु जेधजे, जेभ तथा इन्द्रधनुषनी भाइठ जे प्रभावे परिणामने अर्थ स्वभाव उ

श ३-अ-वयिद्रम्य (निसर्ग)भी क्या प्रकारे उत्पन्न थाय उ ?

समाधान-अनादि काणधी लाजेलीं पूव कर्मोना उदयधी ज्ञानावरणीय आदि
जे-जे कर्म लवे कर्मां उ ते सब कामज शरीरनी साथेच जेभाव उ केभडे ते कर्म उ
वर्तमानकालीन कर्मोनी समान. अ प्रकारनां पडेलां अद्वय इरेला कर्मोनु इत जेअजते

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषा स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थान विशुद्ध, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतर, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्कराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्तवं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्तवं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थकर आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

कम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थके। लव्य एव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणा होवाना कारणे अनादि कालधी मिथ्यादृष्टि होवा छताय पण्य अमुक प्रकारनी भवस्थितिने परिपाक होवाधी तेने शुभ परिष्णामरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे ते अध्यवसायेना स्थान म द, मध्यम अने तीव्र होय छे तेभा जघन्य शुभ परिष्णामनु स्थान विशुद्ध छे, तेनाधी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाधी पण्य उत्कृष्ट शुभ परिष्णाम विशुद्धतम छे आ स्थानेने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिष्णामेमाधी ओक ओवुं परिष्णाम उत्पन्न थाय छे के जेना द्वारा तीर्थ कर आदिना उपदेश विनाज स्वयमेव, एवने कर्मोना उपशम आदि थाधी श्रद्धा उत्पन्न थई जय छे.

कम आ प्रकारे छे—

जे प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि जे एवे पड़ेला उयारेय सम्यक्त्व प्राप्त कथुं नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि कहेवाय छे. जे लव्य एवे पड़ेला सम्यक्त्व प्राप्त कथुं हर्त परन्त पछीथी

अप्यतोऽन्तर्मुहूर्तम्, स उत्कर्षतो देवोनात्सुप्रसन्नपरावर्त्तं स्वित्वा पुनः सम्यक्त्वं प्राप्स्यति, स सादिमिध्याहृष्टिर्भवति ।

यथाप्रवृत्तिकरणम्-

एषामुपविषस्य मिध्याहृष्टेर्भीक्षस्य परिणामरूपाभ्यवसायाः पूर्वं अपन्य ह्यमपरिणाममङ्गीकृत्य परा परा ह्यमपरिणामः परिणामविक्षेप इत्युच्यते । स एष परिणामविज्ञपो 'यथाप्रवृत्तिकरण'—मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य अन्वयार्थस्त्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध मकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्तिः, क्रियते कर्मसंपन्नमनेनेति कर्म=जीवस्य ह्यमपरिणामः, यथाप्रवृत्ति ष उत्कर्षं ष यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

वाद में अन्तानुबन्धी कथन के उदय से फिर मिथ्यात्व का गमा किन्तु वह मिथ्यात्व अपन्य अन्तर्मुहूर्त तक और ऊह्य देवोनात्सुप्रसन्नपरावर्त्तन तक रहता है वह भी सादिमिध्याहृष्टि है ।

यथाप्रवृत्तिकर्म-

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्याहृष्टि जीवों का अभ्यवसान पहले के अपन्य ह्यम परिणाम से केकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए ह्यम परिणाम, परिणामविरोध कहलता है । उसी परिणामविरोध को 'यथाप्रवृत्तिकर्म' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकर्म' का शाब्दिक इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि कर्मरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलता है । जिस से कर्मों का फल किया जाता है, जीव के उस ह्यम परिणाम को 'कर्म' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति

अनन्तानुबन्धी अभावना उदयशी इतीथी मिथ्यात्व आनी जसु पक्षु ते मिथ्यात्व अपन्य अन्तर्मुहूर्त सुधी अने उत्कर्ष देवोनात्सुप्रसन्नपरावर्त्तन सुधी रहे से ते एष सादिमिध्याहृष्टि उ

यथाप्रवृत्तिकर्म—

एष प्रवृत्त्या अने मिथ्याहृष्टि एवेना अभ्यवसान रहेवाना अपन्य ह्यम परिणामशी लक्षणे उत्तरोत्तर वध्या ह्यम परिणाम, परिणामविरोध कहेवाय उ ते परिणामविरोधने यथाप्रवृत्तिकर्म कहे उ. 'यथाप्रवृत्तिकर्म' ने अन्वयार्थ एष प्रकारे उ— यथा अर्थात् अनादि कालीनरूपशी अनी 'प्रवृत्ति' काल ते 'यथाप्रवृत्ति' कहेवाय उ अन्तधी कर्मिणि अथ कर्मार्थ आने उ एवना ते ह्यम परिणामने 'कर्म' कहे उ.

परिपाकवशेन शुभपरिणामरूपाऽध्यवसाया भवन्ति, तेषां स्थानानि मन्द-मध्य-तीव्राणि भवन्ति । तत्र जघन्यशुभपरिणामस्य स्थानं विशुद्धं, तस्मादुत्कृष्टस्य विशुद्धतरं, ततोऽप्युत्कृष्टशुभपरिणामस्य विशुद्धतमं स्थानं प्राप्नुवतो जीवस्य वर्धमानशुभपरिणत्या तादृक्परिणामविशेषो जायते, येन तीर्थङ्काराद्युपदेश-मन्तरेण स्वत एव जीवस्य कर्मोपशमादिभ्यः श्रद्धोत्पद्यते । तत्रायं क्रमः—

श्रद्धाप्राप्तयेऽधिकारी द्विविधो भवति, अनादिमिथ्यादृष्टिः, सादि-मिथ्यादृष्टिश्च । यः पूर्वं कदापि सम्यक्त्वं न लब्धवान् सोऽनादिमिथ्यादृष्टिः । यश्च भव्यः पूर्वं सम्यक्त्वं प्राप्य पश्चादनन्तानुबन्धिकपायोदयादुपजातमिथ्यात्वः

अनादिकाल से मिथ्यादृष्टि होने पर भी अमुक प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से उसके शुभपरिणामरूप अध्यवसाय उत्पन्न होते हैं । उन अध्यवसायों के स्थान मन्द, मध्यम और तीव्र होते हैं । इन में जघन्य शुभ परिणाम का स्थान विशुद्ध है, उस से उत्कृष्ट विशुद्धतर है । और उससे भी उत्कृष्ट शुभपरिणाम विशुद्धतम है । इन स्थानों को प्राप्त जीव के बढ़ते हुए शुभ परिणामों से एक ऐसा परिणाम उत्पन्न होता है, जिस के द्वारा तीर्थंकर आदि के उपदेश के बिना ही स्वयमेव जीव को कर्मों का उपशम आदि होने से श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है ।

क्रम इस प्रकार है—

दो प्रकार के जीव श्रद्धा पाने के अधिकारी हैं—(१) अनादिमिथ्यादृष्टि और (२) सादिमिथ्यादृष्टि । जिस जीवने पहले कभी सम्यक्त्व नहीं पाया वह अनादिमिथ्यादृष्टि कहलाता है । जिस भव्य जीवने पहले सम्यक्त्व पाया किन्तु

थके लव्य एव ज्ञान-दर्शनरूप उपयोगस्वभाववाणा डोवाना डारखे अनादि डालथी मिथ्यादृष्टि डोवा छताय पखु अमुक प्रकारनी भवस्थितिने परिपाक डोवाथी तेने शुभ परि-ष्ठाभरूप अध्यवसाय उत्पन्न थाय छे ते अध्यवसायेना स्थान म द, मध्यम अने तीव्र डोय छे तेमा जघन्य शुभ परिष्ठाभनु स्थान विशुद्ध छे, तेनाथी उत्कृष्ट विशुद्धतर छे, अने अनाथी पखु उत्कृष्ट शुभ परिष्ठाभ विशुद्धतम छे आ स्थानेने प्राप्त एवना वधता गयेला शुभ परिष्ठाभेमाथी अेक अेवु परिष्ठाभ उत्पन्न थाय छे डे नेना द्वारा तीर्थंकर आदिना उपदेश विना स्वयमेव, एवने कर्मोने उपशम आदि थवाथी श्रद्धा उत्पन्न थर्ष गय छे

क्रम आ प्रकारे छे—

डे प्रकारना एव श्रद्धा प्राप्त करवानी अधिकारी छे (१) अनादिमिथ्यादृष्टि अने (२) सादिमिथ्यादृष्टि ने एवे पडेला क्यारेय सम्यक्त्व प्राप्त क्युं नथी ते अनादि मिथ्यादृष्टि डडेवाय छे. ने लव्य एवे पडेला सम्यक्त्व प्राप्त क्युं डतुं परन्तु पछीथी

नपन्यतोऽन्तर्गृह्यते, स उत्कर्ष्यतो देशोनार्द्धपुद्गलपरावर्त्तं स्थित्वा पुनः सम्यक्त्वं माप्स्यति, स सादिमिध्याहृष्टिर्भवति ।

यथाप्रवृत्तिकरणम्-

एषमुमयविषयस्य मिध्याहृष्टेर्भीषस्य परिणामरूपाभ्यवसायाः पूर्वं अपन्य शुभपरिणामपद्मीकृतस्य परः परः शुभपरिणामः परिणामविशेष इत्युच्यते । स एष परिणामविशेषो 'यथाप्रवृत्तिकृत्य'—मित्युच्यते ।

यथाप्रवृत्तिकरण—मित्यस्य अर्थस्तत्वेवम्—यथा=येन अनादिसंसिद्ध प्रकारेण प्रवृत्तिर्यस्य तत् यथाप्रवृत्तिः, क्रियते कर्मसंपन्नममेनेति करणं=भीषस्य शुभपरिणामः, यथाप्रवृत्ति य तत्करणं य यथाप्रवृत्तिकरणं कर्मसंपन्नकारणस्या

पार में अनन्तानुसंधी कथाम के उद्यम से फिर मिथ्यात्व आ गया किन्तु वह मिथ्यात्व अपन्य अनन्तमुहूर्त तक और ऊरुह देशोन अर्द्धपुद्गलपरावर्तन तक रहता है वह भी सादिमिध्याहृष्टि है ।

यथाप्रवृत्तिकरण-

इस प्रकार दोनों प्रकार के मिथ्याहृष्टि बीजों का अभ्यवसाय पहले के अपन्य शुभ परिणाम से केकर उत्तरोत्तर बढ़ते हुए शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहलता है । उन्ही परिणामविशेष को 'यथाप्रवृत्तिकरण' कहते हैं ।

'यथाप्रवृत्तिकरण' का शब्दार्थ इस प्रकार है—'यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूप से जिस की प्रवृत्ति हो वह यथाप्रवृत्ति कहलता है । जिस से कर्मों का उद्यम किया जाता है, जीव के उस शुभ परिणाम को 'करण' कहते हैं । यथाप्रवृत्ति

अनन्तानुसंधी कथापन्य उद्यमशी हरीथी मिथ्यात्व आधी जसु पद्यु ते मिथ्यात्व अपन्य अनन्तमुहूर्त सुधी अने उरुह देशोन अर्द्ध पुद्गलपरावर्तन सुधी रहे से ते एव सादिमिध्याहृष्टि छे.

यथाप्रवृत्तिकरणम्—

एष प्रकारेण अन्ते मिध्याहृष्टि एवेना अभ्यवसाय पठेताना अपन्य शुभ परिणामपद्मी अर्धे उत्तरोत्तर वधता शुभ परिणाम, परिणामविशेष कहेवाक छे ते परिणामविशेषने यथाप्रवृत्तिकरण कहे छे. 'यथाप्रवृत्तिकरण' नो शब्दार्थ' का प्रकार छे— यथा' अर्थात् अनादि कालीनरूपशी अनी 'प्रवृत्ति' होय ते 'यथाप्रवृत्ति' कहेवाक छे अनी अर्थोने उद्यम कथामा आवे छे एवना ते शुभ परिणामने 'करण' कहे छे.

अध्यवसायमात्रस्य सर्वदैव भावादुदयावलिक्राप्रविष्टानां कर्मणा सर्वदैव क्षपणात् ।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्यस्याभव्यस्य च भवति । वक्ष्यमाणमपूर्वकरणमनिवृत्तिकरणं च भव्यस्यैव भवति, न त्वभव्यस्य ।

मिथ्यात्ववशादनन्तान् पुद्गलपरावर्तान् अनन्तदुःखान्यनुभूय कथमपि तादृशभवस्थितिपरिपाकवशाद् गिरिणदीप्रवहदुद्धर्त्तितापवर्त्तितापापाणवर्त्तुलावस्थावदनाभोगनिर्वर्त्तितेन यथाप्रवृत्तिकरणेन विशुद्धपरिणामविशेषरूपेणायुष्यकर्म वर्गयित्वा ज्ञानावरणीयादिकर्माणि सर्वाण्यपि पत्योपमासंख्येयभागन्यूनैकरूपेण करणं यथाप्रवृत्तिकरणं कहलाता है । कर्मक्षय का कारणभूत अध्यवसाय सदैव बना रहता है, क्यों कि उदयावलिका में आए हुए कर्मों का सदा क्षय होता रहता है ।

यथाप्रवृत्तिकरणं भव्य जीव को भी होता है और अभव्य जीव को भी होता है, किन्तु आगे कहे जाने वाले अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण भव्य जीव को ही होते हैं, अभव्य जीव को नहीं ।

मिथ्यात्व के वश होकर अनन्त पुद्गलपरावर्तनों तक अनन्त दुःखों को भोगने के पश्चात् किसी भी तरह उस प्रकार की भवस्थिति का परिपाक होने से पहाड़ी नदी के प्रवाह में बहने वाला, लुडक (गुडक)ने वाला, घिसने वाला पाषाण जैसे गोलमटोल बन जाता है, उसी प्रकार अनजान में ही यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणाम के कारण आयुकर्म को छोड़कर ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पत्योपमा के असख्यातवे भाग कम

यथाप्रवृत्तिरूप करणं ते 'यथाप्रवृत्तिकरणं' कहेवाय छे कर्मक्षयना कारणभूत अध्यवसाय दुःमेशा भनी रहें छे, केमके-कहेवावलिकामा आवेला कर्मोना दुःमेशा क्षय तथा करे छे यथाप्रवृत्तिकरणं भव्य एवने पशु थाय छे, अने अलव्य एवने पशु थाय छे, परन्तु आगण कहेवामा आवशे ते अपूर्वकरण अने अनिवृत्तिकरण लव्य एवने न थाय छे, अलव्य एवने यथा नथी

मिथ्यात्वने वश थधने अनन्त पुद्गलपरावर्तनो सुधी अनन्त दुःखोने लोगव्या पछी केरि पशु प्रकारे आ प्रकारनी लवस्थितिने परिपाक थवाथी प्रहाडी नदीना प्रवाहमां वडेवावाणो-गण्डवावाणो, घसातो नतो पथर नेवी रीते गोल-मटोल भनी नय छे, अे प्रमाणे अनलव्यता पशु यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणामना कारणे आयुकर्मने लवने भनी ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पत्योपमना असख्यातमा भाग-अेधं

मिथ्यात्वने वश थधने अनन्त पुद्गलपरावर्तनो सुधी अनन्त दुःखोने लोगव्या पछी केरि पशु प्रकारे आ प्रकारनी लवस्थितिने परिपाक थवाथी प्रहाडी नदीना प्रवाहमां वडेवावाणो-गण्डवावाणो, घसातो नतो पथर नेवी रीते गोल-मटोल भनी नय छे, अे प्रमाणे अनलव्यता पशु यथाप्रवृत्तिकरणरूप विशुद्ध परिणामना कारणे आयुकर्मने लवने भनी ज्ञानावरणीय आदि सात कर्म पत्योपमना असख्यातमा भाग-अेधं

सागरोपमकोटीकोटीस्थितिकानि करोति । उक्तञ्च—

“अंतिमकोटाकोटीए होइ सम्प्राप्ति कम्मपगम्भीणं ।
पछियामसत्तमागे लीये सेसे इक्क गंठी ॥ १ ॥”

उत्तराय क्रमो विज्ञेयः—ज्ञानावरणीय—दर्शनावरणीय—वेदनीय—अन्तरायकर्म-
चतुष्टयस्य चिद्वत्सागरोपमकोटीकोटश्च उक्तुष्टा स्थितिः । नामगोत्रयोर्विश्रुति
सागरोपमकोटीकोटश्च, मोहनीयस्य सप्ततिसागरोपमकोटीकोटश्च उक्तुष्टा स्थितिः ।
उत्र यथाप्रवृत्तिकरणेन भोव उक्तुष्टां स्थितिं प्राप्तयम् सावती स्थितिं प्रापयति, येन
समानरूपेण सप्तानां कर्मणां पर्योपमासंख्येयमागन्यूनैकसागरोपमकोटीकोटीस्थिति

एक कोटाकोटी सागरोपम की स्थिति में आये जाते हैं । कहा भी है—

‘समस्त कर्म प्रकृतियों का फल के असंख्यातवें भाग कम कोटाकोटी की
स्थितिवाली होती है, तब प्रथि होती है’ ॥ १ ॥

क्रम इस प्रकार है—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय वेदनीय और अन्तराय, इन
चार कर्मों की उक्तुष्ट स्थिति तीस—तीसकोटा—कोटी सागरोपम की है । नाम और
गोत्रकी बीस—बीस कोटाकोटी सागरोपम की है, और मोहनीय कर्म की उक्तुष्ट स्थिति
स्थिर (७) कोटाकोटी सागरोपम की है । यथाप्रवृत्तिकरण के द्वारा बीस
इस सारी उक्तुष्ट स्थिति को पटाकर इतनी कम कर डालता है कि सातों
कर्मों की स्थिति समानरूप से फलोपम के असंख्यातवें भाग कम एक सागरोपम कोटाकोटी

ज्येष्ठ कोटा—कोटी साजशेषमनी स्थितिमां आवयामां आवे छे उहु पथु छे

समस्त कर्मप्रकृतियों का फल के असंख्यातवें भाग कोटा—कोटी
कोटा—कोटीनी स्थितिवाली ज्येष्ठ छे आवे प्रथि याव छे ॥१॥

क्रम का अर्थ है—ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय का
चार कर्मोंकी उक्तुष्ट स्थिति तीस—तीस कोटा—कोटी साजशेषमनी छे नाम करने गोत्रनी
बीस बीस कोटा—कोटी साजशेषमनी छे करने मोहनीय कर्मनी उक्तुष्ट स्थिति स्थितेर (७०)
कोटा—कोटी साजशेषमनी छे यथाप्रवृत्तिकरणेन भोव तन्नाम उक्तुष्ट स्थितिने जोषी
करीने—ज्येष्ठकी जोषी करी नाजे छे के—सावे कर्मोंनी स्थिति समानरूपकी फलोपमना
असंख्यातवें भाग कोटा—कोटीनी जाकी रकी ज्येष्ठ छे ज्येष्ठ

સ્વશિષ્ટા ભવતિ । અત્રાન્તરે ચ યથાપ્રવૃત્તિકરણેન કર્મનિર્જરાં કુર્વતો જીવસ્ય યાવત્
પૂર્વકર્મણો નિર્જરા ન ભવતિ તાવત્ સ્થીયમાનં તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપં કર્મ, ગ્રન્થિ-
સાદૃશ્યાદ્ ગ્રન્થિરિત્યુચ્યતે ॥

યથા કાષ્ઠવિશેષસ્ય અતિકઠોરનિવ્રિડાતિશુષ્કઘનગૂઢગ્રન્થિર્દુર્ભેદ્યસ્તથા
તીવ્રરાગદ્વેષપરિણામરૂપઃ કર્મવિશેષોઽપિ દુર્ભેદ્યો ભવતિ તસ્માદ્ ગ્રન્થિશબ્દેન
વ્યવહ્રિયતે ।

અભવ્યા અપિ યથાપ્રવૃત્તિકરણવલેન કર્મ ક્ષયપિત્વાઽનન્તવારમેતદ્ગ્રન્થિ-
પર્યન્તમાગચ્છન્તિ । કશ્ચિદ્ ગ્રન્થિસ્થાન પ્રાપ્ય તસ્માદધઃ પતતિ । કશ્ચિત્ત્રેવ
ગ્રન્થિસ્થાને સ્થિતસ્તિષ્ઠતિ, ન તસ્માદગ્રે પ્રવર્તતે ।

કી બાકી રહ જાતી છે । ફરી વીચ—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મો કી નિર્જરા કરતે હુએ જીવ કે
જિતને કર્મો કી નિર્જરા નહીં હોતી અર્થાત્ જો કર્મ શેષ રહ જાતે હૈં, વેતીવ્ર રાગ દ્વેષપરિણામરૂપ
કર્મ, ગ્રન્થિ કે સમાન હોને કે કારણ ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહલાતી હૈં ।

જૈસે—કાઠવિશેષ કી અત્યન્ત કઠિન ઘની ઓર એકદમ સૂઝી મીતરી ગાંઠ દુર્ભેદ્ય હોતી
હૈ, ઉસી પ્રકાર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ મી દુર્ભેદ્ય હોતા હૈ, અત એવ વહ કર્મ,
ગ્રન્થિ કહલાતી હૈ ।

અભવ્ય જીવ મી યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મ કા ક્ષય કર કે અનન્ત વાર ગ્રન્થિ પર્યન્ત
આ પહુંચતે હૈં, કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિસ્થાન કો પ્રાપ્ત કર કે ફિર નીચે ગિર જાતા હૈ । કોઈ-કોઈ
ગ્રન્થિસ્થાન પર હી ઠહર જાતા હૈ, આગે નહીં વઢતા હૈ ।

વચ્ચમાં—યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મોની નિર્જરા કરતા થકા છવના બેટલા કર્મોની
નિર્જરા નથી થતી અર્થાત્ જે કર્મ શેષ રહી બચ છે તે તીવ્ર રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ
કર્મ, ગ્રન્થિના સમાન હોવાના કારણે ગ્રન્થિ (ગાંઠ) કહેવાય છે

જેવી રીતે કાષ્ઠ (લાકડા) વિશેષની અત્યન્ત કઠિન, મજબુત અને એકદમ સૂઝી
અહરની ગાંઠ દુર્ભેદ્ય હોય છે, એ પ્રમાણે રાગ—દ્વેષપરિણામરૂપ કર્મવિશેષ પણ
દુર્ભેદ્ય હોય છે. એટલા માટે તે કર્મ, ગ્રન્થિ કહેવાય છે

અભવ્ય છવ પણ યથાપ્રવૃત્તિકરણદ્વારા કર્મનો ક્ષય કરીને અનન્તવાર ગ્રન્થિ
સુધી પહોંચે છે કોઈ કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાનને પ્રાપ્ત થઈને પાછા નીચે પડી બચ છે
કોઈ-કોઈ ગ્રન્થિ સ્થાન ઉપરજ રહી બચ છે આગળ વધી શકતા નથી

अमध्योऽपि कश्चिद् यथाप्रवृत्तिकरणेन ग्रन्थिपर्यन्त समागत्य तीर्थं कुराति श्रय
 र्क्षेनेन लम्बिधारिमाधितारमहात्मनो महिमाश्लोकनेन, प्रयोजनान्तरेण वा
 प्रवर्तमानः सुप्रार्थतदुभयभक्षणपठनरूपं श्रुतसामायिकं कथ्यते, न त्वन्यदपूर्व
 करणादिकम् ।

॥ अपूर्वकरणम्—

तदनन्तरं कश्चिदेव मध्यमीव आसन्नसिद्धिसुखत्वाद्भुवि तमश्रुतुर्निवारवीर्य-
 मसरोऽतिनिश्चितकृष्टारोपेव यथाप्रवृत्तिकरणापेक्षया विशुद्धतरेणाभूतपूर्वश्रुमा-
 भ्यवसायविशेषरूपेणापूर्वकरणेन प्राप्युक्तं दुर्मेघं कर्मप्रन्थिं भिनत्ति ।

कई अमध्य मी यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा प्रन्थि तक आकर तीर्थकर मगवान्
 कर अतिशय देसकर, लम्बिधारी माधितारमा महात्मा की महिमा देसकर, अथवा किसी
 अन्य प्रयोजन से प्रवृत्ति करता हुआ सूत्र, कर्म और तदुभय भागम का भक्षण या
 पठनरूपं श्रुतसामायिक को प्राप्त कर अता है, मगर वह अपूर्वकरण आदि को नहीं
 प सकता ।

अपूर्वकरण—

तदनन्तरं मोक्षसुख समीप होने के कारण जिस में प्रभुर और दुर्निवार शक्ति उत्पन्न
 हो गई है ऐसा कई मध्य मीव ही बहुत तीसे दुःसहाये के समान यथाप्रवृत्ति—करण की
 अपेक्षा अधिक विद्युत् और पहाके कमी मी प्राप्त न होने वाले शुभअभ्यवसायरूप
 अपूर्वकरण के द्वारा उस दुर्मेघ कर्मप्रन्थि को भेदता है ।

कई अमध्य पक्ष यथाप्रवृत्तिकरणद्वारा प्रवृत्ति सुधी आधीने तीर्थकर अत्रयान्ता
 अतिशयने कोधने, लम्बिधारी माधितारमा महात्मानो महिमा कोधने, अथवा कई
 अन्य प्रयोजनसे प्रवृत्ति करते बडे सूत्र अर्थ जने तदुभय भागमना अथवा
 अथवा पठनरूपं श्रुत—सामायिकने प्राप्त करी से छे पसन्तु ते अपूर्वकरण आदिने
 प्राप्त करी शकते नही

अपूर्वकरणम्—

त्यार पक्षी मोक्षसुख समीप होवाना कारणे जेनामा भक्तान जने कौशिकी
 निवारी शक्त नहि तेवी शक्ति उत्पन्न कई अर्थ से जेवो कई अन्य लक्षण अदुर्लभ
 तीना कृष्णमा समान यथाप्रवृत्तिकरणनी अपेक्षा अधिक विद्युत् जने पहेला कई वज्रव
 पक्ष प्राप्त नहि जेवोला शुभ—अभ्यवसायरूप अपूर्वकरण द्वारा जे दुर्मेघ कर्मप्रन्थिने भेद छे

अस्मिन् ग्रन्थिभेदे मनःक्षोभपरिश्रमादिविघ्नाः भवन्ति । यथा विद्यासाधकस्य विद्याधिष्ठातृदेवताकृतोपसर्गेर्भनःक्षोभो भवति, यथा घोरमहासमरगतमुभटस्य दुर्धर्ष-
बहुतरशत्रुगणपराजयकरणात्परिश्रमो भवति, यथा च महासमुद्रादिभ्यो नौकादितारणे
नाविकस्य परिश्रमो भवति तथा प्रचुरदुर्जयकर्मशत्रुसंघातपराजये परिश्रमोऽतिशयेन
जायते । वज्राश्मवद्दुर्भेद्योऽयं कर्मग्रन्थिः । अपूर्वकरणवज्रमूच्याश्रयमन्तरेणास्य
भेदो दुष्करः ।

अपूर्वकरणवज्रमूच्या सकृद् ग्रन्थिभेदे कृते सति लब्धविशुद्धतमश्रद्धा-

ग्रन्थिभेदन करने में मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उपस्थित
होते हैं । जैसे विद्या की साधना करने वाले को विद्या की अधिष्ठात्री देवता के द्वारा
किये जाने वाले विघ्नो से मन में क्षोभ होता है, और घनघोर महायुद्ध में गये हुए
योद्धा को बहु-सख्यक और दुर्जय शत्रुओं के दल पर विजय प्राप्त करने में परिश्रम
करना पडता है, अथवा जैसे किसी महासमुद्र से जहाज वगैरह को पार लगाने में
नाविक को परिश्रम करना पडता है, उसी प्रकार बहुत-से दुर्जय कर्मशत्रुओं के
दल को पराजित करने में अत्यन्त परिश्रम करना पडता है । यह कर्मग्रन्थि वज्र की तरह
बड़ी कठिनाई से भेदी जाती है । अपूर्वकरणरूपी वज्र की सुई का सहारा लिये विना उस
का भेदन होना अशक्य है ।

अपूर्वकरण की वज्रमय सुई से एक वार कर्मग्रन्थि का भेदन हो जाने पर

अथिभेदन करवाभा मानसिक क्षोभ तथा परिश्रम आदि अनेक विघ्न उप-
स्थित थाय छे जेभ विद्यानी साधना करवावाणाने विद्यानी अधिष्ठात्री देवताद्वारा
थवावाणा विघ्नोथी भनभा क्षोभ थाय छे, अने घनघोर महायुद्धमा गयेला योधाने
धष्ठीञ् सभ्यावाणा अने दुर्जय शत्रुओना दण उपर विजय भेणववाभा जेभ परिश्रम
करवे पडे छे अथवा—जेवी रीते कोर्ध महासमुद्रमाथी वडाष्ठी वगेरेने पार लर्ध
जवाभा नाविडेने परिश्रम करवे पडे छे, जे प्रमाणे अहुञ् दुर्जय कर्मशत्रुओना
दणने पराजय करवाभा अत्यन्त परिश्रम करवे पडे छे

आ कर्मग्रन्थि वज्रमा जेवी महाकठिनताथी बेदी शक्य छे अपूर्वकरण रूपी
वज्रनी सोयनी सहाय लीधा विना तेनु भेदन थनु अशक्य छे

अपूर्वकरणनी वज्रमय सोयथी जेकवार कर्मग्रन्थिनु भेदन थर्ध जवा पधी

सामर्थ्यान्न पुनर्ग्रन्थिबन्धनं भवति, यथा जातवेधो मणिः कथञ्चिद्भ्रमा परिपूरितेऽपि रात्रे न पूर्वाहस्यां प्राप्नोति, तत्रैव सम्पृष्टसम्यक्चो श्रीवः कथञ्चित्सम्यक्त्वापगमे पश्चात्परागद्वेषपरिणाममाप्तावपि न पुनर्ग्रन्थिरूपेण कर्म भवति ।

यथा जन्मान्धस्य कथञ्चिद्विदुःप्राप्तौ सत्यां यथावस्थितपदार्थसाध्याधि सोकमेन, यथा च महाव्यापिनिततदुरन्तघोरवेदनासमाक्रान्तस्य तद्व्याप्यपगमे महान् ममोदो जायते तथा भ्रम्यस्थानिवृत्तिकरणबलन बीतरागोपदिष्ट

धीन को यदा की अत्यन्त विद्वान् शक्ति प्राप्त हो जाती है, अत एव फिर कमी प्रकियेय नहीं होता । किसी मणि में एक बार छेद कर दिया जाय और काष्ठान्तर में उस में पूर भर जाय तो भी वह छेद पड़े की भाँति नहीं होता । इसी प्रकार एकबार सम्पत्त्व प्राप्त कर केने वाला धीन सम्पत्त्व के नष्ट हो जाने पर भी बाद में तीव्र उम-द्वेषरूप परिणामों की प्राप्ति होने पर भी प्रवि के रूप में कमों का बंध नहीं करता ।

जैसे जन्म से बंधे को किसी उपाय से बाल मिलने पर पशुओं का बसती स्वरूप देखकर अत्यन्त हर्ष होता है, अथवा जैसे किसी महान् रोग से होने वाली घोर वेदना से पीड़ित पुरुष के रोग हट जाने पर महान् हर्ष होता है, उसी प्रकार सम्य-धीन को अनिवृत्तिकरण-के बल से महान् बीतराग द्वारा कथित बन्ध

एवमेव भद्राणी अत्यन्त विद्वान् शक्ति प्राप्त कथं जन्म से अत्यन्त आटे हरी केरु वज्रत अशिलक यतो नधी. केरु भद्रिमां ज्येष्ठ वषट छिद्र-धनुं यठनां पछी कालान्तरमां ते छिद्रमां कदाच पूज कस्यैक जन्म तो पक्षु ते छेद प्रथम प्रभावे यते नधी. आ प्रकारे ज्येष्ठवार सम्पत्त्व प्राप्त ठरी देवावाज्ज एव, सम्पत्त्वनेना नाश कया छर्ता पक्षु पछीभी वीज राज-द्वेष रूप परिष्ठाभोनी प्राप्ति कया छर्ताप पक्षु अशिला इषमां कमेनिा जन्म करता नधी.

जैसी शीते जन्मधी आंधजने केरुपक्षु उपायधी नेत्र भणी जर्ता पद्यधीना जन्मधी स्वप्नने जेधने अत्यन्त हर्ष यत्न से जयवा जेम केरु भद्रान् राजधी कया यणी भद्राधोर वेदनाधी पीडित पुरुषने राज निवास्वु बर्ध जर्ता तेने भद्रान् हर्ष कया छे. जे प्रभावे जन्म एवने अनिवृत्तिकरणना जगधी, कत्रवान चीतरागद्वारा कथित

यथावस्थितवस्तुत्त्वाऽभिरुच्या श्रद्धयाऽभूतपूर्वो विषयवैरस्यपुरस्कृतः प्रमोदः प्रादुर्भवति ।

॥ अनिवृत्तिकरणम्—

ततश्च ग्रन्थिभेदोत्तरकालमेव ततो विशुद्धतमं शुभाध्यवसायविशेषमनि-
वृत्तिकरणं प्राप्नोति, येन तावन्न निवर्तते जीवः सम्यक्त्व न लभते यावदित्यनि-
वृत्तिकरणमुच्यते । अनिवृत्तिकरणवलेन जीवः सम्यग्दर्शन लभते । तदेव नैसर्गिकी
श्रद्धोच्यते ।

ननु प्रागुक्तं 'मिथ्यात्वमोहनीयकर्मापशमादिभ्यः श्रद्धा जायते' पुनरुच्यते
'निसर्गादधिगमाद्वा श्रद्धा जायते' तदसगतम् ।

वस्तुस्वरूप के प्रति स्वरूप श्रद्धा से विषयवैराग्यपूर्वक एक ऐसा आनन्द उत्पन्न होता है,
जिस का पहले कभी अनुभव नहीं हुआ था ।

अनिवृत्तिकरण—

ग्रन्थिभेद के अनन्तर काल में अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न होता है । वही
अनिवृत्तिकरण कहलाता है । यह परिणाम प्राप्त होने पर जीव सम्यक्त्व प्राप्त किये बिना नहीं
छूटता, इसी कारण इसे 'अनिवृत्तिकरण' कहते हैं । अनिवृत्तिकरण के द्वारा जीव सम्य-
ग्दर्शन प्राप्त करता है । उसी को नैसर्गिक श्रद्धा कहते हैं ।

शुद्धा—पहले कहा था कि—'मिथ्यात्वमोहनीयकर्म के उपशम आदि से श्रद्धा उत्पन्न
होती है' और बाद में कहते हैं कि—'निसर्ग से, अथवा अधिगम से श्रद्धा उत्पन्न होती है' ।
यह कथन परस्पर असगत है ?

यथार्थवस्तुस्वरूपानी इच्छिञ्च श्रद्धाथी विषयवैराग्यपूर्वक ओक ओवो आनन्द उत्पन्न
थाय छे के-नेने पडेला केछि वधत अनुभव थयो नथी

अनिवृत्तिकरणम्—

अथिलेदना अनन्तर (तरतना) काणभा अत्यन्त विशुद्ध परिणाम उत्पन्न थाय छे
ते 'अनिवृत्तिकरण' कडेवाय छे आ परिणाम प्राप्त थया पछी एव सम्यक्त्व प्राप्त
कया बिना पाछो नथी करतो तेथीण ओने अनिवृत्तिकरण कडे छे, अनिवृत्तिकरण एव
द्वारा सम्यग्दर्शन प्राप्त करे छे तेनेण नैसर्गिक (स्वाभाविक) श्रद्धा कडे छे

शुद्धा—पडेला कड्डु इतु के—'मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना उपशम आदिथी श्रद्धा
उत्पन्न थाय छे' ओने पछी कडेला छे के—'निसर्ग अथवा अधिगमथी श्रद्धा उत्पन्न
थाय छे, ओ कथन परस्पर असगत छे,

अप्रोच्यते—स एव क्षयापन्नमादिर्निसर्गाभिगमाद्वा जायते, तथा च भद्राया अपि तद्वदयं कारण सिद्धपतीति न दोषः ।

स्तु सम्यक्त्रगुणरहितेनैव जीवेन द्राघीयसी कर्मस्थितिर्ग्रन्थिभेदा स्तुर्ब ययामवृत्तिकरणेन यथा क्षपिता तथा तदवशिष्टमपि कर्मग्रन्थि ययामवृत्तिकरणेन मिनत्तु, एतो मोक्षमप्यवशमेव प्राप्नोतु किं पुनरपूर्वकरणसम्बन्धेन ? अत्रोच्यते-महाविद्यासाधनवदेतद् द्रष्टव्यम् । यथा महाविद्याया साधने पूर्वं स्वल्प एव परिश्रमो मरुति, तस्मिन्निमाप्तिसमयं तु सा विद्या तद्विद्याभिष्टावदेस्ताकृत

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्म का क्षयोपशम आदि, निसर्ग से अथवा अस्मिन् से होता है ऐसी स्थिति में यह दोना कारण भद्रा के ही हैं अतः कोई दोष नहीं है ।

पञ्चम—जीव में सम्यक्त्व न होने पर भी जैसे उतनी बड़ी भारी कर्मस्थिति को प्रथिभेद से पहले ही ययामवृत्तिकरण के द्वारा खरा ढाके इसी प्रकार सेत्र स्थिति भी ययामवृत्तिकरण के द्वारा ही खरा के और मोक्ष भी इसी प्रकार प्राप्त करके फिर अर्पूर्वकरण का आश्रय लेने की क्या आवश्यकता है ?

समाधान—महाविद्या की साधना की तरह ही यहाँ समझना चाहिए । जैसे महाविद्या की साधना में पहले थोड़ा-सा श्रम होता है किन्तु जब उस का सिद्धि का समय मरुतिक आता है तो वह विद्याविद्यार्थी देवतापार किये जानेवाके नान्य प्रकार क उपसर्गों द्वारा विज्रपुक्त हो जाता है और प्रायः अश्रवत कष्टसाध्य बन जाती है,

समाधान—मिथ्यात्वमोहनीय कर्मना क्षयोपशम आदि, निसर्गशी अथवा अस्मिन्मभी याव छ, जेवी स्थितिमां आ अन्ने क्षरत्वे अक्षान्त्व छ तेभी कर्ष डोष नहीं

श ३—एवने सम्भूतव न होय तो पक्ष जेवी रीते जेवरी महापारी कर्म स्थितिने अक्षिसेइया पहोलाव ययामवृत्तिकरणना द्वारा अथानी नाजे छ ते प्रभासु सेव स्थिति पक्ष अथामवृत्तिकरणद्वाराव अथानी नाजे अने भासु पक्ष आ प्रभासु अन्व करी तीजे तो पछी अपूर्वकरणेना आश्रय लेवानी तु आवस्यकता छ ?

समाधान—महाविद्यानी साधना प्रभासुव अर्षि समल लेवुं जेवजे जेव महाविद्यानी साधनामा पहोलां बीरो जेवे श्रम शाय छ, परन्तु अथारे तेनी सिद्धिने श्रम नलक आवे छ त्वारे ते विद्यानी अक्षिआरीदेवताद्वारा कर्षमां आवता नान्य महासना उपसर्गे द्वारा विज्रपुक्त यर्ष अव छ अने पक्ष करीने अश्रवत कष्टसाध्य

વિવિધોપસર્ગેઃ સવિઘ્ના કષ્ટરસાઘ્યા ચ પ્રાયશો ભવતિ, તદ્વદ્ ગ્રન્થિભેદો મનઃ-
ક્ષોભાદિવિવિધોપસર્ગેઃ, પરમવીર્યાવિષ્કારપૂર્વકઃકષ્ટરસાઘ્યત્વેન ચ સવિઘ્નોઽતિદુષ્કરશ્ચ,
તસ્માત્ કેવલં યથાપ્રવૃત્તિકરણેન ગ્રન્થિભેદો ન ભવિતુમર્હતિ, અત એવા પૂર્વકરણમાવ-
શ્યકમિતિ । इत्थं चापूर्वकरणेन ग्रन्थिभेद विधायाऽनिवृत्ति-करणेन श्रद्धा लभ्यते ।

॥ अधिगमश्रद्धा—

येन प्रकारेण निसर्गतः श्रद्धा जायते स कथितः, अधुना—अधिगमश्रद्धा
व्याख्यायते—अधि=अधिकृत्य तीर्थङ्कराद्युपदेश निमित्तीकृत्य गमः=ज्ञानं यद्भवति
सोऽधिगमः, वीतरागोपदेशश्रवणाद् वीतरागप्राणीतागमार्थपर्यालोचनाद्वा यथाव-

इसी प्रकार ग्रन्थिभेद भी मनःक्षाम आदि अनेक उपसर्गों के कारण विघ्नयुक्त हो जाता
है और ग्रन्थिभेद के करने में बड़ी शक्ति की आवश्यकता होती है, अत एव अकेले
यथाप्रवृत्तिकरण से ग्रन्थिभेद नहीं हो सकता, उस के लिए अपूर्वकरण की आवश्यकता
होती है । इस प्रकार अपूर्वकरण—द्वारा ग्रन्थिभेद करने पर अनिवृत्तिकरण—द्वारा श्रद्धा प्राप्त
की जाती है ।

अधिगमश्रद्धा—

जिस प्रकार निसर्ग से श्रद्धा उत्पन्न होती है वह प्रकार कहा जा चुका ।
अब अधिगमश्रद्धा की व्याख्या की जाती है—तीर्थङ्कर आदि के उपदेश के निमित्त से
होने वाला ज्ञान अधिगम कहलाता है । वीतराग भगवान् का उपदेश सुनने से

ખની બન્ય છે, એ પ્રમાણે અથિલેદ પણ મન ક્ષોભ આદિ અનેક ઉપસર્ગોના કારણે
વિઘ્નયુક્ત થઈ બન્ય છે, અને તે ગ્રન્થિભેદના કરવામા ભારે શક્તિની આવશ્યકતા
હોય છે, એટલા માટે એકલા યથાપ્રવૃત્તિકરણથી અથિલેદ થતો નથી, તેને માટે
અપૂર્વકરણની આવશ્યકતા રહે છે, એ પ્રમાણે અપૂર્વકરણ—દ્વારા અથિલેદ કરવાથી
અનિવૃત્તિકરણ—દ્વારા શ્રદ્ધા પ્રાપ્ત કરવામા આવે છે

अधिगमश्रद्धा—

એ પ્રમાણે નિસર્ગથી શ્રદ્ધા ઉત્પન્ન થાય છે તે પ્રકાર કહેવામા આવી ગયો છે
હવે અધિગમશ્રદ્ધાની વ્યાખ્યા કરવામા આવે છે—તીર્થ કર આદિના ઉપદેશના નિમિત્તથી
થવાવાળું જ્ઞાન તે અધિગમ કહેવાય છે વીતરાગ ભગવાનનો ઉપદેશ સાંભળવાથી, અથવા

स्वित्तपदार्थनिर्णयो जायते सोऽधिगमः, तस्माद्दुपसमादिद्वारेण तत्पार्याभिरुचिर्जायते सा-अधिगमभद्रा ।

अद्या यमसंवेगादयं प्रादुर्भवन्ति, ततश्च राज्यादिभिश्च पुत्रदारादिक स्वजनं सर्वं परिष्यामदुःस्वपदं विषयपरिस्पृश्य सबसुखसारपूर्तं नित्यं ध्रुव शान्तिर्ब मोक्षसुखं प्राप्तुं कामः प्रवर्जितो भवति ।

संयमभेदिसाप्तिकाले या महद्दपरिणामपारा वर्तते तां सर्वेषां रक्षेत् तु ह्यसयेदिति माध्व । अद्यायाः परमदुर्बलस्त्वात्, ज्ञानचारित्रकारणतया मोक्षस्यादि

अथवा बीतराग द्वारा निरूपित अगम के अर्थ का विचार करने से पदार्थों का अभाव निर्णय होता है । उस निर्णय को अधिगम कहते हैं । उस अधिगम से सिद्धान्त मोक्षनीच का क्षय, उत्तम आदि होने पर तत्पार्थ की जो इति होती है, वह अधिगम भद्रा है ।

अद्या से शम संवेग आदि उत्पन्न होते हैं, अत एव "राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी आदि समस्त आत्मीयजन अन्त में दुःस्वप्नायक हैं" ऐसा ज्ञान कर, और विष के समान उन का परित्याग कर के सब सुखों में उत्तम, नित्य, ध्रुव, शान्तिक मोक्ष-सुख की इच्छावास वह सम्मगच्छि पुरुष दीक्षित हो जाता है ।

तात्पर्य यह है कि-संयमप्राप्ति के समय परिणामों की जो बड़ी हुई धारा थी उस की सब प्रकार से रक्षा करना चाहिए, उसे घटने नहीं देना चाहिए । अतः परम दुर्बल है, और ज्ञान एवं चारित्र का कारण होने से मोक्ष का अय कारण है, अत एव

बीतराजद्वारा निरूपित आत्मभया अर्थोने विचार इत्यादी पदार्थोने यथायं निरुपय कथं छे ते निरुपयने अधिगम इहे छे ते अधिगमशी भिच्छान्तमोक्षनीचने। लव-उपशम आदि यथा पक्षी तत्पार्थनी ने इति भाव छे ते अधिगमभद्रा छे

अद्याधी शम, सवेग आदि उत्पन्न भाव छे। अतएव माटे 'राज्य आदि वैभव तथा पुत्र, पत्नी वजेशे समस्त आत्मीयजन अन्तर्मां दुःस्वप्नायक छे।' अने प्रभावे अद्याने विचनी समान तेने त्याज करीने सर्वसुखोभां उत्तम, नित्य, ध्रुव शान्तिक मोक्ष सुखनी इच्छावण्य सम्मगच्छि पुरुष दीक्षित अर्थ भाव छे

तात्पर्य अने छे इ-संयमनी प्राप्तिना समये परिष्कृष्टोनी ने बधती जाती धारा कती तेनु सव प्रकारशी रक्षण इरनुं अछे। तेने घटवा देवी अछे। अद्या परम दुर्बल छे अने शान, जेवी शीते आदिनुं इरखु देवाधी मोक्षनुं सुख इरखु छे अतएव माटे

कारणत्वाच्च श्रद्धां न परित्यजेत् । यथा—कथञ्चित्माप्तस्यापि सयमस्य श्रद्धापूर्वकरक्षणे यावज्जीवं सावधानो भवेदिति सूत्राशयः ॥ सू० २ ॥

शिष्यश्रद्धादृढीकरणाय 'परिशीलितमार्गोऽनुगम्यते' इति लोकरीत्या 'पूर्व-महापुरुषाचरितोऽयं मार्गः' इत्याशयेन कथयति—

यद्वा 'पूर्वमहापुरुषतीर्थङ्कर-गणधरादिभिरप्याचरितोऽयं मार्गः' इति प्रदर्शनाय शिष्यचेतसि श्रद्धातिरेको यथा स्यात्तथा सूत्रकारः स्वयमाह—'पणया' इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

पणया वीरा महावीहिं ॥ सू० ३ ॥

॥ छाया ॥

प्रणता वीरा महावीथिम् ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धा का त्याग नहीं करना चाहिए, आशय यह है कि—बड़ी कठिनाई से प्राप्त होने वाले सयम की श्रद्धापूर्वक रक्षा करने में जीवनभर सावधान रहना चाहिए ॥ सू० २ ॥

'चले मार्ग पर चला जाता है' इस लोकव्यवहार के अनुसार शिष्य की श्रद्धा मजबूत करनेके लिए 'यह मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषों द्वारा आचरित है' इस आशयसे कहते हैं—

अथवा—'पूर्वकाल के तीर्थङ्कर गणधर आदिने भी इसी मार्ग का अवलम्बन किया है' यह बतलाते हुए शिष्य के चित्त की श्रद्धा बढ़ाने के लिए कहते हैं—'पणया' इत्यादि ।

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्ग को प्राप्त हुए ॥ सू० ३ ॥

श्रद्धानो त्याग करवो नोछो नडि, आशय ओ छे के—महान कठिनाईथी प्राप्त थवावाणा सयमनी श्रद्धापूर्वक रक्षा करवाभा एवनना छेदला रक्षणे सुधी सावधान रहेवुं नोछो (सू० २)

"यावता मार्ग पर थलावाय छे" या लोकव्यवहार प्रमाणे शिष्यनी श्रद्धा मजबूत करवा भाटे—'या मार्ग पूर्वकालीन महापुरुषोओ आचरण करेले छे' या आशयथी छे छे—

अथवा पूर्व कालना तीर्थंकर गणधर आदि सौओ या मार्गनु अवलम्बन (आश्रय) करुं ओ अताववा भाटे शिष्यना चित्तनी श्रद्धाने वधारवा भाटे छे छे—'पणया' इत्यादि

मूलार्थ—वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त थया—(वीर पुरुष महामार्गने प्राप्त कर्यो) (सू० ३)

॥ टीका ॥

वीराः—परीयशीयसर्गकषायदिरूपलक्षुच्चिन्विनो भाववीराः सयमानुष्ठाने वीय
 वन्तः सर्वोक्तुष्टा इति यावत्

महती वासो वीधिः महावीधिः—सम्पन्नानादिलक्षणो महामार्गः, महा-
 बुद्धसेवितत्वात्, तां महावीधिम् पञ्चताः—माताः कठिनतरतपासंयमाराधनेन
 प्राप्तवन्त इत्यर्थः, अपमेव मार्गो मोभावान्तिकरोऽप्येवमिसेवितत्वात् ।
 तीर्थहरादिमहापुरुषा अपि मार्गमिममनुशीलितवन्त इति चिन्वसनीयतया शिष्याणां
 महापूर्वकमहचिर्यया स्यादिति भावः ।

यथा रामानो विपश्चपलदसनाद् वीरत्वेन प्रसिद्धा भवन्ति, एवमेव

टीकार्थ—परीय, उपसर्ग, कषाय आदिरूप शत्रुओं को बीसनेवाले संयम के
 कारण में पराक्रम करनेवाले सर्वोत्कृष्ट भाववीर यहाँ 'वीर' शब्द से प्रहण किये गये हैं ।

सम्पन्नान् आदि मोक्ष का महामार्ग 'महावीधि' कहलता है, क्योंकि महापुरुषोंने
 उस का सेवन किया है । भाववीर इस महामार्ग को प्राप्त हुए हैं । पञ्चतप कठोर तप
 और संयम का आराधन करना ही इस मार्ग को प्राप्त करना है । यही मार्ग मोक्ष की प्राप्ति
 करने वाला है, क्योंकि समस्त मुनियोंने इसी का सेवन किया है । तीर्थहर आदि महापुरुषोंने
 भी इसी मार्ग का आश्रय लिया है, अत एव चिन्वसनीय समस्त कर शिष्यगण की भी इसी
 में प्रवृत्ति होती पाहिए ।

'वीर' शब्द से यह प्रकट किया गया है कि—जैसे राजा लोग अपने शत्रुओं का

टीकार्थ—परीयर्ष उपसर्ग कषाय वजरे शत्रुजोने लतवावाण्ड, सबभन्ना
 व्यावस्थुर्मा पराक्रम करवावाण्ड सर्वोत्कृष्ट भाववीर आदि 'वीर' शब्द वटे प्रकट
 करवाया छे

सम्पन्नान् आदि मोक्षने भाग ते 'महावीधि' कहेवाय छे कारण के महत्-
 पुरुषोंने तेनु सेवन क्युं छे भाववीर आ महामार्गने प्राप्त कया छे अत्यन्त कठोर
 तप जने सबभन्नु आश्रयन करनु के अ या मार्गने प्राप्त करवे ते छे आ मार्ग
 मोक्षनी प्राप्ति करवावाये छे, कारण के समस्त मुनियोंने के मार्गने सेवन क्युं
 छे, तीर्थहर आदि महापुरुषोंने पण आ मार्गने आश्रय लीये छे जे/वा भारे आ
 मार्गने चिन्वसपात्र समलने चिन्वसजुनी पण आ भागमा प्रवृत्ति कयी जे/के

वीर पक्षी के प्रकट करवाया आनुं छे के—जेम राज लोग पितान् शत्रुजोने

परिपहादिरूपशत्रुविजयेन संयमिनोऽपि मोक्षमार्गं लब्ध्वा लोकोत्तरवीरा भवन्ति, इति वीरपदेन व्यज्यते, इति सूत्राशयः ॥ सू० ३ ॥

कश्चिन्मन्दधीः शिष्योऽनेकदृष्टान्तैर्वोध्यामानोऽपि अप्कायादिजीवेषु न श्रद्धातीति तमुद्दिश्य कथयति—हे शिष्य ! तत्र मतिर्यद्यप्यप्कायजीवविषये न परिस्फुरति, तद्विषये विशेषज्ञानाभावात्, तथापि भगवदाज्ञया श्रद्धा नितरां विधेयेत्याशयेनाह—‘लोगं च’ इत्यादि ।

मूलम्—

लोगं च आणाए अभिसमेच्चा अकुतोभयं ॥ सू० ४ ॥

छाया—

लोकं चाज्ञयाऽभिसमेत्य अकुतोभयम् ॥ सू० ४ ॥

दलन करके वीर पदवी पाते हैं, उसी प्रकार परीषद आदि शत्रुओं को जीतने से सयमी मोक्षमार्ग प्राप्त कर के लोकोत्तर वीर कहलाते हैं ॥ सू० ३ ॥

कोई मन्दबुद्धिवाला शिष्य अनेक दृष्टान्तों से समझाने पर भी अप्काय आदि के जीवों पर श्रद्धा नहीं करता तो उसे लक्ष्य कर के कहते हैं—हे शिष्य ! यद्यपि तुम्हारी बुद्धि अप्काय के जीवों के विषय में नहीं दौडती, क्यों कि तुम्हें उस विषय का विशेष ज्ञान नहीं है, फिर भी भगवान् की आज्ञा से अवश्य ही श्रद्धा रखनी चाहिए । इस आशय से कहते हैं—‘लोग च’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् की आज्ञा से (अप्कायरूप) लोक को सम्यक् प्रकार से जानकर सयम का पालन करना चाहिए ॥ सू० ४ ॥

नाश करीने वीर पदवी प्राप्त करे छे, ते प्रभाषे परीषद आदि शत्रुओंने छतवाधी सयमी पक्ष मोक्षमार्ग प्राप्त करीने बोकोत्तर वीर कडेवाय छे (सू० ३)

केध मद्बुद्धिवाणा शिष्य अनेक दृष्टान्ताधी समनव्या छता पक्ष अप्काय आदिना छवे पर श्रद्धा नथी करता तो तेने लक्ष्यरूप राभीने कडे छे के—हे शिष्य ! छे सुधी तमारी बुद्धि अप्कायना छवे विषयमा होउती नथी (काम करती नथी) क्काल के तमने आ विषयनु विशेष ज्ञान नथी तो पछी भगवाननी आज्ञाधी अवश्यञ्च श्रद्धा राखवी जेधे छे आशयधी कडे छे—‘लोग च’ इत्यादि

मूलार्थ—भगवाननी आज्ञाधी (अप्कायरूप) बोकने सम्यक् प्रकारधी नक्षीने सयमनु पालन करवुं जेधे छे (सू० ४)

टीका—

अत्र सोऽश्वदेन प्रकरणशब्दादप्कायलोक एव सूच्यते, समप्काय-लोकं, 'य'-श्वदेनान्याभाष्कायाभितान्, आह्वया=तीर्षङ्करवचनेन, अमिसमेत्य= कामिभ्यस्त्वेन सम्यक् ज्ञात्वा 'अप्कायादपो बीजाः सन्ती-त्येवमवबुध्येत्यर्था, बहुतोमयम्=नास्ति कुतश्चित्केनापि प्रकारेण प्राणिनां मयं यस्मात्सोऽकुतोमया= संयमस्तम् अनुपालयेत् इत्यन्वयाः । सर्वथा जीवाभिरक्षप्ररूपसयमानुपालने सावधानतया यत्नं कार्यं इत्यर्थः ।

यद्वाऽकुतोमयोऽप्कायलोको, यतोऽसौ न कुतश्चिदन्यस्माद्भवति, स्वकीयमरणादिमयात् सर्वः प्राणिगणः लिप्तो भवति । 'सर्वे जीवा नि

टीकार्थ—मूल सूत्र में दिये हुए 'लोक' शब्द से, प्रकरण के कारण यहां अप्काय-लोक ही समझना चाहिए । 'य' शब्द से अप्काय के भाष्य रहे हुए अन्य बीजों का प्रकरण करना चाहिए । इस प्रकार अप्काय और अप्काय के व्यभिक्त रहनेवाले अन्य बीजा को तीर्षङ्कर भगवान् की आज्ञा से सम्यक् प्रकार व्यक्त करवात् 'अप्काय आदि बीज है' ऐसा समझ कर सयम का पालन करना चाहिए । 'अकुतोमय' अर्थात् किस से किसी भी प्राणि को किसी प्रकार का मय न हो ऐसा संयम । सर्वथा बीबरक्षारूप सयम के पालने में सावधान होकर यत्न करना चाहिए ।

वचन—'अकुतोमय' का अर्थ है—अप्कायलोक, क्योंकि वह दूसरे से मय की इच्छा नहीं करता । सभी प्राणी अपनी मृत्यु आदि के मय से लिप्त होते हैं ।

टीकार्थ—मूलसूत्रमें आपेक्षा लोक शब्दभी प्रकरणना कारणे अप्काय-लोक समवबुध्यते अर्थात् 'य' शब्दभी अप्कायना आशये रहतेवा अन्य लोकेषु बहुषु अर्थान्ते जे प्रभाष्ये अप्काय जने अप्कायना आशित रहनेवाला अन्य लोकेषु तीर्षङ्कर भगवान्नी आशाभी, सम्यक् प्रकारे व्यक्ती करीने अर्थात् अप्काय आदि लोके जे प्रभाष्ये समलने सयमनु पालन करणु अर्थान्ते 'अकुतोमय' अर्थात् केना बडे कोऽप्यु प्राणीने कोऽप्रकारेण मय न होय कोवे संयम, सर्वथा लोके रक्षारूप सयमना पालनमां सावधान बधने यत्न करवे अर्थान्ते ।

वचन 'अकुतोमय'ने अर्थ है—अप्कायलोक कारणे के ते जीवाना तरक्षणी कर्णी इच्छा करता नहीं; सर्व प्राणी पीताना मृत्यु आदिना मयभी भिन्न-दुःखी भाव से

इच्छन्ति, जीविउं न मरिज्जिउं' इति वचनात् । तमपक्कायलोकं समनुपालयेदिति सम्बन्धः । संयमी सर्वप्राणिगणपरिपालक एव सन् नान्यस्मै भयमुत्पादयति, 'मिती मे सव्वभूएसु' इति वचनेन तस्य सर्वैः सह मैत्रीसद्भावात्, अतोऽसौ संयमी न तेभ्यो भयं जनयति, कस्मैचिदपि भयं केनापि नोत्पादयति, प्रत्युत सर्वप्राणिगणं परिरक्षतीति भावः ।

यद्यपि छद्मस्थैः प्राणिभिः सर्वद्रव्यपर्यायज्ञानाभावादबुद्धिसंस्कारराहित्येनाप्याजीवस्याव्यक्तचेतनया च 'आपो जीवाः सन्ती'-त्यपरोक्षत्वेन कदाचिदपि ज्ञातुं न शक्यते, तथापि सकलतीर्थोद्धारधुरीण-तीर्थङ्कर-वचनप्रामाण्यादवश्यं

आगम में कहा है—'सभी जीव जीवित रहना चाहते हैं मरना नहीं चाहते ।' उस अपक्कायलोक का पालन करे अर्थात् रक्षण करे । संयमी पुरुष समस्त प्राणियों का रक्षक होता है । वह किसी भी प्राणी को भय उत्पन्न नहीं करता । "मेरा सब प्राणियों पर मैत्रीभाव है" इस वचन के अनुसार उस की प्राणीमात्र पर मित्रता की भावना होती है । इस कारण संयमी उन्हें भय उत्पन्न नहीं करता, किसी को भी किसी द्वारा भय उत्पन्न नहीं कराता, बल्कि वह सब प्राणियों की रक्षा करता है ।

यद्यपि छद्मस्थ जीवों को समस्त द्रव्यों का ज्ञान नहीं होता इस कारण, तथा बुद्धि, संस्कार से रहित होने के कारण अपक्काय के जीवों में अव्यक्त चेतना होने से, तथा 'जल जीव है' यह बात प्रत्यक्ष न होने से कभी इन्द्रियों द्वारा जानी नहीं जा सकती, फिर भी सम्पूर्ण तीर्थ का उद्धार करने में समर्थ तीर्थङ्कर के वचनों को प्रमाण

आगममा पणु कलु छे के—'सर्वं एव एवता रडेवानी धव्छा करे छे, भरवानी धव्छा करता नथी" ते अप्कायलोक्तनु पालन करे अर्थात् रक्षा करे संयमी पुइष समस्त प्राणीओना रक्षक थाय छे ते कोर्ध पणु प्राणीने भय उत्पन्न करता नथी 'सर्वं प्राणीओ पर भारे मैत्रीभाव छे' आ वचन प्रभाषे तेनी सर्वं प्राणीमात्र पर मित्रतानी भावना होय छे, ते कारणुथी संयमी ते एवोने भय उत्पन्न करता नथी, कोर्धने पणु कोर्धथी भय उत्पन्न करावता नथी, परतु ते सर्वं प्राणीओनी रक्षा करे छे

जे के छद्मस्थ एवोने समस्त द्रव्यो अने पर्यायोनु ज्ञान नथी, ते कारणुथी तथा बुद्धि, संस्कारथी रहित होवथी अप्कायना एवोमा अव्यक्त चेतना होवथी, तथा 'जल एव छे' ये वात प्रत्यक्ष नहि होवथी इन्द्रियोद्वारा कोर्ध वपत जलुवामा आवती नथी तो पणु स पूरुर्ध तीर्थने उद्धार करवामा समर्थ तीर्थ करना वचनेने प्रभाष

विशासो विवेकः । अथप्याविप्रत्यक्षज्ञानिनोऽपि पूर्वं भगवदाज्ञायां भद्रावन्त सन्त
एवाऽप्यायत्नीवान् विज्ञाय प्रत्यक्षज्ञानिनः संभाषाः, अतः संप्रमिमिरवश्यमप्युक्तायादि
वीवरज्ञायां साक्षयनैर्भ्रितम्पमिति परमार्थः ॥ सू० ४ ॥

अर्थायलोकं भगवदाज्ञया विज्ञाय संप्रमिना यत् कर्तव्यं, तत् कथयति— 'से
वेमि' इत्यादि ।

मूलम्—

से वेमि—यत्र सयं लोकां अस्माइक्सिन्ना, यत्र अत्ताणं अस्माइक्सिन्ना,
जे लोयं अस्माइक्सिन्ना से अत्ताणं अस्माइक्सिन्ना, जे अत्ताणं अस्माइक्सिन्ना, से लोयं
अस्माइक्सिन्ना ॥ सू० ५ ॥

छाया—

स ब्रह्मीमि नैव स्वयं लोकमभ्याख्यातु, नैवात्माननमभ्याख्यातु, या लोक
मभ्याख्याति, स आत्मानमभ्याख्याति, य आत्मानमभ्याख्याति, स लोकमभ्या
ख्याति ॥ सू० ५ ॥

मन्त्र अस्मय विधास करना चाहिए । अविज्ञानी अथि प्रत्यक्षज्ञानी भी पहलू भगवान्
की आज्ञा पर श्रद्धा रखते हुए अर्थाय के बीमा को जान कर प्रत्यक्षज्ञानी हुए, अतः संसारी
को अर्थाय अथि के बीमा की रक्षा में सावधान होना चाहिए ॥ सू० ४ ॥

भगवान् की आज्ञा से अर्थायलोक को जान कर संसारी को भी करना चाहिये वह
प्रगट करते हैं— 'से वेमि' इत्यादि ।

मूलार्थ—वह मैं करता हूँ—स्वयं अर्थायलोक का अर्थान न कर
आत्मा का अर्थान न करे, जो लोक का अर्थान करता है वह आत्मा का अर्थान करता है,
और जो आत्मा का अर्थान करता है वह लोक का अर्थान करता है ॥ सू० ५ ॥

आत्मीने अथय विधास करेवे लेखने अथि अथि प्रथम ज्ञानी पक्ष प्रथम अर्थाननी
आत्मा पर श्रद्धा रखीने अपुथायन्य लोकेने अथि करीने प्रत्यक्षज्ञानी अथि, जे भाटे
संसारी पुरुषोत्तमे अर्थाय आदिना लोकेनी रक्षायां सावधान रहेंतुं लेखने (सू० ४)
अर्थाननी आत्माधी अपुथायदेखने अथिने संसारीनुं जे अर्थान उ ते प्रथम
करे उ— से वेमि इत्यादि ।

मूलार्थ—ते हूँ हूँ उ—यदि अपुथाय देखने अपुथाय—(दिया छतां नहीं
देखेंते) न करे आत्माने अपुथाय करे नहीं, जे देखने अपुथाय करे उते आत्माने
अपुथाय करे उ, जने जे आत्माने अपुथाय करे उते देखने अपुथाय करे उ (सू० ५)

टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञातापूकायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः । लोकम्=अपूकायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येव नापलपेदित्यर्थः । अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति-चोरोऽयमिति । अत्र तु-'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जलं, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते ।

नन्वजीवानामपि जीवत्व आरोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति ? भैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अपूकाय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वय अपूकायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि—'जल जीव नहीं है' ।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना । यहाँ " धी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वय जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है" । इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है । क्यों कि घोडा वगैरह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अत जल के जीवपन का अपलाव नहीं किया जा सकता ।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय ?

टीकार्थ—लगवानना वयने प्रमाणे अपूकायनु स्वरूप जलवावाणे हुं कहु छु, अर्थात् मे लगवाननी पासेथी जेहुं साभज्यु छे तेवु ज कहुं छु—पोते अपूकाय रुप बोडने अपलाप करे नहि, अर्थात् जेवु कडे नहि के—'जल जव नथी' असत् आरोपने अभ्याख्यान कडे छे, जेभके अचौरने चौर कडेवे अहि " धी तेल आदि प्रमाणे जल जे जेवोनु उपकरणमात्र जे होई शके छे, ते स्वय जव नथी, कारणु के—" ते जेवु उपकरणु छे, आ प्रकारनु कडेवुज-असत् (मिथ्या) अभियोग छे, कारणुके बोडा वगेरे जव पणु जेवोपकरणुना रूपमा जेवामा आवे छे तेथी जलनु जवपणु अपलाप करी शकय नहि

शंका—अजव पाणीमा जवपणुने आरोप करवे तेज अभ्याख्यान शा भाटे नहि समजवुं ?

अनुमानागमाभ्यां श्रीचलक्षणकलापसम्प्रदायायां जीवत्पनिष्पन्नात् ।

यद्यप्यण्कायभटोपदेशस्याभ्यास्यान कुर्यात्, तथात्मनोऽपि क्षरीराधिष्ठातृरभ्यास्यान तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तद् समवर्तीत्यत आह—नचमात्मानमभ्यागम्यादिति । आत्मा हि क्षरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षभूतभूतनाचानिति नापहोतु क्षम्यः, तरमादात्मा नास्तीत्येवमात्मान नापलपेदित्यर्थः ।

यः स्वतः मन्दीः लोकम्=अण्कायभटोपदेशम् अभ्यास्याति=अपलपति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैर्निरूपितमात्मानमभ्यागम्याति । यथात्मानमभ्यागम्याति—‘आत्मा नास्तीति यद्वा—‘अहं नास्मीति, स महामूढः लोकम्=अण्कायभटोपदेशम्

समाधान—येसा मत कहो । अनुमान और अज्ञानप्रमाण से तथा जीव के छत्रणों के संबंध से यह जो जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अण्काय लोक का अभ्यासमान किया धाम तो शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का भी अभ्यासमान करना होना मगर वह समब नहीं है यही बात कहते हैं—आत्मा का अभ्यासमान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठाता है और प्रत्यक्ष चतना बाबा है, अतः उस का अपसाप नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का अपसाप न करे ।

जो मन्वबुद्धि अण्कायलोक का निषेध करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणां से सिद्ध आत्मा का अपसाप करता है । और जो ‘आत्मा नहीं है’ कहवा ‘मैं नहीं हूँ’ इस तरह आत्मा का अपसाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के मल से

समाधान—जो प्रमाणों कहो नकि अनुमान अने अज्ञान प्रमाणाधी तथा अन्य ब्रह्मज्ञाना संबंधी अतनु अपलप्य निरूपण कर्तुं छे जे अण्काय-लोकतु अभ्यासमान करवाया जावे तो शरीरना अधिष्ठाता आत्मानु पणु अभ्यासमान करवु पार्यो, परन्तु ते सभव नहीं, जे बात कहो छे—

अतमानु अभ्यासमान करयो नकि, आत्मा शरीरना अधिष्ठाता छे अने प्रत्यक्ष चेतनाबाणा छे तेषी तेने अपसाप करी शक्यो नकि, जेटहा भाटे आत्मा नहीं जे प्रमाणे अपसाप करयो नकि.

जे मद् बुद्धिबाणा अण्कायलोकना निषेध करे छे ते मन्वबुद्धि-प्रमाणाधी सिद्ध-आत्माने अपसाप करे छे अने जे “आत्मा नहीं” कहवा “मैं नहीं” जे प्रमाणे आत्माने अपसाप करे छे ते महामूढ मनुष्य चेताना अज्ञानता अज्ञानी

टीका—

सोऽहं=भगवद्वचनेन ज्ञातापूकायस्वरूपः, ब्रवीमि=यथा भगवतः सकाशान्मया श्रुत तथा कथयामीत्यर्थः । लोकम्=अपूकायलोकं, नैव स्वयम् अभ्याख्यात्='आपो जीवा न सन्ती'-त्येव नापलपेदित्यर्थः । अभ्याख्यानं नामासदभियोगः, यथा कश्चिदचौरमुद्दिश्य वदति—चोरोऽयमिति । अत्र तु—'घृततैलादिवज्जीवानामुपकरणमात्रं जल, न तु तद् जीवो भवितुमर्हति, जीवोपकरणत्वात्' एतत्कथनमेवासदभियोगः, यतो हि तुरगादीनां जीवानामपि जीवोपकरणत्वेन दृष्टत्वादुक्तरीत्या जलस्य जीवत्वं नापलपितुं शक्यते ।

नन्वजीवानामपां जीवत्वारोपणमेवाभ्याख्यानं कुतो न भवति ? मैवम्,

टीकार्थ—भगवान् के वचनों के अनुसार अपूकाय का स्वरूप जानने वाला मैं कहता हूँ, अर्थात् मैंने भगवान् के समीप जैसा जाना है वैसा ही कहता हूँ—स्वयं अपूकायरूप लोक का अपलाप न करे अर्थात् ऐसा न कहे कि—'जल जीव नहीं है' ।

असत् आरोप को अभ्याख्यान कहते हैं, जैसे अचौर को चौर कहना । यहाँ "घी तेल आदि के समान जल, जीवों का उपकरणमात्र ही हो सकता है, वह स्वयं जीव नहीं है, क्योंकि जीव का उपकरण है" । इस प्रकार का कथन ही असत्-अभियोग है । क्यों कि घोड़ा वगैरह जीव भी जीवोपकरण के रूप में देखे जाते हैं, अतः जल के जीवपन का अपलाप नहीं किया जा सकता ।

शंका—अजीव जल में जीवत्व का आरोप करना ही अभ्याख्यान क्यों न समझा जाय ?

टीकार्थ—लगवानना वचनो प्रमाणे अपूकायनु स्वरूपं जलपुवावाणो ङु कर्तुं ङु, अर्थात् मे लगवाननी पासेथी जेवु साभण्यु छे तेवु ङ कर्तुं ङु—पोते अपूकाय ङु लोकाणे अपलाप करे नहि, अर्थात् जेवु कडे नहि के—'जल एव नथी' असत् आरोपने अभ्याख्यान कडे छे, जेभडे अचौरने चौर कडेवो अहि "घी तेल आदि प्रमाणे जल जे एवेतु उपकरणमात्रं लोभ शके छे, ते स्वयं एव नथी, कारणे के—" ते एवतु उपकरण छे, आ प्रकारतु कडेवुं—असत् (मिथ्या) अभियोग छे, कारणेके घोड़ा वगैरे एव पणु एवोपकरणता रूपमा जेवामा आवे छे तेथी जलतु एवपणु अपलाप करी शक्य नहि

शंका—अएव पाणीमा एवपणुनो आरोप करवो तेज अभ्याख्यान शा भाटे नहि समणु ?

अनुमानागमाभ्यां बीजलक्षणरूपापसम्भवाद्यार्था जीवत्वनिरूपणात् ।

यद्यप्यण्कायलोकस्याभ्यास्यान कृपौत्, तर्हि त्मनोऽपि क्षरीराधिष्ठातुरभ्यास्यानं तेन कर्तव्यं स्यात्, न च तत् समवतीत्यत आह—नयमात्मानमभ्यास्यादिति । आत्मा हि क्षरीराधिष्ठाता प्रत्यक्षयूतव्यतनाशानिति नापहोतुं शक्यः, तरमादात्मा मास्तीत्येवमात्मानं नापलपेदित्यर्थः ।

याः स्वतु मन्दधीः लोकम्=अण्कायलोकम् अभ्यास्याति=अपलापति, स प्रत्यक्षादिप्रमाणैरनिरूपितमात्मानमभ्यास्याति । यथात्मानमभ्याम्याति—‘आत्मा मास्ती’ति यद्वा—‘अहं नास्मी’ति, स महामूढः लोकम्=अण्कायलोकम्

समाधान—येसा मत कहो । अनुमान और आगमप्रमाण से तथा जीव के लक्षणों के संबंध से कुछ को जीव निरूपण किया गया है ।

यदि अण्काय लोक का अभ्यासयान किया जाय तो शरीर के अधिष्ठता आत्मा का भी अभ्यासयान करना होगा मगर वह संभव नहीं है यही बात कहते हैं—आत्मा का अभ्यासयान न करे । आत्मा शरीर का अधिष्ठता है और प्रत्यक्ष चेतना वास है अतः उस का अपलाप नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का अपलाप न करे ।

जो मन्दबुद्धि अण्कायलोक का निवेश करता है वह प्रत्यक्ष आदि प्रमाणां से सिद्ध आत्मा का अपलाप करता है । और जो ‘आत्मा नहीं है अथवा मैं नहीं हूँ’ इस तरह आत्मा का अपलाप करता है वह महामूढ मनुष्य अपने अज्ञान के बल से

समाधान—जो प्रमाणां से नदि, अनुमान अने आगम प्रमाणों से तथा अपनी लक्षणों से अण्कायलोक निरूपण करे तो उसे अण्कायलोक अभ्यासयान करवाना आवे तो शरीर का अधिष्ठता आत्मानु पण् अभ्यासयान करे पद्यो परन्तु ते संभव नहीं जे बात कहे उ—

आत्मानु अभ्यासयान करे नदि, आत्मा शरीरने अधिष्ठता से अने प्रत्यक्ष चेतनावाला से तेषी तेने अपलाप करे शक्यो नदि, जेतला भाटे आत्मा नहीं जे प्रभवे अपलाप करे नदि.

जे अह बुद्धिवाला अण्कायलोकने निवेश करे से ते प्रत्यक्ष आदि-प्रमाणां से सिद्ध-आत्माने अपलाप करे से अने जे “आत्मा नहीं” अथवा “मैं नहीं” जे प्रभवे आत्माने अपलाप करे से ते महामूढ मनुष्य पितृत्वात् आत्मानु अण्कायलोक

स्वाज्ञानवलाद्भ्याख्याति । करचरणमुखवाद्यवयवमहितशरीराधिष्ठाता मृव्यक्तोपयोगादिलक्षणः स्वात्माऽपि येनाभ्याख्यातस्तस्याव्यक्तोपयोगादिलक्षणस्यापूकायस्याभ्याख्यानं किं नु नाम दुष्करम् ? ॥ सू० ५ ॥

अपूकायलोऽस्याभ्याख्याने बहुदोषापातो भवतीति पर्यालोचयानगारा अपूकाय नोपमर्दयन्ति । दण्डिशाक्यादयस्तु नानगारा भवितुमर्हन्ति, तेषामपूकायोपमर्दरूत्वादित्याह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास, अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं

अपूकाय का अपलाप करता है । जिस ने हाथ, पैर, मुख आदि अवयवों से युक्त शरीर के अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले आत्मा का ही अपलाप कर दिया तो उस के लिए अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणों वाले अपूकाय का अपलाप करना कुछ भी कठिन नहीं है ॥ सू० ५ ॥

अपूकाय का अपलाप करने से बहुत से दोष आते हैं, ऐसा विचार कर अनगार अपूकाय की विराधना नहीं करते । दण्डी और शाक्य आदि, अनगार नहीं हो सकते, क्यों कि वे अपूकाय की विराधना करते हैं । यह बात इस सूत्र में बतलाते हैं—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अपूकाय की हिंसासे सकोच करने वालों को अलग समझो, और ‘हम अनगार हैं’ ऐसा कहने वालों को अलग समझो । जो नाना प्रकार के शब्दों से

अपूकायने अपलाप करे छे जेहे छे हाथ, पग, मुख आदि अवयवोथी युक्त, शरीरना अधिष्ठाता, तथा अत्यन्त स्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा आत्मानोअपलाप करी दीधो, तेने भाटे अस्पष्ट उपयोग आदि लक्षणोवाणा अपूकायने अपलाप करवे ते काछ कठिन नथी (सू० ५)

अपूकायने अपलाप करवाथी धरुणा होष आवे छे, जेवे विचार करीने अणुगार अपूकायनी विराधना करता नथी, दंडी अने शाक्य आदि, अणुगारो थर्ष शकता नथी कारणे के तेओ अपूकायनी विराधना करे छे ते वात आगणना सूत्रभाषतावे छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि

मूलार्थ—अपूकायनी हिंसानो सकोच करवावाणाने जूहा जणो अने “अने अणुगार छीओ” जे प्रमाणे कडेवावाणाने पणु जूहा जणो जे नाना प्रकारना शब्दोथी

बिह्वरुवेहिं सखेहिं उदयकर्मसमारम्भेण उदयसत्यं समारम्भाया अण्णे अण्णेरुवे पापे विहिससि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

सञ्जमानाः पृथक् पश्य, अनगाराः स्म इति एके मसदमानाः यदिर्म विस्य रूपैः सखैः उदककर्मसमारम्भेण, उदकसखं समारम्भाया अन्यान् अनेकरूपाम् माणान् विहिससन्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

एके=अन्ये सञ्जमानाः=अण्कायस्यारम्भे परमकरुणया द्रवितइदयतया संकोचमापद्यमाना, पृथक्=विभिन्नाः, केचित्पु प्रत्यक्षज्ञानिनोऽभिमनःपर्ययकेषु स्निः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽनगाराः सन्ति, इति पश्य । इमे सूक्ष्मबाहिराण्कायास्मकरूपे मीतास्तुता उदिग्नास्त्रिकरणत्रियेणैरण्कायारम्भपरि त्यागिनो विघ्नते तानरसोक्त्यस्पर्धः ।

अण्काय का अण्णम् करते हैं वे अण्काय के शक्तो का आरंभ करने वाले अनेक प्राणियों के प्राणा का हनन करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ— तौलकरुणा से द्रवित इदयवाके कोर्दे-कोर्दे (अनगार) अण्काय के आरंभ में संकोच करते हैं—अण्काय का आरंभ नहीं करते वे विभिन्न हैं—कोर्दे अद्विजानी कोर्दे मनःपर्ययज्ञानी और कोर्दे परोक्षज्ञानी भावितारमा अनगार हैं, उन्हें देखो । ये सूक्ष्म बाहर अण्काय का आरंभ करने में मीत हैं प्रस्त हैं उदिग्ना हैं, और तीन कारण तीन योग से अण्काय के आरंभ के त्वागी हैं, उन्हें देखो ।

अण्कायनो आरभ करे उ; ते अण्कायना सखेणो आरभ करवावाणा अनेक प्राणी जेना प्राणोना नाश करे उ (सू० ५)

टीकार्थ—तीन कइवाधी द्रवित इदयवाणा डेउ-डेउ अण्काय आरभमां कडेअ करे उ—अण्कायनो आरभ करता नहीं ते भूटा उ डेउ अण्कायनानी, डेउ अण्कायनानी अने डेउ परोक्षज्ञानी भावितात्मा अण्काय उ तेने जेजे —ते सूक्ष्म अने बाहर अण्कायनो आरभ करवाभांलय पायेअ उ अस्ति उ उदिग्ना उ अने त्रय करण त्रय योगधी अण्कायना आरभना ज्ञानी उ तेने जेजे ।

એકે=પુનરન્યે તુ વયમનગારાઃ=સાધવઃ સ્મઃ, ઇતિ સામિમાન પ્રવદમાનાઃ
'વયમેવ અપ્કાયજીવરક્ષણપરાઃ મહાવ્રતધારિણઃ' ઇતિ વ્યર્થે પ્રલપન્તો દ્રવ્યલિંગિનઃ
સન્તિ તાન્ પૃથક્=પૃથગ્ભાવેન પદ્ય ।

इमे खल्वनगाराभिमानीनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति—' यद्विमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् त्रिरूपरूपैः=विभिन्नरूपैर्नानाविधैः, द्रव्यभावरूपैः शस्त्रैः ।
तत्र द्रव्यशस्त्रं स्वकाय-परकाय-तदुभयरूपम् । स्वकायशस्त्रं-तडागाद्युदकस्य कूपा-
द्युदकम् । कूपाद्युदकस्य तडागाद्युदकं च । परकायशस्त्रं द्राक्षा-शाक-तण्डुल-पिष्ट-

और कोई-कोई लोग ' हम साधु हैं ' इस प्रकार अभिमान के साथ कहते हुए—
अर्थात् ' हम ही अप्काय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं ' इस प्रकार वृथा प्रलाप करते
हुए द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी, अनगार के गुणों में तनिक भी
प्रवृत्ति नहीं करते, और न गृहस्थ के किसी कार्य का त्याग करते हैं । यही बात आगे बतलाते
हैं—'जमिणं.' इत्यादि ।

वे नाना प्रकार के शस्त्रों से जलका आरम्भ करते हैं । शस्त्र अनेक प्रकार के हैं,
उन में से द्रव्यशस्त्र—स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप है । तालाव का जल, कूप का
जल परस्पर स्वकायशस्त्र है । इसी प्रकार कूप आदि के जल का शस्त्र—तालाव आदिका
जल है यह स्वकायशस्त्र है । दाख, शाक, चावल, आटा, दाल, चना, वाल आदि परकाय

અને કોઈ-કોઈ લોક "અમે સાધુ છીએ" આ પ્રમાણે અભિમાન સાથે કહેતા
અર્થાત્ 'અમેજ અપકાયના રક્ષક અને મહાવ્રત ધારણ કરવાવાળા છીએ' આ
પ્રમાણે વૃથા પ્રલાપ કરતા થકા દ્રવ્યલિંગી છે તેને જુદા જાણો.

અણુગાર હોવાનુ અભિમાન કરવાવાળા એ દ્રવ્યલિંગી સાથા અણુગારના શુભોમાં
જરાપણ પ્રવૃત્તિ કરતા નથી, અને ગૃહસ્થના કોઈપણ કાર્યોના ત્યાગ કરતા નથી,
તે વાત આગળ બતાવે છે—'જમિણ' ઇત્યાદિ

તે નાના પ્રકારના શસ્ત્રોથી જલનો આરમ્ભ કરે છે શસ્ત્રો અનેક પ્રકારના છે,
તેમાંથી દ્રવ્યશસ્ત્ર—સ્વકાય, પરકાય અને ઉભયકાય—રૂપ છે તલાવનુ પાણી,
કુવાનુ પાણી, પરસ્પર સ્વકાયશસ્ત્ર છે એ પ્રમાણે કુવા વગેરેના જલનુ શસ્ત્ર
તલાવ આદિનુ જલ છે, તે પણ સ્વકાયશસ્ત્ર છે. દ્રાક્ષ, ચાવલ, લોટ,

वाली-अण्कार-सङ्गादिकम् । तदुभयसङ्ग-पृथिकादिभिर्भ्रं ससम् । भावसङ्गम्=अपः
 प्रति मनोवाक्यायानां दुष्प्रविहितत्वम् । एतैः स्रष्टै उदककर्मसमारम्भेण=उदयकस्य
 कर्मसमारम्भः उदककर्मसमारम्भः=उदकमाभित्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्ध
 निबन्धनसाध्यव्यापारस्तेन, इमम्=अण्कार्यं विहितन्ति ।

अण्कार्यहिसायां प्रवृत्ताः स्रष्टु पृथिवीपनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहितन्ती
 स्यात्-‘उदकसङ्ग’-मित्यादि, उदकसङ्गम्=उदकोपमर्दकं स्रष्टुं, अस्पष्टे=हित्यते
 बनेनेति स्रष्टुं, तत् पूर्वोक्तप्रकारं इत्यमाराभेदमिन्नं समारम्भमागः=उदककार्यं प्रति
 व्यापारपन्ता, अन्यान्=अण्कार्यभिन्नान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन्-स्वावरान्,
 द्वीन्त्रियादीन् प्रसाधं विहितन्ति ।

सङ्ग है । मिट्टी आदि से मिला हुआ एक उभयकायसङ्ग है । स्रष्टु के विषय में मन, बचन
 और कामका बुद्धि प्रयोग करना भावशास्त्र है । इन सबों से अण्कार्य का समारंभ कर के
 अर्थात् अण् के आरम्भद्वारा ज्ञानावरणीय आदि आठ प्रकार के कर्मों के बंध कारणभूत साध्य
 व्यापार कर के अण्कार्य की हिंसा करते हैं ।

जो अण्कार्य की हिंसा में प्रवृत्त होते हैं व अण्कार्यरूप समस्त लोक की हिंसा करते
 हैं यह बतलाते हैं-‘उदयसत्त्वं’ इत्यादि ।

मिस्र के द्वारा हिंसा की भाव उठे शक करते हैं । शक या प्रकार के हैं-
 इत्यमारा और भावशास्त्र । मिस्र से अण्कार्य की हिंसा हो यह अण्कार्यसङ्ग है । अण्कार्य
 सङ्ग का अण्कार्य के विषय में प्रयोग करने वाले अण्कार्य से मिन अनेक पृथ्वीकाय आदि
 रथाक्तों की, तथा द्वीन्त्रिय आदि प्रस चीना की हिंसा करते हैं ।

शक, अण्कार्य, वाह आदि परकायसङ्ग से भावी आदिशी भजेत्तु अठ उल्लेखकायसङ्ग से
 अण्कार्य विषयमां मन बचन अने इत्याने बुद्धि प्रयोग करने से भावशास्त्र से जो
 शक्योशी अण्कार्यमां समारम्भ करीने, अर्थात् अण्कार्य व्यापारसाधना शानावरणीय आदि
 आठ प्रकारना अर्थात् अण्कार्य कारणभूत साध्य व्यापार करीने अण्कार्यमां हिंसा करे से

अण्कार्यमां हिंसायां से प्रवृत्त भाव से ते अण्कार्यरूप समस्त लोककी हिंसा
 करे से जो बतावे से-‘उदयसत्त्वं’ इत्यादि जेना द्वारा हिंसा करी शक्य तेने
 शक्य करे से शक्य से प्रकारना से-(१) इत्यमारा अने (२) भावशास्त्र जेनाशी
 अण्कार्यमां हिंसा भाव से अण्कार्यसङ्ग से अण्कार्यसङ्गने अण्कार्यमां विषयमां प्रयोग
 करवायाज्ज अण्कार्यशी मित अनेक पृथ्वीकाय आदि रथावरणी द्वीन्त्रिय विनेरे प्रस
 लयेनी हिंसा करे से

જગતિ સ્વલ્લ વહત્તો દ્રવ્યલિંગિનો વિધન્તે, યથા—‘વયં પશ્ચળહાત્રતધારિણઃ સર્વારમ્ભપરિત્યાગિનઃ ષટ્કાયરક્ષકા અનગારાઃ સ્મઃ’ ઇતિ વદન્તો દણ્ડિશાક્યાદયઃ સન્તિ । તત્ર કેચિદ્દેહશુદ્ધયે વહૂદકસ્નાયિનો ભવન્તિ । કેચિત્સ્વનિવાસર્થે ગૃહાદિ-નિર્માણકરણે મૃત્તિકાપાષાણચૂર્ણાદિષુ નિક્ષેપણેનાક્રાયમુપમર્દયન્તિ । કેચિત્ સ્વોદર-પૂર્ણર્થે કૃષ્યાદિષુ જલસેચનં કુર્વન્તિ । કેચિચ્ચ દેવકુલાદ્યર્થે સાવધમુપદિશન્તિ, પાર્થિવીં દેવગુર્વાદિપ્રતિમામનેકઘટજલૈઃ સ્નપયન્તિ । તે હિ સવિધિજિનપૂજાયાં, પ્રતિમાપ્રતિષ્ઠાપને વહુવિધસચિત્તજલૈઃ પ્રતિમાસ્નપને ચ મહાભીમભવસમુદ્રાદાત્મનાઃ સમુદ્ધારો ભવતીતિ મન્યન્તે, ઉપદિશન્તિ ચ—

સસાર મેં વહુતસે દ્રવ્યલિંગી હૈ । જૈસે—‘હમ પચમહાત્રતધારી, સવ આરમ્ભ કે ત્યાગી, ઓર ષટ્કાય કે રક્ષક અનગાર હૈં’ એસા કહને વાલે દણ્ડી તથા શાક્ય આદિ હૈં । ઇન મેં કોઈ—કોઈ દેહ કો શુદ્ધિ કે લિપ્ વહુત—સે જલ સે સ્નાન કરને વાલે હૈં । કોઈ અપને રહને કે ઘાસ્તે મકાન આદિ બનાને કે લિપ્ મિટ્ટી કકર ઓર ચૂને વગૈરહ મેં મિલાકર જલકાય કી હિંસા કરતે હૈ । કોઈ અપના પેટ ભરને લિપ્ કૃષિ (લેતી) મેં જલ સીંચતે હૈં । કોઈ દેવકુલાદિકે લિપ્ સાવધ ઉપદેશ કરતે હૈ । કોઈ દેવ ઇવ ગુરુ કી પાર્થિવ પ્રતિમા કો વહુત સે—ઘડે પાની સે સ્નાન કરાતે હૈં । વે વિધિપૂર્વક જિનપૂજા મેં ઓર પ્રતિમા કો પ્રતિષ્ઠા મેં વહુત પ્રકાર કે સચિત્ત જલ સે પ્રતિમા કે સ્નાન મેં, મહા-ભયકર ભવસાગર સે આત્મા કા ઉદ્ધાર હોના માનતે હૈં ઓર ઉપદેશ દેતે હૈ—

સંસારમા બહુ સખ્યામા દ્રવ્યલિંગી છે જેમ કે—‘અમે પચમહાત્રતધારી, સર્વ પ્રકારના આરભના ત્યાગી અને ષટ્કાયના રક્ષક અણુગાર છીએ’ આ પ્રમાણે કહેવાવાળા ઠડી તથા શાક્ય આદિ છે, તેમાથી કેટલાક તો દેહની શુદ્ધિ માટે ઘણા જ જલથી સ્નાન કરવાવાળા હોય છે કેટલાક તો પોતાને રહેવા માટે મકાન આદિ બનાવવા માટે માટી કાકરા અને ચુના વગેરેમા મેળવીને જલકાયની હિંસા કરે છે. કોઈ—કોઈ પોતાનુ પેટ ભરવા માટે ખેતીમા જલ સીંચે છે કોઈ દેવકુલ વગેરે માટે સાવધનો ઉપદેશ આપે છે, અને કોઈ દેવ અને ચુરની પાર્થિવ પ્રતિમાને ઘણા જ—ઘણા પાણીથી સ્નાન કરાવે છે તે વિધિપૂર્વક જિનપૂજામા અને પ્રતિષ્ઠામા ઘણાં જ પ્રકારના સચિત્ત જલથી પ્રતિમાને સ્નાન કરાવામા મહાભયકર ભવસાગરથી આત્મા-નો ઉદ્ધાર થાય છે, એવું માને છે. અને ઉપદેશ આપે છે.—

“सम्पद् स्नासोचिते काशे, संज्ञाप्य च जिनाम् क्रमात् ।
पुष्पाहारस्तुतिमिश्र, पूजयेदिति तद्विधिः” ॥ १ ॥ (धर्मसंग्रहः)

“कुसुमकस्तयपूर्वेहि, वीजपत्रासेहि सुंदरफलेहि ।
पूजा पपसस्त्रिहेहि, अट्टविहा तस्त कायम्बा ” ॥ १ ॥

(वर्षेनष्टद्विः सटीका १ तत्त्व)

छाया—“कुसुमाद्यतपूपै-शीपकवासैः सुन्दरफलेः ।

पूजा घृतसस्त्रिहे, -रष्टविधा तस्य कर्त्तव्या ॥ १ ॥” इति ।

“विहिता उ कीरमाणा, सम्भ श्विय फलपर्षा मवे चेहा ।

इजलेक्षया वि कि पुन, भिणपूया उमयलोगहिया ” ॥ १ ॥

(पञ्चाशक ४ विव)

छाया—विधिना तु क्रियमाणा, सर्वां चैन फलवती मवेक्षेणा ।

इलौकिकाऽपि कि पुन, -भिणपूजा-उमयलोकहिता ॥ १ ॥ इति ॥

तत्रैव पूजामतिष्ठाविषु अष्ठापोपमर्दनरूपे शास्त्रनिषिद्धे सावधकार्ये मद्रस्याऽपि

द्रव्यसिद्धिनो दण्डिनः क्षात्र्यादयश्च स्वात्मानमनगारमेव मन्यन्ते ।

“उचित काल में सम्पद् प्रकार से स्नान कर के और कम से त्रिनप्रतिमा को स्नान कर के पुष्प, अहार और स्तुतिसे पूजा करे । यह पूजा की विधि है” । (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक की हुई समस्त इस श्लोकसंदर्भों चन्द्रार्थें भी सफळ होती है तो त्रिनेन्द्र मयपत्र की पूजा का तो कहना ही क्या है, अर्थात् वह दोनों श्लोकों में द्धितकारी है” ।

(पठशाशक ४ विव)

इसी प्रकार पूजा प्रतिष्ठा आदि अष्ठापर की हिसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्य में प्रवृत्ति करके भी द्रव्यसिद्धी बड़ी शक्य आदि अपन आप को अनगार ही मानते हैं ।

छवित कालमें सम्पद्प्रकारशी स्नान करीने जने कभषी त्रिनप्रतिमाने स्नान करीने, पुष्प आहार जने स्तुतिशी पूजा करे, आ प्रभाक्षे पूजनी विधि से (धर्मसंग्रह)

“विधिपूर्वक करवामां आवेती दोकसजषी अमस्त वेष्टाणे । (किंवाणे) क्यु सङ्ग याव उ तो त्रिनेन्द्र अमपाननी पूजनु तो कहेण न शु ? आ तो जने दोकमां द्विताशी उ ॥ १ ॥ (पञ्चाशक-४-विव)

जे प्रभाक्षे पूजा प्रतिष्ठा आदि अष्ठापरनी द्विसारूप शास्त्रनिषिद्ध सावध कार्यमां प्रवृत्ति करीने क्यु द्रव्यसिद्धी बड़ी, शक्य आदि पोत-पोताने अजुगारक माने उ

ये उदरशस्त्रं प्रयुज्जानाः पद्भजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव विहिंसन्ति, ते द्रव्य-
लिङ्गिनो नरकनिगोदादिनानाविधदुःखज्वालमालाकुले दीर्घसंसारे परिभ्रमन्ति,
उक्तञ्च—

“ सावज्जपूयकारी, सावज्जं उवदिसत्ति जे अण्ण ।

आउक्कायवहाओ, भमंत्ति ते दीहसंसारे ॥ १ ॥ ” ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह ‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवया परिण्णा पवेइया । इमस्स चव
जीवियस्स परिवंदण—माणण—पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से

जो लोग जलशस्त्र का प्रयोग करते हुए षट्काय के समस्त जीवों की विराधना करते हैं वे द्रव्यलिङ्गी नरक आदि के नाना प्रकारके दु खों की ज्वालाओं के समूह से व्याप्त लम्बे संसार में चारों ओर चक्कर लगाते हैं । कहा भी है—

“ जो पुरुष ज्ञानरहित होकर सावध का उपदेश देते हैं वे, और सावध पूजा करने वाले हैं वे अष्काय की हिंसा से दीर्घ संसार में भ्रमण करते हैं ” ॥ सू. ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘ तत्थ ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने परिज्ञा का प्रतिबोध दिया है । जो इस जीवन के सुख के लिए अपनी वन्दना, मानना, पूजा, जन्म—मरण से छुटकारा, तथा दु खों का नाश

के लोક જલશસ્ત્રનો પ્રયોગ કરીને ષટ્કાયના તમામ જીવોની વિરાધના કરે છે તે દ્રવ્યલિંગી, નરક નિગોદ આદિના નાના પ્રકારના દુ ખોની જ્વાલાઓના સમૂહથી વ્યાપ્ત લાખા સંસારમાં ચારેય તરફ ચક્કર લગાવે છે. કહ્યું છે કે.—

“ જે પુરુષ જ્ઞાનરહિત થઈને સાવધનો ઉપદેશ આપે છે તે, અને સાવધ પૂજા કરવાવાળા દીર્ઘ—લાખા સંસારમાં ભ્રમણ કરે છે. ” ॥ ૧ ॥ (સૂ. ૬)

સૂધર્મા સ્વામી જમ્બૂ સ્વામીને કહે છે—‘ તત્થ ’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાને પરિજ્ઞાનો બોધ આપ્યો છે જે આ જીવનના સુખ માટે પોતાની વંદના, માન્યતા, પૂજા, જન્મ—મરણથી મુક્તિ તથા દુ ખોના નિવારણ માટે; તે

समयेष उदयसत्यं समारम्भ, अथेहि उदयसत्यं समारम्भावेऽ, अन्ये वा उदयसत्य
समारम्भते समनुमान्, तं से अहिपाप तं से अबोधीप ॥ सू. ७ ॥

छाया—

तत्र सत्त्व मगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव भीषितस्य परिषन्दम-मानम-
पूजनाय आतिमरबमोक्षनाय दुःस्वप्रतिघातहेतुं स स्वयमेवोदकशस्त्रं समारम्भते, अन्यै-
रुदकशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा उदकशस्त्रं समारम्भमानान् समनुजानाति,
तत्स्याहिताय तत्स्याबोधये ॥ सू. ७ ॥

टीका—

तत्र=अर्थायसमारम्भे मगवता=भीमहावीरेष परिज्ञा=सम्यग्बोधः सत्त्व
प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुच्छेदार्थं जीवेन परिज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति
मगवता प्रतिबोधितमिति भावः । इ-प्रत्यावृत्त-मेदात् परिज्ञाया द्वैविध्यं, द्विविधा
यास्तस्या लक्षणं च प्रागभिहितम् ।

करने के निमित्त वह स्वयं ही उदकशस्त्र का भारंभ करता है, दूसरों से उदकशस्त्र का भारंभ
करता है, और उदकशस्त्र का भारंभ करने वालों की अनुमोदना करता है । वह उस के
अहित के लिए है, वह उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—अर्थाय के समारंभ के विषय में मगवान् श्री महावीरने सम्यग् बोध का
उपदेश दिया है । मगवान्ने कहा है कि-कर्मबन्ध का मारा करने के लिए भीम को परिज्ञा
का आश्रय आवश्यक होगा चाहिए । इपरिज्ञा और प्रत्यावृत्तानपरिज्ञा इस प्रकार परिज्ञा के दो
भेद हैं । दोनों के लक्षण पहले ही कह चुके हैं ।

शितेन अक्षयशनेन आरभ करे छे, नील पक्षे अक्षयशनेन आरभ करावे छे अने
अक्षयशनेन आरभ कस्यावाणानी अनुभितना करे छे ते शिताना अहित भाटे छे
ते तेनी अविधिने भाटे छे. (सू. ७)

टीकार्थ—अर्थायना समारम्भना विषयमां अजवान् श्री महावीरे सम्यग्
बोधना उपदेश आप्णो छे अजवाने कहु छे इ-कर्मबन्धना नाश कस्या भाटे उपदेश
परिज्ञाने आश्रय जरूरे होवे अथवे शपरिज्ञा अने प्रत्यावृत्तानपरिज्ञा, आ प्रभावे
परिज्ञाना से होत छे अनेना अक्षय शप्रभवे कहेवामां आप्णो छे

ઉપભોગદ્વાર—

જીવઃ કસ્મૈ પ્રયોજનાયાપ્કાયજીવં પ્રતિ સાવધવ્યાપારં કરોતી ?—ત્યાહ—
 'અસ્ય ચૈવે'—ત્યાદિ । અસ્યૈવ ક્ષણમહ્નુરસ્ય જીવિતસ્ય જીવનસ્યાર્થે—સુખાર્થં સ્નાન-પાન
 -ધાવન-સેક-યાનપાત્રો-હ્રુપ-ગમનાગમનાદર્થમ્, તથા પરિવન્દન-માનન-પૂજનાય-
 પરિવન્દનં=પ્રશંસા, તદર્થં, યથા-જલચન્દ્રણ શીકરવૃષ્ટ્યાદૌ, 'ફુહારા' હિતિ માપાયમ્ ।
 માનનં=જન્મસત્કારઃ, તદર્થં, યથા-મલાપકર્ષસ્નાનવસ્ત્રમલાપકર્ષણાદૌ । પૂજનં=વસ્ત્રરત્ના-
 દિપુરસ્કારલાભરતદર્થં, યથા-દેવપ્રતિમાદિસ્નપનપૂજનાદૌ । જાત્તિમરણમોચનાય તીર્થ-
 સ્નાનાદૌઃ । દુઃખપ્રતિઘાતહેતુ=રોગાદિશ્મનાર્થં સ્નાનપાનાદૌ, સ સ્વયમેવોદકશક્તિ
 સમારમ્ભતે=વ્યાપારયતિ । અન્યૈર્વા ઉદકશક્તિ સમારમ્ભયતિ=ઉદ્યોજયતિ । અન્યાન

ઉપભોગદ્વાર—

જીવ કિસ પ્રયોજન સે અપ્કાય કે જીવોં કે પ્રતિ સાવધ વ્યાપાર કરતા હૈ ? ઈસ કા
 ઉત્તર કહતે હૈ—ઈસી ક્ષણમહ્નુર જીવન કે સુખ કે લિપ્, અર્થાત્ સ્નાન, પાન, ધોના, સૌંચના,
 જહાજ, નૌકા કા ગમનાગમન, ઈત્યાદિ કે લિપ્ । પ્રશંસાકે લિપ્, જૈસે—જલ સે ફૌહારા
 ચલાને આદિ મેં, લોગોં સે સત્કાર પાને કે લિપ્, જૈસે—સ્નાન ઓર વસ્ત્ર આદિ કા મૈલ દૂર
 કરને આદિ મેં, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન આદિ કા પુરસ્કાર પાને કે લિપ્, જૈસે દેવપ્રતિમા
 આદિ કે સ્નપન ઓર પૂજન આદિ મેં, જન્મ મરણ સે મુક્ત હોને કે લિપ્ તીર્થસ્નાન આદિ
 મેં । દુઃખોં કા નિરોધ કરને કે હેતુ, અર્થાત્ રોગ આદિ કો શાન્ત કરને લિપ્
 સ્નાન-પાન આદિ મેં વહ સ્વયં અપ્કાય કે વિરાધક દ્રવ્ય ઓર ભાવશક્તિ કા આરમ્ભ કરતા

ઉપભોગદ્વાર—

શુભ કયા પ્રયોજનથી અપ્કાયના શુભો પ્રતિ સાવધ વ્યાપાર કરે છે ? તેનો ઉત્તર
 કહે છે કે—આ ક્ષણમહ્નુર શુભનના સુખ માટે, અર્થાત્, સ્નાન, પાન ધોવું, પાણી સૌંચવું,
 વહાણ આગબોટમાં બંધવું આવવું, ઇત્યાદિ માટે પ્રથમ સાને માટે, જેમકે—નળમાથી કુવારા ચલા
 વવા આદિમા, લોકોથી સત્કાર પામવા માટે જેમકે—સ્નાન કરવામા અને વસ્ત્ર વગેરેનો મેલ
 દૂર કરવામા, પૂજા અર્થાત્ વસ્ત્ર, રત્ન, આદિનો પુરસ્કાર મેળવવા માટે, જેમ-દેવપ્રતિમા આદિના
 સ્નાન અને પૂજન વગેરેમા, જન્મ-મરણથી મુક્ત થવા માટે, જેમ-તીર્થસ્નાન આદિમા,
 હું ખોનો નિરોધ કરવાના હેતુથી, અર્થાત્—રોગ વગેરેની શાન્તિ માટે સ્નાન-પાન વગેરેમાં તે
 પોતે અપ્કાયના વિરાધક દ્રવ્ય અને ભાવશક્તિનો આરમ્ભ કરે છે, બીજા પાસે અપ્કાયશક્તિનો

वा उदकशुद्धं समारममाणान् समनुबानाति—अनुमोदयति । तत्—अष्कायसमारम्भेण
 तस्य—अष्कायसमारम्भेण कुर्वतः कारयितुं अनुमोदयितुश्च महिताय भवति, तथा तत्
 तस्य अबोधये—द्विनधर्मप्राप्त्यभावाय भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थक्षेत्रादीनां समीपे अष्कायजीवस्वरूपं ज्ञातं स एवं विज्ञान्यतीत्याह—
 'से तं संपुञ्जमाणे' इत्यादि ।

मूत्रम्—

से त संपुञ्जमाणे आयाणीयं समुद्गाय सोषा मग्नजो आणगारार्यं वा भंतिप,
 इमेमेसिं गाय मग्न—एस स्वच्छ गंधे, एस स्वस्तु मोहे, एस स्वस्तु मारे, एस स्वस्तु गरप,
 इत्थं गवियं सोप जमिणं विन्ध्यरूचेर्हि सत्त्वेर्हि उदयकम्मसमारम्भेण उदयसत्थं
 समारंममाणे अध्ये अणेगरूचे पाणे विहिंसइ ॥ सू० ८ ॥

है इसरो से अष्कायजो का समारंम करवाता है और अष्कायजो का धारंम करने वाले
 इसरो का अनुमोदन करता है । यह अष्काय का धारंम धारंम करने वाले, करने वाले
 और अनुमोदन करने वाले के अहित के स्थि होता है और अबोधि—बिनधर्म की अश्रुति के
 स्थि होता है । सू. ७ ॥

किसने तीर्थक्षेत्र आदि के समिकट अष्काय के धर्मों का स्वरूप जान लिया है, वह
 इस प्रकार जानता है—'से तं' इत्यादि ।

मूलार्थ—मग्नान और अनगारों से सुनकर अष्काय का स्वरूप जानता हुआ
 धर्म धारित अजीकार करके कोई—कोई इस प्रकार जानता है—यह मंत्र है यह मोह है, यह
 मार (पशु) है, यह नरक है । गुद पुरुष नाना प्रकार के शक्तों से अश्रु का धारंम करके
 अश्रु का समारंम करता हुआ अश्रु अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है । सू. ८ ॥

अथ एव कथावे छे अने अष्कायजोने आर ए कथावाणने अनुमोदन आपि छे ते
 अष्कायने आर ए कथानने कथनानने अने कथावाणने अनुमोदन आपवाणने
 जे सीने भाटे अहित करनार छे अने अबोधि—बिनधर्मनी अश्रुति भाटे छेय छे (सू ७)

बेले तीर्थक्षेत्र आदिना समीपमां अष्कायना लोवातुं स्वरूप ज्ञाती वीधुं छे ते
 आ प्रभावे ज्ञेय छे— से तं इत्यादि ।

मूलार्थ—अजवान अथवा अश्रुधारे पासोधी सांज्योने अष्कायना स्वरूपने
 अनुमोदन लोवा धारित अजीकार करीने ठाई—ठोस आ प्रभावे ज्ञेय छे—आ ज्ञेय
 छे, आ मोह छे आ भ्रम छे आ नरक छे अश्रु पुरुष नाना प्रकारना (अनेक
 प्रकारना) शक्तोधी अश्रुने आर ए करीने, अश्रुजोने आर ए करता यहा वीध अनेक
 प्रकारना प्राणीजोनी हिंसा करे छे (सू. ८)

उपभोगद्वारम्—

जीवः कस्मै प्रयोजनायापकायजीवं प्रति सावद्यव्यापारं करोती ?—त्याह—
 'अस्य चैवे'—त्यादि। अस्यैव क्षणमङ्गुरस्य जीवितस्य जीवनस्यार्थे—सुखार्थं स्नान-पान
 -धावन-सेक-यानपात्रो-हुप-गमनागमनाद्यर्थम्, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय-
 परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा-जलयन्त्रण शीकरवृष्ट्यादौ, 'फुहारा' इति भाषायाम्।
 माननं=जनसत्कारः, तदर्थं, यथा-मलापकर्षस्नानवस्त्रमलापकर्षणादौ। पूजन=वस्त्रत्ना-
 दिपुरस्कारलाभरतदर्थं, यथा-देवप्रतिमादिस्नपनपूजनादौ। जातिमरणमोचनाय तीर्थ-
 स्नानादौः। दुःखप्रतिघातहेतु=रोगादिशमनार्थं स्नानपानादौ, स स्वयमेवोदकशस्त्रं
 समारभते=व्यापारयति। अन्यैर्वा उदकशस्त्रं समारम्भयति=उद्योजयति। अन्यान्

उपभोगद्वारम्—

जीव किस प्रयोजन से अप्काय के जीवों के प्रति सावद्य व्यापार करता है ? इस का
 उत्तर कहते हैं—इसी क्षणमङ्गुर जीवन के सुख के लिए, अर्थात् स्नान, पान, घोना, सींचना,
 जहाज, नौका का गमनागमन, इत्यादि के लिए। प्रशंसाके लिए, जैसे—जल से फौहारा
 चलाने आदि में, लोगों से सत्कार पाने के लिए, जैसे—स्नान और वस्त्र आदि का मेल दूर
 करने आदि में, पूजा अर्थात् वस्त्र, रत्न आदि का पुरस्कार पाने के लिए, जैसे देवप्रतिमा
 आदि के स्नपन और पूजन आदि में, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए तीर्थस्नान आदि
 में। दुःखों का निरोध करने के हेतु, अर्थात् रोग आदि को शान्त करने लिए
 स्नान-पान आदि में वह स्वयं अप्काय के विराधक द्रव्य और भावशस्त्र का आरम करता

उपभोगद्वारम्—

एव कथा प्रयोजनथी अप्कायना एवो प्रति सावद्य व्यापार करे छे ? तेना उत्तर
 कहे छे के—आ क्षणमङ्गुर एवनना सुभ भाटे, अर्थात्, स्नान, पान धोवुं, पाणी सींचवुं,
 वहाणु आगणोटमां वुं आववुं, इत्यादि भाटे प्रथ साने भाटे, जेमके—नणभाथी कुवारा यला
 ववा आदिमा, लोकेशी सत्कार पाभवा भाटे जेमके—स्नान करवाभा अने वस्त्र वगेरेने मेल
 हूर करवाभा, पूज अर्थात् वस्त्र, रत्न, आदिनी पुरस्कार भेणववा भाटे, जेम-देवप्रतिमा आदिना
 स्नान अने पूजन वगेरेमा, जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे, जेम-तीर्थस्नान आदिमा,
 दु जोना निरोध करवाना हेतुथी, अर्थात्—रोग वगेरेनी शान्ति भाटे स्नान-पान वगेरेमां ते
 पोते अप्कायना विराधक द्रव्य अने भावशस्त्रने आरम करे छे, भीण पासे अप्कायशस्त्रने।

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः स्वस्तु=निश्चयेन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=वध्यतःनेनेति ग्रन्थः
 कष्टविषकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमप्रेऽपि
 बोध्यम् । तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्ययाः विपरीतज्ञानरूपः । तथा
 एष एव मारः=मरणं निगोदादिमस्त्ररूपः । तथा एष स्वस्तु नरकाः=नारकजीवानां
 दशविधपातनास्यानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोर दुःख-
 फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमथ लोकः=अज्ञानबन्धवर्ती जीवः गूढः=स्मिन्नुस्ति । यदा-
 गूढः=विषयमोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमथ=कर्मबन्ध-माह-
 मरण-नरकार्यमेष, भवति ।

यिस के द्वारा गूढा ज्ञान-बांधा ज्ञान यह प्रबंध कहलता है । यह उदकशस्त्र का
 समारंभ मंत्र है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कर्म का उपचार करके
 उदकशस्त्र के समारंभ को प्रबंध कहा है । वास्तव में यह प्रबंध (कर्मबंध) का कारण है ।
 भागे भी इसी प्रकार समझना चाहिये ।

यह अण्डशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोद
 ज्ञान के मरणरूप है । यह मरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनावासी इस प्रकार को
 वेदबन्धों का स्थान है । कर्मबंध मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त
 कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के छिप गूढ होते हैं । अथवा गूढ अर्थात् मोगा
 में आसक्त, संसारी जीव इसी के छिप अर्थात् कर्मबंध मोह, मरण तथा नरक के छिप ही
 प्रवृत्ति करते हैं ।

तेना द्वारा जूधी शक्य-अधी शक्य ते अथ कहेवाय छे जे उदक-जल
 शस्त्रेना समारंभ अथ छे अर्थात् आठ कर्मिना अथ छे अर्थात् आठवर्ग कर्मिना उपचार
 करिनि उदकशस्त्रेना समारंभने अथ कहे छे वास्तविक रीति ते अथ (कर्मबंध)नु आठव
 छे अण्कार पञ्च आ प्रथमे समस्तु बोधके ।

आ अण्डशस्त्रेना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छे, तथा आ मार-निगोद
 ज्ञानेना मरणरूप छे आ नरक छे-अर्थात् नारकी जीवोने यथावन्ती इस प्रकारकी
 वेदनाकेषु स्थान छे कर्मबंध मोह मरण अने नरक रूप घोर दुःखरूप इवने अथ
 करिनि पञ्च अज्ञानी लोक इरीने तेना आटे गूढ-आसक्त ज्ञान छे अथवा गूढ
 अर्थात् मोहोर्मां आसक्त संसारी अथ जे आटे अर्थात् कर्मबंध, मोह मरण
 तथा नरक आटे अ प्रवृत्ति करे छे ।

छाया—

स तत् संवृध्यमान आदानीय समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां
वाऽन्तिके, इहैकेपां, ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः एष खलु मारः,
एष खलु नरकः, इत्यर्थं गुदो लोकः यदिमं विरूपरूपैः श्रमैरुदककर्मसमारम्भेण,
उदकशस्त्र समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिनस्ति ॥ मू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम्,
अन्तिके=समीपे, श्रुत्वा=उपदेश निश्चय, आदानीयम्=उपादेयं, सर्वसावद्ययोगपरि-
त्यागरूपं चारित्रं, समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति, स तत्=अपकायसमारम्भणं, संवृध्य-
मानः=अहितावोधिजनरूत्वेन विज्ञाता भवति ॥

स हि—एवं विचारयति इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञात-
सम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्-
क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जा पुरुष तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थों के
समीप उपदेश सुनकर सर्वसावद्य व्यापार का त्यागरूप चारित्र अंगीकार करके विचरता
है, वह अपकाय के आरम्भ को समझता है—उसे अहितकर और अवोधिजनक जानता है ।
वह इस प्रकार विचार करता है—इस मनुष्य लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से
सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करनेवाले किन्हीं आत्मार्थियों को ही विदित होता है कि—‘यह
ग्रन्थ है’ इत्यादि ।

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थंकर भगवान तथा तेना अनुयायी श्रमणनिर्ग्रन्थीना समीप
उपदेश साधनीने सर्व सावद्यव्यापारना त्यागरूप चारित्र अंगीकार करीने विचरे छे, ते
अपकायना आरम्भेने समझे छे—तेने अहितकर अने अवोधिजनक जान्छे छे, ते आ प्रमाणे
विचार करे छे छे—आ मनुष्य लोकमा श्रमण-निर्ग्रन्थीना उपदेशशी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य
प्राप्त करवावाणा केछि पण आत्मार्थीयोना जान्छुवामा होय छे छे—‘आ अथ छे इत्यादि

एषः=उदकशस्त्रसमारम्भः स्तुः=निषयन, ग्रन्थः=ग्रथ्यते=बध्पते=जेनेति ग्रन्थ' अष्टविधकर्मवच' । कारणे कार्योपचारादुदकशस्त्रसमारम्भस्य ग्रन्थरूपत्वम्, एगमश्रेयसि बोध्यम् । तथा एषः उदकशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्ययः निपरीतज्ञानरूपः । तथा एष एव मारः=मरणं निगोवादिमरणरूपः । तथा एष स्वच्छ नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् । इत्यर्थम्=एतदर्थं कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोर दुःख-फलं प्राप्य पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः गूढः=स्निग्धुरस्ति । यद्वा-गूढः=निषयमोगासक्तः, लोकः संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमपि=कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपमेव, प्रवर्तते ।

बिंद के द्वारा गूढा बाय-बांधा बाय यह प्रबंध कहलता है । यह उदकशस्त्र का समारंभ प्रबंध है, अर्थात् आठ कर्मों का बंध है । यहाँ कारण में कार्य का उपचार करके उदकशस्त्र के समारंभ को प्रबंध कहा है । वास्तव में यह प्रबंध (कर्मबन्ध) का कारण है । बाधो भी इसी प्रकार समझना चाहिए ।

यह उदकशस्त्र का समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान है । तथा यह मार-निगोह अग्नि के मरणरूप है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को होनेवाली दस प्रकार की वेदनाओं का स्थान है । कर्मबन्ध मोह, मरण, और नरकरूप घोर दुःखरूप फल को प्राप्त कर के भी अज्ञानी लोग फिर इसी के स्निग्ध गूढ होते हैं । अथवा गूढ अर्थात् मोगों में आसक्त संसारी जीव इसी के स्निग्ध, अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण तथा नरक के स्निग्ध ही प्रवृत्ति करते हैं ।

जेना द्वारा जूही शक्य-जाधी शक्य ते अथ कहेवाच छे जे उदक-अथ शक्येना समारंभ अथ छे अर्थात् आठ कर्मोना अथ छे अर्द्धि कारखुर्मा अर्थिना उपचार करीने उदकशक्यना समारंभने अथ कहे छे वास्तविक रीति ते अथ (कर्मबन्ध)नु कारखु छे अजग पखु जा प्रभावे समजनु लेछेजे.

जा अथशक्येना समारंभ मोह-विपरीत ज्ञान छे तथा जा मार-निगोह वजरेना मरणरूप छे जा नरक छे-अर्थात् नारकी लोकोने अथावाणी इस प्रकारणी वेदनालेखु स्थान छे कर्मबन्ध, मोह मरण जने नरक रूप धारणरूपरूप इतने प्राप्त करिनि पखु अज्ञानी लोक करीने तेना भाटे बुद्धि-आसक्त बाध छे अथवा जूह अर्थात् सोपेना आसक्त संसारी लव जे भाटे अर्थात् कर्मबन्ध, मोह, मरण तथा नरक भाटे अ प्रवृत्ति करे छे

यद्यपि विषयभोगासक्तो लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूजनार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चापकायशस्त्रसमारम्भं करोति, तथापि तत्फलं ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, अत उदककर्मसमारम्भस्य तदेव फलं भवतीति भावः ।

लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव लिप्सुरस्ति, तदर्थमेव च प्रवर्तते, इति यदुक्तं तत्र हेतुमाह—' यदिमम्. ' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, गृद्धो लोकः, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=स्वकाय-परकायतदुभयरूपैः, उदककर्मसमारम्भेण=अपकायमुद्दिश्याष्टविधकर्मसमुत्पादक-सावधव्यापारेण, इमम्=अपकाय, बिहिनस्ति=पाणरहित करोति । तथा-उदक-

तात्पर्यं यह है कि विषयभोगों में आसक्त जीव, शरीर आदि का पोषण करने के लिए, बन्दन-मान-पूजन के लिए, जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए तथा दुःखों का नाश करने के लिए, अपकाय के शस्त्र का आरम्भ करता है मगर उस का फल-ग्रन्थ, मोह, मरण और नरक-रूप ही पाता है । अत एव जलकर्मसमारम्भ का वही फल होता है ।

लोक बार-बार कर्मबन्ध आदि के लिए ही इच्छुक होता है, और उसी के लिए प्रवृत्ति करता है, यह बात पहले कही है । यहाँ उस का कारण बतलाते हैं—

क्यों कि गृद्धजन नाना प्रकार के स्वकाय, परकाय और उभयकायरूप शस्त्रों से, उदककर्म के आरम्भद्वारा, अपकायसबन्धी अष्टकर्म-जनक सावधव्यापारद्वारा अपकाय की हिंसा करता है । तथा जलकाय के विराधक स्वकाय, परकाय और

तात्पर्यं ये छे के-विषयभोगोभा आसक्त एव शरीर-आदिना पोषण करवा भाटे वन्दन, मान, पूजा भाटे, जन्म मरणथी मुक्त थवा भाटे तथा दुःखोना नाश करवा भाटे अपकायना शस्त्रोना आरम्भ करे छे, परन्तु तेनु कृण अथ, मोह, मरण अने नरक रूपज पावे छे, ये भाटे जलकर्मसमारम्भनु कृण तेज होय छे

लोक बार-बार कर्मबन्ध वगेरे भाटे इच्छा करता होय छे, अने ते भाटे प्रवृत्ति करे छे ये वात प्रथम कही छे अर्द्धि तेनु कारण बतावे छे केमके-गृद्ध मायस नाना प्रकारना स्वकाय, परकाय अने उभयकाय रूप शस्त्रोथी उदककर्मना आरम्भद्वारा अपकायना सबन्धी आठ कर्मजनक सावधव्यापारद्वारा अपकायनी हिंसा करे छे तथा

कृत्स्नम्-अण्कायमर्दकं कृत्स्नं स्वकायपरकायतदुभयस्य, समारममाणः=अप्यापास्यन्
अप्यान्=द्वयिबीकापादीन्, अनेकरूपान्=प्रसान् स्यादर्थम् प्राणान्=वाणिनी
विहितस्ति ।

अण्कायहिंसया पद्भजीवनिकायरूपं लोकं सर्वमेव प्रविहन्तीति पोरतरं दुरितं
कृत्स्नं पुनः पुनः ग्रन्थादिनरकान्तं प्राप्यापि उदर्धमेव प्रवर्षते न पुनर्मोक्षायेति
मात्र ॥ सू० ८ ॥

पुनरपि सुपर्मास्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—‘से वेमि’ इत्यादि ।

॥ मूस्म् ॥

से वेमि संति पाषा उदकनिस्सिपा जीवा अणेगे ॥ सू० ९ ॥

॥ छाया ॥

स ब्रवीमि सन्ति प्राप्ता उदकनिभिता जीवा अनेके ॥ सू० ९ ॥

उभयकाय रूप शब्दों का आरंभ करता हुआ अन्यकाय-स्वावर और प्रथम जीवा को भी हिंसा
करता है, वह अण्कायकी हिंसाशय पद्भजीवनिकायरूप समस्त लोक की हिंसा करता है,
अथ अत्यन्त घोर पाप करता हुआ पुनः पुनः प्रथम से लेकर नरकलोक के दुष्कर्मको पाकरके भी
उसके के सिद्ध प्रवृत्ति करता है-मोक्ष के सिद्ध नहीं ॥ सू० ८ ॥

सुपर्मा स्वामी फिर जम्बू स्वामी से कहते हैं-‘से वेमि’ इत्यादि ।

मूक्षार्थ-मैं कहता हूँ अण्काय के आभित प्राणी हैं और अन्य अनेक (दीन्द्रिय
आदि) जीव भी हैं ॥ सू० ९ ॥

अण्कायना विनाशक स्वकाय, परकाय अने उभयकाय रूप शब्दोंको आरंभ करीने
अन्यकाय-स्वावर अने तत्र सुवेगनी पक्षु विद्या करे छे ते अण्कायनी विद्याद्वारा
पद्भजीवनिकायरूप समस्त लोकनी विद्या करे छे तेषी अत्यन्त घोर पाप करता भडा
हरी हरी अथ (कर्मलक्ष)भी लघने नरक सुधीना आक्ष-दुष्कर्मकारक इजने पागीने
पक्षु ते भटे भवति करे छे मोक्ष भटे करता नथी. (सू० ८)

सुपर्मा स्वामी हरीभी जम्बू स्वामीने कहे छे-‘से वेमि’ इत्यादि.

मूक्षार्थ-मैं कहूँ छे-अण्कायना आभित प्राणी छे अने अन्य अनेक (दीन्द्रिय
आदि) जीव पक्षु छे. (सू० ९)

ટીકા—

સઃ=વિજ્ઞાતાપ્કાયસ્વરૂપોઽહં બ્રવીમિ=યથા સાક્ષાદ્ ભગવતઃ સકાશાન્મયા શ્રુતં તથા કથયામીત્યર્થઃ । ઉદકનિશ્રિતાઃ જલરૂપ કાયમાશ્રિત્ય વર્તમાનાઃ અપ્કાયિકા इत्यર્થઃ પ્રાણાઃ=પ્રાણિનઃ સન્તિ । તથાઽનેકે=દ્વીન્દ્રિયાદયઃ નાનાવિધાઃ જીવા નીલઙ્ગુ-પૂતરક-મત્સ્યાદયઃ ઉદકનિશ્રિતા'='ઉદકાવસ્થિતાઃ સન્તિ । દેહલી-દીપન્યાયેનોદકનિશ્રિતા इत्यस्योभयत्रान्वय , अनेनोदकं सचित्तमनेकजीवाधिष्ठितं चेति प्रतिबोधितम् ।

ટીકાર્થ—અપ્કાય કે સ્વરૂપ કા જ્ઞાતા મેં કહતા હૂં । જૈસા કિ ભગવાન્ સે મૈને સુના હૈ કિ—અપ્કાય કો આશ્રિત કરકે રહે હુએ અપ્કાયિક પ્રાણી હૈ, તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકાર કે જીવ નીલંગુ, પૂતરક, મત્સ્ય આદિ મી જલ મેં રહે હુએ હૈ । ઉદકનિશ્રિતાઃ—‘જલકાય કે આશ્રિત’ યહ પદ દેહલી—દીપકન્યાય સે દોનો ઓર જોડ લેના યાહિએ । યહાં ઇતના સમજ લેના આવશ્યક હૈ કિ—જલકાય કે જીવો કા શરીર જલ હી હૈ, જવ કિ જલ મેં રહને બાલે ત્રસ આદિ જીવો કા શરીર ભિન્ન હોતા હૈ, ફિરમી વે જલ હી મેં રહતે હૈ ઓર જલ કી વિરાધના કરનેસે उन त्रस आदि जीवों की भी विराधना होती है । जहाँ जलकाय है वहाँ सभी काय के जीव होते हैं ।

ટીકાર્થ—અપ્કાયના સ્વરૂપને બાલુનાર હુ કહુ છુ જેવી રીતે કે મે લગવાન પાસેથી સાબળુ છે કે—અપ્કાયને આશ્રિત—આશ્રય કરીને રહેલા અપ્કાયના છવો છે તથા અનેક દ્વીન્દ્રિય આદિ નાના પ્રકારના છવ નીલગુ પૂતરક, મત્સ્ય આદિ પણ જલમા રહેલા છે ‘ઉદકનિશ્રિતા’ ‘જલકાયને આશ્રિત’ આ પદ દેહલી—દીપક—ન્યાયથી બન્ને બાબુ બેડી લેવુ બેધએ

અહિં એટલુ સમજ લેવુ આવશ્યક છે કે—જલકાયના—છવોના શરીર જલજ છે ન્યારે કે જલમા રહેવાવાળા ત્રસ આદિ છવોના શરીર ભિન્ન—બૂદા હોય છે તેા પણ તે જલમાજ રહે છે, અને જલની વિરાધના કરવાથી તે ત્રસ આદિ છવોની પણ વિરાધના થાય છે ન્યા જલકાય છે ત્યા તમામ કાયના છવ હોય છે

अफ्कायस्य लक्षणद्वारम्—

ननु कं सचिचमस्तीत्यत्र किं प्रमाणम् ? उच्यते—भापः सचिचा, शस्त्रानुपहत-
त्वे सति द्रवत्वात्, इस्तिशरीरोपादानभूतकलम्बत् । पस्यन्नादौ दोषवारभाय शस्त्रानुपह-
त्त्वविशेषबोपादानम् । कल्लम्बदग्रहणेन सप्तदिवसमात्रवर्तिनो ग्रहणम्, तत्र
परमदिवसादौ तदेवार्धुवाद्यस्यामापद्यते ।

किञ्च—भाप सचीपाः, अनुपहतद्रवत्वात्, अण्डकमभ्यस्वितकलम्बत् ।

किञ्च—भापो जीवशरीराणि, छेद्यत्वात्, मेघत्वात्, दृश्यत्वात्, कश्चरमादि
स्मृदायत् ।

अफ्कायका सप्तद्वार

शंका—बल सचिच है इस विषय में क्या प्रमाण है ?

समाधान—बल सचिच है, क्योंकि शस्त्र के उपघात के बिना ही यह
द्रव (पस) है, जैसे—हाथी के शरीर का उपादान कल्लम्ब । यहाँ मूत्र आदि से
स्पर्शिकार हटाने के लिए 'शस्त्र के उपघात के बिना' यह विशेषण लगाया गया है ।
'कल्लम्ब' शब्द के अर्थ करने से सिर्फ सात दिन का गर्माशयस्थित शुक्रशोणितमिश्रित
द्रवपदार्थ केवल चाहिए । आठवें दिन से उरुकी गर्भुद आदि अन्वर्थाप हो जाती हैं—अर्थात्
बल गवा होने समता है ।

और भी—बल सचीच है, क्योंकि यह अनुपहत द्रव है, जैसे बंटे का रस ।

और भी—बल, शरीर का शरीर है, क्योंकि इसका छेदन—मेदन किया जाता है और
द्रव है, हाथ पा आदि के समूह की तरह ।

अफ्कायस्य लक्षणद्वारम्—

शंका—बल-शब्दी सचिच से क्या विषयमां शु प्रमाण है ?

समाधान—बल सचिच से केमके शस्त्रा उपघात बिनाए ते तरल से
नेही होते दाधीन शरीरनु उपादान "कल्लम्ब" अर्द्ध मूत्र आदिभी स्पर्शिकार हटावना
भा शस्त्रा उपघात बिना के विशेषण लगाइयु से कल्लम्ब" शब्दना प्रत्यय कर
पक्षी मात्र सात दिवसने लभशयमां रहैते शुक्रशोणित-मिश्रित द्रवपदार्थ समन्वये
केवल आठमा दिवसही तेनी गर्भुद आदि अन्वस्थाये शर्त अय से अर्थात् ते शब्द
रना लाये से

भीनु पद्य-बल सचिच से केमके ते अनुपहत द्रव से नेमके उद्धाने रस

भीनु पद्य बल-एव-शरीर से केमके-तेनु छेदन-मेदन करी शक्य से अने
द्रव से, हाथ-पा आदिना समूह प्रमाणे

મસ્તીતિ ભગવતા કેવલાલોકેન વિજ્ઞાયાનગારેભ્યઃ સયમરક્ષણાર્થમુદકં જીવત્વેન પ્રતિવોધિતમિત્યર્થઃ । 'ચ'—શબ્દાત્ તદાશ્રિતા અન્યે દ્વીન્દ્રિયાદયોઽપિ જીવા વ્યાખ્યાતા इति वोधितम् । यो विन्दुमात्रोदकविराधकः, स पट्जीवनिर्काय-विराधको भवतीति वृत्तुलार्थः ॥ सू० १० ॥

શસ્ત્રદ્વારમ્—

નતુ યદિ જીવપિણ્ડભૂતમુદક ભગવતા પ્રોક્ત તર્હિ ઉદકસેવિના મુનીનામચયં પ્રાણાતિપાતદોષસમ્પાતઃ, તેન કથં સયમઃ સંયમિના સંપદ્યતે ? ઉચ્યતે—

સચિત્તાચિત્તમિશ્રભેદેન ત્રિવિધમુદકમ્ । તત્ર સચિત્ત-નદીકૂપતટાગાદિ-

પિણ્ડ હૈ, ઇસ પ્રકાર ભગવાન્ ને કેવલજ્ઞાન સે જાનકર સાધુઓં કે સયમ કી રક્ષા કે લિખ જલ કો જીવ વતલાયા હૈ । સૂત્ર મે દિયે હુખ 'ચ' શબ્દ સે યહ પ્રકટ ક્રિયા ગયા હૈ કિ જલ કે આશ્રિત દૂસરે દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ મી હૈ । સક્ષેપ મેં તાત્પર્ય યહ હૈ કિ—જો પુરુષ ઇક વિન્દુ જલ કી વિરાધના કરતા હૈ વહ પટ્કાય કે જીવોં કા વિરાધક હૈ ॥ સૂ ૧૦ ॥

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—યદિ જલ જીવોં કા પિણ્ડ હૈ, ઇસા ભગવાન્ને કહા હૈ તો જલકા સેવન કરને વાલે મુનિયોં કો હિંસા કા દોષ લગતા હૈ । ઇસી સ્થિતિ મેં સાધુઓં કા સયમ કિસ પ્રકાર કાયમ રહ સકતા હૈ ?

સમાધાન—જલ ત્રીન પ્રકાર કા હૈ—(૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત ઓર (૩) મિશ્ર

ભગવાને કેવલજ્ઞાનથી જાણી કરીને સાધુઓના સયમની રક્ષા માટે જલને જીવ તરીકે બતાવ્યું છે. સૂત્રમાં આપેલા 'ચ' શબ્દથી એ પ્રગટ કરવામાં આવ્યું છે કે—જલના આશ્રિત બીજા દ્વીન્દ્રિય આદિ જીવ પણ છે. સક્ષેપમાં તાત્પર્ય એ છે કે—જો પુરુષ એક ટીપા જલની વિરાધના કરે છે તે પટ્કાયના જીવોનો વિરાધક છે (સૂ. ૧૦)

શસ્ત્રદ્વાર—

શંકા—જો જલ જીવોનો પિંડ છે એ પ્રમાણે ભગવાને કહ્યું છે તો જલનું સેવન કરવાવાળા મુનિઓને હિંસાદોષ લાગે છે એવી સ્થિતિમાં સાધુઓનો સયમ કાયમ કેવી રીતે રહી શકે છે ?

સમાધાન—જલ ત્રણ પ્રકારનું છે (૧) સચિત્ત (૨) અચિત્ત અને (૩) મિશ્ર

अस्मि । यिभं सचिवाचिचसंमिच्छितम् । एतद् द्वयं चाप्राणम् । अचिचं द्विविधं स्वमात्रता, अस्त्रसंपर्कतश्च । स्वमात्रतोऽचिचं अलं केवलि-मनःपर्ययाज्यधि-भुत ज्ञानिनस्तन्जानाना अपि न सेवन्ते, मनस्वत्यादोपमसङ्गात्, व्यबहारानुद्वेभ । असिद्धं च यत् कदापिस्वमात्रतोऽचिचमलपरिपूर्णं बुद्ध, स्वमात्रतोऽचिचिवृत्त तिस्रादिकं च दृष्ट्वा व्यबहाराद्युदत्थात्पिपासासुभापरिपीडितानामपि साधूनां पामार्थं मत्तगार्थं च तत्रानुज्ञा न कृता मगधतेति । यत्तु अस्त्रसंपर्कादचिचं अलं तत् साधूनामुपमोगाय ज्ञान, तेन समयनिर्वाहो भवति । किं तच्छब्दम् ? इत्याह-‘सत्यं’ इत्यादि ।

नदी, रूप तात्पर्य आदि का एक सचित, और अचित मिल कर एक मिश्र कृतवत्ता है । यह दोनों प्रकार का एक साधु के लिये अपेक्ष्य है । अचित अस्त्र दो प्रकार का है-स्वमात्र से अचित और शस्त्र के संयोग से अचित । स्वमात्र से अचित अस्त्र को केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी, तथा भ्रतज्ञानी, मानते हैं मगर उस का सेवन नहीं करते । सेवन करने से मनस्वत्या दोष भ्रष्टा है और व्यबहार अनुद्वे हो जाता है । यह बात प्रसिद्ध है कि-कदाचित् स्वमात्र से अचित अस्त्र से मग्य हुआ व्यबहार तथा स्वमात्र से अचित अस्त्र आदि को देखकर व्यबहार में अनुद्वे होने के कारण प्यास और मूल से पीडित साधुओं को भी पीने-साने की आज्ञा मगवान्ते नहीं ही है । जो अस्त्र शस्त्र के संयोग से अचित हो गया हो वही साधुओं के लिये, प्राण होता है । ऐसा करने से ही समय का पाकन होता है । यह शब्द क्या है, यह बतलाने के लिये कहते हैं-‘सत्यं’ इत्यादि ।

नदी, मुवा तज्जाव आदिनु एक सचित छे सचित अचित अन्ने प्रकारनु कोषु दयेहुं एक मिश्रकृतवत्ता छे । अत अन्ने प्रकारना एक साधुज्ये भाटे आज्ञा छे अचित अल जे प्रकारनु छे । (१) स्वभावधी अचित अने (२) शस्त्रना संयोगधी अचित स्वभावधी अचित अलने केवली, मनःपर्ययज्ञानी, अवधिज्ञानी तथा भ्रतज्ञानी आद्ये छे परतु तेनु सेवन इस्ता नधी-सेवन इस्ताधी मनस्वत्या दोष आवे छे अने व्यबहार अनुद्वे वर्ध भव छे जे बात प्रसिद्ध छे छे-कदाचित् स्वभावधी अचित अलधी अरेहुं तज्जाव तथा स्वभावधी अचित अल आदिने जेधने व्यबहारभां अनुद्वे होवाना आद्ये तरस अने भ्रमधी पीडित साधुज्येने पञ्च पीषा-जावानी आज्ञा भजवाने जापी नधी जे अल शस्त्रना संयोगधी अचित वर्ध अतु होव ते अल साधुज्ये भाटे आज्ञा होव छे जे प्रभाज्ये इस्ताधी अचयभुं पालन बात छे ते शस्त्र हुं छे । जे अताववा भाटे कहे छे-‘सत्यं’ इत्यादि

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवल शरीरसंस्थान स्तिबुकविन्दुरु-
सस्थितमेव ।

परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽसंख्येयभाग
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च
राशयस्ते पृथक्—पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असख्यात है । अलवत्ता टन के शरीर का
आकार स्तिबुकविन्दु (बुद—बुद) के समान है ।

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असख्येयभाग प्रदेशों के
वरावर हैं, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग
असख्यात लोकाकाश के प्रदेश के वरावर हैं । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असख्यातगुणा हैं, और
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असख्यातगुणा हैं ।
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

पृथ्वीकायनी प्रमाणे प्रत्येक प्रकारना एव असख्यात छे अलगअलग तेना शरीरना
आकार स्तिबुकविन्दु—बुद—बुदना प्रमाणे छे

परिमाणद्वार—

भादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्तित लोकप्रतरना असख्येय भाग प्रदेशोना
वरावर छे भादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियो अलग—अलग
असख्यात लोकाकाशना प्रदेशोनी वरावर छे अर्हि ओटली विशेषता समझनी जेधये के-
भादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर पर्याप्त अप्काय असख्यात गुणा छे, अने
भादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा भादर अपर्याप्त अप्कायना एव असख्यात गुणा छे
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे

सूक्ष्म-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मपर्याप्ता अण्काया विशेषाधिकः ॥ सू० ९ ॥
 भीसुधर्मा स्वामी अम्बुस्वामिनमामत्र्य कवयति- 'इहं च' -स्यादि ।

सूक्ष्म्—

इहं च स्तु मो ! अनगाराणं उदर्यं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इह च स्तु मोः ! अनगाराणासुदकं जीवा व्याख्याताः ॥ सू० १० ॥

टीका—

‘मो’ इति परस्परालापविषयकामन्त्रये, तेन मो=हेनम्बू !
 इह=जिनशासने स्तु=निश्चयन अनगाराणां=द्रव्यमावपृहरदितानां मुनीनां मति
 बोधनायेति शेषः, उदकं जीवा व्याख्याताः’ इति, उदक जीवपिण्डमूल-

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अण्काया सूक्ष्म पर्याप्त अण्काय के बीच विशेष
 अधिक है ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी अम्बु स्वामी को संबोधन करके कहते हैं—‘इहं च’ इत्यादि ।

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के सिद्ध यह व्याख्या की गई है
 कि—अब जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—मो शब्द संबोधन के लिए है । इस का तात्पर्य यह हुआ कि—हे
 अम्बू ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और माव गृह्य स रहित
 मुनिया के बोध के लिए अब जीव है यह व्याख्यान किया गया है । अब जीवा का

तथा सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय की अण्काया सूक्ष्म पर्याप्त अण्कायना लव विशेष
 अधिक है. (सू. ९)

श्री सुधर्मा स्वामी अम्बु स्वामीने संबोधन करीने कहे है— इह च इत्यादि

मूलार्थ—हे शिष्य ! जिनशासनमें अणुकारोंने भारे आ व्याख्या करवाया
 आनी है कि अब जीव है (सू. १०)

टीकार्थ—‘मो’ शब्द संबोधन भरे है तेनु तात्पर्य को समु है—हे अम्बू ! अब
 जिनशासनमें निश्चयसे अणुकारोंने अर्थात् द्रव्य जनेकावपृहरदितानां मुनीनां मति
 भरे ‘इहं च’ है आ व्याख्यान करवाया आनी है अब, लयेनेपिठ है, जो प्रभावे

पृथिवीकायवद् असंख्येयाश्च प्रत्येकमुभये । केवल शरीरसंस्थान स्तिबुकविन्दु-
सस्थितमेव ।

परिमाणद्वारम्—

ये वादरपर्याप्ता अप्कायाः, ते संवर्तितलोकप्रतराऽमंग्येयभाग
प्रदेशराशिपरिमाणाः, ये तु वादरा अपर्याप्ताः, तथा सूक्ष्माः पर्याप्ता अपर्याप्ताश्च
राशयस्ते पृथक्-पृथगसंख्येयलोकाकाशप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । अयमत्र
विशेषः—वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरपर्याप्ता अप्काया असंख्येयगुणाः,
वादरेभ्योऽपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वादरा अपर्याप्ता अप्काया असंख्येय-
गुणाः । सूक्ष्मापर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता अप्काया विशेषाधिकाः,

पृथ्वीकाय के समान प्रत्येक प्रकार के जीव असख्यात हैं । अलवत्ता इन के शरीर का
आकार स्तिबुकविन्दु (बुद-बुद) के समान है ।

परिमाणद्वार-

वादर पर्याप्त अप्काय के जीव संवर्तित लोकप्रतर के असख्येयभाग प्रदेशों के
बराबर हैं, वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त और अपर्याप्त राशियाँ अलग अलग
असख्यात लोकाकाश के प्रदेश के बराबर है । यहाँ इतनी विशेषता समझनी चाहिए
कि—वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असख्यातगुणा हैं, और
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकाय की अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्काय के जीव असख्यातगुणा हैं ।
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक जीव विशेष अधिक हैं

पृथ्वीकायनी प्रमात्रे प्रत्येक प्रकारना एव असख्यात छे अलवत्ता तेना शरीरना
आकार स्तिबुकविन्दु-बुद-बुदना प्रमात्रे छे

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त अप्कायना एव संवर्तित लोकप्रतरना असख्यात भाग प्रदेशीना
बराबर छे वादर अपर्याप्त तथा सूक्ष्म पर्याप्त अने अपर्याप्त राशियो अलग-अलग
असख्यात लोकाकाशना प्रदेशीनी बराबर छे अर्हि ओटली विशेषता समन्वी जेधये के-
वादर पर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर पर्याप्त अप्काय असख्यात गुणा छे, अने
वादर अपर्याप्त पृथ्वीकायनी अपेक्षा वादर अपर्याप्त अप्कायना एव असख्यात गुणा छे
सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी सूक्ष्म अपर्याप्त अप्कायिक एव विशेष अधिक छे

सूत्र-पर्याप्त-पृथिवीकायेभ्यः सूत्रपर्याप्ता अण्काया विशेषाधिकाः ॥ सू० ९ ॥
 श्रीसुधर्मा स्वामी अण्मुस्वामिनमामन्त्र्य कथयति- 'इहं च' -त्यादि ।

मूत्रम्—

इहं च स्तु मो ! अनगाराणं उच्यं जीवा वियाहिया सू० ॥ १० ॥

छाया—

इ च स्तु मो ! अनगाराणां उच्यं जीवा व्याख्याता ॥ सू० १० ॥

टीका—

'मोः' इति परस्परालापविषयकामन्त्रणे, तेन मोः=हेनम्युः ।
 इ=जिनशासने स्तु=निश्चयेन अनगाराणां=द्रव्यभावगृहहरहितानां मुनीनां प्रति-
 बोधनायेति शेषः, उच्यं जीवा व्याख्याता ' इति, उच्यं जीवपिण्डभूत

उक्त सूत्र पर्याप्त पृथिवीकाय की अपेक्षा सूत्र पर्याप्त अण्काय के बीच विशेष
 अधिक है ॥ सू. ९ ॥

श्री सुधर्मा स्वामी अण्मु स्वामी को संबोधन करके कहते हैं- 'इहं च' इत्यादि ।

मूत्रार्थ—हे शिष्य ! जिन शासन में अनगारों के लिए यह व्याख्या की गई है
 कि-कल जीव है ॥ सू. १० ॥

टीकार्थ—'मो' शब्द संबोधन के लिए है । इस का उत्तर यह हुआ कि-हे
 अण् ! इस जिन शासन में निश्चय से अनगारों अर्थात् द्रव्य और मात्र गृह से रहित
 मुनियों के बोध के लिए 'कल जीव है' यह व्याख्यान किया गया है । अल, जीवा का

उक्त सूत्र पर्याप्त पृथिवीकाय की अपेक्षा सूत्र पर्याप्त अण्कायना एवं विशेष
 अधिक है (सू. ९)

श्री सुधर्मा स्वामी अण्मु स्वामीने संबोधन करीने कहे है- 'इहं च' इत्यादि ।

मूत्रार्थ—हे शिष्य ! जिनशासनमें अणुत्राशने भाटे का व्याख्या करवाभां
 कापी है के कल एवं है (सू. १०)

टीकार्थ—ये शब्द संबोधन भाटे है तेषु उत्तरार्थ को शब्द है-हे अण् ! का
 जिनशासनमें निश्चयसे अणुत्राशना अर्थात् द्रव्य जने काय गृहधी रहित मुनिजना बोध
 भाटे 'कल एवं है' का व्याख्यान करवाभां काणु है कल, एवंनेनापिठ है, जो प्रभावे



- (१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंमृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिम वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रश्याकादिधावनजल वा ।
 (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् ।
 (५) तुपोदकम्=त्रीद्विधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् ।
 (७) आचामकम्=अवश्रामणजल 'औसामण' इति भाषामिदम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजल, तक्रोपरिष्ठान्निस्तारितजलं वा 'आछ' इति भाषायाम् ।
 (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातरूपानकम्=आम्रातकधाननजलम् ।
 आम्रातरुमिति 'अम्बाडी' इति भाषामसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैषणा' प्रकरण में इक्रीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार —

(१) उत्सेद्य—आटेका मिला हुआ पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद्य (ससेकिम) उकाले हुए तिलोका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) औसामण, (८) आरनाल, छछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्बाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रकारनु अचित्त जल आ सूत्रना पीठर श्रुतस्कन्धना पानैषणा—प्रकरणम् अक्षवीश प्रकारनु लगवाने साधुयो भाटे ग्राह्य कहु छे, ते आ प्रभावे छे —

(१) उत्सेद्य—ढोठ भणेलु, कथरोट आदिनु धोवणु

(२) सस्वेद्य—उकालेला तलनु धोवणु, अथवा उकालेला पत्तावाणा शाकनु धोवणु

(३) औसामणु धोवणु (४) तलनु धोवणु (५) धान्यनु धोवणु (६) जवनु धोवणु (७) औसामणु (८) आरनाल—छासना वासणेलु धोवणु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाणी नेने 'आछ' पणु कडे छे

(९) आम्र—आम्र आदि कणेलु धोवणु (१०) अम्बाडीनु धोवणु (११) कौशानु धोवणु (१२) भिजेरानु धोवणु (१३) दाखनु धोवणु (१४) दाडमनु धोवणु (१५)

इति मापायां, तस्य पानकं=वाचनञ्जलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाघावनमजलम् ।
 (१४) दाहिमपानकम्=दाहिमघावनजलम् । (१५) स्वर्जूरपानकम्=स्वर्जूरघावन-
 जलम् । (१६) नासिकेलपानकम्=नासिकेसुषावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=
 करीरघावनजलम् । (१८) कोस्पानकम्=बदरघावनजलम् । (१९) आमसकपानकम्=
 आमसकघावनजलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका-इमली इति मापायां,
 तस्याः पानकं=वाचनजलम् । (२१) शुद्धमिकृतम्=अमन्युत्कृष्टिगुण्यं अलं च ।

इह श्लेषद्वाराणि पृथिविकामयद् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यद्वयः सविचापकायोपमोगिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः
 स्योपमोमार्गम् 'मापो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु जलं
 सचितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादबलतः स्वार्थमुत्कास्यन्ति, परमुपदिशन्ति, च,
 यथा त्रिदण्डमुत्कासनीयं जलम्, इत्युपदिश्यापकायसमारम्भं कारयन्तो न
 केवलमुत्कास्यं विहितन्ति, किन्तु उदाभितानन्यानापि द्वीन्द्रियान् विरापयन्ति ।

का बोहन (१५) सन्नूर का बोहन (१६) मारियस का बोहन (१७) कैर का बोहन
 (१८) वेर का बोहन (१९) बौबले का बोहन (२०) इमली का बोहन (२१) जमि से
 उकास हुमा गर्म जल ।

यो शाक्य आदि सचित अणुकाय का सेवन करते है, उन में से शाक्य आदि
 अपने उपमोग के लिए 'जल सचित नहीं है' इस प्रकार की प्ररूपणा करते हैं ।
 दण्डी लोक जल को सचित मान कर के भी मोह और प्रमाद के बरा हो कर अपने क्रिय
 पत्नी गरम करवाते हैं और दूसरा को उकासने का उपदेश देते हैं कि-जल तीन
 दण्ड, उकासना चाहिए । अर्थात् तीन उकासकेका पानी होना चाहिए
 इस प्रकार उपदेश देकर अणुकाय का समारम्भ करते हुए न केवल अणुकाय की
 हिंसा करते हैं अपि तु जल में रहने वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विरापना करत हैं ।

पौष्य. (१६) नासिकेलतु पौष्य (१७) केरु पौष्य. (१८) मीरातु पौष्य (१९)
 जालजतु पौष्य. (२) जालवीतु पौष्य. (२१) अमिठी उकासेतु जरम जल.

ये शाक्य आदि सचितअणुकायतु सेवन करे छे तेमांथी शाक्य आदि
 पौष्याना उपमोग भाटे जल सचित नहीं छे प्रमादनी प्ररूपणा करे छे इ दी जलने
 सचित भानीने पक्ष भौक जने प्रमाद वश यथ पौष्याना भाटे पाक्षी जरम करावे
 छे जने जीवने पक्षी जरम करवाने उपदेश आये छे के-जल तल इठ-उठाणा
 आधीने उठाणतु जोध जे. आ प्रमादे उपदेश आधीने अणुकायने समारम्भ करवा
 यथा केवल अणुकायनी ज हिंसा करे छे अंततुं नही परन्तु जलमां रहेवावाया द्वीन्द्रिय
 आदिनी पक्ष विरापना करे छे.
 ५. भा. १७

मूलम्—

सत्थं चेत्य अणुवीइ पास, पुढो सत्थं पवेइयं ॥ सू० ११ ॥

छाया—

शस्त्रं चात्र अनुविचिन्त्य पश्य, पृथक् शस्त्रं प्रवेदितम् ॥ ११ ॥

टीका—

अस्मिन् प्रस्तुतेऽपकाये शस्त्रं—शस्यते=हिंस्यते प्राणी येन तच्छस्त्रम् अनुविचिन्त्य
 =‘इदमपकायस्य शस्त्रम्’ इति विचार्य, पश्य=हे शिष्य ! ज्ञानदृष्ट्या विलोक्य ।
 शस्त्रम्=उपमर्दकं प्रस्तुतत्वादपकायस्य पृथक्=विभिन्नरूपं स्वकायपरकायोभयकाय-
 मेदात् त्रिविधमित्यर्थः प्रवेदितं=प्रतिबोधितं भगवतेतिशेषः । तत्र स्वकायशस्त्रं
 नद्याद्युदकानां कूपाद्युदकम् । कूपाद्युदकानां नद्याद्युदकं च । स्वकायशस्त्रपरिणतं
 जलं साधूनामग्राह्यं व्यवहाराशुद्धेः । उभयकायशस्त्रं कूपादिजलस्योष्णजलं मृत्तिकादि-

मूलार्थ—अपकाय के विषय में, हे शिष्य ! शस्त्र का विचार करो । अपकाय के
 शस्त्र पृथक्-पृथक् समझाये गये हैं ॥ सू० ११ ॥

टीकार्थ—जिस के द्वारा हिंसा हो वह शस्त्र कहलाता है, हे शिष्य !
 अपकाय के विषय में ‘यह अपकाय का शस्त्र है’ इस प्रकार विचार करो अपकाय के
 शस्त्र स्वकाय, परकाय और उभयकाय के भेद से नाना प्रकार के भगवान् ने बतलाये हैं ।
 कुएँका जल नदी के जल के लिए स्वकायशस्त्र है, इसी प्रकार नदी आदि का जल
 कुएँ के जल के लिए स्वकायशस्त्र है । स्वकायशस्त्र से परिणत जल साधुओं के लिए
 ग्राह्य नहीं होता, क्योंकि वह व्यवहार में अशुद्ध है । उभयकायशस्त्र है—कुएँ आदि के

भूलाार्थ—अपकायना विषयमा हे शिष्य । शस्त्रेणा विचार करो. अपकायना
 शस्त्रं शुद्धं शुद्धं समन्वया छे (सू० ११)

टीकार्थ—जेना द्वारा हिंसा थर्ध शके ते शस्त्रं कहेवाय छे, हे शिष्य ! अपकायना
 विषयमा ‘आ अपकायनु शस्त्रं छे’ अे प्रमाखे विचार करो अपकायना शस्त्रं स्वकाय, परकाय,
 अने उभयकायना लेइथी नाना प्रकारना भगवाने भताव्या छे कुवानु जल, नदी आदिना
 जल माटे स्वकायशस्त्रं छे अे प्रमाखे नदी आदिनु जल कुवाना जल माटे स्वकायशस्त्रं
 छे. स्वकायशस्त्रंथी परिष्कृत जल साधुयो माटे ग्राह्य रहेतुं नथी, कारणु के ते व्यवहारमा
 अशुद्ध छे. उभयकायशस्त्रं छे कुवा आदिना जल माटे गरम जल, अथवा माटी वगैरेथी

निभनठं च । उभयकायक्षरपरिणतमपि न ग्राह्यम्, तत्र मिभशङ्कासङ्गात् ।
 परकायक्षरपरिणतमेव जल मुनीनां ग्राह्यम् परकायक्षर आण्कायस्य अग्नि-मृत्तिका-
 द्राक्षा-शक-तण्डुल-पिष्ट-दासी-कणकादिकम् । परकायक्षरपरिणत-वर्मादीनां
 र्वावस्थाकैलक्षण्यपन्नम् । तत्र वक्षतो घूसरत्वादिष्वपि, गन्धतस्तचद्वस्तुसम्बन्धि
 गन्धवत्त्वम्, रसतस्तचद्वस्तुसम्बन्धितिककदुकपायादिरसप्रत्वम् । स्पर्शतः
 स्निग्धकृत्वादिरूपम् । तदेवम्युतमधिषं बसमस्यैवाइस्य द्वितीयभुतस्त्वने
 पानैपमायामेकविंशतिविध मुनीनां ग्राह्यत्वेन वक्ष्यते भगवता । तथाहि—

बल के क्रिय गम बल अथवा मिठी आदि से मिला हुआ बल । उभयकायशर से परिणत
 बल भी साधुओं के क्रिय प्राप्त नहीं है, क्यों कि उस में मित्र (सहितचित्त) की शक्ति
 रहती है । मुनियों के क्रिय परकायशरपरिणत बल ही ग्रहण करने योग्य है । अण्काय का
 परकायशर—अग्नि, मिठी दास शक, चाकस, भाटा, दास, और पना आदि हैं ।

पूछे की अण्काय बण, रस गंध आदि वत्स जाना परकायशर से बल के परिणत (अचित्त)
 हो जाने की पहचान है । बण से बल का घूसर आदि हो जाना, गंध से उस में मिली हुई
 वस्तुओं की गंध आने समाना इसी प्रकार बल में मिली हुई वस्तुओं का ठीका कड़ा
 कसैय आदि रस का स्वाद या जाना और स्पर्श से बल का रूमा चिकना आदि हो जाना
 बल के अचित्त होने के लक्षण हैं ।

भजेतुं अथ उलकाय शरधी परिवृत अथ पण साधुजो भाटे शक नही केभडे-
 तेभं मित्र (सहितचित्त) नी शका रहे छे मुनियो भाटे परकायशरपरिवृत अथ
 अण्काय करवा योग्य छे अण्कायतुं परकायशर, अग्नि भाटी द्राक्ष शक शक अथव
 दोर दास आने अण्का आदि छे ।

पहेलां इतरां जेनां वर्ण रस अथ आदि जदलाठ अथ ते परकायशरधी
 अथ परिवृत (अचित्त) वधं जवानी जे निशानी अर्थात् जोगभाव्य छे

वर्णधी अलतुं घूसर आदि वधं अतुं, अथधी तेभं भजेती वस्तुजोनी जंभ
 अण्काय, जे प्रभावे अलतं भजेती वस्तुजोना तीभा, इधवा इसेवा आदि रसने
 स्वाद आनी अणो आने स्पर्शधी अलतुं रस चिकन आदि वधं अतुं जे अल
 अचित्त होवानी लक्षण्य छे

- (१) उत्स्वेद्यम्=पिष्टसंसृष्टपिठरादिप्रक्षालनजलम् । (२) संस्वेद्यम्=ससेकिमं वा=उत्कालिततिलधावनजलं, उत्कालितपत्रशाकादिधावनजल वा ।
 (३) तन्दुलोदकम्=तन्दुलधावनजलम् । (४) तिलोदकम्=तिलधावनजलम् ।
 (५) तुपोदकम्=व्रीहिधावनजलम् । (६) यवोदकम्=यवधान्यक्षालनजलम् ।
 (७) आचामकम्=अवश्रामणजलं 'औसामण' इति भाषाप्रसिद्धम् । (८) सौवीरम्=आरनाल, तक्रपात्रधावनजलं, तक्रोपरिष्ठाभिस्तारितजल वा 'आंछ' इति भाषायाम् ।
 (९) आम्रफलादिधावनजलम् । (१०) आम्रातकपानकम्=आम्रातकधावनजलम् ।
 आम्रातकमिति 'अम्वाडी' इति भाषामसिद्धम् । (११) कपित्थपानकम्=कपित्थं='कविठ' इति भाषायां, तस्य धावनजलम् । (१२) मातुलिङ्गम् 'विजोरा'

इस प्रकार का अचित्त जल इसी सूत्र के दूसरे श्रुतस्कन्ध में 'पानैपणा' प्रकरण में इक्कीस प्रकार का भगवान् ने साधुओं के लिए ग्राह्य कहा है । वह इस प्रकार —

(१) उत्सेद्य-आटेका मिला हुआ पीठर (कथोटी) आदिका धोवन ।

(२) सस्वेद्य (ससेकिम) उकाले हुए तिलोंका धोवन या उकाले हुए पत्तों के शाक का धोवन ।

(३) चावलों का धोवन, (४) तिलों का धोवन, (५) धान्यका धोवन, (६) जौ का धोवन (७) ओसामण, (८) आरनाल, छाछ के वर्तनों का धोवन, अथवा छाछ के उपर का नितारा पानी जिसे 'आंछ' भी कहते हैं ।

(९) आम आदि फलों का धोवन (१०) अम्वाडी का धोवन (११) कविठ (कैथ) का धोवन (१२) विजौरे का धोवन (१३) दाख का धोवन (१४) दाडिम (अनार)

आवा प्रकारनु अचित्त जल आ सूत्रना पीला श्रुतस्कधना पानैपणा-प्रकरणमा अेकवीश प्रकारनु लगवाने साधुओ भाटे ग्राह्य कछु छे, ते आ प्रमाणे छे —

(१) उत्स्वेद्य-ढोठ भणेतुं, कथरोट आदिनु धोवषु

(२) सस्वेद्य-उकालेला तलनु धोवषु, अथवा उकालेला पत्तावाणां शाकनु धोवषु

(३) ओषानु धोवषु (४) तलनु धोवषु (५) धान्यनु धोवषु (६) जवतुं धोवषु (७) ओसामण (८) आरनाल-छासना वासणेतुं धोवषु, अथवा छासनी उपर नीतरेल पाणी जेने 'आछ' पषु कडे छे

(९) आम-आम्र आदि कणोनु धोवषु (१०) अम्वाडीनु धोवषु (११) कौठानु धोवषु (१२) विजोरेनु धोवषु (१३) दाखनु धोवषु (१४) दाडमनु धोवषु (१५)

इति मापायां, तस्य पानकं=पावनजलम् । (१३) द्राक्षापानकम्=द्राक्षाघावनमलम् ।
 (१४) दाहिकपानकम्=दाहियघावनमलम् । (१५) स्रग्जूरपानकम्=स्रग्जूरघावन-
 मलम् । (१६) नासिकेलपानकम्=नासिकेलघावनजलम् । (१७) करीरपानकम्=
 करीरघावनजलम् । (१८) कोष्पानकम्=षडरपावननलम् । (१९) वामसकपानकम्=
 त्रायलकघावननलम् । (२०) चिञ्चपानकम्=चिञ्चा-अम्लिका-इमली' इति मापायां,
 तस्याः पानकं=पावनजलम् । (२१) शुद्धविकृतम्=अग्न्युत्कालितस्युष्णं बलं च ।

इह श्लेषशाराणि पृथिविकामपवत् विज्ञेयानि ।

ये तु शाक्यादयः सचित्ताः प्रायोपमोनिनः सन्ति तेषु शाक्यादयः
 स्तोपमोतार्यम् 'आपो जीवा न सन्ति' इति प्रतिपादयन्ति, दण्डिनस्तु नलं
 सचितं मन्यमाना अपि मोहप्रमादबलतः स्वार्थमुत्कास्यन्ति, परमुपदिशन्ति, च,
 यथा त्रिदण्डमुत्कासनीयं जलम्, इत्युपविश्यात्कापसमारम्भं कारयन्तो न
 केवलम्कार्यं विहितं, किन्तु तदाभितानन्यानपि द्वीन्द्रियान् विरापयन्ति ।

का बोधन (१५) स्रग्जूर का बोधन (१६) नारियल का बोधन (१७) केर का बोधन
 (१८) केर का बोधन (१९) बौबले का बोधन (२०) इमली का बोधन (२१) अग्नि से
 उकास्य हुआ गर्म जल ।

जो शाक्य आदि सचित् अज्ञान का सेवन करते हैं, उन में से शाक्य आदि
 अपने उपमोह के लिए 'सब सचित नहीं है' इस प्रकार की प्रकृषणा करते हैं ।
 सही लोक सब को सचित मान कर के भी मोह और प्रमाद के बश हो कर अपने किय
 पानी गरम करवाते हैं और दूसरों को उकासने का उपदेश देते हैं कि-सब तैल
 सड़, उकासना चाहिए । जबकि तैल उकासेका पानी होना चाहिए
 इस प्रकार उपदेश देकर अज्ञान का समाप्त करते हुए न केवल अज्ञान की
 दृष्टि करते हैं अपि तु सब में रहन वाले द्वीन्द्रिय आदि की भी विराधना करत हैं ।

पिप्लव. (१६) नारीजेलतु पिप्लव. (१७) डेरतु पिप्लव. (१८) मारतु पिप्लव (१९)
 आलणतु पिप्लव. (२०) आलणतु पिप्लव (२१) अग्निधी उकासेतुं गरम जल.

जो शाक्य आदि सचितअज्ञानतु सेवन करे छ तेमांशी शाक्य आदि
 शैताना उपमोह माटे 'सब सचित नहीं है' प्रमाणनी प्रकृषणा करे छ इही बलने
 सचित भानीने पक्ष शिकं जने प्रमाद बश बलं पीताना माटे पापुणी गरम कराने
 छे जने धीबने पक्षी गरम करवाने उपदेश आपि छे इ-जल त्रय द-उकासा
 आपीने उकासतुं जेईजे. आ प्रमादे उपदेश आपीने अज्ञानतु समाप्त करता
 बश डेरतु अज्ञाननीव दिसा करे छे अटतुं नदी परतु जलभां रदेवाणा द्वीन्द्रिय
 आदिनी पक्ष विराधना करे छे

इश्यन्ते च तीर्थादिषु अधःकर्मादिदोषदूषितभक्तपानादिग्रहणेनाप्यादिमहासमारम्भं कुर्वाणाः । न च ते स्वात्मानं भवसागराचारयितुं समर्था भवन्ति, उक्तञ्च-भगवतोत्तराध्ययनसूत्रे-(अध्य २०)

“ चिरंपि से मुंडरुई भविता, अधिरव्वए तवनियमेहिं मट्टे ।

चिरपि अप्पाण किलेसइत्ता, न पारए होइ हु संपराए ” ॥ सू० ११ ॥

न केवल ते हिंसादोषभागिनः, अपि त्वयदोषभागिनोऽपि सन्ति, तदेव भगवानाह-‘अदुवा.’ इत्यादि ।

मूलम्—

अदुवा अदिन्नादानं ॥ सू० १२ ॥

छाया—

अथवा अदत्तादानम् ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आघातकर्म आदि दोषों से दूषित आहारपानी ग्रहणकरके अप्कायका महारम करते हुए देखे जाते हैं । वे अपने आत्मा को भवसागर से तारने में समर्थ नहीं हैं । भगवान् ने उत्तराध्ययनसूत्र (अध्ययन २०) में कहा है—

“ जो पुरुष अस्थिर व्रत वाला है और तप तथा नियमों से भ्रष्ट है वह चिरकाल तक अपने आत्मा को क्लेश पहुँचाने पर भी सपराय (ससार से) पार नहीं हो सकता ” (उक्त सू २०) ॥ सू० ११ ॥

सच्चित्त जल का आरम करने वाले अकेली हिंसा के ही भागी नहीं हैं, किन्तु अन्य दोषों के भागी भी हैं । यही बात भगवान् कहते हैं—‘अदुवा.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अथवा अदत्तादान का दोष लगता है ॥ सू० १२ ॥

तीर्थ आदि पर आघातकर्म आदि दोषोपेथी इषित आहार-पाणी अक्षय करीने अप्कायनो महारम करता होय ओम ओवाभा आवे छे ते पोताना आत्माने भवसागरथी तारवाभा समर्थ नथी भगवाने-उत्तराध्ययन सूत्रमा (अध्ययन २०मा) कळु छे के-
“ जे पुरुष अस्थिर व्रतवाणा छे अने तप तथा नियमोथी ब्रष्ट छे, ते वाया समय सुधी पोताना आत्माने क्लेश पहुँचाववा उपरात पणु ससारथी पार थर्ष शकता नथी ” (उत्तरा० अ २०) (सू ११)

सच्चित्त जलने आरम करवावाणा ओकली हिंसानाळ लागी नथी परन्तु अन्य दोषोपेथी पणु लागी छे ते वात भगवान् कळे छे-‘अदुवा’ इत्यादि

मूलार्थ—अथवा अदत्तादानने दोष लागे छे (सू १२)

टीका—

‘अथवा’—शब्दः कश्चित्स्वार्थस्य प्रकारान्तरेण स्पष्टीकरणे वर्तते । येऽण्काया रमिमास्तपामदत्तादानदोषावविरपि । यतोऽण्कायनोवैस्तेभ्यो नार्पितानि स्वशरीराण्यु पर्द्धयिषु, ते च तानि वाङ्मनाःकाययोगै कृतकारितानुमोदितैस्पर्द्धयन्ति, तत-
 भाण्कायारम्भिणामदत्तादानदोषोऽप्यनिवार्यो भवति, तस्मात्सुसुप्तुमिः सर्वथाऽण्काया-
 रम्भो वर्जनीयः, इति मगवता साक्षात्प्रोक्तम् ॥ सू० १२ ॥

सन्निचमलोपमोगिनो हि पृष्टाः सन्त्यो यद् वदन्ति तदाह—

यदा-अण्कायारम्भं स्वयं परिहर्षुमसमाः शाक्यादयो यद् वदन्ति तदाह—

‘कप्यं ये’ इत्यादि ।

टीकार्थ—यह छ कही हुई बात का दूसरी तरह से स्पष्टीकरण करने के लिये ‘अथवा’ शब्द है । जो अण्काय का आरंभ करते हैं उन्हें अदत्तादान का दोष भी समझना है । कारण यह है कि-अण्काय के बीजा ने अपने शरीर उपमर्दन करने के लिए उन्हें सोचने पड़े हैं, फिर भी वे स्नेहा मन बचन काय से और कृत कारित, अनुमोदना से उनका उपमर्दन करते हैं अतः अण्काय का आरंभ करने वालों को अदत्तादान का दोष अनिवार्य है । अतः सुसुप्तु पुरुषों को अण्काय का आरंभ त्यागना चाहिए । ऐसा मगवान् ने साक्षात् कहा है ॥ सू १२ ॥

सन्निच कसका उपयोग करनेवाले पूछनेपर जो उत्तर देते हैं सो कहते हैं-
 यथा जो स्नेहा अण्काय के आरंभ को त्यागन में असमर्थ हैं उनका कवन बतसते हैं-
 ‘कप्यं ये’ इत्यादि ।

टीकार्थ—प्रथम कहेकी बातने जीला सीतधी स्पर्द्धीकश्यु कस्याना लक्षणां
 अथवा शब्द से अण्कायने आरंभ करे से तेने अदत्तादानने दोष पक्ष धारणे
 से कारण को से अण्कायना लोकोके पोतानु शरीर उपमर्दन कस्या भाटे तेने सोचि-
 नधी तो पक्ष ते दोषो मन, वयन लने कावाधी लने कश्यु, कश्यु तया अनुमोदनु
 ते वदे कही उपमर्दन करे से ते कारणधी अण्कायने आरंभ कस्यावागाने अदत्ता-
 दानने दोष पक्ष अनिवार्य (राणी न शक्य नेवे) से जो भाटे सुसुप्तु पुरुषोको
 अण्कायने आरंभ त्यागी देवे लोकोके जो प्रभावे कत्रवाने साक्षात् कसु से (सू. १२)

सन्निच कसका उपयोग कस्यावागाने पूछना से उत्तर आपे छ-ते कहे से
 यथा ने दोष अण्कायना आरंभने त्यजनामांसमर्थ से तेमनु कहेनु-कवन
 पक्षवे से-कप्यं ये इत्यादि

मूलम्—

कप्पइ णे कप्पइ णे पाउं अद्दुवा विभूसाए ॥ सू० १३ ॥

छाया—

कल्पतेऽस्माकं कल्पतेऽस्माकं पातुं, अथवा विभूपायै ॥ सू० १३ ॥

टीका—

‘कल्पतेऽस्माकं’—मिति । न वयं स्वेच्छयोदकमुपमर्दयामः किन्त्वस्माकमागमे निर्जीवत्वेन प्रतिबोधितत्वादनपिद्धत्वाच्च पातुं कल्पते । ‘कल्पतेऽस्माकम्’ इत्यस्य द्विरुच्चारणेन पुनःपुनरनेकप्रयोजनवशाद् बहुविध उपभोगोऽस्माकं कल्पते, इति बोध्यते । तथाहि—

भस्मस्नायिनो वदन्ति—अस्माकं पातुमेव कल्पने न तु स्नातुमिति ।

शाक्यादयस्त्वेवं जल्पन्ति—स्नान—पानादि सर्वं कल्पते जलेनेति ।

मूलार्थ—हमें कल्पता है, हमें कल्पता है, (जल) पीने और विभूषा करने—हाथ पैर आदि धोने, नहाने—के लिए ॥ सू १३ ॥

टीकार्थ—हम स्वेच्छा से जल की विराधना नहीं करते, वरन हमारे आगम में जल को अचित्त बतलाया है और पीने का निषेध नहीं किया है, अत हमें पीना कल्पता है । ‘हमें कल्पता है’ यह दो बार कहने से यह सूचित किया गया है कि—प्रयोजन के वश नाना प्रकार का उपभोग करना हमें कल्पता है । जैसे—

भस्म से स्नानकरनेवाले कहते हैं—हमें पीना ही कल्पता है, स्नानकरना नहीं कल्पता ।

शाक्य आदि का कहना है कि—हमें पीना और स्नानकरना—सभी कुछ कल्पता है ।

मूलार्थ—अमने कल्पे छे, अमने कल्पे छे, (जल) पीवाने अने विभूषा—हाथ पग आदि धोवा, नडावा माटे (सू १३)

टीकार्थ—अमे स्वेच्छाथी जलनी विराधना करता नथी परतु अमारा आग-ममा जलने अचित्त अताअ्यु छे, अने पीवाने निषेध कथी नथी तेथी अमारे पीवु कल्पे छे ‘अमारे कल्पे छे.’ आ जे वार कहेवाथी अे सूचित करवाभा आअ्यु छे के—अथेअनवश नाना प्रकारने उपभोग करवानु अमने कल्पे छे जेमके—

भस्मथी स्नानकरवावाणा कहे छे—अमारे पीवु कल्पे छे, स्नान करवु कल्पतुं नथी

शाक्य आदिनु कहेवु छे के—अमारे पीवु अने स्नान, सवे कछ कल्पे छे.

ते पुनरेषं भवन्ति—अथवा विभूषणैः—शोभार्थं कल्पते—स्माकमुदकमिति । विभूषा नाम—करचरणसुखादिप्रसाधनादिका, यस्मादिप्रसाधनरूपा वा, तदर्थं जलेन व्यपहर तामस्माकं नास्ति कोऽपि दोषोऽत्र इति ॥ सू० १३ ॥

पुनः किं कुर्वन्ति ते ? इत्याह—'पुनो सत्येहिं,' इत्यादि

मूळम्—

पुनो सत्येहिं विठ्ठति ॥ सू० १४ ॥

छाया—

पृथक् प्रसैष्यां चर्षयन्ति (विठ्ठति वा) ॥ सू० १४ ॥

॥ टीका ॥

आत्मानमनगारं प्रकृदमानां श्लाक्यादयः पृथक्—मिन्नमिन्नस्वरूपैः कृत्वाः— स्नानपानपापनोत्पेक्षनादिमिरक्षयव्रीहान् व्यावर्षयन्ति—प्राणेषु व्यपरोपयन्ति । यथा विठ्ठन्ती—'तिष्ठच्छाया तेन विठ्ठन्ति—पिच्छेपेन छिन्दन्ति, सर्षया मायेन विरापयन्तीत्यर्थः ॥ सू० १४ ॥

उक्तका यह भी कहना है कि—विभूषण—शोभा के लिए भी कल का उपयोग हमें करना है । हाथ, पैर, मुख, आदि धोना और कल आदि धोना विभूषण है । इस के लिए कलम व्यवहारक्रम में हमें बरा भी दोष नहीं लगता ॥ सू० १३ ॥

वे और क्या करते हैं, सो करते हैं—'पुनो' इत्यादि ।

मूळार्थ—मिन्न—मिन्न वस्तुओं से कलम का ही हिंसा करते हैं ॥ सू० १४ ॥

टीकार्थ—अपन को अनगार करते हुए प्राक्य वगैरह मिन्न—मिन्न प्रकार के वस्तुओं से स्नान, पान धोना सींचना आदि कार्य कर के अष्ठाधोपमोग का ही हिंसा करते हैं । अथवा पूर्वमम से उस की विरापय करते हैं ॥ सू० १४ ॥

तेभ्यु जे पञ्च कडेवु छे छे विभूषण—शोभा भागे पञ्च कडेवु छे पञ्चोत्तम अभावे कडे छे । हाथ पञ्च, मुख आदिने धोवां अने वस्त्र आदि धोवां ते विभूषण कडेवाव छे जे भाटे कडेवु व्यवहार कडेवु अभावे अने पञ्च दोष जायते नथी । (सू. १३) ते जीवु शु करे छे ते कडे छे 'पुनो' इत्यादि

मूळार्थ—बुरा बुरा वस्तुओं से कलमवनी हिंसा करे छे (सू. १४)

टीकार्थ—पित्ताने अजुअर कडेवुअर श्लाक्य वगैरे मिन्न—मिन्न प्रकारका वस्तुओं से स्नान, पान, धोवां, सींचवां आदि कार्य करीने अष्ठाधोपमोग का ही हिंसा करते छे अथवा पूर्व रूपसे तेनी विरापय करे छे (सू. १४)

साम्प्रतमेपां युक्त्यागमयोर्निस्सारत्वं प्रदर्शयन्नाह—‘एत्यवि.’ इत्यादि ।

॥ मूलम् ॥

एत्य वि तेसिं नो निरुणाए ॥ सू० १५ ॥

॥ छाया ॥

अत्रापि तेषां नो निरुणायै ॥ सू० १५ ॥

॥ टीका ॥

तेपां शक्यादीनां युक्तयः अत्र=अस्मिन्नपक्कायारम्भविषये नो=नैव निरुणायै=निश्चयकरणाय समर्थाः सन्ति । अपिशब्देन तेषामागमोऽपि न निश्चेतु समर्थो भवति । आगमत्वपि तत्र न संभवति, अनाप्तप्रणीतत्वात्, हिंसाविधायकत्वाच्च । यतो हि स एवागमशब्दवाच्यः यः खलु वीतरागप्रणीतः सर्वप्राणिहितकरो भवति ॥ सू० १५ ॥

उन का कथन युक्ति और आगम से सारहीन है, यह बतलाते हुए कहते हैं—‘एत्यवि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—उन लोगों को युक्तियाँ अप्काय के विषय में निश्चय नहीं कर सकती ॥ सू० १५ ॥

टीकार्थ—उन शाक्य आदि की युक्तियाँ अप्काय के आरम्भ के विषय में, निश्चय करने में समर्थ नहीं हैं । ‘वि’ अपि शब्द से यह सूचित किया है कि—उनका आगम भी निश्चय करने में समर्थ नहीं है । उनका आगम, आगम भी नहीं है, क्योंकि वह आप्तपुरुषद्वारा प्रणीत नहीं है और हिंसा का विधान करनेवाला है । आगम वही कहला सकता है जो वीतरागद्वारा प्रणीत हो और प्राणीमात्र का हितकारी हो ॥ सू० १५ ॥

तेमनु कथन—कडेबुं—युक्ति अने आगमथी सारहीन छे. अे षतावीने कडे छे—‘एत्यवि,’ इत्यादि

सुलार्थ—ते बोकोनी युक्तिअो अप्कायना विषयमा निश्चय करी शकती नथी. (सू. १५)

टीकार्थ—ते शाक्य आदिनी युक्तिअो अप्कायना आरम्भना विषयमा निश्चय करवामा समर्थ नथी ‘वि’ अपि शब्दथी अे सूचित कर्युं छे के तेमनु आगम पणु निश्चय करवामा समर्थ नथी तेमनु आगम ते आगम पणु नथी केमके ते आप्त पुरुषे द्वारा प्रणीत नथी अने हिंसानु निधान करवावाणा छे आगम ते कडेवाय छे के अे वीतरागद्वारा प्रणीत होय अने प्राणीमात्रनु हितकारी होय (सू. १५)

तदेवमपां जीवत्वा प्रतिषोध्य अस्य उद्देशस्य सकलार्थमुपसंहरमाह—'एत्य सत्यं' इत्यादि ।

मूलम्—

एत्य सत्यं समारम्भात्स्य इत्येते आरम्भा अपरिष्वाया भवति । एत्य सत्यं असमारम्भात्स्य इत्येते आरम्भा परिष्वाया भवति । तं परिष्वाय मेवापी षोडशस्य उद्यसत्यं समारम्भेणा, षोडशस्य उद्यसत्यं समारम्भावेज्जा, उद्यसत्यं समारम्भतेज्जि अथे न समञ्जसाणेज्जा । अस्सेते उद्यसत्यसमारम्भा परिष्वाया भवति से इ सुगी परिष्वायकमे सि वेमि ॥ सू० १६ ॥

तद्यो उद्देशो समतो ॥ ३ ॥

छाया—

अथ अर्थं समारम्भात्स्य इत्येते आरम्भा अपरिष्वाया भवन्ति । अथ असमारम्भात्स्य इत्येते आरम्भा परिष्वाया भवन्ति । तत् परिष्वाय मेवापी नैव स्वयमुदकञ्चल समारम्भे, नैवान्यैरुदकञ्चलं समारम्भयेत्, उदकञ्चलं

इस प्रकार अर्थ को जीव बतलाकर इस उद्देशक के समस्त कवन का उपसंहार करते हैं—'एत्य सत्यं' इत्यादि ।

मूलाय—अण्वय में शब्द का आरम्भ करने वाले को ये आरम्भ श्राव नहीं होते । अण्वय में शब्द का आरम्भ न करने वाले को ये आरम्भ श्राव होते हैं । उन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अर्थ का आरम्भ न करे, दूसरों से आरम्भ न कराव और आरम्भ करने वाले दूसरे को मझ न जाने । जो अण्वय के इस आरम्भ को जानता है वही परिश्रवकर्मा मुनि है । मगवान् से मैंने जो सुना वह कहता है ॥ सू० १६ ॥

अथ प्रमाद्ये जडने एव जतापीनि अथ उद्देशकनां समस्त कवनने उच्यते इति— एत्य इत्यादि

मूलाय—अण्वयमें शब्द का आरम्भ करनेवाला आरम्भ करनेवाला आरम्भ नहीं करता। अण्वयमें शब्द का न कि करनेवाला आरम्भ करनेवाला आरम्भ नहीं करता। तेने जडनी इति बुद्धिमान् पुरुष स्वयं जडने आरम्भ करे न कि जीव पासे आरम्भ करे न कि जडने आरम्भ करनेवाला जीवने जडने जडने न कि जडनेवाले आ प्रमाद्ये आरम्भ जडने से परिश्रवकर्मा मुनि है, जडवान पासेवी के आंजल्युं ते इति ३ (स. १६)

समारभमाणानन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० १६ ॥

। तृतीय उद्देशः समाप्तः ॥ ३ ॥

टीका--

अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्यभावरूपं समारभमाणस्य=व्यापारयतः इत्येते आरम्भाः बन्धहेतुत्वेनापरिज्ञाता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नपकाये शस्त्रं=द्रव्य-भावरूपम् असमारभमाणस्य=अव्यापारयतः इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति । ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः, तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः । ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति दर्शयति-‘तत् परिज्ञाये’-त्यादि । तद्=उदकारम्भणं परिज्ञाय=‘बन्धाय भवती’-त्येवमवबुध्य मेधावी=साधुमर्यादायां सावधान, नैव स्व मुदकशस्त्र समारभेत, नैवान्यैरुदकशस्त्रं समारम्भ-

टीकार्थ—इस अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का व्यापार करने वाला अपने व्यापारों को कर्मबध का कारण नहीं जानता । जो अप्काय के विषय में द्रव्य और भाव रूप शस्त्र का उपयोग नहीं करते, उन्हें इस व्यापारों का ज्ञान होता है । अर्थात् वे ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देते हैं । ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है सो कहते हैं—जल के आरभ को कर्मबध का कारण जानकर साधु की मर्यादा में रहने वाले बुद्धिमान् स्वयं जलकाय का आरभ नहीं करे, दूसरों से आरभ नहीं करावे और जलका आरभ करने

टीकार्थ—आ अप्कायना विषयमा द्रव्य अने भावरूप शस्त्रने व्यापार करवा-वाणा पोताना व्यापारने कर्मबधनु कारणु लक्ष्णता नथी जे अप्कायना विषयमा द्रव्य अने भावरूप शस्त्रने उपयोग करता नथी, तेने जे व्यापारने ज्ञान होय छे अर्थात् ते ज्ञपरिज्ञाथी लक्ष्णने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेने त्याग करी दे छे

ज्ञपरिज्ञा पछी प्रत्याख्यानपरिज्ञा केवा प्रकारे उत्पन्न थाय छे, ते कहे छे—जलना आरभने कर्मबधनु कारणु लक्ष्णी करीने साधुनी मर्यादाभा रडेवावाणा बुद्धिमान स्वय जलकायने आरभ करे नछि, भीज पासे करावे नछि, अने जलने आरभ करवावाणने

येत्, उदकशस्त्रं समारम्भमाणान् अन्यान् अपि न समनुजानीयात् नानुमोदये
दिस्पर्शः । यस्यैते उदकशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा
मुनिर्भवति, इति व्रथीमि, एतद्व्याख्यानं प्राग्बद्धं बोध्यम् ॥ सू० १६ ॥

इत्याचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने
तृतीयोद्देशः समाप्त ॥ १ । ३ ॥

बाबे इसरी का अनुमोदन नही करे । जो उदकशस्त्र के आरम्भ को ध्यानता है वह
परिज्ञातकर्मा मुनि है । 'इति व्रथीमि' का अर्थ पहले की तरह जामना पाहिण ॥ सू० १६ ॥

इति भी आचाराङ्ग सूत्र की 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में प्रथम अध्ययनका
तीसरा उद्देशक समाप्त ॥ १-३ ॥

अनुमोदन आये नहीं, वे उदकशस्त्र आरम्भने लगे थे, ते परिज्ञातकर्मा मुनि थे
'इति व्रथीमि' ने अर्थ पहलेवानां प्रभावे लक्षणे लोभणे. (सू० १६)

इति भी आचाराङ्ग सूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाका
गुजराती अनुवादमा प्रथम अध्ययनने
तीजे उद्देशक समाप्त ॥ १३ ॥



स्वप्नद्वारम्—

ननु तत्रस्वप्नयन्तीवाः सन्तीत्यत्र किं मानम् ? उच्यते—अङ्गाराद्यो जीवन्तीराणि, छेद्यत्वाद्, दृश्यत्वाद्, करषणमादिसमुदायवत् ।

अङ्गारादीनां प्रकाशपरिणामः आत्मपयोगाभिर्भूतः शरीरस्थत्वात्, सद्योत्वेहपरिणामवत् । यथा—रत्नन्यादीं पिच्छिद्रकालं प्राणिविज्ञापस्य स्वद्योत्स्य देहपरिणामो जीवपयोगविशेषात् भवति, एवमङ्गारादीनामपि प्रकाशपरिणामः ।

यदा—अङ्गारादीनामूष्मा आत्मसंमयोगपूर्वकः, शरीरस्थत्वात्, न्वरोप्यवत् ।

उत्सवद्वारम्—

शुद्धा—तेजस्वय के बीजा के अस्तित्व में क्या प्रमाण है ?

समाधान—अंगार आदि, जीव के शरीर हैं, क्योंकि वह छब है मेघ है और पत्र है, जैसे हाथ-पैर आदि का समूह ।

अथवा—अंगार अग्नि की प्रकाशरूप पर्याय, आत्मा के प्रयोग से उत्पन्न हुई है क्योंकि वह शरीर में स्थित है, जैसे—मुगलू के शरीर की पर्याय, जैसे रात्रि बगैरह सात समय में मुगलू नामका प्राणी का शरीरपरिणाम (अमकना) जीव के प्रयोग से प्रकट होता है, उसी प्रकार अंगार अग्नि का प्रकाशरूप परिणाम भी आत्मा के व्यापार से ही उत्पन्न होता है ।

अथवा—अंगार अग्नि की गर्मी आत्मा के व्यापार से उत्पन्न होती है, क्योंकि वह शरीर में है, जैसे न्वर की गर्मी, न्वर की गर्मी जीव से पुष्प शरीर में ही उत्पन्न होती है,

उत्सवद्वारम्—

शुद्धा—तेजस्वयना लुपेना अस्तित्व (होनापक्व)भा ह्यं प्रमाणं उ ?

समाधान—अंगार अग्नि लुपेना शरीर उ केभके ते उव उ सेव उ अने अथ उ केभके ज्ञाय, यत्र आदिने अमूक

अथवा—अंगार अग्निनी प्रकाशरूप पर्याय आत्माना प्रयोजधी उत्पन्न अर्थ उ ? अरुके ते शरीरभा स्थित उ, जेवी रीते—लुगलू (आग्निधे नामना प्राणी)ना शरीरनी पर्याय, जेभ सत्री बजेरे पास अमकभा लुगलू (आग्निधे)नामक प्राणीने शरीर-परिणाम (अमकनु) लुपेना प्रयोजधी प्रकट अथ उ ते प्रमाणे अंगार अग्निना प्रकाशरूप परिणाम यत्र आत्माना व्यापारधी उत्पन्न अथ उ

अथवा—अंगार अग्निनी जरभी आत्माना व्यापारधी उत्पन्न अथ उ अरुके त शरीरभा उ केभके न्वर-तावनी जरभी, न्वर-तावनी जरभी लुपधी मुक्त शरीरभा

अयं भावः—कृतकारितानुमोदितभेदेन, मनोवाक्कायभेदेन, तथाऽतीतानागतवर्तमान-भेदेन च प्रत्येकक्रियायाः सप्तविंशतिभेदा भवन्ति; एवमस्या अपि तेजस्काय-जीवाभ्याख्यानरूपक्रियाया एकस्या एव सप्तविंशतिभेदा भवितुमर्हन्ति । तत्र कस्याश्चिदपि क्रियाया स्वात्मानं न नियुञ्ज्यादिति । उपपद्यतेऽप्ययमर्थः, अन्यथा हि स्वयंकृतस्वैवाभ्याख्यानस्य प्रतिषेधे कारितानुमोदितरूपाणां तेजस्कायजीवाभ्याख्यानरूपक्रियाणां प्रतिषेधाभावः प्रसज्येत । ततश्च तादृशाभ्याख्यानं पापाय न स्यात् । तथाचोत्सूत्रप्ररूपणापत्तिः ।

तात्पर्य यह है—प्रत्येक के कृत, कारित, अनुमोदना, मन, वचन काय, और अतीत, अनागत, वर्तमान के भेद से (इनका परस्पर गुणाकार करने से) सत्ताईस भेद होते हैं । इसीप्रकार इस तेजस्काय का अपलापरूप क्रिया के भी सत्ताईस भेद हो सकते हैं । इन भेदों से किसी भी भेद में आत्मा को जोड़ना न चाहिए । अगर ऐसा अर्थ न लगाया जाता तो यह भी समझ लिया जाता कि—अग्निकाय का स्वय अपलाप न करे, मगर अपलाप कराने और अनुमोदन करने की क्रियाओं का निषेध नहीं है । ऐसा अर्थ सगत नहीं है, क्यों कि ऐसा अर्थ करने से केवल स्वयंकृत अपलापका ही प्रतिषेध होगा, किन्तु कारित और अनुमोदित अपलापका प्रतिषेध नहीं होगा और इस प्रकार का अपलाप पाप का कारण न होगा । फिर तो सूत्र के विरुद्ध प्ररूपणा का दोष आएगा ।

तात्पर्य ये छे—प्रत्येक क्रियांना करवुं—कराववुं अने अनुमोदना, मन, वचन, काया अने भूतकाल, लक्ष्यकाल तथा वर्तमान कालना लेदधी (अनेो परस्पर शुद्धाकार करवार्थी) सत्यावीस लेद थाय छे. अने प्रमाळु आ तेजस्कायना अपलापइय क्रियांना पळु सत्यावीस लेद थर् शकै छे अने लेदोमाथी कौर् पळु लेदमा आत्माने जेठवे जेठअे न्हि, परन्तु अने प्रमाळु अर्थ करवामा न आवे तो अने पळु समथ देवामां आवत कै, अग्निकायने स्वय अपलाप करे न्हि परन्तु अपलाप कराववानी अने अनुमोदन करवानी क्रियाओने निषेध नथी आ प्रकारने अर्थ सगत नथी, हेमके—आवे अर्थ करवार्थी केवण स्वयंकृत अपलापने निषेध थये किन्तु कारित अने अनुमोदित अपलापने निषेध थये न्हि, अने अने प्रकारने अपलाप पापत् करवुं न थाय, पछी तो सूत्रना विरुद्ध प्ररूपणा दोष आवेशे.

“ तेन चित्तमंतमबलाया अपेगनीवा पुढोसत्ता अस्त्य सत्यपरिष्कारं ”
इत्यादि । (दशमै० अ० ४)

परिष्काराद्वारम्—

अग्निक्वायनीवा द्विविधाः, सूक्ष्मबादरमेवात् । तत्र सूक्ष्मनामकर्मोदयात्
सूक्ष्माः । बादरनामकर्मोदयात् बादराः । तत्र सूक्ष्माः द्विधा, पर्याप्ता अपर्याप्ताम् ।
सूक्ष्माः सर्वसोकम्यापिनः । बादरास्तु लोकैश्चदेष्टे सन्ति ।

बादरा अग्निक्वायनी अनेकविधाः—अङ्गारचिरलातशुद्धान्म्यादयः । सर्वे बादरा
अग्निक्वायनी अपि द्विविधाः पर्याप्ता अपर्याप्ताम् । बादराणां यत्रैको जीयस्तत्रा-

‘ तेनैकैव सचित्तं कदा गमा है । उत में अनेक जीव हैं, उनका अस्तित्व अज्ञान-
मय है, शक्तिपरिष्कार अग्नि को छोड़ कर’ इत्यादि । (दशमै० अध्या० ४)

परिष्काराद्वारम्—

अग्निक्वायनी के जीव दो प्रकार के हैं—(१) सूक्ष्म और बादर, जिनके सूक्ष्म नामकर्म
का उदय हो वे सूक्ष्म और जिनके बादर नामकर्म का उदय हो वे बादर जीव हैं । इनमें
से सूक्ष्म के भी दो भेद हैं—पर्याप्त और अपर्याप्त । सूक्ष्म जीव समस्त लोकैश्च
हैं और बादर लोक के एक देश में हैं ।

बादर अग्निक्वायनी अनेक प्रकार के हैं । जैसे—अङ्गार, ज्वाल, ज्वाल (ज्वाल
कुमा कर), सुद अग्नि आदि । सब बादर अग्निक्वायनी भी दो प्रकार के हैं—पर्याप्त

“ तेनैकैव सचित्तं कदा गमा है । उत में अनेक जीव हैं, उनका अस्तित्व अज्ञान-
मय है, शक्तिपरिष्कार अग्नि को छोड़ कर’ इत्यादि । (दशमै० अध्या० ४)

परिष्काराद्वारम्—

अग्निक्वायनी एक दो प्रकारका है—(१) सूक्ष्म अने (२) बादर, जेने सूक्ष्म
नामकर्मो उदय होय ते सूक्ष्म अने जेने बादर नामकर्मो उदय होय ते बादर
एव ए तेमांशी सूक्ष्मना पक्ष वे लोक ए पर्याप्त अने अपर्याप्त सूक्ष्म एव
समस्त लोकैश्चदेष्टे सन्ति ए अने बादर लोकना लोक देशमां ए

बादर अग्निक्वायनी अनेक प्रकारका है, जैसे—अङ्गार, ज्वाल, ज्वाल, सुद
अग्नि जैसे, सब बादर अग्निक्वायनी पक्ष वे प्रकारका है—पर्याप्त अने अपर्याप्त,

यथा—ज्वरोष्मा जीवाधिष्ठितशरीरमेवाश्रित्य भवति, जीवसंयोगं नातिक्रामति । न च मृता ज्वरिणः क्वचिदुपलभ्यन्ते । एवमन्वयव्यतिरेकाभ्यामग्नेः सच्चित्ता विज्ञेया । न च सूर्यादिभिरनेकान्तो वाच्यः, सर्वेषामात्मसंयोगपूर्वक एवोष्ण परिणामो भवति, तस्मादनेकान्तो न संभवति ।

यद्वा--तेजः सचेतनम्, यथायोग्याहारग्रहणेन वृद्धिर्विशेषतद्विकार-वत्त्वात्, पुरुषवत् । एवमुक्तलक्षणेन तेजस्कायजीवाः सन्तीति विज्ञायते ।

यद्वा—अव्यक्तोपयोगादीनि कषायपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिव्यै कायवत् तेजस्कायेऽपि समुपलभ्यन्ते । एवं च जीवलक्षणसद्भावात् तेजस्कायजीवाः सन्तीति निश्चीयते । आगमोऽपि यथा—

जीव के संयोग विना उत्पन्न नहीं होती । मुर्देमें ज्वर कहीं नहीं देखा जाता । इस प्रकार अग्नि में अन्वय—व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता ममशनी चाहिए । यहाँ सूर्य से हेतु में व्यभिचार नहीं है, क्यों कि सब में आत्मप्रयोगपूर्वक ही गर्मी हो सकती है, अतः व्यभिचार नहीं है ।

अथवा—तेज सचेतन है, क्यों कि यथायोग्य आहार ग्रहण करने से उस में वृद्धिरूप विकार देखा जाता है, जैसे पुरुष में । इस प्रकार इस लक्षण से तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व विदित होता है । अथवा अप्रकट उपयोग से लेकर कषायपर्यन्त जीव के लक्षण जैसे पृथ्वीकाय और अप्काय में पाये जाते हैं, उसी प्रकार तेजस्काय में भी पाये जाते हैं । इस प्रकार जीव के लक्षण पाये जाने के कारण तेजस्काय के जीवों का अस्तित्व निश्चित होता है । इसमें आगम प्रमाण भी है—

उत्पन्न थाय छे एवना संयोग विना उत्पन्न थती नथी सुडहामा ज्वर-ताव डेध स्थणे जेवामा आवतो नथी, आ प्रभाषु अग्निमा अन्वय-व्यतिरेकद्वारा सच्चित्ता समजवी जेधये. अर्हि सूर्यथी हेतुमा व्यभिचार नथी केमके सर्वमा आत्मपूर्वकज गरभी डेध शके छे, ज्येदला कारणुथी व्यभिचार नथी

अथवा—तेज सचेतन छे केमके यथायोग्य आहार ग्रहण करवाथी तेनामा वृद्धिरूप विकार जेवामा आवे छे जेवी रीते पुरुषमा आ प्रकारे एवना लक्षण भणवाथी तेजस्कायना एवोनु अस्तित्व जणुवामा आवे छे

अथवा—अप्रकट उपयोगथी लक्षणे कषायपर्यन्त एवना लक्षण जेवामा आवे छे, ते कारणु तेजस्कायना एवोनु अस्तित्व निश्चय डेध छे. आमा आगम प्रभाषु पणु छे—

त्यद्यन्ते, तस्मात् सूक्ष्मा वादराश्च प्रत्येकं पर्याप्तापर्याप्तमेवेन द्विविधा भवन्ति । सर्वे चैते वर्णागन्धरसस्पर्शमेदै सद्वस्त्राग्रशो मिद्यमानाः संख्येययोनिप्रसूतश्चतस्रश्च घमेदपरिमाणा भवन्ति । तत्रप्रां संवृतोष्णा च योनि सच्चित्ताचित्तमिद्यमेवेन विधा । ण्यां सप्त स्रष्ट्यापि योनयो भवन्ति ।

सूक्ष्मवादराणांमृमयेपामग्निकायानां शरीरसंस्थान सूक्ष्मकलापात्कृतिक्म, अन्य शरीरमयादिमदाः पृथिवीकाय यत् । उभयेज्ज्मिकायाः प्रत्येकमसंख्येयाय ।

पर्याप्त के अर्थ ही उत्पन्न होते हैं । अत सूक्ष्म और वादर, प्रत्येक के पर्याप्त और अपर्याप्त के भेद से दो भेद हैं और वर्ण, गंध रस और स्पर्श के भेद से इबारो भेदों को प्राप्त होते हुए इनकी संख्येय योनि वगैरह भेदों की संख्या सप्तों की हो जाती है ।

इनकी योनि संवृत और उष्ण है । वह भी सच्चित्त अचित्त और मित्र के भेद से तीन प्रकार की है । इनकी सात कास योनियाँ हैं ।

सूक्ष्म और वादर—दोनों प्रकार के अग्निक्वाय जीवों के शरीर का आकार सूइयों के समूह की तरह है । शरीरत्रय आदि अन्य भेद पृथ्वीकाय के समान हैं । दोनों प्रकार के अग्निक्वाय असंख्यात—असंख्यात हैं ।

असंख्येय उत्पन्न काय छे जे काश्चुधी सूक्ष्म जने वादर प्रत्येकना पर्याप्त जने अपर्याप्तना दोहरी जे दोह छे जने वयु, अंध, रस जने स्पर्शना दोहरी दोहरी दोहरी पाभवा यका जेनी स्रष्ट्या योनि वजेश जेदानी स्रष्ट्या बाजे यर्ष जय छे

तेनी योनि स्रष्ट जने उच्यु छे ते पयु सच्चित्त अचित्त जने मित्रना दोहरी तयु प्रकारनी छे जेनी सात बाज योनिजो छे

सूक्ष्म जने वादर जने प्रकारना अग्निक्वाय लोचना शरीरना आकार सोपना समूहनी प्रभवे छे शरीरत्रय (तयु शरीर) आदि अन्य भेद पृथ्वीकायनी समान छे जने प्रकारना अग्निक्वाय असंख्यात—असंख्यात छे

संख्येयैर्नियमतो भाव्यम् । वादराणां स्वस्थानं मनुष्यक्षेत्रमेव, न ततः परमस्ति ।

वादरास्तेजस्कायाः व्याघाताभावे सति मनुष्यक्षेत्रेऽर्धवृत्तीयद्वीपसमुद्रेषु पञ्चदशक्षेत्रेषु विद्यन्ते । युगलसमयरूपे व्याघाते सति तु पञ्चमहाविदेहेषु वर्तन्ते, नान्यत्र । उपपाताङ्गीकरणेन लोकसंख्येयभागवर्तिनः सन्ति ।

समुद्घातेन सर्वलोकवर्तिनः पृथिवीकायादयश्च मारणान्तिकसमुद्घातेन समवहता वादराग्निषु समुत्पद्यमानास्तत्तद्व्यपदेशभाजः सर्वलोकव्यापिनः सन्ति ।

यत्र च वादराः पर्याप्तास्त व वादरा अपर्याप्ताः, यतस्ते तन्निश्रयो

और अपर्याप्त । जहाँ एक वादर जीव होता है वहाँ नियम से असख्यात जीव होते हैं । वादर जीवों का क्षेत्र मनुष्यलोक ही है, उससे आगे नहीं ।

वादर तेजस्काय व्याघात (अन्तर) न हो तो मनुष्य क्षेत्र में अर्द्ध द्वीप समुद्रों में पन्द्रह क्षेत्रों में रहते हैं । युगलियों के समयरूप व्याघात (अन्तर) के होने पर पाँच महाविदेहों में रहते हैं, अन्यत्र नहीं । उपघात की अपेक्षा लोक के सख्यात भाग में रहते हैं ।

समुद्घात की अपेक्षा—समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि, मारणान्तिक समुद्घात करके वादर अग्नि में उत्पन्न होते हुए उस—उस व्यपदेश (नाम) के पात्र हो कर सर्वलोकव्यापी हैं ।

जहाँ वादर पर्याप्त हैं वहीं वादर अपर्याप्त हैं, क्यों कि—अपर्याप्त जीव

न्या अेक आदर एव डोय छे त्या नियमथी असख्यात एव डोय छे आदर एवोतु क्षेत्र मनुष्य लोडण छे. तेनाथी आगण नथी

आदर तेजस्काय, अन्तर न डोय तो मनुष्य क्षेत्रमा अर्द्ध द्वीप—समुद्रोमा, पदर क्षेत्रोमा रडे छे युगलियाओना समयरूप अतर डोवा पर पाय महाविदेहोमा रडे छे, अन्यत्र नडि उपपातनी अपेक्षा लोडना सख्यात लागमा रडे छे

समुद्घातनी अपेक्षा समस्तलोकव्यापी पृथ्वीकाय आदि मारणान्तिक समुद्घात करीने आदर अग्निमा उत्पन्न थडने ते—ते व्यपदेश—(नाम)ने पात्र थडने सर्व लोडव्यापी छे

न्या आदर पर्याप्त छे त्याज आदर अपर्याप्त छे, केमडे—अपर्याप्त एव पर्याप्तना

वाटरापर्याप्तयेभ्यः पृथिवीकायेभ्यो वाटरा अपर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणहीना,
 सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना ।
 सूक्ष्मपर्याप्तपृथिवीकायेभ्यः सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया विशेषहीना इति ।

एवं पुत्रयागमपमाणाभ्यामन्नेर्जीवस्वे सिद्धे यदि कबिदम्निकाय
 जीवस्याभ्याभ्याम् कुर्यात्, तर्जुपयोगादिसस्मैरनुमितस्य शरीराधिष्ठातुरात्मताऽ-
 प्यभ्याभ्याम् तत्र कर्तव्यं स्यात्, परन्तु तत्र तचितं मयतीत्यत्र आह-“नैवाऽऽ-
 त्मानमभ्याभ्याया ’-दिति । केनचिदात्मना शरीरमिदं, परिगृहीत, केनचिच्च
 शरीरमिदं परित्यक्तमिति प्रत्यक्षदर्शनादात्मनः शरीराधिष्ठातृत्व सिध्यति ।

वाटर अपर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से वाटर अपर्याप्त तेजस्काय के जीव असंख्यातगुणा
 कम हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्काय के जीव
 विशेष हीन हैं । सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्काय के जीव
 विशेष हीन है ।

इस प्रकार युक्ति और आगमप्रमाण से अग्नि की सर्वोक्ता सिद्ध हो जाने
 पर भी यदि कोई अग्निकाय के जीवों का अपस्वप करता है तो वह उपयोग यदि
 कष्टों से अनुमान किये जाने वाले और शरीर के अधिष्ठाता आत्मा का अपस्वप
 करता है, मगर ऐसा करना उचित नहीं है, बल्कि सूत्रकार कहते हैं-‘ आत्मा का
 अपस्वप न करे ’ । किसी आत्मान यह शरीर प्रकृष्ट किया है और किसी न शरीर का
 त्याग किया है वह बात प्रकृष्ट देखी जाती है । इस से यह सिद्ध हो जाता है कि शरीर,
 अपस्वपारा अधिष्ठित है ।

वाटर अपर्याप्त पृथ्वीकायना लोकोष्ठी वाटर अपर्याप्त तेजस्कायना लोप असंख्यात
 गुणा लोका उ सूक्ष्म अपर्याप्त पृथ्वीकायना लोकोष्ठी सूक्ष्म अपर्याप्त तेजस्कायना
 लोप विशेषहीन उ सूक्ष्म पर्याप्त पृथ्वीकायना लोकोष्ठी सूक्ष्म पर्याप्त तेजस्कायना
 लोप विशेषहीन उ-विशेष लोका उ

आ प्रभावे युक्ति अने आत्रभप्रभाषुधी अग्निनी सल्लपता सिद्ध अर्ध ल्पना
 अर्थात् अग्नि के डोह अग्निकायना लोकोष्ठी अपस्वप करे उ तो ते उपयोग लक्ष्णोष्ठी
 अनुभूत करवाभां आवेता अने शरीरना अधिष्ठाता आत्मानो अपस्वप करे उ परन्तु अने
 प्रभावे अर्धु ते उचित नहीं, तेही सूत्रकार बडे उ- आत्मानो अपस्वप न करे, डोह
 आत्मानो अग्नि शरीर प्रकृष्ट अर्धु उ, अने डोहले शरीरना त्याग कर्षो उ अने वान
 प्रकृष्ट लोकाभां आवे उ तेही अने सिद्ध भाष उ के शरीर आत्माद्वारा अधिष्ठित उ

परिमाणद्वारम्—

वादरपर्याप्तास्तेजस्कायजीवाः क्षेत्रपल्योपमस्याऽसंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति । तदपेक्षया वादरा अपर्याप्तास्तेजस्कायजीवा असंख्यातगुणाः तदपेक्षया सूक्ष्मा अपर्याप्तास्तेजस्काया असख्यातगुणाः, तदपेक्षया सूक्ष्माः पर्याप्तास्तेजस्काया असंख्यातगुणाः सन्ति । पृथिवीकायेन सहाग्निकायस्य परिमाणसमालोचनायां त्वेवमवधेयम्--

ये तेजस्काया वादरपर्याप्ताः क्षेत्रपल्योपमासंख्येयभागमात्रवर्तिप्रदेशराशिपरिमाणाः सन्ति, ते वादरपर्याप्तेभ्यः पृथिवीकायेभ्योऽसंख्यातगुणहीनाः । शेषास्त्रयोऽपि राशयः पृथिवीकायवद् विज्ञेयाः । तत्राय विशेषः—

परिमाणद्वार—

वादर पर्याप्त तेजस्काय के जीव क्षेत्रपल्योपम के असख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों की राशि के बराबर हैं । वादर अपर्याप्त तेजस्काय जीव उनसे असख्यात गुणा हैं, सूक्ष्म अपर्याप्त इनसे भी असख्यात गुणा हैं, और सूक्ष्म पर्याप्त इन से भी असख्यात गुणा हैं । पृथ्वीकाय के साथ अग्निकाय के परिमाण का विचार किया जाय तो इस प्रकार है—

तेजस्काय के जो वादर पर्याप्त जीव क्षेत्रपल्योपम के असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर हैं, वे वादर पर्याप्त पृथ्वीकाय के जीवों से असख्यातगुणा हीन हैं । शेष तीनों राशियाँ पृथ्वीकाय से समान ही समझ लेनी चाहिए । विशेषता सिर्फ इतनी है—

परिमाण द्वार—

आदर पर्याप्त तेजस्कायना एव क्षेत्र-पल्योपमना असख्यातमा भागवर्ती प्रदेशोनी राशिना भराभर छे आदर अपर्याप्त-तेजस्काय एव तेनाथी असख्यात गुण छे सूक्ष्म अपर्याप्त तेनाथी पक्ष असख्यात गुण छे अने सूक्ष्म पर्याप्त तेनाथी पक्ष असख्यात गुण छे पृथ्वीकायनी साथे अग्निकायना परिमाणने विचार करवाभां आवे तो आ प्रकारे छे—

तेजस्कायना जे आदर पर्याप्त एव क्षेत्रपल्योपमना असख्यातमा भागवर्ती प्रदेशोनी भराभर छे, ते आदर पर्याप्त पृथ्वीकायना एवोथी असख्यात गुण हीन छे आकीनी त्रयो राशियो पृथ्वीकायनी समान सम ए देवी जेधये, विशेषता मात्र अटदी छे ई -

स्वपक्षणे प्रवर्धते, स मूढः लोकम्=अधिकायलोकम् अम्यास्याति=
 'अग्निश्चपञ्जीवो नास्ती'-त्यपलपति । अयं भावः-सामान्यरूपणात्मनः सिद्धौ
 तत्त्वमेव हि तस्यात्मनो मेदा पथिनीकायादयः सिध्यन्ति, नान्मया ।
 सामान्यात्मनोऽभ्याख्याने प्रवृत्तः साहसिकः पृथिवीकायादविज्ञेयात्मनोऽभ्याख्यानं
 सुखं कर्तुमर्हतीति ।

अपि चार्यं भावः-करचरबाद्यवत्प्रकृतशरीराभिष्ठाता सुख्यक्तोपयोगादि
 कल्पः स्वात्माऽपि येनाभ्यासपासा, तस्यात्पक्तोपयोगादित्त्वमग्निश्चपञ्जीवोना
 किं नु हुंकर !-मिति ॥ सू० १ ॥

'अधिकाय नहीं है' इस प्रकार अधिकाय का निषेध करता है ।

उत्तरमें यह है कि-सामान्यरूप से आत्मा का अस्तित्व सिद्ध होने पर ही उसके
 पूर्वीकाल आदि में सिद्ध हो सकते हैं अन्यथा नहीं । जो साहसी पुरुष सामान्य आत्मा का
 ही निषेध करने को तैयार हो गया वह पूर्वीकाल आदि विशेष आत्मों का निषेध कर
 वह तो स्वामयिक ही है ।

इससे यह भी आशय निकलता है-हाथ-पैर आदि अङ्गों से युक्त शरीर का
 अस्तित्व और मूर्च्छादि प्रकृत उपयोग आदि कर्मों वाले अपने आत्मा का भी विस्तरे
 निषेध कर दिया उसके लिए अप्रकृत उपयोग आदि कर्मों वाले अधिकाय का निषेध
 करना कौन कहां पाठ है ! ॥ सू १ ॥

नया' का प्रभाव अधिकायने निषेध करे छे

उक्तमें जो छे छे-सामान्यरूपधी आत्मातु अस्तित्व सिद्ध भवामी व तेना
 पूर्वीकाल आदि में सिद्ध वर्ध शक छे अन्यथा-नीछ शीते नहि, जे साहसी पुरुष
 सामान्य आत्मानो निषेध करवा भाटे तैयार वर्ध जवा ते पूर्वीकाल आदि विशेष
 अधिकायने निषेध करे जे ते स्वामयिक छे ।

जोभांशी जे पक्ष आशय निकले छे छे-हाथ-पज आदि अङ्गवांशी सुख्य
 शरीरका अधिकायने न सारी शीते प्रजट उपयोग आदि कर्मवांशी पातान्य
 अधिकायने पक्ष जेवे निषेध करी छे तेने अप्रजट उपयोग आदि कर्मवांशी
 अधिकायने निषेध करने ते छे भाटी चान छे ? (सू १)

एवं च युक्त्यागमसंसिद्धः शरीराधिष्ठाता ज्ञानादिगुणवानयमात्मा कश्चमपि नापलपितुं शक्यः । तस्मादात्मा नास्तीत्येवमभ्याख्यानमात्मनो न कुर्यादित्यर्थः ।

यः खलु मन्दधीः, लोकरुम्=अग्निकायलोकम्, अभ्याख्याति, आत्म-व्रतसर्वप्रमाणसंसिद्धमप्यग्निकायलोकं प्रत्याचष्टे—‘अग्निकायजीवो नास्ती’ति, स आत्मानमभ्याख्याति=स मूढः खलु युक्त्यागमप्रमाणसंसिद्धमात्मानमपलपति ‘आत्मा नास्ती’ति । सर्वप्रमाणसंसिद्धाग्निकायलोकाभ्याख्याने प्रवृत्तस्य सुकरमेवात्मनोऽभ्याख्यानम्, अग्निकायवदेवात्मन्यपि प्रमाणसत्तायास्तुल्यत्वादिति भावः ।

य आत्मानमभ्याख्याति=यच्चात्मनोऽभ्याख्याने ‘आत्मा नास्ती’

इस प्रकार युक्ति और आगम से सिद्ध शरीर के अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणों वाले आत्मा का निषेध नहीं किया जा सकता । अत एव ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध नहीं करना चाहिए ।

जो मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूप लोक का जो आत्मा की भाँति समस्त प्रमाणों से सिद्ध है—निषेध करता है अर्थात् अग्निकाय के जीवों का निषेध करता है वह युक्ति और आगम से सिद्ध आत्मा का निषेध करता है । सब प्रमाणों से सिद्ध अग्निकाय लोक का अपलाप करने पर आत्मा का अपलाप करना सरल ही है, क्यों कि अग्निकाय और आत्मा के अस्तित्व में प्रमाणों का सद्भाव समान है ।

जो मूर्ख ‘आत्मा नहीं है’ इस प्रकार आत्मा का निषेध करता है वह

आ प्रभाषे युक्ति अने आगमधी सिद्ध, शरीरना अधिष्ठाता तथा ज्ञान आदि गुणोवाणा आत्मानो निषेध करी शकतो नथी अटला भाटे ‘आत्मा नहीं’ आ प्रभाषे आत्मानो निषेध करी शकतो नथी अटला भाटे ‘आत्मा नहीं’ आ प्रभाषे आत्मानो निषेध करवो जेध अे नहि

जे मन्दबुद्धि पुरुष अग्निकायरूपलोकने जे जे आत्मा प्रभाषे समस्त प्रभाषोधी सिद्ध छे तेनो, निषेध करे छे, अर्थात् अग्निकायना एवेनो निषेध करे छे, ते युक्ति अने आगमधी सिद्ध आत्मानो निषेध करे छे सर्व प्रभाषोधी सिद्ध अग्निकायलोकना अपलाप करवाधी आत्मानो अपलाप करवो ते सरल छे केभके अग्निकाय अने आत्माना अस्तित्वमा प्रभाषोना सद्भाव समान छे

जे मूर्ख ‘आत्मा नहीं’ आ प्रभाषे आत्मानो निषेध करे छे, ते ‘अग्निकाय

निस्तेषां शक्यं भवति । तस्य खेदः=खेदम्=उपमर्दनजन्यदुःखं ज्ञानातीति खेदः, स एव अशक्तस्य-अशक्तः=संयमः, संयमो हि न व्यापादको भयदो वा कस्यापि त्यक्तस्य भूयते । तस्य खेदः=संयममङ्गमयजनितदुःखानुभवकृद्भक्त । एवं संयमानुष्ठानादेव मुनिर्त्वं सम्भ्यमिति भावः ।

ननु—अयमिदं ज्ञायते दीर्घशोकशब्दाद्यो वनस्पतिरिति ? उच्यते—अयस्यविकासेन, परिमाणेन, शरीरावगाहना वा वनस्पतिकायस्य अन्यैकेन्द्रियोपेक्षया महत्त्वमस्ति । तथाहि—वनस्पतिकायस्य कायस्थितिकाशोऽनन्तः, स चानन्तोत्सर्पिष्यवत्सर्पिणीरूपः, तस्मिन्नसंख्ययाः पुत्रलपरावर्त्ता भवन्ति, ते पुत्रलपरावर्त्ता भावलिङ्गया अर्सस्येये मागे यावन्तः समयान्तावत्प्रमाणाः

जने के कारण अग्नि, वनस्पतिकाय का शक्त है । समय से किसी को विराधना नहीं होती, न वह किसी को मयकारी है, अत एव संयम को अशक्त कहते हैं । संयम के मंग होने के समय से उत्पन्न होने वाला दुःख संयम का खेद कहलता है । इस प्रकार संयम के पास करने से ही मुनिपन होता है ।

शंका—दीर्घशोक शब्द का अर्थ वनस्पति कैसे समझा जाय ?

समाधान—अयस्यविकृति के समय परिमाण और शरीर की अवगाहना से वनस्पतिकाय अन्य एकेन्द्रिय जीवों की अपेक्षा महान् है । वनस्पतिकाय की कायस्थिति का काल अनन्त है, और वह अनन्त ही अनन्त उत्सर्पिणीरूप-अवसर्पिणीरूप है । उसमें अर्सस्येयत्वं पुत्रलपरावर्त्तन होते हैं । वे पुत्रलपरावर्त्तन भावलिङ्ग के अर्सस्येयत्वे मागे में

शरत्तुभी अग्नि वनस्पतिकायनु शक्त छे । समयभी डोडिनी पक्ष विराधना घटी नथी । ते डोडिनी अमकारी नथी । जे अटे समयने अशक्त कडे छे समयने अज यवाना अवधो उत्पन्न यवावाणु दुःख ते समयने जेह कडेवाय छे । अ प्रभावे समयनु अवन करवाधीअ मुनिपदुं होय छे ।

शंका—दीर्घशोक शब्दको अर्थ वनस्पति केली रिति समझ शक्य ?

समाधान—अयस्यविकृतिना समय, परिमाण अने शरीरनी अवगाहनाधी वनस्पतिकाय, अन्य एकेन्द्रिय लोचनी अपेक्षासे महान् छे । वनस्पतिकायनी कायस्थितिना काल अनन्त छे अने ते अनन्त पक्ष अनन्त उत्सर्पिणी-अवसर्पिणीरूप छे । तेमां अज अवाय पुत्रलपरावर्त्तन वाय छे । ते पुत्रलपरावर्त्तन भावलिङ्गाना अज अवाय

अयमग्निकायलोकः स्वात्मवन्नैव अभ्याख्येय इति प्रतिबोधितम्, इदानीमग्निकायजीवोपमर्दानाद् विनिवृत्त एव मुनिर्भग्नितुमर्हतीत्याह—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने, से असत्थस्स खेयन्ने, जे असत्थस्स खेयन्ने से दीहलोगसत्थस्स खेयन्ने ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः, सोऽशस्त्रस्य खेदज्ञः । योऽशस्त्रस्य खेदज्ञः, स दीर्घलोकशस्त्रस्य खेदज्ञः ॥ सू. २ ॥

टीका—

यो भव्यः, दीर्घलोकशस्त्रस्य=दीर्घश्चासौ लोकश्च दीर्घलोकः=वनस्पतिः, तस्य शस्त्रं दीर्घश्लोकशस्त्रम्=अग्निः । वनस्पतिकायस्य दाहकरणेन विनाशकतयाऽ-

अग्निकायलोक, आत्मा की तरह निषेध करने योग्य नहीं है, यह बतला दिया । अब बतलाते हैं कि—अग्निकाय के जीवों की हिंसा से निवृत्त होने वाला पुरुष ही मुनि होता है—‘जे दीह०’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो दीर्घलोक (वनस्पतिकाय) के शस्त्र (अग्निकाय) के दुःख को जानता है वही संयम के खेद को जानता है और जो संयम के खेद को जानता है वह दीर्घलोक के शस्त्र के खेद को जानता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—जो भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पति के शस्त्र—अग्नि के दुःख को जानता है, वही अशस्त्र अर्थात् संयम के खेद को जानता है । वनस्पतिकाय की विराधना

अग्निकायलोक, आत्मानि प्रभाष्ये निषेध करवा योग्य नहीं, ते अतावी आभ्यु छे इवे अतावे छे के—अग्निकायना एवेनी हिंसाधी निवृत्त यवावाणा पुरुषञ्च मुनि होय छे—‘जे दीह०’ इत्यादि

मूलार्थ—जे दीर्घलोक (वनस्पतिकाय)ना शस्त्र (अग्निकाय)ना दुःखने ज्ञेय छे, तेज संयमना जेदने ज्ञेय छे, अने जे संयमना जेदने ज्ञेय छे, तेज दीर्घलोकना शस्त्रना जेदने ज्ञेय छे (सू. २)

टीकार्थ—जे भव्य पुरुष दीर्घलोक अर्थात् वनस्पतिनु शस्त्र अग्निना दुःखने ज्ञेय छे, तेज अशस्त्र अर्थात् संयमना जेदने ज्ञेय छे वनस्पतिकायनी विराधना करवाना

पृष्ठवानुसारी वायुरपि सत्र संमाप्यते, तदेवं वनस्पतिश्चक्षीभूय दहनो बहुतर
धीराभाशपचीति सूचनाय मगवता दीर्घलोकशब्दस्यः परिगृहीत इति ।

यद्वा—दीर्घलोकः=पृथिवीकायादिः, पृथिव्यन्वायुवनस्पतिकायानां
मवस्थितिर्याक्रम द्वाविंशति,—सप्त—त्रि—दश—वर्षसहस्रपरिमाणा, अग्निकायस्य तु
बीत्येवाहोरात्राणि । यथा बादराग्निकायाः पर्याप्तकाः स्वल्पाः सन्ति, अन्ये
पृथिव्यादयः पर्याप्तकाः बहवः सन्ति, अतो दीर्घलोकः पृथिव्यादिस्तस्य
प्रसूम्=अग्निकाय । अग्निरुत्पाद्यमानः मन्वास्पमानो वा पृथिव्यादिजीविसमूहं
पण्डित्वाति तस्य प्रसूत्वम् । अकथम्—

पयो (कोमल) का अनुसारी वायु भी बहो संभव है । इस प्रकार अग्नि वनस्पति का शक्त
हो कर बहुतेरे जीवों का विनाश करता है । यह सूचित करने के लिए मगवान् ने
'दीर्घलोकशब्द' शब्द का अग्नि के लिए प्रयोग किया है ।

अथवा—'दीर्घलोकका' अर्थ पृथ्वीकाय आदि है । पृथ्वीकाय, अप्काय, वायुकाय
और वनस्पतिकाय की अवस्थिति क्रम से बाईस, सात तीन और दस हजार वर्ष की है,
मगर अग्निकाय की तीन रात्रि—दिन ही है । बादर अग्निकाय के पर्याप्त जीव स्वल्प हैं
मगर पृथ्वी आदि के पर्याप्त जीव बहुत हैं । अतः 'दीर्घलोक' शब्द से पृथ्वीकाय आदि
का प्रमाण करना चाहिए और उनका शक्त अग्निकाय समझना चाहिए । अग्नि उत्पन्न होने
ही और बसत ही पृथ्वी आदि के जीवों के समूह का घात करता है, अतः वह पृथ्वी आदि
का शत्रु है । क्या भी है—

अने अथवा केमल पत्ता (३ पत्तों) का अनुसारी वायुने पञ्च त्वां संभव उ आ
प्रभावे अग्नि, वनस्पतिनु शक्त अग्नी प्रसूम् अग्नेना विनाश करे उ आ दक्षिणत
स्वल्प अग्ने अग्नेना दीर्घलोकशब्द शब्दने अग्नि भाटे प्रयोग करे उ ।

अथवा—दीर्घलोकने अथ पृथ्वीकाय आदि उ, पृथ्वीकाय, अप्काय वायुकाय,
अने वनस्पतिकायनी अवस्थिति क्रमधी ज्यवीस सात, त्रय अने इस दशहर वर्षनी
उ वनस्पतिअग्निअग्नी त्रय रात्रि—दिवसक उ नेमके—बाहर अग्निअग्नीना पर्याप्त
अथ स्वल्प उ वनस्पति पृथ्वी आदिना पर्याप्त अथ प्रसूम् उ अने भाटे 'दीर्घलोक'
शब्दधी पृथ्वीकाय आदिनु अकथम् करनु नेमके, अने तेनु शक्त अग्निअग्नी समसूनु
अग्नि उत्पन्न अग्नी अने अग्नीनी अग्नी अग्नी पृथ्वीआदिना अग्नीना
अग्नीना अग्नी करे उ तेधी ते पृथ्वी आदिनु शक्त उ अथ पञ्च उ है—

सन्ति । एतावान् कालो वनस्पतिकाल इत्युच्यते । परिमाणतस्तु प्रत्युत्पन्नवनस्पतिकार्यिकानां निर्लेपना नास्ति ।

शरीरावगाहनया च सातिरेकं योजनसहस्रम् । अतो वनस्पतिकार्यस्य दीर्घलोक इति व्यपदेशः । (प्रज्ञापना १८ पदे)

ननु प्रसिद्धमग्निशब्दं विहाय किमर्थमिह दीर्घलोकशब्दोपादानम् ?
उच्यते—वनस्पतिकार्यदहनप्रवृत्तोऽग्निकार्यो बहुतरप्राणिनां विनाशको भवति, वनस्पतिकार्ये बहुविधाः प्राणिनः कीट पिपीलिका भ्रमरमधुमक्षिकारूपोतादयो निरसन्ति, तरुकोटरेषु पृथिवीकायाश्च, अवश्यायरूपा अप्काया अपि, मृदुतर-

जितने समय होते हैं उतने हैं, इतना काल वनस्पतिकाल कहलाता है । परिमाण से प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकार्यिक जीवों की निर्लेपना नहीं है । इनके शरीर की अवगाहना कुछ अधिक एक हजार योजन है । इसी कारण वनस्पतिकार्य को दीर्घलोक कहते हैं ।

अब प्रश्न हो सकता है कि—प्रसिद्ध 'अग्नि' शब्द को छोड़ कर 'दीर्घलोकशब्द' शब्द का प्रयोग करने की क्या आवश्यकता थी ?

इसका उत्तर यह है कि—वनस्पतिकार्य को जलाने में प्रवृत्त अग्निकार्य और भी बहुत से प्राणियों का विनाश करता है । वनस्पतिकार्य के सहारे कीड़े, चिउटी, भैंरे, मधुमक्खी और कबूतर आदि बहुत से प्राणी निवास करते हैं । वृक्षों की खोंतरों में पृथ्वीकार्य के जीव भी होते हैं । ओसरूप अप्काय भी होता है, और अत्यन्त कोमल

लागमा जेटला समय थाय छे तेटला छे अेटला काण ते वनस्पतिकाल कडेवाय छे. परिमाणथी प्रत्युत्पन्न वनस्पतिकार्यिक लुवेनी निर्लेपना नथी तेना शरीरनी अवगाहना कर्क अधिक अेक हुनर योजन छे आ कारणथी वनस्पति कार्ये 'दीर्घलोक' कडे छे

इवे प्रश्न थर्क शके छे के—प्रसिद्ध अग्नि शब्दने छोडीने 'दीर्घलोकशब्द' शब्दने प्रयोग करवानी शु आवश्यकता हती ? तेना उत्तर अे छे के—वनस्पतिकार्यने जाणवामा प्रवृत्त (आल) अग्निकार्य भीण पणु प्राणीओने विनाश करे छे वनस्पतिना आश्रये कीडा, म कौडा, लभरा, मधमाणी अने कबूतर आदि धणुण प्राणीओ निवास करे छे. वृक्षाना अपोदमां पृथ्वीकार्यना लव पणु डोय छे आकणरूप अप्काय पणु डोय छे.

ठक्तमर्थं हवीकर्तुं विपर्ययेन पुनः कथयति—'योऽश्वस्य खेदह स वीरिलोकस्य खेदहः' इति, व्याख्या पूर्ववत् । ॥ सू० २ ॥

॥ अक्षरम् ॥

ननु येन अश्वेन बहिः लिखते, सत् केन इष्टम् ? अपि चाश्वं समय सम्मिति केन इष्टम् ? इति जिज्ञासायामाह—'वीरेहि' इत्यादि ।

मूलम्—

वीरेहि एयं अमिष्य विदं, संजएहि सया अएहि सया अप्पमचेहि ॥ सू० ३ ॥

छाया—

वीरैः एतत् अमिष्य इष्टम्, सयतैः सदा यतैः सदा अप्पमचैः ॥ सू० ३ ॥

इसी बात को छट करने के उद्देश्य से पुनः अन्यरूप से कहते हैं कि—जो अश्व (संयम) के खेद को जानता है वह वीरिलोकस्य के खेद को जानता है । इस की व्याख्या पहले के समान ही समझनी चाहिए ॥ सू० २ ॥

अक्षरम्—

संका होती है कि—जिस अश्व से अग्नि को खेद होता है वह जिस ने देखा है और समयरूप अश्व जिस ने देखा है ? इसके उत्तर में कहते हैं—'वीरेहि' इत्यादि ।

मूकार्थम्—परिपह उपसर्ग आदि को बीतनेवाले संयत सदा यतन्वान् और सदा अप्पमच रहने वाले वीर पुरुषों ने यह देखा है ॥ सू० ३ ॥

आ वातने एह अश्वना उदेसकी इरी नील इपधी कड उ के—ये अश्व (संयम) ने जेहने जेहने उ ते वीरिलोकस्य जेहने जेहने उ तेनी आश्वना प्रथम खेदी उ ते प्रथमे अमिष्यी जेहने (सू. २)

अक्षरम्—

सदा यत उ के ने अश्वधी अग्निने जेह यत उ ते जेहने जेहने उ ? अने अश्वमरूप अश्व जेहने जेहने उ ? तेना उत्तरमां कडे उ—'वीरेहि' इत्यादि ।

मूकार्थम्—परीपह-उपसर्ग आदिने अश्वना सदा-संयमी सदा यतन्वान् अने सदा अप्पमच रहेवाला वीरपुरुषोंने ते जेहने उ (सू. ३)

“ભૂયાણમેસમાધાઓ હવ્વવાહો ન સંસઓ” । (દશવૈ ૦ ૩ અંગા ૦ ૩૫)

તસ્ય खेदज्ञः=खेदयतीति खेदः=अग्नेर्व्यापारः, अग्निव्यापारो हि पृथिव्यादि-
जीवानां दहनात्मकतया दुःखमुत्पादयतीत्यतः खेद-शब्देन व्यपदिश्यते, तं
जानातीति खेदज्ञः । अग्निकायस्य व्यापारः सर्वप्राणिपीडाकर इति विज्ञाता यः
खलु भवति, स एव अशस्त्रस्य=सप्तदशविधसंयमस्य खेदज्ञः=सयमक्षरणजन्य-
दुःखानुभावकः, अस्तीति शेषः । अग्निकायव्यापारेण पृथिव्यादिजीवानां
विनाशस्तेन संयमक्षरणं, ततश्च मुनित्वविभ्रश इति सर्वस्वनाशकतयाऽग्निव्यापारः
साधूनां ज्ञपरिया विज्ञाय प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिहरणीय इति भावः ।

“यह अग्नि भूतों का घातक है, इसमें संदेह नहीं” । (दशवै ३ अ गा ३५)

उस अग्नि के व्यापार को पृथ्वीकाय आदि का खेद कहते हैं, क्यों कि दाहक होने के कारण वह पृथ्वी आदि को दुःख उत्पन्न करता है । उसे जानने वाला ‘खेदज्ञ’ कहलाता है । ‘अग्निकाय का व्यापार सब प्राणियों को पीडा पहुँचाता है’—जो ऐसा जानता वही पुरुष अशस्त्र का अर्थात् सत्तर प्रकार के सयम के खेद का—सयम के भग से होने वाले खेद का ज्ञाता होता है । तात्पर्य यह है कि—अग्निकाय के व्यापार से पृथ्वीकाय आदि के जीवों का विनाश होता है, और उससे सयमभग होता है, और सयम के भग से मुनिपन का भग होता है । इस प्रकार अग्निव्यापार सर्वस्व का नाशक होने से वह साधुओं के लिए ज्ञपरिज्ञा से जानकर प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्यागने योग्य है ।

“આ અગ્નિ ભૂતોના ઘાતક છે, એમાં સંદેહ નથી” (દશ વૈ. અ. ૩. ગા ૩૫)

આ અગ્નિના વ્યાપારને પૃથ્વીકાયને ખેદ કહે છે કારણ કે દાહક હોવાના કારણે તે પૃથ્વીઆદિને દુઃખ ઉત્પન્ન કરે છે તેને નાણુવાવાળા ‘ખેદજ્ઞ’ કહેવાય છે. ‘અગ્નિકાયને વ્યાપાર સર્વ પ્રાણીઓને પીડા પહોંચાડે છે’ જે આ પ્રકારે નાણુ છે તેજ પુરુષ અશસ્ત્રને અર્થાત્ સત્તર પ્રકારના સયમના ખેદનો—સંયમના ભગથી થવાવાળા ખેદનો જ્ઞાતા—નાણુનાર હોય છે તાત્પર્ય એ છે કે—અગ્નિકાયના વ્યાપારથી પૃથ્વીકાય આદિના જીવોને નાશ થાય છે અને તેથી સયમ ભગ થાય છે, અને સયમના ભગથી, મુનિપણું ભંગ થાય છે આ પ્રમાણે અગ્નિવ્યાપાર સર્વસ્વને નાશક હોવાથી સાધુઓ માટે જ્ઞપરિજ્ઞાથી નાણીને પ્રત્યાખ્યાન પરિજ્ઞાથી ત્યાગવા યોગ્ય છે.

किं कृत्वा तैरेतत् दृष्टं?—मित्याकाङ्क्षायामाह—‘अभिमूय’ इति । परिपक्षोपसर्गात्, ज्ञानावरणीय-दर्शनावरणीय-मोहनीय-अन्तरायान्मयघातिकर्म-वस्तुद्वय च विजित्य केवलं समाप्नोत्यर्थः । कथम्भूतेस्तै ?—रित्याह—संयतैः—सम्-सम्पूज्यकारेण यथा—परमकरुणया ईर्यासमित्यादियत्नान्वन्तस्तैः, सकलपद्मीनि-निष्ठापरिभ्राणपरायणैरित्यर्थः । यतना द्विविधा—प्रमत्तयतना, अप्रमत्तयतना च । अयं प्रमत्तस्य कीदृशी यतना ? उच्यते—रूपायादिनिग्रहिन ईर्याद्युपयोगवत्प्रमत्तयतना कथ्यते ।

अप्रमत्तयतना कपायरहितवचनसाध्या भवति । अत्र अप्रमत्तग्रहणादि-न्द्रियादिप्रमादवर्जनं गृह्यते । यतनाग्रहणाद् यावन्नीचयतना सृज्यते । अत एव

उन्हां ने क्या कर के यह देसा है ? इस शंका का उत्तर है—परीषद् और उपसर्गों को उच्च ज्ञानावरण दर्शनावरण मोहनीय और अन्तराय नामक चार घातिका कर्मों को धौंसकर केवल ज्ञान प्राप्त कर के उन्हां न देसा है ।

ये देखने वाले किस प्रकार के थे ? इसका उत्तर यह है—सम्पूज्य प्रकार से, अथवा करुणापूर्वक ईर्यासमिति आदि का पावन करनेवाले अर्थात् समस्त पदकाव को रक्षा में उत्पर थे । यतना दो प्रकार की है—प्रमत्त की यतना और अप्रमत्त की यतना । प्रमत्त की यतना कैसी होती है ? इसका उत्तर यह है कि—कषाय आदि का निग्रह करने वाला पुरुष ईर्या आदि में जो उपयोग करता है, वह प्रमत्तयतना है । अप्रमत्त की यतना कषायरहित वचनों से होती है । यहाँ अप्रमत्त शब्द से इन्द्रिय आदि प्रमादा का त्याग केना चाहिए । यतना शब्द से यहाँ मावज्जीव यतना का ग्रहण करना चाहिए । अतः

तेभ्ये तुं करीने जेथां छे ? आ शंकाको उत्तर जे छे परीषद् जेने उपसर्गोने उच्च ज्ञानावरण, दर्शनावरण मोहनीय जेने अन्तराय नामका चार घातिका कर्मोने लोकीने केवलज्ञान प्राप्त करीने तेभ्ये जेथां छे

ते जेवावाण्य केवा प्रकाशना कता ? तेने उत्तर—अभ्युपकारे अत्यन्त करुणापूर्वक धीर्यमिति आदिना पावन केषवावाण्य, अर्थात् समस्त पदकावनी रक्षार्थां तेजो उत्पर कता यतना जे प्रकाशनी छे—प्रमत्तनी यतना जेने अप्रमत्तनी यतना, प्रमत्तनी यतना केनी कोथ छे ? तेने उत्तर जे छे के—कषाय आदिना निग्रह केषवावाण्य पुरुष धीर्य आदिमां जे उपसर्गो जेते छे ते प्रमत्तनी यतना छे, अप्रमत्तनी यतना कषायरहित वचनोधी याव छे, अर्थात् अप्रमत्त शब्दो धीन्द्रिय आदि प्रमादोने त्याग देवे जेथे जे, यतना शब्दो अर्थात् उपमावनी यतनानुं प्रकृत कस्तु जेथे जे जे भाटे

टीका—

वीरैरिति । घनघातिकर्मरूपरिपुगणक्षपणानन्तरं लब्धातुलकेवला-
लोकलक्ष्म्या विराजन्त इति वीराः । यथा—राजानश्चतुरङ्गसैन्यसमाहृतं स्वकीय-
भरिवर्गं निहत्य लब्धराज्यविजयलक्ष्म्या विराजमाना वीरा निगद्यन्ते ।
यद्वा—वि=विशेषेण ईरयन्ति=रागाद्यन्तरङ्गमहासुभटान् निवारयितुमनन्ततपोवीर्यं
व्यापारयन्तीति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=शिवगतिं गमयन्ति भव्यजीवा-
निति वीराः । यद्वा—विशेषेण ईरयन्ति=ज्ञानाचारादीन् प्रति प्रेरयन्ति भव्यजीवानिति
वीराः, तीर्थङ्करा गणधराश्च, तैर्वीरैः, एतद्=अग्निकायस्वरूपं, यद्वा—अग्निशस्त्रम्
अशस्त्रं चेति द्वयं दृष्टं=ज्ञानदृष्टय विलोकितम्, अर्थतस्तीर्थङ्करैः, गणधरैस्तु
भगवद्वचनैरिति विशेषः ।

टीकार्थ—घातियाकर्मरूपी शत्रुओं के समूह को नाश करने के अनन्तर अनुपम
केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त होती है । उस लक्ष्मी से जो विराजमान हैं उन्हें वीर कहते हैं ।
जैसे कोई राजा, चतुरग सेना से युक्त शत्रुओं को हराकर प्राप्त राज्य और विजय की लक्ष्मी
से सुशोभित हो कर 'वीर' कहलाते हैं । अथवा राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओं
को रोकने के लिए अनन्त तपोवीर्य का प्रयोग करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा भव्य
जीवों को विशेषरूप से मुक्ति की ओर प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं । अथवा
विशेषरूप से ज्ञानाचार आदि की ओर भव्य जीवों को प्रेरित करने वाले 'वीर' कहलाते हैं ।
ऐसे वीर तीर्थंकर गणधर आदि हैं । उन वीरों ने अग्नि के स्वरूप को अथवा अग्निशस्त्र
और अशस्त्र को ज्ञानदृष्टि से देखा है । अर्थ से तीर्थंकरों ने और उन के वचनों के अनुसार
गणधरों ने देखा है ।

टीकार्थ—घाति—कर्मरूपी शत्रुओंना समूहना नाश कथोना अनन्तर
अनुपम केवलज्ञान रूपी लक्ष्मी प्राप्त थाय छे ते लक्ष्मीथी के विराजमान छे तेने
वीर कहे छे जेभू केरि राज, चतुरग सेनाथी युक्त (चार प्रकारनी सेना सहित)
शत्रुओंने हरावीने प्राप्त करेले राज्य अने विजयरूप लक्ष्मीथी सुशोभित अनी 'वीर'
कहेवाय छे, अथवा—राग-द्वेष आदि आन्तरिक महायोद्धाओंने शकवावाणाने 'वीर'
कहे छे अथवा लव्य लोकोने विशेषरूपथी मुक्तिनी तरङ्ग प्रेरित करवावाणा 'वीर'
कहेवाय छे अथवा विशेषरूपथी ज्ञानाचार आदिनी तरङ्ग लव्य लोकोने प्रेरित
करवावाणा 'वीर' कहेवाय छे जेवा वीर तीर्थंकर अने गणधर आदि छे, ते वीरोंने
अग्निना स्वरूपने अथवा अग्निशस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञानदृष्टिथी जेया छे. अर्थथी
तीर्थंकरोंने जेया छे. अने तेमना वचनो अनुसार गणधरोंने जेया छे.

तत्पदेकादिकं च । मावच्छं ह्य-अग्निं प्रति दुष्प्रतिहितमनोवाकायक्यम् । शेषाणि
 प्रथिवीकायवद् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्य प्रमादवशादुपमोमावमन्निकायजीवानुपमवर्षति, तत्कस्माद्—'जे' इत्यादि ।

सूत्रम्—

जे प्रमत्ते गुणद्विष से इ ददेति पशुत्वम् ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स स्वतः दम्भ इति प्रोच्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः—विषयकापायाविमत्तवशतः सन् गुणार्थिकः मयती
 स्पन्दयः । गुणः—अग्निकायकृतोपकारः स एवार्थः—प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स
 एव गुणार्थिकः, स्वान-पचन-मकाश-सापनादिप्रयोजनमयान् मचति । यत्रा-

(अग्ने) आदि से मिली अग्नि तथा गर्भ अग्नि का उभयकायवश है । अग्नि के
 प्रति कुछ मन बचन और कावका प्रवर्तन भाववश है । शेष द्वार प्रथिवीकाय के समान समझने
 चाहिए ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के वश होकर उपमोम के निमित्त अग्निकाय के जीवों की किराफना करने वाले
 को होने वाला पशु कहते हैं—'जे' इत्यादि ।

सूत्रार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुण का अर्थ-संख्या आदि में स्थित-है,
 वह उसके लिए दम्भ कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—विषय कथय आदि प्रमादों के अतीत होकर पुरुष गुणार्थी होता है ।
 अग्निप्रय द्वारा होने वाला उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थ
 गुणार्थिक कहा जाता है । संख्या पचन, उपास करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

यथा वरुण अग्निं उभयकायवश से अग्निं प्रतिदुं कुछ मन बचन करने काचनु
 प्रवर्तन से कावका से आधीन द्वार प्रथिवीकायनी समान अरुण-समवशा अग्नेः (सू. ३)
 प्रमादने यथा यर्ष उपमोमना निमित्ते अग्निप्रयना लोचनी विशाधना इत्या
 यचने से हुए वाच से-अग्ने से ते हुए कहे से ज' इत्यादि.

सूत्रार्थ—जो प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थ-संख्या विवेकमें स्थित-है ते
 जेना भाटे दम्भ कहेवाच से. (सू. ४)

टीकार्थ—विषय कथय आदि प्रमादोंने आधीन बधने पुरुष अकार्थी वाच से
 अग्निप्रय द्वारा वचवाये उपकार तेने अग्निं शुद्ध कहेवार्थ आये से आ शुद्धने
 अर्थ ते शुद्धार्थिक कहेवाच से संख्या-पचन-उपास-कृत अग्नि-अग्निना शुद्ध से

सद=सर्वदा यतैः=चरणकरणविषये निरतिचारतया यत्नवद्धिः, तथा-सदा=सर्वकाले अप्रमत्तैः=विषयकषायादिवर्जितैः । एवम्भूतैर्वीरैरग्निकायस्वरूपं तदीयशस्त्रमशस्त्रं च दृष्टमित्यर्थः ।

ननु किं नामाग्निशस्त्रम् ? उच्यते-अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम् । तत् किं-स्वरूप ?-मितिचेत्, अत्रधेहि-अग्निशस्त्रं तावद् द्विधा-द्रव्य-भावभेदात् । तत्र द्रव्यशस्त्रं त्रिविधम् स्वकायपरकायोभयकायभेदात् । स्वकायशस्त्रं-अग्निकायस्याग्निकाय एव, यथा-तृणाग्निः, पर्णाग्निः शस्त्रम् । परकायशस्त्रं-धूलिरापश्च, आर्द्रश्व-वनस्पति, त्रसाः प्राणिनश्च । उभयकायशस्त्रं तुषकरीषादिमिश्रोऽग्निरन्यस्याग्नेः,

सर्वदा चरणसत्तरी और करणसत्तरी में अतिचाररहित यतना करने वाले तथा सदैव विषय-कषाय आदि प्रमाद से रहित वीर पुरुषोंने अग्निकाय के स्वरूप को तथा उसके शस्त्र और अशस्त्र को देखा है ।

शङ्का—अग्निशस्त्र क्या है ?

समाधान—अग्नि की विराधना करने वाला शस्त्र अग्निशस्त्र कहलाता है । उसका स्वरूप क्या है ? सो इस प्रकार समझो-द्रव्य और भाव के भेद से अग्नि शस्त्र दो प्रकार का है । इनमें से द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं-स्वकाय-शस्त्र, परकाय-शस्त्र और उभयकाय-शस्त्र । अग्निकाय का स्वकायशस्त्र अग्नि ही है, जैसे तिनके की अग्नि, पत्तों की अग्नि का शस्त्र है । धूलि और पानी आदि अग्निकाय का परकायशस्त्र है । गीली वनस्पति भी परकायशस्त्र है और त्रस पाणी भी । तुष (छिलका) और करीष

सर्वदा अरथु सीतेरी अने करथुसीतेरीमा अतिचाररहित यतना करवावाणा तथा उमेशा विषय-कषाय आदि प्रमादथी रहित वीर पुरुषोअग्ने अग्निकायना स्वरूपने तथा तेना शस्त्र अने अशस्त्रने ज्ञेया छे

शङ्का—अग्नि शस्त्र अे शु छे ?

समाधान—अग्निनी विराधना करवावाणु शस्त्र ते अग्निशस्त्र कडेवाय छे तेनुं स्वरूप डेवुं छे ? ते आ प्रमाथे समजने-द्रव्य अने लावना वेदथी अग्निशस्त्र अे प्रकारना छे, तेमाथी द्रव्यशस्त्रना त्रथु वेद छे स्वकायशस्त्र परकायशस्त्र, अने उभयकायशस्त्र. अग्निकायनु स्वकायशस्त्र अग्निअ छे जेम तणुपानी अग्नि, पादडानी अग्निनु शस्त्र छे धूल अने पाणी आदि अग्निकायनु परकायशस्त्र छे वीली वनस्पति यणु परकायशस्त्र छे अने त्रस प्राणी यणु परकायशस्त्र छे तुष अने छणु आदिथी भजेदी अग्नि

तप्तोदकादिकं च । मावसत्त्वं तु-अग्निं प्रति दुष्पयिहितमनोवाकायक्यम् । शेषाणि
 शृङ्गीकायवत् बोध्यानि ॥ सू० ३ ॥

यस्य प्रमादबलादुपमोमावमन्निकायजीवानुपमर्दयति, तत्कस्तमाह- 'जे' इत्यादि ।

मूलम्—

जे प्रमत्त गुणद्विप से हु दहेति पञ्चुप्यह ॥ ४ ॥

छाया—

यः प्रमत्तः गुणार्थिकः (गुणस्थितः) स त्सु दण्ड इति मोक्ष्यते ।

टीका—

यो हि प्रमत्तः-विषयकायायादिप्रमादबलगतः सन् गुणार्थिकः भवती
 त्प्रमत्तः । गुणः-अग्निकायकृतोपकारः स एवार्थः-प्रयोजनं यस्य स गुणार्थी, स
 एव गुणार्थिकः, रत्न-पत्न-प्रकाश-साधनादिप्रयोजनयान् भवति । यद्वा-

(अग्ने) कादि से मिली अग्नि तथा गर्म कर अग्नि का उभयकायशक्त है । अग्नि के
 प्रति कुछ मन बन्धन और कायका प्रवर्तन मावसत्त्वं है । शेष शर शृङ्गीकाय के समान समस्त
 पाश्चि ॥ सू० ३ ॥

प्रमाद के बल होकर उपमोहा के निमित्त अग्निकाय के बीजों की विराधना करने वाले
 को होने वाला फल कहते हैं- 'जे' इत्यादि ।

मूलार्थ- जो प्रमादी पुरुष अग्नि के गुणों का अर्थ-संभना आदि में स्थित-है,
 वह उसके लिए दण्ड कहलाता है ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ-विषय कथाय आदि प्रमादों के अधीन होकर पुरुष गुणार्थी होता है ।
 अग्निप्रय शर होने वाला उपकार यहाँ गुण कहा गया है । इस गुण का अर्थ
 गुणार्थिक कहलाता है । संभना पकाना उभावा करना आदि अग्नि के गुण हैं । जो

तथा अरम अल अग्निं उभावाकायशक्तं च अग्निं प्रतिनुं कुछ मन, पत्न अग्ने कायानुं
 प्रवर्तनं ते वावसत्त्वं च जाहीना शर शृङ्गीकायनी समान अलअर-समन्वा लोभंजे. (सू. ३)

प्रमादने वश अर्थ उपलब्धयन्त्र निमित्ते अग्निकायना एवोनी विराधना करवा
 यणने ने ह्य वाय छ-भजे छ. ते ह्य कहे छ 'जे' इत्यादि.

मूलार्थ- जो प्रमादी पुरुष अग्निना अर्थ-संभनुं विविधमां स्थित-छ ते
 जेना भाटे इ इ कहेवाय छ (सू. ४)

टीकार्थ-विषय कथाय आदि प्रमादों के अधीन बधने पुरुष गुणार्थी वाय छ
 अग्निप्रय शर वचनाना उपकार तेने अग्निं शुभ कहेवायां आन्वे। छ अत सुपुने।
 अर्थो ते शुभार्थिक कहेवाय छ संभनु-पकानुं, उभावा छ करनुं आदि अग्निप्रय शुभ छ.ने

‘गुणस्थितः’ इति च्छाया, तेन गुणेषु=अग्निगुणेषु रन्धनपचनादिषु, शब्दादिषु वा स्थितः=आसक्तः, रन्धनाद्यर्थमग्निमुत्पादयति प्रज्वालयति यथाकथञ्चिदुपमर्दयतीत्यर्थः । स मनोवाक्कायस्य दुष्पणिधानेनाग्निशस्त्रसमारम्भकरणेन चाग्न्यादीनां प्राणिनां दण्डं प्रति कारणभूतत्वाद् दण्ड इति प्रोच्यते, कारणे कार्योपचाराद्, दण्डवत् प्राणिनां हिंसकतया दण्ड इति निन्दनाम्ना लोके प्रसिध्यतीति भावः ॥ सू० ४ ॥

एवं विज्ञायाग्निशस्त्रसमारम्भाद् विनिवर्तितव्यमित्याह—‘तं’ इत्यादि ।

मूलम्—

त परिणाय मेधावी इयाणि णो जमहं पुव्वमकासी पमाएणं ॥ सू० ५ ॥

छाया—

त परिज्ञाय मेधावी इदानीं नो यदहं पूर्वमकार्षं प्रमादेन ॥ सू० ५ ॥

पुरुष इन गुणों में अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयों में आसक्त है अर्थात् रांधने आदि के लिए अग्नि उत्पन्न करता है, जलाता है और किसी भी प्रकार उसका हनन करता है, वह पुरुष अपने मन, वचन, काय के दूषित व्यापार के कारण तथा अग्निशस्त्र का समारम्भ करने के कारण अग्नि के जीवों के दडका कारण होने से दण्ड कहलाता है। कारण में कार्य का उपचार करने से दड के कारणभूत पुरुष को दड कहते हैं। लोक में उस पुरुष की ‘दड’ इस निन्दनीय नाम से प्रसिद्धि होती है ॥ सू० ४ ॥

अब बतलाते हैं कि पूर्वोक्त कथन जानकर अग्निशस्त्र के समारम्भ से वचना चाहिए—‘ते’ इत्यादि ।

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकाय के समारम्भ को जानकर बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे कि—प्रमाद के वश होकर मैंने पहले जो किया सो अब नहीं करूंगा ॥ सू० ५ ॥

पुरुष आ शुष्णोभा अथवा शब्द आदि इन्द्रियविषयोभा आसक्त छे अर्थात् रांधना आदिने भाटे अग्नि उत्पन्न करे छे, भाणे छे, अने कौछ पणु प्रकारे तेनु डनन करे छे, ते पुरुष पोताना मन, वचन अने कायाना दूषित व्यापारना कारणे तथा अग्निशस्त्रने समारम्भ करवाना कारणे अग्निना लुपेने दडनु कारणे होवाथी दड छडेवाय छे कारणे कार्येने उपचार करवाथी दडना कारणेभूत पुरुषने पणु दड छडे छे होकमा ते पुरुषनी ‘दड’ आ निन्दनीय नामथी प्रसिद्धि थाय छे (सू ४)

इवे पतावे छे के—पूर्वोक्त कथन लखीने अग्निशस्त्रना समारम्भथी पणुवु लोछे—‘त’ इत्यादि

मूलार्थ—अग्निकाय अथवा अग्निकायना समारम्भने लखी बुद्धिमान् पुरुष निश्चय करे के—प्रमादना वश थडने मे पडेला ने क्युं छे ते इवे नहीं करे (सू ५)

टीका—

मेधावी—ब्रह्मभारणादिगुणवान्, यद्वा—साधुमर्षादारसौख्ये साधधाना, यद्वा—
 हेयोपादेयविवेकनिपुणः, तम्=अग्निकाम्यं, यद्वा तम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं दृष्टवानाम
 पृष्ठप्रदं पग्निद्राय=शुपरिश्रया च चकारणत्वेन, प्रत्याख्यानपरिश्रया हेयत्वेन पर्यासोच्य,
 प्रतिमानीते—अहं=मिथ्यात्वादिमलिनान्तःकरणः प्रमादेन=विषयकषायादिममादपश्रुतः
 यम्=अग्निशस्त्रसमारम्भं पूर्वम्=महानावस्थापाम्, अकार्यम्=कृतवान्, यच्छ्रोत्रिस्त्य-
 साकाङ्क्षत्वात् तम् इदानीम्=संप्रति प्रव्रज्यावस्थापाम् नो=नैव करिष्य इति
 श्लेषः ॥ सू० ५ ॥

अथ सर्वथाऽग्निशस्त्रसमारम्भपरिस्वागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्र
 समारम्भे प्रवृत्तान् द्रव्यभिक्षिन्निश्च विदिष्य प्रतिशोषयितुमाह—'लज्जमाणा' इत्यादि ।

टीकार्थ—प्राण और भारणादिक गुणों से युक्त, अथवा साधुओं की मर्षाएं की
 रखा करने में साधधान अथवा हेय और उपादेय के विवेक में निपुण पुरुष अग्निकाम्य अथवा
 अग्निकाम्य के समारंभ को जानकर अर्थात् उपरिष्ठा से उसे कर्मवर्ष का कारण समझकर और
 प्रत्याख्यानपरिष्ठा से हेय समझकर इस प्रकार प्रतिष्ठा करते हैं—मिथ्यात्व आदि विकारों के
 वश होकर मैंने अज्ञानदश में अग्निकाम्य का समारंभ किया था । वह समारंभ अब दौष्टा-
 भवस्था में नहीं कर्केगा ॥ सू० ५ ॥

अग्निशस्त्र का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारा तथा अग्निशस्त्र के समारंभ में
 प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यभिक्षी पुरुषों को अस्मा अस्मा कर के समझाते हैं—'लज्जमाणा' इत्यादि ।

टीकार्थ—ब्रह्मण्य अने भारणादिक सुखोधी युक्त अथवा साधुजनों की मर्षाएँ
 तथा इत्यांसां सावधान, अथवा हेय अने उपादेयता विवेकमां निपुण पुरुष अग्निकाम्य
 अथवा अग्निकाम्य समारंभने लक्ष्मीने अर्थात् उपरिष्ठाधी तेने कर्मवर्षं कारण
 समझने अने प्रत्याख्यानपरिष्ठाधी हेय—(आत्म) समझने आ प्रभावे प्रतिश्र
 करे छे—मे अज्ञान इत्यांसां मिथ्यात्व आदि विकारोंने वश लक्ष्मी अग्निकाम्ये समारंभ
 कर्के छेते; ते समारंभ छेवे दौष्टा-अवस्थांमां नर्की छे (सू. ५)

अग्निशस्त्रने सर्वथा त्यज करवावण्य अनुभवे तथा अग्निशस्त्रना समारंभमा
 भवति करवावण्य द्रव्यभिक्षी पुरुषोंने अस्मत्—अस्मत् करीने समभवते छे—अस्माज्जा-पुत्रादि
 प. भा -७१

शोचि एगे पवयमाणा, जमिणं विरुवरुवेहि
 समारंभमाणा अणो अणोगरुवे पाणे

हया—

अतगाराः स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिम विरुप-
 अग्निशस्त्रं समारंभमाणा अन्यान् अनेकरूपान् प्राणिनो
 ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अग्निशस्त्रं=अग्निकायसमारम्भे परमकरुणया द्रवीभूतहृदयतया संकुचिता-
 अग्निशस्त्रसमारम्भपरित्यागिन इत्यर्थः, पृथक्=विभिन्नाः, केचित् प्रत्यक्ष-
 भाषिणोऽभिमतःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भावितात्मानोऽतगाराः

भूतार्थ—अग्निकाय के आरभ में सकोच करने वालों को अलग समझो। और
 'हम अतगार हैं' ऐसा कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रों द्वारा अग्निकर्म का समारभ करने
 वाले दूसरे (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—अत्यन्त दया के कारण अग्निकाय के समारभ में हार्दिक सकोच
 करने वाले, इसी कारण अग्निशस्त्र के समारभ के त्यागी अलग हैं, उन में कोई अवधि-
 क्षानी हैं, कोई मन-पर्ययज्ञानी हैं, कोई केवलज्ञानी हैं। कोई परोक्षज्ञानी भावितात्मा

भूतार्थ—अग्निशस्त्रना आरभमा संकोच करवावाणाने अलग समझे, अने
 'अग्नि शस्त्रगार छीये' ये पशु छडेवावाणा नाना प्रकारना शस्त्रो द्वारा अग्निकर्मनो
 समारंभ करवावाणा भीन (द्रव्यलिङ्गी) अनेक प्रकारना प्राणीयेनी हिंसा करे छे (सू ६)

टीकार्थ—अत्यन्त दयाना कारणे अग्निशस्त्रना समारभमा हार्दिक संकोच
 करवावाणा, अज करणुथी अग्निशस्त्रना समारभना त्यागी अलग छे—भूदा छे येमा
 केछ अवधिज्ञानी छे, केछ मन पर्ययज्ञानी छे, केछ केवलज्ञानी छे केछ परोक्षज्ञानी
 भावितात्मा शस्त्रगार छे. ते सर्व सूक्ष्म अने आदर अग्निशस्त्रनो समारंभ करवाभां

स्वीति पश्य । इमे सूक्ष्मवाद्ग्निकायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरत्र
विषेणैरग्निकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते तानवस्योक्त्येत्यर्थः ।

एके पुनरन्य तु 'वयमनगाराः स्मः' इति सामिमानं प्रकृतमानाः 'वयमेवा
अग्निकायप्रीवरक्षणपरा महाप्रतभारिभः' इति प्रथपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृषक्त
पृषक्तमात्रेण पश्य ।

इमे स्वरथनगारासामिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते,
नापि गृहस्यकृत्य किञ्चित् परित्यजन्ति, इति दर्शयति-'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्-यस्माद् विकल्पस्यैः=विभिन्नस्वरूपैः द्रव्यमात्रमेवमिन्नैः शस्त्रैः=
अग्निकायशस्त्रैः, अग्निकर्मसमारम्भेण=भ्रमेणः कर्मसमारम्भः अग्निकर्मसमारम्भः=

भ्रमण है । य सब सूक्ष्म और बाहर अग्निकाय का समारंभ करने में मील-इतने बाधे हैं,
शस्त हैं उद्विग्न हैं और हीन करण हीन योग से अग्निकाय के समारंभ के त्यागी हैं,
उन्हें देखो ।

इन से विपरीत दूसरे श्रेण 'हम अनगार हैं, हमीं अग्निकाय की रक्षा
में उत्तर हैं, महाप्रती हैं' इस प्रकार अग्निमान के साथ प्रकृत करते हुए द्रव्यलिङ्गी हैं,
उन्हें समझ समझो ।

अनगार होने का अग्निमान करने वाले ये श्रेण साधुमा का तनिक भी कर्तव्य नहीं
करते और न गृहस्वकार्य का त्याग करते हैं ।

ये श्रेण तरह-तरह के द्रव्य और मात्र रूप अग्निकाय के शस्त्रों से अग्निकर्म का

धीत-अवधान से प्रकृत से, उद्विग्न से अने प्रकृतकरण, प्रकृतयोगशी अग्निकायना
समारंभना त्यागी से तेने लुभे।

जोनाभी विपरीत (उपर कहा तेनाभी उलगे व्यवहार करनारा) जीव्य होइ
'अने अज्ञानर धीमे, अने अग्निकायनी रक्षाभा तत्पर धीमे, महाप्रती धीमे,
जे प्रभासे अग्निमाननी साथे प्रलाप करे से ते द्रव्यलिङ्गी से तेने अलग समझे.

अज्ञानर होवानु अग्निमान करवावाजा आ होइ साधुजोना अज्ञानर कर्तव्यने
करवा नहीं अने वृद्धरचना कार्योना त्याग करवा नहीं.

ते होइ तरेक-तरेकना द्रव्य अने मात्ररूप अग्निकायना शस्त्रोभी अग्निकर्मनी।

अग्नि निमित्तीकृत्य ज्ञानावरणीयाद्यष्टविधकर्मबन्धनिबन्धनसावधव्यापारस्तेन, इमम् = अग्निकायं विहिंसन्ति ।

अग्निकायहिंसायां प्रवृत्ताः खलु षड्जीवनिकायरूप लोक सर्वमेव विहिंसन्तीत्याह—‘अग्निशस्त्र’—मित्यादि । अग्निशस्त्रम् = अग्न्युपमर्दकं शस्त्रम्, तत् पूर्वोक्तप्रकारं द्रव्यभावभेदमिन्नं समारम्भमाणाः = अग्निकायं प्रति व्यापारयन्तः अन्यान् त्रसाश्च विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, यथा—‘वयं पञ्चमहाव्रतधारिणः सर्वारम्भपरित्यागिनः षड्जीवनिकायरक्षका अनगाराः स्मः’ इति वदन्तो दण्डि-शाक्यादयः सन्ति । ते चात्मानमनगारं प्रवदमाना नानगारगुणेषु लेशतोऽपि प्रवर्तन्ते ।

आरम्भ कर के अर्थात् अग्नि के निमित्त से ज्ञानावरण आदि आठ कर्मों का कारणभूत सावध व्यापार कर के अग्निकाय की हिंसा करते हैं ।

अग्निकाय की हिंसा में प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवों की हिंसा करते हैं, यही बतलाते हैं—अग्नि का घात करने वाले—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र का अग्नि के विषय में प्रयोग करने वाले अग्निकाय के अतिरिक्त अन्य पृथ्वीकाय आदि स्थावरों की तथा द्वीन्द्रिय त्रस जीवों की हिंसा करते हैं ।

ससार में बहुत से द्रव्यलिङ्गी हैं । ‘हम पञ्चमहाव्रतधारी, समस्त आरंभ का त्याग करने वाले और षट्काय के रक्षक अनगार हैं । इस प्रकार कहने वाले दण्डी शाक्य आदि हैं । वे अपने को अनगार कहते हुए भी लेशमात्र भी अनगार के गुणों में प्रवृत्ति नहीं करते ।

आरम्भ करीने अर्थात् अग्निना निमित्तार्थी ज्ञानावरण आदि आठ कर्मोंना कारणभूत सावध व्यापार करीने अग्निकायनी हिंसा करे छे

अग्निकायनी हिंसामा प्रवृत्त पुरुष षट्कायरूप समस्त जीवोनी हिंसा करे छे, ज्येण अतावे छे—अग्निने घात करवावाणा—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रने अग्निना विषयमा प्रयोग करवावाणा अग्निकाय साथे भीन्न पृथ्वीकाय आदि स्थावरोंनी तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवोनी हिंसा करे छे

ससारमा धर्षणं द्रव्यलिङ्गी छे, ‘अने पञ्चमहाव्रतधारी समस्त आरम्भने त्याग करवावाणा अने षट्कायना रक्षक अगुगार छीजे,’ आ प्रकारे कहेवावाणा दण्डी शाक्य आदि छे ते चोताने अगुगार कहेता थका पणु लेशमात्र अगुगारना गुणोमा प्रवृत्ति करता नथी

शाक्यादयः पचन-पाचन-प्रतापन-प्रकाशाद्यर्थमग्निर्कर्मसमारम्भं कर्षन्ति, कारयन्ति, कर्षणोऽनुमोदयन्ति च, तेन पट्कायजीविराराधका भवन्ति ।

दृष्टिमोक्षपि- 'वयं पञ्चमहाव्रतधारीणो जिनवचनाराधका भगवाराः स्मः' इत्यादि प्रकृतमानाः साध्याभासाः सावधमुपदिशन्तः शास्त्रनिषिद्धमध्यग्निकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

इत्यन्ते हि-शास्त्रव्याख्यानादौ देवकुलादौ प्रतिमाप्रतिश्रयादिप्रतिश्रयादौ च धूपदीपहवनानादिमिराग्निकर्मसमारम्भं कारयन्तो दृष्टिजन एवं कर्मयन्ति च-स्नानादिना पुण्यैर्पुण्य पायसापूपलहृहाकादिभिर्विभिन्नैर्वेद्यैश्च प्रतिमापूजा

शक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि के लिए अग्निर्कर्म का समारम्भ करते हैं, कारते हैं और करते हुए का अनुमोदन करते हैं, अतः व पट्काय के विराधक हैं ।

दृष्टी करते हैं- हम पंचमहाव्रतधारी हैं जिनवचन क आराधक भगवारा हैं । ये साध्याभास साधक का उपदेश देते हैं और शास्त्रनिषिद्ध अग्निर्कर्म का समारम्भ कराते हैं ।

शाक के व्याख्यान आदि में देवकुल आदि में, प्रतिमा प्रतिश्रय और प्रतिश्रया आदि में धूप दीप और हवन आदि द्वारा अग्निर्कर्म का आरम्भ कराते हुए वही देव जाते हैं । व ऐसा करते हैं- स्नान कराकर पुण्यो से धूप से लीर से, पुण्य से, तथा लहृहा आदि से तथा विभिन्न प्रकार के नैवेद्य से प्रतिमा की पूजा करती

शाक्य आदि पचन, पाचन, तापन तथा प्रकाश आदि भाटे अग्निर्कर्मने समारम्भ करे छे कशावे छे अने करनारने अनुमोदन आपि छे. तेसी ते पट्कायना विराधक छे

इदी ठडे छे डे - अने पञ्चमहाव्रतधारी जीजे, जिनवचनना आराधक अनुभार जीजे. जे साध्याभास सावधने उपदेश आपि छे अने शास्त्रनिषिद्ध अग्निर्कर्मने समारम्भ कशावे छे

शाक्यना व्याख्यान आदिमां देवकुल आदिमा, प्रतिमा प्रतिश्रय तथा प्रतिश्रया आदिमां धूप, दीप अने हवन आदि द्वारा अग्निने आरम्भ करवला केव तेवा इदी नेवामां आपे छे ते जेभ ठडे छे डे- स्नान करवने पुण्यो धूपधी, लीरधी भातपुण्य तथा लहृहा आदिधी तथा विभिन्न प्रकारना नैवेद्यधी प्रतिमानी पूजा करवी जेछे जिन

कर्तव्येत्यादि । पुनः—जिनस्य वामपार्श्वे धूपः स्थापनीयः, दक्षिणपार्श्वे घृतपूर्णः प्रज्वलितः प्रदीपः स्थाप्यः, पायसापूपघृतपूरलड्डूकादि नैवेद्यमपि पुस्तः स्थापनीयमित्यादि । तच्च विनाग्निर्कर्मसमारम्भ नोपपद्यते । ओषध्यर्थं काथादि, शुण्ठिकादि, पातुमुष्णोदक, भोक्तुं विविधाहारं च कारयन्तीति ॥ सू० ६ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—‘तत्थ’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवत्या परिष्णा पवेइया । इमस्स चेव जीवियस्स परिवंदण-
माणण-पूयणाए जाइमरणमोयणाए दुक्खपडिघायहेउं से सयमेवे अगणिसत्थं

चाहिए । जिन भगवान् के वैई (डावी) ओर धूप रखना चाहिए और दाहिनी (जिमणी) ओर घी से भग जलता दीप रखना चाहिए । सामने खीर, मालपूआ, घेवर और लड्डू आदि नैवेद्य रखना चाहिए ” । ये सब अग्निर्कर्म का समारम्भ किये विना नहीं हो सकते । वे लोग ओषधि के लिए काथ वगैरह, सौठ का पाक आदि, पीने के लिए गर्म जल और खाने के लिए विविध प्रकार के आहार बनवाते हैं ॥ सू० ६ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थखलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—इस विषय में भगवान् ने बोध दिया है । इसी जीवन के लिए, वन्दन, मानना और पूजा के लिए, जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, तथा दुःखों का निवारण करने के लिए वह स्वयं अग्निशत्रु का आरम्भ करता है, दूसरों से अग्निशत्रु का

लगवाननी डाभी तरइ धूप राभवेो न्नेधंअे अने ज्मएणी तरइ घीनेो लरेदो भणतो
दीपक राभवेो न्नेधंअे सामे भीर, मालपूआ, घेवर अने लाडु आदि नैवेद्य राभवं
न्नेधंअे अे सर्वं अग्निर्कर्मना समारल कथां विना थर्ध शकता नथी ते दोक
ओषधी भाटे क्वाथ वगेरे, सुंठना पाक आदि, पीवा भाटे गरम जल अने भावा
भाटे विध-विध प्रकारना आहार भनावरावे छे (सू ६)

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—‘तत्थ खलु’ इत्यादि

मूलार्थ—आ विषयमा लगवाने बोध आय्ये छे आ जवन भाटे वदन, मानन,
अने पूजने भाटे, जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे तथा दुःखानु निराकरण करवा भाटे
ते पाते अग्निशत्रुना आरल करे छे, पील पासे अग्निशत्रुना आरल करावे छे, अने

समारंभः, अग्नेर्हि वा अग्निसत्त्वं समारंभावेह, अग्ने वा अग्निसत्त्वं समारंभमात्रे
समनुजायते, त से अहियाए, त से अबोहीए ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तत्र स्वच्छ भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य वैष जीवितस्य परिधन्दनमान्न
पूजनाय आतिमरणमोक्षनाय दुःस्वप्रतिपातहेतुं स स्वयमेव अग्निशक्तं समारंभते,
अप्येनौ अग्निशक्तं समारम्भयति, अन्यान् वा अग्निशक्तं समारंभमाणान् समनुजानाति,
सु तस्याहिताय, तद् तस्याबोधये ॥ सू० ७ ॥

टीका—

तत्र=अग्निशक्तसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=सम्पगबोधः स्वच्छ
प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मबन्धसमुन्नेदार्यं जीवेन परिज्ञाऽप्यथ क्षरणीकरबीयेति
भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपमोगद्धारम्—

श्लोकः कस्मै प्रयोजनान्याग्निशक्तपुपमर्दयती ?—स्याह—‘अस्य वैष जीवितस्ये’

आरंभ करता है और अग्निशक्त का आरंभ करने वाले दूसरे का अनुमोदन करता है, तो
यह उस के अहित के लिए है, यह अबोध के लिए है ॥ सू० ७ ॥

टीकार्थ—अग्निशक्त के समारंभ में श्री महावीरने सम्पक् उपदेश दिया है । आशय
नहीं है कि—कर्मबंध का नाश करने के लिए जीव को परिज्ञाका अध्ययन अवश्य लेना चाहिये,
ऐसा उपदेश दिया है ।

उपमोगद्धार—

किस प्रयोजन से लोग अग्निशक्त को हिंसा करते हैं यह बतलाते हैं—इसी

अग्निशक्तने आरंभ करवावाण जीवने अनुमोदन करे तो ते कोना (पीढाना)
अहित भाटे छ, ते अग्निशक्तिने भाटे छ (सू, ७)

टीकार्थ—अग्निशक्तना समारंभमां श्री महावीरे सम्पक् उपदेश आये छ.
आशय के छ है—कर्मबंधने नाश करवा भाटे छवे परिज्ञाने आशय अवश्य लेवे
लेखके लेवे। उपदेश आये छ

उपमोगद्धार—

इया प्रयोजनभी लोक अग्निशक्तनी हिंसा करे छ. को जताने छ—अ लखनपुर

त्यादि । अस्यैव क्षणभङ्गुरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थं प्रकाशकरणार्थम्, ओदनादिरन्धनार्थं, धूमयानादिगतिसिद्धयर्थं चेत्यर्थः । तथा-परिवन्दन-मानन-पूजनाय-परिवन्दनं=प्रशंसा तदर्थं, यथा-अग्नियन्त्रेण 'आतिशवाजी' इति-भाषामसिद्धे क्षणनश्वरस्फुल्लिङ्गवृष्ट्यादौ, मानन=जनसत्कारः तदर्थं, यथा-भृपादीन् प्रसादयित्वा दीपमालादीपवृक्षनिर्माणादौ । पूजन=रत्नरत्नादिपुरस्कारलाभस्तदर्थं, यथा-देवप्रतिमाद्यर्थं भृपादीपारात्रिककरणादौ । तथा-जातिमरणमोचनाय=जन्म-मरणबन्धमोचनार्थं, यथा-हवनादौ, दुःखप्रतिघातहेतुम्=वातरोगापनयनार्थं गीतापनोदनार्थं ज्वरविषूचिकादिनिवृत्त्यर्थं च दहनप्रतापनादौ, स=नश्वरजीवन-सुखाद्यर्थी स्वयमेव अग्निशस्त्रम्=अग्न्युपमर्दक द्रव्यभावगत्तं समारभते=व्यापारयति ।

क्षणमङ्कुर जीवन के सुख के लिए, प्रकाश करने के लिए, चावल आदि पकाने के लिए, रेल आदि चलाने के लिए, तथा अपनी प्रशंसा के लिए, जैसे-अग्नियन्त्र से क्षणविनश्वर चिन्तनगारियाँ बरसाने के लिए अर्थात् 'अतिशवाजी' के लिए जन-सत्कार के लिए जैसे-राजा वगैरह को प्रसन्न करने के उद्देश्य दीपमालिका जलाना या दीपकों के वृक्ष की रचना करना, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार पाने के लिए, जैसे-देवप्रतिमा आदि के लिए धूप-दीप आदि करना । तथा जन्म मरण से मुक्त होने के लिए, जैसे हवन आदि में, दुःखों का प्रतीकार करने के लिए, जैसे-वातरोग हटाने के लिए, ठंड दूर करने के लिए तथा ज्वर एव विषूचिका दूर करने के लिए डाम देना या तपाना आदि कार्य करने में । इन सब प्रयोजनों के लिए इस जीवन के सुख का अर्थी पुरुष स्वयं द्रव्य

शुवनना सुभ भाटे, प्रकाश करवा भाटे, योभा आदि राधवा भाटे, रेल आदि बलाववा भाटे तथा चोतानी प्रशंसा भाटे, जेमके-अग्नियन्त्रथी क्षणविनश्वर चिन्तनगारीयो बरसाववा भाटे अर्थात् 'आतिशवाजी' भाटे, जनसत्कार भाटे, जेम-राज वगैरने प्रसन्न करवाना उद्देश्यथी दीपमालिका जगाववी अथवा दीपकोना वृक्षनी रचना करवी, तथा वस्त्र, रत्न आदि पुरस्कार प्राप्त करवा भाटे जेम-देवप्रतिमा आदि भाटे धूप-दीप आदि करवु, तथा जन्म-मरणथी मुक्त थवा भाटे जेम-शुवन आदिभा, दुःखोना प्रतिकार करवा भाटे जेम-वातरोग हटाववा भाटे, ठंडी हर करवा भाटे तथा ज्वर-ताप अने डेलेरा हर करवा भाटे डामवु-आदि कार्य करवाभा, आ सर्व प्रयोजनो भाटे आ शुवनना सुभना अर्थात् पुरुष चोते द्रव्यभाव इय अग्निशस्त्रो

अग्न्यैर्षा अग्निशस्त्रं समारम्भयति=उद्योदयति । अन्याम् वा अग्निशस्त्रं समारम्भयान् अनुमानाति=अनुमोदयति । तत्=अग्निहायसमारम्भं, तस्य=अग्निहायसमारम्भं कर्त्तव्यं, अरपितुं, अनुमोदयितुम्, अद्विषाय भवति, तथा तत्, तस्य अर्पणं=सम्पत्कामाय, भवति ॥ सू० ७ ॥

येन तु तीर्थंकरादिसमीपेऽग्निहायस्वीवस्वरूपं परिघातं स एवं विभावयतीत्यादि-
- 'से त' इत्यादि ।

मूकम्—

से तं संबुद्धमात्रे आपत्नीयं समुदाय सोम्या स्तु भगवतो अणमा राणां वा अतिष्ठ, इहमेगसिं गायं भवइ-एत स्तु गंधे, एत स्तु मोहे, एत स्तु मार, एत स्तु परए, इत्येव गच्छि मीय अमिषं विरूपरुवेहिं सरयेहिं

मायारूप अग्निहाय का आरंभ करता है दूसरो से आरंभ करवाता है और आरंभ करने वाले को अनुमोदन करता है । यह अग्निहाय का आरंभ करने, करने और अनुमोदन करने वाले के अहित और सम्पत्त्व की प्राप्ति के लिए होता है ॥ सू० ७ ॥

जिस ने तीर्थंकर आदि से अग्निहाय का स्वरूप समझ लिया है वह इस प्रकार विचार करता है—'से त' इत्यादि ।

मूलाय—शे पुत्र्य तीर्थंकर भगवान् या उनके अनुगामी से उपदेश सुनकर आरंभ करके विचारता है, वह इस प्रकार सोचता है—संसार में किन्हीं-किन्हीं को ही यह ज्ञान होता है कि—यह प्रेम है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है ।

आरंभ करे छे नीला पासे आरंभ करवे छे अने आरंभ करवावाजाने अनुमानन अपि छे—आ अग्निहायने आरंभ करनार, करवानार अने करनारने अनुमानन आपनारना अहित अने सम्पत्त्वनी प्राप्ति भाए जाव छे (स. ७)

वेदु तीर्थंकर आदि पासेही अग्निहायनु स्वरूप समझ लीपु छे ते आ प्रभावे विचार करे छे—से त' इत्यादि ।

मूलाय—शे पुत्र्य तीर्थंकर भगवान् अथवा तो तेभ्या अनुगामी पासेही उपदेश संकली आरंभ करीने विचार छे—ते आ प्रभावे विचार छे हे—स आरंभ होइ-होइनेव आ अनुगामी होव छे हे—आ अथ छे आ मोह छे आ मार-भूत्ये छे ।

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेरुक्खे पाणे विहिंसस
॥ सू० ८ ॥

टिप्पणी—

स तत् संवृष्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा
अन्तिके, इहेकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष
खलु नरकः, इत्यर्थं गृहो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावधयोगविरतिरूपं चारित्र्यं
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संवृष्यमानः=अहितावधि-
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृह्य लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निर्कर्म का आरंभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र्य को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के
समारम्भ को अहितकर और अवोषिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से

आ नरक छे गृह्यलोक नाना प्रकारना शस्त्रोथी अग्निर्कर्मने समारम्भ करीने अग्नि
शस्त्रने व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीयोनी हिंसा करे छे (सू ८)

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा तेभना अणुगारोनी सभीप
उपदेश सांभलीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्र्यने स्वीकार करीने विचर छे ते
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अवोषिकर समझ ले छे

ते आ प्रभाषे विचारे छे के—आ मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशथी

संभाससम्यग्बोधवैराग्याणामात्माविनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?
-त्याकाङ्क्षायामाह—'एष स्वच्छ प्रन्वः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः, स्वच्छ=निश्चयन, प्रन्वः=अध्यते=वध्यतेऽपेनेति-
प्रन्वः=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणं कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशक्तिसमारम्भ एव
कर्मबन्धरूपो प्रन्व इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः
मोहः=विपर्ययः=अज्ञानम् । तथा-एष एष मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-
एष मरकः=नरकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-मरकरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि
पुनःपुनरेतदर्थमेव, लोकाः=अज्ञानपञ्चवर्ती जीवः गृहः=लिप्सुरस्ति । यथा-गृहः=

जिन्हें सम्पन्नान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्माओं पुरुषों को ही विदित होता है ।
यथा विदित होता है सो कहते हैं—'यद् भवति' इत्यादि ।

यह अग्निशक्त का समारम्भ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबन्ध है । कारण में कार्य
का उपचार करने से अग्निशक्त के समारम्भ को ही कर्मबन्ध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ
कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार अग्रे भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारम्भ मोह
है-विपर्यय है-अज्ञान है ।

तथा यह समारम्भ मृत्युरूप है-निगोद आदि मरणरूप है । और यह मरक है-मरक
की दश प्रकार की यातनाओं का स्थान है ।

कर्मबन्ध मोह, मरण और नरक रूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानो

लेने सम्भवतः आने वैराग्य उत्पन्न नहीं जये । ते आत्माओं पुरुषोंके अज्ञानका
दोष है तु अज्ञानका दोष है ? ते कहे है- आ अथ है आदि.

आ अग्निशक्तने आरंभ निश्चय-नश्चिन् आठ प्रकारका कर्मबन्ध है कारणभा
कारणो उपचार इत्यादी अग्निशक्तने सम्भारकने कर्मबन्ध कहे है वास्तविक होते
आ सम्भारक कर्मबन्धु कारण है आ प्रभावे आरंभ पञ्च समस्त हेतु जेधने तथा
आ सम्भारक मोह है-विपर्यय-अज्ञान है तथा आ सम्भारक मृत्युरूप है-निगोद
आदि मरणरूप है आने आ नरक है-नरकनी इस प्रकारकी यातनाओंके स्थान है.

कर्मबन्ध मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानो

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूवे पाणे विहिंसद
॥ सू० ८ ॥

हाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा
अन्तिके, इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निश्चय आदानीयम्=उपादेय सर्वसावधयोगविरतिरूपं चारित्रं
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, संबुध्यमानः=अहितावधि-
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरम्भ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों की हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अनगारों के निकट उपदेश
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के
समारम्भ को अहितकर और अवोषिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

आ नरक छे, गृद्धलोक नाना प्रकारना शस्त्रोधी अग्निकर्मने समारम्भ करीने अग्नि
शस्त्रेना व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे (सू ८)

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा तेमना अष्टागारोनी समीप
उपदेश सांभलीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्रेना स्वीकार करीने विचरे छे ते
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अवोषिकर समझ ले छे

ते आ प्रभावे विचारे छे छे—आ मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थेना उपदेशधी

संज्ञातसम्यग्बोधोपपैराभ्यामात्माविनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?
—त्याकाङ्क्षायामाह—‘एष स्वच्छ प्रन्वः’ इत्यादि ।

एषः=अग्निस्तत्रसमारम्भः, स्वच्छु=निश्चयेन, प्रन्वा=अध्यते=अध्यतेऽमेनेति-
प्रन्वा=अष्टविधकर्मबन्धः । कारणे कार्योपचारात् अरण्यभूतोऽग्निस्तत्रसमारम्भ एव
कर्मबन्धरूपो प्रन्व इत्युच्यते । एवमप्रेक्ष्यपि बोध्यम् । तथा—एषः=अग्निस्तत्रसमारम्भः
मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा—एष एव मारः=मरणं—निगोदादिमरुत्तरूपः । तथा—
एष नरकः=नारकजीवानां दशविधपातनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं पौरदुःस्वप्नं प्राप्यापि
पुनःपुनरेतदर्थमेव, सोऽहः=अज्ञानबन्धवर्ती जीवः गृह्यः=लिप्सुरस्ति । यद्वा—गृह्यः=

किन्हीं सम्प्राप्तान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है उन आत्मार्थी पुरुषों को ही विदित होता है ।
जसा विदित होता / सो कहत हैं—‘यह सब है’ इत्यादि ।

यह अग्निस्तत्र का समारंभ निश्चय ही आठ प्रकार का कर्मबंध है । कारण में कार्य
का उपचार करने से अग्निस्तत्र के समारंभ को ही कर्मबंध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ
कर्मबंध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समबन्ध चाहिए । तथा यह अग्निस्तमारंभ मोह
है—विपर्यास है—अज्ञान है ।

तथा यह समारंभ मृत्युरूप है—निगोद आदि मरणरूप है । और यह नरक है—नरक
की दश प्रकार की यातनस्थानों का स्थान है ।

कर्मबंध मोह, मरण और नरक रूप वीर दुःस्वप्नमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

लेने अभ्यस्तान आने वैराग्य उत्पन्न बंध जयो छे, ते आत्मार्थी पुरुषोनेक लक्षणमा
कोय छे शुं लक्षणमां कोय छे ? ते कहे छे—‘आ ज्ञेय छे आदि.

आ अग्निस्तत्रेण आरभ निश्चय-नश्चैव आह प्रकाशना कर्मबंध छे कारणमां
कार्थिने उपचार इत्यादी अग्निस्तत्रेण समारंभनेक कर्मबंध कथो छे वास्तविक शीते
अ समारंभ कर्मबंधेन कारण छे आ प्रत्ये आत्मन पञ्च समष्ट तेन लेधये. तथा
आ समारंभ मोह छे—विपर्यास-अज्ञान छे तथा आ समारंभ मृत्युरूप छे—निगोद
अदि मरणरूप छे आने आ नरक छे—नरकनी दश प्रकारनी यातनास्थानेन स्थान छे

कर्मबंध, मोह, मरण आने नरकरूप वीर दुःस्वप्नमय फल प्राप्त करीने पञ्च

अगणिकम्मसमारम्भेणं अगणिसत्थं समारम्भमाणे अण्णे अणेगरूत्ते पाणे विहित्त
॥ सू० ८ ॥

छाया—

स तत् सवुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा
अन्तिके, इहैकेपां ज्ञात भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष
खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकाः, यदिमं विरूपरूपैः शस्त्रैः अग्निकर्मसमारम्भेण
अग्निशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विद्धिनस्ति ॥ सू० ८ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्थङ्करस्य, अनगाराणाम्=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानाम् वा
अन्तिके श्रुत्वा=उपदेशं निशम्य आदानीयम्=उपादेय सर्वसावधयोगविगतिरूपं चारित्रं
समुत्थाय=अङ्गीकृत्य विहरति स तत्=अग्निकायसमारम्भणं, सवुध्यमानः=अहितावोधि-
जनकत्वेन विज्ञाता भवति ।

स हि एवं विभावयति—इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेश-

गृद्ध लोक नाना प्रकार के शस्त्रों से अग्निकर्म का आरभ करके अग्निशस्त्र का व्यापार करता
हुवा अन्य भी अनेक प्रकार के प्राणियों को हिंसा करता है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष भगवान् तीर्थङ्कर अथवा उन के अगारों के निकट उपदेश
सुनकर सर्वसावधयोग के त्यागरूप चारित्र को स्वीकार कर के विचरता है, वह अग्निकाय के
समारम्भ को अहितकर और अवोधिकर समझ लेता है ।

वह इस प्रकार सोचता है—इस मनुष्य लोक में, श्रमण निर्ग्रन्थो के उपदेश से

आ नरक छे गृद्धदोष नाना प्रकारना शस्त्रोधी अज्जिठभन्ने समारम्भ करीने अग्नि
शस्त्रोधी व्यापार करता थका अनेक प्रकारना प्राणीओनी हिंसा करे छे (सू ८)

टीकार्थ—जे पुरुष भगवान तीर्थंकर अथवा तेभना अष्टुगारोनी सभीप
उपदेशे सांभलीने सर्वसावधयोगना त्यागरूप चारित्रोनी स्वीकार करीने विचरे छे ते
अग्निकायना समारम्भने अहितकर अने अवोधिकर समझ ले छे

ते आ प्रभावे विचारे छे के—आ मनुष्य लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशधी

संज्ञातसम्यग्गतदोषवैराम्यानामारम्भानामच, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवती ?
 -त्याकाङ्क्षायामारम्भ- 'एष स्रष्टुं प्रपः' इत्यादि ।

एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः, स्रष्टुं=निश्चयन, ग्रन्थः=ग्रन्थिते=ग्रन्थितेऽनेनेति-
 ग्रन्थः=ग्रन्थविकर्मण्यन्वयः । कारणे कार्योपचारात् कारणभूतोऽग्निशक्तिसमारम्भ एव
 कर्मवन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः=अग्निशक्तिसमारम्भः
 मोहः=विपर्यासः=अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोत्रादिमरणरूपः । तथा-
 एष मरकः=मारकजीवानां दक्षविषयादनास्थानम् ।

इत्यर्थः=एतदर्थे, कर्मवन्ध-मोह-मरण-मरकरूप घोरदुःखफलं प्राप्यापि
 पुनःपुनरेतदर्थमेव, हाकाङ्क्षा=अज्ञानवधुषर्ती बीजाः गृह्य=ठिप्पुरस्ति । यथा-गृह्यः=

किंही सम्पन्न और वैरम्य रूप हो गया है उन आत्माधीं पुरुषों को ही विदित होता है ।
 क्या विदित ज्ञाता ' सो कहते हैं- 'यद् मद् है' इत्यादि ।

यह अग्निशक्त का समारम्भ निश्चय ही अष्ट प्रकार का कर्मवन्ध है । कारण में कार्य
 का उपचार करने से अग्निशक्त के समारम्भ को ही कर्मवन्ध कहा है, वास्तव में यह समारम्भ
 कर्मवन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए । तथा यह अग्निसमारम्भ मोह
 है-विपर्यास है-अज्ञान है ।

तथा यह समारम्भ मृत्युरूप है-निगोत्र आदि मरणरूप है । और यह मरक है-मरक
 की वरा प्रकार की वातनाशो का स्थान है ।

कर्मवन्ध मोह मरण और मरक रूप वारे दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी

जने सम्पन्न करने वैरम्य रूप-न भव जयो, ते आत्माधीं पुरुषोनेन जलुवाभां
 कोषे उं शुं जलुवाभा कोषे उं ? ते कहे उ- आ भव उ आदि.

आ अग्निशक्तने आरभ निश्चय-नश्रीन आठ प्रकारना कर्मवन्ध उ कारवृत्तं
 कर्मने उपचार कस्याधी अग्निशक्तना समारम्भनेन कर्मवन्ध कही उ वास्तविक होते
 आ समारम्भ कर्मवन्धनुं कारवृ उ आ प्रभवे आगत पक्ष समल वेधुं जेधये, तथा
 आ समारम्भ मोह उ-विपर्यास-अज्ञान उ तथा आ समारम्भ मृत्युरूप उ-निगोत्र
 आदि मरणरूप उ जने आ मरक उ-मरकनी इस प्रकारनी वातनाशोनुं स्थान उ

कर्मवन्ध मोह, मरण जने मरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पक्ष

भोगाभिलाषी लोकः=संसारी जीवः इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=कर्मबन्धमोहमरणनरकार्य-
मेव प्रवर्तते इति शेषः ।

अयं भावः—भोगाभिलाषी लोकः शरीरादिपरिपोषणार्थं परिवन्दनमाननपूज-
नार्थं जातिमरणमोचनार्थं दुःखप्रतिघातार्थं चाग्निशस्त्रसमारम्भं करोति, तत्फलं खलु
कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपमेव लभते, तस्मादाग्निशस्त्रसमारम्भस्य तदेव फलं
बोध्यमिति ।

‘लोकः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ?
इति जिज्ञासायामाह—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=नानाविधैः शस्त्रैः=पूर्वोक्तप्रकारैः अग्निकर्म-

जीव वार-वार इसी की इच्छा करते हैं । अथवा भोगों का अभिलाषी संसारी जीव ईश
कर्मबन्ध, मोह मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्त होते हैं ।

तात्पर्य यह है—भोगों का अभिलाषी लोक शरीर आदि का पोषण करने के
लिए, वदना, मानना और पूजा के लिए जन्म-मरण से मुक्त होने के लिए और दुःख का
प्रतीकार करने के लिए अग्निशस्त्र का समारम्भ करता है और फलस्वरूप कर्मबन्ध, मोह,
मरण और नरक रूप फल पाता है । अत एव अग्निशस्त्र के समारम्भ का फल वही बन्ध
आदि समझना चाहिए ।

‘लोक वार-वार कर्मबन्ध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करता है’ यह जो कहा है सो
कैसे ज्ञात हुआ ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—

क्यों कि वह नाना प्रकार के पूर्वोक्तशस्त्रों से अग्नि की विराधना करने वाला

अज्ञानी एव वारवार तेनीञ्च धृष्ट्वा करे छे अथवा-लोगोना अबिलाषी संसारी
एव आ कर्मबन्ध, मोह, मरण अने नरक भाटेञ्च प्रवृत्त थाय छे

तात्पर्य अे छे-लोगोना अबिलाषी माणुसो शरीर आदितु पोषणु करवा भाटे
वदना, मानना अने पूजने भाटे, जन्ममरणुथी मुक्त थावा भाटे अने दुःखने
प्रतिकार करवा भाटे अग्निशस्त्रने समारम्भ करे छे अने इलस्वरूप कर्मबन्ध, मोह,
मरण अने नरकरूप इलने प्राप्त करे छे अेटला भाटे अग्निशस्त्रना समारम्भतु इल
ते भध आदि समञ्वा लेछि अे

दोष वार-वार कर्मबन्ध वगेरे भाटेञ्च प्रवृत्ति करे छे अेवुं न् कछु ते केवी
रीते लणुवाभा आण्यु ? आ प्रमाणे लज्ञासा थावाथी कहे छे—

दुभक्ते तो नाना प्रकारना पूर्वोक्त शस्त्रोधी अग्निनी विराधना करवावाणा सावध

समारम्भेण=अभ्युपमर्दनरूपसावध्यापारेण, इमस्=अग्निदाय विहितस्ति । तथा अग्निब्रह्मं समारम्भमाणः=व्यापारयन् अभ्यान्=पृथिवीकायादीन्, अनेकस्थान्=अस्तान् स्वापराम्, प्राधान्=माभिनो, विहितस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ८ ॥

अग्निब्रह्मं समारम्भमाणा अनेकविधान् जीवान् कथं विहितस्ति ? उत्पत्ति शेषपितृं श्रीसुधर्मा स्वामी प्राह-‘ से धमि ’ इत्यादि ।

मूखम्—

से धेमि-सति पाप्मा पुहवीनिस्सिया तपनिस्सिया पचनिस्सिया कट्ट निस्सिया गोधयनिस्सिया कयवरनिस्सिया, संति संपादमा पाणा आइष संपयंति, अगमि य लल्ल पुढा एगे संधायमावन्नेति, जे तत्थ संधायमान जति,

समय व्यापार कर के अग्निदाय की हिंसा करता है और अग्निदाय का आरंभ करता हुआ अन्य पृथ्वीदाय आदि नाना प्रकार के रथावर एव प्रस प्राणिमां का पात करता है ॥ सू० ८ ॥

अग्निदाय का आरंभ करने वाले अनेक प्रकार के जीवों की विराधना किस प्रकार करते हैं । यह समग्रान के शिष्य श्रीसुधर्मा स्वामी कहते हैं-‘ से धेमि ’ इत्यादि ।

मूखार्थ-बड़ी ही कहता हूँ-जीव पृथिवी के आश्रित हैं, तृण के आश्रित हैं, पत्तों के आश्रित हैं, काष्ठ के आश्रित हैं गोबर के आश्रित हैं कृपर के आश्रित हैं; संप्रतिम जीव अचानक आकर अग्नि में पड़ जाने हैं, कोय-कोय अग्नि का झूठ सिद्ध

व्यापार करीने अग्निदायनी हिंसा करे छे अने अग्निदायने आरंभ करवा साथे साथे पृथ्वीदाय आदि नाना प्रकारना प्रस लये जे प्रभाजे रथावर प्राणीजोना पात करे छे (स. ८)

अतिशयने आरंभ करवापाणा अनेक प्रकारना लकनी विराधना क्या प्रकारे (कैनी शक्ति) कर छे ? ते अमभववा भाटे, श्री सुधर्मा स्वामी कह छे- से धमि इत्यादि ।

मूखाथ-ते दुं कट्टु छे-एव पृथ्वीना आश्रित छे तृणने आश्रित छे पत्ता-पदमने आश्रित छे लकमने आश्रित छे छाणने आश्रित छे कयराने आश्रित छे य पानिपञ्च अमानक मारीने अग्निमां पडी लव छे जे सकेआरं अथ छे त

ते तत्थ परियावज्जंति जे तत्थ परियावज्जंति ते तत्थ उदायंति ॥ सू० ९ ॥

छाया—

तद् ब्रवीमि—सन्ति प्रागाः पृथिवीनिश्रिताः तृणनिश्रिताः पत्रनिश्रिताः काष्ठनिश्रिताः गोमयनिश्रिताः कचवरनिश्रिताः, सन्ति सपातिमाः प्राणाः आहत्य संपतन्ति, अग्निं च खलु स्पृष्टा एके संघातमापद्यन्ते, ये तत्र संघातमापद्यन्ते ते तत्र पर्यापद्यन्ते, ये तत्र पर्यापद्यन्ते ते तत्रापद्रावन्ति ॥ सू० ९ ॥

टीका—

तद्=अग्निकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रणश्यन्ति, तद् ब्रवीमि=कथयामि, पृथिवीनिश्रिताः=पृथिवीरूपं कायमाश्रित्य वर्तमानाः पृथिवीकायिका इत्यर्थः । 'पृथिवीनिश्रिताः' इत्युपलक्षणम्, तेन तदाश्रिताः कृमि-कुन्धु-पिपी-लिका-भुजङ्गम-मण्डूक-वृश्चिक-कर्कटकादयो गृह्यन्ते । तथा च पृथिवीकायिकास्तदाश्रितास्त्रसाश्वेत्यर्थः, वृक्षलतादयश्च । तथा-तृणनिश्रिताः=वनस्पतिकायिकाः,

जाते हैं, जो सिकुड जाते हैं वे मूर्छित हो जाते हैं और जो मूर्छित हो जाते हैं वे मर भी जाते हैं ॥सू० ९॥

टीकार्थ—अग्निकाय की हिंसा से बहुत प्रकार के जीवों का घात होता है, सो मैं कहता हूँ—पृथिवी के सहारे रहने वाले जीव पृथिवीकायिकों के अतिरिक्त और भी बहुत से हैं । जैसे—कृमि, कुथुवा, विउटी, साप, मेंढक, बिच्छु, कैकडा, आदि । अतः पृथिवी आश्रित का अर्थ यहा पृथिवीकायिक स्थावर तथा त्रस जीव लेना चाहिए । वृक्ष और बेल आदि भी इसी में सम्मिलित हैं । तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकाय के

मूर्च्छित अर्थ नश्य छे, अने जे मूर्च्छित थाय छे ते भरी पशु नश्य छे (सू. ९)

टीकार्थ—अग्निकायनी हिंसाथी धृष्टान् प्रकारना एवोनो घात थाय ते हुं कहुं छुं—पृथ्वीना आश्रये रहैवावाणा एव पृथ्वीकायोनो साथे भीन पशु धृष्टा छे जेभ कृमि कुंथवा, कीडीयो, साप, देउका, वीछी केउका आदि जे कारणुथी पृथ्वीआश्रितनो अर्थ अहुं पृथ्वीकायिक स्थावर तथा त्रस एव देवा जेध अये वृक्ष अने वेला-वेला आदि पशु तेभा सम्मिलित छे. तथा तृण-आश्रित वनस्पतिकायना एव अने तृणना आश्रये रहैवा-

वृषभाभित्त्यासत्वापिनः मञ्जुककीटवृणश्चलौकाइयध, तथा-पत्रनिभिताः=वनस्पति
 कायिकाः पत्रमाभित्य निघासिनः पिपीलिकाभेदाः 'घोहन' इति मगधदेशे प्रसिद्धाः,
 कीटपतङ्गनीलकण्ठमसृतयध, तथा-काष्ठनिभिताः काष्ठं धरधीकृत्य स्वताः पुणोरे
 रिका-कृष्णादया, अथ काष्ठं क्षुष्कमिन्धनरूपं सार्द्रं च गृह्यते । तथा-गोमयनिभिताः
 =अहूपदसूमिस्फोटादयः । तथा कचवरनिभिताः-कचवरः क्षुष्कवृषपत्रमासमुदा
 यरूपः, सं निभिताः=समाभिताः कृमिहृन्पुकीटादयः प्राणाः=प्राणिनः सन्ति ।

तथा-सपातिमाः=उत्प्लुत्योत्प्लुत्य पतन्तीलाः, प्राणाः=प्राणिनः दंष्ट्रमण्डल-
 सिंहापतङ्गपसिषनादया सन्ति । एते संपातिमा आइत्य=अग्निद्विस्ताकृष्टाः स्वय-
 मेवोपेत्य, अग्नीं संपतन्ति ।

बीज और वृण के सहारे रहने वाले मच्छर कीड़े और घास की बगोछ (बीज) आदि
 वृण-निमित्त कहलते हैं । पतों के सहारे रहने वाले मगध देश में प्रसिद्ध घोहन तथा
 कीट, पतंग एवं नीलकण्ठ (कट) आदि बीज हैं । पुन, उखरूँ और उनके बच्चे आदि
 काठ के सहारे रहने वाले बीज काष्ठनिमित्त कहलते हैं । यहाँ 'काष्ठ' शब्द से सूता
 ईकरूप काठ और गीम काठ, दोनों समझने चाहिए । तथा गोबर के आभित्त गिंडीला और
 मूमिस्फोटक (मूफोड) आदि बीज हैं । इसी प्रकार कचरे के सहारे रहने वाले कृमि कुंभुवा
 तथा कीड़ा कीड़ा, ये सब प्राणी हैं ।

उड-उड कर गिरने वाले हांस, मच्छर, मक्खी पतंग, पक्षी और पवन आदि
 संपातिम बीज कहलते हैं । ये संपातिम बीज भाग की शिस्ता से स्वयं अकारित हो कर
 ज्यम में गिर जाते हैं ।

प्राणा मच्छर कीड़ा अने बासनी ज्यो आदि वृण आभित्त कहेवाय छे पत्ता-पांडकाना
 आभये रहेवावाण मजधदेशमां प्रसिद्ध घोहन तथा कीट पतंग अने नीलकण्ठ (कट) आदि
 एव छे वृषु उपिध अने तेनां ईधं आदि-लाकडाना सहारे रहेवावाण एव काष्ठनिमित्त
 कहेवाय छे. आदि काठ शब्दभी सूडां लाकडारूप काठ अने लीलां काष्ठ, आ अने समज्या
 जेधये, तथा छाबुमां आभय करीने रहेलां त्रिठेला अने भूशेला आदि एव छे आ
 प्रमाये कचराना आभये रहेवावाण कृमि, कुंभुवा तथा कीड़ा जेरे, आ अने प्राणी छे.

उडी-उडीने पडवावाण धंस, मच्छर, माभी, पतंग, पक्षी अने पवन आदि
 संपातिम एव कहेवाय छे जे संपातिम एव आग्नी-अग्निनी शिपाधी धेते
 अकारित बडने अग्निमां पडी जाय छे.

अग्निकायसमारम्भे पृथिव्यादिसमाश्रितानां स्थावराणां त्रसानां चोपमर्दनादिकं यथा भवति तद् दर्शयितुमाह—अग्निं चेत्यादि ।

एके—केचित् प्राणिनः, अग्निम्=समुत्पादितं प्रज्वालितं चाग्निकायं स्पृष्टाः स्पर्शकर्तारः, आर्पत्वात् कर्तरि क्तः ।

संघातं=पक्षादिदहनेन गात्रसंकोचनम् आपद्यन्ते, प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । तत्र=अग्नौ पतित्वा ये जीवाः सघातमापद्यन्ते, ते तत्र पर्यापद्यन्ते=तापाभिभूता मूर्च्छा प्राप्नुवन्तीत्यर्थः । ये तत्र=अग्नौ पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=अग्नौ, अपद्रावन्ति=प्राणान् परित्यजन्ति । अग्निसमारम्भेण केवलमग्निकायविराधना न भवति, अपितु सर्वदिक्-सचारिणं त्रसानां पृथिव्यादीनां स्थावराणामपि बहुतराणा हिंसाऽवश्यं भवतीति भावः । अत गोक्तं भगवता—

अग्निकाय का आरभ करने से पृथिवी आदि में आश्रित स्थावरों और त्रस जीवों का विराधन किस प्रकार होता है ? सो कहते हैं ।

कोई—कोई प्राणी जलती अग्नि को स्पर्श करके सिकुड जाते हैं—उन के पक्ष वगैरह जल जाते हैं । अग्नि में पड कर जो जीव सघात को प्राप्त होते हैं वे गर्मी से मूर्च्छित हो जाते हैं । अग्नि में गिरने वाले अपने प्राण भी खो देते हैं । अग्नि का समारभ करने से केवल अग्निकाय की ही विराधना नहीं होती वरन् सभी दिशाओं में सचार करने वाले त्रस और बहुत से स्थावर जीवों की भी हिंसा अवश्य होती है । इसी लिए भगवान् ने कहा है —

अग्निकायनो आरभ करवाथी पृथ्वीआदिमा आश्रय करीने रडेला स्थावरो अने त्रस एवोनी विराधना ने प्रकारे थाय छे, ते कडे छे—

डोर्ध—डोर्ध प्राणी अग्निनी स्पर्श करीने स डोर्ध नय छे तेनी पापो वगेरे अणी नय छे अग्निमा पडीने ने एव सघातने प्राप्त थाय छे ते गरभीथी मूर्च्छित थर्ध नय छे अग्निमा पडवावाणा एव ने मूर्च्छित थर्ध नय छे ते चोताना प्राण्य पण्य पोर्ध नापे छे अग्निनो समारभ करवाथी केवल अग्निकायनी विराधना थती नथी, परन्तु सर्व दिशाओमा स आर करवावाणा त्रस अने धण्युण स्थावर एवोनी पण्य हिंसा अवश्य थाय छे. ये माटे भगवाने कहुं छे—

“नायतेर्यं न इच्छति, पावकं जलस्य ।
 तिस्रमन्नपरं सत्य, सन्धयोषि दुरासयं ॥ १ ॥
 पाईर्णं पडिण वापि, उद्धं अणुदिसामभि ।
 अहे दादिब्यो वापि, दहे उचरयोषि य ॥ २ ॥
 मूयाणमेसयापातो, इष्यबाहो न संसओ ।
 तं परीषपयाद्धा, संबओ किंचि नारमे ॥ ३ ॥” (दशै० अ० ६)

छाया—आततेअसं नेच्छन्ति, पावकं ज्वालयितुम् ।
 तीक्ष्णमन्नपरत् क्षरं, सर्वतोऽपि दुरासयम् ॥ १ ॥
 माष्यां प्रतीच्या वापि, कर्ष्यमनुदिक्ष्वपि ।
 अथो दक्षिणतो वापि, दहदुचरतोऽपि च ॥ २ ॥
 मूतानामेष आपातो, इष्यबाहो न संसया ।
 तं प्रदीपमतानार्थं, संयतः किञ्चिन्नारमेत् ॥ ३ ॥

‘साधु अग्नि को बलमे की इच्छा तक नहीं करते, क्यों कि वह एक बड़ा ही तीखा पदार्थ है, जो किसी भी ओर से दुस्तह है—समी ओर से बलता है ॥१॥

यह अग्निबल पूर्व से भी और पश्चिम से भी ऊपर से भी और निक्षिणामो की तरफ से भी नीचे से भी और दक्षिण से भी तथा उत्तर से भी बलता है ॥२॥

अग्नि बीजों का घातक है, इस में कोई संशय नहीं है । साधु दीपक बलमे तथा प्रतापने के लिए उस का बरा भी भारम नहीं करते ॥३॥ (दशै अथ ६)

फिर भी क्या है—

साधु अग्निने सज्जायवानी इच्छा सुधी करता नहीं, कारण ते जोड़ भक्षण वीक्ष्य शस्त्र छे ते कौपीय आनुयी दुस्तह छे—आरेष तश्चधी जाले छे ॥ २ ॥

आ अग्निशस्त्र पूर्वधी पक्ष अने पश्चिमधी पक्ष उत्तरधी अने विक्षिणोनी तश्चधी पक्ष नीचधी अने दक्षिणधी पक्ष अने उत्तरधी पक्ष जाले छे ॥ २ ॥

अग्नि लोचने आतते छे तेभां कर्षं पक्ष संशय नहीं साधु दीपक सज्जायवना तथा तापयाने भाटे तेना बल पक्ष आरस करता नहीं ॥ ३ ॥ (दशै. अथ. ६)

इसी पक्ष कहे छे—

“દો પુરિસા સરિસવયા અન્નમન્નેર્હિ સદ્ધિ અગ્નિકાયં સમારંભંતિ, તત્થ ણં એગે પુરિસે અગ્નિકાયં સમુજ્જાલેતિ, એગે વિજ્જવેતિ, તત્થ ણં કે પુરિસે મહાકમ્મયરાણ ? કે પુરિસે અપ્પકમ્મયરાણ ? ગોયમા ! જે ઉજ્જાલેતિ સે મહાકમ્મયરાણ, જે વિજ્જવેતિ સે અપ્પકમ્મયરાણ ” ॥

છાયા—દ્વૌ પુરુષૌ મદ્દશવયસ્કૌ અન્યાન્યાભ્યાં સાર્દ્ધમ્ અગ્નિકાયં સમારંભેતે, તત્ર સ્વલ્લુ એકઃ પુરુષઃ અગ્નિકાય સમુજ્જ્વાલયતિ, એકો વિધ્યાપયતિ, તત્ર સ્વલ્લુ કઃ પુરુષઃ મહાકર્મતરકઃ ? કઃ પુરુષઃ અલ્પકર્મતરકઃ ? । ગૌતમ ! યઃ (અગ્નિ) ઉજ્જ્વાલયતિ સ મહાકર્મતરકઃ, ય (અગ્નિ) વિધ્યાપયતિ સ અલ્પકર્મતરકઃ (ભગવતી સૂત્ર) ॥ સૂ. ૧ ॥

તદેવમગ્નિકાયર્હિંસયા વહુતરજીવોપમર્દનં ભવતીતિ વિદિત્વા ત્રિકરણ-ત્રિયોગૈઃ કૃતકારિતાનુમોદિતૈશ્ચાગ્નિશસ્ત્રસમારમ્મો વર્જનીય ઇત્યાહ—‘એત્ય સત્ય’ ઇત્યાદિ ।

“સમાન ઉત્ર વાલે દો પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાય કા આરમ કરતે હૈં । એક પુરુષ અગ્નિકાય કો જલાતા હૈ ઓર એક બુઝાતા હૈ । इन में से कौन-सा पुरुष महाकर्म बाँधता है ? और कौन अल्पकर्म बाँधता है ? । हे गौतम ! जो अग्नि जलाता है वह महा कर्म बाँधता है और जो अग्नि बुझाता है वह अल्प कर्म बाँधता है” (ભગવતીસૂત્ર) ॥ સૂ. ૧ ॥

इस प्रकार अग्निकाय की हिंसा होती है, यह जानकर तीन करण, तीन योग से, तथा कृत, कारित और अनुमोदना से अग्निशस्त्र का समारम त्याग देना चाहिए, यही बात कहते हैं—‘एत्य सत्यं.’ इत्यादि ।

“સમાન ઉમરવાળા બે પુરુષ પરસ્પર અગ્નિકાયને આરમ કરે છે. એક પુરુષ અગ્નિકાયને સળગાવે છે બાળે છે અને એક ખુઝાવે-ઓલવે છે તે બેમાંથી કયો પુરુષ મહા કર્મ બાંધે છે અને કોણ અલ્પ કર્મ બાંધે છે ? હે ગૌતમ ! જે અગ્નિ સળગાવે છે-બાળે છે તે મહા કર્મ બાંધે છે અને જે અગ્નિ ખુઝાવે છે તે અલ્પ કર્મ બાંધે છે ” (ભગવતી સૂત્ર) (સૂ. ૯)

આ પ્રમાણે અગ્નિકાયની હિંસાથી ઘણા પ્રકારના જીવોની હિંસા થાય છે. એ જાણી કરીને ત્રણ કરણ, ત્રણ યોગથી તથા કરવું, કરાવવું અને અનુમોદનાથી અગ્નિશસ્ત્રને સમારમ ત્યજી દેવો બોધએ, એજ વાત કહે છે—‘એત્ય સત્યં.’ ઇત્યાદિ.

मूत्रम्—

एस्य सत्य समारंभमाणस्य इषेते आरंभा अपरिष्णाया भवति । एस्य सत्यं असमारंभमाणस्य इषेते आरंभा परिष्णाया भवति । त परिष्णाय मेहापी जेव सत्यं भगणिसस्य समारंभेज्जा, नेवज्जणेहि भगणि-सत्य समारंभावज्जा अगणिसस्य समारंभमाणे अप्ये न समणु जामिज्जा जस्सेते भगणिकम्मसमारंभा परिष्णाया भवति, स ह्नु सुणी परिष्णापकम्म-घि वेमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उरेसो सम्भो ॥ १-४ ॥

छया—

अत्र सत्यं समारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिष्णाया भवन्ति । अत्र अत्रसमारंभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिष्णाया भवन्ति । सत् परिष्णाय मेपापी नैव सत्यमभिषय समारंभेत नैवान्यैरभिषयस्य समारंभयत्, अभिषय समारंभमाणान् अन्वान् न समनुजानीयात् । यन्मैत अभिकर्मसमारम्भा परिष्णाया भवन्ति, स सत्यं सुनिः परिष्णाउकर्मा-इति प्रधीमि ॥ सू० १० ॥

॥ चउत्थो उरेसो समाप्तः ॥ १-४ ॥

टीका—

अत्र=अस्मिन् अधिक्राये, अत्र द्रव्यमात्ररूपं प्रागुक्त समारंभमाणस्य=

मूत्रार्थ—अग्निशय्य का आरंभ करने वाला इन आरंभों को नहीं जानता । अग्निशय्य का आरंभ न करन वाला इन आरंभों को जानता है । इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशय्य का आरंभ न कर, दूसरा से अग्निशय्य का आरंभ न करावे और अग्निशय्य का आरंभ करन वाला की अनुमोदन्या न कर । जो इन समारंभों का ज्ञाता होता है वही बुद्धि परिष्णाउकर्मा है ऐसा ही (भगवान् क कथनानुसार) करता है ॥ सू० १० ॥

टीकार्थ—अग्निशय्य में द्रव्य और भावस्वरूप पूर्वोक्त शय्य का व्यापार करने

मूत्रार्थ—अग्निशय्यने आरंभ करवावाजा जे आरंभोने ज्ञानुया नधी जमि शय्यने आरंभ नहि करवावाजा जे आरंभोने ज्ञानु उ तेने ज्ञानुने बुद्धिमान् पुरुष स्वयं अग्निशय्यने आरंभ न करे, बीजा पास अग्निशय्यने आरंभ करवावे नहि जने अग्निशय्यने आरंभ करवावाजाने अनुमोदन्या अपि नहि जे अपि सभा रंभोना गत्या-वापुकार जेव उ ते बुद्धि परिष्णाउकर्मा से जे प्रधावे ह्नु (अत्रचानया वचनानुसार) ह्नु ५ (सू. १०)

टीकाध—अधिक्रायभा द्रव्य जने भावस्वरूप पूर्वोक्त शय्यने व्यापार (उचयेन)

व्यापारयतः, इत्येते=पचनपाचनादयः आरम्भाः=सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=अष्टविधकर्मबन्धकारणत्वेनाविज्ञाता भवन्ति, अग्निकाये शस्त्रं प्रयुञ्जानस्य परिज्ञाया अभावादिति भावः ।

अत्र=अस्मिन् अष्काये शस्त्रम्=पूर्वोक्तस्वरूपम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुञ्जानस्य, इत्येते=पचनपाचनादयः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः, परिज्ञाताः ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाताः भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परित्यक्ता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा समुद्भवति तथा दर्शयति—'तत् परिज्ञाये'—त्यादि । तत्=अग्निकायारम्भणं, परिज्ञाय='कर्मबन्धाय भवती'—त्येवमवबुध्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेककुशलः, साधुमर्यादावधानशील इति यावत्, नैव स्वयमग्निशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैरग्निशस्त्रं समारम्भयेत्, अग्निशस्त्रं

वाले को अर्थात् पचन—पाचन आदि पापमय कार्य करने वालों को यह ज्ञान नहीं होता कि—यह कार्य आठ प्रकार के कर्मों के बन्ध का कारण है, क्यों कि अग्निकाय के शस्त्र का प्रयोग करने वाले में परिज्ञा का अभाव होता है ।

अग्निकाय में पूर्वोक्त शस्त्र का व्यापार न करने वाले को सावध व्यापारों का ज्ञान होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से उन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

ज्ञपरिज्ञा के बाद प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार उत्पन्न होती है ? सो कहते हैं—अग्निकाय का आरंभ कर्मबन्ध का कारण है, यह जानकर हेय—उपादेय के विवेक में प्रवीण साधुमर्यादा का ध्यान रखने वाला स्वयमग्निशस्त्र का आरम्भ नहीं करता, दूसरों से डरवावाणाने अर्थात्—पथन—पाथन आदि पापमय कार्य—डरवावाणाने को ज्ञान डोढु नहीं के आ कार्य आठ प्रकारना कर्मोना अधनु कारणु छे, कारणु के अग्निशस्त्रना शस्त्रना प्रयोग डरवावाणाओमां परिज्ञाने अभाव डोढु छे

अग्निशस्त्रमा पूर्वोक्त शस्त्रना व्यापार—उपयोग नहि डरवावाणाने सावध व्यापारोनु ज्ञान डोढु छे ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने नह्यु छे, अने प्रत्याख्यान परिज्ञाथी तेने त्याग करी आये छे

ज्ञपरिज्ञानी पछी प्रत्याख्यान परिज्ञा कया प्रकारे उत्पन्न थाय छे ? ते कहे छे—अग्निशस्त्रना आरंभ कर्मबन्धनु कारणु छे अने प्रभाणु नह्युने डेय—उपादेयना विवेकमा प्रवीणु—कुशल साधुमर्यादानु ध्यान राखवावाणा पोते अग्निशस्त्रना आरंभ करता नथी, भीन पासे आरंभ करवाता नथी, अने आरंभ करवावाणाने अनुभोदन

समारम्भमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात्—नानुमोत्पद्यत् । शेषं मुगमम् । यस्यैत
 अग्निहोत्रसमारम्भा—होत्रेणां समारम्भा कर्मसमारम्भा, अग्ने कर्मसमारम्भा अग्निहोत्र
 समारम्भाः—अग्निं निमित्तोक्तस्य कर्मकारणीभूता उपमर्दनस्यापारा इत्यर्थः, परिज्ञाता
 —सर्वेषां ज्ञाताः, इपरिज्ञया यन्त्रकारणत्वेन विविक्ता प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परि
 ज्ञिता भवन्ति स एव परिज्ञातकर्मा-परिज्ञातानि=इपरिज्ञया स्वरूपतो विपाकतस्त
 दुपादानतश्चावगतानि प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परित्यक्तानि कर्माणि=सावधस्यापारा
 यन-स परिज्ञातकर्मा=मनोवाचायैः सकृत्सावधकरणकारणानुमतिनिवृत्त्या मुनिमवती
 त्यर्थः । 'इति ब्रवीमि' अस्य व्याख्यानं पूर्ववद् बोध्यम् ।

॥ इत्याचाराद्ब्रह्मस्योऽऽचारचिन्तामणिनीकार्या प्रथमाध्ययन
 चतुर्थोऽध्यायः संपूर्णः ॥ १-४ ॥

आरंभ नहीं करता और आरंभ करने वालों की अनुमोदना नहीं करता । शेष भाग मुगम है ।
 अग्नि के निमित्त स होने बाक तथा कर्मबंध क कारणमूत यह सब पापमय
 व्यवहार जिस ने कर्मबंध क कारण इपरिज्ञ स समस्त कर प्रत्याख्यानपरिज्ञा स त्याग
 दिया है वही परिज्ञातकर्मा मुनि है । जिसने इन व्यापारों का स्वरूप, फल और कारण
 इपरिज्ञा से जान लिया है तथा प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग कर दिया है उसे परिज्ञात
 कर्मा मुनि कहते हैं । ऐसा मुनि मन, बचन काय से समस्त सावध के करने करने और
 अनुमोदन करने का त्यागी होता है । 'इति ब्रवीमि' की व्याख्या पढ़ते क समान समस्त
 का पाठिए ॥ सू० १०॥

श्रीभाष्यारचिन्तामणि 'आचारचिन्तामणि' टीकाक रित्नी अनुवादमें
 प्रथम अध्यायनका चौथा उद्देश संपूर्ण ॥ १-४ ॥

आख्या नहीं. शेष-जाहीने काज सुत्रम उ
 अग्निना निमित्तस्यै यथावाग् तथा कर्मजयन्त कारणभूत आ सव पापमय
 व्यवहारने लेवे कर्मजयन्त कारणे तपरिज्ञाथी समस्तने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग
 करी आख्या उ तेने परिज्ञातकर्मा मुनि कहते उ जेवा मुनि-मन, बचन, कावाकी
 समस्त सावधने करतुं करावतुं भने अनुमोदन करतु तेना त्यागी दाव उ इति
 ब्रवीमि भी व्याख्या प्रथमना समान समस्त लेवी लेखे (स. १०)

श्री आचार्यगुरुवरी 'आचारचिन्तामणि' टीकाका
 गुजराती-अनुवादमा प्रथम अध्यायनने
 चौथा उद्देशक म पूज्य (१-४)

अथ पञ्चमोद्देशकः—

चतुर्थोद्देशोऽग्निकायस्वरूपं मृणित्वप्राप्तये प्रतिबोधितम् । साम्प्रत तदर्थमेव क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधनावसरे वनस्पतिकायजीवस्वरूपं प्रतिबोधयितुकामः पञ्चमोद्देशकमुपक्रमते—‘तं णो’ इत्यादि ।

ननु क्रमप्राप्तवायुकायप्रतिबोधन कथं न प्रक्रम्यते ? उच्यते—वायुकायः प्रत्यक्षतया दृष्टिगोचरो न भवति, अतस्तत्र श्रद्धा झटिति नोदेतुं प्रभवति, पृथिव्याद्ये-केन्द्रियजीवस्वरूपं प्रतिबुध्य तु सुतरां वायुकायो विज्ञास्यते, अतः स एव क्रमो गुरुभिरुपादेयो भवति, येन जीवादितत्त्वविज्ञानाय शिष्याः

पंचम उद्देशक—

चौथे उद्देश में साधुता प्राप्त करने के लिए अग्निकाय का स्वरूप समझाया है । इसी के लिए क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप समझाने के प्रसंग में वनस्पतिकाय का स्वरूप बतलाने के लिए पाँचवाँ उद्देश आरम्भ करते हैं—‘तं णो’ इत्यादि ।

प्रश्न—क्रम के अनुसार वायुकाय का स्वरूप क्यों नहीं बतलाया गया है ? और वायुकाय को छोड़कर वनस्पतिकाय के विवेचन का उद्देश्य क्या है ?

उत्तर—बात यह है कि वायुकाय नेत्रों से प्रत्यक्ष दिखाई नहीं देता—सिर्फ स्पर्शेन्द्रिय से उस की प्रतीति होती है । इस कारण उस के विषय में जल्दी श्रद्धा नहीं होती । हाँ, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जीवों का स्वरूप समझ लेने पर वायुकाय सहज ही समझ में आ जायगा । गुरुजन वही क्रम काम में लाते हैं जिस से शिष्य जीवादि

पञ्चम उद्देशक—

चौथा उद्देशकमा साधुता प्राप्त करवाने भाटे अग्निकायनु स्वरूप समझाने छे आ भाटेक कम अनुसार वायुकायनु स्वरूप समझववाना प्रसंगे वनस्पतिकायनु स्वरूप बताववाने भाटे पाचमा उद्देशकने आरम्भ करे छे—‘तं णो’ इत्यादि ।

प्रश्न—कम प्रमाणे वायुकायनु स्वरूप शा भाटे बतावुं नथी ? अने वायुकायने छोडीने वनस्पतिकायना विवेचनमा कथे उद्देश्य छे ?

उत्तर—बात ये छे के—वायुकाय नेत्रथी प्रत्यक्ष जेवामा आवतो नथी मात्र स्पर्शेन्द्रियथी तेनी प्रतीति थाय छे आ कारणथी तेना विषयमा जल्दी श्रद्धा यती नथी छे, पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रिय जेवोनु स्वरूप समझ लीधा पछी वायुकाय सहज समझवामा आवी जशे. गुरुजन आ कमने काममा लावे छे, जे वडे करी शिष्य जेवादि

स्वयमेवोत्सहते, तस्माद् वायुकायस्वरूपमनमिषाय वनस्पतिकायः प्रथमं प्रस्तूपते—
'तं वो' इत्यादि ।

यथा—अनन्तरचतुर्षोद्विज्ञेऽग्निकायो दीर्घलोकाश्चन्द्रेनाशौ प्रतिबोधितः ।
तत्र दीर्घलोकाश्चन्द्राशौ वनस्पतिरित्याश्रय समधिगम्याग्निकायप्रकरणसमाप्त्य
नन्तरं प्रथम वनस्पतिकप्रयत्नस्य विज्ञातुकामस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय पञ्चमं
वनस्पतिकायोद्देशं कथयति— 'तं वो' इत्यादि ।

यथा वनस्पतिकायोपमर्दनमिहस्याऽनगारत्वं उच्यते, तं प्रकारं निर्दिशति—
'तं वो' इत्यादि ।

वज्रो के ध्यान में उत्साहित हों । यही कारण है कि पहले वायुकाय का स्वरूप न कह कर
वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है—'तं वो' इत्यादि ।

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निकाय का 'दीर्घलोकाश्चन्द्र' बतकाया है । दीर्घलोकाश्चन्द्र
कर्म वनस्पतिकाय है, यह आशय जानकर अग्निकाय के प्रकरण के पश्चात् ही शिष्य को
वनस्पतिकाय का स्वरूप जानने की इच्छा होने स्वामिभक्ति है । शिष्या के अनुरूप
दिया हुआ उद्देश ही अधिक सफल होता है, अतः शिष्य की शिष्यासा प्राप्त करने के
लिए चौथे उद्देश में वनस्पतिकाय का वर्णन किया जाता है—'तं वो' इत्यादि ।

वनस्पतिकाय की विज्ञा से निवृत्त होने पर ही साधुता प्राप्त होती है, वह किस प्रकार
प्राप्त होती है । सो कहते हैं—'तं वा' इत्यादि ।

परचोत्थानं ज्ञानमं उत्साहितं याच. अथ कारवृत्ती प्रथम वायुकायना स्वरूपने नदि कहेतां
वनस्पतिकायनु वदुंन करवानां आनु उ— 'तं वो' इत्यादि

अथवा—चौथे उद्देश में अग्निकायने 'दीर्घलोकाश्चन्द्र' तरीके ज्ञानानु से
दीर्घलोकाश्चन्द्र अर्थ वनस्पतिकाय से, जो आशयने समझने अग्निकायना प्रकरणकी पछी
शिष्यने वनस्पतिकायना स्वरूपने ज्ञानवाणी उच्छा ज्ञान-कपी से स्वाभाविक से उच्छासाने
अनु रूप आपते। उद्देश अर्थ अधिक सफल था से जो कारवृत्ती शिष्यनी उच्छासा तृप्त
करवाने आटे पांजना उद्देश में वनस्पतिकायनु विवेचन करवानां आवे उ—'तं वो' इत्यादि

वनस्पतिकायनी विज्ञाभी निवृत्त तथा पछी साधुता प्राप्त था से ते कथा
प्रकारे प्राप्त था से ते कहे उ—'तं वो' इत्यादि

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता महंमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए,
एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ॥ सू० १ ॥

उया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभयं विदित्वा तं यो नो कुर्यात्,
एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवा-
नित्यर्थः । मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति—अहं समुत्थाय
आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् मत्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो
करिष्यामीति ।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर
वनस्पतिकाय का आरम्भ नहीं करूँगा । जो पुरुष समय को जानकर आरम्भ नहीं करता है
वही आरम्भ से उपरत है—वही जिन शास्त्रों में आरम्भ से निवृत्त कहलाता है । वही अनगार
कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का
विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार
करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर—दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरम्भ
समारम्भ नहीं करूँगा ॥

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करे छे—हुँ आत्मकल्याण भाटे तैयार धरने
वनस्पतिकायने आरंभ नहिं करे जे पुरुष समयने ज्ञानीने आरंभ करता नथी
ते आरंभती उपरत छे, तेज जिनशासनमा आरंभती निवृत्त छडेवाय छे, तेज
अणुगार छडेवाय छे ॥ १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदिने उपदेश साधनवाची जेने हेय अने
उपादेयने विवेक उत्पन्न धर गयो छे ते वनस्पतिकायना स्वरूपने ज्ञानीने आ
प्रभावे विचार करे छे—

हुँ आत्मकल्याणने भाटे उद्यत—तैयार धरने—दीक्षा लधने वनस्पतिकायने आरंभ
समारंभ करीश नहिं

मूलम्—

तं णो करिस्सामि समुट्ठाए मत्ता मइमं, अभयं विदित्ता तं जे णो करए,
एसोवरए एत्थोवरए, एस अणगारेत्ति पवुच्चइ ॥ सू० १ ॥

छाया—

तं नो करिष्यामि समुत्थाय मत्वा मतिमान्, अभय विदित्वा तं यो नो कुर्यात्,
एष उपरतः अत्रोपरतः, एषः अनगार इति प्रोच्यते ॥ सू० १ ॥

टीका—

मतिमान्=मेधावी श्रमणनिर्ग्रन्थादिदेशनाश्रमणसंजातहेयोपादेयविवेकवा-
नित्यर्थः । मत्वा=वनस्पतिकायस्वरूपं विज्ञाय विभावयति—अहं समुत्थाय
आत्मकल्याणार्थमुद्युक्तः सन् प्रव्रज्यां गृहीत्वा, तं=वनस्पतिकायसमारम्भं नो
करिष्यामीति ।

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर
वनस्पतिकाय का आरम्भ नहीं करूँगा । जो पुरुष समय को जानकर आरम्भ नहीं करता है
वही आरम्भ से उपरत है—वही जिन शास्त्रों में आरम्भ से निवृत्त कहलाता है । वही अनगार
कहलाता है ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदि का उपदेश सुनने से जिसे हेय और उपादेय का
विवेक उत्पन्न हो गया है वह वनस्पतिकाय का स्वरूप जानकर इस प्रकार विचार
करता है—मैं आत्मकल्याण के लिए उद्यत होकर—दीक्षा लेकर वनस्पतिकाय का आरम्भ
समारम्भ नहीं करूँगा ॥

मूलार्थ—मेधावी पुरुष विचार करे छे—हुँ आत्मकल्याण भाटे तैयार थधने
वनस्पतिकायने आरम्भ नहिं करे जे पुरुष समयने ज्ञानीने आरम्भ करता नथी
ते आरम्भथी उपरत छे, तेज्जिनशास्त्रनमां आरम्भथी निवृत्त कहेवाय छे, तेज्ज
अणुगार कहेवाय छे ॥ १ ॥

टीकार्थ—श्रमण निर्ग्रन्थ आदिने उपदेश साधनवाथी जेने हेय अने
उपादेयने विवेक उत्पन्न थध गयो छे ते वनस्पतिकायना स्वरूपने ज्ञानीने आ
प्रभाषे विचार करे छे—

हुँ आत्मकल्याणने भाटे उद्यत—तैयार थधने—दीक्षा लधने वनस्पतिकायने आरम्भ
समारम्भ करीश नहिं

तथा-वृक्षाः अल्पकोपयोगानुस्वादिमन्ताः, अल्पकचेतनावत्त्वात्, सुप्तमूर्च्छित-
 पुस्तवत् । अत्र वनस्पतीनां इत्यत्वहेतुना जीवशरीरत्वं सिद्धयति, तत्र च सचिच्छ-
 तम् । अपरञ्च-वृक्षाः सचेतना, सर्वस्वगपहरणे मरणात्, अत्रवत् । वनस्पति-
 कायस्य सचेतनत्वमग्रेऽपि साधयिष्यते-‘से वेमि-इमपि जाह्वम्मयं एयंपि
 जाह्वम्मयं’ इत्यत्र ।

यथा-अल्पकोपयोगादीनि कयापपर्यन्तानि जीवलक्षणानि पृथिवी

उपयोग (चेतना) और सुप्त आदि से युक्त है, क्योंकि उन में अल्पक चेतना है, जो अल्पक
 चेतनावत्ता होता है वह अल्पक चेतनावत्ता और सुप्त आदि वाछा होता है जैसे सुप्त
 या मूर्च्छित पुरुष ।

इस प्रकार ‘अल्पत्व हेतु से सिद्ध होता है कि-वनस्पति जीव का शरीर है और जीव
 का शरीर होने के कारण सचिच्छ भी है । इसके अतिरिक्त और भी प्रमाण है । जैसे वृक्ष
 चेतनावत् है क्या कि उनकी सारी लम्बा (छाछ) हड्डान पर उनकी मृत्यु हो जाती है,
 सारी लम्बा हड्डान पर जिस की मृत्यु हो जाती है वह सचेतन ही होता है, जैसे वृक्ष ।
 वनस्पतिक्रम की सचेतनता आगे भी-‘सु वेमि-इमपि जाह्वम्मयं एयंपि जाह्वम्मयं’
 इस सूत्र की व्याख्या करते हुए सिद्ध की जायगी ।

कस्या-अल्पक उपयोग से केवल कयापपर्यन्त जीव के जो लक्षण पृथ्वी-

(चेतना) करने सुप्त आदिभी युक्त है, केमके तेमा अल्पकत चेतना से ने अल्पकत
 चेतनावत्ताणा हेतु से ते अल्पकत चेतनावत्ताणा करने सुप्त आदिवाणा हेतु से, जेम सुतेता
 लम्बा मूर्च्छित पुरुष, आ प्रभारे अल्पत्व हेतुभी सिद्ध वाच से के-वनस्पति एवमु
 शरीर से करने एवमु शरीर होवाना कारणे सचिच्छ पञ्च से जेनी सावे नीलु पञ्च
 प्रभाव से जेमके-वृक्ष चेतनावत् से केमके तेनी तमाम कामदी-छाछ कादी नाजवाची
 तेनु मृत्यु सर्व लय से, तमाम छाछ कादी नाजवाची तेनु मृत्यु सर्व लय से ते चेतन
 का होय से जेनी रति अकश, वनस्पतिकायनी चेतनता आगण पञ्च-‘से वेमि-इमपि
 जाह्वम्मयं एयंपि जाह्वम्मयं’ आ सूत्रनी व्याख्या करती वपते सिद्ध करवाभां जानरी

कस्या-अल्पक उपयोगादीनि लक्षणानि पृथिवी

કાયોદેશે પ્રાગભિહિતાનિ, તેષાં જીવલક્ષણાનાં વનસ્પતિકાયેઽપિ સદ્ભાવાદ્ વનસ્પતિઃ સચિત્તોઽસ્તિ, મનુષ્યવદિતિ નિર્ણયતે ।

અપિચ—વનસ્પતિઃ સચેતનઃ, ચાલાયવસ્થાસંદર્શનાત્, અનુકૂલ-પ્રતિકૂલાહારાદિના પુષ્ટિકાશ્યાદિદર્શનાત્, છેદનભેદનાદિના મ્લાનતાદિદર્શનાચ મનુષ્ય-શરીરવત્ ।

યથા મનુષ્યશરીરમનુકૂલેનાહારાદિના પુષ્યતિ, તત્પ્રતિકૂલેન તદભાવેન ચ શુષ્યતિ, એવં વનસ્પતિરપ્યનુકૂલજલવાતાદિભિઃ પુષ્યતિ, પ્રતિકૂલજલવાતા-દિભિશ્ચ શુષ્યતિ । યથા વા છેદનાદિના મનુષ્યશરીર હસ્તાદિ મ્લાયતિ, તથા

કાય કે ઉદ્દેશ મેં પહેલે કહે ગયે હેં વે સવ વનસ્પતિકાય મેં મી પાયે જાતે હેં । ઇસ કારણ વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિ કે સમાન સચિત્ત હે ।

તથા—વનસ્પતિ સચેતન હે, ક્યોં કિ ઉસ મેં ચાલ્યાવસ્થા આદિ દેખી જાતી હે, અનુકૂલ આહાર સે પુષ્ટિ ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે કૃશતા આદિ દિખાઈ દેતી હે, ઓર છેદન-ભેદન આદિ કરને સે મુરજાના વગેરહ દેખા જાતા હે, જૈસે મનુષ્ય કા શરીર ।

તાત્પર્ય યહ હે કિ જૈસે મનુષ્ય કા શરીર અનુકૂલ આહાર આદિ સે પુષ્ટ હોતા હે ઓર પ્રતિકૂલ આહાર સે યા આહાર કે અભાવ સે સૂચ જાતા હે, ઉસી પ્રકાર વનસ્પતિ મી અનુકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે પુષ્ટ હોતી હે ઓર પ્રતિકૂલ જલ-વાયુ આદિ સે સૂચ જાતી હે । અથવા જૈસે છેદન-ભેદન કરને સે મનુષ્ય કા શરીર હાથ આદિ મુરજા

ઉદ્દેશમા પહેલા કહ્યા છે, તે સર્વ વનસ્પતિકાયમા પણ જોવામા આવે છે આ કારણથી વનસ્પતિ મનુષ્ય આદિના સમાન સચિત્ત છે

તથા—વનસ્પતિ સચેતન છે, કેમકે તેમા બાલ્યાવસ્થા આદિ અવસ્થાઓ જોવામા આવે છે અનુકૂલ આહારથી પુષ્ટિ અને પ્રતિકૂલ આહારથી કૃશતા-હુબલતા આદિ દેખાય છે, અને છેદન, ભેદન આદિ કરવાથી મુરજાઈ જવું-કરમાઈ જવું સુસ્ત કે ગિન્ન થવાપણું વગેરે જોવામા આવે છે જેવી રીતે મનુષ્યનુ શરીર

તાત્પર્ય એ છે કે જેમ મનુષ્યનુ શરીર અનુકૂલ આહાર આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ આહારથી અથવા તેા આહારના અભાવથી સુકાઈ જાય છે તેવી રીતે વનસ્પતિ પણ અનુકૂલ જલ, વાયુ આદિથી પુષ્ટ થાય છે, અને પ્રતિકૂલ જલ વાયુ આદિથી સુકાઈ જાય છે અથવા જેવી રીતે છેદન-ભેદન કરવાથી મનુષ્યશરીરના હાથ-પગ આદિ કરમાઈ જાય છે તે પ્રમાણે પાકડા, ફલ, ફૂલ, આદિ વનસ્પતિ પણ છેદન-ભેદન

पृष्ठपक्षसुमादिरूपो वनस्पतिरपि छेदनादिना म्हायति, तस्माद् वनस्पतिः सचेतन इति सिद्धम् ।

यथा—वनस्पतिर्मीषः, चेतनान्त्वात्, मनुष्यत्त्वं, यथा मनुष्यस्य श्वादिप्रहमशक्तिरूपा चेतना, तथैव वनस्पतौ सङ्घुपलम्प्यत । तथाहि—यङ्गलादयो गीत-सुरागम्भूष-कामिनीघरगताडनादिभिः फलन्ति, क्षमीलज्ज्मात्सुमसृतिषु च स्थापान्बोधसंकोचादयो दृश्यन्ते । क्षापान्नुप्रहाम्यामान्तरौ संकोचविकाशौ समस्त वनस्पतीनां मन्तव्यः । उक्तञ्च—

जाता है उसी प्रकार पत्ता फल फूल, आदि वनस्पति मी छेदन-भेदन आदि से मुरझा जाती है, इससे सिद्ध होता है कि वनस्पति सचेतन है ।

अथवा—वनस्पति जीव है, क्योंकि कि चेतनावाली है, जैसे मनुष्य । जैसे-मनुष्य आदि में शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना है उसी प्रकार वनस्पति में भी शब्द आदि को ग्रहण करने की शक्तिरूप चेतना पाई जाती है । यङ्गल आदि के वृक्ष गीत मखिरा का कुल्ल, कामिनी के पैर के ताडन आदि से फलते हैं । सभी तथा क्षापयवती आदि में स्थाप (सोना) अरबोध (भागना) और संकोच (सिकुडना) देना जाता है । क्षाप और अनुप्रह से सब वनस्पति में संकोच और विकाश होता है । कहा भी है —

आदिषु हरमाध न्वय छे सुकाध न्वय छे, आ हरयुषी सिद्ध भाय छे के वनस्पति सचेतन छे

अथवा—वनस्पति जीव छे केमके-चेतनावाली छे जेम मनुष्य. जेवी रीते मनुष्य आदिमां शब्द आदिने अरुय हरवानी शक्तिरूप चेतना छे ते प्रमाद्ये वनस्पतिमां येषु शब्द आदिने अरुय हरवानी शक्तिरूप चेतना जेवामां जावे छे अकुल आदि रस नीत, भविसन्य ज रूप (कोजला) स्त्रीन्य पगधी बनेहुं ताडन आदिषी हवे छे शमी पमा लज्जान्य ती (सीसामली) आदिमा सुध जनु न्वयजनु जने स केवाध जनु बनेर जेवामां जावे छे. क्षाप जने अनुप्रहशी सब वनस्पतिमां स केव जने विकाश भाय छे. कहुं छे के-

“स्त्रीणां स्पर्शात् प्रियङ्गुर्विकसति बकुलः शीघ्रगण्डूपसेकात्,
पादाघातादशोकस्तिलककुरवकौ वीक्षणालिङ्गनाभ्याम् ।
मन्दारो नर्मवाक्याच्चट्टमृदुहसनाच्चम्पको वक्त्रवाताद्,
बह्वी गीतान्मरेर्विकसति च पुरो नर्तनात् कर्णिकारः ” ॥ १ ॥ इति ॥

आगमोऽपि—

“वणस्सई चित्तमंतमखाया अपोगजीवा पुढोसत्ता, अन्नत्थ सत्थपरिणएणं ”
इति । (दशवै०)

प्रदर्शितं चाधुनिकवैज्ञानिकैः प्रत्यक्षतया स्वकृतप्रयोगविशेषेण वनस्पतीनां
सच्चित्तत्वम्, यथा—क्रोधादिमुन्नाटयतां तेषां गालीप्रदानादिभर्त्सनवाक्यतो

“प्रियगु का पेड खियों के स्पर्श से विकसित होता है, बकुल मदिरा के कुल्ले से
खिल उठता है । अशोक वृक्ष स्त्री के पैर का आघात लगने से खिल जाता है । तिलक वृक्ष
स्त्रियों के देखने से, तथा कुरवक उनके आलिंगन से खिल उठता है । मन्दार वृक्ष विनोदमय
वाक्य सुनकर, चम्पक मृदुहँसी से, बह्वी वक्त्र (मुख) वायु से और नमेरु गीत से विकसित
होता है । कनेर का पेंड सामने नाचने से खिल जाता है ” ॥१॥

वनस्पति की सचेतनता आगम प्रमाण से भी सिद्ध होती है । दश वैकालिक
सूत्र में कहा है—शस्त्रपरिणत को छोड़कर शेष सब वनस्पति सचित्त कही गई है, वह
अनेक जीववाली है और उन जीवों की सत्ता पृथक् पृथक् है ” ।

आधुनिक वैज्ञानिकोंने अपने प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि वनस्पति
सचित्त है । क्रोध आदि करने से—गाली देने या भर्त्सना करने से वृक्ष, लता आदि

“ प्रियगुने छोड स्त्रीयोना स्पर्शथी विकसित थाय छे, अकुल मदिराना केगणा
करवाथी भिली उठे छे अशोक वृक्ष स्त्रीना पगने आघात लागवाथी भिली उठे छे
तिलक वृक्ष स्त्रीयोने जेवाथी तथा कुरवक स्त्रीयोना आलिंगनथी भिली उठे छे मन्दार
वृक्ष विनोदमय वाक्य साक्षणीने, चम्पक मृदु ह्वासीथी, बह्वी वक्त्र (मुख) वायुथी
अने नमेरु गीतथी विकसित थाय छे कनेरने छोड तेना सामे नाचवाथी भिले छे ” ॥१॥

वनस्पतिनी सचेतनता आगमप्रमाण्वाथी पशु सिद्ध थाय छे दशवैकालिक
सूत्रमा कथ्ये छे—“ शस्त्रथी परिणत—(छेदायेली)ने छोडीने भाडीनी सर्व वनस्पति
सचित्त कडेली छे, ते अनेक जिववाणी छे, अने ते जिवोनी सत्ता पृथक्-पृथक् छे ”

आधुनिक वैज्ञानिकेअये पोताना प्रयोगे द्वारा प्रत्यक्ष—अतावी आभ्यु छे के वनस्पति
सचित्त छे क्रोध आदि करवाथी, गाण देवाथी अथवा तिरस्कार करवाथी वृक्ष, लता आदि

इतत्त्वादयः सकोचमापद्यते, स्तुतिवाक्यैश्च प्रवचन्ते, विक्रसन्ति चेति वनस्पतीनां सवेतन्त्वे नास्ति केपाञ्चिद् विषयः ।

ये तु सूक्ष्मा वनस्पतिकायास्ते क्षुपा नैव दृश्यन्ते, भूतस्तेषां सचिचत्वं मगधत्वनमात्रावगम्यमिति तत्रापि भद्रा करणीयैव ।

प्ररूपणाद्वारम्-

वनस्पतिगोषा द्विविधा-सूक्ष्मवादरमेदात् । सूक्ष्माः सर्वलोके कञ्जलूपिकावत् संभृताः । वादरास्तु लोकैकवशा सन्ति । सूक्ष्माः पर्याप्तपर्याप्तमेदाद्द्विविधाः ।

वादरा द्विविधाः-प्रत्येकशरीर-साधारणशरीरमेदात् । एकमकं बीज

सकोच को प्राप्त होते हैं और प्रशंसा करने से बढ़ते हैं और फूलते हैं अथ वनस्पति की सचिचता में अब किसी को भी विवाद नहीं है ।

सूक्ष्म वनस्पतिक्रम के बीज ईसा से नहीं दिखाई देते । मगधत्न के वचनों से ही पाने का सकते हैं । उन पर यथा रसनी चाञ्चिद् ।

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिक्रम के बीज दो प्रकार के हैं-सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म बीज समस्त क्षेत्राकाश में कामल की कुम्भी की तरह भरे हुए हैं । वादर बीज लोक के एक-एक मास में होते हैं । सूक्ष्म बीजों के भी दो भेद हैं-पर्याप्त और अपर्याप्त ।

वादर बीज प्रत्येकशरीर और साधारणशरीर के भेद से दो प्रकार के हैं ।

इन्होंने प्राप्त थाय से अने प्रशंसा करवाधी कृते से अने जित्ते से अने अशुधी वनस्पतिनी सचिचतामा कृते कोशने पशु विवाद नहीं ।

सूक्ष्म वनस्पतिक्रमना एव नेत्रधी ज्येष्ठ शकता नहीं । ते अत्रवानना वचनोधी व अधी शकय से तेन पर अदा शपनी ज्येष्ठजे ।

प्ररूपणाद्वार-

वनस्पतिक्रमना एव से प्रकारना से (१) सूक्ष्म अने वादर. सूक्ष्म एव समस्त क्षेत्राकाशमा कञ्जलनी रूपीनी प्रमाणे अरेवा से वादर एव ते कन्य ज्येष्ठ-ज्येष्ठ काशमा डोय से ।

सूक्ष्म एवोना पशु से सेठ से (१) पर्याप्त अने (२) अपर्याप्त. वादर एव अनेकशरीर अने साधारणशरीरना सेठपी से प्रमाणा से ज्येष्ठ-ज्येष्ठ एव सम्य पी

પ્રતિ ગત પ્રત્યેકમ્, પ્રત્યેક શરીરં યેષાં તે પ્રત્યેકશરીરાઃ । પ્રત્યેકનામકર્મોદયવશા-
દેકૈકસ્ય જીવસ્ય શરીરમૌદારિકં વૈક્રિયં વા પૃથક્ પૃથગ્ ભવતિ । એવમ્ભૂતા જીવાઃ
પ્રત્યેકશરીરા ઉચ્યન્તે । નારકદેવમનુષ્યાઃ, દ્વીન્દ્રિયાદયઃ, પૃથિવ્યાદયઃ, વૃક્ષગુચ્છાદિ-
વનસ્પતયશ્ચ પ્રત્યેકશરીરિણઃ સન્તિ । ઇમે પ્રત્યેકાઃ પ્રત્યેકજીવા અપિ કથ્યન્તે ।

પ્રત્યેકશરીરા દ્વાદશવિધાઃ-વૃક્ષ-ગુચ્છ-ગુલ્મ-લતા-વહ્લી-પર્વગ-તુળ-વલય-
રિતૌ-ષધિ-જલરુહ-કુહ્ણમેદાત્ ।

તત્ર વૃક્ષા દ્વિવિધાઃ-એકાસ્થિકાઃ (એકવીજકાઃ) બહુવીજકાશ્ચ । તત્રૈકાસ્થિકા
અનેકવિધાઃ-નિમ્બામ્રજમ્બૂકૌશમ્બાદયઃ । બહુવીજકા અપ્યનેકવિધાઃ-

એક-એક જીવસબધી શરીર પ્રત્યેકશરીર કહલાતા હૈ । પ્રત્યેકનામકર્મ કે ઉદય સે એક-એક
જીવ કે શરીર ઔદારિક ઔર વૈક્રિય અલગ-અલગ હોતા હૈ । એસે અલગ-અલગ શરીર
વાલે જીવ પ્રત્યેકશરીર કહલાતે હૈ-નારક, દેવ, મનુષ્ય દ્વીન્દ્રિય આદિ, પૃથ્વીકાય આદિ
તથા વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેક શરીરી હૈ । ઇન્હે પ્રત્યેક ઔર પ્રત્યેકજીવ
મી કહતે હૈ ।

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બારહ પ્રકાર કે હૈ-વૃક્ષ, ગુચ્છ ગુલ્મ, લતા, વહ્લી, પર્વગ,
તુળ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ ઔર કુહ્ણ ।

ઇનમે વૃક્ષ દો પ્રકાર કે હૈ-એકાસ્થિક અર્થાત્ એક વીજ વાલે ઔર બહુ-
વીજક અર્થાત્ બહુત વીજો વાલે । એક વીજ વાલે નીમ, આમ, જામન ઔર કૌશમ્બ
આદિ અનેક પ્રકાર કે હૈ । બહુવીજક મી અનેક પ્રકાર કે હૈ । જૈસે અસ્થિક, તિન્દુક,

શરીર પ્રત્યેક શરીર કહેવાય છે પ્રત્યેકનામકર્મના ઉદયથી એક-એક જીવના શરીર
ઔદારિક અને વૈક્રિય અલગ-અલગ હોય છે એવા અલગ-અલગ શરીરવાળા જીવ
પ્રત્યેકશરીર કહેવાય છે નારક, દેવ, મનુષ્ય, દ્વીન્દ્રિય આદિ પૃથ્વીકાય આદિ તથા
વૃક્ષ, ગુચ્છ આદિ વનસ્પતિજીવ પ્રત્યેકશરીર છે તેને પ્રત્યેક અને પ્રત્યેકજીવ પણ કહે છે

પ્રત્યેકશરીરી વનસ્પતિકાય બાર પ્રકારના છે-વૃક્ષ, ગુચ્છ, ગુલ્મ, લતા, વહ્લી,
પર્વગ, તુળ, વલય, હરિત, ઔષધ, જલરુહ અને કુહ્ણ

એમા વૃક્ષ બે પ્રકારના છે-એકાસ્થિક અર્થાત્ એક ખીજવાળા, અને બહુસ્થિક
અર્થાત્ ઘણાજ ખીજવાળા એક ખીજવાળા-લીખડો, આબો, જાળુ અને કૌશમ્બ, આદિ
અનેક પ્રકારના છે બહુખીજક એટલે ઘણા ખીજવાળા પણ અનેક પ્રકારના છે જેમકે-

अस्त्रिक-विदुक्त-कपित्था-म्बाहक-मातुस्त्रि-बिल्व-मसक-पनस-दाडिम-आदि ।

एकस्त्रिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकजीवमाभित्य मूलैकन्दस्कन्ध तद्वासाप्रबालेषु प्रत्येकमसम्भेया जीवाः सन्ति । एको मूलैकवस्तु मूलादिकस्य पर्यन्तं सर्वावयवम् व्याप्य वृक्षेषु तिष्ठति ।

मन्वेकास्त्रिकानां बहुबीजकानां च वृक्षाणां मूलैकन्दस्कन्धत्वकृशासादयः प्रत्येकमसम्भेयजीवाः सन्ति, इति यदुक्तं तत् कथमुपपद्यते, मूलादिकफलपर्यन्ता वृक्षा सर्वेष्वेकशरीराकारा एवोपलभ्यन्ते, यथा-द्वन्द्वस्य शरीरमसम्भेयमकल्पमुपलभ्यते तद्वत्, तस्मादेकशरीरात्मका एव वृक्षाः, कथममी प्रत्येकशरीरा असम्भेयजीवा इति ? उच्यते—

(टी.) कश्चिन्न (कश्चित्) अम्बाहक मातुस्त्रि, बिल्व, आमस्य पनस और दाडिम आदि ।

एकार्थिक और बहुबीजक वृक्षों में मूलके एक बीज के सहारे मूल ऊपर तक फैल कर शाखा और प्रवाल में अलग-अलग अस्तव्यात बीज हैं । एक मूल बीज मूल से निकल कर एक वृक्ष के समी अवयवों में व्याप्त होकर रहता है ।

शुद्धा—एक बीजवाले और बहुत बीज वाले वृक्षों के मूल, कन्द, रज्ज्व, तना, शाखा आदि प्रत्येक अस्तव्यात बीज वाले हैं, यह कथन सही कैसे हो सकता है ? मूल से निकल कर फैलाने वाले वृक्ष समी एक शरीराकार ही उपलब्ध होते हैं जैसे कि देवदत्त का समी मूल ही एक रूप ही देखा जाता है । अतः वृक्ष एक-एक शरीररूप ही हैं । उन में अस्तव्यात प्रत्येक किस प्रकार हो सकते हैं ?

अस्त्रिक विदुक्त कश्चित् अम्बाहक मातुस्त्रि (मिन्त्रि) बिल्व, (पीली) आमस्य, पनस अने दाडिम आदि.

एकस्त्रिक अने बहुबीजक वृक्षाणां मूलाणां एक एवमेव व्याप्य मूल, ऊपर तक फैल, शाखा अने प्रवालमां अलग-अलग अस्तव्यात एव एते एक मूल एव, मूलशी लघुनि इव सुधी वृक्षानां सर्वं अवयवोभ्य व्याप्त यदने इति उच्यते ।

शुद्धा—एकबीजवाला अने बहुबीजवाला वृक्षाणां मूल ऊपर तक फैल कर तना-कन्द, शाखा आदि प्रत्येक अस्तव्यात एववाणां एते आ कथन साधु एते कथं देवी रीते इति शक्यम् ? अथवा एते कथन साधु देवी रीते कथं शक्यम् ?

मूलशी लघुनि इव सुधी वृक्ष एव एक शरीराकार एव एते च शाखा एते कथं देवदत्तं शरीर अल्प अस्त्रिक अने अने अने एते एते मूला एते एक शरीर एव एते तेभ्य अस्तव्यात प्रत्येकशरीर देवी रीते कथं शक्यम् ?

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं सिध्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकमसंख्येया अपि जीवाः परस्परं विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः संमिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण मिश्रीकृत्य निर्मितयां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खसखसवीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर हैं, अत वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुड मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि—प्रत्येकशरीरी

समाधान—मूल अने स्कन्ध आदिमा ते असख्यात जीवोना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग एक-एक शरीर छे, तो पणु तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रभावधीने ते सब आपसमा-परस्परमां भेजेला रहे छे, जेभे केछि चिपकनी (चीकणी-चोटी जय तेवी) चीजमा भेजवीने अनावेदी असभसनी गोणीना प्रत्येक भागमा असभसना बीज पोतानु अलग अलग अस्तित्व अनावी राखे छे अथवा जेभे गोण भेजवेदी तलनी तलपापडी-तलसाकणीमा तलना दाखु चोत-पोताना स्वरूपमा विद्यमान रहे छे, ते प्रमाणे प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदिमा रहे छे साधारण वनस्पतिधी तेनामा भेद छे छे—प्रत्येकशरीरी

नसतिम्यस्वेतावान् चिन्नेय'- मृत्यकशरीराः परस्पर समिभिता अपि मिमा एव विपठन्ति, साधारणशरीरास्त्वन्वान्पानुभिदा इति ।

पत्रेषु मृत्यकं मूलमीवाद्भिन्न एकैको जीवः । उक्तं हि प्रज्ञापनायामेकस्यैकवहुबीजवृक्षप्ररूपणावसरे- 'पत्ता पत्तेयजीविया' इति ।

तथा-ताससरलनालिकरवृक्षाणां स्कन्धबैकजीवः । तदुक्तम्-

"भाणाविहसंठाणा कस्त्वाणं एगजीविया पत्ता ।

संबोपि एगजीवो, तास-सरल-नालिकरीणि" ॥

छाया-नानाविध सस्यानानि, वृक्षणाम् एकजीविकानि पत्राणि ।

स्कन्धोऽपि एकजीवः, ताससरल नारिकेलानाम् ॥ (प्रज्ञा०)

जीव व्याप्त में मिले हुए भी भिन्न-भिन्न रहते हैं किन्तु साधारणशरीरवाले जीव व्याप्त में अनुविद्ध-एक रूप होकर रहते हैं । तात्पर्य यह है कि-प्रत्येकशरीरी जीवों का शरीर भ्रमण-भ्रमण होता है किन्तु इन साधारणशरीरी जीवों का शरीर एक ही होता है ।

पत्तों में मूल जीव से भिन्न एक-एक जीव भ्रमण-भ्रमण होते हैं । प्रज्ञापना सूत्र में एकजीव और बहुजीव वृक्षों की प्ररूपणा करते हुए कहा है- 'पत्ता पत्तेयजीविया' अर्थात् पत्ते प्रत्येक जीव वाले हैं ।

तथा तास, सास नालिकेर आदि वृक्षां का स्कन्ध एक जीव है । कहा है-

"नाना प्रकार के आकार वाले वृक्षों के पत्ते प्रत्येकजीव हैं और तास, सरल तथा नारियल के स्कन्ध एकजीव हैं" ।

एव परस्पर भेदका छायां पद्य भिन्न-भिन्न रहे छे, परन्तु साधारण शरीरवाणा एव परस्परभां अनुविद्ध-कोकरूप यधने रहे छे तात्पर्य के छे के-प्रत्येकशरीरी एवोनां शरीर भ्रमण-भ्रमण होय छे, किन्तु न्य साधारणशरीरी एवोनु शरीर भेकय होय छे

पत्ता-पत्ताभां मूल एवभी भिन्न-कोक-कोक एव भ्रमण-भ्रमण होय छे, प्रज्ञापनासूत्रभां कोकजीव जाने बहुजीव वृक्षानी प्ररूपणा कस्या यथा कहु छे के- पत्ता पत्तेयजीविया अर्थात् पत्ता प्रत्येक एववाणा छे

तथा तास, सरल, नालिकेर आदि वृक्षान्य एक य कोक एव छे कहु छे के-

"नाना प्रकारना आकारवाणा वृक्षानां पत्ता-पत्तां प्रत्येकएव छे जाने तास, सरल तथा नारिकेलना एक य कोकएव छे."

मूलस्कन्धादिषु तेषामसंख्येयानामपि जीवानां प्रत्येकनामकर्मोदयात् पृथक् पृथगेव एकैकशरीरसद्भावेन प्रत्येकशरीरत्वं मिथ्यति ।

यद्यपि वृक्षाणां मूलादिषु प्रत्येकममंख्येया अपि जीवाः परस्पर विभिन्नशरीराः, तथापि प्रवलरागद्वेषोपचिततथारूपप्रत्येकनामकर्ममाहात्म्यादेव परस्परं समाश्लिष्टाः समिश्रिता भवन्ति । यथा श्लेषणद्रव्येण पिश्रीकृत्य निर्मितायां खसखसगुटिकाया प्रत्येकभागे स्वस्वसत्तया खमखसवीजानि तिष्ठन्ति । यथा वा—गुडमिश्रितैस्तिलैः कृतायां तिलपर्पटिकाया तिलाः स्वस्वरूपेण वर्तन्ते, तथैव प्रत्येकशरीरा असंख्येयजीवाः मूलकन्दादिषु प्रत्येकं तिष्ठन्ति । साधारण-

समाधान—मूल और स्कन्ध आदि में उन असख्यात जीवों के, प्रत्येकनामकर्म के उदय से अलग-अलग एक-एक शरीर है, अत वे सब प्रत्येकशरीरी सिद्ध होते हैं ।

यद्यपि वृक्षों के मूल आदि में असख्यात जीव हैं और उन सब के शरीर भिन्न-भिन्न हैं, फिर भी तीव्र राग-द्वेष के कारण उपार्जित प्रत्येकनामकर्म के प्रभाव से ही वे सब आपस में मिले हुए-से रहते हैं । जैसे किसी चिपकनी चीज में मिलाकर बनाई हुई खसखस की गोली के प्रत्येक भाग में खसखस के बीज अपना अलग-अलग अस्तित्व बनाये रखते हैं, अथवा जैसे गुट मिले तिलों की बनाई हुई तिलपपड़ी में तिलों के दाने अपने अपने स्वरूप में विद्यमान रहते हैं, उसी प्रकार प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदि में रहते हैं । साधारणवनस्पति से इन में यह भेद है कि—प्रत्येकशरीरी

समाधान—मूल अने स्कन्ध आदिमा ते असख्यात जीवाना प्रत्येकनामकर्मना उदयधी अलग-अलग एक-एक शरीर छे, तो पण तीव्र राग-द्वेषना कारणे उपार्जित-प्राप्त करेला प्रत्येकनामकर्मना प्रलावधीन ते सर्व आपसमा-परस्परमा भण्डे रहे छे, जेभ केरि चिपकनी (चीकणी-चोटी जय तेवी) चीजमा जेणवीने बनावेली अमभसनी गोणीना प्रत्येक भागमा असभसना थीन पोतानु अलग अलग अस्तित्व बनावी राखे छे अथवा जेभ गोण जेणवेली तलनी तलपापडी-तलसाकणीमा तलना दाणु पोत-पोताना स्वरूपमा विद्यमान रहे छे, ते प्रमाणे प्रत्येकशरीरी असख्यात जीव मूल, कन्द आदिमा रहे छे साधारण वनस्पतिधी तेनामा जे लेह छे ते -प्रत्येकशरीरी

गुच्छा अनेकविधाः-आइकी-वृन्ताकी-तुलसी-पिप्पलीप्रभृतयः । गुन्माः-
 इस्सन्धवहुकाण्डपत्रपुष्पफलोपेताः, तेजनेकविधा-सेरिका-नवमासिका-कोरप्टक-
 कन्दुबीजकाइयाः । लता अनेकविधा-पघलता-नागलताऽशोकलताचम्यकल्लवाइयाः ।
 पत्त वनस्पतेस्तिर्यक् तथाविधा शस्ता प्रशान्ता वा न मसृताः सा लतोच्यते ।

वल्ग्योजेकविधा-पुष्पफली-कृष्माण्डी-कालित्री-तुम्बी-प्रुपी-कोशातकी
 -पटोलाइयाः । पर्वगा अनेकविधा-इसु-बंस-नलपंस-वतसप्रभृतयः । वृणानि-
 अनेकविधानि-कुशदूर्वादीनि । बल्यानि-ताल-तमास-केतकी-कदली-कन्दल्या

गुच्छ अनेक प्रकार के हैं । जैसे-भरहर वृन्ताकी, तुलसी, पिप्पली आदि ।
 किन्तु तना छोटा हो, कांड बहुत हो और जो पत्ता, फूला और फला से मुक्त हो
 उन्हें गुन्म कहते हैं । वे भी कई प्रकार के हैं । यथा-सेरिका नवमासिका कोरप्टक,
 कन्दुबीजक कोरह । लताएँ भी अनेक प्रकार की हैं, जैसे पघलता, नागलता अशोकलता
 कम्पकल्ला आदि । जिस वनस्पति की तिरछी अथवा स्वस तरह की शाखाएँ प्रधासाएँ नहीं
 फैलती वह लता कहलती हैं ।

कड़ी के भी अनेक भेद हैं । जैसे-पुष्पकली, कृष्माण्डी, कालित्री, तुम्बी,
 प्रुपी (ककड़ी) कोशातकी तथा पटोलादि । पर्वगा भी अनेक प्रकार के हैं ।
 जैसे-इसु, (संझरी) तथा (बंस) मसूरा वेत आदि । कुश और वृष आदि वृण
 अनेक प्रकार के होते हैं । ताल तमास केतकी कदली, कदली आदि कलय

शुष्क अनेक प्रकारनां छे जेवा छे-तुवेर वृन्ताकी, तुलसी पिप्पली, आदि
 जेना यह नाग लता कंड लहुन डोय अने जे पत्ता-कूल अने इयोधी मुक्त डोय
 तेने शुष्क कहे छे ते पक्ष बष्ठा प्रकारना छे जेम-सेरिका, नवमासिक, कोरप्टक
 लमुलवक जेरेर लताज्ये पक्ष अनेक प्रकारनी छे जेवी रीते छे-पघलता नागलता,
 अशोकलता कम्पकल्ला आदि जे वनस्पतिनी तिरछी अथवा आस तरकनी
 शाखाज्ये-अथाजाज्ये देखती नधी ते लता कहेवाय छे

जलीना पक्ष अनेक भेद छे जेवी रीते पुष्पकली कृष्माण्डी, कालित्री, तुम्बी,
 प्रुपी, कोशातकी तथा पटोलादि पर्वग पक्ष अनेक प्रकारना छे जेम-शेरकी चांस,
 नलपंस वेत आदि कुश-बाजडे अने इस-भरेर आदि वृष अनेक प्रकारना डोय छे
 पाल, तमास, केतकी, कदली-केण, कदली आदिने पक्ष कहेवाय छे तदुलीयक, (वांडलवा)

पुष्पेषु अनेकजीवाः-संख्याता असख्याता अनन्ता वा सन्ति । उक्तञ्च-
“पुष्पा अपोगजीवा ” इति ।

“पुष्पा जलया थलया, विटवद्वा य नालिवद्वा य ।

संखिज्जमसंखिज्जा, बोधव्वाऽणंतजीवा य ” ॥

छाया-पुष्पाणि जलजानि स्थलजानि, वृन्तवद्धानि च नालिवद्धानि च ।

सख्येयानि (सख्येय जीवानि) असख्येयानि (असंख्येय जीवानि)

बोद्धव्यानि अनन्त जीवानि च ॥ (प्रज्ञा०)

यत्तु “पुष्पाणि चैकजीवानि मन्तव्यानी”-ति शीलाङ्काचार्यैरभिहितं तत्
प्रामादिकम्, प्रज्ञापनासूत्रविरोधात् ।

फलेषु मूलजीवमाश्रित्य प्रत्येकं द्वौ द्वौ जीवौ स्तः । टोणिण य जीवा फले
भणिया ” इति प्रज्ञापनावचनात् । वृक्षाः प्ररूपिताः, अथगुच्छादयः प्रोच्यन्ते-

फूलो मे अनेक-सख्यात असख्यात अथवा अनन्त जीव होते हे । कहा भी है-“पुष्पा
अपोगजीवा” फूल अनेक जीव वाले होते है ।

“जल में उत्पन्न होने वाले, स्थल में उत्पन्न होने वाले, वृन्तवद् या नालि-
वद् फूल संख्यात, असख्यात अथवा अनन्त जीव वाले समझने चाहिए” ।
(प्रज्ञापनासूत्र)

“फूल एक जीव वाले होते है” यह शीलाङ्काचार्य का कथन भूलभरा है, क्यों कि
यह प्रज्ञापनासूत्र से विरुद्ध है ।

फलों में मूल जीव की अपेक्षा प्रत्येक दो-दो जीव है । प्रज्ञापना सूत्र में कहा है-
“ फल में दो जीव कहे गये है । ”

यहाँ तक वृक्षों का निरूपण किया । अब गुच्छ आदि के विषय में कहते है-

इदोभा अनेक संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त-एव होय छे कहु पण
छे-‘पुष्पा अपोगजीवा’ “इल अनेक एववाणा होय छे ”

“इलभा उत्पन्न थवावाणा, स्थलभा उत्पन्न थवावाणा वृन्तवद् अथवा
नालिवद् इल संख्यात असंख्यात अथवा अनन्त एववाणा छे, ओम समणु
नेधंओ ” (प्रज्ञापनासूत्र)

“इल ओक एववाणा होय छे” आ शीलाकाचार्यनु कथन भूललथुं छे, केमके
ते प्रज्ञापनासूत्रथी विरुद्ध छे

इदोभा मूल एवनी अपेक्षा प्रत्येक जे-जे एव छे. प्रज्ञापनासूत्रमा कहुं छे-
“इलभा जे एव कडेला छे ”

अहिं सुधी वृक्षेणु निरूपणु कथुं, हुवे गुच्छ आदिना विषयमा कडे छे -

जातस्तेन तच्छरीरगुत्यादित, सषषा स्वायत्तीकृत च, क्य तत्रान्यपां जीवानामव-
काश, नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्येऽपि जीवाः सर्वावयवेषु सहैव परस्पराद्
प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—यनैव तच्छरीर निष्पाद्य सत्यवकाशे र्वेतैरैः सह परस्पराद्युपवेशेन
स्वापीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् तत्रैव तस्यैव पर्याप्तपर्याप्तव्यवस्था,
प्राणापानादियोग्यपुत्रगलोपादानं वा भवेत्, ननु शेषाणाम् ? अत्रोच्यते—

नार्यं मन्त्रो युक्तिपयमारोहति, सङ्कार्त्तुर्निनशासनपरिज्ञानामावात् ।

एक जो बीव उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना
किया । फिर उस शरीर में दूसरे बीवों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य बीव भी सब अवयवों में एक दूसरे में मिलकर उत्पन्न
कैसे हो सकते हैं ?

व्यवस्था—किस बीवने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने
से मिल अन्य बीवोंके साथ मिलकर रहण किया है वही बीव उस शरीर में प्रधान
होगी । एसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान
आदि के योग्य पुत्रगो को रहण करेगा । शेष बीवों के नियम में किस प्रकार यह व्यवस्था
हो सकती है ।

समाधान—यह संका उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि संकाकार को
विन्यासन का परिज्ञान नहीं है ।

ये एव उत्पन्न भवेत् तेषु ते शरीर उत्पन्न कथुं अने तेषु पूरी रीते पादानुं करी
बीवुं पक्षी के शरीरमां जीवने एवकाश केवी रीते भणी शके छे ? देवदत्तना
शरीरमां देवदत्तनी प्रभावे अन्य एव पक्षु तत्राभ अवयवोमां केके जीवने भणीने
उत्पन्न केवी रीते कर्ष शके छे ?

अथवा ये एवै का शरीर उत्पन्न करीने अवकाश भजतां पादानाधी मिल
अन्य एवोनी साथे भणीने अक्षय कथुं छे ते एव के शरीरमा प्रधान भये, केवी
अवस्थाभां-स्थितिभां केनी पर्याप्त अने अपर्याप्तनी अवस्था भये, तेव प्राण-
अपान आदिना योग्य पुत्रगोने अक्षय करये, शेष-आधीना एवोना नियमभां के
अवस्था केवी रीते कर्ष शके छे ?

समाधान—जा शका योग्य नहीं केमके—शका करतारने मिल, शासननुं
परिज्ञान नहीं ।

दीनि । हरितानि-तन्दुलीयक-वस्तुल-मार्जारपादिका-पालट्स्यादीनि । ओषध्यः-शालि-व्रीहि-गोवृम-यव-वर्जरी-मुद्ग-मापादयः । जलरुहाः-उत्पल-पद्म-कुमुद-नलिन-पुण्डरीक-शतपत्र-सहस्रपत्र-कोकनदा-रविन्द-पनक-पनकचट्ट-शैवालदयः । कुहणाः भूमिस्फोटकाऽऽपकाय-सर्पच्छत्रादयः ।

उक्ताः प्रत्येकशरीरा वनस्पतयः । अथ साधारणशरीराः प्ररूप्यन्ते—

साधारणनामकर्मोदयादनन्ताना जीवानां साधारणमेकं शरीरं भवति । तस्मात् साधारणमेक शरीरं येषां ते साधारणशरीराः ।

ननु कथमनन्तजीवानामेकं शरीरं समवति, तथाहि-यः खलु प्रथमं

कहलाते है । तन्दुलीयक, वस्तुल, मार्जारपादिका, पालकी आदि को हरित कहते है । शालि व्रीहि (धान) ओ गेहूँ, जौ, बाजरी, मूग, उडद आदि के पौधे ओषधि कहलाते हैं । उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट, शैवाल आदि को जलरुह कहते हैं । भूमिस्फोटक, आपकाय और सर्पच्छत्र आदि कुहण कहलाते हैं ।

यहाँ तक प्रत्येकशरीर वनस्पति का विवेचन हुआ । साधारणशरीर का प्ररूपण इस प्रकार है—

साधारणनामकर्म के उदय से अनन्त जीवों का एक साधारण होता है । जिनका शरीर साधारण अर्थात् एक हो, वे साधारणशरीर कहलाते हैं ।

शङ्का—अनन्त जीवों का शरीर एक कैसे हो सकता हो ? क्यों कि पहले-

वस्तुल (अथुवा) मार्जारपादिका, पालकी (सुवापालक) आदिने हरित कडे छे शाली, व्रीहि (धान्य) गेहूँ-धत, जव, भाजरी, मग, अडद आदि ओषधि कडेवाय छे उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, कोकनद, अरविन्द, पनक, पनकचट्ट शैवाल आदिने जलरुह कडे छे भूमिस्फोटक, आपकाय अने सर्पच्छत्र आदि-कुहण कडेवाय छे

अर्हि सुधी प्रत्येक वनस्पतिनु विवेचन थयु, साधारण शरीरनु प्ररूपण आ प्रकारे छे-साधारणनामकर्मना उदयथी अनन्त एवोनु अेक साधारणशरीर डोय छे जेनु शरीर साधारण अर्थात् अेक डोय ते साधारणशरीर कडेवाय छे

शङ्का—अनन्त एवोना शरीर अेक केवी रीते डोय शके छे ? केमके पडेल वडेलो

आतस्तेन तच्छरीरमुत्पादित, सद्यथा स्यायचीकृत च, कथं तत्रान्यथा जीवानामथ-
काश, नहि देवदत्तशरीरे देवदत्त इवान्यऽपि जीवाः सर्वाथयथेषु सदैव परस्पराद्
प्रवेशपूर्वकं प्रादुर्भवन्ति ?

यद्वा—येनैव तच्छरीरं निष्पाद्य सत्यवकाशे स्वैतरे सह परस्परादुभवेक्षेन
स्वाधीनं कृतं, स एव यत्र प्रधानः स्यात् ततश्च तस्यैव पर्याप्तापर्याप्तव्यवस्था,
प्राणापानादियोम्यपुद्गम्बोपादानं वा भवेत्, नतु शेषावाप्तम् ? अत्रोच्यते—

नार्यं प्रश्नो युक्तिपथमारोहति, शङ्काकर्तुर्मिनश्चासनपरिग्रहानामाभात् ।

परस जो बीब उत्पन्न हुआ उसने वह शरीर उत्पन्न किया और उसे पूरी तरह अपना
किया । फिर उस शरीर में दूसरे बीबों को अवकाश किस प्रकार मिल सकता है ? देवदत्त
के शरीर में देवदत्त की तरह अन्य बीब भी सब अवकाशों में एक दूसरे में मिश्रकर उत्पन्न
कैसे हो सकते हैं ?

अपवा—किस बीबने वह शरीर उत्पन्न करके, अवकाश होने पर अपने
से मिल अन्य बीबोंके साथ मिश्रकर ग्रहण किया है वही बीब उस शरीर में प्रधान
होगा । एसी स्थिति में उसी की पर्याप्त और अपर्याप्त की व्यवस्था होगी । वही प्राणापान
आदि के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करेगा । शेष बीबों के विषय में किस प्रकार यह व्यवस्था
हो सकती है ।

समाधान—वह शंका उचित नहीं कही जा सकती, क्योंकि शंकाकार को
विन्यासन का परिग्रह नहीं है ।

ने एव उत्पन्न भयो तेष्ते ते शरीर उत्पन्न कर्तुं नने तेष्ते पूरी रीते पादानु करी
बीबु पछी जे शरीरमां लीव लोवने अवकाश केनी रीते भणी शके छे ? देवदत्तना
शरीरमां देवदत्तनी प्रभावे अन्य एव पक्ष तत्राथ अवकाशमां जेक लीवने भणीने
उत्पन्न केनी रीते वर्ध शके छे ?

अथवा ने लोवे न्ना शरीर उत्पन्न करीने अवकाश भक्तां पादानाधी विज
अन्य लोवनी साथे भणीने शक्य कर्तुं छे ते एव जे शरीरमा प्रधान भये जेनी
अवस्थाभां-स्थितिमां जेनी पथोन्त नने अपर्याप्तनी व्यवस्था भये. तेच प्राण-
अपान आदिना योम्य पुद्गलोंने शक्य करये. शेष-जालीना लोवना विषयमां जे
व्यवस्था केनी रीते वर्ध शके छे ?

समाधान—ना शंका योम्य नधी केभडे-शंका करनेरने विना, शासन
परिग्रह नधी.

वाटरा वनस्पतयः संक्षेपतः पश्चिधधाः—अग्रवीज—मूलवीज—पर्ववीज—स्कन्ध-
वीज—बीजरुह—संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे वीजं येपा ते—अग्रवीजाः कोरुण्टरुप्रभृतयः ।
मूलमेव वीज येपा ते मूलवीजाः रुद्रल्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थो मन्धिभागे पर्वे वा
वीजं येपा ते पर्ववीजाः इक्षु—वंश—वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुड, स एव वीजं येपा ते
स्कन्धवीजाः=अरणि—शल्लकी—स्तुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोहन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-
रुहाः=शालि—गोधूम—जव—मक्का—वर्जरीप्रभृतयः । संमूर्च्छन्ति=बीज प्रिनाऽपि दग्गभू-
मावपि समुद्भवन्तीति समूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणत्रिशापाः ।

वाटर वनस्पति संक्षेप में छह प्रकार की हैं—(१) अग्रवीज (२) मूलवीज
(३) पर्ववीज (४) स्कन्धवीज (५) बीजरुह और (६) समूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका
बीज आगे रहता है ऐसी कोरुण्टक आदि वनस्पतियों अग्रवीज कहलाती हैं । पर्व
(पोर—सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्ववीज
कहते हैं, जैसे—ईख, बांस, वेत आदि । स्कन्ध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,
शल्लकी, स्तुही (थुहर) वगैरह स्कन्धवीज कहलाती हैं । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, बाजरी वगैरह
बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के बिना भी, जली हुई
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति
समूर्च्छिम कहलाती है ।

वाटर वनस्पति संक्षेपमा छ प्रकारनी छे— (१) अग्रबीज, (२) मूलबीज,
(३) पर्वबीज, (४) स्कन्धबीज, (५) बीजरुह, (६) समूर्च्छिम जे वनस्पतियोगुं
बीज आगण रहे छे ओवी कोरुण्टक आदि वनस्पतियोगुं अग्रबीज कहेवाय छे मूल
ओज जेतु बीज होय ओवी कहुणी आदि वनस्पतियोगुं मूलबीज छे—(पोर—सधिभाग)मा
जेतु बीज होय तेने पर्वबीज कहे छे, जेभके—शेखडी, बांस, नेतर आदि स्कन्ध
जेतु बीज होय ते अरणी शक्य, स्तुही (थार) वगेरे स्कन्धबीज कहेवाय छे शाली,
धउ, जव, मकाई, बाजरी वगेरे बीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने बीजरुह कहे
छे बीज बिना पणु अणी गओली जमीन आदिमा पणु पृथ्वी अने जलना
संयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते समूर्च्छिम कहेवाय छे

आकारतः प्रत्यकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽन्तर्गताः सन्ति ।
तेषां लक्षणमुच्यते—

यस्मिन् मूले मग्ने सति समभ्रकाकारा मङ्गो भवति, तत्र नियमताऽनन्ता
शाखा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्धे मग्ने सति समभ्रकाकारो मङ्गाद्व्यते तथाप्य
नन्ता शीवाः । एष तपसु स्कन्ध-स्वह-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि
विद्येयम् । ईदृशम मङ्गः प्रायणापरिहारस्यायां भवति ।

तथा—यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारभूतफाष्टापक्षया बहुतरा स्यूला स्वग् भवति
सा सयनन्तशीवस्वरूपा ।

आकार स प्रत्यकवनस्पति क समान दिग्दर्श देन बान्नी वनस्पतिषी भी भन्तन जीव
बान्नी हती हैं । उनका कश्चन यह है—

त्रिसका मूग्माग सोहन पर समान पत्राकार भंग होला ६, उसमें नियम स
भन्त जीव होते हैं । इसी प्रकार त्रिसका कृष् मीगन पर समान पत्राकार भंग दिग्दर्श दे
समें भी भन्त जीव होते हैं । यही पाठ रूप तथा, शाखा प्रवाल पत्र, पुष्प, फल
और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए । इस प्रकार के भंग प्राय सब होने हैं सब
वस्तुनि कभी होती है ।

इसके अनिष्टिक त्रिस वनस्पति क बीज क माग्माग की भाषा छान बहुत माटी
होती है वह छान भी भन्त जीव बान्नी होती है ।

आप्ररथी प्रत्येक वनस्पतिना समान-सरथी-हेजावावागी वनस्पति पञ्च अनन्त
एवागी दोष उ तनु तक्षु जे उ के-नेना भूजभाजने तोइवाशी समान बडाकार
बज बाव उ तेना नियमशी अनन्त एव दोष उ जे प्रभावे १ने। इन्त भाजवाशी
अमान बडाकार अज यथे। हेजाउ आवे तेमां पञ्च अनन्त एव दोष उ जेअ
एव शक, तथा शाखा प्रवाल पत्र-पाहला, पुष्प, इव अने बीजेना विषयमां
पञ्च समकषी जेअजे आ प्रकाशने अज प्राय इवारे बाव उ के अदरे वनस्पति
होती दोष उ त्वारे बाव उ

नेना सिबाव जे वनस्पतिना बन्धमां सारभाजनी अपेक्षा छान पली अ माटी
है उ ते छान पञ्च अनन्तएवागी दोष उ

સાધારણનામકર્મપ્રભાવાદનન્તા અપિ જીવા એકસ્મિન્નેવ કાલે સદૈવોત્પત્તિદેશે તિષ્ઠન્તિ, સદૈવ પર્યાપ્તિં નિર્વર્તયન્તિ, સદૈવ પ્રાણાપાનયોગ્યપુદ્ગલાનુપાદદતે, સદૈવ ચ તેપામાહારાદિપુદ્ગલગ્રહણમ્, તસ્માન્ન કાચિદનુપપત્તિગિતિ । ઉક્તઞ્ચ ભગવતા—

“ સમયં વક્ત્રંતાણં, સમયં તેસિં શરીરનિચ્ચિત્તી ।

સમયં આણગ્ગહણં, સમય ઉસ્સાનીમાસા ॥ ૧૬ ॥

એકસ્સ ઉ જં ગહણં, વહુણ સાહારણાણ ત ચેવ ।

જ વહુયાણં ગહણં, સમાસઓ તંપિ એગસ્સ ॥ ૧૭ ॥

છાયા—સમકં વ્યુત્ક્રાન્તાનાં, સમક તેપાં શરીરનિર્વૃત્તિઃ ।

સમકમાનગ્રહણં, સમકમુચ્છ્વાસનિઃશ્વાસૌ ॥ ૧૬ ॥

એકસ્ય તુ યદ્ ગ્રહણં, વહૂનાં સાધારણાનાં તદેવ ।

યદ્ વહુકાના ગ્રહણં, સમાસતસ્તદપ્યેકસ્ય ॥ ૧૭ ॥

સાધારણનામકર્મ પ્રભાવ સે અનન્ત જીવ એક હી કાલ મેં સાથ હી ઉત્પત્તિ દેશ મેં ઉત્પન્ન હોતે હૈં, સાથ હી પર્યાપ્તિયાં પૂર્ણ કરતે હૈં, સાથ હી પ્રાણાપાન કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હૈં ઓર સાથ હી આહાર આદિ કે યોગ્ય પુદ્ગલોં કો ગ્રહણ કરતે હૈં । અત એવ હસ કથન મેં તનિક મો અયુક્તિ નહીં હૈ । મગવાન્ ને કહા હૈ—

“સાથ હી વે જીવ ઉત્પત્તિદેશ મેં આતે હૈં, સાથ હી ઉનકા શરીર વનતા હૈ સાથ હી પ્રાણ ગ્રહણ કરતે હૈ, સાથ હી ઉચ્છ્વાસ—નિ શ્વાસ હોતે હૈં (૧૬) એક જીવ જો ગ્રહણ કરતા હૈ વહ વહુત જીવોં કે લિષ્ટ સમાન હોતા હૈ ઓર વહુત જીવ જો ગ્રહણ કરતે હૈ વહ એક જીવ કે લિષ્ટ મો હોતા હૈ (૧૭)

સાધારણ નામકર્મના પ્રભાવથી અનન્ત જીવ એક જ કાલમા સાથે જ ઉત્પત્તિદેશમા ઉત્પન્ન થયા છે સાથે જ પર્યાપ્તિઓ પૂર્ણ કરે છે સાથે જ પ્રાણ-અપાનના યોગ્ય-પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે, અને સાથે જ આહાર આદિના યોગ્ય પુદ્ગલોને ગ્રહણ કરે છે એ માટે આ કથનમા જરાપણ અસ્વાભાવિકતા અથવા અયુક્તતા નથી. મગવાને કહ્યું છે કે—

“તે જીવ એક સાથે જ ઉત્પત્તિદેશમા આવે છે, સાથે જ એના શરીરો અને છે, સાથે જ પ્રાણ ગ્રહણ કરે છે સાથે જ શ્વાસોચ્છ્વાસ થાય છે (૧૬) એક જીવ ને ગ્રહણ કરે છે તે બધાય જીવો માટે સમાનપણે થાય છે, અને તમામ જીવો ને ગ્રહણ કરે છે તે એક જીવને માટે પણ થાય છે (૧૭)

साधारणमाहारो, साधारणमाणपाणग्रहणं च।

साधारणबीजाणं, साधारणस्फुटनं एव” ॥ १८ ॥ (प्रज्ञा० ११५)

आया-साधारणमाहार साधारणमानपाणग्रहणं च।

साधारणबीजानां, साधारणस्फुटनमेवतु ॥ १८ ॥

एवं च परस्परानुविधानन्तमीनसमूहरूपेण एकस्यरीरावस्यापिनो बीजाः साधारणस्यरीरा इति सिद्धम् । एते साधारणबीजसमूहेन साधारणसमूहेनापि च व्यपदिश्यन्ते।

तेजोविधाः—सूर्यकन्द - वज्रकन्द - सर्कराकन्द - रक्ताक्ष - पिण्डाक्ष - लघुन-पल्लव - पुठजन - सुश्वेराद्याः । वनस्पतेर्मूलसंलग्नो मूष्यन्तर्गतो भागविशेषः कन्दः । एतेऽन्तर्बीजविशेषस्वरूपाः सन्ति ।

साधारण बीजों का आहार साधारण होता है और साधारण प्राणपात्र का मूल्य होता है इस प्रकार उनका यह साधारण स्फुटन कहा गया है” ॥१८॥ (प्रज्ञा० ११५)

इस प्रकार सिद्ध हुआ कि एक दूसरे में मिश्रित हुए अनन्तबीजसमूहरूप से एक ही धर्म में रहने वाले साधारण बीज हैं । इन बीजों के लिए 'साधारणबीज' तथा 'साधारण' शब्द का भी व्यवहार किया जाता है ।

साधारण बीज अनेक प्रकार के होते हैं । जैसे—सूर्यकन्द, वज्रकन्द, शक्करकन्द, रक्ताक्ष, पिण्डाक्ष, लघुसुग व्याज, गाबर अदरक आदि । वनस्पति के मूलक साधारण भाग हुआ और जमीन के अन्दर रहने वाला हिस्सा कन्द कहलता है । ये कन्द अनन्त बीजों के पिंड हैं ।

साधारण लघुनेन आहार साधारण होय छे अने साधारण प्राणपात्रनु प्रकृत्य होय छे जे प्रभाषे तेषु अथ साधारण लक्ष्य कथ्य छे (१८)”

अ प्रभाषे सिद्ध भवु छे जेक बीजार्थ भवेता अनन्तलघुसमूहपथी जेक च स्यरीर्था रहेवा वाणां साधारण लघु छे जे लघुने भागे साधारण लघु तथा साधारण शब्दने पद्य अवधार करी शक्य छे

साधारण लघु अनेक प्रकारना होय छे जेभ-सूर्यकन्द, रक्ताक्ष पिण्डाक्ष, वज्रकन्द कुजली आबर, आदि. वनस्पतिना मूलनी आदि लघुनेता अने जमीननी अन्दर रहेवावायो भाग कह कहेवाय छे अथ कह अनन्त लघुनेना पिंड छे.

वादरा वनस्पतयः सक्षेपतः पट्विधाः—अग्रबीज—मूलबीज—पर्वबीज—स्कन्ध-
बीज—बीजरुह—संमूर्च्छिमभेदात् । अग्रे बीजं येपा ते—अग्रबीजाः कोरण्टकप्रभृतयः ।
मूलमेव बीजं येपा ते मूलबीजाः रुद्रत्यादयः । पर्वणि=ग्रन्थौ मन्धिभागे पर्वे वा
बीजं येपा ते पर्वबीजाः इक्षु—वंग—वेत्रप्रभृतयः । स्कन्धः=स्थुड, म एव बीजं येपा ते
स्कन्धबीजाः=अरणि—शल्लकी—स्तुहीप्रभृतयः । बीजाद् रोदन्ति=प्रादुर्भवन्तीति बीज-
रुहाः=शालि—गोधूम—जव—मक्का—वर्जरीप्रभृतयः । संमूर्च्छन्ति=बीज विनाऽपि दग्धभू-
मावपि समुद्भवन्तीति संमूर्च्छिमाः पृथिवीजलसंयोगमात्रजनितास्तृणविशेषाः ।

वादर वनस्पति सक्षेप मे छह प्रकार की हं—(१) अग्रबीज (२) मूलबीज
(३) पर्वबीज (४) स्कन्धबीज (५) बीजरुह और (६) संमूर्च्छिम । जिन वनस्पतियोंका
बीज आगे रहता है ऐसी कोरण्टक आदि वनस्पतियों अग्रबीज कहलाती हैं । पर्व
(पोर—सधिभाग) में जिनका बीज हो, या पर्व ही जिनका बीज हो उन्हें पर्वबीज
कहते हैं, जैसे—ईख, बाँस, वेत आदि । स्कन्ध जिनका बीज हो ऐसी अरणि,
शल्लकी, स्तुही (थुहर) वगैरह स्कन्धबीज कहलाती हैं । शाली, गेहूँ, जौ, मक्की, वाजरी वगैरह
बीज से उगने वाली वनस्पति को बीजरुह कहते हैं । बीज के बिना भी, जली हुई
जमीन आदि में भी पृथ्वी और जल के संयोगमात्र से उत्पन्न होने वाली वनस्पति
संमूर्च्छिम कहलाती है ।

वादर वनस्पति सक्षेपमा छ प्रकारनी छे— (१) अग्रबीज, (२) मूलबीज,
(३) पर्वबीज, (४) स्कन्धबीज, (५) बीजरुह, (६) संमूर्च्छिम जे वनस्पतिओओ
बीज आगण रहे छे ओवी केर टक आदि वनस्पतिओओ अग्रबीज कहेवाय छे मूल
ओओ जेनु बीज होय ओवी कहुनी आदि वनस्पतिओओ मूलबीज छे—(पोर—सधिभाग)मा
जेनु बीज होय तेने पर्वबीज कहे छे, जेभके—शेलाडी, बास, नेतर आदि स्कन्ध
जेनु बीज होय ते अरणी शक्य, स्तुही (थोर) वगेरे स्कन्धबीज कहेवाय छे शाली,
धउ, जव, मकाई, भाजरी वगेरे बीजथी उगवा वाणी वनस्पतिने बीजरुह कहे
छे बीज बिना पषु भणी गओली जमीन आदिमा पषु पृथ्वी अने जलना
संयोगमात्रथी उत्पन्न थवा वाणी वनस्पति ते संमूर्च्छिम कहेवाय छे

भाकारत प्रत्येकवनस्पतिरूपेण दृश्यमाना अपि वनस्पतयोऽन्तर्जीवाः सन्ति ।
तेषां लक्षणमुच्यते—

पस्मिन् मूले मग्ने सति सममकाकारो मद्गो भवति, तत्र नियमतोऽनन्ता
बीजा भवन्ति । तथा यस्मिन् स्कन्धे मग्ने सति सममकाकारो मद्गो दृश्यते तमाप्य
न्ता बीजाः । एवं श्रेषु स्कन्ध-त्वक्-शाखा-प्रवाल-पत्र-पुष्प-फल-बीजेष्वपि
द्विषेयम् । ईदृशश्च मद्गुः प्रायेणापरिक्लवस्थायां भवति ।

तथा—यस्य वनस्पतेर्मध्यगतसारयूतकक्षापेक्षया बहुलतरा स्यूता त्वम् भवति
सा स्वगन्तबीजस्वरूपा ।

भाकार से प्रत्येकवनस्पति के समान दिन्नाई देने वाली वनस्पतियों की अनन्त बीज
वासी होती हैं । उनका लक्षण यह है—

बिसका मूलभाग तोड़ने पर समान पत्रकार मंग होता है, उसमें नियम से
अनन्त बीज होते हैं । इसी प्रकार बिसका कण्ड मँगने पर समान पत्रकार मंग दिन्नाई दे
उसमें भी अनन्त बीज होते हैं । यही बात एक त्वका, शाखा प्रवाल पत्र पुष्प, फल
और बीजों के विषय में भी समझनी चाहिए । इस प्रकार के मंग प्रायः सब होते हैं जब
वनस्पति कम्पी होती है ।

इसके अतिरिक्त जिस वनस्पति के बीज के सारभाग की अपेक्षा अक्सर बहुत मोटी
होती है वह अक्सर भी अनन्त बीज वाली होती है ।

भाकारशी प्रत्येक वनस्पतिना समान-संरूपी-दोषावावाणी वनस्पति पक्ष अनन्त
एववाणी होय छे तेतु वक्ष्यते छे छे के-नेना मूलभागने तोड़वावी समान पत्रकार
काज वाय छे तेमां नियमशी अनन्त एव होय छे छे प्रभावे नेना कन्ध काजवाणी
समान पत्रकार काज वाये दोषाछे आवे तेमां पक्ष अनन्त एव होय छे छे
एत एक प, त्वका, शाखा प्रवाल पत्र-पत्रिकां, पुष्प, इत अने जीनेना विषयमां
पक्ष समझनी छे छे का प्रकाशने काज प्रायः क्यारे वाय छे के क्यारे वनस्पति
कानी होय छे त्वारे वाय छे

नेना सिवाय के वनस्पतिना पक्षमां सारभागनी अपेक्षा छाल बड़ी न मारी
होय छे, ते छाल पक्ष अनन्त एववाणी होय छे

तथा—किसलयरूपे पत्राद्दुरे उद्गम्यमाने नियमतोऽनन्ता जीवा भवन्ति । उक्तञ्च प्रज्ञापनाया प्रथमपदे ।

‘ सव्वोऽपि किसलयो खलु, उद्गममाणो अणतओ भणिओ. ’ इत्यादि ।

छाया—सर्वोऽपि किसलयः खलु उद्गच्छन् अनन्त भणितः इत्यादि ।

वनस्पतिभिद्यमानः पृथिवीसदृशेन भेदेन भिद्यते, सोऽप्यनन्तजीवस्वरूपः । अन्यच्च—

“ गूढसिराग पत्तं, मच्छीरं ज च होढ निच्छीरं ।

जंपि य पट्टणसधिं, अणतजीव वियाणाहि ॥ १ ॥ ” इति । (प्रज्ञा०)

छाया—गूढशिराकं पत्रं, सक्षीर यच्च भवति निःक्षीरम् ।

यदपि च प्रणष्टमन्धि, अनन्तजीव विजानीहि ॥ १ ॥ इति ।

तथा—कौपल जव उत्पन्न होती है तो उसमें भी अनन्त जीव होते ह । प्रज्ञापना के पहले पदमें कहा है—

“ उगते ह्वा मभी किसलय अनंतकाय कहे गये हैं । ”

जिस वनस्पति की प्रथि या पोर, तोडनेपर रज से भरी हो, या जो वनस्पति, टूटने पर पृथ्वी के समान भेदों से टूटे, वह भी अनन्तजीववाली होती है ।

और भी कहा है —

“ जिस के ततु साफ दिखाई न देते हां, तथा जिसकी सधि त्रिलकुल दिखाई न देती हो ऐसा पत्ता, अगर दूधवाला हो या उसमें दूध उत्पन्न न हो, उसे भी अनन्तजीववाला समझना चाहिए ” ।

तथा—कुपण न्यारे उत्पन्न थाय छे त्यारे तेमा पणु अनन्त एव होय छे प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमा उह्यु छे के -

“ उगता होय ते सर्वं द्विशलय (पल्लव तान्ता कुमणा पाननो समूह) अनन्तकाय क्ख्या छे ”

जे वनस्पतिनी अधि—गाठ अथवा पोर, तोडवाथी रज्ज्थी लदेदी, होय अथवा जे वनस्पति, तूटवाथी पृथ्वीना समान भेदोथी तूटे ते पणु अनन्त एववाणी होय छे भीणु पणु कहुं छे के -

“ जेना ततुओ चोपभा देभाता न होय, तथा जेनी सधि (साधो) भीलकुल देभाती होय नहि, जेवा पादडा दूधवाणा होय अथवा जेमा दूध उत्पन्न होय नहि, तेने पणु अनन्त—एव वाणा समजवा जेधजे ”

गूढशिराकमिति=गूढाः=भ्रमरस्यमाणाः शिराः=नाडीजातं तन्तुघातमिति वा यस्य तत् । प्रकष्टसंधीति=मण्डलः=सर्वथाऽनुपलभ्यमानः, सन्धिः=पञ्चदशसयोगरूपो मागो यस्य तत् । एतादृशं परं सतीरं=सदुग्धम्, शिःसीरम्=अनुत्पन्नदुग्धं वा उदन्त-बीजं चिजानीहीत्यर्थः ।

एवमन्येऽप्यनेकविधाः शैवालस्योऽनन्तबीजाः स्वयुद्धया गुरुगमेन वा परिमाफनीयाः । विस्तरतस्तु भिन्नास्तुभिः प्रज्ञापनासूत्रं बिलोकनीयम् ।

सूक्ष्मनिगोशस्तु मगत्ववचनावगम्या एव, अनन्तशरीरसघाते सत्यप्यतिमूक्ष्मत्वाभास्माकं चङ्गापपेऽन्तरन्ति । “आणाग्निञ्चा एव चक्षुष्फासं न त इति” इति वचनात् । उक्तञ्च प्रज्ञापनायां सदृष्टान्तं निगोदमीवस्वरूपं, यथा—

इसी प्रकार सेवार आदि अन्यान्य वनस्पतियों को भी अपनी बुद्धि से या गुरुगम से कलशबीजवादी समझ लेनी चाहिए । जिन्हें विस्तारपूर्वक जानना हो उन्हें प्रज्ञापनासूत्र देखना चाहिए ।

सूक्ष्म निगोश मगवान् के वचन से ही समझे जा सकते हैं । एक शरीर में कलश बीजों का फिण्ड होने पर भी वे बीज इतने सूक्ष्म होते हैं कि हम अपने नेत्रों से (आगम) उन्हें नहीं देख सकते । कहा भी है—“ये बीज सर्वज्ञकी आज्ञा से ही प्रकृष्ट किये (घने) जाते हैं । आज्ञा उन्हें नहीं देख सकती” । प्रज्ञापना सूत्र में उदाहरण के साथ निगोश का स्वरूप इस प्रकार बताया है—

ये प्रभाष्ये सेवका आदि बूटी-बूटी वनस्पतियोगेन यत्तु पेतानी लुद्धिबीजवया शुकुत्रमभी अनतल्लववापी समल लेनी ज्येष्ठे, नेने विस्तारपूर्वक लक्षणापी धिष्यत होय तेज्येजे प्रज्ञापनासूत्र ज्येष्ठ लेनु ज्येष्ठजे

सूक्ष्मनिगोश अत्रवानना वचनभी व समल शक्य छे (लक्ष्मी शक्य छे) ज्येष्ठ शरीरमा अनत लवोना पिठ होवा छतां यत्तु ते लव ज्येष्ठया सूक्ष्म होय छे छे आपष्ये आपष्य नेत्रधी तेने ज्येष्ठ शकता नथी. कस्तु यत्तु छे छे—“ते लव सर्वज्ञनी आज्ञा (आगम)धी व अकष्य कस्यामा जावे छे—लक्षणापीमां जावे छे नेत्रधी ते ज्येष्ठ शकता नथी” प्रज्ञापनासूत्रमां उदाहरणनी साथे निगोशतु स्वरूप आ प्रभाष्ये ज्ञानं छे—

“ जह अयगोलो धंतो, जाओ तत्तवणिज्जसकासो ।

सच्चो अगणिपरिणओ, निगोअजीवे तहा जाण ” ॥ १ ॥ इति ।

छाया—यथाऽयोगोलो ध्मातो, जातस्तप्तपनीयसंकाशः ।

सर्वोऽग्निपरिणतो, निगोजीवान् तथा जानीहि ॥ १ ॥

यथा—अयोगोलोऽग्निना ध्मातः तप्तसुवर्णसदृशः सर्वांशतोऽग्निपरिणतोऽग्निरूप एव भवति हे शिष्य ! तथैव निगोदजीवान् जानीहि । निगोदजीवाना परिमाण-स्वरूपमेव विज्ञेयम्—

अय लोकश्चतुर्दशरज्जुपरिमितोऽस्ति । एको रज्जुरसख्यातयोजनात्मकः, योजनं सख्याताङ्गुलपरिमितम्, एकमङ्गुलमसख्याताकाशप्रदेशात्मकं भवति । तस्याङ्गु-जस्यैकैकाकाशप्रदेशे निगोदानामसख्याता गोलकाः, एकैकस्मिन् गोलके निगोदानाम-सख्यातानि शरीराणि, एकैकस्मिन् शरीरेऽनन्ता जीवा निवसन्ति । उक्तञ्च—

“जैसे अग्नि में तपाया हुआ लोहे का गोला तपे सोने के समान पूर्णतया अग्निरूप ही हो जाता है, हे शिष्य ! उसी प्रकार निगोद के जीव समझे ” । निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार समझना चाहिए—

लोकाकाश चौदह राजू का है । एक राजू में असख्यात योजन होते हैं और सख्यात अंगुल का एक योजन होता है । आकाश के असख्यात प्रदेश—परिमित एक अंगुल होता है । इस अंगुल के एक—एक आकाश प्रदेश में निगोद जीवों के असख्यात गोले होते हैं । एक—एक गोलक में असख्यात शरीर होते हैं और एक—एक शरीर में अनन्त जीवों का निवास है । कहा भी है—

“ नेम अग्निमा तपावेत्ते। लोढानो गोणे। तपेत्ता सोना—प्रभाणु पृष्पणु अग्निइप न थर्ध न्थ छे, हे शिष्य ! ये प्रभाणु निगोदना एव समन्ने ” निगोदना एवेतु परिभाणु—ये प्रभाणु समन्वु नेर्धये—

लोकाकाश चौदह राजूना छे अेक राजूमा अस ख्यात योजन थाय छे, अने स ख्यात अशुद्धना अेक योजन थाय छे आकाशना अस ख्यातप्रदेश—परिमित अेक अशुद्ध डोय छे अे अशुद्धना अेक—अेक आकाशप्रदेशमा निगोद एवेताना अस ख्य गोणाडोय छे अेक—अेक गोदकमा अस ख्यात शरीर डोय छे अने अेक—अेक शरीरमा अनन्त एवेताना निवास छे कहु पणु छे—

“ गोला य असस्मिज्जा, हुंति निगोया असंखया गोले ।
एककको य निगोओ अप्तजीओ मुणेयन्तो ” ॥ १ ॥

छाया-गोलाय असंख्यया, भवन्ति निगोदा असंख्येया गोले ।
एकैकश्च निगोदा, अनन्त भीषो ज्ञातव्यः ॥ १ ॥ इति ।

सर्वप्रत्येकजीवस्य वैजसकामये द्वे द्वे शरीरे पृथक् पृथक् स्त । तदेकैक
शरीरमनन्तज्ञानावरणीयादियापदनन्तान्तरायकर्मणां वर्ग्यामि सयुक्तं वर्तते । सा
वैकैका वर्ग्यान्तन्तमृक्षमपरमाणुमयो मन्तीति मृक्षमत्वं निगोदजीवानां सिद्धम् ।

ये च शरीरत्रयाङ्गुष्ठासंख्येयमागशरीरविभक्ताः पृथिवीकायोरेषोऽमिदि
तास्ते वनस्पतिक्रायानामपि बोध्या, केवलमनिस्त्वंस्यम्=अनियताकारं शरीरसंस्था-

“अंगुष्ठ के एक आकाशप्रदेश में असंख्यात गोले एक गोले में असंख्यात निगोद-
शरीर और एक-एक निगोदशरीर में अनन्त जीव अन्तः पाहिए” ॥१॥

निगोद में रहने वाले हर एक जीव के अलग-अलग वैजस और कर्मण शरीर होते हैं,
और प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आवृत्ति तथा अनन्त अन्तराय कर्मों की वर्ग्यामों से
संयुक्त है, वह एक वर्ग्या अनन्तमृक्षमपरमाणुरूप होती है । इस कथन से निगोदिया जीवों
की सूक्ष्मता सिद्ध होती है ।

पृथिवीकाय के उद्देश में तीन शरीर तथा अंगुष्ठ के असंख्यातवर्षे माग की
अवसाहना आवृत्ति का कथन किया है वह वनस्पतिक्राय के लिए भी समझना चाहिए ।
यहाँ विशेष बात यह है कि वनस्पति जीवों के शरीर का आकार अनियत होता है ।

“अङ्गुष्ठानां ज्येष्ठ आकाशप्रदेशमां अत्र ज्ञातव्यो ज्येष्ठो ज्येष्ठानां असंख्यात
निगोद-शरीर अने ज्येष्ठ-ज्येष्ठ निगोद शरीरमां अनन्तस्य अणुषु ज्येष्ठे” ॥१॥

निगोदमां स्वेवा वाण इरेक एवने अलग-अलग वैजस अने कर्मण शरीर
होय छे अने प्रत्येक शरीर अनन्त ज्ञानावरणीय आवृत्ति तथा अनन्त अन्तस्य
कर्मोनी वर्ग्यामोषी संयुक्त छे ते ज्येष्ठ वनसा अनन्तमृक्षमपरमाणुरूप होय छे
आ वनशी निगोदना एवोनी सूक्ष्मता सिद्ध वाय छे

पृथ्वीकायना उद्देशमां त्रय शरीर तथा अङ्गुष्ठाना असंख्यातमा अत्रणी अवसा
हना आवृत्ति निरूपणं क्युं छे ते वनस्पतिक्राय भादे पणु समल वेवु ज्येष्ठे अदि
विशेष वात ज्येष्ठ छे ते-वनस्पतिना एवोना आकार अनियत (निश्चयवन्तः) होय छे

नमेपाम्, शेषमन्यत् समानम् । एषां स्थानं घनोदधिवातवलय्यादि । संख्यामङ्गीकृत्या-
नन्ताः सर्वे वनस्पतयः ।

एव वनस्पतीना वृक्षादिभेदैः प्रत्येकसाधारणभेदैः, तथा—वर्णगन्धरसस्पर्शभेदैश्च
महस्रशो भेदा भवन्ति । योन्यादिभेदैः पुनर्लक्षशो भेदा जायन्ते ।

वनस्पतेर्योनिः संवृता भवति । तस्याः सचित्ताचित्तमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः,
तथा शीतोष्णमिश्रभेदेन त्रयो भेदाः । एवं गणनया प्रत्येकवनस्पतियोनीना दशलक्ष-
संख्यका भेदा भवन्ति । साधारणवनस्पतीनां चतुर्दशलक्षसंख्यका भेदा जायन्ते ।

शेष सब पूर्ववत् है । इन का स्थान घनोदधिवातवलय आदि हे । सख्या की अपेक्षा पूर्वोक्त
सब प्रकार की वनस्पति—सख्या अनन्त है ।

वृक्ष आदि के भेदों की अपेक्षा, प्रत्येक—साधारण की अपेक्षा तथा वर्ण, रस गंध और
स्पर्श के भेद की अपेक्षा वनस्पति के हजारों भेद होते हैं । योनि आदि के भेदों की अपेक्षा
विचार किया जाय तो लाखों भेद हो जाते हैं ।

वनस्पति की योनि संवृत है । संवृतयोनि सचित्त, अचित्त, और मिश्र के भेद से
तीन प्रकार की होती है । शीत, उष्ण तथा मिश्र के भेद से भी तीन प्रकार की है । इस
प्रकार गणना करने से प्रत्येकवनस्पति की दस लाख योनियाँ हैं । साधारणवनस्पति की
योनियाँ चौदह लाख हैं ।

भाङ्गी तन्नाम पूर्व प्रभाषे छे येन स्थान घनोदधिवातवलय आदि छे सभ्यानी
अपेक्षा पूर्वोक्त सर्व प्रकारनी वनस्पति—सभ्या अनन्त छे

वृक्ष आदिना लोटोनी अपेक्षाये, प्रत्येक—साधारण अपेक्षाये तथा वर्ण, रस,
गंध अने स्पर्शना लोटोनी अपेक्षाये वनस्पतिना दुनरो लोट थाय छे योनि
आदिना लोटोनी अपेक्षाये विचार करवामा आवे तो लाखो लोट थर् नय छे
वनस्पतिनी योनि संवृत छे संवृतयोनि सचित्त, अचित्त अने मिश्रना लोटोनी त्रय
प्रकारनी होय छे अने शीत उष्ण तथा मिश्रना लोटोनी त्रय प्रकारनी छे आ
प्रभाषे गणना करवाथी प्रत्येकवनस्पतिनी दस लाख योनिओ छे, अने साधारण-
वनस्पतिनी योनिओ चौदह लाख छे

परिमाणद्वारम्—

उक्तं प्ररूपणाद्वारम् । परिमाणद्वारमुच्यते—पर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पति बीजाः पिच्छीयूत-चतुष्कोणीकृत-सोकभ्रेष्यसंख्येयमागवर्त्याकाशप्रदेशराशिप्रमाणाः, वादरपर्याप्ततेजस्कामपत्नीवराक्षेधासंख्यातगुणाः सन्ति ।

अपर्याप्तबादराः प्रत्येकवनस्पतिबीजास्तु अस्तस्यातानां लोकानां यावन्तः प्रदेष्टास्तावन्तः सन्ति । इमेऽप्यपर्याप्तबादरतेजस्कामपत्नीवराशित्वाऽस्तस्यातगुणाः । प्रत्येकवनस्पतय सुस्मा न सन्ति, सान्नेऽनुपादानात् ।

साधारणवनस्पतिबीजाः—सुस्मबादरपर्याप्तमेवैवतुर्विधा अपि पृथक् पृथगन्तानां लोकानां यावन्तः प्रदेष्टास्तावन्त इति । अत्रायं विशेषः—

परिमाणद्वार—

प्ररूपणाद्वार गुणा । अत्र परिमाणद्वार कहते हैं—पर्याप्तबादर—प्रत्येकवनस्पति बीज बीजों की हुई सोकभ्रेणी के असंख्यातवें मात्रवर्ती आकाशप्रदेशों की राशि के वादर हैं, और वादरपर्याप्ततेजस्काम के बीजों से असंख्यातगुणे हैं । असंख्यात लोककाशों के प्रदेशों की वादर अपर्याप्त वादर प्रत्येकवनस्पतिकाम के बीज हैं और ये भी अपर्याप्तबादर तेजस्काम के बीजों से असंख्यात गुणे हैं । प्रत्येक वनस्पति में सूत्रम बीज नहीं होते वयो कि वाक में कही उनका अन्तः नहीं है ।

साधारण वनस्पति के बीज सूत्रम वादर पर्याप्त और अपर्याप्त के मद् से चार प्रकार के हैं । इन चारों राशियों में से प्रत्येकबीजराशि की संख्या अन्त लोककाश के प्रदेशों के वादर है । इसमें इतनी विशेषता समझ लेनी चाहिए—

परिमाण द्वार—

प्ररूपणाद्वार यत्तु इवे परिमाणद्वार कहें हैं—पर्याप्तबादरप्रत्येकवनस्पति एव चतुर्दशोपु इरेषी लोकभ्रेषिना असंख्यातमा मात्रवर्ती आकाशप्रदेशीनी राशि-इत्येवामा वादर उ अने वादरपर्याप्ततेजस्कामना एवेषी असंख्यातगुणा उ, असंख्यात लोककाशोपुना प्रदेशीनी वादर अपर्याप्तबादर प्रत्येकवनस्पतिकामना एव उ अने ते सु अपर्याप्तबादर तेजस्कामना एवेषी असंख्यातगुणा उ प्रत्येक वनस्पतिमा सूत्रमएव नषी, इभके-तेने शक्यं इति स्थाने उच्यते नषी ।

साधारण वनस्पतिना एव सूत्रम वादर पर्याप्त अने अपर्याप्तना सेषी चार प्रकारना उ आ वादर राशिभिर्माथी प्रत्येकएवराशिनी संख्या अतना लोककाशोपुना प्रदेशीनी वादर उ तेना अरेषी विशेषता समझ लेनी चाहिये—

साधारणवादरपर्याप्तकेभ्यः सूक्ष्मा अपर्याप्ता असख्यातगुणाः । तेभ्योऽपि सूक्ष्मपर्याप्तका असंख्यातगुणा चिज्ञेया इति ।

सूक्ष्मानन्तजीवानां परिमाणं कियदिति सट्टान्तमुच्यते-यथा-कश्चित् प्रस्यादिमापकवस्तुना धान्यराशिं परिमाप्याऽन्यत्र निक्षिपति, तथा यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशिं लोकरूपप्रस्थेन मापयेत् लोका संभृता भवेयुः ।

पर्याप्तवादरनिगोदपरिमाणं च यथा—

घनीभूतचतुरस्रीकृतसकललोकप्रतरस्यासंख्येयभागवर्तिप्रदेशराशिप्रमाणाः पर्याप्तकवादरनिगोदाः सन्ति, ते प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति-पर्याप्तकेभ्यो-

साधारणवादरपर्याप्त जीवों की अपेक्षा वादर-अपर्याप्त असख्यातगुणा हैं । वादरपर्याप्त की अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असख्यातगुणा हैं और सूक्ष्म-अपर्याप्त उनसे भी असख्यातगुणा हैं ।

सूक्ष्म अनन्त जीवों का परिमाण कितना है, यह बात दृष्टान्त देकर समझाते हैं—जैसे कोई पुरुष प्रस्थ (सेर) आदि बाँटों से धान्य तोलकर दूसरी जगह रख देखा है, उसी प्रकार यदि साधारणसूक्ष्मजीवराशि को लोकरूपी प्रस्थ से नापा जाय तो अनन्त लोक भर जाँएँ ।

पर्याप्त वादर निगोद जीवों का परिमाण इस प्रकार का है—

चौकोर (चतुष्कोण) घन किये हुए सम्पूर्ण लोकप्रतर के असख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर पर्याप्तवादरनिगोद जीव हैं । वे प्रत्येकशरीर-वादरवनस्पति

साधारणपर्याप्त एवोनी अपेक्षा आदरअपर्याप्त असख्यातगुणा छे आदरपर्याप्तनी अपेक्षा सूक्ष्म-अपर्याप्त असख्यातगुणा छे अने सूक्ष्म-अपर्याप्त तेनाथी पषु असख्यातगुणा छे

सूक्ष्म अनन्त एवोनु परिष्ठाभ केटलु छे ओ वात दृष्टान्त आपीने समजवे छे-जेम केअ पुरुष प्रस्थ (तोणवानु वजन १ शेर) आदि तोणवाना आट-वजनथी. धान्य तोणीने भीलु ज्य्याओ रापी दे छे ते प्रमाणे जे साधारण सूक्ष्म एवराशिने दोअइपी प्रस्थथी तोणवामा आवे तो अनन्त लोक बराई नथ

पर्याप्तआदरनिगोद एवोनु परिष्ठाभ आ प्रकारे छे-चतुष्कोण घन करेला सम्भूषु दोअप्रतरना असख्यातमा-लागतीं प्रदेशोनी अराअर पर्याप्तआदरनिगोद एव छे.

अन्येयगुणाः । श्लेषास्त्रयः—अपर्याप्तबादरनिगोदाः, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाः, पर्याप्तसूक्ष्मनिगोदाश्च प्रत्येकमसंख्येयलोककाशप्रदेशपरिमाणाः क्रमशो बहुतरकाः सन्ति । साधारणजीवाभैतेभ्यो निगोदपरिमाणेभ्योऽनन्तगुणाः सन्तीति बोध्यम् ।

यदि लोककाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैकः प्रत्येकवनस्पतिजीवः स्थाप्यते, तर्हि असंख्याता लोका भ्रियन्ते । यदि तु लोककाशस्यैकैकस्मिन् प्रदेशे एकैको नियोजनीयः स्थाप्यत, तर्हि अनन्ता लोका भ्रियन्ते ।

उक्तञ्च प्रज्ञापनायाम्—१ पदे ।

“लोगाणासपपसे परित्तमीव ठवेहि एकैकेक । एवं ठवेत्तमाणा, हर्षति लोगा असंस्त्रिज्जा” ॥ १ ॥

पर्याप्त जीवा से असंख्यातगुणा है । श्लेष तीन अर्थात् अपर्याप्तबादरनिगोद, अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद और पर्याप्त सूक्ष्मनिगोद असंख्यात लोककाश प्रदेशों के बराबर हैं और क्रमशः अधिक-अधिक संख्या में हैं । साधारण जीव इन से अनन्तगुणा हैं ।

यदि लोककाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक प्रत्येकवनस्पति के जीव स्थापित किये जायें तो असंख्यात लोक मर जायें, और यदि लोककाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोदिया जीव स्थापित किये जायें तो अनन्त लोककाश मर जायें । प्रज्ञापनासूत्र के प्रथम पदमें कहा है—

“लोककाश के एक-एक प्रदेशमें अगर प्रत्येकवनस्पति के एक-एक जीव स्थापित किये जायें तो असंख्यात लोक मर जायें ॥ १ ॥

ये प्रत्येकशरीर-जाइस्वनस्पति पर्याप्त लोकोधी अथवा अज्ञात अथवा अज्ञाना पक्ष अर्थात्-अपर्याप्तबादरनिगोद अपर्याप्तसूक्ष्मनिगोद अने पर्याप्तसूक्ष्मनिगोद अथवा-लोककाश प्रदेशोंना असंख्य है, अने क्रमशः अधिक-अधिक संख्यामें है साधारण जीव अनेनाही अनन्त अथवा अज्ञे ।

ये लोककाशना लोक-लोक प्रदेशोंमें लोक-लोक प्रत्येक वनस्पतिना अने स्थापित अथवा अथवा तो अज्ञात लोक अर्थात् अथ, अने अने लोककाशना लोक-लोक प्रदेशोंमें लोक-लोक निगोदिया अने राजनीयों अथवा तो अनन्त लोककाश अर्थात् अथ ।

प्रज्ञापनासूत्रना प्रथम पदमा कस्तु उ ६ —
“लोककाशना लोक-लोक प्रदेशोंमें अने प्रत्येक वनस्पतिना लोक-लोक अथ अथवा अथवा तो अज्ञात लोक अर्थात् अथ” ॥ १ ॥

સાધારણવાદરપર્યાપ્તકૈભ્ય સૂક્ષ્મા અપર્યાપ્તા અસંખ્યાતગુણાઃ । તેભ્યોઽપિ
સૂક્ષ્મપર્યાપ્તકા અસંખ્યાતગુણા ચિજ્ઞેયા ઇતિ ।

સૂક્ષ્માનન્તજીવાનાં પરિમાણં કિયદિતિ સદૃષ્ટાન્તમુચ્યતે-યથા-કથિત્ પ્રસ્થા
દિમાપકવસ્તુના ધાન્યરાશિ પરિમાપ્યાઞ્યત્ર નિક્ષિપતિ, તથા યદિ સાધારણસૂક્ષ્મ
જીવરાશિ લોકરૂપપ્રસ્થેન માપયેત્ લોકા સંમૃતા ભવેયુઃ ।

પર્યાપ્તવાદરનિગોદપરિમાણં ચ યથા—

ઘનીભૂતચતુરસ્રીકૃતસકલલોકપ્રતરસ્યાસંખ્યેયમાગવર્તિપ્રદેશરાશિપ્રમાણાઃ પ-
પ્તકવાદરનિગોદાઃ સન્તિ, તે પ્રત્યેકશરીર-વાદરવનસ્પતિ-પર્યાપ્તકૈ

સાધારણવાદરપર્યાપ્ત જીવોં કી અપેક્ષા વાદર-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગુણા
વાદરપર્યાપ્ત કી અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગુણા હૈ ઓર સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અન-
અસંખ્યાતગુણા હૈ ।

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોં કા પરિમાણ કિતના હૈ, યહ વાત દૃષ્ટાન્ત દેકર સમઠ
જૈસે કોઈ પુરુષ પ્રસ્થ (સેર) આદિ વાંટોં સે ધાન્ય તોલકર દૂસરી જગહ રક્ષ દેરવા
પ્રકાર યદિ સાધારણસૂક્ષ્મજીવરાશિ કો લોકરૂપી પ્રસ્થ સે નાપા જાય તો અ
ભર જાઈ ।

પર્યાપ્ત વાદર નિગોદ જીવોં કા પરિમાણ ઇસ પ્રકાર કા હૈ—

ચૌકોર (ચતુષ્કોણ) ઘન કિયે હુપ સમ્પૂર્ણ લોકપ્રતર કૈ અસંખ્યાતકૈ
પ્રદેશોં કૈ ઘરાવર પર્યાપ્તવાદરનિગોદ જીવ હૈ । વે પ્રત્યેકશરીર-વ-

સાધારણપર્યાપ્ત જીવોંની અપેક્ષા આદરઅપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણા
પર્યાપ્તની અપેક્ષા સૂક્ષ્મ-અપર્યાપ્ત અસંખ્યાતગણા છે અને સૂક્ષ્મ
તેનાથી પણ અસંખ્યાતગણા છે

સૂક્ષ્મ અનન્ત જીવોંનું પરિમાણ કેટલું છે એ વાત દૃષ્ટાન્ત આ-
છે-જેમ કેઈ પુરુષ પ્રસ્થ (તોળવાનું વજન ૧ શેર) આદિ તોળવાના ૭
ધાન્ય તોળાને બીજી જગ્યાએ રાખી દે છે તે પ્રમાણે જ સાધારણ સૂક્ષ્મ
લોકરૂપી પ્રસ્થથી તોળવામા આવે તો અનન્ત લોક બરાઈ જાય

પર્યાપ્તઆદરનિગોદ જીવોંનું પરિમાણ આ પ્રકારે છે—ચતુષ્કોણ ઘન
લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા-લાગતી પ્રદેશોંની બરાબર પર્યાપ્તઆદરનિ

टीका—

यो गुणः—सम्बन्धिका, स आर्तः—आवतन्ते=परिभ्राम्यन्ति जीवा यत्र स
 -आर्तः—जन्ममरणव्याधिनानाविपत्तेष्वसंपातस्वरूपः संसारः । कारणे क्वापौ-
 पचारात् संसारकारणीभूतस्य सम्बन्धिकास्य संसारत्वेन व्यपदेशः । गुणसेवनात्
 संसारं प्राप्नोतीति भावः । उक्तमर्थं इदीकर्तृमुक्तवाक्यं परार्थवन्माह—य आर्त इति ।
 यथावर्तः=संसारः, स गुणः=सम्बन्धिकाः । रागद्वेषभ्रमः संसारी नैव सम्बन्धिकागुणतो
 विरम्यते, न च मोक्षमार्गं प्राप्नोतीत्यर्थः ।

यथा—'गुणे' 'आर्ते' इति सप्तम्यन्तम् । यः गुणे=सम्बन्धिकां वर्तते,

टीकार्थ—शब्द आदि जो गुण अर्थात् विषय है वही आर्त है । जिसमें
 आवर्तन अर्थात् जन्म क्रिया नाम उसे आर्त कहते हैं । जन्म—जरा आधि—व्याधि
 आदि नाना प्रकार के कष्टों से परिपूर्ण यह संसार ही आर्त है । शब्द आदि विषय
 संसार के कारण हैं, स्वयं संसार नहीं है, किन्तु महा कारण में कार्य का उपचार करके
 सम्बन्धि विषयों को ही संसार कहा है । आशय यह है कि—इन विषयों का सेवन करने
 से संसार की प्राप्ति होती है । इसी अभिप्राय को उक्त करने के अर्थसे वाक्य को
 कष्ट कर शब्दकार कहते हैं—जो आर्त है वही गुण है' । राग—द्वेष आदि के भ्रम
 करने वाला संसारी जीव शब्द आदि गुणों से विरक्त नहीं होता और न मोक्षमार्ग
 प्राप्त करता है ।

अथवा—मूल में जो 'गुण' और 'आर्त' पर भाव है । वे सप्तमिस्वित्ति
 में हैं, इसका अर्थ यह हुआ कि—जो पुरुष शब्दादि गुणों में वर्तता है वह आर्त

टीकार्थ—शब्द आदि के अर्थ से अर्थात् विषय से तेज आवत्त से जेभां
 आवर्तन अर्थात् जन्म करवाभां आवे तेने आवत्त कहे से जन्म, जरा, व्याधि, व्याधि
 आदि नाना प्रकारका कष्टोपेयी परिपूर्ण आ संसारक आवत्त से शब्द आदि विषय
 संसारका कारण से स्वयं संसार नहीं परन्तु अर्थात् कारणभां कारणो उपचार करीने
 सम्बन्धि विषयोंके आ संसार कहे से आशय जे से के-विषयोंसे सेवन करवायी
 संसारनी प्राप्ति बाय से ते अविप्रायने उक्त करवाना उक्तवधी वाक्यने अर्थकीने शाब्दिक
 कहे से—जे आवत्त से ते अर्थ से 'रागद्वेष आदिना अधीन रहेवावाण्ड संसारी
 एव शब्द आदि अर्थो विरक्त रहेवा नहीं जने मोक्षमार्गने प्राप्त करवा नहीं

अथवा—मूलभां जे 'गुणे' जने 'आर्ते' पर भाव्यं से ते अर्थकी विरचित्तिभां
 से जेने अर्थ जे वधी के—जे पुरुष शब्दादि अर्थोभां वर्ते से ते आवत्त अर्थात्

लोगागासपएसे निगोयजीवं ठवेहि एक्केकं ।

एवं ठवेज्जमाणा, हवंति लोका अणन्ताओ ॥ १ ॥ ” इति ।

छाया—लोकाकाशप्रदेशे, प्रत्येकजीव स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमाना भवन्ति लोका असंख्येयाः ॥ १ ॥

लोकाकाशप्रदेशे निगोदजीवं स्थापय एकैकम् ।

एवं स्थाप्यमानाः भवन्ति लोका अनन्ताः ॥ १ ॥

इति परिमाणद्वारम् ॥ सू० १ ॥

शब्दादिविषयासक्त्या वनस्पतिकायापमर्दनपराः पुनः पुनर्भवसिन्धौ निपत-
न्तीत्याशयेनाह—‘ जे गुणे ’ इत्यादि ।

मूलम्—

जे गुणे से आवट्टे । जे आवट्टे से गुणे ॥ सू० २ ॥

छाया—

यो गुणः स आवर्तः । य आवर्तः स गुण ॥ सू० २ ॥

लोकाकाश के एक-एक प्रदेश में एक-एक निगोद जीव रख दिये जायें तो इस प्रकार रखने से अनन्त लोक हो जायें ” । इति परिमाणद्वार ॥ सू० २ ॥

इन्द्रियों के शब्द आदि विषयों में आसक्त होकर जो वनस्पतिकाय की हिसा करते हैं वे बारम्बार भवसागर में डूबते हैं । इस अभिप्राय से शास्त्रकार कहते हैं—
‘ जे गुणे ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जो गुण है सो आवर्त है । जो आवर्त है सो गुण है ॥ सू० २ ॥

“ लोकाकाशना ऐक-ऐक प्रदेशमा ऐक-ऐक निगोद एव राभवामा आवे तो
आ प्रकारे राभवामा अनन्त लोक थई नथ ” इति परिमाणद्वार ॥ सू० १ ॥

इन्द्रियोना शब्द आदि विषयोमा आसक्त थईने जे वनस्पतिकायनी हिसा
करे छे ते बारबार भव-सागरमा डूपी नथ छे जे अभिप्रायथी शास्त्रकार कहे छे—
‘ जे गुणे. ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—जे गुण छे ते आवर्त छे जे आवर्त छे ते गुण छे ॥ २ ॥

गत्यागतिरूप आकर्षणं न तेषां दुःखजनको भवति । सामान्यतः संसार
 चर्चित्वं सामान्यदुःखान्निष्ठोपलब्धिषु सर्वेषां संसारिणां समस्येषु तस्माद् दुःखोप
 लब्धिर्न प्रतिपिष्यत । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामः स एव परिवर्जनीयत्वेन प्रति-
 बोध्यते, अत एवोक्तं मगन्ता—

“ कण्यसोक्तेर्हि सदेर्हि येर्मं नामिनिवेश्य ” इत्यादि । किञ्च—

“ न क्वच्यं क्ममद्रष्टुं, यद्युर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषौ तु यौ तत्र, तौ पुत्रः परिवर्जयेत् ॥ ”

इदमत्र तत्त्वम्—शब्दादिविषयासक्ताः सन्तु वनस्पतिमीवान् बहुषो

गति-आगतिरूप आकर्षणं भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारचर्चित्व
 और विषयो की सामान्य उपलब्धि सभी संसारी जीवों में होती है, अतः विषयों की उपलब्धि
 का निषेध नहीं किया जा सकता । हैं विषयों में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याग्य है ।
 अतः मगन्तान् ने कहा है—

“ कण्यसोक्तेर्हि सदेर्हि येर्मं नामिनिवेश्य ” इत्यादि ।

“कानो को सुख देने वाले शब्दों पर अनुयाग नहीं करना चाहिए” । तथा—
 आत्मके जाने आया हुआ रूप अन्देस नहीं किया जा सकता वह तो वीस
 ही जाता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अस्वच्छा उस रूप पर राग या द्वेष करने
 से हानि होती है । अतः निषेधो पुरुष राग और द्वेष का त्याग कर ।

व्यशय यह है—शब्द आदि विषयों में आसक्त पुरुष वनस्पतिकाय के बीजों को

अति-आगतिरूप आकर्षणं यद्यु तेजोने भाटे दुःखरूप नहीं सामान्य संसार
 चर्चित्वं अने विषयोनी सामान्य उपलब्धि सब संसारी लोकोत्तमो दोष से ज्यो
 निषेधोनी उपलब्धिने निषेध करी शकतो नहीं, हाँ विषयोभां ने राग-द्वेषरूप
 परिणाम से तेल त्याग्य-त्वो देवा ज्यो से ज्योत्रे लजवाने कहुं छे—

कण्यसोक्तेर्हि सदेर्हि येर्मं नामिनिवेश्य ” अर्थात् जानेने सुख देवाच्य
 शब्दो पर प्रीति नहि करवी ज्योत्रे तथा नेत्रोनी सामे आवेला रूप न टीका-
 ज्योत्रे करी शकता नहीं ते तो देवताभां आवेला छे परन्तु तेभां देवो हानि
 करवी नहीं, अतएव ज्यो रूप पर सत्र अथवा द्वेष करवावी हानि थाव छे ज्यो भाटे
 निषेधो पुरुष राग अने द्वेषने लज करे

व्यशय ज्ये छे है—शब्द आदि विषयोभां आसक्त पुरुष वनस्पतिजावना लोकोनी

स आवर्ते=संसारे वर्तते । यश्चावर्ते, स गुणे वर्तते ।

ननु 'यो गुणे वर्तते, स आवर्ते वर्तते' इति यदुक्तं तत् सम्यगेव, परन्तु य आवर्ते वर्तते, न त्वसौ नियमेन गुणे वर्तते । यतस्तीर्थङ्करा भावितात्मानो मुनयः प्रतिमाधारिश्रावकाश्चावर्ते वर्तन्ते न तु शब्दादिगुणेषु, तदेतत् कथमपपद्यते—'यश्चावर्ते वर्तते स गुणे वर्तते' इति ? ।

अनुकूलशब्दादिषु रागः, प्रतिकूलशब्दादिषु द्वेषः समुद्भवतीति रागद्वेषपूर्वकं गुणेषु शब्दादिषु या प्रवृत्तिस्तस्या एवात्राधिकारः । एवं चास्य वाक्यस्य तीर्थङ्करादि-विषयकत्वाभावात्प्रस्त्युक्तशङ्कावसर इति ।

अर्थात् संसार मे वर्तता है, और जो संसार में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

शङ्का—जो शब्दादि गुणों में वर्तता है वह संसार मे वर्तता है, यह कथन तो ठीक है, परन्तु जो संसार में वर्तता है वह नियम से शब्दादि विषयों में नहीं वर्तता । भगवान् तीर्थंकर, भावितात्मा मुनि और प्रतिमाधारी श्रावक संसार में तो वर्तते हैं मगर शब्द आदि विषयों में नहीं वर्तते । अत एव यह कथन किस प्रकार बन सकता है कि जो आवर्त में वर्तता है वह शब्द आदि में वर्तता है ।

समाधान—अनुकूल शब्द आदि में राग उत्पन्न होता है और प्रतिकूल शब्द आदि में द्वेष होता है । इस प्रकार रागद्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति करने का ही यहाँ प्रकरण है । तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयों में प्रवृत्ति नहीं करते, अत यह वाक्य तीर्थंकर या भावितात्मा मुनि आदि के लिए लागू नहीं होता । इस प्रकार उक्त शंका का यहाँ स्थान नहीं है ।

संसारमा वर्ते छे, अने जे संसारमा वर्ते छे ते शब्द आदिमा वर्ते छे

शंका—जे शब्दादि शुभोमा वर्ते छे, ते संसारमा वर्ते छे आ कथन-तो ठीक छे, परन्तु जे संसारमा वर्ते छे ते नियमथी शब्दादिक विषयोमा वर्तता नथी भगवान तीर्थंकर भावितात्मा मुनि अने प्रतिमाधारी श्रावक संसारमा तो वर्ते छे, परन्तु शब्दादि विषयोमा वर्तता नथी ओ भाटे आ कथन केवी रीते पनि शके छे, के-जे आवर्त्तमा वर्ते छे ते शब्द आदिमा वर्ते छे ।

समाधान—अनुकूल शब्द आदिमा राग उत्पन्न थाय छे अने प्रतिकूल शब्द आदिमा द्वेष थाय छे आ प्रभाञ्जे राग-द्वेषपूर्वक विषयोमा प्रवृत्ति करवी तेनुं जे अर्द्धी प्रकरण छे तीर्थंकर आदि राग-द्वेषपूर्वक विषयोमा प्रवृत्ति करता नथी, भाटे आ वाक्य तीर्थंकर अथवा भावितात्मा मुनि आदिना भाटे वायु थतुं नथी. आ प्रभाञ्जे पूर्वे जे शंका करी छे ते शंकाने अर्द्धी स्थान नथी.

गत्यागतिरूप आकर्षणोऽपि न तेषां दुःखजनको मवति । सामान्यतः संसार
परित्यक्तं सामान्यदुःखत्राडिशुणोपलम्बिभ्यः सर्वेषां संसारिणां समपत्येन तस्माद् गुणोप
लम्बिर्न प्रतिपिष्यत । किन्तु यस्तत्र रागद्वेषपरिणामं स एव परिवर्तनीयत्वेन प्रति-
बोध्यते, अत एवोक्तं भगवता—

“ कण्णसोक्खेहिं सरेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” इत्यादि । किञ्च—

“ न ह्यक्यं रूपमद्रष्टुं, चक्षुर्गोचरमागतम् ।

रागद्वेषी तु यो तत्र, तौ बुधः परिवर्तयेत् ॥ ”

इदमत्र तस्मिन्-शब्दादिविषयासक्ताः सन्तु वनस्पतिमीवान् पशुषी

गति आगतिरूप आकर्षण भी उनके लिए दुःखजनक नहीं है । सामान्य संसारवर्तमान
और विषयो की सामान्य उपलम्बि सभी संसारी जीवा में होती है, अत विषयो की उपलम्बि
का निषेध नहीं किया जा सकता । हाँ विषयो में जो राग-द्वेषरूप परिणाम है वही त्याग्य है ।
अत भगवान् ने कहा है—

“ कण्णसोक्खेहिं सरेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” इत्यादि ।

“कनो को सुख देने वाले शब्दों पर अनुराग नहीं करना चाहिए” । तथा—
आत्मके जागे जाया हुआ रूप अनदेख नहीं किया जा सकता, वह तो वीर
ही करता है, मगर उस से कोई हानि नहीं होती । अतएव उस रूप पर राग या द्वेष करने
से हानि होती है । अतः विषयो पुरुष और द्वेष का त्याग कर ।

आशय यह है—शब्द आदि विषयो में व्यसक्त पुरुष वनस्पतिशब्द के धर्मों की

गति-आगतिरूप आकर्षण पशु तेजोने भटे दुःखरूप नहीं सामान्य संसार
वर्तमान् अपने विषयोनी सामान्य उपलम्बि, एवं संसारी लोकोर्मां होत छ जेही
विषयोनी उपलम्बिने निषेध करी शकते नहीं, हाँ विषयोर्मां जे राग-द्वेषरूप
परिणाम छ तेज त्याग्य-त्यज्य रूप भोज्य छ, जेहसे जनमाने कहु छ—

“ कण्णसोक्खेहिं सरेहिं पेम्मं नामिनिवेसप ” अर्थात् जनमाने अथ देवाद्या
शब्दो पर प्रीति नहि करी जेहसे तज्ज नेत्रोनी सामे आवेला रूप, न हीन-
जरी करी शकत नहीं, ते तो देवधर्मां आवेज छ परन्तु तेमां जेह हानि
करी नहीं, अतएव जे रूप पर राग अथवा द्वेष करवावी हानि याव छ जे भटे
निवेही पुरुष राज जने देवने त्याज करे.

आशय जे छ हे—शब्द आदि विषयोर्मां व्यसक्त पुरुष वनस्पतिशब्दना लोकोनी

विहिंसन्ति । तथा हि-अनुकूलशब्दश्रवणार्थी वेणुवीणापटहादिवाद्यानि निर्मातुं बहु-
विधान् वनस्पतीन् विनिहन्ति । प्रियरूपविलोकनार्थी काष्ठमययुवतिप्रतिमा-गृह-
तोरण-वेदिका-स्तम्भादि रचयितु कतिचन वनस्पतीन् विनिकृन्तति । एवं घ्राणसुखार्थी
कर्पूर-केतकी-पाटल-लवङ्ग-सरमचन्दना-गुरु-केसर-जातीफल-जातीपत्रिकादीन् परि-
ग्रहीतुं विविधान् वनस्पतीन् विहिनस्ति । रसास्वादसुखार्थी मूलकन्डादिगतानसंख्या-
ताननन्तान् वा जीवानुपमर्दयति । एवं स्पर्शसुखाभिलाषी च कमलदलमृणालकदली-
दलवल्कलानुकूलदुकूलतूलादीन् परिग्रहीतुं नानाविधवनस्पतीनां प्राणव्यपरोपणं
प्रकरोति ।

बहुत हिंसा करते हैं । जैसे-अनुकूल शब्द सुनने का अभिलाषी पुरुष वेणु, वीणा,
पटह (ढोल) आदि वाद्य बनाने के लिए नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के जीवों की
हिंसा करता है । प्रियरूप देखने का इच्छुक युवती की काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण,
वेदिका, और स्तम्भ बनाने के लिए वनस्पति को काटता है । इसी प्रकार घ्राणेन्द्रिय के
सुखका लोभ कर्पूर, केतकी, पाटल, (गुलाब) लोंग, सरस चन्दन अगर, केसर,
जायफल, जायपत्री आदि के उद्देश्य से विविध प्रकार के वनस्पतिकायिक जीवों की हिंसा
करता है । रसास्वाद का अनुरागी मूल आदि कन्दों में रहने वाले असह्यात और अनन्त
जीवों की हिंसा करता है । इसी प्रकार स्पर्श-सुख का अभिलाषी कमल के पत्ते, कमल की
दडी, केले के , पत्ते छाल और अनुकूल वस्त्र तथा रुई प्राप्त करने के लिए नाना प्रकार के
वनस्पति जीवों का प्राण लेता है ।

घषीन् हिंसा करे छे जेम-अनुकूल शब्द साधणवाना अभिलाषी पुरुष वेणु-वीणा,
ढोल आदि वाद्य-वाजित्र अनाववा भाटे नाना प्रकारना वनस्पतिकायना एवानी हिंसा
करे छे प्रियरूप जेवाना इच्छुक युवतीनी काष्ठमय प्रतिमा, गृह, तोरण, वेदिका
अने स्तम्भ अनाववा भाटे वनस्पतिने कापे छे अे प्रभाण्णे घ्राणेन्द्रिय (नासिका)ना
सुभना लोभ-लास्यु कर्पूर, केतकी गुलाब लवीग, सरसचन्दन, अगर केसर,
जायफल, जायत्री आदि भेणववाना उद्देश्यथी विविध प्रकारना वनस्पतिकायिक एवानी
हिंसा करे छे रसास्वादनान् अनुरागी एव भूण आदि कन्दोभा रडेवावाणा असह्यात
अने अनन्त एवानी हिंसा करे छे अे प्रभाण्णे स्पर्शसुभना अभिलाषी एव कमल-
पत्ता, कमलकाकडी, केवणना पत्ता, छाल अने अनुकूल वस्त्र तथा ३ प्राप्त करवा
भाटे नाना प्रकारना वनस्पति एवानी प्राण ले छे

एवं च वनस्पतिनिष्पन्नेषु शब्दादिगुणेषु वर्तमानः ससारं प्राप्नोति, स च ससारी राजद्वेषमलिनात्मकतया पुनः शब्दादिगुणेषु वर्तमानबहुर्गठिकससारतो न श्वाभिवृद्धिरियातीत्यर्थः ॥ सू० २ ॥

शब्दादिगुणोपलब्धिमात्रं न संसारान्तापत्तनस्य कारणं, किन्तु तत्र मूर्च्छंवेत्याह - 'उद्दह' इत्यादि ।

मूलम्—

उद्दहं महं तिरियं पार्थिवं पासमाये रूपार्ह पासह, सुष्पमाये सदाहं सुप्तेह । उद्दहं महं तिरियं पार्थिवं सुष्पमाणे रूपेसु सुष्पत्त सदेसु यावि । एत लोप विपाहिए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

उर्ध्वम् अथा तिर्यक् प्राचीनं पश्यन् रूपाणि पश्यति, मृष्वन् सद्धान् दृशोति, अर्धम् अथा तिर्यक् प्राचीनं मूर्च्छन् रूपेषु मूर्च्छति, अर्धेषु चापि । एष लोकाः ज्या स्याता ॥ सू० ३ ॥

इस प्रकार वनस्पति से तैयार होने वाले इन्द्रिय-विषयो में वर्तमान जीव ससार प्राप्त करता है । ससारी जीव राज-द्वेष से भक्ति होता है, अतः फिर विषया में प्रवृत्त होता है । इस प्रकार वह कभी संसार से बाहर नहीं निकल पाता ॥ सू० २ ॥

शब्द आदि विषया को ग्रहण करने मात्र से संसार में फसत नहीं होता परन्तु उन में मूर्च्छा (गुब्बि) होना ही फसत का कारण है, यह कहते हैं—'उद्दह' इत्यादि ।

मूलार्थ—ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में दृष्टि डालता हुआ रूपों को देखता है, सुनता हुआ शब्द सुनता है । ऊपर नीचे और सामने तिरछी दिशा में रूपों में मूर्च्छित होता है और शब्दों में भी । यह लोका कहा गया है ॥ सू० ३ ॥

जो प्रमाद्ये वनस्पतिजी तैयार कवाचाला छत्रिच विषयोर्मा वर्तमान एष ससारने प्राप्त करे छे ससारी राजद्वेषभी भक्ति भाव छे तेषी इरीने विषयोर्मा प्रवृत्त बाध छे जा प्रमाद्ये ते ठाई दिवस ससारसी लक्षार नीकणी सक्तवा नभी (सू. २)

शब्द आदि विषयोने अर्धेषु करवा मात्रभी ससारमा फसत बतु नभी परन्तु तेषां मूर्च्छा (गुब्बि) कवाधीन पत्तन भाव छे ते कहे छे— उद्दहं इत्यादि.

मूलार्थ—ऊपर नीचे अने सामे तिरछी दिशाभा दृष्टि नांभीने रूपाने लुवे छे संलगत्वा यथा शब्द संलग्जे छे उपर नीचे अने सामे तिरछी दिशाभा रूपानां अने शब्दोर्मा पद्य मूर्च्छित भाव छे जा लोक कहेवाय छे ॥ ३ ॥

टीका—

प्रज्ञापकदिशापेक्षया ऊर्ध्वम्=उर्ध्वदिश्यवस्थितं पर्वतशिखरप्रासादहर्म्याद्युपरि-
भागस्थम्, अधः=अधोदिश्यवस्थितं भूमिगृहादिकं, तिर्यक्=प्राच्यादिदिक्ष्ववस्थितं
विदिक्ष्वस्थितं च गृहभित्तिप्रासादहर्म्यादिकं, प्राचीन-तिर्यक्पदस्य विवरणमेतत्,
प्राच्यां दिशि विद्यमानं पदार्थजातम्, एतच्चोपलक्षणम्-अन्या अपि तिर्यग्दिशो
विज्ञेयाः । यद्वा-प्राचीनमिति-ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्दिगन्वयि, तेनोर्ध्वाधस्तिर्यग्दिक्ष्वव-
स्थितं, प्राचीनं=पुरातनम्-आधुनिकशिल्पिदुष्करतयाऽऽश्चर्यकारि पदार्थजातं, पश्यन्=
चक्षुर्व्यापारयन्, रूपाणि=चक्षुर्ग्राह्यतया परिणतानि रूपचद्रव्याणि शालमञ्जिकादीनि
स्यादिरूपाणि वा पश्यति ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(दिखने वाले की) दिशा की अपेक्षा ऊर्ध्व दिशा में-पर्वत के शिखर
पर तथा प्रासाद या महल आदि के ऊपरी भाग में स्थित, भौ हरा आदि अधोदिशा में स्थित,
पूर्व आदि तिरछी दिशाओं में स्थित तथा विदिशाओं में स्थित दीवार, हवेली और महल
आदि को देखता है । मूल में आये हुए 'पार्श्व' अर्थात् 'प्राचीन' शब्द को तिरछी दिशा का
विवरणरूप समझना चाहिए । अथवा 'प्राचीन' पद ऊर्ध्व, अधः और तिर्यक् सभी दिशाओं के
साथ संबन्ध रखता है । तात्पर्य यह निकला कि-ऊर्ध्व दिशा में स्थित अधोदिशा में स्थित
तथा तिरछी दिशा में स्थित प्राचीन अर्थात् आधुनिक शिल्पकारों के लिए दुष्कर होने से
आश्चर्य उत्पन्न करने वाले पुराने पदार्थों की ओर नजर करता हुआ सुन्दर पुतलियों वगैरह
को तथा स्त्री आदि के रूप को देखता है ।

टीकार्थ—प्रज्ञापक-(जेनारनी) दिशानी अपेक्षा ऊर्ध्व दिशाभा-पर्वतना शिखर
पर तथा प्रासाद अथवा मंडल आदिना उपर भागमा, स्थित, होयरा आदि
अधोदिशाभा स्थित, पूर्व आदि तिरछी दिशाओमा स्थित, तथा विदिशाओमा स्थित
भांत, हवेली अने मंडल आदिने देजे छे मूलमा आवेले। 'पार्श्व' अर्थात् प्राचीन
शब्दने तिरछी दिशाना विवरणरूप समझे। जेधंओ, अथवा प्राचीन पद ऊर्ध्व,
अध अने तिर्यक् सर्व दिशाओनी साथे संबन्ध राजे छे तात्पर्य ओ निकजे छे के-
ऊर्ध्व दिशाभां स्थित, अधोदिशाभा स्थित, तथा तिरछी दिशाभा स्थित प्राचीन अर्थात्
आधुनिक शिल्पकारो भाटे दुष्कर होवाथी आश्चर्य उत्पन्न करवावाणा पुराणा पदार्थोनी
तरङ्ग नजर करता थका सुन्दर पुतलीओ वगेरेने तथा स्त्रीआदिना रूपने देजे छे

तथा-एतासु विद्यु च अण्वन्-भ्रोत्रोपयोग्युक्तः सन् सन्दान् घेषुनीवादि
 स्मृत्यान् गीतनादादिकान् वा ध्रुणोति । भ्रोत्रोपयोगामाषे तु न प्रमोदीत्यर्थः ।
 उपसङ्गममेतत्-निघ्नन् गन्धान् भिघ्नति, रसपन् रसान् रसयति, स्पृशन्
 स्र्शान् स्पृशति ।

इह वर्णनयवगणान्यां रूपादिगुणोपलम्बिमात्र मदर्शितम् । कर्णापस्तिर्यक्पदोपा
 दानेन च रूपादिगुणानां सर्वदिग्भ्यापित्त्वेन तदुपयोगो दुष्परिहरोऽस्तीति प्रतिबोधितम् ।
 रूपादिगुणोपयोगमात्रेण संसारगर्तवर्तसंपातो न भवति, किन्तु रूपादिगुणेषु मूर्च्छयेति
 बोधयितुमाह-‘उद्दं’ इत्यादि ।

इसी प्रकार पूर्वोक्त विशाभो में ओत्रेन्द्रिय का उपयोग क्या कर वेणु बीजा
 अग्नि वाष्प का, तथा गीत आदि का शब्द सुनता है । श्रोत्र का उपयोग न हो तो
 नहीं भी सुनता है । यह कबन उपलक्षण है, इस से यह भी समझ लेना चाहिए कि
 श्रवण, रसना और स्पर्श इन्द्रिय का उपयोग क्याकर सकता है, बलता है और स्पर्श
 करता है ।

जहाँ देखने और सुनने से रूप आदि गुणों की उपलम्बिमात्र सूचित
 की है । ऊर्ध्व, अध तथा तिर्यक् पद देकर यह प्रकट किया है कि-इन्द्रियों के विषय
 रूप अग्नि, समी विशाभो में भरे पडे हैं । ऐसी स्थिति में उनकी ओर ध्यान न जाने
 देना तो बड़ा ही कठिन कार्य है । मगर रूप आदि गुणों की ओर उपयोग जाने
 प्यत्र से संसार के गहड़े में पतन नहीं होता । पतन तब होता है जब उनमें
 मूर्च्छा या राग-द्वेष हो, यह बात प्रकट करने के लिए कहा है-‘उद्दं’ इत्यादि ।

जैत्र प्रभावे पूर्वोक्त विशाभोत्मां ओत्रेन्द्रियेण उपयोगे लज्जानी वेणु-वीणा
 आदि वाद्यत्रयानां तथा जीव आदिना यच्छेत् । सांख्ये उ ओत्रेण उपयोगे न डोत
 तो सांख्यत नहि आ कबन उपलक्षण उ जैत्री जैत्र समल लेनु जैधजे के, श्राफ,
 रसना जने स्पर्शेन धन्द्रियेण उपयोगे लज्जानी सूये उ, आजे उ, जने स्पर्श करे उ
 जहाँ देखना जने सांख्यतथशी इष आदि सुषोनी उपलम्बि मात्र सूचित करी उ
 उर्ध्व, अधः तथा तिर्यक् पद आधीने जे सूचित कयुं उ के-धन्द्रियेणो विषय
 रूप आदि सर्व दिशाभोत्मां लर्वा पड्यां उ जैत्री स्थितिमां तेनी तरह ध्यान नहि लया
 देनु ते तो आरे कठिन कामसे परन्तु इष आदि सुषोनी तरह उपयोगे लया मात्रशी
 धन्द्रियेण आक्षमां पड्यानु भव नशी, पतन-पड्यानु तो ल्यारे भाष उ के ल्यारे तेमां
 भुज्जे-जववा राग-द्वेष बाध. आ बात प्रकट करवा भाटे कहुं उ -‘उद्दं’ धियादि.

पुनरुर्ध्वादेरुच्चारणं कस्याञ्चिदेकस्यामपि दिशि रूपादिषु मूर्च्छया संसारं प्राप्नो-
तीति बोधनार्थम् ।

ऊर्ध्वादिदिक्ष्ववस्थितं रूपगुणं प्रति मूर्च्छन्=रागादिपरिणामं कुर्वन् सदसद्वि-
वेकशून्यो भवन् वा रूपेषु=मनोहरेषु रूपवद्रव्येषु स्रयादिरूपेषु वा मूर्च्छति=लोलुपो
भवति । एव शब्देषु च मूर्च्छति । अपिग्रहणाद् गन्धरसस्पर्शेषु मूर्च्छति=गृध्नुर्भवति ।
एषः=मूर्च्छाविषयीभूतो रूपादिगुणः, लोकः=ससारः, कारणे कार्योपचारात् मूर्च्छाविष-
यीभूतरूपादिगुणात्मको लोक इति व्याख्यातः=भगवता कथितः । ॥ सू० ३ ॥

संयमे गृहीतेऽपि प्रमादवशेन रूपादिगुणेषु मूर्च्छामुपगतः सन् पुनरगारित्व-
मापद्यते-इति दर्शयति-‘एत्थ अगुत्ते.’ इत्यादि ।

दोवारा ऊर्ध्व आदि दिशाओं का कथन करके यह बतलाया है कि-किसी भी एक
दिशामें स्थिति रूपादि में मूर्च्छा होने पर भी ससार की प्राप्ति होती है ।

ऊर्ध्व आदि दिशाओं में स्थित रूप आदि विषयों में राग-द्वेषरूप परिणाम करता
हुआ, सत्-असत् के विवेक से शून्य होकर मनोहर रूपों में या मनोहर रूपवाली स्त्री
आदि के रूपों में पुरुष लोलुप हो जाता है । इसी प्रकार शब्दों में मूर्च्छित हो जाता है ।
गंध, रस, तथा स्पर्श में भी मूर्च्छित हो जाता है । मूर्च्छा का विषयभूत यह रूप आदि ही,
कारण में कार्य का उपचार करने से ससार कहलाता है । ऐसा भगवान् ने
फरमाया है ॥ सू० ३ ॥

सयम ग्रहण कर लेने के पश्चात् भी प्रमाद के वश में होकर रूप आदि गुणों में मूर्च्छा को
प्राप्त होनेवाला फिर गृहस्थ बन जाता है, यह बात बतलाते हैं-‘एत्थ अगुत्ते’ इत्यादि ।

येवार उर्ध्व आदि दिशाओं कथन करीने ये अताव्यु छे डे-डोर्ध पण्यु अेक दिशाभा
स्थित इपादिभा मूर्च्छा थता पण्यु स सारनी प्राप्ति थाय छे उर्ध्व आदि दिशाओंभा स्थित
रूप आदि विषयोभा राग-द्वेषइय परिणुभा करता थका सत्-असत्ता विवेकभा शून्य
थधने मनोहर इयोभा अथवा तो मनोहर इयवाणी स्त्री आदिना इयोभा पुरुष लोलुप
थध नय छे अे प्रभाणु शब्दोभा मूर्च्छित थध नय छे गंध, रस तथा स्पर्शभा पण्यु
मूर्च्छित थध नय छे मूर्च्छाणा विषयभूत (मूर्च्छा थवानु कारणु) आ इय आदिण, कारणुभा
कार्योना उपचार करवाथी, ससार कडेवाय छे अे प्रभाणु भगवाने इरभाव्यु छे (सू ३)

सयम अडणु करी लीधा पणी पण्यु प्रमादवश थधने रूप आदि गुणोभा मूर्च्छा
प्राप्तवाणा करीने गृहस्थ अनी नय छे. अे वात अतावे छे-‘एत्थ अगुत्ते’ इत्यादि.

મૂલમ્—

પૃથ્થ અગુપ્તે અનાગાર્યા, પુણો પુણો ગુણાસાપ્, ષક્તસમાયારે પમષ્તે અગારમાષ્તે
॥ સૂ. ૪ ॥

છાયા—

અથ અગુપ્ત* અનાગાર્યાં પુનઃપુનર્ગુણાસ્વાદઃ, ષક્તસમાધારઃ પ્રમષ્તઃ અગારમાષ્તે
સતિ ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—

અથ=મસ્મિન્ રૂપાદિગુણે, અગુપ્ત=મનોવાસ્ક્રાપ્યગુપ્તિરહિત મનસા
સ્પાદિષુ રન્વપ્તે, ષક્તસા માર્થપતિ કાષ્ઠેન તદમિમુર્ચ્ચ પ્રવતત, સ વાગુપ્તઃ અનાગાર્યામ્=
અનાગારે ષર્ષમાનઃ મગદ્દાઘાશ્ચર્ષિર્વર્ષી, અથ એવ પુનઃપુનર્ગુણાસ્વાદઃ=મસકૃદ્
વિવપમુસ્તાનુમવરસિકઃ, અથ એવ ષક્તસમાધાર*—વક્ત=કૃત્વિઃ સમાધાર =

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયો મેં મન વચન કાચકા વ્યાપાર ન રોકુને વાસ્ત મગદાનકી
આગ્રા છે વાહર છે, વાર-વાર વિષયોકા આસ્વાદન કરને વાસ્ત કુટિલાચારી, પ્રમાત્રી (સાધુ)
ષ્ટિ ગૃહસ્થ વન વાસા છે ॥ સૂ. ૪ ॥

ટીકા—રૂપ આદિ વિષયો મેં મન વચન બીર કાચ કી ગુપ્તિ છે રહિત
અર્થાત્ મન છે યાગ કરને વાજા વચન છે વિષયો કી પ્રાર્થના કરન વાજા બીર કાચ
છે ઉત્તમે પ્રવૃત્તિ કરનેવાસ્ત વેસા અનાચારી સાધુ મગદાન કો આગ્રા છે વાહર હો
વત્સા છે। વદ વારમાર વિષયમુસ્તા કે મોગ મેં રસિક હોકર કુટિલ અધ્યારવાજા

મૂલાર્થ—રૂપાદિ વિષયોમાં મન, વચન અને કાયાનાં આધારને નહિ શિક્ષા
પાત્ર, તે ભત્રવાનની આશયથી બહાર છે વારવાર વિષયોનું આસ્વાદન કરવાવાજા,
કુટિલાચારી-પ્રમાત્રી (સાધુ) વાજા વૃદ્ધસ્થ જની બાધ છે

ટીકાર્થ—રૂપ આદિ વિષયોમાં મન વચન અને કાયાની ગુપ્તિથી રહિત
અર્થાત્ મનથી શાક કરવાવાજા, વચનથી વિષયોની પ્રાર્થના કરવાવાજા અને કાચથી
તેમાં પ્રવૃત્તિ કરવાવાજા, જોવા અનાચારી સાધુ ભત્રવાનની આશયથી બહાર રૂપ બાધ છે.
તે વારવાર વિષયમુજોના ભોત્રમા રસિક રૂપને કુટિલ અધ્યારવાજા—અર્થાત્ બાધ વખતું

आचारो यस्य स वक्रसमाचारः—असंयमानुष्ठायी, नरकादिगतिजनकत्वात्संयमस्य वक्रतया व्यपदेशः । इत्थम्भूतः स प्रमत्तः=प्रमादवशाद् विषयेषु मूर्च्छितः, अगारं=गृहम् आवसति । गृहीतसंयमोऽपि प्रमादवशाद् विषयासक्तः सन् पुनर्गृह्यो भवतीत्यर्थः ॥ सू० ४ ॥

अथ शस्त्रद्वारम्—

अथ सर्वथा वनस्पतिशस्त्रसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथाऽग्निशस्त्रसमारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च त्रिविच्य प्रतिप्रोधयितुमाह—‘लज्जमाणा’ इत्यादि ।

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पाम, अणगारा मो-ति एगे पवयमाणा, जमिणं

अर्थात् असमय का सेवन करने वाला प्रमादी फिर घर—वास में आजाता है । वह समय धारण करने के पश्चात् भी प्रमाद के वश होकर विषयों में आसक्त होने के कारण फिर गृहस्थ बन जाता है ॥ सू० ४ ॥

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्र के आरम्भ का सर्वथा त्याग करने वाले अनगारों का तथा अग्निशस्त्र के आरम्भ में प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गियोंका विवेचन करके उपदेश देते हैं—‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिकाय के आरम्भ में सकोच करने वाले साधुओं को अलग देखो । तथा ‘हम अनगार हैं’ इस प्रकार कहने वाले नाना प्रकार के शस्त्रोंसे

सेवन करवावाणा प्रमादी इरी घरवासमा आनी नय छे ते समय धारण कयी पछी पणु प्रमादने वश थदने विषयोमा आसक्त थवाना कारण इरी गृहस्थ अनी नय छे (सू० ४)

शस्त्रद्वार—

वनस्पतिशस्त्रना आरभना सर्वथा त्याग करवावाणा अणुगारानुं तथा अग्निशस्त्रना आरभना प्रवृत्त द्रव्यलिङ्गीयानुं विवेचन करीने उपदेश आये छे—‘लज्जमाणा’ इत्यादि

मूलार्थ—वनस्पतिकायना आरभना स कोच करवावाणा साधुयाने नुदा नणु। तथा ‘अमे अणुगार छीये’ आ प्रमाणुं कडेवावाणा, नाना प्रकारना शस्त्रोथी वनस्पति

विरुक्त्वेर्हि सत्येर्हि वनस्पतिसमारम्भेण वनस्पतिसत्य समारममाया अण्ये
 वनेगरुचे पापे विहितसि ॥ सू० ५ ॥

श्या—

सम्भ्रमानाः पृथक् पश्य, अमगाराः स्म इति एके प्रवृत्तमानाः, यद्विमं विरुक्
 त्तैः वनैः वनस्पतिकर्मसमारम्भेण वनस्पतिवृत्तं समारममाया अन्यान् अनेकरूपान्
 मात्यात् विहितसि ॥ सू ५ ॥

टीका—

सम्भ्रमानाः=परमकरुमयर्द्धद्वयतया वनस्पतिकायसमारम्भे पराङ्मुस्ताः,
 वनस्पतिकर्मसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारा इत्यर्थः। पृथक्=विभिन्नाः=कचित् मस्यश्च-
 ज्ञानिनोऽवधिमनःपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो माभितारमानः सन्तीति
 पश्य ।

यद्वा—पृथक्=व्यतिङ्गिभ्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे—सूक्ष्मभावर
 वनस्पतिकायसमारम्भकरणे मीतास्तुता उद्विष्टास्त्रिकरमप्रियोगैर्धनस्पतिकायसमार
 म्भपरित्यागिनो विद्यन्ते इति चिह्नोक्तयेत्यर्थः ।

वनस्पतिकाय का धारंम करने वाले, वनस्पतिवृत्त का धारंम करते हुए अन्य अनेक प्रकार
 के प्राणियों की हिंसा करते हैं ॥ सू० ५ ॥

टीकार्थ—अरुण्य से धारंम करनेवाले मुनि वनस्पतिकाय के धारंम से विमुक्त
 रहते हैं । ऐसे मुनि कोई अवधिज्ञानी, मन-पर्यायज्ञानी, और केवलज्ञानी होते हैं और कोई-
 कोई परोक्षज्ञानी (भक्ति-भ्रुत ज्ञान के धारक) माभितात्मा होते हैं उन्हें देखो ।

अथवा इन्हें प्रवृत्तिमियों से अलग ही समझना चाहिए । अहं अकार सूक्ष्म और
 भावर वनस्पति का धारंम करने में मीत प्रवृत्त उद्विष्ट हैं । तीन करण, तीन योग से
 वनस्पतिकाय के धारंम के त्यागी हैं ।

भावना आरंभ करवावण्य वनस्पति शब्दना आरंभ करता वहा अन्य अनेक
 प्रकारना प्राणीजोनी हिंसा करे छे ॥ ५ ॥

टीकार्थ—अरुण्य अरुण्योणी आरंभ करवावण्य मुनि वनस्पतिकायना आरंभणी
 विरुद्ध रहे छे जेवा मुनि कोर्-कोर् अवधिज्ञानी मन पर्यायज्ञानी अने केवलज्ञानी, होय
 छे अने कोर्-कोर् परोक्षज्ञानी (भक्ति-भ्रुतज्ञानना धारक) माभितात्मा होय छे तेने लुजो.

अथवा तेने प्रवृत्तिमियों से अलग समझना चाहिए । ते अकार सूक्ष्म अने
 भावर वनस्पतिकायना आरंभ करवावण्य पीजोना-अववाण्य, प्रवृत्त उद्विष्ट छे तस्य
 करण्य तस्य योगणी वनस्पतिकायना आरंभना त्यागी छे.

इत्यरस्याः । मावशस्य तु वनस्पतिं प्रति मनोवाक्यकायानां दुष्पणिधानम् । वनस्पति
 कर्मसारम्भेन—कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भः—वनस्पतिं निमिचीकृत्य ज्ञानावरणी-
 पादिकर्मबन्धमनकसावधस्यापारस्तेन, इमं वनस्पतिकार्यं विहितं ।

वनस्पतिकार्यविंसायां प्रवृत्ताः स्वस्य परजीवनिकायस्य लोके सर्वमेव विहितं
 स्यात्—'वनस्पतिद्वन्द्व'—मित्यादि । वनस्पतिद्वन्द्वं—वनस्पतिजीवोपमर्दकं सर्वं पूर्वोक्त
 प्रकारं, समारम्भात्—वनस्पतिं प्रति प्रयुञ्जानाः, मन्वान्—वनस्पतिकार्यमिभान्,
 कोकस्यान्, पृथिवीकायादीन्, द्वीन्द्रियादीन् असांश्च उदाभितान् प्राणान्—प्राणिनाः
 विहितं ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र सावयाद्याः कन्द-मूल-पत्र
 फलपत्राणि हैं । वसुधा, दांती, कुटार आदि उभयकायशक्य हैं । वनस्पतिकार्य के प्रति मन,
 वचन और काय का असत् प्रयोग करना मावशस्य है । इन सबोद्वारा वनस्पतिकार्यका
 कार्य करके ज्ञानावरण आदि जाटप्रकार के कर्मों को उन्मूलन करने वाला सावध व्यापार
 करके वनस्पतिकार्य की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकार्य की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह उदा बीजनिकायरूप समस्त लोक
 की हिंसा करता है, यह स्वप्नते हैं, 'वनस्पतिद्वन्द्वम्' इत्यादि ।

वनस्पतिकार्य की हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्तों का आरंभ करनेवाले लोग वनस्पतिकार्य के
 अतिरिक्त पृथ्वीकार्य आदि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति—आम्रित द्वीन्द्रिय आदि प्रस वीजा
 की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनक प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कंद, मूल,

पत्र फल आदि परकायशक्य उ वसुधा दांती—कुटार कुटार—कुटारों आदि
 उभयकायशक्य उ वनस्पतिकार्य प्रति मन, वचन जने कायने असत्-प्रयोग करने
 ते सावशस्य उ ज्ञे शस्त्रोद्वारा वनस्पतिकार्यने आरंभ करने—ज्ञानावरणीय आदि जाट
 प्रकारना करनेने उन्मूलन करवावाण सावध व्यापार करने वनस्पतिकार्यनी हिंसा करे उ

> वनस्पतिकार्यनी हिंसाभां प्रवृत्त वाय उ ते उल्लानिकायरूप समस्त
 लोकनी हिंसा करे उ ज्ञे जवावे उ- वनस्पतिद्वन्द्वम् इत्यादि

वनस्पतिकार्यना हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्तने आरंभ करनेवाला लोक वनस्पति
 कार्य अतिरिक्त पृथ्वीकार्य, आदि अन्य स्थावरोंनी तथा वनस्पति आम्रित द्वीन्द्रिय-
 ने अतिरिक्त आदि प्रस लोकनी पक्ष हिंसा करे उ

संसारना अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गी उ तेषांशी शाक्य आदि कंद, मूल, पत्र

एके पुनरन्ये तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमानं प्रदमानाः='वयमेव वनस्पतिजीवरक्षणपराः महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, ताव पृथक् पश्य ।

इमे ग्वल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषुंन प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्य किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=त्रिभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः=वनस्पतिकायशस्त्रैः, शस्त्रं हि वनस्पतिकायस्य द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम् । तत्र द्रव्यशस्त्रं=स्वकाय-परकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं दण्डलकुटादयः । परकाय-शस्त्रं=कर्तरी-पापाण-हस्त-पाद-मुख-वह्न्यादयः । उभयकायशस्त्रं=वासी-दात्र-

इनसे विपरीत कोई-कोई 'हम अनगार हैं' ऐसा अभिमानपूर्वक कहते हैं—'हम ही वनस्पति जीवों की रक्षा करने में तत्पर और महाव्रतधारी हैं,' इस प्रकार प्रलाप करते हुए द्रव्यलिङ्गी साधुओं को अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते । ये गृहस्थ के किसी भी कामका त्याग नहीं करते हैं, यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

नाना प्रकार के वनस्पतिकाय के शस्त्रोंद्वारा वनस्पतिकाय का आरम्भ करके वनस्पतिकायकी हिंसा करते हैं । वनस्पतिशस्त्र दो प्रकारका है—द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकायशस्त्र (२) परकायशस्त्र (३) उभयकायशस्त्र । डडा लकड़ी वगैरह स्वकायशस्त्र हैं । कैची, पत्थर, हाथ, पैर, मुख और आग आदि

तेनाथी विपरीत—विज्ञेयं केरि-केरि 'अमे अणुगार छीअे' आ प्रभावे अलिमान पूर्वक कहे छे—'अमेव वनस्पति एवानी रक्षा करवाभा तत्पर अने महाव्रतधारी छीअे' आ प्रभावे प्रलाप-(भङ्गवाट) करनारा द्रव्यलिङ्गी साधुअेने बुद्धा समझे

अणुगार डोवानु अलिमान करनारा अे द्रव्यलिङ्गी साया अणुगारना शुभे भाटे जरा पणु प्रवृत्ति करता नथी ते गृहस्थाना केरि पणु कामना त्याग करता नथी अे भतावे छे 'यदिमम्.' इत्यादि

नाना प्रकारना वनस्पतिकायना शस्त्रो वडे वनस्पतिकायना आरम्भ करीने वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे वनस्पतिशस्त्र अे प्रकारना छे—द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्र द्रव्यशस्त्रना त्रिषु भेद छे—(१) स्वकायशस्त्र, (२) परकायशस्त्र, अने (३) उभयकायशस्त्र उडा, लाकडी वगैरे स्वकायशस्त्र छे, केची-(कातर, साधुअे) पत्थर, हाथ, पैर,

इत्यारभ्यः । मावशसं तु वनस्पतिं प्रति मनोवाङ्मयापानां दुष्पणिघ्नम् । वनस्पति-
 कर्मसारम्भेण=कर्मणां समारम्भः कर्मसमारम्भ=वनस्पतिं निमिचीकृत्य ज्ञानावरणी-
 यादिकमबन्धननकसावधव्यापारस्तेन, इम वनस्पतिकार्यं विहिसन्ति ।

वनस्पतिकार्यविहिसायां प्रवृत्त्या स्वच्छपद्जीवनिकायस्वरूप लोके सर्वमेव विहिसन्ती-
 त्वात्-‘वनस्पतिवृत्तम्’-मित्यादि । वनस्पतिवृत्ते=वनस्पतिजीवोपमर्दके अस्ते पूर्वोक्त
 वृत्तं, समारम्भमाणा=वनस्पतिं प्रति प्रयुक्तमानाः, अन्यान्=वनस्पतिकार्यभिधान्,
 क्लेशकस्याव, पृथिवीकायादीन्, द्वान्द्वियादीन् प्रसांश्च तदाभितान् प्राधान्=मागिनां
 विहिसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः फल-मूल-पत्र

सकलशक्य हैं । बसुला, दांती, कुठर आदि उभयकायशक्य हैं । वनस्पतिकार्य के प्रति मन,
 वचन और काय का असत् प्रयोग करना भावशक्य है । इन शक्यद्वारा वनस्पतिकार्यका
 चारम करके ज्ञानावरण भावि आठप्रकार के कर्मों को उन्मूलन करने वाला सावध व्यापार
 करके वनस्पतिकार्य की हिंसा करते हैं ।

जो वनस्पतिकार्य की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह एवों जीवनिकायरूप समस्त लोक
 की हिंसा करता है, यह बलव्यते है, ‘वनस्पतिवृत्तम्’ इत्यादि ।

वनस्पतिकार्य की हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्यों का चारम करनेवाले लोग वनस्पतिकार्य के
 ऐतिहिक पृथ्वीकार्य भादि अन्य स्थावरों की तथा वनस्पति-आश्रित द्विन्द्विय आदि त्रस जीवों
 की भी हिंसा करते हैं ।

संसार में अनेक प्रकार के द्रव्यलिङ्गिनी हैं । उन में से शाक्य आदि फल, मूल,

मुल अने अग्नि आदि परकायशक्य से बसुला दांती-बातशु, कुठर-कुठरो आदि
 उभयकायशक्य से वनस्पतिकार्य प्रति मन, वचन अने कायने असत्-प्रयोग करने
 ते भावशक्य से ज्ञे शक्यद्वारा वनस्पतिकार्यने आरम्भ करीने-ज्ञानावरणीय आदि आठ
 प्रकारना करीने उत्पन्न करवावाण्य सावध व्यापार करीने वनस्पतिकार्यनी हिंसा करे से

वे वनस्पतिकार्यनी हिंसामां प्रवृत्त थाय से ते उल्लखनिकायत्वरु समस्त
 लोकनी हिंसा करे से ज्ञे जवाने से- वनस्पतिवृत्तम्’ इत्यादि

वनस्पतिकार्यना हिंसाजनक पूर्वोक्त शक्यने आरम्भ करवावाण्य लोक वनस्पति
 शक्य अतिश्रित पृथ्वीकार्य, आदि अन्य स्थावरनी तथा वनस्पति आश्रित द्विन्द्विय-
 से उद्विद्य आदि त्रस लवेन्नी पण्य हिंसा करे से.

संसारमा अनेक प्रकारना द्रव्यलिङ्गिनी से तेभांथी शाक्य आदि फल, मूल, पत्ता,

पुष्पफलादिभोजनार्थं वनस्पतिकर्मसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति च, तेन पद्जीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोऽपि “वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साक्षाभासाः सावधमुपदिशन्ति, शास्त्रमतिपिद्धमपि वनस्पतिकर्मसमारम्भं कारयन्ति ।

ते हि व्याख्यानमण्डपादौ चाशोकवृक्षपत्रादिभिर्वन्दनमालादिकं वन्दयन्ति, नानाविधपुष्पपत्रफलैः पञ्चोपचारादिपूजासु प्रवर्तयन्ति । तथाहि—

“काले सुभ्रूणं, विसिद्धपुष्पाइर्हि विहिणा उ ।

सारशुद्धयोत्तगर्भं, जिणपूया होइ कायव्वा ॥ १ ॥” (पञ्चाशकवृत्तिः)

छाया—काले शुचीभूतेन, विशिष्टपुष्पादिकैर्विधिना तु ।

सारस्तुति स्तोत्रकरुचिना, जिनपूजा भवति कर्तव्या ॥ १ ॥

पत्ता, फूल आदि स्वाने के लिए वनस्पति का आरम करते हैं, कराते हैं और करने वाले की अनुमोदना करते हैं । ऐसा करके वे पद्जीवनिकाय की विराधना के भागी होते हैं । “हम पंचमहाव्रतधारी, जिन भगवान् की आज्ञा के आराधक अनगार हैं” ऐसा कहने वाले दडी झूठे साधु भी सावध का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध क्रिये हुए वनस्पतिकाय के आरम का उपदेश देते हैं ।

वे व्याख्यानमण्डप आदि में अशोक वृक्ष के पत्तों से वन्दनवार आदि बँधवाते हैं, नाना प्रकार के फल फूल पत्तों से पंचोपचार आदि पूजाओं में (श्रावको) को प्रवृत्त करते हैं । जैसे—

“उचित समय पर, विधिपूर्वक विशिष्ट पुष्प आदि के द्वारा सुन्दर स्तोत्र—स्तुतिपूर्वक जिन भगवानकी पूजा करनी चाहिए” ।

इस आदि भावा भाटे वनस्पतिने आर ल करे छे, अने करावे छे, अने करवावाणाने अनुमोदन आये छे अे प्रभाषे करीने ते पद्जीवनिकायनी विराधनाना लागीहार थाय छे. ‘अने पय महाव्रतधारी, जिन भगवाननी आज्ञाना आराधक अश्रुगार छीअे’ आ प्रभाषे कडेवावाणा दडी लुका साधु पशु सावधने उपदेश आये छे, अने शास्त्रमा निषेध करवामा आवेलेो वनस्पतिकायना आरलनेो उपदेश आये छे

ते व्याख्यान—मण्डप आदिमा अशोकवृक्षना पाहडाथी तोरषु आदि बंधावे छे. नाना प्रकारना इल—इल अने पाहडाथी पचोपचार आदि पूजाओमा (श्रावकोने) प्रवृत्त करे छे—जेठे छे जेम—“उचित समय—योग्य समय पर विधिपूर्वक विशिष्ट—उत्तम पुष्प आदि द्वारा सुन्दर स्तोत्र, स्तुतिपूर्वक जिन भगवाननी पूजा करवी जेठेअे.”

अपरञ्च-उमास्वातिशापककृतप्रकरणे—

‘मध्याह्नं कुसुमै पूजा’ इति । ‘गन्धवासासतैः स्रग्मिः’ इति ।

‘प्रधानैश्च फले पूजा’ इत्यादि । किञ्च—

“ न शुष्कैः पूजयेदेषं, कुसुमैर्न महीगतैः ।

न विशीर्णवलेः स्पृष्टैः, नान्युभैर्नाभिकासिमि ” ॥ १ ॥

‘ न शुष्कैः पूजयेदेषं कुसुमैर्न महीगतैः ’-इत्यनेन ‘ मार्तं खोटि तैश्च कुसुमैर्न पूजयेत् ’-इत्यर्थोऽवगम्यते । अहो ! कीदृशो महासावधोपदेशस्तेषाम् ।

एवं देवमन्दिरादीं कदलीस्तम्भादिरोपणेन, भद्रोष्णादिहस्तपत्रैर्मन्त्र-

पन्नासकृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

‘मध्याह्न में फूलों से पूजा की जाती है ।’ “गंध, वास और कस्तुर से तथा माखनों से पूजा होती है ।” उत्तम फलों से पूजा की जाती है ” इत्यादि । और भी कहा है—

“सूखे जमीन पर गिरे हुए, दूटी फेंसुड़ीभाऊ, छुप छुप, सराब और बिना मिठे फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये ” ।

‘सूखे और जमीन पर गिरे हुए फूलों से पूजा नहीं करनी चाहिये’ इसका अन्वय यह हुआ कि ताजे और सोहे हुए फूलों से पूजा करनी चाहिये करें । उनका बड़ कैसा सम्बन्ध उपदेश है ।

इस प्रकार देवमन्दिर आदि में कदलीस्तम्भ लगा करके, भद्रोष्ण वृक्ष के पत्तों से

पन्नासकृत्ति उमास्वातिकृत प्रकरण में कहा है—

मध्याह्न में फूलों से पूजा करनी चाहिए । अंध, वास करने कस्तुरी तथा माखनों से पूजा करनी चाहिए । उत्तम फूलों से पूजा करनी चाहिए । इत्यादि भी कुछ कहा है ।

“सूखे, जमीन पर गिरे पड़े हुए, जेनी पांजरी तुटी गंध डोष, कपूर कस्तुरी, कस्तुरी करने जिन्हा विन्तानां कृतीषी पूजा नहि करनी नैर्धजे ।”

‘सूखे करने जमीन पर गिरे पड़े हुए फूल न करनी नैर्धजे’ अने अन्वय को धरते हैं कीतां अने वास तोड़ने कृतीषी पूजा करनी नैर्धजे करें । तेजोने आ सम्बन्ध उपदेश केवे ।

अ प्रभासे देवमन्दिर आदि में देवता स्थल उल्ला करीने कदलीस्तम्भों पांजरी

मालिकादिवन्धनेन, प्रतिमोपरि सचित्तपत्रपुष्पादिक्षेपणेन सचित्तनालिकेरदाडिमर-
सालफलादिनैवेद्योपचारेण च वनस्पतिर्हिंसा कारयन्तस्ते तदाश्रिताननेकविधान्
त्रसस्थावरान् प्राणिनो घातयन्ति । नहि-वीतरागाणां सावधा सपर्यां समुचिता,
'एस खलु गंधे' इत्यादिवचनेन सर्वारम्भाणामस्मिन्नेवागमे तैः साक्षात् प्रतिपिद्धत्वात् ।
नहि तत्तत्त्यागिभ्यस्तत्तत्तद्रव्यसमर्पणं तुष्टिकरं भवतीति । नहि लोके मद्यमांस-
त्यागिभ्यो मद्यमांससमर्पणं तत्परितोपाय जायते । अल बहुना ! हरितकन्दमूलादि-
त्यागिनः श्रावका अपि न हरितकन्दमूलादिसमर्पणेन संतुष्यन्तीति विचारयन्तु
मनीषिणः ॥ सू० ५ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं जगाद—'तत्थ' इत्यादि ।

वन्दनवार बाँधकर, प्रतिमा पर सचित्त पत्ते, फूल आदि चढाकर, सचित्त नारियल, दाडिम,
आम आदि नैवेद्य के उपचार से वनस्पति की हिंसा करते हुए वे वनस्पति-आश्रित अनेक
प्रकार के त्रस-स्थावर जीवों का घात करवाते हैं । वीतराग देव की पूजा सावध होना
उचित्त नहीं है । 'एस खलु गंधे' इत्यादि कथन द्वारा इसी आगम में समस्त आरमों का
वीतराग भगवान्ने साक्षात् निषेध किया है । जो पुरुष जिस वस्तु का त्यागी है, उसकी तुष्टि
उस वस्तु को अर्पित करने से नहीं हो सकती । लोक में मद्य-मांस का त्याग करने वालों
को मद्य-मांस की भेंट सतोषजनक नहीं होती । अधिक क्या कहें ! हरित कंद मूल के
त्यागी श्रावक भी हरित कन्द मूल की भेंट से प्रसन्न नहीं होते हैं । बुद्धिमान् पुरुष स्वयं
विचार करलें ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामी से कहते हैं—'तत्थ' इत्यादि ।

वन्दनवार आधीने, प्रतिमा उपर सचित्त पादडा, डूल आदि थढावीने, सचित्त नाणिअेर,
दाडम, आभा आदि नैवेद्यना उपचारथी वनस्पतिनी हिंसा करीने ते वनस्पति-आश्रित
अनेक प्रकारना त्रस-स्थावर जिवोनो घात करावे छे वीतरागदेवनी पूजा साध डोय
ते योग्य नथी. 'एस खलु गंधे' इत्यादि कथन द्वारा आ आगममा तमाभ समा-
रखोनो वीतराग भगवाने साक्षात् निषेध कर्यो छे जे पुरुष जे वस्तुना त्यागी छे,
तेनी प्रसन्नता ते वस्तुने अर्पण करवाथी थछ शकती नथी डोअमा मद्य-मांसना
त्यागी-त्याग करवावाणाने मद्य-मांसनी भेंट सतोष उत्पन्न करती नथी, अधिक थुं
कहीअे ! लीला कन्दमूलना त्यागी श्रावक पथु लीला कन्दमूलनी भेंटथी प्रसन्न थता
नथी तो बुद्धिमान् पुरुष पोते विचार करी लीअे ॥ सू० ५ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे—'तत्थ' इत्यादि

मूसम्—

तस्य स्रष्टु मगवता परिष्ठा प्रवेद्या । इमस्त चैव जीवितस्य परिवन्दन-
 मण-पूयणाए, आइमरममोयणाए, दुःस्वप्रतियातहेतु, से सयमेव षणस्तइसत्यं
 समारम्भ, अण्णेहि वा षणस्तइसत्यं समारमावेह, अण्णे षणस्तइसत्यं समारममाणे
 समनुमानादि, सं से अहियाए, ठं से अबोहीए ॥ सू० ६ ॥

छाया—

तस्य स्रष्टु मगवता परिष्ठा प्रवेदिता । अस्व चैव जीवितस्य परिवन्दन-मानन
 पूबनाय, आतिमरणमोचनाय, दुःस्वप्रतियातहेतु, स स्वयमेव वनस्पतिश्रद्धा समार
 मणे, अन्यैर्वा वनस्पतिश्रद्धं समारम्भयति, अन्यान् वा वनस्पतिश्रद्धा समारममाणान्
 समनुमानादि, तत् तस्याहिताय, तत् सम्याबोधये ॥ सू० ६ ॥

टीका—

स्रष्टु=वनस्पतिक्रायसमारम्भे, मगवता=भीमहावीरेण, परिष्ठा=सम्पन्न
 बोध' स्रष्टु=निश्चयेन प्रवेदिता=प्रतिबोधिता-कर्मपन्थसमुच्छेदार्थं जीवन परि

मूळार्थ—वनस्पतिक्राय के आरंभ के संबंध में मगवान् न सम्पन्न बोध दिया है ।
 इस जीवन के बन्धन मानन और पूजन के लिए, अण्ण-मरण से श्रुटकण्ड पाने के लिए तथा
 दुःस्व का विनाश करने के लिए स्वयं वनस्पतिक्रायश्रद्धा का आरंभ करता है, दूसरा स
 आरंभ करता और आरंभ करने वाले दूसरा का अनुमोदन करता है । यह आरंभ उस के
 अहित के लिए, उसकी अबोधि के लिए होता है ॥ सू० ६ ॥

टीका—वनस्पतिक्राय के आरंभ के विषय में मगवान् भी महावीर स्वामीन
 सम्पन्न उपदेश दिया है । अर्थात् मगवान् ने बतलाया है कि-इस संबंध को नष्ट करने क

मूळार्थ—वनस्पतिक्रायना आरंभना सम्पन्नोत्थम जगवाने सम्पन्न बोध आण्णे
 से आ लपनना बहन, मानन, अने पूजन भाटे, अ म-अण्णधी श्रुटवाने भाटे
 तथा दुःस्वोने विनाश करवा भाटे स्वयं वनस्पतिक्रायश्रद्धेना आरंभ करे से जीव
 शये आरंभ कराने से अने आरंभ करवावाया जीवने अनुमानन आपे से. ते
 आरंभ तेना अहित भाटे तेमण तेनी अबोधि भाटे होय से ॥ सू० ६ ॥

टीका—वनस्पतिक्रायना आरंभना विषयमां जगवान भी महावीर स्वामीने
 सम्पन्न उपदेश आण्णे से. अर्थान् जगवाने बतलायुं से है-इस संबंध नष्ट करवा भाटे

ज्ञाऽवश्यं शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोकः कस्मै प्रयोजनाय वनस्पतिकायमुपर्दयती ? त्याह—‘ अस्य चैव जीवितस्ये ’—त्यादि । अस्यैव नश्वरस्य जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्= आहार—वस्त्र—पात्र—माल्य—गन्ध—चूर्ण—तालवृन्ता—ज्वाला—खट्वा—पल्यङ्क—शिविका—शकट—हल—मुसल—पीठ—फलक—सिंहासन—दण्ड—लकुट—कपाट—वीणा—शालभञ्जिका—निर्माण—तापन—प्रतापन—प्रकाशने—न्धन—तैलाद्यर्थमित्यर्थः । तथा—परिवन्दन—मानन—पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थं, यथा—कश्चित् स्वप्रशंसार्थम् उपवनादौ पत्रादिकर्तनकलाकौशलेन वृक्षलतादीनां पत्रादीनि तथा छेदयति यथा तत्कर्तनेन

लिए जीव को परिज्ञा (उपदेश) अवश्य स्वीकार करना चाहिए ।

उपभोगद्वारम्—

लोग किस प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं ? यह बतलाते हैं—इसी नाशशील जीवन के सुख के लिए अर्थात् आहार, वस्त्र, पात्र, माला, गध, चूर्ण, तालवृन्त (पखा), आगल, खाट, पलंग, पालकी, गाडी, हल, मूसल, पीढा, (वाजोठ) फलको (पाट), सिंहासन, डडा, लकडी, किवाड, वीणा, पुतली आदि बनवाने के लिए, तपाना, विशेष तपाना, प्रकाशन, ईंधन, और तैल आदि के प्रयोजन से वनस्पतिकाय की हिंसा करते हैं । तथा प्रशंसा के लिए भी वनस्पति की हिंसा करते हैं, जैसे—कोई पुरुष अपनी प्रशंसा के लिए बगीचा आदि में पत्ता वगैरह काटने की कला में कुशलता प्रकट करने के अभिप्राय से वृक्ष लता वगैरह को इस प्रकार काटता है जिससे उसमें

अवने परिज्ञा (उपदेश)नो अवश्य स्वीकार करवो जेधजे

उपभोगद्वारम्—

लोक शु प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे ? ते अतावे छे—आ नाश चामवावाणा अवनो सुभ भाटे, अर्थात्—आहार, वस्त्र, पात्र, माला, गध, चूर्ण, प आ आगरियो, आट, पलंग, पालपी, गाडी, हल, मूसल, आलेक, पाट, सिंहासन, उडा, लाकडी, कमाड, वीणा, पुतली वगेरे अनाववा भाटे, तपाववु विशेष तपाववु, प्रकाशन, धन्धन—(आणवाना लाकडा) अने तैल आदिना प्रयोजनथी वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे तथा प्रशंसा भाटे पणु वनस्पतिकायनी हिंसा करे छे, जेमके—कोई पुरुष चोतानी प्रशंसा भाटे अगीच्या आदिमा पाडडा वगेरे कापवानी कलाभां कुशलता अताववाना अभिप्रायथी

गजानमृगभ्याप्रसिंहादीनां स्वरूपं वधाना हृसादयस्तस्योपवनादेर्विशिष्टशोभां जनयन्ति ।

माननं=अनसत्कारस्वरूपं, यथा-स एव पत्राधिकर्तनकलाकुशलतो मासाकारः स्वमाननार्थं कर्तरीश्लेष्म हृषलतादीनां पत्रादिकं कृन्तति । एमनं= पत्ररत्नादिसामस्तदर्भम्, यथा-देवमतिमाघर्यं पत्रपुष्पफलादीनां श्रोतमे । तथा- शक्तिमरमोचनाय=अन्ममरमन्ममोपनार्थं, यथा-सुक्तिकामन पूजायां पुष्पपत्रादिसमुच्छेदने, तथा-दुःखमतिपातहोस्तु=व्यापिअमनाघर्यम्-ओपचि- हृषलतादीनां मूलकन्दशास्तापत्रपुष्पफलादिमेदने, स जीवनसुखाघर्यीं स्वयमेव

बाण, घोडा, शिरन, बाघ, सिंह आदि का भाकार बन जाता है और इससे उस वगीश की सुवस्था बढ़ती है, ऐसा ध्यान करता है ।

बनसंकार के लिये भी वनस्पति की हिंसा की जाती है, जैसे-पत्ता बगैछ काटने में कुच्छ वही पुरोक मासी केपी से हृषो या छतामों के पत्ता आदि काटता है । तथा पूजन के लिये अर्थात् बहों और रत्नों के लिये भी वनस्पतिकार्य की हिंसा करते हैं । जैसे-देव प्रतिमा आदि के लिये पत्र, फूल, फल तोड़ने में ।

अम मरण से छुटकारा पाने से लिये भी उक्त हिंसा की जाती है । जैसे-मुक्ति की इच्छा से पूजा के लिये फूल-फल तोड़ने में । दुःखों का प्रतीकार करने के लिये भी यह हिंसा की जाती है । जैसे-रोग मिटाने के लिये ओषधि, हृष, छता मूल, कन्द, शास्ता पत्र, फूल आदि तोड़ने में हिंसा की जाती है ।

वृक्ष कृत्वा वज्रेने ज्येष्ठा प्रकारे कापि उ के तेभ्यं क्वाभी, शोभा, कश्यु, बाघ सिंह आदिना प्रकारे जनी अय उ अने तेभी ज्ये जणीवानी सु इत्या वपि उे ज्येष्ठु सभलनेव करे उ

अन-सत्कार भाटे पञ्च वनस्पतिनी हिंसा करवामां आवे उ नेम-पांडां वज्रेने कापवामां कुशल आत्रण क्खेत्ते तेव भाणी क्खेभी (कावरे)भी वृक्षे। अथवा क्वाज्येनां पत्तां आदि कापि उे तथा पूजन भाटे अर्थात् वल्ले अने रत्नाने भाटे पञ्च वनस्पतिकार्यनी हिंसा करे उे नेम-देवप्रतिमा आदि भाटे पत्र कूल इल तोडवामां

अम-मरुथी सुटवा भाटे पञ्च पूर्वं क्खेत्ती हिंसा करवामां आवे उे, नेमके-सुक्तिनी उच्छेदनी पूजा भाटे इल कूल तोडवामां

दुःखाने प्रतिकार करवा भाटे पञ्च ज्ये हिंसा करवामा आवे उे नेमके-राजनिचारण करवा भाटे ओषधी, वृक्ष, कृत्वा, मूल कन्द, शास्ता, पत्र, कूल आदि तोडवामां हिंसा करवामां आवे उे

वनस्पतिशस्त्रं=वनस्पतिकायोपमर्दकं द्रव्यभावशस्त्रं समारभते=व्यापारयति । अन्यैर्वा वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयति । अन्यान् वा वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् समनुजानाति=अनुमोदयति ।

तत्=वनस्पतिकायसमारम्भ, तस्य वनस्पतिसमारम्भ कुर्वतः कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अवोधये=सम्यक्त्वालाभाय भवति । ॥ सू० ६ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमोपे वनस्पतिकायस्वरूपं परिज्ञातं, स एवं विभावयतीत्याह—‘से तं ’ इत्यादि ।

मूलम्—

से तं संनुज्जमाणे आयाणीयं समुद्राय सोचा खलु भगवओ अण-

इस प्रकार जीवन को सुखी बनाने का अभिलाषी वह पुरुष वनस्पतिकाय की हिंसा करनेवाले द्रव्य और भावशस्त्र का स्वयं उपयोग करता है, दूसरों से उपयोग कराता है और वनस्पतिशस्त्र का उपयोग करने वाले दूसरों का अनुमोदन करता है ।

वनस्पतिकाय का वह आरंभ, आरम्भ करने वाले, कराने वाले और अनुमोदन करने वाले के अहित के लिए होता है और सम्यक्त्व की अप्राप्ति का कारण बनता है ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट वनस्पतिकाय का स्वरूप जिसने जान लिया है, वह इस प्रकार विचार करता है—‘से तं ’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वह पुरुष भगवान् या अनगारों से सुनकर समझ-बूझकर सयम

ये प्रभाषे लवनने सुभी यनावाना अबिलाषी ते पुरुष वनस्पतिकायनी हिंसा करवावाणा द्रव्य अने भाव शस्त्रेनो स्वयं उपयोग करे छे, भील पासे उपयोग करावे छे अने वनस्पतिशस्त्रेनो उपयोग करवावाणा भीलने अनुमोदन आपे छे

वनस्पतिकायने आ आर ल, आर ल करवावाणाने, कराववावाणाने अने अनुमोदन करवावाणाने अहित भाटे छे अने सम्यक्त्वनी अप्राप्तितुं कारण्य अने छे ॥ सू० ६ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपे वनस्पतिकायनुं स्वयं नेषे ज्ञाषी दीधुं छे ते आ प्रभाषे विचार करे छे—‘से तं ’ इत्यादि

मूलार्थ—ते पुरुष भगवान् अथवा अणुगारों पासेथी साक्षणी-समल-धुञ्जिने

गाराम वा अति ए इहमेगेसि जाय मवइ-एस स्वलु गंभे, एस स्वलु मोहे, एस स्वलु मारे, एस स्वलु गरए । इत्यर्थं गदिए सोए, जमिणं विरूपरूपेहि सत्येहि वणस्सइ चम्मसमारंमेणं पवस्सपसत्वं समारंममाणे अण्णे अप्पेगरूपे पाप्पे विहिंसइ ॥ सू० ७ ॥

जाया—

स तत् संपुष्यमान आदानीयं समुत्थाप भुत्वा स्वलु मगवतः अनगाराणां वा अन्तिके, इहैकेपां शार्ठं मवति-एप स्वलु ग्रन्थाः, एप स्वलु मोहाः, एप स्वलु माराः, एप स्वलु नरकः । इत्यर्थं गृहो सोकः, यदिसं विरूपरूपैः पलाः वनस्पतिर्म्मसमारम्मेष वनस्पतिर्म्मसं समारमगाणः अन्यान् अमेकरूपात् प्रापान् विहिंसन्ति ॥ सू० ७ ॥

टीका—याः स्वलु मगवतः=तीर्थंकरस्य, अनगाराणां=तदीयभ्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके भुत्वा, आदानीयम्=उपायेपसर्वसावधयोगविरतिरूपं चारिम, समुत्थाप=प्रतीकृत्य निहरति, स तत्=वनस्पतिक्रापसमारम्मम समुष्यमानः=अहिताशोभिजनकृत्वेन विद्याता सन् एवं विभावपति—'एवं स्वलु०' इत्यादि ।

पहल करके विचरता है । वह इस प्रकार समझता है—वनस्पतिक्राम का भारंम प्रब है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है । गृह जोग इसके किय मना प्रकार के शर्तों से वनस्पतिक्राम का भारंम करके, शब्द का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्राप्ति का फल करते हैं ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जो पुरुष तीर्थंकर से मा उनके भ्रमण निर्मन्थों से सर्वसावध त्याग रूप संयम स्वरूप समझकर और उसे अंगीकार करके विचरता है वह वनस्पतिक्राम के भारंम को अहितकर और अवोपेभिजनक समझकर इस प्रकार विचार करता है—'एवं स्वलु०' इत्यादि ।

सबम प्रकल्प करीने विचरे छे ते अण प्रभावे सभने छे—वनस्पतिक्रायने आरंभ प्रब छे, जे मोह छे जे मार छे जे नरक छे गृह बोध जे भाटे नाना प्रकारना शस्त्रोपी वनस्पतिक्रायने आरंभ करीने शस्त्रने प्रयोग करवा यहा भीन पण्णनेक प्रतीकृत्येना पाव करे छे ॥ सू. ७ ॥

टीकार्थ—जे पुरुष तीर्थंकरपी अथवा तेमना अभवु निर्मन्थे पासेभी सब सावध (अभंन) त्यागरूप सबमना स्वरूपने समल ने जने तेने ज्योहार करीने विचरे छे, ते वनस्पतिक्रायना आरंभने अहितकर जने अवोपेभिजनक समल ज्य प्रभावे विचार करे छे— एवं स्वलु० इत्यादि

इह=मनुष्यलोके एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंज्ञातसम्यग्बोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेवं ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु’ इत्यादि ।

एषः=वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे कार्योपचारात् कारणभूतो वनस्पतिशस्त्रसमारम्भ एव कर्मबन्धरूपो ग्रन्थ इत्युच्यते । एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वनस्पतिशस्त्रसमारम्भः मोहः=विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं-निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इस मनुष्य लोक में जिन्हें श्रमण निर्गर्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य उत्पन्न हो गया है, उन्हीं को यह विदित होता है । क्या विदित होता है ? इस शका का समाधान करने के लिए आगे कहते हैं—‘ एष खलु ग्रन्थ० ’ इत्यादि ।

वनस्पतिकाय का आरंभ निश्चय से प्रथम अर्थात् कर्मबन्धरूप है । कारण में कार्य का उपचार करके आरंभ को कर्मबन्ध कहा है । वस्तुतः वह कर्मबन्ध का कारण है । इसी प्रकार आगे भी समझ लेना चाहिए ।

वनस्पतिकाय का समारम्भ मोह अर्थात् अज्ञान है—अज्ञानजनक है । यह मार है अर्थात् निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह नरक है अर्थात् नारकी जीवों को दश प्रकार की यातना का कारण है ।

આ મનુષ્યલોકમાં જેને નિર્ગ્રન્થોના ઉપદેશથી સમ્યક્જ્ઞાન, અને વૈરાગ્ય ઉત્પન્ન થઈ ગયો છે તેઓ આ બધું છે શું બધું છે ? એ શકાનું સમાધાન કરવા માટે આગળ કહે છે, ‘ એ ખલુ ગ્રન્થ૦ ’—ઈત્યાદિ

વનસ્પતિકાયનો આરંભ નિશ્ચય પ્રથમ છે—અર્થાત્ કર્મબંધરૂપ છે, કારણમાં કાર્યનો ઉપચાર કરીને આરંભને કર્મબંધ કહે છે, વસ્તુતઃ તે કર્મબંધનું કારણ છે એ પ્રમાણે આગળ પણ સમજી લેવું જોઈએ.

વનસ્પતિકાયનો સમારંભ મોહ અર્થાત્ અજ્ઞાન છે—અજ્ઞાનજનક છે, તે માર છે, અર્થાત્ નિગોદ આદિમાં મૃત્યુનું કારણ છે તે નરક છે, અર્થાત્ નારકી જીવોને દસ પ્રકારની યાતનાઓનું કારણ છે.

इत्यर्थम्—एतदर्थं, कर्मबन्ध-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःस्वकृतं माप्यापि पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकाः=मज्जानवधवर्ती जीवाः, यदा=सिप्पुरस्ति । यदा-यदा=मोगामि तापी, लोकाः=संसारी जीवाः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=बन्ध-मोह-मरणनरकार्थमेव मन्वस्य इति शेषः ।

लोकाः पुनः पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव मन्वस्य इति यदुक्तं, तत् कर्म ज्ञापते ? इति विज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि ।

यत्=यस्मात्, विरूपरूपैः=नानाविधैः धर्मैः पूर्वोक्तप्रकारैः, वनस्पतिकर्मसमा- स्मये=वनस्पतिक्रयोपमर्दनरूपसाधन्यापारेण, इमं=वनस्पतिकार्यं विहितं । तथा वनस्पतिशुद्धि समासमात्राण्यप्यपारयन् अन्यान्=पृथिवीकायस्थान् अनेकरूपान् एवसान् स्वावरांश्च तदाभितान् प्राणान्=प्राणिनः विहितं=उपमर्दयति ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी जीव कर्मबन्ध, मोह, मरण और नरक रूप इन फलों को प्राप्त करके भी बार-बार इसी में गूढ होते हैं । अथवा मोग के भूमिस्थी पुरुष इसी बंध, मोह, मरण और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

मोग पुन-पुनः कर्मबन्ध आदि के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह जो कथन किया है सो कैसे ज्ञात हुआ ? इस विज्ञासा के होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

क्यों कि माना प्रकार के पूर्वोक्त शब्दों द्वारा वनस्पतिक्रम की हिंसा करने वाले लोग अथवा ज्ञापक से वनस्पतिक्रम का ज्ञात करते हैं । तथा वनस्पतिक्रम का आरंभ करते हुए अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकार के तदाभित प्रस और तदावर जीवों की ज्ञात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

अज्ञानी एवं कर्मबन्ध मोह, मरण एवं नरकरूप को इष्टिने प्राप्त करिने पक्ष बार-बार जेमां यद्वं भाव उ. अथवा ज्ञापना अविद्यापी पुरुष आ प्रस, मोह, मरण एवं नरक भाटेक प्रवृत्ति करे उ

लोक पुन पुन (इरी-इरी) कर्मबन्ध वजरे भाटेक प्रवृत्ति करे उ; जे कथन ले भुं उ ते देवी शीते अथवाभां आभुं ? जे ज्ञासा जवाशी कहे उ 'यदिमम्' इत्यादि.

इसके नाना प्रकारना पूर्वोक्त शब्दों द्वारा वनस्पति कायनी हिंसा करवावाण्य लोक ज्ञापक ज्ञापकही वनस्पतिक्रमने ज्ञात करे उ तथा वनस्पतिक्रमने आरंभ करवा ज्ञा, अन्य पृथ्वीकाय आदि अनेक प्रकारना तदाभित प्रस एवं तदावर जीवोंने ज्ञात करे उ ॥ सू० ७ ॥

વનસ્પતિકર્મસમારમ્મફલપ્રદર્શનપુરસ્સરં વનસ્પતિસમારમ્મ્નેઋત્રસસ્થાનરજીવ-
હિંસાઽવશ્યમ્ભાવિનીતિ પ્રદર્શિતમ્, સંપ્રતિ વનસ્પતેઃ સચેતનત્વશઙ્કાયાં તસ્ય મનુષ્ય-
શરીરત્ સચેતનત્વમસ્તીતિ પ્રદર્શયતિ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

યદ્વા—યથા મનુષ્યશરીરે ચૈતન્યં સુગમં, તથા વનસ્પતિકાયાઽપિ, તસ્માદ્
વનસ્પતેર્મનુષ્યશરીરસાદૃશ્ય દર્શયતિ સૂત્રકારઃ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ—ઇમંપિ જાઙ્ઘમ્મયં એયંપિ જાઙ્ઘમ્મયં, ઇમંપિ વુદ્ધિઢમ્મયં એયપિ
વુદ્ધિઢમ્મયં, ઇમંપિ ચિત્તમંતયં એયંપિ ચિત્તમંતયં, ઇમંપિ છિણ્ણ મિલાઇ એયપિ

વનસ્પતિકાય કે આરમ્બ કા ફલ પ્રગટ કરકે યહ મી પ્રદર્શિત કર દિયા ગયા હૈ
કિ—વનસ્પતિકાય કા આરમ્બ કરને સે અન્ય ત્રસ ઓર સ્થાવર જીવો કી હિંસા મી અવશ્ય
હોતી હૈ । અત્ર વનસ્પતિકાય કે સચેતન હોને મેં શંકા હોને પર ઉસકી મનુષ્ય શરીર કે સમાન
સચેતનતા સૂત્રકાર પ્રકટ કરતે હૈ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

અથવા—જૈસે મનુષ્યશરીર મેં ચૈતન્ય કો સમજના સુગમ હૈં ઉસી પ્રકાર
વનસ્પતિકાય મેં મી । અત્ર એવ વનસ્પતિ મનુષ્યશરીર કે સમાન હૈ, યહ વાત સૂત્રકાર કહતે
હૈ—‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વહ મૈં કહતા હૂં—યહ (મનુષ્યશરીર) જન્મશીલ હૈ, વહ (વનસ્પતિશરીર) મી
જન્મશીલ હૈ । યહ વૃદ્ધિશીલ હૈ, વહ મી વૃદ્ધિશીલ હૈ । યહ સચિત્ત હૈ વહ મી
સચિત્ત હૈ । છેદને પર યહ મુરજ્ઞા જાતા હૈ, વહ મી છેદને પર મુરજ્ઞા જાતા હૈ ।

વનસ્પતિકાયના આરમ્બનુ ક્ષણ પ્રગટ કરીને એ પશુ પ્રદર્શિત કરી આપ્યુ છે કે-
વનસ્પતિકાયને આરમ્બ કરવાથી અન્ય ત્રસ અને સ્થાવર જીવોની હિંસા પશુ અવશ્ય
થાય છે. હવે વનસ્પતિકાયની સચેતનતા હોવામા શકા હોવાથી તેની સચેતનતા
મનુષ્યશરીરની સચેતનતા સમાન સૂત્રકાર પ્રગટ કરે છે—‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

અથવા—જેમ મનુષ્ય શરીરમા ચૈતન્યને સમજવામા સુગમતા છે, તે પ્રમાણે
વનસ્પતિકાયમા પશુ સુગમતા છે. એ માટે વનસ્પતિ મનુષ્યશરીરના સમાન છે એ વાત
સૂત્રકાર કહે છે—‘સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—તે હુ કહુ છુ—આ (મનુષ્ય શરીર) જન્મશીલ છે તે (વનસ્પતિ-
શરીર) પશુ જન્મશીલ છે, આ વૃદ્ધિશીલ છે, તે પશુ વૃદ્ધિશીલ છે, આ સચિત્ત છે—
છેદવાથી તે સૂકાઈ જાય છે, તે પશુ છેદવાથી સૂકાઈ જાય છે આ પશુ આહારક છે, તે

छिन्नं मिलाइ, इमं पि आहारं, एयं पि आहारं, इमं पि अणित्यं एयं पि अणित्यं, इमं पि असासयं एयं पि असासयं, इमं पि अमोचइयं एयं पि अमोचइयं, इमं पि विपरिणामधर्मं एयं पि विपरिणामधर्मम् ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स प्रथमि—इदमपि जातिधर्मकम् एतदपि जातिधर्मकम्, इदमपि वृद्धिधर्मकम् एतदपि वृद्धिधर्मकम्, इदमपि चित्तन्त एतदपि चित्तन्त, इदमपि छिन्नं म्लायति एतदपि छिन्नं म्लायति, इदमपि आहारकम् एतदपि आहारकम्, इदमपि अनित्यकम् एतदपि अनित्यकम्, इदमपि अशाश्वतम् एतदपि अशाश्वतम्, इदमपि अपोपचयिकम् एतदपि अपोपचयिकम्, इदमपि विपरिणामधर्मकम् एतदपि विपरिणामधर्मकम् ॥ सू० ८ ॥

टीका—

येन साक्षाद्गगनं सुखात् वनस्पतेः सचेतनत्वं भुतं सोऽहं प्रथमि—
यथा मगवता कथितं, तथा कथयामीत्यर्थः । प्रतिहातमर्थं प्रदर्शयति—इदमपीत्यादि ।

यह भी आहारक है, यह भी आहारक है । यह भी अनित्य है, यह भी अनित्य है । यह भी अशाश्वत है, यह भी अशाश्वत है । यह भी अप-उपचय वाला है, यह भी अप-उपचय वाला है । यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है और यह भी विविध प्रकार से परिणमनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—किसने साक्षात् भगवान् के मुख से वनस्पतिकत्व की सचेतनता सुनी है वही मैं कहता हूँ—जैसा भगवान् ने कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ । यही बात कहते हैं—'इदमपि' इत्यादि ।

पशु आहारक है आ पशु अनित्य है ते पशु अनित्य है आ पशु अशाश्वत है ते पशु अशाश्वत है आ पशु अप-उपचयवाला है ते पशु अप-उपचयवाला है आ पशु विविध प्रकारकी परिवर्तनशील है अने ते पशु विविध प्रकारकी परिवर्तनशील है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—जैसे साक्षात् भगवान् भुजशी वनस्पतिकत्वकी सचेतनता सांगती है तेज हूँ हूँ हूँ—जैसे भगवान् ने कहा है तेज हूँ हूँ हूँ हूँ जैसा है वही है—'इदमपि' इत्यादि ।

इह पुरुषस्योपदेशयोग्यतया सामर्थ्येन संनिहितत्वाच्चञ्छरीरं संनिष्कृष्टवा-
चिनेदमृशब्देन परामृश्यते । इदमपि मनुष्यशरीरं, यद्वा-सामान्यरूपेण त्रसकाये
चैतन्यस्य छेद्यत्वात् इद=त्रसशरीर, जातिधर्मक-जातिः-जननं, तद्धर्मकं-जन-
नस्वभाव, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि जातिधर्मकं=मनुष्यशरीरवद् वनस्पति-
शरीरमपि जननस्वभावकमस्तीत्यर्थः । तथा इदमपि मनुष्यशरीरं वृद्धिधर्मकं=
वालकौमाराद्यवस्थामाश्रित्य वर्धनस्वभावम्, एतदपि वनस्पतिशरीर अङ्कुरकिसलय-
पत्रस्कन्धशाखाप्रशाखादिना वर्धनशीलम् । इदमपि मनुष्यशरीरं चित्तवत्=चेतना-

‘इदम्’ शब्द का प्रयोग समीपवर्ती वस्तु के लिए किया जाता है । मनुष्य ही
उपदेश का पात्र है और उसका शरीर भी अत्यन्त समीप है अतः मनुष्य के शरीर को
‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट किया गया है । अथवा त्रस जीव के शरीर में चैतन्य को समझना
सुगम है, इस कारण ‘इदम्’ का अर्थ मनुष्यशरीर के वजाय त्रस जीव का शरीर समझ
लेना चाहिए ।

यह मनुष्यशरीर या त्रस जीव का शरीर उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है,
उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी उत्पन्न होने का स्वभाव वाला है । तथा मनुष्य शरीर
वृद्धिशील है—वाल, कुमार आदि अवस्थाओं में बढ़ता जाता है उसी प्रकार वनस्पति—
शरीर भी अकुर, किसलय, पत्र, स्कन्ध, शाखा और प्रशाखा आदि रूप से बढ़ता
जाता है । मनुष्यशरीर चेतनावान् है उसी प्रकार वनस्पति का शरीर भी चेतनावान् है,

‘इदम्’ शब्दનો પ્રયોગ સમીપવર્તી વસ્તુ માટે કરવામા આવે છે મનુષ્યજ
ઉપદેશને પાત્ર છે, અને તેનું શરીર અત્યન્ત સમીપ છે એ કારણથી મનુષ્યના
શરીરને ‘इदम्’ शब्दद्वारा निर्दिष्ट કર્યું છે અથવા ત્રસ જીવના શરીરમા ચૈતન્યને
સમજવું સુગમ છે. એ કારણથી ‘इदम्’નો અર્થ મનુષ્ય શરીરના બદલે ત્રસ જીવનું
શરીર સમજ લેવું જોઈ એ

આ મનુષ્યશરીર અથવા ત્રસજીવનું શરીર ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે, તે
પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ઉત્પન્ન થવાના સ્વભાવવાળું છે તથા મનુષ્યશરીર વૃદ્ધિ-
શીલ છે—બાલકુમાર, આદિ અવસ્થાઓમા વધતું જાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિશરીર
પણ અકુર, કિસલય—કુમળા, પાન, પત્ર, સ્કન્ધ, શાખા અને પ્રશાખા આદિરૂપથી વધે
જાય છે, મનુષ્યશરીર ચેતનાવાન છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ ચેતનાવાન છે.

मुक्तम्, एतदपि=वनस्पतिशरीर चित्तवत्=चेतनावत्, सज्जालुभाभ्यादीनां सकोष विकास-स्वापा-वबोधदक्षणात् । इदमपि=मनुष्यशरीरं इत्यादि छिन्नं सत् म्लापति= मृप्यति, एतदपि=वनस्पतिशरीरमपि पञ्चवक्त्रपुण्यादि छिन्नं सत् म्लापति= मृप्यं भवति । इदमपि आहारकम्=शरीरौषणाद्याहारकरवशील, तद्यथा एतदपि= वनस्पतिशरीरं भूदृष्टाद्याहारमोक्षि न चैतदाहारकत्वमचेतनामां दृष्टम् ।

तथा इदमपि=मनुष्यशरीरम् अनित्यकम्= न सवदाश्रयस्यापि, एतदपि वनस्पतिशरीरम् अनित्यकम् आपुणोऽपिसपचात्, वनस्पतिशरीरस्य हि उत्कृष्ट-मायुरंशवत्सहस्राणि । तथा-इदमपि=मनुष्यशरीरम् अक्षान्वत=प्रतिक्षणमानीषीमर

क्यो किं सम्बाधती धात्री आदि वनस्पतियो में सकोष विकास स्वाप (निद्रा) और भवबोध (बागना) देखा जाता है । हाथ आदि मनुष्यशरीर छेदने पर मुरझा जाता है उसी प्रकार पत्ता फूल, फल आदिकरूप वनस्पतिशरीर भी छेदने पर मुरझा जाता है । यह मनुष्यशरीर रूप और बोधन आदि का आहार करता है और वनस्पति शरीर भी पृथ्वी, अन्न आदि का आहार करता है । आहार करने कि क्रिया अचेतन में नहीं देसी जाती ।

मनुष्यशरीर अनित्य है-सत्र छहरे बासा नदी है, इसी प्रकार वनस्पतिशरीर भी अनित्य है, क्यो कि उसकी व्यापु की सीमा है । वनस्पतिशरीर की उत्पद्य व्यापु वस हमार बर्ष की है ।

मनुष्य शरीर अशशयत है-आबीविमरण प्रतिक्षण होता रहता है और वनस्पति

इमके सम्बाधती-(श्रीसाभयणी), धात्री आदि वनस्पतिज्येमां स देव्यानुं, विकास, निद्रा अने अत्रवुं ज्येमां आने छे

हाथ-आदि मनुष्यशरीर छेदवाधी सुहाध अथ छे ते प्रभवे पाद १, इव इव आदि रूप वनस्पतिशरीर पञ्च छेदवाधी सुहाध अथ छे आ मनुष्यशरीर रूप अने अथ ववेरेने आहार करे छे तेम वनस्पतिशरीर पञ्च पृथ्वी, अन्न आदिने आहार करे छे, आहार करवानी क्रिया अचेतनमां ज्येमां आवती नही.

मनुष्य शरीर अनित्य छे. हमेसां स्थिर स्वेचवाणु नधी ज्ये प्रभवे वनस्पति शरीर पञ्च अनित्य छे इमके-तेनी व्यापुअनी सीमा छे वनस्पतिशरीरनी उन्मुध व्यापु इव हमार वपनी छे.

मनुष्यशरीर आशाशयत छे-आबीविमरण प्रतिक्षण श्नु स्वे छे तेम

પોન મરણાત્, એતદપિ=વનસ્પતિશરીરમ્ અગાશ્વત=પ્રતિક્ષણમરણશીલમ્ । યથા-
 હૃદમપિ=મનુષ્યશરીર ચયાપચયિકમ્=ઇટાનિષ્ટાહારાદિક પ્રાપ્ય વૃદ્ધિહામશીલમ્,
 તથા-એતદપિ=વનસ્પતિશરીર ચયાપચયિકમ્=અનુકૂલ-પ્રતિકૂલજલવાતાદિના
 વૃદ્ધિહાસસ્વભાવમ્ । યથા-હૃદમપિ મનુષ્યશરીરં વિપરિણામધર્મકં=વિવિધપરિણામ-
 શીલમ્, તત્તદવ્યાધિવશાદ્ ડરવૃદ્ધિપાણ્ડુકૃગત્વાદિરૂપં, રસાયનસ્નેહાદ્યુપચાર-
 વશાદ્ વિશિષ્ટરૂપવલોપચયાદિરૂપ વા વિવિધપરિણામં પ્રાપ્નોતિ તથા-એતદપિ=
 વનસ્પતિશરીર વિપરિણામધર્મકં=વ્યાધિવશાત્ પત્રપુષ્પફલાદીનાં વર્ણાદિવ્યન્યા-
 માવદર્શનાત્, વિશિષ્ટદોહદપ્રદાનેન કટાચિત્તેપામુપચયદર્શનાદ વિવિધપરિણામ-
 શીલમ્ । યથા જનનસ્વભાવાદિધર્માણાં સમુદાયઃ સચેતને મનુષ્યશરીરે

શરીર મી અગાશ્વત હૈ-ઉસકા મી પ્રતિક્ષણ મરણ હોતા હૈ । મનુષ્યશરીર ઇટાનિષ્ટ આહાર
 આદિ કો પાકર વઢતા-ઘટતા રહતા હૈ, ડસી પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી અનુકૂલ
 જલ-વાયુ સે વઢતા ઓર પ્રતિકૂલ જલ-વાયુ સે ઘટતા હૈ । જૈસે મનુષ્યશરીર મેં નાના
 પ્રકાર કે પરિણમન હોતે હૈ-વિવિધ વીમારિયોં સે ડર કા વઢના, પાણ્ડુ, કૃગતા આદિ,
 તથા રસાયન ઓર ઘૃત આદિ કે સેવન સે વિશિષ્ટરૂપ ઓર વલ કી વૃદ્ધિ હોતી હૈ,
 ડસી પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી વિવિધ પ્રકાર કે પરિણમનવાલા હૈ-રોગ હોને પર
 વનસ્પતિ કે પત્તે, ફૂલ, ફલ આદિ ઓર હી તરહ કે ડેલ્લે જાતે હૈ, વિશેષ પ્રકાર કા ડોહદ
 ડેને સે કમી-કમી ડન મેં ડપચય મી હોતા હૈ । ઇસ પ્રકાર વનસ્પતિ કા શરીર મી વિવિધ
 પરિણમન વાલા હૈ । જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મોં કા સમૂહ સચેતન મનુષ્ય શરીર મેં યા ત્રસ

વનસ્પતિશરીર પણ અશાશ્વત છે-તેનું પણ પ્રતિક્ષણ મરણ થતું રહે છે મનુષ્ય શરીર
 ઇટાનિષ્ટ આહાર આદિથી વધતુ ઘટતુ રહે છે તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ
 અનુકૂલ જલ-વાયુથી વધે છે અને પ્રતિકૂળ જલવાયુથી ઘટે છે જેમ મનુષ્યશરીરમા
 નાના પ્રકારનુ પરિણમન થાય છે, વિવિધ બિમારીઓથી પેટનુ વધવું, પાડુરોગ,
 કૃશતા (ડુબલાપણું) આદિ, તથા રસાયન અને ઘૃતઆદિના સેવનથી વિશિષ્ટરૂપ
 અને બલવૃદ્ધિ થાય છે, તે પ્રમાણે વનસ્પતિનું શરીર પણ વિવિધ પ્રકારના પરિણમન-
 વાળું છે, રોગ થતાં વનસ્પતિના પાઠડા, ફૂલ, ફલ આદિ જૂદીજ બતના ઢેખાય
 છે, વિશિષ્ટ પ્રકારના ઢોહદ ઢેવાથી કોઈ-કોઈ વખત તેમા ડપચય થાય છે, એ પ્રમાણે
 વનસ્પતિનુ શરીર પણ વિવિધ પરિણમનવાળુ છે જનનસ્વભાવ આદિ ધર્મોંના સમૂહ
 સચેતન મનુષ્યશરીરમા અથવા ત્રસલવના શરીરમા જેવામા આવે છે, તેજ પ્રમાણે

प्रसङ्गरीरे वा बतते, तथा—वनस्पतिशरीरेऽपि, तस्माद् वनस्पतिक्रियाः सचेतन इति निःसंशयं जानीहीति भावः ॥ सू० ८ ॥

एवं वनस्पतिक्रियास्य संचितत्वं विदित्वा घृणित्वाप्राप्तये त्रिकरप्रतिपोगैस्त-
त्समारम्भो कर्तव्य इत्याशयेनाह—'एतत् सत्यं' इत्यादि ।

मूलम्—

एतत् सत्यं समारम्भमात्रस्य इच्छेते आरंभा अपरिष्णाया भवति, एतत्
सत्यं असमारम्भमात्रस्य इच्छेते आरंभा परिष्णाया भवति, त परिष्णाय मेहाशी-क्षेप
स्यं वयस्सहस्रस्य समारम्भेऽज्ञा, ज्येष्णेहि वयस्सहस्रस्य समारम्भेऽज्ञा, ज्येष्णे

शरीर के अंदर में पाया जाता है, उसी प्रकार वनस्पति के शरीर में भी पाया जाता है । अतः
एवं वनस्पतिक्रिया सचेतन है, यह बात निःसंशय समझ लेना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

इस प्रकार वनस्पतिक्रिया की संचितता जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन
करण और तीन योग से वनस्पतिक्रिया का समारंभ त्यागना चाहिए । इस अभिप्राय से कहते
हैं—'एतत् सत्यं' इत्यादि ।

मूलार्थ—वनस्पतिक्रिया में शब्द का आरंभ करने वाले को ये आरंभ ज्ञात
नहीं होते । वनस्पतिक्रिया में शब्द का आरंभ न करने वाले को ये आरंभ ज्ञात होते हैं ।
इन्हें जानकर बुद्धिमान् पुरुष न स्वयं वनस्पतिशब्द का आरंभ करे, न दूसरों से वनस्पति
शब्द का आरंभ करावे और न वनस्पतिशब्द का आरंभ करने वाले दूसरों का अनुमोदन

वनस्पतिना शरीरमां पशु जेवाभां आने छे ज्येष्ठा भाटे वनस्पतिक्रिया सचेतन छे, ज्ये
ष्ठा सचेतनसहित समस्त जेनी जेछेजे. ॥ ८ ॥

ज्ये प्रमाज्जे वनस्पतिक्रियाणी संचितता ज्ञातुनि साधुता प्राप्त करवा भाटे
पशु करव ज्ये पशु शीजशी वनस्पतिक्रिये समारंभ लब्धेने जेछेजे ज्ये
अभिप्रायशी कहे छे:—'एतत् सत्यं' इत्यादि.

मूलार्थ—वनस्पतिक्रियाओं शरीरों को जानकर शब्द का श्रवण करने का आरंभ करने वाले को
नहीं (ज्येष्ठा) वनस्पतिक्रियाओं शरीरों को जानकर शब्द का श्रवण करने का आरंभ करने वाले को
छे तेने ज्ञातुनि बुद्धिमान् पुरुष पशु वनस्पतिशब्द को जानकर शब्द का श्रवण नहीं
कीजनी पासे वनस्पतिना आरंभ करवाया नहीं ज्येष्ठा वनस्पतिशब्द को जानकर
शब्द का श्रवण नहीं करे वनस्पतिशब्द को समारंभ करने वाले को

वणस्सइसत्थं समारभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते वणस्सइसत्थसमारंभा परिण्णाया भवति, से ह्नु मुणी परिण्णायकम्मि-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

छाया-अत्र शस्त्रं समारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्तिः तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं वनस्पतिशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैर्वनस्पतिशस्त्रं समारम्भयेत्, वनस्पतिशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते वनस्पतिशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

टीका-अत्र=अस्मिन् वनस्पतिकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकारं, समारभमाणस्य=व्यापारयतः, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरण-त्रियोगैः आरम्भाः=वनस्पतिकायोपमर्दनरूपाः सावधव्यापाराः अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति । अत्र=अस्मिन्नेव वनस्पतिकाये शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम् असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तजानस्य इत्येते=पूर्वोक्ता आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया परिज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति त प्रकारं दर्शयति-

करे । जो वनस्पतिशस्त्र के समारभ का ज्ञाता है वही मुनि है, वही परिज्ञातकर्मा है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त प्रकार से गज का उपयोग करने वाले को पूर्वोक्त-तीन करण तीन योग से होने वाले वनस्पति की हिंसारूप सावध व्यापार-अज्ञात होते हैं, अर्थात् वह नहीं जानता कि-इन व्यापारों से कर्म का बंध होता है । जो वनस्पतिकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का प्रयोग नहीं करता वह पूर्वोक्त सावध व्यापारों का ज्ञाता होता है । वह ज्ञपरिज्ञा से इन्हें जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है । ज्ञपरिज्ञा के पश्चात् ही प्रत्याख्यानपरिज्ञा किस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं-

छे, तेज्ज मुनि छे, तेज्ज परिज्ञातकर्मा छे अये प्रभाण्णे ह्नु इहु छु ॥ सू० ९ ॥

टीकार्थ-वनस्पतिकायना विषयमा पूर्वोक्त प्रकार्थी शस्त्रेण उपयोग करवावाणाने पूर्वोक्त (आगण कहेला) त्रसु इरसु-त्रसु योग्थी थवावाणी वनस्पतिनी हिंसारूप सावध व्यापार अज्ञात डोय छे, अर्थात् तेने ज्ञपरिज्ञा नथी के आ व्यापारेथी कर्मनेण अ ध थाय छे जे वनस्पतिकायना विषयसु पूर्वोक्त सावध व्यापारेना ज्ञाता डोय छे ते ज्ञपरिज्ञाथी तेने ज्ञे छे अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्याग करी दे छे ज्ञपरिज्ञानी पछीज्ज प्रत्याख्यानपरिज्ञा देवा प्रकारे डोय छे ते अतावे छे-

‘तत् परिज्ञाय’ स्यादि । तत्=वनस्पतिक्रियायारम्भणं, परिज्ञाय=कर्मवचनस्य कारणं
 मन्त्रीस्ववगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविषयनिष्ठाः, नैव स्वयं वनस्पतिज्ञं समारमेत=
 व्यापारयत्, अन्यैर्वा नैव वनस्पतिज्ञं समारम्भयेत्, वनस्पतिज्ञं समारममाणान् न
 समनुमानीयात्=नानुमोदयत् । शेरं सुगमम् ।

यस्यैते वनस्पतिकर्षसमारम्भाः=वनस्पति निमित्तीकृतस्य कर्मकारणीभूताः
 सावयवव्यापाराः परिज्ञाताः=अपरिज्ञाया वन्वकारणत्वेन विविताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञाया
 च परिज्ञाता भवन्ति, स एव परिज्ञातकर्मा=त्रिकरणप्रियोगैः परिवर्तितसङ्कल्लासवय
 व्यापार, मुनिर्मवति । ‘इति प्रथमि=इति=एतत्सर्वम्, प्रथमि=मगवतः समीपे
 यथा भुवै तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रम्याचारविन्तामणिटीकायां प्रथमाध्ययने पञ्चमोऽध्यायः संपूर्णः ॥

वनस्पतिक्रिया के कारण को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला
 बुद्धिमान् पुरुष स्वयं वनस्पतिक्रिया का कारण न कर, दूसरा से कारण न करावे और कारण
 करने वालों का अनुमोदन न कर । शेष सब सुगम है । वनस्पतिक्रिया के कारण के निमित्त
 से होने वाले सावयव व्यापारों को जिसने अपरिज्ञा से कर्मबंध का कारण जान लिया है और
 प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग दिया है, वह तीन कारण तीन योग से समस्त सावयवों का त्यागी
 ही मुनि होता है । सुभर्मा स्वामी अन्व स्वामी से कहते हैं-दे बन्नु ! वैसा मगवान् के समीप
 की मुना है वैसा ही यह सब में कहला हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारविन्तामणि’ टीकाके हिन्दी अनुवाद में
 प्रथम अध्यायनका पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥ १-० ॥

वनस्पतिक्रिया का कारण को कर्मबंध का कारण जानकर हेय-उपादेय का विवेक रखनेवाला
 बुद्धिमान् पुरुष योते वनस्पतिक्रिया के कारण न करे, जीव योसे कारण करानेवाला
 नहीं, जाने कारण करवानेवाले अनुमोदन आशय नहीं, शेष-जहाँ सब सुगम है
 वनस्पतिक्रिया का कारण के निमित्त ही सावयवों का सावयव व्यापारों ने जे अपरिज्ञा की
 कर्मबंध का कारण नहीं ही है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा की तब आख्या है ते तब करण
 तब योत्रही समस्त सावयवों का त्यागी मुनि होता है सुभर्मा स्वामी अन्व स्वामी ने कहे-
 दे बन्नु ! जे मगवान् के समीप में आँसु है; ते तब आ सब हूँ कहूँ ॥ सू० ९ ॥

श्री आचाराङ्गसूत्रकी ‘आचारविन्तामणि’ टीकाका अनुवादी
 अनुवादका प्रथम अध्यायनको पाँचवाँ अध्याय समाप्त ॥१-५॥

॥ अथ पञ्चोद्देशः ॥

अनन्तरपञ्चमोद्देशके वनस्पतिकायस्वरूपं निरूपितम् । अधुना क्रमप्राप्त त्रसकायस्वरूपप्रतिबोधनार्थमयं षष्ठ उद्देशकः प्रस्तूयते । इयं हि शैली भगवद्देशनायाः, यद्-वनस्पतिकायानन्तर त्रसकायप्रतिबोधनम्, सर्वस्मिन्नागमे तथैव भगवद्देशनायाः सत्त्वात् । एतत् समीचीनमपि, मनुष्यगरीरदृष्टान्तोपन्यासेन वनस्पतेः सचेतनत्वं साध्यते, तत्र वनस्पतिकायस्वरूपविज्ञानानन्तरं मनुष्यस्वरूपं जिज्ञासमानस्य शिष्यस्य प्रतिबोधनाय तस्य त्रसकायान्तर्गतत्वेन त्रसकायोद्देशकधनस्यौचित्यात् । त्रसकाय-स्वरूप वक्तुमनाः श्री सुधर्मास्वामी कथयति—‘से वेमि.’ इत्यादि ।

छठाउद्देश

पिछले पाँचवें उद्देश में वनस्पतिकाय का स्वरूप निरूपण किया गया है अब क्रम से प्राप्त त्रसकाय का स्वरूप बतलाने के लिए छठा उद्देश कहते हैं ।

भगवान् के उपदेश की यही शैली है कि वनस्पतिकाय के अनन्तर त्रसकाय का स्वरूप समझाया जाता है । तब आगमों में भगवान् का उपदेश इसी प्रकार है । यह ठीक भी है, क्यों कि मनुष्य के गरीर का दृष्टान्त देकर वनस्पति की सचितता सिद्ध की है तो वनस्पतिकाय के स्वरूप के पश्चात् मनुष्य का स्वरूप जानने की इच्छा रखने वाले शिष्य के प्रतिबोध के लिए त्रसकाय का स्वरूप समझना चाहिए, क्यों कि मनुष्य भी त्रसकाय के अन्तर्गत है । त्रसकाय का स्वरूप कहने की इच्छा रखने वाले श्री सुधर्मा स्वामी अलग सूत्र कहते हैं—‘से वेमि ’ इत्यादि ।

छठे उद्देश—

पाछगना पायभा उद्देशभा वनस्पतिकायना स्वरूपतु निरूपणु करवामा आब्यु छे. दुवें कभयी प्राप्त त्रसकायना स्वरूपने अताववा भाटे छ्छा उद्देशने कडे छे

लगवानना उपदेशनी अेज रोदी छे के—वनस्पतिकायनी पछी त्रसकायतु स्वरूप अमजववामा आवे छे. सर्व आगमोभा लगवाननेा उपदेश आ प्रभाषे छे, अने ते हीध पषु छे, केभडे मनुष्यना शरीरतु दृष्टान्त आपीने वनस्पतिनी सचितता सिद्ध करी छे, तो वनस्पतिकायना स्वरूप पछी मनुष्यस्वरूप जणुवानी इच्छा राअवावाणा शिष्यना प्रतिबोध भाटे त्रसकायतु स्वरूप समजववु जेध अे, कारषुके मनुष्य पषु त्रसकायनी अन्तर्गत छे त्रसकायना स्वरूपने कडेवानी इच्छा राअवावाणा श्री सुधर्मा स्वामी आगणतु सूत्र कडे छे—‘से वेमि ’ इत्यादि.

श्रुत्वा—

से वेमि संतिमे तसा पाप्मा, तंजहा-मंजया, पोयया, जराउया, रसया, संसेयया, संमुच्छिमा, उग्मियया, उपवाया, एस ससारेपि पवुवाइ मंदस्स ववियागमो ॥ सू० १ ॥

छाया—

स द्रवीमि, सन्तीमे व्रसाः प्राणाः, तद्यथा-अग्निनाः, पौतजाः, जरायुजा, रसजा, सस्वेदजा, संमूर्च्छिमा (संमूर्च्छनजाः) उग्मिज्जजा, औपपातिका (उपपातजाः) । एष संसार इति मोक्षयते मन्दस्य अपिजानतः ॥ सू० १ ॥

टीका—

येन भगवद्भवनारविन्दनिर्मलसकलार्पाः सम्यगवधारिता, साऽहं द्रवीमि= यथा भगवन्मुखाञ्जुतं तथा कथयामीत्यर्थः ।

व्रसाः प्राणा इम सन्तीत्यन्वयः । व्रसाः-व्रस्यन्ति-व्रसनामकर्मोद्दिष्टात् तापाऽऽ-
मुपवत्पाच्छायाऽऽदिकं प्रत्यमित्त्वर्पन्तीति व्रसाः=द्वीन्द्रियादिपञ्चेन्द्रियपर्यन्ताः ।

श्रुत्वा—बह मैं कहता हूँ—ये व्रत प्राणी हैं, जैसे—अग्नि, पौतज, जरायुज, रसज संसेदज, संमूर्च्छित उग्मिज और औपपातिक (उपपातज) । मंद एवं मज्जानी के लिए यह संसार बड़ा गया है ॥ सू० १ ॥

टीका—जिसने भगवान् के मुखकमल से निकल हुए समस्त बीजादि स्वरूपा को मही मैत्रि समझ लिया है ऐसा मैं कहता हूँ अर्थात् हे बन्धु ! भगवान् के मुख से ब्रह्मा मैंने सुना है वैसे तुझे कहता हूँ ।

व्रतनामकर्म के उद्भव से ताप आदि से परित होकर छाया वगैरह की ओर जान वाले इन्द्रिय से पञ्चेन्द्रिय तक के जीव व्रत कहलाते हैं । इन में इन्द्रिय जीव के त्पर्यन्त

श्रुत्वा—ते हुं उहुं उ—ये व्रत प्राणी से जेम-अग्नि पौतज जरायुज रसज सस्वेदज संमूर्च्छिम उग्मिज जाने औपपातिक (उपपातज) मंद जाने मज्जानीको भाटे आ संसार उदेवार्पा आये से ॥ सू० १ ॥

टीका—जैसे जन्मान्ना मुज्जमवधी नीजेल्ल समस्त एवादि स्वरूपाना वर्धने इदी रीते समल बीधा से जेये हुं उहुं उ अर्थात् से बन्धु ! जन्मानना मुज्जधी नेवु मे सांमन्नु से तेवु ज तने उहुं उ

व्रसनामकर्मना उदवधी ताप वज्जेथी पीडा यमीने छाया विज्जेथी पासे जन्मान्ना इन्द्रिय, (ने इन्द्रिय) एवधी उधने थंथ इन्द्रियान्ना एवे सुधी सप व्रस

તત્ર દ્વીન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનરૂપે ઢ્વ ઇન્દ્રિયે, ત્રીન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનત્રાણરૂપાણિ ત્રીણીન્દ્રિયાણિ, ચતુરિન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનત્રાણચક્ષુરૂપાણિ ચત્વારોન્દ્રિયાણિ, પચ્ચેન્દ્રિયાણા સ્પર્શનરસનત્રાણચક્ષુઃશ્રોત્રરૂપાણિ પચ્ચેન્દ્રિયાણિ સન્તિ ।

યદ્યપિ—ત્રસ્યન્તિ=અભિસન્ધિપૂર્વકમનભિસન્ધિપૂર્વકં વા ડર્ધ્વમધસ્તિર્યકુ ચલન્તોતિ વ્યુત્પત્તયા દ્વીન્દ્રિયાદયસ્તયાઽગ્નિકાયા વાયુકાયા અપિ ત્રસા ઉચ્ચન્તે । ત્રસાના હિ ઢ્વૌ ભેદૌ મુહ્યતઃ સ્તઃ—ગતિતો લઙ્ઘિતશ્ચ । તત્ર ગતિ =ક્રિયા ચલન, દેશાન્તરપ્રાપ્તિઃ, સ્વભાવતોઽનભિસન્ધિપૂર્વક—તદ્યોગાદગ્નિકાયા વાયુકાયાશ્ચ ત્રસા ભવન્તીતિ ગતિત્રસા ઉચ્ચન્તે । લઙ્ઘિસ્તુ ત્રસનામકર્મોદયે સતિ ભવતિ,

ઔર રસના યે દો ડન્દ્રિયો હોતી હૈં । તીનઈન્દ્રિયવાલોં કે સ્પર્શન, રસના ઔર ત્રાણ, યે તીન ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં । ચતુરિન્દ્રિય જીવોંકે સ્પર્શન, રસના, ત્રાણ ઔર ચક્ષુ, યે ચાર ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં । પચ્ચેન્દ્રિય જીવોં કે સ્પર્શન, રસના ત્રાણ, ચક્ષુ ઔર શ્રોત્રરૂપ પોંચ ડન્દ્રિયોં હોતી હૈં ।

જો જીવ ડરાદાપૂર્વક યા વિના હી ડરાદે કે, ડપર નીચે યા તિરછે ચલતે હૈં વે ત્રસ જીવ હૈં । ડસ વ્યુત્પત્તિ કે અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય ઔર વાયુ મી ત્રસ કહલાતે હૈં । મુહ્યરૂપ સે ત્રસ જીવોં કે દો ભેદ હૈ—(૧) ગતિત્રસ ઔર (૨) લઙ્ઘિત્રસ । ગતિ કહિઁ અથવા ક્રિયા, ચલના અથવા ઁક દેશ સે દૂસરે દેશ મેં પહુંચના કહિઁ । વિના ડરાદે કે યહ ગતિક્રિયા મૌજૂદ હોને કે કારણ અગ્નિકાય ઔર વાયુકાય મી ત્રસ હૈં । ડહેં ગતિત્રસ કહતે હૈં । ત્રસનાકર્મ કા ડદય હોને પર લઙ્ઘિ-

કહેવાય છે દ્વીન્દ્રિય હવોને સ્પર્શન (આમડી) અને રસના (હલ) આ યે ઇન્દ્રિયો હોય છે ત્રીન્દ્રિયોને આમડી, હલ અને નાસિકા ડપ તથા ઇન્દ્રિયો હોય છે ચતુરિન્દ્રિય હવોને આમડી, હલ, નાસિકા અને નેત્ર, આ ચાર ઇન્દ્રિયો હોય છે પચ્ચેન્દ્રિય હવોને આમડી, હલ, નાસિકા, નેત્ર અને શ્રોત્ર—કાન ડપ પાચ ઇન્દ્રિયો હોય છે

ઁ હવ ઇચ્છાપૂર્વક અથવા ઇચ્છા વિના ડપર, નીચે અથવા તિરછા ચાલે છે તે ત્રસ હવ છે આ વ્યુત્પત્તિ અનુસાર દ્વીન્દ્રિય આદિ તથા અગ્નિકાય અને વાયુકાય તથા ત્રસ કહેવાય છે મુહ્યરૂપથી ત્રસ હવોના યે ભેદ છે—(૧) ગતિત્રસ (૨) લઙ્ઘિત્રસ ગતિ કહેા અથવા ક્રિયા કહેા તે એકજ છે ચાલવું અથવા એક દેશથી બીન્દ દેશમા પહોંચવું કહેા વિના ઇચ્છાથી આ ગતિ કરવાની ક્રિયા હાજર હોવાથી અગ્નિકાય અને વાયુકાય તથા ત્રસ છે. તેને ગતિત્રસ કહે છે. ત્રસનામકર્મનો ઉદય હોવાથી લઙ્ઘિત્રસતા

तद्योगात्प्रसन्नविषयकदेशान्तरमाप्तिलक्षणक्रियायुक्तत्वाद् द्वीन्द्रियादय एव लम्बि प्रसा उच्यन्ते । तेजोवायवः किल न प्रसनामकर्मोदयनिर्वाणः, किन्तु स्यावरनाम कर्मोदयनिर्वाणत्वलम्बित स्यावरा एव; तथाप्यत्र द्वीन्द्रियादयो लम्बिप्रसा एव परिगृह्यन्ते, न तु गतिप्रसाः, अग्निजायानां प्रागव चतुर्थोदये प्रतिबोधिउत्पाद्, वायुजायानामप्रे पर्यमाणत्वात् ।

यसु " लम्ब्या तेजोवायु प्रसा, लम्बिस्तच्छक्तिमात्र लम्बिप्रसानामि शक्तिरारो नास्ति, तेजसोऽभिहितत्वाद् वायोऽमिधास्पमानत्वाद्, अतः सामर्थ्यात् गतिप्रसा एवाधिक्रियन्ते " इति कैम्बिदुक्तं, तत् प्रामादिकम्,

प्रसा प्राप्त होती है । इस लम्बि से इरादापूर्वक गतिक्रिया इन्द्रिय आदि में ही पाई जाती है, अत एव उन्हें लम्बिप्रस कहते हैं । तेजस्काय और वायुकाय में प्रसनाम-कर्म का उदय नहीं होता । उन में स्यावरनामकर्म का उदय है, अतः लम्बि की अपेक्षा ये दोनों स्यावर ही हैं । फिर भी यहाँ इन्द्रिय आदि लम्बिप्रस बीजों का प्रहण करना आदिप, गतिप्रस बीजों का नहीं, क्योंकि अग्निजायिक बीजों का चौथे उदय में पहले ही वर्णन किया जा चुका है और वायुकाय का आगे वर्णन किया जायगा ।

किसी न कहा है- 'लम्बि की अपेक्षा तेजस्काय और वायुकाय प्रस हैं । लम्बि सिद्ध शक्ति को ही कहते हैं । यहाँ लम्बिप्रस बीजों का प्रकरण नहीं है, क्या कि अग्निजाय का कवन किया जा चुका है और वायुकाय का कवन आगे किया जायगा अतः सामर्थ्य से गतिप्रस ही यहाँ ग्रहण करने योग्य हैं " । यह कवन प्रमादपूर्ण है;

प्रस उ को लम्बिधी उच्छाप्तवक अति करवानी किवा द्वीन्द्रियादिभ्यश्च ज्येष्ठाभां आये उ को लामाटे तेने लम्बिप्रस कडे उ तेजस्काय अने वायुकायभां प्रसनामकर्मना उदय नधी; तेनाभां स्यावरनामकर्मना उदय उ तेधी लम्बिनी अपेक्षाको को जन्ने स्यावर ए उ इरीने पलु आदि द्वीन्द्रिय आदि लम्बिप्रस लयेतु ए प्रदलु करतु ज्येष्ठां, अतिप्रस लयेतु नदि कारणके अग्निजायिक लयेतु यथा उदयेकभां प्रथम वर्णन करवामा आवी जतु उ अने वायुकायतु आगत उपर वर्णन करवामा आवरी

हेतुको कथं है- लम्बिनी अपेक्षा तेजस्काय अने वायुकाय प्रस उः लम्बि, मात्र शक्तिनेत्र कडे उ आदि लम्बिप्रस लयेतु प्रदलु नधी. कारणके अग्निजायतु विवेचन तो कही देवार्थ आनुं उ अने वायुकायतु विवेचन आगत करवामा आवरी तेधी सामर्थ्यधी अतिप्रसतु ए आदि प्रदलु करतु योऽथ उ " अतः कवन प्रमादपूर्ण उ

लब्धिप्रसानां गतिप्रसत्त्वेनाङ्गीकारात् । गतिप्रसानां लब्धिप्रसत्त्वाभावात्, द्वीन्द्रियादीनां गतिप्रसत्त्वेन शास्त्रेऽनङ्गीकाराच्च ।

प्राणाः=प्राणिनः, इमे=प्रत्यक्षतोऽवगम्याः, यद्वा-वक्ष्यमाणप्रकारकाः सन्ति । ते यथा-(१) अण्डजाः=अण्डाज्जाताः-पक्षिगृहकोकिलादयः, (२) पोतजाः=पोता एव जायन्त इति पोतजाः-हस्तिवल्गुलीचर्मजल्कादयः, (३) जरायुजाः=जरायुर्गर्भवेष्टनचर्म, तत्र जाताः-गोमहिष्यजा, विकमनुष्यादयः, (४) रसजाः=विकृतरसाज्जाताः, (५) संस्वेदजाः=सम्स्वेदाज्जाताः-मत्कुणयूकादयः, (६) समूर्च्छिमाः=समूर्च्छनजाः मक्षिकापिपीलिकाशलभादयः, (७) उद्भिज्जाः=उद्भेदनम्-उद्भित्, तस्माज्जाताः-पतङ्गखञ्जरीटादयः, (८) औपपातिकाः=उपपाते भवाः देवानार-

क्यों कि लब्धिप्रसो को गतिप्रसरूप में अङ्गीकार किया गया है । मगर गतिप्रस लब्धिप्रस नहीं हो सकते । द्वीन्द्रिय आदि में गति का सद्भाव है अतः शास्त्र में ऐसा अङ्गीकार नहीं किया गया ।

प्रस प्राणी इस प्रकार हैं—(१) अण्डज—अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी, गृहकोकिला आदि । (२) पोतज—पोतरूप पैदा होने वाले हाथी, वल्गुली, चर्मजल आदि । (३) जरायुज—गर्भ जिस से लिपटा रहता है वह पतली चमड़ी जरायु कहलाती है, उस से उत्पन्न होने वाले गाय, भैंस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कहलाते हैं । (४) रसज—निकृत रस में पैदा हो जाने वाले, (५) संस्वेदज—पसीने से पैदा होने वाले खटमल, जू आदि । (६) समूर्च्छिम—मक्खी, कीड़ी, गलम आदि । (७) उद्भिज—उद्भेदन से उत्पन्न होने वाले पतंग, खजरीट आदि । (८) औपपातिक—देव और नारकी ।

कारण्ये द्वे लब्धिप्रसोने गतिप्रसना इयमा अङ्गीकार करवामा आण्ये छे, परन्तु गतिप्रस लब्धिप्रस अर्थ शकता नथी द्वीन्द्रिय आदिमा गतिने सद्भाव छे, तेथी शास्त्रमा अये प्रमाञ्छे अङ्गीकार करवामा आण्ये नथी

प्रस प्राणी आ प्रमाञ्छे छे—(१) अण्डज—अंडाथी उत्पन्न थवावाणा पक्षी, गृह-कोकिला (गरोणी) आदि । (२) पोतज—पोतइय पैदा थवावाणा हाथी, वल्गुली, चर्म-जल (जलो) आदि । (३) जरायुज—गर्भ जेनाथी चिंटाअेलु रडे ते पातणी आभडी जरायु कडेवाय छे तेमा उत्पन्न थवावाणा गाय, भेस, बकरी, मनुष्य आदि जरायुज कडेवाय छे । (४) रसज—विकृतरसमा पैदा थवावाणा । (५) संस्वेदज—परसेवाथी पैदा थवावाणा माकड, जू आदि । (६) समूर्च्छिम—मापी, कीड़ी, तीड आदि । (७) उद्भिज—उद्भेदनथी उत्पन्न थवावाणा पतंग, खजरीट आदि । (८) औपपातिक—देव अने नारकी

इह सर्वेषां प्रसनीयानामष्टविधं जन्म प्रतिषोषितमृत्तदेव संसृष्टनगमोपपत्तेषु समावेश्य त्रिविधं जन्मेत्यपि आह्वेऽमिहितम् । सन्तीत्यनेन प्रसन्नामप्यस्तित्वं त्रिकालवर्षीति बोध्यते । मन्दस्य=कुशाक्षरासनायुक्तस्य, अत एव-अभिमानतः= विवाहितविवेकरहितस्य एषः=अष्टादशसमुदायः संसारः प्रोच्यते, अष्टविधप्रसकाये कुशाक्षरासनावतः पुनः पुनरुत्पत्तिरूपं संसरणं भवतीति स एषः संसारो निगद्यत इत्यर्थः ।

अथ प्रसकायस्य सम्यग्ज्ञानार्थं लक्षणाद्यष्टद्वाराणि निरूपणीयानि । तत्र लक्षणा प्रकृषणा-परिमाण-शक्तो-उपमोग-वेदना-द्वाराणि यथाक्रमं प्रवर्ष्यन्ते, अष्टविध-वध-निवृत्ति-द्वाराण्यं पृथिवीकायोदेशे यथाऽमिहितं तथैवामन्तम्यम् ।

यहाँ सभी प्रस नीयों का आठ प्रकार का जन्म बतलवा गया है । इसे संसृष्टन, गर्भ और उपपात में समाविष्ट कर देने से तीन प्रकार का जन्म शक्त में बतलवा है । 'संति' इस पद द्वारा प्रस नीयों का त्रिकालवर्षी अस्तित्व सूचित किया गया है । मन्द अर्थात् मिथ्याशास्त्रों के संस्कार से प्रभावित अत एव हित-अहित के विवेक से शून्य पुरुष के लिए अष्टादश व्यष्टि का समूह रूप संसार कहा गया है । आठ प्रकार के प्रसकाय में मिथ्याशास्त्रों के संस्कार बाधे का पुन पुनः जन्म-मरणरूप संसरण होता है । वही संसरण संसार कहलगा है !

प्रसकाय का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए लक्षण व्यष्टि आठ द्वारों का निरूपण करना चाहिए । उन में से लक्षण प्रकृषणा परिमाण शक्त उपमोग और वेदना द्वार क्रम से कलकते हैं । वध और निवृत्ति द्वार ऐसे पृथ्वीकाय के उद्देश में कहे हैं जैसे ही यहाँ समझ देने चाहिए ।

अर्द्धि सर्वं प्रस लोवेना आठ प्रकारेण च म जन्मान्ये उ तेने संसृष्टन, अथ जने उपपातमां समावेश करी देवासी त्रय प्रकारेण जन्म शास्त्रमां जन्मान्ये उ 'संति' अथ पर द्वारा तत्र लोवेनु त्रिकालवर्षी अस्तित्व सूचित करवामां आन्नु से मर अर्थात् मिथ्याशास्त्रेणा संस्कारेण प्रभावित, जेव द्वित अर्द्धितना विवेकशी शून्य पुरुष माटे अठव आठिना समूह रूप संसार कहेवामां आन्ने उ आठ प्रकारेण प्रसकायमां मिथ्याशास्त्रेणा संस्कारेणाज्जेनु पुनः पुनः जन्म-मरण रूप संसरण कथ उ जेव संसरण ते संसार कहेवाय उ

प्रसकायनु साईं ज्ञान प्राप्त करवा माटे लक्षण व्यष्टि आठ द्वारेणु निरूपण करनु जेध जे तेमांशी लक्षण, प्रकृषण, परिमाण, शक्त उपमोग जने वेदना द्वार कथनी जतावे उ, वध जने निवृत्ति द्वार जेनी शीते पृथ्वीकायना उद्देशमां कथां उ तेनी शीते अर्द्धि समल देवा जेध जे.

लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेषादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति । अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केपाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात् । अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा—(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) संकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रुतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिमुख क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम् । संकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट माद्यम होते हैं । इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है । प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं ।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है । जैसे—(१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) संकोचन (४) प्रसारण (५) रुत (६) भ्रमण (७) त्रसन—त्रास पाना (८) पलायन—भागना और (९) गति—आगति का ज्ञान । प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है । प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना—पीछे लौटना प्रतिक्रमण है । शरीर को सिकोडना संकोचन है । शरीर को फैलाना

लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा અને દ્વેષ આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માદ્યમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ—વાધો નથી પ્રકટ ઉચ્છ્વાસ આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યા છે જેમકે—(૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે. શરીરને સંકોચવું તે સંકોચન છે શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે

रुतं=इन्द्रकरजम्, भ्रान्तम्=इतथेतन्न गमनम्, प्रसनम्=दुःखादुद्वेगनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतेः कुतश्चित्कचित्, गतेषु कुतश्चित् क्वचिदेव च विज्ञानम् । उक्तैवैतवमगन्ता दृश्यैकाधिकसूत्रे -

“क्षेत्रं कसिचि पाणार्ण अभिक्रंतं पदिक्रंतं संकुचियं पसारियं रुयं संत वसियं पलाय्यं आगद्गद्विषिण्याया ” ॥ १ ॥ इति ।

प्रकृपणाद्वारम्—

प्रसकायाधर्तुर्विवाः-श्रीन्द्रिय - श्रीन्द्रिय - प्तुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियमेवात् । इति मयमोहेभके लोकवादिप्रकरणे प्रसानां मेदममेदाः प्रकृपिताः । विस्वरतो

प्रसारण है । मोहना रुत कइलता है । इपर-उपर जाना भ्रमण है । दुःख से उद्वेग पाना प्रसन है । मान्ने को पलायन कहते हैं । एक जगह से दूसरी जगह जाने-जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलता है ।

भगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है —
 “जिन किन्हीं प्राणियों में अभिक्रमण, संकोचन, प्रसारण, रुत, भ्रमण, प्रसन, पलायन और आगतिगतिज्ञ विज्ञान (पाया जाता है वे सब प्रस जीव हैं ।)”

प्रकृपणाद्वार—

प्रसकाम के चार भेद हैं-श्रीन्द्रिय श्रीन्द्रिय, प्तुरिन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय । इसी शब्द के पहले उद्देश के अन्तर लोकवादी प्रकरण में प्रस जीवों के भेद-प्रभेद कहे है । विस्तार से जानने के इच्छुक यही से जान लें । इस सूत्र में भगवान् ने

श्रावणु ते इव कहेवाच छ अन्धी-तन्ही अणु ते अमणु छे । इ-जमी उद्वेग पाणु ते प्रसन छे आणु तेने पलायन कहे छे जेह अणुभी नील अणुको जावना-अणुच विज्ञान ते आगतिगतिविज्ञान कहेवाच छे

जानवाने दशवैकालिक सूत्रमां कहुं छै:-
 “छे कोर्ष प्राणीयोमां अलिक्रमणु, अतिक्रमणु, संकोचन, प्रसारण, रुत अमणु, प्रसन, पलायन अने आगति-गतिनु विज्ञान (जिवामां जावे छे ते सब प्रस एव छे)”

प्रकृपणाद्वार—

प्रस कायना चार भेद छे-श्रीन्द्रिय श्रीन्द्रिय, प्तुरिन्द्रिय अने पञ्चेन्द्रिय । आन शास्त्रना प्रथमना उद्देशमां लोकवादीप्रकरणमां प्रस एवोना भेद-प्रभेद ज्ञानना छे, विस्तारशी

लक्षणद्वारम्—

सुखदुःखेच्छाद्वेपादिकं चेतनलक्षणं त्रसकाये परिस्पष्टमस्ति । अस्य सचेतनत्वे विवादा नास्ति केपाञ्चित् अस्य व्यक्तोच्छ्वासादिलक्षणप्राणयोगात् । अपरञ्च—

त्रसकायस्य लक्षणं शास्त्रे नवविधं प्रज्ञप्तम् यथा—(१) अभिक्रमणम्, (२) प्रतिक्रमणम्, (३) सकोचनम्, (४) प्रसारणम्, (५) रूतम्, (६) भ्रमणम्, (७) त्रसनम्, (८) पलायनम्, (९) आगतिगतिविज्ञानम्, इति ॥

अभिक्रमणं=प्रज्ञापकं प्रत्यभिसुखं क्रमणम्, प्रतिक्रमणं=प्रज्ञापकात् प्रतिकूलं क्रमणम् । सकोचनम्=गात्रसंकोचकरणम्, प्रसारणं=गात्रविततकरणम्,

लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा और द्वेष आदि चेतना के लक्षण त्रसकाय में स्पष्ट मालूम होते हैं । इस की सचेतनता में किसी को भी विवाद नहीं है । प्रकट उच्छ्वास आदि प्राण होने के कारण त्रस जीव प्राणी हैं ।

शास्त्र में त्रसकाय का लक्षण नव प्रकार से बतलाया गया है । जैसे— (१) अभिक्रमण (२) प्रतिक्रमण (३) सकोचन (४) प्रसारण (५) रूत (६) भ्रमण (७) त्रसन—त्रास पाना (८) पलायन—भागना और (९) गति—आगति का ज्ञान । प्रज्ञापक की अपेक्षा से सामने जाना अभिक्रमण है । प्रज्ञापक की अपेक्षा से प्रतिकूल जाना—पीछे लौटना प्रतिक्रमण है । शरीर को सिकोटना संकोचन है । शरीर को फैलाना

लक्षणद्वारम्—

सुख, दुःख, इच्छा અને द्वेष આદિ ચેતનાનું લક્ષણ ત્રસકાયમાં સ્પષ્ટ માલુમ પડે છે, તેની ચેતનતામાં કોઈને પણ વિવાદ-વાદો નથી પ્રગટ ઉત્પન્ન થાય આદિ પ્રાણ હોવાના કારણથી ત્રસ જીવ પ્રાણી છે

શાસ્ત્રમાં ત્રસકાયના લક્ષણો અનેક પ્રકારે બતાવવામાં આવ્યા છે જેમકે— (૧) અભિક્રમણ, (૨) પ્રતિક્રમણ, (૩) સંકોચન, (૪) પ્રસારણ, (૫) રૂત, (૬) ભ્રમણ, (૭) ત્રસન—ત્રાસ પામવો, (૮) પલાયન—ભાગવું અને (૯) ગતિ—આગતિનું જ્ઞાન પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી સામે જવું તે અભિક્રમણ છે પ્રજ્ઞાપકની અપેક્ષાથી પ્રતિકૂલ જવું—પાછા ફરવું તે પ્રતિક્રમણ છે શરીરને સંકોચવું તે સંકોચન છે શરીરને ફેલાવવું તે પ્રસારણ છે

स्तं=शुद्धकरणम्, भ्रान्तम्=श्वभेतश्च गमनम्, प्रसनम्=दुःखादुद्वेजनम्, पलायितम्=पलायनम्, आगतैः कुतश्चित्कचित्, गतश्च कुतश्चित् कश्चिदन च विज्ञानम् ।
 उक्त्यैववृत्तगता दशवैकालिकसूत्रे -

“नेति केसिधि पाषाणं अमिकं पठितकं संकुचिय पसारियं क्यं मंत
 तसियं पकाइयं आगदगविष्णाया” ॥ १ ॥ इति ।

प्ररूपणाद्वारम्—

प्रसक्त्याश्चतुर्विधाः—त्रीन्द्रिय - त्रीन्द्रिय - चतुरिन्द्रिय-पञ्चेन्द्रियमेदात् ।
 इवैव प्रयमोरेशके श्लोकवादिप्रकरणे प्रसक्तानां मेदममेदाः प्ररूपिता । विस्तरतो

प्रसारण है । बोझना रूत कहलता है । इपर-उपर जाना भ्रमण है । दुःख से उद्वेग पाना प्रसन है । मार्ग को पलायन कहते हैं । एक जगह से दूसरी जगह जाने-जाने का विज्ञान आगतिगतिविज्ञान कहलाता है ।

मगवान् ने दशवैकालिक सूत्र में कहा है—

“जिन किन्हीं प्राणियों में अमिकमण, संकोचन, प्रसारण, रूत, भ्रमण प्रसन, पलायन और आगतिगति का विज्ञान (पाया जाता है वे सब प्रस जीव हैं।)”

प्ररूपणाद्वारम्—

प्रसक्त्य के चार भेद हैं—त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय ।
 इसी श्लोक के पहले उद्देश के अन्तर श्लोकवादी प्रकरण में प्रस जीवों के भेद-प्रभेद
 कहे हैं । विस्तर से जानने के इच्छुक नहीं से जान लेने । इस सूत्र में मगवान् ने

बोझण ते इत्तं कहेवाच उ अन्धी-वन्धी जणु ते अभजु उ दुःखधी उद्वेज पाभजु
 ते प्रसन उ मार्गजु तेने पलायन कहे उ लोक जन्मधी जीणु जन्मजे आववा-
 जन्मजु विज्ञान ते आगतिगतिविज्ञान कहेवाच उ

अत्रयाने दशवैकालिक सूत्रमां कर्तुं उः—

“ने केडिं प्राणीजोमां अलिकमण, प्रतिकमण, संकोचन, प्रसारण, रूत अभजु,
 प्रसन, पलायन जने आगति-गतिनु विज्ञान (जेवामा आवे उ ते सब प्रस जीव उ)।”

प्ररूपणाद्वारम्—

प्रस क्त्या चार भेद उ—त्रीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चतुरिन्द्रिय जने पञ्चेन्द्रिय ज्ञान
 शास्त्रना प्रयमना उद्देशमां श्लोकवादीप्रकरणमा प्रसक्त्येनां भेद-प्रभेद ज्ञाना उ, विस्तरधी

જિજ્ઞાસુમિસ્તત ણ્વાવગન્તવ્યાઃ । અસ્મિન્ મુત્રેઽપિ ભગવતા-અઙ્ગજપોતજાદિભેદાઃ
પ્રદર્શિતાસ્તેઽપિ તન્નૈવ સમાચિષ્ટાઃ ॥

પરિમાણદ્વારમ્ —

ક્ષેત્રતઃ સર્વતિત્ત્વરૂપતરામંચ્યેયભાગવર્તિપ્રદેશરાશિપ્રમાણાઃ ત્રસકાયપર્યા-
પ્તકાઃ । ણ્તે ચ વાદસ્તેજસ્કાયપર્યાપ્તકેભ્યોઽસચ્યેયગુણાઃ, ત્રસકાયપર્યાપ્તકેભ્યઃ
સકાયિકાઽપર્યાપ્તકાઃ અમચ્યેયગુણાઃ ।

તથા કાલતઃ પ્રત્યુત્પન્નત્રસકાયિકાઃ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્વમમયરાશિપરિમાણા
જઘન્યપદે, ઉત્કૃષ્ટપ્રદેઽપિ સાગરોપમલક્ષપૃથક્ત્વપરિમાણા ણ્વેતિ । તથા આગમઃ—

અઙ્ગજ ઓર પોતજ આદિ જો મેદ્ર વતલાયે હૈ, યે સવ મી ડન્હી મં અન્તર્ગત હો
જાતે હૈ ।

પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાય કે પર્યાપ્ત જીવ ક્ષેત્ર કી અપેક્ષા સર્વતિત્ત્વ લોકપ્રતર કે અસંહ્યાતર્વે ભાગવર્તી
પ્રદેશો કી રાશિ કે વરાવર હૈ । યે વાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવો સે અસહ્યાતગુણા હૈ ।
પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવો કી અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસ જીવ અસહ્યાતગુણા હૈ । કાલ કી અપેક્ષા
જઘન્યપદ મેં પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસ જીવ ઈક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમય-રાશિ
કે વરાવર હૈ ઓર ઉત્કૃષ્ટ પદ મે મી ઈક લાખ સે નૌ લાખ તક કે સાગરોપમ કી સમયરાશિ
કે વરાવર હી હૈ । આગમ મેં મી કહા હૈ—

જાણવાની ઇચ્છાવાળા ત્યાથી જાણી લે આ સૂત્રમા જાગવાને-અઙ્ગ અને પોતજ
આદિના જે લેહ બતાવ્યા છે, તે સર્વનો તેમા સમાવેશ થઈ જાય છે.

પરિમાણદ્વાર—

ત્રસકાયના પર્યાપ્તજીવ ક્ષેત્રની અપેક્ષા સર્વતિત્ત્વ લોકપ્રતરના અસંખ્યાતમા
જાગવર્તી પ્રદેશોની રાશિના બરાબર છે તે બાદર તેજસ્કાય પર્યાપ્ત જીવોથી અસંખ્યાત
ગણુ છે પર્યાપ્ત ત્રસકાયિક જીવોની અપેક્ષા અપર્યાપ્ત ત્રસજીવ અસંખ્યાત ગણુ છે

કાલની અપેક્ષા જઘન્યપદમા પ્રત્યુત્પન્ન ત્રસજીવ એકલાખ થી નવલાખ સુધીના
સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર છે. અને ઉત્કૃષ્ટ પદમા પણ એક લાખથી નવલાખ
સુધીના સાગરોપમની સમય-રાશિના બરાબર જ છે આગમમા પણ કહ્યું છે -

“पटुपभा तसकाइया केवइकालस्स निस्सला सिया ? गोयमा ! जइमपप
 सामरोपमसपसइस्सपुइचस्स, उकोसतएधि सागरोपमसपसइस्सपुइचस्स” ॥ इति ।

बिरहापेसया प्रसानां निष्क्रमणमुपपातम् अपन्यत एको द्वौ प्रयो
 वा भवन्ति, उत्कृष्टतस्तु प्रतरस्यासंख्ययमागप्रदक्षपरिमाणाः । प्रसपु
 बीजानां नैरन्तर्येणोत्पत्तिनिष्क्रमो वा अपन्यनैकं समयं द्वौ समयौ प्रीन् वा
 समयान् भवति । उत्कृष्टस्त्वावलिकाया असंख्ययमागपरिमित कालं सतत
 मेषोरुत्पत्तिनिष्क्रमो वा भवति । नैरन्तर्येणैकजीवस्यावस्थानं तु अपन्यताऽन्त
 ईह्वं प्रसकाय भवति, तदनु स प्रथिम्यायेकन्द्रियपु समुत्पद्यते । उत्कृष्टतः
 सातिरक सागरोपमसहस्रद्वयं सतत नैरन्तर्येण प्रसकाय तिष्ठति । तत

“पत्युरपन्न प्रसकायिक बीज कितने काल के बराबर हैं ? गौतम ! जपन्य
 पद में एक आत्स से नौ आत्स तक के सागरोपम के बराबर और उत्कृष्ट पद में भी
 इतन ही हैं” ।

बिरह की अपेक्षा प्रस बीजों का निष्क्रमण और उपपात अपन्य एक, दो वा
 तीन हैं और उत्कृष्ट प्रतर क असंख्यातवें भागवर्ती प्रदेशों के बराबर है । प्रसकाय में
 बीजा की निरन्तर उत्पत्ति या प्यवन अपन्य एक समय, दो समय, तीन समयतक है ।
 उत्कृष्ट आवलिका के असंख्यातवें भाग परिमित काउ तक निरन्तर उत्पत्ति और प्यवन
 होता रहता है । निरन्तर एक बीज की स्थिति अपन्य अन्तर्मुहूर्त तक प्रसकाय में
 होती है और उसके बाद वह प्रथीकाय आदि पकेन्द्रिय में उत्पन्न होता है । उत्कृष्ट
 प्रस अधिक दो हजार सागरोपमतक निरन्तर प्रसकाय में उत्पन्न सकता है । तपचात्

“अथु पन्न प्रसकायिक एव केरला कालनी जराजर उ ? गौतम ! जपन्य
 पदमा लोके सापथी नवशाय सुधीना आजरोपमनी जराजर अने उत्कृष्ट पदमा पण
 केरला ए उ”

बिरहनी अपेक्षा प्रस एवेणु निष्क्रमण अने उपपात अपन्य लोके, मे कथय
 त्व उ अने उत्कृष्ट प्रतरना असंख्यात भागवर्ती प्रदेशोनी जराजर उ प्रसकायर्भा
 एवेणी निरन्तर उत्पत्ति अथवा निष्क्रमण (प्यवन) अपन्य लोके समय जे समय अथवा
 त्व समय सुधी उ उत्कृष्ट आवलिकाना असंख्यात भाग परिमित काल सुधी
 निरन्तर उत्पत्ति अने निष्क्रमण (निगर्तु) यत्तु इने उ निरन्तर लोके एवेणी
 स्थिति अपन्य अन्तमुहूर्त सुधी प्रसकायर्भा देव उ अने ते पणी ते प्रथीकाय
 स्थिति लोकेन्द्रियर्भा उत्पन्न वाव उ उत्कृष्ट कार्य अधिक मे हजार सागरोपम सुधी

પૃથિવ્યાદિપૃથ્વદ્યતે । ॥ સૂ. ૧ ॥

ત્રસજીવાના સુખ દુઃખ વા યથા ભવતિ તદાહ—‘ નિજ્ઞાહતા ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

નિજ્ઞાહતા પઢિલેહિતા પત્તયં પરિનિવ્વાણં સવ્વેસિં પાણાણં સવ્વેસિં ભૂયાણં
સવ્વેસિં જીવાણં સવ્વેસિં સત્તાણં અસાય અપરિનિવ્વાણં મહાભયં દુઃખવંતિ વેમિ
॥ સૂ. ૨ ॥

છાયા—

નિઘ્યાય પ્રતિલેખ્ય પ્રત્યેક પરિનિર્વાણં સર્વેષાં પ્રાણાના સર્વેષાં ભૂતાનાં
સર્વેષાં જીવાના સર્વેષાં સત્ત્વાનામ્ અસાતમ્ અપરિનિર્વાણં મહાભય દુઃખમિતિ
વ્રવીમિ ॥ સૂ. ૨ ॥

પ્રકરણસમ્બન્ધાત્ ત્રસજીવસ્વરૂપં પૃથિવ્યાદિસકલજીવસ્વરૂપ વા

પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરો મેં ઉત્પન્ન હોતા હૈ ॥ સૂ. ૧ ॥

ત્રસજીવોં કો સુખ-દુઃખ જિસ પ્રકાર હોતા હૈ સો કહતે હૈં:—‘ નિજ્ઞાહતા.’
ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વિચાર કરકે ઓર અચ્છી તરહ દેશકર કહતા હૂં કિ-સમી
પ્રાણિયોં કા, સમી ભૂતોં કા, સમી જીવોં કા, ઓર સમી સત્વોં કા પરિનિર્વાણ અર્થાત્
સુખ પૃથક્-પૃથક્ હૈ । તથા અસાતારૂપ, અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ મી પૃથક્-
પૃથક્ હૈ । ॥ સૂ. ૨ ॥

ટીકાર્થ—ત્રસ જીવોં કા પ્રકરણ હોને કે કારણ ‘વિચાર કરને’ કા
આશય યહ હૈ કિ ત્રસજીવોં કા સ્વરૂપ, અથવા પૃથ્વીકાય આદિ સમસ્ત જીવોં કા

નિરતર ત્રસકાયમા રહી શકે છે, તે પછી પૃથ્વીકાય આદિ સ્થાવરોમા ઉત્પન્ન થાય
છે. ॥સૂ. ૧॥

ત્રસ જીવોને સુખ-દુઃખ જે પ્રકારે થાય છે, તે કહે છે—‘નિજ્ઞાહતા’ ઇત્યાદિ.

મૂલાર્થ—વિચાર કરીને સારી રીતે જોઇને કહું છું કે-સર્વ પ્રાણીઓ સર્વ-
ભૂતો, સર્વ જીવો અને સર્વ સત્ત્વો પરિનિર્વાણ અર્થાત્ સુખ પૃથક્-પૃથક્-જૂદા-જૂદા
છે, તથા અસાતારૂપ અપરિનિર્વાણરૂપ મહાભયરૂપ દુઃખ પણ જૂદા-જૂદા છે ॥સૂ. ૨॥

ટીકાર્થ—ત્રસજીવો પ્રકરણ હોવાના કારણે ત્રસજીવોત્ સ્વરૂપ અથવા પૃથ્વીકાય

निध्याय=मनसा समालोच्य, प्रतिलेख्य=विमोक्ष्य सम्यग् विज्ञाप्येत्यर्थः, ग्रन्थीयि=
 कथयामि-सर्वेषां प्राणानां=प्राणाः सन्ति येषां ते प्राणाः=अग्निनस्तेषां सर्वेषां
 भूतानाम्=उत्पत्तिशीलानाम्, सर्वेषां बीजानां=कालप्रये जीवनाद् धैतन्यस्वरूपामामि
 त्यर्थः, सर्वेषां सत्त्वानां=सवदाऽस्तित्ववताम् प्रसजीवानाम्, यद्वा-सर्वेषामित्यस्य
 पुनः पुनरुपादानेन स्यात्वा अपि गृह्यते, तेन प्रसत्तां स्थापराणां च बीजानामित्यर्थः।
 परिनिर्वाण=सुखं, परयेकम्=एकैकं पृथक् पृथगस्ति।

अथभ्युत्पत्त्या विमिन्नाद्यबोधकत्वात् प्राणमूठादिप्रवृत्तानामुच्चारण न
 पुनरुक्तिदोषः। 'निम्नाद्या' 'पट्टिलेहिता' इति पदद्वयेन बीजानां पुनः
 पुनरनुसन्धानं प्रतिलेखनं च सूचितम्, तदेव पुनः पुनर्विधेयतया प्रतिबोधनाय

स्वरूप मन से विचार करके तथा सम्यक् प्रकार से जानकर कहता हूँ। सभी प्राणियों का
 सभी मृतों अर्थात् उत्पत्तिशोभ बीजों का सभी बीजों (विकास में बीजित रहने वाला) का
 और सभी सत्त्वों (सकृदा अस्तित्व वाले अथ बीजों) का, अथवा बार-बार सत्येति'
 पदद्वय प्रयोग करने के कारण यह अर्थ केना चाहे कि-सभी प्रस और स्थावर बीजा का
 सुख पृथक्-पृथक् है।

शब्दशास्त्र की दृष्टि से मिल-मिल अर्थ के बोधक प्राण, मृत आदि
 शब्दों का उच्चारण करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं है। अथवा प्राण मृत आदि
 शब्दों को एक ही अर्थ का वाचक मान लिया जाय तो भी पुनरुक्तिरहित नहीं है।
 निम्नाद्या' पट्टिलेहिता' इन दो पदों द्वारा बीजों का पुन पुन विचार एवं
 प्रतिवेक्षण सूचित किया है। उसी को पुनः पुन विधेयत्वं से समान के उ्तिर

आदि समस्त लोकोनु रूप्य भनथी विचार करीने तथा सम्यक् प्रकारे लोकीने
 कर्तुं उ-स्य प्राणीकोनु सपभूतेनु अर्थात् उत्पत्तिशील लोकोनु सप लोको (त्रय
 शोभ लोको स्तेषाणाणां)नु अने सप सत्त्वोः-(सपदा अस्तित्ववागा तस लोको)नु
 अथवा बारबार 'सत्येति' पदने प्रयोग कथना करके जे अर्थ देवे: जे-जे के-
 सर्व तस अने स्थावर लोकोनु सुख पृथक्-पृथक् छे

शब्दशास्त्र की दृष्टि से मिल-मिल अर्थ का बोधक प्राण-मृत आदि शब्दों का उच्चारण
 करने पर भी पुनरुक्ति दोष नहीं आता नही अथवा प्राणमृत आदि शब्दों के अर्थ अथवा
 वाचक भानी दोषों का बोध तो पण पुनरुक्तिरहित नही निम्नाद्या 'पट्टिलेहिता' आ जे
 पदों द्वारा लोकोने पुनः पुन विचार अर्थात् प्रतिवेक्षण सूचित कर्तुं छे. तेने पुनः पुनः

મનેકપર્યાયશબ્દૈસ્તેપામુપાદાનાત્ ।

તથા સર્વેષાં દુઃખ પ્રત્યેકં પૃથક્ પૃથગસ્તિ । કથમ્ભૂતં દુઃખમિત્યાહ—
'અસાત'—મિત્યાદિ । અસાતમ્ અસાતવેદનીયકર્મફલભૂતમ્, તથા—અપરિનિર્વાણમ્=
સર્વથા શરીરમનઃ પીડાકરમ્, તથા—મહાભયમ્=દુઃખાદધિક ભયમન્યન્નાસ્તિ, યતઃ
સર્વેઽપિ પ્રાણિનઃ શારીરાન્માનસાદપિ દુઃખાદુદ્વિજન્તે, તસ્માન્મહાભયસ્વરૂપમિત્યર્થઃ
॥ સૂ. ૨ ॥

एतच्च ब्रवीमीत्याह 'तसन्ति पाणा.' इत्यादि ।

मूलम्—

तसन्ति पाणा पदिसो दिसाम् य । तत्थ पुढो पास आतुरा, परितावंति,
सति पाणा पुढो सिया ॥ सू. ३ ॥

अनेक पर्यायवाची शब्दों का प्रयोग किया गया है ।

इसी प्रकार सब जीवों का दुःख भी पृथक्-पृथक् है । दुःख किस प्रकार का है ?
सो कहते हैं—वह असातावेदनीय कर्म का फल है, शरीर और मन को पूरी तरह पीडा
उत्पन्न करता है और महाभयकर है—दुःख से बढ़कर और कोई भय नहीं है, क्यों
कि सभी प्राणी शारीरिक और मानसिक दुःख से घबराते हैं, अतः वह महाभयकारी
है ॥ सू. २ ॥

और मैं यह कहता हूँ — 'तसन्ति पाणा' इत्यादि ।

मूलार्थ—प्राणी विद्विग्नाओ में और दिशाओ में उद्वेग पाते हैं । अलग-
अलग प्रयोजनों के लोलुप लोग उन्हें सताप पहुँचाते हैं । वे त्रस प्राणी पृथ्वी आदि विभिन्न
आश्रयों पर आश्रित हैं ॥ सू. ३ ॥

વિધેયરૂપથી સમજાવવા માટે અનેક પર્યાયવાચી શબ્દોનો પ્રયોગ કરવામાં આવ્યો છે.

આ પ્રમાણે સર્વજીવોના હુ ખ પશુ જૂદા-જૂદા છે હુ ખ કયા પ્રકારના છે ?
તે કહે છે—તે આ અસાતાવેદનીય કર્મનું ફળ છે, શરીર અને મનને પૂરી રીતે પીડા
ઉત્પન્ન કરે છે અને મહા ભયકર છે હુ ખથી વધારે કોઈ પશુ ભય નથી. કારણકે સર્વ
પ્રાણી-શારીરિક અને માનસિક હુ ખથી ગભરાય છે તેથી તે મહાભયકારી છે ॥સૂ. ૨॥

અને હુ એ પશુ કહુ છુ — 'તસન્તિ પાણા' ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—પ્રાણી વિદ્વિશાઓમાં અને દિશાઓમાં ઉદ્વેગ પામે છે અલગ-અલગ
પ્રયોજનોથી લોલુપ લોક તેને સતાપ પહોંચાડે છે તે ત્રસ પ્રાણી પૃથ્વી આદિ વિભિન્ન
આશ્રયો પર આશ્રિત છે ॥સૂ. ૩॥

छाया—

प्रस्यन्ति प्राणाः प्रदिशः दिक्षासु च । तत्र तत्र पृथक् पश्य, आतुराः परितापयन्ति, सन्ति प्राणाः पृथक् भिताः ॥ सू० ३ ॥

टीका—

प्राणा=प्राणिनः प्रकरप्रसम्भवात् प्रसञ्जीवाः प्रदिशा=प्रगता दिक् प्रदिक् विदिगित्यर्थः, सतः प्रदिशः, तथा-दिक्षासु प्राण्याविदिक्षु च समागन्तुक्येभ्यो दुस्त्रेभ्यः, प्रस्यन्ति=बिभ्र्यति । सर्वदिम्बिदिक्षु प्रसाः सन्ति, ते च सर्वदिम्बिदिग्यः समागन्तुक्येभ्यो दुःस्त्रेभ्यस्त्वस्यन्तीत्यर्थः ।

इतस्तेषां दुःस्त्रसंभवः ? इति जिज्ञासायामाह 'तत्र तत्रे' स्यादि । तत्र तत्र=तेषु-तेषु, पृथक्=विभिन्नेषु प्रयोगेषु, आतुराः=सर्वाभ्रममांसादिगुण्णवः प्रसान् परितापयन्ति=परिपीडयन्ति । विषिषवेदनोत्पादनेन प्राणव्यपरोपपेन च सर्वथा दुस्त्रं बनयन्तीत्यर्थः । कीदृशास्ते प्रसाः, यानातुराः परितापयन्ति ? इति जिज्ञासाया-

टीकार्थ—प्रस का प्रकरण होने से प्राण' शब्द का अर्थ यहाँ प्रसजीव समझना चाहिए । प्रस प्राणी विदिशाओं में जागृत हुए दुःस्त्रों से प्रस हैं । तात्पर्य यह है कि—सभी विदिशाओं में और सभी दिशाओं में प्रसजीव विद्यमान हैं और सभी विदिशाओं और दिशाओं से जाने बाड़े दुःस्त्रा से वे पीड़ित होते हैं ।

उन्हें दुःस्त्र क्यों होता है ? इसका उत्तर यह है—विभिन्न प्रयोगों से आतुर लोग सर्वाभ्रम सर्वा (शरीर), अम, मांस, आदि के छोड़कर पृथक् प्रस जीवों को पीड़ा पहुँचाते हैं । उन्हें मींसि—मींसि की वेदना उत्पन्न करके उनके प्राणों का व्यपरोपण करते हैं और सब प्रकार से दुःस्त्र उत्पन्न करते हैं । वे प्रसजीव पृथिवी आदि के

टीकार्थ—प्रसनु प्रकरण कोवाची प्रत्य शब्दने अथ प्रसलन समझने के लिये प्रस प्राणी विदिशाओंमें तथा दिशाओंमें जागृत हुए दुःस्त्रेभी प्रस प्राणि से तात्पर्य के से है—इव' विदिशाओंमें जाने सर्व दिशाओंमें प्रस लन दिग्भान से जाने सब विदिशाओं तथा दिशाओंमें जागृतवाणा दुःस्त्रेभी ते पीडा पदमे से

तेने दुःस्त्र था भाटे बाध से तेने उत्तर के से है—अथ-अथ प्रयोगनेभी आतुर लोक अथोत् अर्थ (शरीर), अम मांस वनेरेना आतुर पुरुष प्रस लनेने पीडा पडोवाटे से, तेने अग्नी-अग्नी अतनी वेदना उत्पन्न करे से ते प्रस लन पृथ्वी आदिना अथये
म भा.-८३

माह—' सन्ति' इत्यादि । श्रिताः=पृथिव्यादीन् समाश्रित्यावस्थिताः, पृथक्=विभिन्नाः द्वीन्द्रियादयः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति ।

यद्यपि सर्वदिग्विदिग्भ्य आगामिनो दुःखाद् विभ्यन्तस्त्रसजीवाः स्वात्परक्षार्थं पृथिव्यादीन् समाश्रित्व वर्तन्ते तथापि मासचर्मादिलुब्धा आतुरास्तान् बन्धनताडनादिना शावकाद्यपहारेण प्राणाद्यपहारेण च परिपीडयन्ति, ततः संसारं प्राप्नुवन्ति । तस्मादेतत् परिज्ञाय सकलसावद्यव्यापारपरिहारेण संयमानुष्ठाने प्रवर्तितव्यमिति भावः ॥ सू० ३ ॥

अथ सर्वथा त्रसकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगरान्, तथा त्रसकाय-समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—' लज्जमाणा ' इत्यादि ।

सहारे अलग-अलग रहे हुए हैं ।

यद्यपि सब दिशाओं और विदिगाओं से आनेवाले दु खों से डरने वाले त्रस जीव अपनी रक्षा के लिए पृथ्वी आदि के सहारे टिके रहते हैं फिर भी मांस और चर्म आदि के लोभी लोग उन्हें बधन एव ताडन द्वारा, उनके बच्चोंका अपहरण करके तथा उनके प्राणों का हनन करके उन्हें पीडा पहुँचाते हैं और इस कारण वे हिंसक, ससार को प्राप्त होते हैं । आशय यह है कि—यह सब जानकर सम्पूर्ण सावध व्यापार का त्याग करके सयम की साधना में प्रवृत्त होना चाहिए ॥ सू० ३ ॥

अब पूर्णरूप से त्रसकाय के आरभ का त्याग करने वाले अनगरों का तथा त्रसकाय के आरभ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों का विवेचन करके समझाते हुए कहते हैं— ' लज्जमाणा ' इत्यादि ।

अलग-अलग रहेंगे छे

जे के सर्व दिशाओं अने विदिशाओंथी आवनारा दु जोथी उरवावाणा त्रमलव पोतानी रक्षा भाटे पृथ्वी आदिना आश्रये टकी रहे छे क्री पणु मास अने आभडा आदिना बोली बोड तेने अ धन अे प्रभाणु ताडनद्वारा, तेना अन्ध्याओंनु अपहरण करीने (चोरी अधने) तथा तेना प्राणुनु हनन-नाश करीने तेने पीडा पडोआडे छे अने आ कारणथी ते हिंसक-स सारने प्राप्त थाय छे आशय अे छे के-अे सर्व नणु करीने स पूर्ण सावध व्यापारने त्याग करीने सयमनी साधनामा प्रवृत्त थनु न्नेधअे ॥३॥

इवे पूर्णरूपथी त्रसकायनां आरभने त्याग करवावाणा अणुगारोनु तथा त्रसकायना आरभमा प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिओंनु विवेचन करीने समभवता थका कडे छे—' लज्जमाणा ' इत्यादि

मूलम्—

स्मृतमाणा पुढो पास, अणगारा मोक्षि एगे पश्यमाणा, अमिषं, विरूपरूपेहि सत्येहि तसकायसमारम्भेण, तसकायसत्य समारम्भमाणा अण्ये अणेगरूपे पापे विहिंसति ॥ सू० ४ ॥

अथ—

स्मृतमाना पृथक् पश्य, अणगाराः स्मः, इति एके प्रसक्तमानाः, यदिमं विरूपरूपै श्रुतैः प्रसक्त्यायसमारम्भेण, प्रसक्त्यायसत्य समारम्भमाणा अन्यान् अणकरूपान् मायान् विहिंसन्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

स्मृतमानाः=परमकरूपयाऽऽर्द्रहृदयतया प्रसक्त्यायसमारम्भे पराङ्मुखाः प्रसक्त्यायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागारा इत्यर्थः । पृथक्=विभिन्नाः, कश्चित्-प्रत्ययज्ञानिनोऽवचिनः पर्ययकेचलिः, केचित्-परोक्षज्ञानिना भाषितात्मान्, सन्तीति पश्य । यद्वा-पृथक्=द्रव्यलिङ्गिन्यः पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे प्रस-

मूलार्थ—प्रसक्त्या के भारम में संकोच करने वाले (अनगारा को) अस्मत् समको । 'इम अनगार हैं' ऐसा कहने वाले कोर्ष-कोर्ष (द्रव्यलिङ्गी) नाना प्रकार के शब्दा का प्रयोग करते हुए और भी अनेक प्रकार के प्राप्तिवा की हिंसा करते हैं उनको अस्मत् देखो ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणा से अस्मत् इत्य अस्मि है ऐसे अनगार प्रसक्त्या के भारम से सक्ता विमुक्त रहते हैं । ये अनगार अस्मत्-अस्मत् हैं । कोर्ष अवधिज्ञानी, कोर्ष मन-पर्ययज्ञानी और कोर्ष केवदज्ञानी हैं । कोर्ष-कोर्ष परोक्षज्ञानी भाषितात्मा हैं

मूलार्थ—प्रसक्त्याना आरभमां सकोच करवावण्या अणुभाराने अस्मत्-अस्मत्-समको, अग्नि अणुभार छिन्ने' के अभावे कहेवावण्या कोर्ष-कोर्ष इत्यलिङ्गी, नाना प्रकारां शब्दाशी प्रसक्त्याने आरभ करीने, प्रसक्त्यानां सन्धेने प्रयोग करता यद्वा पीथ पद्य अनेक प्रकारा प्राप्तिवाणी हिंसा करे छ तेने अस्मत् अस्मत् ॥ सू० ४ ॥

टीकार्थ—परम करुणाशी अस्मत् इत्य अस्मि से अग्नि अणुभार प्रसक्त्याना आरभमां सक्ता विमुक्त रहे छ-अस्मत् रहे छ ते अणुभार अस्मत्-अस्मत् छे । कोर्ष अवधिज्ञानी, कोर्ष मन-पर्ययज्ञानी, अने कोर्ष केवदज्ञानी छे कोर्ष-कोर्ष परोक्षज्ञानी

कायसमारम्भकरणे भीतास्त्रस्ता उद्विग्नास्त्रिकरणत्रियोगैस्त्रमकायसमारम्भपरित्यागिनो विद्यन्ते, इति विलोकयेत्यर्थः ।

एके पुनरन्ते तु 'वयमनगाराः स्मः' इति साभिमान प्रवदमानाः 'वयमेव त्रसकायरक्षणपरा महाव्रतधारिणः' इति प्रलपन्तो द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान् पृथक् पश्य ।

इमे खल्वनगाराभिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद्; विरूपरूपै=विभिन्नस्वरूपैः शस्त्रैः, शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद्

इन्हें देखो । अथवा इन्हें द्रव्यलिङ्गियों से अलग समझना चाहिए । ये त्रसकाय का आरम्भ करते हुए डरते हैं, त्रस्त होते हैं, उद्विग्न होते हैं—तीन करण, तीन योग से त्रसकाय के आरम्भ के त्यागी हैं, यह देखो ।

और कोई-कोई 'हम अनगार हैं' इस प्रकार अभिमानपूर्वक कहते हुए तथा 'हम ही त्रसकाय के रक्षक और महाव्रतधारी हैं' इस तरह प्रलाप करते हुए कई द्रव्यलिङ्गी हैं, उन्हें अनगारों से अलग समझो ।

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्त नहीं होते और न गृहस्थ के किसी काम का त्याग करते हैं । यह बात आगे बतलाते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

द्रव्य और भाव के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन

भावितात्मा छे आने लुञ्जो. अथवा अने द्रव्यलिङ्गीओथी अलग समञ्जा लोछञ्जे ले त्रसकायनो आरम्भ करता उरे छे, त्रस्त थाय छे, उद्विग्न थाय छे—त्रष्टु करणु, त्रष्टु योगथी त्रसकायना आरम्भना त्यागी छे अने लुञ्जो.

अने कोछ-कोछ 'अमे अष्टुगार छीअे' अने प्रभाञ्जे अभिमाङ्कपूर्वक उछेता थका तथा 'अमेञ्ज त्रसकायना रक्षक अने महाव्रतधारी छीअे' अने प्रभाञ्जे प्रलाप-अङ्कवाढ करनारा केटलाक द्रव्यलिङ्गी छे तेने अष्टुगारोथी लूढा समञ्जे.

अष्टुगार होवानु अभिमान करवावाणा अने द्रव्यलिङ्गी अष्टुगारना गुञ्जेभा लुञ्जपष्टु प्रवृत्त नथी अने गृहस्थना कोछ पष्टु कामनो तेओअे त्याग कथी नथी ते वात आगण अतावे छे—'यदिमम्' इत्यादि

द्रव्य अने भावना लोहथी शस्त्र अने प्रकारना छे द्रव्यशस्त्रना त्रष्टु लोह छे स्वकाय,

द्विविधम्, तत्र-द्रव्यसख-स्वकाय-परकायो-मयकायमेदात् द्विविधम् । तत्रस्वकाय-सखेप्रसक्तयस्य प्रसक्तायः, यथा-मृगादीनां व्यापकुम्भुरादयः, मनुष्यादीनां मनुष्यादयः । परकायसखम्-पापाणजलापिन्मगुठस्वङ्गतोमरपुरिष्ठादयः । उभयकायसखम्-सगुठस्वङ्गादिवारिषो मनुष्यादयः । भावसख तु प्रसक्तार्थं प्रति मनोवाक्कायानां दुष्प्रणिधानम् । प्रसक्तयसमारम्भेण, प्रसक्तः=प्रसक्तधीनः कायः=शरीरं यस्य स प्रसक्तयस्य समारम्भः=वीडाकरं सावधस्यापारस्तन, इमं=प्रसक्तार्थं विहितन्ति ।

प्रसक्तयसिंहायां प्रवृत्ताः रक्तु पद्मीपनिकायस्य लोके सर्वमेव विहितन्तीत्याह-‘प्रसक्तयसखम्’ इत्यादि । प्रसक्तयसखम्=प्रसक्तधीनोपमर्दकं एतत् पूर्वोक्तप्रकारं, समारम्भमाणाः=प्रसक्तार्थं प्रति प्रयुक्तजाना अन्यान्-प्रसक्तयसिन्नान्

मद हैं-स्वकाय परकाय, और उभयकाय । प्रसक्तय स प्रसक्तय स्वकाय-प्र हैं जैसे मृग आदि के छिप व्याप कुत्ता आदि, मनुष्य के छिप मनुष्य आदि । परकाय-प्र जैसे पत्तल बस अग्नि, छकड़ी, तलवार तामर, शरी आदि । उभयकाय-प्र जैसे छात्रो, तडवार आदि धारण करने वाला मनुष्य आदि । प्रसक्तय के प्रति मन बचन, और कायका अप्रशस्त व्यापार होना भावसख है । इन नान्य प्रकार के शक्तों से प्रसक्तय का समारंभ करके मोग प्रसक्तय को पीडा पहुँचाते हैं ।

प्रसक्तय को हिंसा में प्रवृत्ति करने वाले एक प्रकार के नीचनिष्ठयस्य सम्पूर्ण एक ही हिंसा करते हैं, यह बात कहते हैं-प्रसक्तय में प्रसक्तय की हिंसा करने वाले का जो प्रयोग करते हैं वे प्रसक्तय के अतिरिक्त अन्य प्रकार के पृथ्वीकाय आदि

परकाय अने उभयकाय, प्रसक्तयनु प्रसक्तय ते स्वकायसख छ नेम भूम आदिने भागे वाध-कुत्तरा आदि, मनुष्यने भागे मनुष्य आदि परकायसख, नेमके पथर लक, अग्नि, लाकड़ी तलवार, बाहुं छरी आदि । उभयकायसख, नेमके-ताकड़ी तलवार आदि धारण करवायगा मनुष्य आदि । प्रसक्तयना प्रति मन, बचन अने भाषानो अप्रशस्त व्यापार यवो ते भाषसख छ ते नान्य प्रकारनां सम्बन्धी प्रसक्तयना समारंभ करीने लोके प्रसक्तयने पीडा पहुँचाते छे

प्रसक्तयनी हिंसामा प्रवृत्ति करवायगा छ प्रशस्त्य अधिनिष्ठास्य सम्पूर्ण लोकांनी दिशा करे छ जे बात कहे छे-प्रसक्तयमा प्रसक्तयनी दिशा करवायगा-सखने । जे प्रयोग करे छे, ते प्रसक्तयधी लूटा अनेक प्रशस्त्य पृथ्वीकाय आदि वाय रक्ष-पर

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, विहिंसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च । दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगराः स्मः ” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षट्जीवनिकाय-समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीना खण्डश करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा—वहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते है ।

संसार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी है । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारम्भ करके त्रस और स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते हैं । दण्डी भी—

‘हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगर हैं’ ऐसा कहने वाले शूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षट्जीवनिकाय का समारम्भ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में, पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता है । बहुत—से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

પ્રાણીઓની પણ હિંસા કરે છે

સંસારમાં ઘણા પ્રકારના દ્રવ્યલિંગી છે એમાંથી શાક્ય આદિ કન્દ, મૂળ, પત્ર, પુષ્પ, ફલ આદિ ભોગવવા માટે—ઉપયોગ કરવા માટે, તેના પર રહેલા ત્રસ જીવોનો સમારભ કરીને અને પૃથ્વી આદિ સ્થાવર જીવોનો સમારભ કરીને ત્રસ અને સ્થાવર જીવોનો ઘાત કરે છે કરાવે છે, અને ઘાત કરવાવાળાને અનુમોદન આપે છે ઠડી પણ “અમે પંચમહાવ્રતધારી, જિનાજ્ઞાના આરાધક અણુગાર છીએ.” એ પ્રમાણે કહેવાવાળા જીઠા સાધુ સાવધનો ઉપદેશ આપે છે અને શાસ્ત્રમાં નિષિદ્ધ ષટ્જીવનિકાયનો સમારભ કરાવે છે

પ્રતિમા, મંદિર વગેરેનું નિર્માણ કરવા માટે ખાડા ખોદવા, પત્થરોના ટુકડા કરાવવા, તેને ઉપરથી પછાડવામાં મનુષ્ય આદિનો ઘાત કરાવે છે ઘણાજ વૃક્ષોને કાપવાથી વૃક્ષોના

तदाभितान् अष्टमहावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविपक्षिफलेन्द्रि
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरणे पुष्पपत्रफलादित्रोटनेऽपि च पश्वीवनि
कापान् पातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुपर्मा स्वामी जम्बूस्वामिन कथयति—‘तत्त्व म्स्तु’ इत्यादि ।

सूत्रम्—

तस्य स्तु भगवत्या परिष्ठा पवेष्ट्या, इमस्स पेन जीवियस्स परिक्खण-
मासण-पूयणाए जाइमरम्मोयणाए दुारक्खपडिघायहेठं से सयमेव तसकायसत्थं समारं
म्ह, अण्णेहिं वा तसकायसत्थं समारंमावेइ, अण्णे वा तसकायसत्थं समारंममाये
समणुनायइ, सं से अहियाए, सं से अबोहीए ॥ सू० ५ ॥

श्रीटी पतंग आदि बहुत प्रकार के विकलेन्द्रिय जीवों का घात कराते हैं । प्रतिमापूजन के
लिए पूजाका बगीचा बनाने में फूल, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी पतंग के जीवा
को घात कराते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुपर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तस्य स्तु-’ इत्यादि ।

मूत्रार्थ—प्रसक्तम के आरंभ के विषय में भगवान्ने उपदेश दिया है । इसी
जीवन के कन्दम मानन, और पूजन के स्थि, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिय और
दुःख का विनाश करने के लिय वह स्वयं प्रसक्तम के दात्र का समारंभ करता है
पूजा द्वारा प्रसक्तम का समारंभ करता है और प्रसक्तम का समारंभ करन बाक अन्य
जीवों का अनुमोदन करता है । यह उसके अहित के लिय है, उसही अंगोपि के
लिय है ॥ सू० ५ ॥

आश्रये रवेणो अदण्ण एवेणो पञ्चेन्द्रिय जम्बाज्जेणो धान करावे छे श्रीटी
पतंग आदि मन्त्राण प्रकारना विकलेन्द्रिय एवेणो घात करावे छे प्रतिमापूजन भाटे
श्रीटीना अजीवा जनाववाभां इत्त पत्ता (पांइटा) अने इण्ण आदि तोडववा पण
प ठावना एवेणो घात करे छे ॥ ४ ॥

इवे सुपर्मा स्वामी जम्बू स्वामीने कहे छे— तस्य म्स्तु- ईत्यादि

मूत्रार्थ—प्रसक्तमना आरंभना विषयमां जमवाने उपदेश आश्रये छे आ
एवना वदन मान, अने पूजनने भाटे तथा जन्म-मरणकी छूटवा भाटे अने
इण्णने नाश करवा भाटे ते पीते प्रसक्तमना शरने अभाएल करे छे जीव वासे
प्रसक्तमने शरल करावे छे अने प्रसक्तमने अभाएल करवावाण्ण अन्य टोडने
अनुमोदन आपे छे ते जेमना अहित भाटे छे जेमनी अविधि भाटे छे ॥ सू० ५ ॥

अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् पञ्चस्थावरान्, प्राणान्=प्राणिनः, त्रिहिसन्ति ।

इह बहुविधा द्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते । तत्र शाक्यादयः कन्दमूलपत्र-
पुष्पफलादि भोक्तुं तदाश्रितत्रसजीवसमारम्भेण पृथिव्यादिस्थावरसमारम्भेण च
त्रसजीवान्, पृथिव्यादीन् स्थावरांश्च ध्नन्ति घातयन्ति हिंसतोऽनुमोदयन्ति च ।
दण्डिनोऽपि—

“ वयं पञ्चमहाव्रतधारिणो जिनाज्ञाराधका अनगराः स्मः ” इत्यादि
प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावद्यमुपदिशन्ति शास्त्रप्रतिषिद्धमपि षड्जीवनिकाय-
समारम्भं कारयन्ति । प्रतिमामन्दिरादिनिर्माणार्थं गर्तकरणे, पापाणादीनां
खण्डश करणे, तेषामूर्ध्वतो निपतने च मनुष्यादीन् तथा-बहुतरवृक्षच्छेदने

पाँच स्थावर प्राणियों की भी हिंसा करते हैं ।

ससार में बहुत प्रकार के द्रव्यलिङ्गी हैं । उन में से शाक्य आदि कन्द, मूल,
पत्र, पुष्प, फल आदि भोगने के लिए उन पर रहे हुए त्रसजीवों का समारभ करके त्रस और
स्थावर जीवों की घात करते हैं, कराते हैं और घात करने वाले की अनुमोदना करते
हैं । दण्डी भी—

‘हम पंचमहाव्रतधारी, जिनाज्ञा के आराधक अनगर हैं’ ऐसा
कहने वाले झूठे साधु सावद्य का उपदेश देते हैं और शास्त्र में निषिद्ध षड्जीवनिकाय का
समारभ कराते हैं । प्रतिमा, मन्दिर, आदि का निर्माण करने के लिए—खड्डे खोदने में,
पत्थरों के टुकड़े करने में, उन्हें ऊपर से पटकने में मनुष्य आदि का घात कराता हैं ।
बहुत—से वृक्षों को छेदने में वृक्षाश्रित अण्डजों के पचेन्द्रिय बच्चों का घात कराते हैं ।

प्राणीय्यानी पशु हिंसा करे छे

स सारभा धर्षा प्रकारना द्रव्यलिङ्गी छे ज्येभाथी शाक्य आदि कन्द, मूल, पत्र,
पुष्प, फल आदि लोगववा भाटे—उपयोग करवा भाटे, तेना पर रडेला त्रस जिवेना
समारभ करीने अने पृथ्वी आदि स्थावर जिवेना समारभ करीने त्रस अने
स्थावर जिवेना घात करे छे करावे छे, अने घात करवावाणाने अनुमोदन आपे
छे दडी पशु “अमे पञ्चमहाव्रतधारी, जिनाज्ञाना आराधक अबुगार छीजे.” ज्ये
प्रभाषे कडेवावाणा ज्युठा साधु सावधने उपदेश आपे छे अने शास्त्रमा निषिद्ध
षड्जीवनिकायने समारभ करावे छे

प्रतिमा, मन्दिर वगैरेनु निर्माण करवा भाटे जाडा जोदवा, पत्थराना टुकडा कराववा,
तेने उपरथी पछाडवामा मनुष्य आदिने घात करावे छे धर्षा वृक्षाने कापवाथी वृक्षाना

तदाभितान् अष्टमशावकादीन्, पञ्चेन्द्रियान् पिपीलिकापतङ्गादिबहुविधपिकेन्द्रेन्द्रि
यांश्च, प्रतिमापूजनार्थं पुष्पवाटिकाकरये पुष्पप्रफलादित्रोटनेऽपि च पशुजीवनि
कायान् घातयन्ति ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी बभ्रुस्वामिम् कथयति—‘तस्य सखु’ इत्यादि ।

मूलम्—

तस्य सखु मगत्वया परिष्णा पशेइया, इमस्त खेव जीवियस्त परिषंदन-
मागय—पूयमाण जाइमरणमोयभाए दुःखपडिपायहेठं से सयमेव तसकायसत्य समारं
मइ, अण्णेहिं वा तसकायसत्यं समारंभावेइ, अण्णे वा तसकायसत्य समारंममाणे
समणुआणइ, तं से अरियाए, तं से अबोदीए ॥ सू० ५ ॥

कींसी पतंग आदि बहुत प्रकार के विक्रमेन्द्रिय जीवों का घात करते हैं । प्रतिमापूजन के
लिए फूलोंका बगीचा बनाने में, पुष्प, पत्ता और फल आदि तोड़ने में भी पदकाय के जीवों
का घात करते हैं ॥ सू० ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी बभ्रु स्वामी से कहते हैं—‘तस्य सखु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—प्रसक्त्याय के भारंम के विषय में मगत्वान्ने उपदेश दिया है । इसी
जीवन के बन्धन, मानन, और पूजन के लिए, तथा जन्म-मरण से छूटने के लिए और
दुःख का विनाश करने के लिए वह स्वयं प्रसक्त्याय के शब्द का समारंम करता है,
इसरी द्वारा प्रसक्त्याय का समारंम करता है और प्रसक्त्याय का समारंम करम बाळ अन्य
जीवों का जन्मोदग करता है । यह उसके बहित के लिए है, उसकी अंधोपि के
लिए है ॥ सू० ५ ॥

आशये श्लेष्वा अहंज लोवोना पञ्चेन्द्रिय लब्धाज्जोना घात करावे छे कींसी
पतंग आदि बहूअ प्रकारना विकलेन्द्रिय लोवोना घात करावे छे प्रतिमापूजन भाटे
इतोना लजीया लनापवभां इह पत्तां (पांडस) अने इण आदि तोडवभां पण
पदकायना लोवोना घात करे छे ॥ ४ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी बभ्रु स्वामीने कहे छे— तस्य सखु. इत्यादि.

मूलार्थ—प्रसक्त्यायना आरभना विषयभां लजवाने उपदेश आशये छे आ
लपनना वडन मान, अने पूजनने भाटे तथा जन्म-मरणशी छूटवा भाटे अने
दुःखने नाश करवा भाटे ते पीते प्रसक्त्यायना शब्दने समारंम करे छे जीव पासे
प्रसक्त्यायने आरंभ करावे छे अने प्रसक्त्यायने समारंम करवावाण्य अन्य तोडने
जन्मोदगना अपि छे ते जेअना बहित भाटे छे जेअनी अंधोपि भाटे छे ॥ सू० ५ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परिवन्दनमानन-
पूजनाय जातिमरणमोचनाय दुःखप्रतिघातहेतु, स स्वयमेव त्रसकायशस्त्रं समारभते,
अन्यैर्वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भयति, अन्यान् वा त्रसकायशस्त्रं समारम्भमाणान्
समनुजानाति, तत्तस्याहिताय, तत्तस्याबोधये ॥ सू० ५ ॥

टीका—

तत्र=त्रसकायसमारम्भे भगवता=श्रीमहावीरेण परिज्ञा=ज्ञ-प्रत्याख्यानभेदाद्
द्विविधा, खलु निश्चयेन प्रवेदितः=प्रतिबोधिता । कर्मरजःपरिहरणार्थं जीवेन परिज्ञाऽ-
वश्य शरणीकरणीयेति भगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपभोगद्वारम्—

लोक कस्मै प्रयोजनाय त्रसकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य चैव
जीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अचिरस्थायिनः, जीवितस्य=जीवनस्य सुखार्थम्—
मांसचर्माद्यर्थम्, तथा—परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशसा, तदर्थम्, यथा-
व्याघ्रादिमृगयादौ, मानन=जनसत्कारस्तदर्थम्, यथा—राज्ञ सकाशात् पदकादि

टीकार्थ—त्रसकाय के समारम्भ के सवध में श्री महावीरने जपरिज्ञा और प्रत्याख्यान-
परिज्ञा का उपदेश दिया है । अर्थात् भगवान्ने कहा है कि—कर्मरज को हटाने के लिए जीव
को परिज्ञा अवश्य स्वीकार करनी चाहिए ।

उपभोगद्वार—

लोग किस प्रयोजन से त्रसकाय की हिंसा करते हैं ? सो कहते हैं—इसी
अस्थायी जीवन के सुख के लिए, मांस और चमड़ी के लिए, तथा प्रशसा के लिए, जैसे
व्याघ्र आदि का शिकार करने में, मानन के लिए, जैसे राजा से पदवी पाने के उद्देश्य से

टीकार्थ—त्रसकायना समारम्भना सषधमा श्री महावीरे जपरिज्ञा अने
प्रत्याख्यानपरिज्ञाने उपदेश आये छे अर्थात् लगवाने कछु छे के-कर्म रज्जने हर
करवा भाटे एवे परिज्ञा अवश्य स्वीकारवी लेई अये

उपभोग द्वार—

लोक शुं प्रयोजनथी त्रसकायनी हिंसा करे छे ? ते कहे छे—आ अस्थिर एवनना
सुभ भाटे, मांस अने चामडीना भाटे, तथा प्रशसा भाटे जेअ के—वाध आदिने
शिकार करवाभा मान भाटे, जेअ के—राज पासेथी पदवी भेगववाना उद्देश्यथी एवता

सम्बु सखीवसहस्रध्यात्रादिपृथक्कलेष्वरनिर्माणादौ, तथा-पूजन-वस्त्ररत्नादिस्वामस्त-
रम्भम्, यथा-देवीपूजार्थं बभिवानादौ,

तथा-वातिमरणमोक्षनार्थम् = मन्ममरणबन्धपरिहारार्थं = यथा मोक्षका-
मनया यागादौ, यथा-वातादिव्यापिमतीकाराय तैलादौ सा-प्रीषन्सुखाद्यर्थी
स्वयमेव प्रसक्त्यासक्तं समारम्भते = व्यापारयति अन्यैर्वा प्रसक्त्यासक्तं समारम्भयति =
मपोन्नयति, अन्यान् वा प्रसक्त्यासक्तं समारम्भमाणान् समनुजानाति = अनुमोदयति,
तत्र = प्रसक्त्यासमारम्भणम्, तस्य = प्रसक्त्यासक्तं समारम्भं कुर्वत, कारयितुः,
अनुमोदयितुश्च, अहिताय मवति । तथा तद्-तस्य अथापये = सम्यक्त्वान्नामाय
मवति ।

अहित म्यात्र आदि के समान म्यात्र आदि का फलकर बनाने में, और एक के लिए जैसे
एक रत्न आदि की प्राप्ति के लिए, तथा-देवीकी पूजा करने के लिए प्रयोजन से बलिदान
आदि करने में हिंसा करते हैं ।

तथा-कर्म-मरण-बंध आदि से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-मोक्ष की कामना से
कर्म आदि करने में, वात आदि के रोगों का प्रतीकार करने के लिए तैल आदि चैवार
करने में, जीवन के सुख का कर्मी स्वयं ही प्रसक्त्यासक्त के द्रव्य का समारम्भ करता
है दूसरों से प्रसक्त्यासक्त के द्रव्य का समारम्भ करता है और प्रसक्त्यासक्त के द्रव्य का समारम्भ करने
एवं का अनुमोदन करता है । यह प्रसक्त्यासक्त आरम्भ उस आरम्भकर्ता के लिए अहितकर
और कर्मोपनिबन्धक होता है ।

पाषाणा समान वायु आदिन्नुं इलेवर जनापवाभां अने पूजन भाटे जेभडे-वस्त्र, रत्न
आदि प्राप्ति भाटे तथा देवीनी पूजा करवाना प्रयोजनकी जतिदान आदि करवाना
हिंसा करे छे.

तथा-कर्म, मरण, बन्ध आदिसे छुटवा भाटे जेभडे-मोक्षनी कामनाकी यज्ञ
आदि करवाना, वात आदि रोगनी प्रतिहार करवा भाटे (रोगनी दवा करवा भाटे)
उपनना मुजना कर्मी स्वयं-पोतेक प्रसक्त्यासक्त शक्तीने समारम्भ करे छे जीव
वासे प्रसक्त्यासक्त शक्तीने समारम्भ करवावे छे अने प्रसक्त्यासक्त शक्तीने समारम्भ
करवावणाने अनुमोदन आये छे ते प्रसक्त्यासक्त आरम्भ जे आरम्भ करवाने भाटे
अहितकरी अने कर्मोपनि बन्धन करवावे छे

વેદનાદ્વારમ્-

અત્ર પ્રસન્નતસ્ક્રસકાયસ્ય વેદનોચ્યતે-વેદના યથાસંભવં દ્વિવિધા-કા યિકી, માનસી ચ । શ્લ્યમૂચ્યાદિવેધાજ્જાતા, જ્વરાતિસારકાસાદિવ્યાધિજનિતા વા કાયિકી, પ્રિયવિયોગાદકૃતા માનસી ॥ સૂ૦ ૫ ॥

येन तु तीर्थङ्करादिसमीपे त्रसकायस्वरूपं परिज्ञातं स एवं विभावयतीत्याह—
'से त' इत्यादि ।

મૂલમ્—

से त संवुच्छमाणे आयाणीयं समुष्टाय सोच्चा भगवओ अनगारणं वा अंतिए इहमेगेसि णाय भवइ, एस खलु गंधे, एस खलु मोहे, एस खलु

વેદનાદ્વાર-

પ્રસન્ન પાકર ત્રસકાય કી વેદના કા નિરૂપણ ક્રિયા જાતા હૈ-યથાસંભવ વેદના ડો પ્રકાર કી હૈ-કાયિક ઓર માનસિક । કાંટ, સુઈ આદિ ચુમને સે અથવા જ્વર, અતિસાર, ઝાંસી આદિ રોગો સે ઉપ્તન્ન હોને વાલી વેદના કાયિક કહલાતી હૈ । પ્રિય વસ્તુ કે વિયોગ આદિ કારણો સે હોને વાલી વેદના માનસિક વેદના હૈ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

जिसने तीर्थंकर आदि के समीप त्रसकायका स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार विचारता है.-'से तं.' इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् अथवा अनगारो के समीप सुनकर वह त्रसकाय का ज्ञाता त्रसकाय को जानता हुआ समय धारण करके इस प्रकार जानता है—यह त्रसकाय का आरम

વેદનાદ્વાર-

પ્રસન્ન હોવાથી ત્રસકાયની વેદનાનું નિરૂપણ કરવામાં આવે છે-સાધારણ રીતે વેદના બે પ્રકારની છે-કાયિક અને માનસિક કાટા, સોય આદિ વાગવાથી, અથવા જ્વર-તાવ, અતિસાર-ઝાડા, ખાંસી આદિ રોગોથી ઉત્પન્ન થવાવાળી વેદના કાયિક કહેવાય છે । પ્રિય વસ્તુના વિયોગ વગેરેના કારણોથી થનારી વેદના માનસિક-વેદના છે ॥સૂ૦૫॥

જેણે તીર્થંકર આદિના સમીપમાં ત્રસકાયનું સ્વરૂપ સમજ લીધું છે, તે આ પ્રમાણે વિચારે છે—'સે ત' ઈત્યાદિ.

મૂલાર્થ—ભગવાન અથવા અણગારોના સમીપ સાક્ષીને તે ત્રસકાયના જ્ઞાતા ત્રસકાયને જાણતા થકા સમય ધારણ કરીને આ પ્રમાણે જાણે છે-આ ત્રસકાયનો આરમ

मारं, एष स्वच्छ नरकः, इच्छत्य गहिरं श्लेष, ममिणं विरुद्धस्येहिं सत्यहिं
 तसकायसमारंमेण, तसकायस्त्य समारंममाणे अणो अपेगस्वे पाणे
 विहिंसइ ॥ सू० ६ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्पाय भुत्वा भगवतोऽनगाराणां वा
 मन्तिके, इहेकेपां शतं भवति—एष स्वच्छ ग्रन्थः एष स्वच्छ मोहः, एष स्वच्छ
 मारः, एष स्वच्छ नरकः। इत्यर्थं शृद्धो लोकः, यदिमं विरुद्धस्यैः सस्यैः
 प्रसकायसमारंमेण प्रसकायसक्तं समारंममाणोऽन्यान् अनेकरूपान् माणान्
 विद्विनस्ति ॥ सू० ६ ॥

टीका—

यः स्वच्छ भगवतः तीर्थंकरस्य, अनगाराणां—शरीरभयमन्तिर्ग्रन्थानां वा मन्तिके
 भुत्वा, आदानीयम्—उपादेयं सर्वसावधयोगविरतिरूप्य चारिर्भं, समुत्पाय=प्रतीकृत्य,
 विरुद्धति, स तत्=प्रसकायसमारंममं संबुध्यमानं=प्रहिताबोधिजनकरत्वेन विहाता
 सन् एषं विमावपति—

मन् है, यह मोह है, यह मार है, यह नरक है। स्वच्छ श्लेष गाना प्रकार के शब्दों द्वारा
 प्रसकायका चारंम करके, प्रसकायका चारंम करते हुए अनेक प्रकारके अन्य प्राणियोंका
 (भी) विहाता करते हैं ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—श्री पुरुष भगवान् तीर्थंकर के मुख से भगवत उक्त अनुशायी निर्मन्त्र
 मन्त्रों के मुख से सुनकर सर्व सावध के त्यागरूप चारित्र को अंगीकार करके विहाता है,
 यह प्रसकाय के समारंभ को अहितकर और अवोधिजनक समझता है। यह इस प्रकार
 श्लेषता है—

अ-अ छे, अा मोह छे अा मार छे; अा नरक छे लोहप लोह नाना प्रकारना
 श्लेषादिस प्रसकायना चारंम करीने, प्रसकायना चारंम करेवा सहा अनेक प्रकारना
 अन्य प्राणियोंना पण धात करे छे ॥ सू० ६ ॥

टीकार्थ—श्री पुरुष भगवान् तीर्थंकरना मुखशी अथवा तेमना अनुशायी
 निर्मन्त्र अमन्त्राना मुखशी संकल्पिने सब सावध त्यागरूप चारित्रने अजीकार करीने
 विहाते छे ते प्रसकायना समारंभने अहितकर अने अवोधिजनक—अवोधि करेवा
 करने अथवा छे। ते अा प्रभावे विहाते करे छे—

इह=मनुष्यलोके, एकेपां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशमजातसम्यगवबोधवैराग्याणा
मात्मार्यिनामेव ज्ञातं भवति । किं ज्ञातं भवती ?-त्याकाङ्क्षायामाह—' एस खलु
ग्रन्थः. ' इत्यादि ।

एष=त्रसकायसमारम्भः, खलु=निश्चयेन, ग्रन्थः=कर्मवन्धः, कारणे
कार्योपचारात्, एवमग्रेऽपि बोध्यम् । तथा एषः=त्रसकायसमारम्भः मोहः=
विपर्यासः-अज्ञानम् । तथा-एष एव मारः=मरणं निगोदादिमरणरूपः । तथा-एष
एव नरकः=नारकजीवानां दशविधयातनास्थानम् ।

इत्यर्थम्=एतदर्थं=ग्रन्थ-मोह-मरण-नरकरूपं घोरदुःखफलं प्राप्यापि
पुनः पुनरेतदर्थमेव लोकः=अज्ञानवशवर्ती जीवः, गृद्धः=लिप्सुरस्ति । यद्वा-गृद्धः=
भोगामिलाषी, लोकः=संसारी जीवः, इत्यर्थम्=एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्य-
मेव प्रवर्तते ।

इस मनुष्य लोक में श्रवण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग् ज्ञान और वैराग्य प्राप्त
कर लेने वाले ही यह जान लेते हैं कि-त्रसकाय का समारभ निश्चय ही कर्मवध है । यहाँ
कारण में कार्यका उपचार करके कर्मवध के कारण को कर्मवध कहा है । आगे भी इसी प्रकार
समझना चाहिए । यह त्रसकाय का समारभ मोह अर्थात् अज्ञान है । वह मार अर्थात्
निगोद आदि में मृत्यु का कारण है । यह समारभ नरक है अर्थात् दस प्रकार की नारकीय
यातना का स्थान है ।

प्रथ, मोह, मरण और नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करके भी अज्ञानी लोग
वार-वार इसी के इच्छुक होते हैं । अथवा भोगों की अमिलाषा करने वाले संसारी लोग इस
प्रथ, मोह, मार और नरक के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

आ मनुष्य लोकात्मा निर्ग्रन्थाना उपदेशात्मा सम्यग्ज्ञान आने वैराज्य प्राप्त करी-
देवावाणाञ्च अम नाष्ठी शके छे के-त्रसकायने समारभ निश्चयञ्च अथ-कर्मवध छे
अहिं कारण्णमा कार्यने उपचार करीने कर्मवधना कारण्णने कर्मवध कइयो छे आगण
पण्ण आ प्रभाञ्च समञ्चुं लोई अ

आ त्रसकायने समारभ मोह अर्थात् अज्ञान छे आ मार अर्थात् निगोद आदिमा
मृत्युत्वं कारण्ण छे आ समारभ नरक छे अर्थात् इस प्रकारनी नारकीय यातनानु स्थान छे

अथ, मोह, मरण आने नरकरूप घोर दुःखमय फल प्राप्त करीने पण्ण अज्ञानी
लोका वारवार तेनी धम्मावाणा थाय छे अथवा भोगोनी अमिलाषा करवावाणा
संसारी लोका आ अथ, मोह, मार आने नरक भाटेञ्च प्रवृत्ति करे छे.

भाचारचिन्तामणि-टीका अल्प० १ उ ६ सू ६ प्रसहिंसाया ग्रन्थापर्यन्तम् ६६६

‘मोक्ष पुनः पुनर्ग्रन्थापर्यन्तमेव प्रवर्तते’ इति यदुक्तं, तत् कथं ज्ञायते ? इति
ब्रह्मसायामाह—‘यदिमम्’ इत्यादि ।

यद्-अस्माद्, निरूपरूपैः=नानाविधैः श्लेषैः=पूर्वोक्तप्रकारैः प्रसक्त्यासमारम्भम्=
प्रसक्त्यापोपमर्दनरूपतापघ्न्यापारेभ, इम=त्रयकार्यं विहितस्ति । तथा प्रसक्त्या
उत्सं समारममाण=ग्रन्थापारयन् अन्यान् पृथ्वीकायादीन् स्यावरान्, प्राणान्=
प्राणिनां, विहितस्ति=उपमर्दयति ॥ सू० ६ ॥

यस्मै प्रयोजनाय प्रसक्त्यायो इत्यन्ते, तत् प्रयोमनं यद्यपि—‘इमस्स येव
जीवियस्स’ इत्यादिनाऽभिहितम्, तथापि चिन्तित्य तत्प्रयोजनं पुन प्रदर्शयितुमाह—
‘से वेमि’ इत्यादि ।

मोक्ष बारम्बार प्रय अप्ति के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं यह बात कैसे माहम हुई ‘
इस का समाधान के लिए करते हैं—‘यदिमम्’ इत्यादि ।

क्या कि वे मान्य प्रकार के शक्तों द्वारा प्रसक्त्या का समाधान करके प्रसक्त्या की
हिंसा करते हैं और प्रसक्त्या का समाधान करते हुए पृथ्वीकाय अप्ति अन्य स्यावर
प्राणिनों का भी विरोधना करते हैं ॥ सू० ६ ॥

अस प्रयोजन स प्रसक्त्या की हिंसा की जाती है वह योजन ‘इस जीवन क सुख
के लिए इत्यादि कवन द्वारा बतलाया या चुका है, कि मी विशेष रूप स उस हिंसाका
प्रयाजन बतलाने के लिए ही सुधमा स्वामी करते हैं—‘से वेमि’ इत्यादि ।

तोके बारम्बार प्रय अप्तिना भाटेव प्रवृत्ति करे उ जे वत्त ठेनी एते माहम
पदी ? जेनु समाधान करवा भाटे कडे उः— यदिमम् इत्यादि

इम के नाना प्रकारना शक्तोदारा प्रसक्त्यावने समाधान कराने प्रसक्त्यावनी हिंसा
करे उ जेने प्रसक्त्यावने समाधान करवा यका पृथ्वीकाय अप्ति अन्यस्यावर प्राणी
जोने पण पात करे उ ॥ सू ६ ॥

जे प्रयोजनकी प्रसक्त्यावनी हिंसा करवाभां आवे उ ते प्रयोजन का प्रयोजना
सुख भाटे इत्यादि निवेदनद्वारा जतानु उ (जतानी बुद्ध्या हीजे) ही पण
विशेषरूपकी जे हिंसानु प्रयोजन जतानु भां थी सुधमा स्वामी कडे उः—
से वेमि इत्यादि

मूलम्—

से वेमि-अप्पेगे अच्छाए हणति, अप्पेगे अजिगाए वहंति, अप्पेगे मंसाए वहंति, अप्पेगे साणियाए वहंति, एधं हिययाए, पित्ताए, व्रमाए, पिच्छाए, पुच्छाए, वालाए, सिगाए, विसाणाए, दत्ताए, दाढाए, णहाए, ण्हारुणीए, अट्टीय, अट्टिर्मिजाए, अट्टाए, अणट्टाए, अप्पेगे 'हिंसिस्सु मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसंति मे' त्ति वा वहंति, अप्पेगे 'हिंसिस्संति मे' त्ति वा वहंति ॥ सू० ७ ॥

छाया—

तद् व्रवीमि-अप्येके अर्चायै घ्नन्ति, अप्येके अजिनाय घ्नन्ति, अप्येके मासाय घ्नन्ति, अप्येके शोणिताय घ्नन्ति एव हृदयाय, पित्ताय, वसायै, पिच्छाय, पुच्छाय त्रालाय, शृङ्गाय, विषाणाय, दन्ताय, दंष्ट्रायै, नखाय, स्नायवे, अस्थने, अस्थिमज्जायै, अर्थाय, अनर्थाय, अप्येके 'अवधीपुरस्मा'-निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हिंसन्त्यस्मा' निति वा घ्नन्ति, अप्येके 'हनिष्यन्त्यस्मा'-निति वा घ्नन्ति ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—मैं वह (प्रयोजन) कहता हूँ—कोई अर्चा शरीर के लिए त्रसकाय का विराधना करते हैं, कोई चर्म—चमडे के लिए घात करते हैं, कोई मांस के लिए घात करते हैं, कोई रक्त के लिए घात करते हैं, कोई हृदय के लिए, पित्त के लिए, चर्बी के लिए पख के लिए, पूँछ के लिए, बाल के लिए, सींग के लिए, विषाण (सुअर का दात) के लिए, दात (हाथीदात) के लिए, दाढ़ों के लिए, नख के लिए, स्नायु के लिए, हड्डी के लिए, मज्जा के लिए, अर्थ के लिए, अनर्थ के लिए—(निरर्थक) कोई 'हमें मारा था' इस भावना से, कोई 'हमें मारता है' इस भावना से, और कोई 'हमें मारेगा' इस भावना से त्रसकाय का घात करते हैं ॥ सू० ७ ॥

मूलार्थ—हु कहुं छु -कोई अर्चा (शरीर) माटे त्रसकायने। घात करे छे कोई आभडी माटे घात करे छे। कोई मांस माटे घात करे छे कोई रक्त-लोहडी माटे घात करे छे कोई हृदय माटे, पित्त माटे, चरबी माटे, पाप्पो माटे, पूछडा माटे, प्राण माटे, शींगडा माटे, विषाणु (सुअरना दात) माटे, हाथी दात माटे, दाढो माटे, नख माटे, स्नायु माटे, हाडका माटे, मज्जा माटे, अर्थ माटे, अनर्थ—(निरर्थक) कोई 'अभने मायां छुता' अये भावनाथी, कोई 'अभने मारे छे' अये भावनाथी, अने कोई 'अभने मारशे' आ भावनाथी त्रसकायने। घात करे छे ॥ सू० ७ ॥

गीका—

यदयं प्रसनीवा इत्यन्ते, तद् ग्रवीमि-अप्येके=केचिच्च, अप्रापि-
 स्रग्दाः पस्यमाणापेक्षया समुच्चयायः, अर्थाय-अस्यते=पूज्यते-इत्यर्था=शरीर,
 तदयं धनन्ति=हिसन्ति, यथा सुलक्षणं पुरुष व्यापाद्य तच्छरीरेण विद्यामन्त्र,
 साधयन्ति, यद्वा स्वल्पपुरुषनिर्माणार्थं द्वात्रिंशद्वल्लक्षणं पुरुष प्रतप्तले निसिप्य
 निम्नन्ति । तथा अप्येके=केचन अभिनाय=धर्माय मृगभ्याघर्षन् धनन्ति ।
 तथा अप्येके=केचन मांसाय छागादीन् धनन्ति । अप्येके=केचन घोषिषाय=
 विश्रुललेखकरणादौ घोषितं ग्रहीतु धनन्ति । एव हृदयाय=हृदयं गृहीत्वा
 सापद्य मध्नन्ति, तदयं धनन्ति । पिषाय मयूरादीन्, पसाय व्याघ्रादीन्,
 पिच्छाय मयूरादीन्, पुच्छाय रोम्भादीन्, बालाय धमर्यादीन्, प्रङ्गाय मृगादीन्,

टीकार्थ—इ अम्यु बिस प्रयोजनसे प्रसक्ताय की हिंसा होती है वह बरता है ।
 कोर्दे-कोर्दे अर्था अर्थात् शरीर के लिए विनाशना करते हैं उसे किसी पुरुष को बांधे
 छत्रण बासा समसकर उसे मार सकते हैं और उसके शरीर से रिया तथा मय का
 धान्न करते हैं । अथवा रक्षणपुरुष के निर्माण के लिए बर्तस छत्रण वाले पुरुष को
 तपे हुए तैल में डालकर मारते हैं । कोर्दे धर्म के लिए युग और बाप आदि का पात
 करते हैं । कोर्दे मांस के लिए बकरा आदि को मारते हैं । कोर्दे विश्व का विद्ध बनाने
 आदि के लिए तथा रक्त पीने के उरेम्य से पात्र करते हैं । इसी प्रकार हृदय के लिए पात
 करते हैं-पातक स्त्रोग हृदय लकर मबते हैं । इसी तरह पित्तके लिए मयूरा को पशुकि
 लिए बाप आदि को पंखों के लिए मयूरी को, पृष्ठके लिए रोम आदि को, बास के

टीकार्थ—ने प्रयोजनशी त्रलवेनी द्विस वाच उ; ते कर्तुं उ डोर्द-डोर्द
 अथ अर्थात् शरीरना भाटे बात करे उ नेभडे-डोर्द उरुधने सारा लक्षणवाणे समलने
 तेम मारी नाचे उ अने तेना शरीरधी विवा तथा मत्रनी साधना करे उ अथवा-
 स्वर्ण पुत्रना निर्माण भाटे अत्रीस लक्षणवाणा पुत्रने तपावेका तेवम नांभीने
 भाटे उ डोर्द आभडा भाटे मृग अने बाप वजेरेने। बात करे उ डोर्द मांस भाटे
 आश वजेरेने भाटे उ डोर्द विश्वतत्र विद्व जनापवा वजेरे भाटे बोदी प्रस करवाना
 उदेरधी पात करे उ अे प्रभाजे डोर्द हृदय भाटे बात करे उ-पातकी तैल हृदय लाने
 भवे उ अे प्रभाजे पित्त भाटे मारने, अरणी भाटे वाप आदिने वज भाटे
 धमरी-अथ आदिने शीत भाटे मृग आदिने भाटे उ पिषाय-शब्द अे डे दाधी

विषाणाय, विषाणशब्दो गजदन्ते रूढस्तथापीह मूकरदन्तो ग्राह्यः, तदर्थं मूकरम्, दन्ताय हस्यादीन्, दष्ट्रायै वराहादीन्, नखाय व्याघ्रादीन्, स्नायवे गवादीन्, अस्थने शङ्खादीन्, अस्थिमज्जायै—अस्थिमज्जा=अस्थिगतरसः, तदर्थं, महीपादीन्, घ्नन्ति । इत्थम्—अर्थाय=प्रयोजनवशात् केचिद् घ्नन्ति । तथा— अनर्थाय= विनाऽपि प्रयोजन केचिद् घ्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रसर्प-मूकरादयः शत्रवो वा अस्मान् अपीडयन्, अस्मदीयान् वाऽवधिषुः” इति द्वेषवासनया घ्नन्ति । अप्येके=केचिच्च, “इमे व्याघ्रादयः शत्रवो वा वर्तमानकालेऽस्मान्, अस्मदीयान् वा हिंसन्ति ” इति मत्वा घ्नन्ति ।

लिए चमरी गाय आदि को, सींग के लिए मृग आदि को मारते हैं । विषाण शब्द यद्यपि हाथीदात के अर्थ में रूढ है तथापि यहाँ ‘सुअर का दांत’ अर्थ लेना चाहिए । सुअर के दात के लिए सुअर का घात किया जाता है । दांत के लिए हाथी आदि को, दाढ़ों के लिए शूकर वगैरह को, नख के लिए वाघ आदि को, स्नायु के लिए गाय आदि को, हड्डी के लिए शख आदि को, अस्थिमज्जा अर्थात् हड्डियों में रहने वाले एक प्रकार के रस के लिए भैंसा वगैरह का घात करते हैं । इस प्रकार कोई—कोई प्रयोजन के लिए प्रसजीवों की हिंसा करते हैं और कोई—कोई विना प्रयोजन ही हिंसा करते हैं । कोई—कोई ‘इस वाघ, सर्प और शूकरने तथा शत्रुओंने हमें पीडा पहुँचाई है, अथवा हमारे आत्मीयजन का वध किया है’ इस प्रकार की द्वेष—वासना से इनका घात करते हैं । कोई लोग यह सोचकर कि—ये व्याघ्र आदि अथवा शत्रु वर्तमान कालमें हमें या हमारे लोगोंको मारते हैं’ उनका घात करते हैं । कोई लोग यह विचार करके कि—‘यह

दांतना अर्थमा इह छे तो पशु अर्हि ‘सूअरना दांत’ अयेवो अर्थ लेवे लेधये सूअरना दात भाटे सूअरनेो घात करवाभा आवे छे दात भाटे हाथी आदिनेो, हाढेने भाटे शूकर-भूउ वगेरेनेो, नथ वगेरे भाटे वाघ आदिनेो, स्नायुने भाटे गाय आदिनेो, हाडडां वगेरे भाटे शख आदिनेो, अस्थिमज्जा अर्थात्, हाडडांभा रडेनारा अेठ प्रकार रस भाटे ले सा-पाडा वगेरेनेो घात करे छे, आ प्रभाषे केध-केध प्रयेजन भाटे प्रस लवेनी हिंसा करे छे अने केध-केध प्रयेजन विनाज हिंसा करे छे केध-केध ‘आ वाघ सर्प’ अने शूकर-भूउ तथा शत्रुअेअे अमने पीडा पडेयाडी हुती अथवा अमारा आत्मीय जननेो (तेणु) वध कर्यो हुतो.’ आ प्रकारे द्वेष-वासनाथी तेनेो घात करे छे केधभाषुस अयेवो विचार करीने के-‘आ वाघ आदि, अथवा शत्रु वर्तमान कालमा भने अथवा

अप्येके-केचिच्च, 'अस्मान् अस्मदीयान् वा इये व्याप्राहयः क्षम्यो वा इनिष्यन्ति' इति हेतोस्तसकायात् ज्ञन्ति ॥ सू० ७ ॥

एष असकायसमारम्भं विदित्वा मुनित्वलामाय तत्समारम्भः सर्वथा परिहर्तव्यः, इत्याद्यपेनोद्देशकार्यमुपसंहरन्नाह— 'एष सत्यं' इत्यादि ।

मूलम्—

एष सत्यं समारममाणस्त इष्येते आरमा अपरिष्वाया मर्षति । एष सत्य असमारममाणस्त इष्येते आरमा परिष्वाया मर्षति तं परिष्वाय मेहावी येव सय असकायसत्य समारमेन्ना, जेवऽण्णेहि असकायसत्य समारमावेन्ना, जेवऽण्णे असकायसत्य समारमेते समणुभावेन्ना । जस्सेते असकायसमा

प्राप्त आदि कथवा यह शत्रु हमें या हमारों को मारेगे' उन्हें मार डालते हैं । इस प्रकार जेना असकाय की हिंसा करते हैं ॥ सू० ७ ॥

इस प्रकार असकाय के समारम को जानकर साधुता प्राप्त करने के लिए असकाय का धारम सर्वथा त्याग देना चाहिये । इस आशय से इस उद्देश का उपसंहार करते हुए कहते हैं—'एष सत्यं' इत्यादि ।

मूलार्थ—असकाय में शत्रु का समारम करने वाले को यह धारम अपरिहात होते हैं । असकाय में शत्रु का समारम नहीं करने वाले को यह धारम परिहात होते हैं । मेहावी पुरुष उन्हें जानकर स्वयं असकाय में शत्रु का समारम न करे, दूसरों से असकाय के शत्रु का समारम न करावे और असकाय में शत्रु का समारम करने वाले का शत्रु

अभाशने भाशे छे । तेथी तेने घात करे छे जेथं बोध 'आ वाच आदि अथवा आ शत्रु भने अथवा अभाशने भाशे' जेथु विचारिनि तेने भाषी नाजे छे आ प्रभाषे बोध असकायनी हिंसा करे छे ॥ सू० ७ ॥

आ प्रभाषे असकायना अभाशने अथीने साधुता प्राप्त करवा भाटे असकायने आरल अथवा त्यागी देवा जेधनि-अल देवा जेधजे जे आशयनी अथ उद्देशने उपसंहार करवा सका कहे छे— एष सत्यं इत्यादि

मूलार्थ—असकायने विरे शत्रुने समारल करवावाजाने आ आरल अपरिहात होय छे असकायने विरे शत्रुने समारल नहिं करवावाजाने आ आरल परिहात छे (अधुवार्थ छे) । पुदिमान पुरुष तेने अथीने पीते असकायभां शत्रुने समारल करे नहिं नीब पासे असकायना शत्रुने समारल करवावे नहिं अने असकायभां शत्रुने समारल

रमा परिण्णाय भवति, से हृ मुणी परिण्णाय कम्म्ये—त्ति वेमि ॥ सू० ८ ॥

छट्टो उग्गेयो समत्तो ॥ ६ ॥

छाया—अत्र शस्त्र समारभमाणस्य इत्येते आरम्भा अपरिज्ञाता भवन्ति । अत्र शस्त्रसमारभमाणस्य इत्येते आरम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, तं परिज्ञाय मंधारी नैव स्वयं त्रसकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैस्त्रसकायशस्त्रं समारम्भयेत्, त्रसकायशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान् न समनुजानीयात् । यस्यैते त्रसकायशस्त्रममारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ८ ॥

॥ पठोद्देशः समाप्तः ॥ ६ ॥

टीका—अत्र=अस्मिन् त्रसकाये, शस्त्रं=पूर्वोक्तप्रकार, समारभमाणस्य=व्यापारयत, इत्येते=पूर्वोक्ताः त्रिकरणत्रियोगैः आरम्भाः=त्रसपतिकायोपमर्दनरूपाः सावधव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगता भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेवत्रसकाये, शस्त्रं=प्रागुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयुक्तज्ञानरय, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावधव्यापाराः परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरिज्ञया बन्धकारणत्वेन विज्ञाता भवन्ति, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवजिता भवन्तीत्यर्थः ।

मोदन न करे । जो त्रसकाय के समारंभो का ज्ञाता है वही मुनि है, परिज्ञातकर्मा है ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकाय के विषय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार करने वाले को 'तीन करण और तीन योग से होने वाले सावध व्यापार कर्मबन्ध के कारण हैं' ऐसा ज्ञात नहीं होता ।

और त्रसकाय में पूर्वोक्त शस्त्रों का व्यापार न करने वाला पूर्वोक्त सावध व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण समझता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से उनका त्याग कर देता है ।

हरवावाणाने अनुमोहन आपे नडि, जे त्रसकायना समारलने जल्लु छे तेज मुनि छे, परिज्ञातकर्मा छे ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—त्रसकायना विषयमा पूर्वोक्त (आगण छडेला) शस्त्रेणो व्यापार हरवावाणा 'त्रलु हरलु अने त्रलु योगथी थवावाणो सावध व्यापार कर्मबन्धनुं डारलु छे ' जे प्रमाँल्ले जल्लुता नथी. अने त्रसकायमा पूर्वोक्त (आगण छडेला) शस्त्रेणो व्यापार नडि हरवावाणा पूर्वोक्त (आगण छडेला) सावध व्यापारेणे ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबन्धनुं डारलु समजे छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी तेणे त्याग करी दे छे

इपरिष्ठापूर्विका प्रत्याख्यानपरिष्ठा यथा भवति तं प्रकारं वर्धयति- 'तत् परिष्ठाये'-स्यादि । तद्=प्रसक्त्यापारम्भणम्, परिष्ठाये=कर्मबन्धस्य कारणं भवतीत्यनुपपन्नम्, मेवापी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं प्रसक्त्यापन्नं समारमेत=व्यापारयेत्, अन्यैर्वा नैव प्रसक्त्यापन्नं समारम्भयेत्, प्रसक्त्यापन्नं समारम्भाणान् अन्याम् वा न समनुजानीयात्=नानुमोदयेत् ।

यस्यैते प्रसक्त्यापन्नमारम्भा=प्रसक्त्यापोपमर्दकसाधयव्यापाराः, परिष्ठायाः=इपरिष्ठाया बन्धकाररूपेण विदिताः, प्रत्याख्यानपरिष्ठाया च परिष्ठाता भवन्ति, स एव परिष्ठातकर्म्या=त्रिकरणत्रियोगीः परिवर्धितप्रसक्त्यापन्नव्यापारः, मुनिभवति । 'इति प्रवीमि' इति । अस्य व्याख्यानं पूर्णवत् ॥ सू० ८ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसुप्रत्याचारविन्तामनिटीकायां प्रथमाध्ययने पष्ठ उद्देशकः सपूर्णः ॥

इपरिष्ठापूर्वक होने वाली प्रत्याख्यानपरिष्ठा का स्वरूप शब्दकार दिखाने हैं प्रसक्त्यापन्न के कारण को कर्मबंध का कारण जानकर बुझिमान् भवति हेय-उपादेय का विवेकी पुरुष स्वयं प्रसक्त्यापन्न के शब्द का उपयोग न करे, दूसरों से प्रसक्त्यापन्न के शब्द का उपयोग न करे और प्रसक्त्यापन्न के शब्द का उपयोग करनेवाले का अनुमोदन न करे ।

बिंसने प्रसक्त्यापन्न का बात करने वाले साक्ष्य व्यापारों को इपरिष्ठा से बंध का कारण समझ लिया है और प्रत्याख्यानपरिष्ठा से त्याग दिया है वही तीन कारण तीन योग से सर्व साक्ष्य व्यापारों का ज्ञाता पुरुष मुनि होता है । 'वि वेमि' पदकी व्याख्या पहले के समान समझनी चाहिए ॥ सू० ८ ॥

श्री आचारारङ्गसूत्रके प्रथम अध्यायन का छठा उद्देश समाप्त १-६ ॥

इपरिष्ठापूर्वक मेवावाणी प्रत्याख्यानपरिष्ठातु एवम् शब्दकार ज्ञाने च-प्रसक्त्यापन्न आरम्भने कर्मबन्धु कारण ज्ञाने बुझिमान् भवति हेय-उपादेयने विवेकी पुरुष पीते प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग करे नहि पीत्वा पीते प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग करेवे नहि, अने प्रसक्त्यापन्न शब्दने उपयोग करवाणाने अनुमोदन अपि नहि ।

नेहे प्रसक्त्यापन्न बात करवाणाने साक्ष्य व्यापारने इपरिष्ठापी ज धनु कारण समझ लीपु से अने प्रत्याख्यानपरिष्ठापी त्वत् दीपु से ते त्वत् कारण त्वत् योगपी अर्थात्साक्ष्यव्यापारने शब्द-अनुकार पुरुष मुनि होय से 'वि वेमि' पदनी व्याख्या पहलेका प्रभासे समझ लेनी चाहिये ॥ सू० ८ ॥

॥ श्री आचारारङ्गसूत्रना प्रथम अध्यायनने छठे उद्देश समाप्त ॥ १ । ६ ॥

। अथ सप्तमोद्देशकः ।

वायुकायस्य चाक्षुषप्रत्यक्षविषयत्वाभावात् तस्य सच्चित्तत्वे स्वतः श्रद्धा नोत्पद्यते, किन्तु पृथिव्याद्येकेन्द्रियाणां, द्वीन्द्रियादेस्त्रसकायस्य च स्वरूपं विदित्वा जातश्रद्धो वायुकायं सुतरां विजानातीत्याशयेन तद्विषयकश्चरमः सप्तमोऽयमुद्देशकः प्रारभ्यते ।

यथा वायुकायोपमर्दननिवृत्त्या मृणित्वं प्राप्यते, तं प्रकारं प्रदर्शयितुमाह—
'पहू एजस्स.' इत्यादि ।

मूलम्—

पहू एजस्स दुगुंछणाए आयंकदंसो अहियं—ति नच्चा । जे अज्झत्थं

सातवाँ उद्देश—

वायुकाय के जीव चक्षु के गोचर नहीं होते, अत एव वायु की सच्चित्ता में स्वतः श्रद्धा उत्पन्न नहीं होती । किन्तु पृथ्वीकाय आदि एकेन्द्रियों का, तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस जीवों का स्वरूप समझ लेने से जिसे श्रद्धा उत्पन्न होगई है वह वायुकाय को स्वयं ही जान लेता है । इस आशय से वायुकायसबधी यह अन्तिम सातवाँ उद्देश आरंभ किया जाता है ।

वायुकाय की हिंसा त्यागने से ही साधुपन प्राप्त होता है, यह बात आगे प्रदर्शित करते हैं—'पहू एजस्स' इत्यादि ।

मूलार्थ—दु खदर्शी पुरुष (वायुकाय के आरंभ को) अहितकर जानकरके वायुकाय के आरंभ को त्यागने में समर्थ होता है । जो अध्यात्म को जानता है वह

सातमो उद्देश—

वायुकायना एव नेत्रथी जेवामा आवता नथी, जे कारणुथी वायुनी सच्चित्ततामा स्वतः श्रद्धा उत्पन्न थती नथी परन्तु पृथ्वीकाय आदि ऐकेन्द्रियोना तथा द्वीन्द्रिय आदि त्रस एवोना स्वर्पने समए जेवाथी जेने श्रद्धा उत्पन्न थथि गध छे, ते वायुकायने पोतेज नएणी ले छे. जे आशयथी वायुकायसबधी आ अन्तिम—छेवला सातमा उद्देशेना आरंभ करवामा आवे छे.

वायुकायनी हिंसा त्यागवाथी साधुता प्राप्त थाय छे जे वात आगण भतावे छे—'पहू एजस्स' इत्यादि

मूलार्थ—इ अदर्शी पुरुष (वायुकायना आरंभने) अहितकर नएणीने वायुकायना आरंभने त्यए देवामा समर्थ होय छे, जे अध्यात्मने नएणे छे ते अकारने नएणे छे,

वाक्य से पहिया जागृत, से पहिया जागृत, से अन्तर्गतं जागृत। परं तुल्यमनेसि।
इ संतिगया दचिया गाकंस्वति जीर्णं ॥ सू० १ ॥

छाया—

प्रसू एतस्य पुगुप्सायाम् आतङ्कदर्शी अहित-मिति ज्ञात्वा। यः अध्यात्मं
जानाति, स बहिर्जानाति। यः बहिर्जानाति स अध्यात्मं जानाति। एतत् तुल्य
मन्ययाम्। इह शान्तिगताः द्रविकाः नावकाश्चसन्ति भीषितुम् ॥ सू० १ ॥

टीका—

यः आतङ्कः—हृत्स्वीयनं, दुःखं, तत्र आगेरमानसमेदात् द्विविधम्, तत्र
कष्टकष्टादिजनितं शारीरम् प्रियवियोगाप्रियसंयोगामिलपितामामदादिपादि
कृत मानसम्। एतत् द्विविधदुःखरूपमातङ्क पश्यति सखीलभेत्यातङ्कदर्शी, यदा-
परनोवकायसमारम्भेन वायुकायसमारम्भेन वा यदुःखं स आतङ्कः, सं

बाध को जानता है, जो बाध को जानता है वह अध्यात्म को जानता है। यह (सुख-दुःख)
एसा क भी अपन समान है। उपशम को प्राप्त और राग-द्वेष से रहित संयमी पुरुष, पर
की हिंसा करके अपन बीभन की इच्छा नहीं करते ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन या दुःख को आतङ्क कहते हैं। शारीरिक और
मानसिक भेद से दुःख दो प्रकार का है। कष्टक एवं कष्ट आदि से होने वाला दुःख
शारीरिक कहलता है। प्रियवियोग और अप्रियसंयोग, इस की अप्राप्ति और वरिष्ठा
आदि से होने वाला दुःख मानसिक कहलता है, इन दोनों प्रकार के दुःखरूप आतङ्क को
देखने वाला आतङ्कदर्शी कहलाता है। जबवा पद्वीवनिकाय या वायुकाय के समारम्भ से
होने वाला दुःख आतङ्क कहलता है, और उसे देखने वाला आतङ्कदर्शी है। वह

के लक्षरने लगे थे ते अध्यात्मने लगे थे आ (सुख-दुःख) भीलजोने पल
आपला समान थे

उपशमने प्राप्त होने राग-द्वेषधी रहित संयमी पुरुष परनी-जीवनी हिंसा
करने पीतान्ना लुपन्ती उच्छा करता नहीं ॥ सू० १ ॥

टीकार्थ—कष्टमय जीवन अध्यात्म दुःखने आतङ्क कहे थे शारीरिक होने
मानसिक भेदधी दुःख ने प्रकारनां थे कष्टक अर्थात् कष्ट आदिधी धवावाया दुःख
शारीरिक कहेवाय थे प्रियवियोग होने अप्रियसंयोग, कष्टनी अप्राप्ति होने इच्छित्य
आदिधी बनाय दुःखे ते मानसिक कहेवाय थे आ लने प्रकारनां दुःखरूप आतङ्कने
वेवावाया आतङ्कदर्शी कहेवाय थे। जबवा पद्वीवनिकाय अधवा वायुकायना समारम्भधी

પશ્યતીત્યાતઙ્કદર્શી ભવતિ, સ હિતાહિતવિવેકકુશલત્વાદ્ અહિતમ્=અથુમકરં વાયુ-
કાયસમારમ્ભગમસ્તીતિ જ્ઞાત્વા, એજસ્ય=એજત્તીત્યેજઃ કમ્પનશીલત્વાદ્ વાયુઃ,
તસ્ય, જુગુપ્સાયાં=નિન્દાયાં, સેવનપરિવર્જને સમારમ્ભનિવૃતૌ, ઇતિ યાવત્ ,

પ્રમ્નુઃ=સમર્થો ભવતિ । જુગુપ્સા, સંયમના, અકરુણા, વર્જના, વ્યાવર્તના,
નિવૃત્તિરિત્યેકાર્થાઃ ।

અયમાશયઃ—વાયુકાયસમારમ્ભકરુણે શારીરં માનસં ચ સર્વમેવ દુઃખં મયિ
સમાપદ્યેત, તસ્માદિદમાતઙ્કજનકત્વાદહિતમિતિ વિજ્ઞાતા, તત્સેવનલક્ષણસમારમ્ભ-
પરિહરણે સમર્થો ભવતીતિ ।

યઃ અધ્યાત્મમ્=આત્મનીતિ અધ્યાત્મમ્ સ્વાત્મગતં સુખં દુઃખં વેત્યર્થઃ,

હિત-અહિત કે વિવેક મેં કુશલ હોને સે વાયુકાય સે આરમ્ભ કો અહિતકર સમજ્ઞકર વાયુ
કે આરમ્ભ કા ત્યાગ કરને મેં સમર્થ હોતા હૈ । મૂલ મેં આયે હુએ જુગુપ્સા (દુગુણ) શબ્દ
કે ફરૂ અર્થ હોતે હૈ । જૈસે-સયમન, અકરુણ (ન કરના), વર્જન (ત્યાગના), વ્યાવર્તન
(હટના) ઓર નિવૃત્તિ (ત્યાગ) ।

આશય યહ હૈ—‘વાયુકાય કા આરમ્ભ કરને સે મુક્તે શારીરિક ઓર માનસિક સમી
દુઃખ પ્રાપ્ત હોંગે અત યહ આરમ્ભ અતકજનક હોને કે કારણ અહિતકર હૈ’ । એસા જાનને
વાલા ઉસકે સેવનરૂપ આરમ્ભ કે ત્યાગ મેં સમર્થ હોતા હૈ ।

જો અધ્યાત્મ કો અર્થાત્ અપને આત્મા મેં સ્થિત સુખ-દુઃખ કો જાનતા હૈ

થનાઙ્ક હુ ખ આતક કહેવાય છે, અને એને જોવાવાળા આતકદર્શી છે તે હિત-
અહિતના વિવેકમા કુશળ હોવાના કારણથી વાયુકાયના આરભને અહિતકર સમજીને
વાયુના આરભને ત્યાગ કરવામા સમર્થ હોય છે મૂલમા આવેલો ‘દુગુંછણા-જુગુપ્સા’
શબ્દના કેટલાય અર્થ થાય છે જેમકે -સયમન, અકરુણ-(નહિ કરવું) વર્જન,
(ત્યાગવું) વ્યાવર્તન, (હટવું) અને નિવૃત્તિ (ત્યાગ)

આશય એ છે કે—‘વાયુકાયનો આરભ કરવાથી મને શારીરિક અને માનસિક
સર્વ હુ ખ પ્રાપ્ત થશે, એ માટે એ આરભ આતકજનક હોવાના કારણે અહિતકર
છે,’ એ પ્રમાણે જાણવાવાળા એના સેવનરૂપ આરભના ત્યાગમા સમર્થ હોય છે

જે અધ્યાત્મને અર્થાત્ પોતાના આત્મામા સ્થિત સુખ-દુઃખને જાણે છે, તે ખાબ

बानाति स बहिः=परकीय सुखं दुःखं वा जानाति । ममात्मनि दुःखमसातवेदनीय-
कर्मोदयात् समापत्ति, सुखमपि सातवेदनोपकर्मोदयात् स्वानुभवसिद्धम्, एव
स्वात्मगतसुखदुःखमस्यक्षेत्रे परकीयसुखदुःखानुमानं कस्य ह्यनोतीत्यर्थः । उक्तमप्य
हीदुःखं पुनस्तमेव परावत्तयन्नाह—' यः वहिर्बानाति ' इत्यादि ।

य, बहिः=परात्मगत सुखं दुःखं वा जानाति, स अप्यात्म=स्वात्मगत
सुखं दुःखं वा जानाति । परेषां स्वस्य च सुखदुःखयोरनुकूलप्रतिकूलवेदनीयरूपे
स्वरूपे साम्याविति भावः ।

यथा-परविराषनापरिहारेण तत्फलभूतं स्वात्मनः सुखं, तथा
परपीडनेन तत्फलभूतं स्वात्मनो दुःखं भवति, एव परकीयमेव सुखं दुःखं वा

यह बात जराई दूसरे के सुख-दुःख को जानता है । और जन्मा में असातवेदनीय कर्म के
ज्वर से दुःख आया है और सातवेदनीय कर्म के ज्वर से सुख रवानुभव सिद्ध है । इस
प्रकार अपने आत्मा का सुख और दुःख जो प्रायश्च से जानता है, यह दूसरे के सुख-दुःख
का अनुमान कर सकता है । इसी अभिप्राय को पुष्ट करने के लिए यही बात फटकर कहती
है—'यों बाह्य को जानता है यह अप्यात्म को जानता है ।

जराई—'यों पराये सुख-दुःख को जानता है यह अपने आत्मा के सुख दुःख को
जानता है । पराये और अपने सुख-दुःख का अनुकूल वेदन और प्रतिकूल वेदन रूप
स्वरूप समान है ।

जमवा-परको पीडा पहुंचाने का त्याग करने से सुखरूप फल प्राप्त
होता है और पीडा पहुंचाने से दुःख मिळता है । इस प्रकार पराया सुख और दुःख

अर्थात् जीवना सुख-दुःखने ज्ञेये छे माया आत्मने विषे आसातवेदनीय कर्मना
उदयधी दुःख आत्मे छे जने सातवेदनीय कर्मना उदयधी सुख स्वानुभवसिद्ध छे
या प्रभावे पीदाना आत्मना सुख-दुःखनु अनुमान करी शके छे जे अलिप्रभने पुष्ट
हस्या भाटे जेव वात चलटावीने कहे छे—'जे जाहने ज्ञेये छे ते आहारने ज्ञेये छे ।

अर्थात्—'जे पराया सुख-दुःखने ज्ञेये छे ते पीकना आरभाना सुख-दुःखने
ज्ञेये छे पराया-जीवना जने पीकाना सुख-दुःखनु अनुकूल वेदन जने प्रतिकूल
वेदनरूप स्वरूप समान छे

अथवा—'जीवने पीडा पहुंचावना त्याग करवाधी सुखरूप ह्य प्राप्त होय
छे जने पीडा पहुंचावनाधी दुःख भजे छे

સ્વાત્મનઃ સુખરૂપેણ દુઃખરૂપેણ વા પરિણમ્યતે । એવં તયોઃ કાર્યકારણભાવં યો વિજાનાતિ, સ એવ સ્વાત્મગતસુખદુઃખવિજ્ઞાતેતિ ભાવઃ ।

પરકીયસુખદુઃખવિજ્ઞાતા સ્વાત્મનઃ સુખં દુઃખં વા જાનાતીત્યુક્તાર્થે હેતું પ્રદર્શયન્નાહ— ‘ એયં તુલ્લમન્નેસિ ’ ઇતિ । એતત્=સુખં દુઃખં વા, તુલ્ય=સદશમેવ, અન્યેષામ્=પરેષાં જીવનાં સ્વસ્વ ચેત્યર્થઃ ।

“ કટ્ટેણ કટ્ટણ્ણ વ, પાણ વિદ્ધસ્સ વેયણદ્દમ્મસ ।
જા હોઠ અણિવ્વાણી, ણાયવ્વ્યા સવ્વજીવાણ ॥
જહ મમ ણ પ્રિય દુક્ખ, જાણિય એમેવ જીવાણ ” ॥

છાયા-- કાષ્ઠેન કણ્ઠકેન વા પાદૈ વિદ્ધસ્ય વેદનાર્ત્તસ્ય ।

યા ભવતિ અનિર્વાણિ-જ્ઞાતવ્યા સર્વજીવાનામ્ ॥

યથા મમ ન પ્રિય દુઃખં જ્ઞાત્વા એવમેવ સર્વજીવાનામ્ । ” ઇતિ ।

હી અપને સુખ-દુઃખ કે રૂપ મેં પરિણત હો જાતા હૈ । ડસ પ્રકાર જો ડનકે કાર્યકારણ ભાવ કો જાનતા હૈ વહી અપને આત્મા કે સુખ-દુઃખ કા જ્ઞાતા હોતા હૈ ।

દૂસરોં કે સુખ-દુઃખ કા જ્ઞાતા હી અપને સુખ-દુઃખ કો જાનતા હૈ, ડસ વધન મેં હેતુ ડિખલાતે હુણ કહતે હૈ— ‘ યહ સુખ ઓર દુઃખ દૂસરોં કે ઓર અપને સમાન હી હૈ ’ । કહા મી હૈ —

લકડી સે યા કટક સે પૈર મેં વિંધ જાને કી વેદના સે પીહિત પુરુષ કો જો અસતોપ હોતા હૈ, વહી સવ જીવોં કો હોતા હૈ ।

જૈસે મુક્તે દુઃખ પ્રિય નહીં હૈ, ડસી પ્રકાર અન્ય અન્ય પ્રાણિયોં કો મી દુઃખ પ્રિય નહીં હૈ ” ।

આ પ્રમાણે ધીળના સુખ અને દુઃખ ખોતાના સુખ-દુઃખના રૂપમાં પરિણત થઈ જાય છે. આ પ્રમાણે જે તેના કાર્ય-કારણ ભાવને જાણે છે, તેજ ખોતાના આત્માના સુખ-દુઃખના જ્ઞાતા હોય છે

ધીળના સુખ-દુઃખના જ્ઞાતા જ ખોતાના સુખ-દુઃખને જાણે છે. આ કથનમાં હેતુ ખતાવતા થકા કહે છે કે —

“ આ સુખ અને દુઃખ ધીળના અને આપણા સમાન છે ” કહ્યું છે કે —

“ લાઠીથી અથવા કાટાથી પગમાં વિંધાઈ જવાની વેદનાથી પીડિત પુરુષને જે અતવેદના થાય છે, તેવીજ સર્વ જીવોને (વેદના) થાય છે ”

“ જેમ મને દુઃખ પ્રિય નથી, તે પ્રમાણે ધીળ પ્રાણીઓને પણ દુઃખ પ્રિય નથી. ”

अन्यत्र च—“मर्त्तव्यमिति यदुत्तं पुरुषस्योपजायते ।

शक्यस्तेनानुमानेन, परोऽपि परिरिक्षतुम्” ॥१॥ इति ।

स्वपर—सुखदुःखयास्तुत्यस्ववेदिनो न बायुकार्यं विराधयन्तीत्याह—
 ‘इह शान्तिगताः’ इत्यादि । इह=भिनप्रवचन, शान्तिगताः=स्वपरसुखदुःखयोः
 समत्यविधानाद् औपम्यमिकमात्रं प्राप्याः सम्पत्तिकन इत्यर्थः यद्वा=शान्तिः=
 सावधम्यापारपरिहारः, तामुपगताः द्रविकाः=रागद्वेषपरहिताः, यद्वा=द्रव्यः=
 संयमः कर्मद्रव्यकारिणात्, स विद्यते येषां ते द्रविकाः=कर्मनिवारणशीलाः
 संयमिनः शीघ्रितम्=अप्यजनाविना बायुकायस्य समारम्भेण प्राण्यान् परिरिक्षितं
 नावकाङ्क्षन्ति=नेच्छन्ति ।

दूसरी जगह कहा है—

‘तेरा मरना ही अच्छा है, ऐसा बाक्य सुनने मात्र से पुरुष को जो दुःख होता है,
 इसी में क्याच कमकर दूसरो की रक्षा करनी चाहिए” ॥ १ ॥

जो पुरुष स्व-पर सुख-दुःख को समान समझते हैं वे बायुकाय की निराधना
 नहीं करते, यही बात कहते हैं—

भिनशासन में अपने और पराये सुख-दुःख को समान समझकर जो उपशम
 मात्रको प्राप्त हुए हैं अर्थात् सम्पत्ति हैं अथवा पापमय व्यापारो के त्यागी हैं, तथा
 राग-द्वेष से रहित हैं, अथवा कर्मों को निवारण करनेवाले संयम से विमुक्ति हैं, वे
 परस आदि से बायुकाय का समारम्भ करके अपने प्राणों की रक्षा करने की इच्छा
 नहीं करते ।

तीस जगहाने यह कहा है—

“तारे भरतुं च साह्ये” जे प्रभावे सल्लगवाधी पुरुषने जे दुःख बाध
 छे ते अनुमानधी जीवनी रक्षा करनी जेहज्जे. ॥ १ ॥

जे पुरुष स्व-परना (पितातां जने पारक्षणा) सुख-दुःखने समान समझे छे
 ते बायुकायनी विराधना करता नही, ते बात कहे छे—

भिन शासनभा पितातां जने जीवनी सुख-दुःखने समान समझने जे उपशम
 प्राप्त बाध छे, अर्थात् सम्पत्ति छे अथवा पापमय व्यापारना ज्ञानी छे
 तथा राग द्वेषही रहित छे अथवा कर्मों निवारण करनेवाला संयमधी विमुक्ति छे ते
 वे आ आदिधी बायुकायने समारम्भ करीने पितातां प्राणोंनी रक्षा करवानी इच्छा करता नही.

જિનપ્રવચનોક્તચરણકરણસેવિનઃ સ્વપ્રાણરક્ષણાર્થમપિ પરજીવોપમર્દનં નેચ્છન્તિ, તે હિ અચાક્ષુપવાયુજીવવિરાધનાવિનિવૃત્તાઃ કથમન્યચાક્ષુપૃથિવ્યાદિજીવોપમર્દને પ્રવર્તેત, ન કથમપીતિ ભાવઃ ।

અથ વાયુવાયસ્ય સમ્યગ્જ્ઞાનાર્થં લક્ષણાદ્યષ્ટ દ્વારાણિ નિરૂપણીયાનિ । તત્ર લક્ષણદ્રૂપણાપરિમાણશસ્ત્રોપભોગદ્વારાણિ યથાક્રમં નિરૂપ્યન્તે । અવશિષ્ટવધવેદનાનિવૃત્તિ દ્વારાણિ પૃથિવીકાયોદેશે યથા કથિતાનિ તથૈવાવગન્તવ્યાનિ ।

જિનાગમ મેં કથિત ચરણ-કરણ કા સેવન કરને વાલે અપને પ્રાણો કી રક્ષા કરને કે લિપ્ મી દૂસરે જીવ કી હિંસા કરને કી અમિલાષા નહીં કરતે । વે ચક્ષુ સે ન દિરલાઈ દેને વાલે વાયુકાય કે જીવો કી વિરાધના સે મી નિવૃત્ત હોતે હૈં તો ચક્ષુ-ગોચર અન્ય પૃથ્વીકાય આદિ કે જીવો કી વિરાધના મેં કેસે પ્રવૃત્ત હો સકતે હૈં-કિસી પ્રકાર મી નહીં ।

વાયુકાય વા સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરને કે લિપ્ લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારો કા નિરૂપણ કરના ચાહિપ્ । ડનમેં સે લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર ઓર ડપભોગ દ્વારો કા ક્રમ સે નિરૂપણ કરતે હૈં । શેષ વધ, વેદના ઓર નિવૃત્તિ દ્વાર જૈસે પૃથ્વીકાય કે ડદેશ મેં કહે હૈં વૈસે હી યહાં સમજ્જ લેને ચાહિપ્ ।

જિનાગમમા કહેલા અરણ્ય-કરણ્યનું સેવન કરવાવાળા પોતાના પ્રાણોની રક્ષા કરવા માટે પણ ખીન્ન જીવોની હિંસા કરવાની અમિલાષા કરતા નથી તે નેત્રથી નહિ દેખાતા વાયુકાયના જીવોની વિરાધનાથી પણ નિવૃત્ત હોય છે, તો પછી નેત્રથી જોઈ શકાય તેવા ખીન્ન પૃથ્વીકાય આદિના જીવોની વિરાધનામા કેવી રીતે પ્રવૃત્ત થઈ શકે છે ? કોઈ પ્રકારે પણ થઈ શકતા નથી

વાયુકાયનું સમ્યગ્જ્ઞાન પ્રાપ્ત કરવા માટે લક્ષણ આદિ આઠ દ્વારોનું નિરૂપણ કરવું જોઈએ. તેમાંથી લક્ષણ, પ્રરૂપણા, પરિમાણ, શસ્ત્ર અને ડપભોગ દ્વારોનું ક્રમથી નિરૂપણ કરે છે, શેષ-(ખાટી) વધ, વેદના અને નિવૃત્તિ દ્વાર જેવી રીતે પૃથ્વીકાયના ડદેશમા કદમા છે, તેવીજ રીતે અહિં સમજ્જ લેવું જોઈએ

सप्तमद्वारम्—

ननु रूपमिदं दायते वायुः सचिच इति?, अत्रोच्यते—सृष्टतां तावदनुमानं प्रमाणम् वायुभेदनाशान् अनन्यप्रेरिताऽनियततिर्पगमनवत्त्वात्, हरिणगत्रपादिवदिति । अनियतविशेषणोपादानात् परमात्मो अपरप्रेरित-तिर्पगगतिसम्बन्धेऽपि नानैकान्तिकस्त्वम्, तस्य हि परप्रयोगनिरपेक्षस्य स्वाभाविकी गतिरनुभूतिर्मपति तस्मात् सा नियतैव । भागमोऽपि प्रमाणं, यथा—इत्यैकालिकदृष्टे—“ वाठ चिचमंतमन्त्राया अप्येगजीवा पुडोसत्ता अमस्य सत्यपरिणयण ” । इति,

वायुभिववानारुपातोऽनेकजीवः पृथक्सरः अन्यत्र दृश्यपरिणतात् । इति च्छाया

सप्तमद्वारम्—

संका—वायु सचिच है, यह वात किस प्रकार जानी जाय ।

समाधान—पहले अनुमान प्रमाण ही संचिच—वायु भेदनायुक्त है क्यों कि वह हमें की प्रेरणा बिना अनियत रूप से तिरछी गति करता है, जैसे हिरन रोस आदि । हेतु में 'अनियत' विशेषण लगा देने से प्रेरणा का अभाव और तिरछी गति होने पर भी परमाणु व्यवहार नहीं होता । परमाणु दूसरे की प्रेरणा के बिना जो गति करता है वह गति भेरी के अनुसार नियत ही होती है—अनियत नहीं । इस विषय में भागम भी प्रमाण है । इत्यैकालिक सूत्र में कहा है—

“ वायु सचिच कही गई है । वह अनरु जीवोंवाली है, और उन जीवों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् है । किन्तु दृश्यपरिणत वायु सचिच नहीं है ” ।

सप्तमद्वारम्—

शंका—वायु सचिच है तो वात केवी रीते जानी जाय ?

समाधान—प्रथम अनुमानप्रमाण कथिचि—वायु ध्वनयुक्त है केभके ते जीवनी प्रेरणा बिना अनियतवत्त्वी तिरछी गति करे है । ७म-अथ २४ आदि । हेतुमा अनियत विशेषण लक्षाधी देवाधी परप्रेरणाको अभाव अने तिरछी गति होता छतय वय परमाणुवी अविव्यार यतो नथी, परमाणु जीवनी प्रेरणा बिना ७ अति करे है ते अति भेरी—अनुभार नियतव होता है अनियत नहि ।

आ विषयमां आरभ यज प्रमाण है इत्येकालिक सूत्रमा कथुं है—

“ वायु सचिच कदेवाभां आभ्यो है ते अनेऽ एववाप्यो है अने ते एवेनु अस्तित्व पृथक्-पृथक् (७५—७६) उ भाव दृश्यपरिणत वायु सचिच नथी ”

प्ररूपणाद्वारम्-

वायुकाया द्विविधाः-सूक्ष्मा वादराश्चेति । तत्र सूक्ष्माः सकललोकव्यापिनः, वादरास्तु लोकैरुदेशे सन्ति । वादराः पञ्चविधाः-उत्कलिकावातः, मण्डलिकावातः, गुञ्जावातः, घनवातः, शुद्धवातश्चेति । ये तु ते पौरस्त्यादिभेदा लोकवादिप्रकरणे प्रागभिहितास्तेऽप्यत्रैवान्तर्भूताः । यः स्थित्वा स्थित्वा उत्कलिकाभिर्वाति स उत्कलिकावातः, वातोलीरूपो मण्डलिकावातः, यो गुञ्जन् वाति स गुञ्जावातः, पृथिव्यादीनामाधारतया व्यवस्थितो हिमपटलकल्पोऽतिघनीभूतो घनवातः, मन्द-
स्तिमितः शीतकालादिषु शुद्धवातः ।

संक्षेपेण वायुकायास्त्रिविधाः-सचित्ता अचित्ता मिश्राश्च । उत्कलिकावातादयः

प्ररूपणाद्वार-

वायुकाय दो प्रकार का है-सूक्ष्म और वादर । सूक्ष्म जीव समस्त लोक में रहते हैं । वादर पाँच प्रकार के हैं-(१) उत्कलिकावात (२) मण्डलिकावात (३) गुञ्जावात (४) घनवात और (५) शुद्धवात । पौरस्त्य आदि जो भेद लोकवादी के प्रकरण में पहले बतलाये हैं वे सब भी इन्हीं भेदों में अन्तर्गत हो जाते हैं । ठहर-ठहर कर उत्कलिकारूप से बहनेवाली वायु उत्कलिकावात है । वातोलीरूप वायु को मण्डलिकावात कहते हैं । गूँज-गूँज कर बहने वाली वायु को गुञ्जावात कहते हैं । पृथ्वी आदि के आधार पर स्थित हिमपटल के समान अत्यन्त सघन वायु को घनवात कहते हैं । शीतकाल आदि में धीमे-धीमे चलने वाली वायु शुद्धवात है ।

संक्षेप से वायुकाय के तीन भेद हैं-(१) सचित्त (२) अचित्त और

प्ररूपणद्वार-

वायुकाय के प्रकारना छे (१) सूक्ष्म अने (२) वादर. सूक्ष्म एव समस्त लोकमा व्याप्त छे अने वादर, लोकना अेक-देशमा रहै छे वादर पाय प्रकारना छे (१) उत्कलिकावात, (२) मण्डलिकावात, (३) गुञ्जावात, (४) घनवात अने (५) शुद्धवात

पौरस्त्य आदि के भेद लोकवादीना प्रकरणमा पहिला बताव्या छे, ते सबे आ दोहोमा अन्तर्गत थई नय छे जश-रही-रहीने उत्कलिकारूपमा बडेवावाणो वायु ते उत्कलिकावात छे वातोलीरूप वायुने मण्डलिकावात कहै छे गूँज-गूँज ने बडेवावाणी बवाने गुञ्जावात कहै छे पृथ्वीआदिना आधारपर स्थिति हिमपटल समान अत्यन्त सघन वायुने घनवात कहै छे शीतकाल आदिमा धीमे-धीमे बडेतो वायु ते शुद्धवायु छे संक्षेपथी वायुकायना त्रयु भेद छे (१) सचित्त (२) अचित्त अने (३) मिश्र.

अथ सर्वथा वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनगारान्, तथा वायुकाय-
समारम्भप्रवृत्तान् द्रव्यलिङ्गिनश्च विविच्य प्रतिबोधयितुमाह—‘लज्जमाणा.’
इत्यादि ।

अथ शस्त्रद्वारम्—

मूलम्—

लज्जमाणा पुढो पास । अणगारा मो—त्ति एगे पवयमाणा जमिणं विस्वस्ववेहिं
सत्येहिं वाउरुम्मसमारंभेणं, वाउसत्थ समारंभमाणा अण्णे अणेगस्ववे पाणे
विहिंसति ॥ सू० २ ॥

छाया—

लज्जमानाः पृथक् पश्य । अनगारा. स्म इति एके प्रवदमानाः, यदिमं
विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकायसमारम्भेण, वायुकायशस्त्र समारभमाणा अन्यान् अनेक
रूपान् प्राणान् विहिंसन्ति ॥ सू० २ ॥

वायुकाय के समारभ का सर्वथा त्याग करने वाले मुनियों को और वायुकाय के
समारम्भ में प्रवृत्ति करने वाले द्रव्यलिङ्गियों को अलग-अलग बतलाने के लिए कहते हैं—
‘लज्जमाणा.’ इत्यादि ।

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकाय का समारम्भ करने में सकोच करने वाले अनगारों को अलग
देखो, और कोई-कोई ‘हम अनगार हैं’ ऐसा कहते हुए नाना प्रकार के शस्त्रों से वायुकाय
का समारम्भ करके, वायुकाय का समारम्भ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों की
हिंसा करते हैं उनको अलग देखो ॥ सू० २ ॥

वायुकायना समारभनेो सर्वथा त्याग करवावाणा मुनिञ्चोने अने वायुकायना
समारभमा प्रवृत्ति करवावाणा द्रव्यलिङ्गिञ्चोने नूडा-नूडा अताववा भाटे ढडे छे —
‘लज्जमाणा.’ धत्यादि

शस्त्रद्वार—

मूलार्थ—वायुकायना समारभमा सकोच करवावाणा अणुगारेने नूडा नूडो,
अने कोध-कोध ‘अमे अणुगार छीअे’ अेवु ढडेनारा अने नाना प्रकारना शस्त्रोथी
वायुकायनेो समारभ करीने, वायुकायनेो समारभ करता थका अीन अनेक प्रकारना
प्राणिञ्चोनी हिंसा करे छे तेने पञ्च नूडा-नूडा नूडो ॥ सू० २ ॥

टीका—

उन्नमानाः परमकरुणायाऽर्चयित्वा वायुकायसमारम्भे पराह्मुखाः,
वायुकायसमारम्भपरित्यागिनोऽनागाराः, पृथक्=विभिन्ना, क्वचन प्रत्यक्ष
ज्ञानिनोऽविभिनपर्ययकेवलिनः, केचित् परोक्षज्ञानिनो भाषित्वात्मानः सन्तीति
पश्य । यद्वा-पृथक्=अन्यलिङ्गिन्य पृथग्भावेन सन्तीति पश्य । इमे वायुकायसमार
म्भकरये भीतास्तथा उद्विग्नाक्लिष्टप्रियागैर्नायुकायसमारम्भपरित्यागिनो विघ्न
इति पिलोक्येत्यर्थ ।

एक पुनरन्वयतु 'अयमनागाराः स्मः' इति सामिमानं प्रवदमानाः 'पपमव
वायुकायपरक्षणपराः महाप्रतपारिणः' इति प्रकृत्या द्रव्यलिङ्गिनः सन्ति, तान
पृथक् पश्य ।

टीकार्थ—परम करुणा से आर्द्र-विघ्न होने के कारण वायुकाय के समारम्भ से
विमुख, वायुकाय के समारम्भ का स्वभा त्याग करने वाले अनगर भिन्न हैं-कोई अवि-
ज्ञानी कोई मन-पययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी हैं और कोई मनिधुतज्ञान के धारक
भावितामा साधु हैं उन्हें देखो । अथवा उन्हें द्रव्यलिङ्गियों से भिन्न समझो । ये अनगर
वायुकाय का समारम्भ करने में मीठ हैं क्रुद्ध हैं उद्विग्न हैं तथा तीन करण तीन योग से
वायुकाय का समारम्भ करने के योगी हैं ।

और कोई-कोई 'इम अनगराः' इस प्रकार अविमानपूर्वक कहते हुए 'इम ही
वायुकाय फी रसा करने वाले पंचमहाप्रतपारी हैं' ऐसा प्रकृत्य करने वाले द्रव्यलिङ्गी
हैं उन्हें अनगरा से भ्रम समझो ।

टीकार्थ—परम करुणाधी आर्द्र-विघ्न होकर वायुकायना समारम्भही
विमुख वायुकायना समारम्भने स्वभा त्याग करवापणा अनगर व्यक्त है-कोई
अविनानी कोई मन पययज्ञानी और कोई केवलज्ञानी है और कोई मनि-धुत
ज्ञानना धारक भावितारभा साधु है, तेने लुभो अथवा तेने द्रव्यलिङ्गिनीही व्यक्त
अथवा ते अनगर वायुकायने समारम्भ करवाभा पीठ (भीत वाग) है क्रुद्ध है
उद्विग्न है तथा त्रण करण त्रण योगधी वायुकायने समारम्भ करवाना त्यागी है

अने कोई-कोई अने अनगर हीने' अथ प्रकृत्य अविमानपूर्वक कहे है
है 'अने वायुकायनी रसा करवापणा पंचमहाप्रतपारी हीने. अने वायुकाय
करना द्रव्यलिङ्गी है तेने अनगरधी व्यक्त अथवा

इमे खल्वनगारामिमानिनो द्रव्यलिङ्गिनो मनागप्यनगारगुणेषु न प्रवर्तन्ते, नापि गृहस्थकृत्यं किञ्चित् परित्यजन्तीति दर्शयति—‘यदिमम्.’ इत्यादि ।

यद्=यस्माद्, विरूपरूपैः=विभिन्नस्वरूपैः, शस्त्रैः शस्त्रं हि द्रव्यभावभेदाद् द्विविधम्, तत्र द्रव्यशस्त्रं-स्वकायपरकायोभयकायभेदात् त्रिविधम् । तत्र स्वकायशस्त्रं-शीतवायोरुष्णवायुः, उष्णवायोश्च शीतवायुः पूर्वादिगादिवायोः पश्चिमदिगादिवायुः स्वकायशस्त्रम् । व्यजन-तालवृन्त-शूर्प-चामर-पत्र-वेलकर्णाभिधारणादयः, घर्मातीं यद् वह्निरवतिष्ठते वातागमनमार्गं साऽभिधारणा,

तथा-चन्दनोशीरादीनां गन्धाः, अग्निज्वालाप्रतापश्च, तथा मृशलादिना

अनगार होने का अभिमान करने वाले ये द्रव्यलिङ्गी अनगार के गुणों में तनिक भी प्रवृत्ति नहीं करते और गृहस्थों के किसी कृत्य का त्याग नहीं करते हैं । यह आगे कहते हैं.—

द्रव्यशस्त्र और भावशस्त्र के भेद से शस्त्र दो प्रकार का है । द्रव्यशस्त्र के तीन भेद हैं—(१) स्वकाय (२) परकाय और (३) उभयकायशस्त्र । उष्णवायु, शीतवायु का और शीतवायु, उष्णवायु का, तथा पूर्वादिदिशाओंका वायु, पश्चिमादिदिशाओं के वायु का स्वकायशस्त्र है, परवा, तालवृन्त, सूय, चामर, पत्र, कपडा और अभिधारणा आदि, घूप से पीडित पुरुष हवा आने के रास्ते में ठहरता है उसको अभिधारणा कहते हैं ।

तथा-चन्दन, खसखस आदि की गंध, आगकी ज्वाला, ताप आदि परकायशस्त्र है ।

अणुगार डोवानुं अभिमान करवावाणायो द्रव्यलिङ्गी (साया) अणुगारना शुद्धोभा जरा पक्षु प्रवृत्ति करता नहीं, अने गृहस्थोना केछि पक्षु कार्योना त्याग करता नहीं ते आगण कडे छे

द्रव्यशस्त्र अने भावशस्त्रना लेदशी शस्त्र जे प्रकारना छे, द्रव्यशस्त्रना त्रक्षु लेद छे (१) स्वकाय, (२) परकाय, (३) उभयकाय-शस्त्र, उष्णवायु, शीतवायुने अने शीतवायु, उष्णवायुने तथा पूर्वादि दिशाओना वायुने पश्चिम आदि दिशाओना वायु स्वकायशस्त्र छे वासने अनावेदो तथा तालपत्रने अनावेदो । पत्रो, सूयडा, चामर, पत्र, वस्त्रभंड अने अभिधारणा आदि, तापशी पीडित पुरुष हवा आववाना रस्तामा थोली जाय छे, तेने अभिधारणा कडे छे

तथा-चन्दन, खसखस, आदिनी गंध, अग्नि, अग्निनी ज्वाला, ताप आदि तथा

कण्डनं, तुपाद्यपसारणार्थं रूपास्फासनं, बल्लादिगुणस्तरणाम्प्रतिवारणाय स्त्रादीना-
माग्नेयमास्फोटनं प्रस्फोटनं च, तथा क्षीघ्रगमनं वायुकायस्य विरापकं परकाय-
कम् । तमयकायसंज्ञम्—अनावृत्युत्थेन मापकम्, एतत्सर्वं द्रव्यसंज्ञम् । मापकञ्च
तु मनोवाङ्मयाणां दुष्प्रणिधानम् । एवंविधैः श्लैः, वायुकायसमारम्भेण वायुकायो-
पमर्दकसायसंज्ञापारेण, इमं वायुकार्यं विहितन्ति ।

वायुकार्याहसायां प्रवृत्ताः स्वच्छ पद्विधीयन्ति कायरूपं लोके सर्वमेव
विहित्वा—‘वायुकायसंज्ञम्’ इत्यादि । वायुकायसंज्ञा—वायुकायोपमर्दकं
द्रव्यमावृत्तं पूर्वोक्तमकार, समारम्भात्—वायुकार्यं प्रति प्रयुजानाः अन्त्यान्—वायु
कायमिधान् अनेकरूपान् पृथिवीकायादीन् स्वावरान् द्वीन्द्रियादीन्मसांश्च प्राजान्
प्राणिनां, विहितन्ति ।

पृष्ठ से फूटना छिन्ने हटाने के स्थि सूप से फटफटा, फूटनेत आदि भाङने के स्थि
वह आदि को फटकारना—सूतकन्य तथा अन्तो कन्य मो वायुकाय का विरपक परकाय
शब्द है सुते सुल से बोझना तमयकायशब्द । मम बचन, और कायका अप्रस्तव व्यापार
मावृत्त है । इम नाना प्रकार के रज्जों से द्रव्यसिद्धी वायुकाय की हिंसा करने वाले सायस
व्यापार करके वायुकाय की हिंसा करते हैं ।

जो वायुकाय की हिंसा में प्रवृत्त होता है वह पद्विकाररूप समस्त लोक की
हिंसा करता है, यह कहते हैं—वायुकाय की विरामना करने वाले पूर्वोक्त द्रव्य और मावृत्तों
का वायुकाय के प्रति प्रयोग करने वाले वायुकाय से भिन्न अनेक प्रकार के पृथ्वीकाय आदि
रथावरो की तथा द्वीन्द्रिय आदि प्रसजीवों की भी हिंसा करता है ।

भूतजन्धी कूटनुं, छात काटका भाटे, रूपस्य जी कटकनुं, पूण-रेती ववेरेने ज जेरवा
भाटे वरु ववेरेने काटकनुं-पल्लवनुं, तथा अलदी-अलदी गालनुं ते पञ्च वायुकायनुं
विरापक परकाय शब्द छे । उवाच-ब्रह्मा भाटे गालनुं ते उल्लवकायशब्द छे । ज्ञा सर्व
वायुकायनी द्रव्यशब्द छे मन्, पञ्च अने कायानो अप्रस्तव (वभाजुवा लावक नदि ते)
व्यापार ते लावशब्द छे । ज्ञा नाना प्रकारना शब्देषु द्रव्यसिद्धी वायुकायनी हिंसा
करनावाजायो सायस व्यापार करीने वायुकायनी हिंसा करे छे ।

जे वायुकायनी हिंसायां प्रवृत्त बाव छे ते पद्विकाररूप समस्त लोकनी हिंसा
करे छे जे ठके छे—वायुकायनी विरामना करवावाणा पूर्वोक्त द्रव्य अने लावशब्दने
वायुकायना प्रति प्रयोग करवावाणा वायुकायनी बिन्न अनेक प्रकारना पृथ्वीकाय आदि
रथावरोनी, तथा द्वीन्द्रिय आदि वस लोकेनी पञ्च हिंसा करे छे ।

इह बहुविधद्रव्यलिङ्गिनो विद्यन्ते, तत्र शाक्यादयो व्यजनादिशस्त्रैर्वायुकाय-
समारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति, कुर्वतोऽनुमोदयन्ति, तथा च संपातिमादीनां हिंसनेन
षट्जीवनिकायविराधका भवन्ति । दण्डिनोपि—“वयं प्रञ्चमहाव्रतधारिणो जिना-
ज्ञाराधका अनगाराः स्मः” इत्यादि प्रवदमानाः साध्वाभासाः सावधमुपदिशन्ति,
शास्त्रप्रतिषिद्धमपि वायुकायसमारम्भं कुर्वन्ति, कारयन्ति च । ते हि अनावृतमुखेन
वदन्ति गायन्ति च । तथा अग्रपूजादौ विविधवाधनृत्यादिकं कारयन्ति, एतत्सर्वं
मिथ्यादर्शनशल्याभिधं पापमाचरन्ति ।

उक्तञ्च—“गंधव्वनद्ववाइय—लवणजलारत्तिआइदीवाई ।

जं किच्चं तं सव्वं—पि ओअरइ अगपूयाए ” ॥ १ ॥

ससार में तरह-तरह के द्रव्यलिङ्गी हैं, उन में से शाक्य आदि परवा वगैरह से
वायुकाय का आरम्भ करते हैं, कराते हैं और आरम्भ करने वाले की अनुमोदना करते हैं,
और संपातिम (उडकर अचानक आजाने वाले) आदि जीवों की हिंसा करके षट्काय के
विराधक बनते हैं । दूठे साधु दण्डी भी 'हम पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवान् की
आज्ञा के आराधक अनगार हैं' इस प्रकार कहते हुए सावध का उपदेश देते हैं । शास्त्र
में निषिद्ध वायुकाय का समारंभ करते हैं और कराते हैं । वे खुले मुख से बोलते और गाते
हैं, तथा अग्रपूजा आदि में विविध प्रकार से वाध एव नृत्य आदि कराते हैं । यह सब
मिथ्यादर्शनशल्यानामक पाप है । वे इसका आचरण करते हैं । जैसे कहा है—

स सारभां तरेह-तरेडना द्रव्यलिङ्गी छे, तेभांथी शाक्य आदि पया वगेरेथी
वायुकायने आरंभ करे छे, करवे छे, अने आरंभ करवावाणाने अनुमोदन आपे
छे, अने संपातिम (उडीने अचानक आववावाणा) आदि लोवानी हिंसा करीने
षट्कायना विराधक अने छे. इंठी यक्ष 'अमे पंचमहाव्रतधारी तथा जिन भगवाननी
आज्ञाना आराधक अक्षुगार छीये.' आ प्रभाखे कहेता थका सावधने उपदेश आपे
छे शास्त्रमा निषिद्ध मनायेला वायुकायने समारंभ करे छे अने करवे छे ते युद्धा
मुअथी-उघाडा मोढे-मोढे छे अने गाय छे, तथा अग्रपूजा वगेरेमा विविध प्रकारथी
वाध अने नृत्य आदि करवे छे आ सवे° मिथ्यादर्शनशल्या नामनु पाप छे ते अनेनु
आचरण करे छे. जेम कहुं छे-

छाया—गन्धर्षतृत्पवादित्र-स्वणमकाराप्रिकादिदीपादयः ।

पत्किञ्चित्कृत्यं सत्सर्वमप्यवतरस्यप्रपूमापाम् ॥ १ ॥ इति ।

किञ्च—सप्तदशमेदिपूमाभिषावपि गीततृत्पवाद्यानि कर्त्तव्यतयोपदिशन्ति ।

किञ्चैकविंशतिविधपूजायामपि नृत्पगीतवादिभ्रामरवीजनैश्च वायुकायसमा-
रम्भं कारयन्ति ।

उक्तञ्च—“स्नान विक्षेपनपिसूप्यवास—

धूपमदीपफलतन्दुलपत्रपूरीः ।

नैवेद्यवारिवसनैश्चमरातपत्र,—

वादिप्रगीतनटनस्तुतिकोशहृदधा ॥ १ ॥

इत्येकविंशतिविधा जिनराजपूजा ” इत्यादि ।

‘गाना, नाचना बजाना स्वण—कल्ल भारती करना, दीपक बजाना आदि भित्ते
कार्य हैं, वे सब अग्रपूजा में किये जाते हैं ’ ॥१॥

तथा वे प्रथमस्तिमी तण्डी ‘सत्तरप्रकार की पूजा में भी गीत, सुर्य और वायु आदि
क्रियाएँ करनी आदिप’ ऐसा अपदेश देते हैं ।

तथा इकदशमेद्री पूजा में भी नृत्य गीत, वादिप्र तथा चामर और पंसा आदि के
द्वारा वायुकाय का समारंभ कराते हैं । वैसा कहा है —

“स्नान, विक्षेपन, आमूकत्र, पुष्य वास धूप दीप, फल, पावक पत्र, सुपारी, नैवेद्य
कल्ल, वल्ल चामर, छत्र वादिप्र गीत नाट्य, स्तुति और कोशहृदि, इस तरह इकदश प्रकार
की जिन भगवान् की पूजा होती है ” ॥१॥

वाजुं, नाचजुं, जलजुं, गीतुं कल्ल, आरती करनी, दीपक—दीवे जलजे
आदि नेटलां आय छे ते सर्वं अग्रपूजाभां करवाभां आवे छे.’ ॥ १ ॥

तथा ते इन्द्रविगी—इ की सत्तरप्रकारनी पूजाभां पञ्च क्रियां नृत्य जने वायु
वालात्र आदि क्रियाजो करनी जेधंजे जेवे उपदेश आपे छे.

तथा जेकवीसवेदी पूजाभां पञ्च नृत्य, गीत, वालात्र तथा चामर जने पञ्च
आदि द्वारा वायुकायको समारंभ करवे छे जेभ कहुं पञ्च छे—

“स्नान, विक्षेपन, आमूकत्र, पुष्य, वास, धूप, दीप, इल धोना, पत्र, सोपारी, नैवेद्य,
कल्ल, वल्ल चामर छत्र, वालात्र, गीत, नाच स्तुति जने कोशहृदि (प्रभुगाना नामे
नाचुं—चन—गीहृदि) आ प्रभुजो जेकवीस प्रकारनी जिनभगवाननी पूजा भाय छे.” ॥१॥

अलमधिकेन—एवमपि ते प्रलपन्ति—यदि जिनभक्तयुद्धेकेण साधुरपि नृत्येत्तदा नास्ति दोष इति ॥ सू० २ ॥

अथ सुधर्मा स्वामी जम्बूस्वामिनं प्राह—‘तत्थ खलु.’ इत्यादि ।

मूलम्—

तत्थ खलु भगवत्या परिण्णा पवेइया । इमस्स चैव जीवियस्स परिवंदणमाणण-
पूयणाए जाइमरणाभोयणाए दुक्खपडिधायहेउं से सयमेव वाउसत्थं समारंभइ,
अण्णेहिं वा वाउसत्थं समारंभावेइ, अण्णे वाउसत्थं समारंमते समणुजाणइ, तं से
अहियाए, तं से अबोहीए ॥ सू० ३ ॥

छाया—

तत्र खलु भगवता परिज्ञा प्रवेदिता । अस्य चैव जीवितस्य परि-

ज्यादा क्या कहें ! वे यहाँ तक भी बकते हैं कि—जिनराज की भक्ति में मस्त होकर अगर साधु भी नाचने लगे तो भी कोई दोष नहीं है अर्थात् वह आराधक है ॥ सू० २ ॥

सुधर्मा स्वामी जम्बू स्वामी से कहते हैं—‘तत्थ खलु’ इत्यादि ।

मूलार्थ—भगवान् ने वायुकाय के आरंभ के विषय में उपदेश दिया है । इसी जीवन के परिवन्दन, मानन, और पूजन के लिए, जन्म—मरण से छुटकारा पानेके लिए, दुःख का नाश करने के लिए लोग स्वयं वायुकायशरत्न का आरंभ करता है, दूसरों से वायुकायशरत्न का आरंभ कराता है और वायुकायशरत्न का आरंभ करने वाले दूसरों की अनुमोदना करता है । यह उसके अहित के लिए और उसकी अबोधि के लिए है ॥ सू० ३ ॥

विशेष शु कहीअे, ते अेटवे सुधी पणु कडे छे के—जिनराजनी लक्षितभा मस्त थधने अगर साधु पणु नाच करवा लागे तो पणु केअ होष नथी अर्थात् ते आराधक छे ॥२॥

सुधर्मास्वामी जम्बूस्वामीने कडे छे—‘तत्थ खलु’ इत्यादि

मूलार्थ—भगवाने वायुकायना आरंभना विषयमा उपदेश आधे छे आ एवना परि वन, मानन अने पूजा भाटे, जन्म, मरणाथी छुटवा भाटे, दु अने नाश करवा भाटे दोक स्वय—पोते वायुकायशरत्नने आरंभ करे छे, अने पासे वायुकायशरत्नने आरंभ करावे छे अने वायुकायशरत्नने आरंभ करवावाणा अने अने अनुमोदन आये छे । ते अने (पोताना) अहित भाटे अने तेमनी अबोधिने भाटे छे ॥ ३ ॥

बन्धनमाननपूमनाय, भाविमस्त्रमोषनाय, दुःस्वप्रतिपातहेतुं स स्वयमेव वायुक्षत्र
समारमते, अन्यैर्वा वायुक्षत्रं समारम्भयति, अन्यत् वायुक्षत्रं समारममाणान् समज्ज
जानाति, तत् तस्याहिताय, तत् तस्याबोधये ॥ सू० ३ ॥

टीका—

सम=वायुकायसमारम्भे, मगवता=श्रीमहावीरेण, परिष्ठा=इ-प्रत्यास्थान-
मेदात् द्विविधा, स्वच्छ=निश्चयेन, प्रवेदिता=प्रतिबोधिता । कर्मरज-परिहरणार्थं मध्य-
जीवेन परिष्ठाज्वर्यं शरणीकरणीयेति मगवता प्रतिबोधितमिति भावः ।

उपमोगद्धार—

श्लोकः कस्मै प्रयोजनाय वायुकायमुपमर्दयतीत्याह—‘अस्य वैश्व
धीवितस्य’ इत्यादि । अस्यैव=अल्पकालावस्यापिन, जीवितस्य=जीवनस्य
सुखार्थम् व्यजन-तालवृन्त-मल्ल-ध्मात्-फूटकारा-ध्मात्सादिभिः, धीतोष्णवायु

टीकार्थ—वायुकाय के समारम्भ के विषय में श्री महावीरने उपरिष्ठा तथा प्रत्या-
स्थानपरिष्ठा बतलाव है । तात्पर्य यह है कि—कर्मरूपी रजको हटाने के लिए मध्य जीव को
परिष्ठा व्यवस्थ स्वीकार करना चाहिये, ऐसा उपदेश मगवतने दिया है ।

उपमोगद्धार—

श्लोक किस प्रयोजन से वायुकाय को विरूपना करते हैं ? यह बतलाते हैं—इस अल्पकालीन
जीवन के सुख के लिए पंखा ठाढ़पना दिखाना, धौकनी का धौकना, फूट मारना, घास लेना
आदि क्रियाओं द्वारा तथा शीत और उष्ण वायुका सेवन द्वारा वायुकाय को हिसा करते हैं ।

टीकार्थ—वायुकायना समारम्भना विषयमा श्रीमहावीरे उपरिष्ठा तथा प्रत्यास्थान
परिष्ठा जतावी छे तात्पर्यं जे छे छे -कर्मरूपी रजने दूर करवा भाटे लख लुनेजे
परिष्ठाणे अवस्थ स्वीकार करी देवे जेछजे आ प्रभासे अजवाने उपदेश जापये छे

उपमोगद्धार—

श्लोक क्या प्रयोजनसे वायुकायना विरूपना करे छे ? जे जतावे छे आ अल्प
कालीन जीवनना सुख भाटे पजा तात्पर्यमा दृष्टाववा अमल्ल अमली-कृ ३ भावनी, आस
देवे, आदि क्रियाजोद्वारा तथा शीत जने उष्ण (हवा जने गरम) वायुना सेवनद्वारा

सेवनेश्च, तथा परिवन्दन-मानन-पूजनाय, परिवन्दनं=प्रशंसा, तदर्थ-दृतिवाधवेणु-
 प्रभृतिवादनादौ, माननं=जनसत्कारस्तदर्थ, व्यजनयन्त्रादिप्रचालनादौ,
 पूजनं=वस्त्ररत्नादिलाभस्तदर्थं वायुयान-वायुयन्त्रादिनिर्माणादौ, तथा जाति-
 मरणमोचनार्थं=देवप्रतिमाभिमुख नृत्यगीतवादित्रप्रयोगे, व्यजनचामरादिवीजने च,
 तथा दुःखप्रतिघातहेतु=व्याधिप्रतीकारार्थं नवीनवैज्ञानिकोद्भावितवायु-
 चिकित्साया, तथा-तालवृन्तादिना वायुकायोद्भावने स=जीवनसुखाद्यर्थी,
 स्वयमेव वायुशस्त्रं=वायुकायोपमर्दकं-शस्त्रं समारभते=व्यापारयति, अन्यैर्वा वायु-
 कायशस्त्रं समारम्भयति=प्रयोजयति, अन्यान् वायुशस्त्रं समारभमाणान् समनु-

तथा परिवन्दन अर्थात् प्रशंसा पाने के लिए, मणकवाद्य और वांसुरी बजाकर, मानन अर्थात्
 जनसत्कार के लिए व्यजनयत्र (बीजली का पखा) गानयत्र (रेडियो, ग्रामोफोन आदि) बजाकर,
 पूजन अर्थात् वस्त्रों एवं रत्नों आदि के लाम के लिए वायुयान (एरोप्लेने) वायुयत्र आदि के
 बनाने में, तथा जन्म-मरण से छुटकारा पाने के लिए, जैसे-जिनप्रतिमा के आगे नृत्य, गीत
 और वादित्र का प्रयोग करने में, चामर पखा आदि डुलाने में, तथा दुःख का नाश करने के
 लिए, जैसे-व्याधि मिटाने के लिए आधुनिक वैज्ञानिकों द्वारा निकाली हुई वायुचिकित्सा
 में तथा ताडपखा आदि द्वारा वायुकाय की उदोरण कराने में वायुकाय की हिंसा करते
 हैं। इस प्रकार इस जीवन के सुख के अर्थों स्वयं वायुकाय के घातक शस्त्रों का समारम
 करते हैं, दूसरों से कराते हैं और वायुकाय का समारम करने वाले दूसरों का अनुमोदन

तथा परिवन्दन, अर्थात् प्रशंसा भेजववा भाटे मशकवाद्य अने वासणी वगेरे
 षण्डीने, व्यजनयत्र तथा गानयत्र (विजणीथी आलता पखा अने रेडीओ
 तथा ग्रामोफोन) वगेरे षण्डीने, पूजन अर्थात्-वस्त्रो अने रत्नो आदिना लाल
 भाटे वायुयान (एरोप्लेन) अने वायुयत्र आदि षणाववाभा तथा जन्म-मरण
 छुटवा भाटे जेमके-देवप्रतिमानो पामे नृत्य-गीत अने वाद्यत्रनो प्रयोग करवाभा,
 चामर, पखा आदि डलाववाभा, तथा दुःख अने नाश करवा भाटे, जेमके-व्याधि मटाडवा
 भाटे आण्डालना वैज्ञानिकद्वारा शोध करान्नेली वायुचिकित्साभा, तथा ताडपत्रना
 पंखाद्वारा वायुकायनी उदोरणभा वायुकायनी हिंसा करे छे अने प्रमाणे आण्डवना
 सुषणा अर्थात् पोते वायुकायना घातक शस्त्रोना समारम करे छे, षण्डीने पामे करावे छे
 अने वायुकायना समारम करवावाणा षण्डीने अनुमोदन आपे छे. वायुकायने

नानाति-अनुमोदयति । तद्=वायुकायसमारम्भणं, तस्य=वायुकायसमारम्भणं
 कुर्वत कारयितुः अनुमोदयितुश्च अहिताय भवति । तथा-तत् तस्य अशोधय-
 सम्यक्साक्षामाय भवति ॥ सू० ३ ॥

येन तु तीर्थंकरादिसमीपे वायुकायस्वरूपं पश्चिच्छातं स एवं विभावयतीत्याह—
 'से सं' इत्यादि ।

मूलम्—

से सं संयुज्जमाये आयाणीयं समुद्राय सोबा स्तु मगम्भो म्पगारान्तां वा
 खंतिप, इहमेगेसि पायं मबइ-एस स्वडु गंवे एस स्वडु मोहे, एस स्वडु मारे, एस
 स्वडु गरए । इष्वत्य गद्वि ए सोए, नमिष विक्रमस्वेहिं सत्येहिं वाउकम्मसमारमेणं,
 पाउसत्वं समारंममाणे कण्णे अणेगस्सुवे पाये विहिंसइ ॥ सू० ४ ॥

करते हैं । वायुकाम का यह आरंभ करने वाले करने वाले और उसकी अनुमोदना करने
 वाले को अहितकर होता है तथा अशोधितकर होता है ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदि के निकट बिसने वायुकाम का स्वरूप समझ लिया है, वह इस प्रकार
 विचार करता है—'से सं' इत्यादि ।

मूलार्थ—मगवान् से या उनके अन्तगारो से मुनकर-समस्तकर बिसने संयम धारण
 किया है वह आस्ता है कि—यह वायुकाम का समारंभ ही प्रथम है यही मोह है, वही मार
 है, यही मरक है । इसी में छोटा गुद हो रहे है, क्यों कि नाना प्रकार के शक्तो से वायुकाम
 के समारंभद्वारा वायुकाय का आरंभ करते हुए अन्य अनेक प्रकार के प्राणियों को हिंसा
 करते हैं ॥ सू० ४ ॥

आरंभ आरंभ इत्यादिवाचने, इत्यादिवाचने अने तेनी अनुमोदना आपवावाचने
 अहितकर वायु से तथा अशोधितकर वायु से ॥ सू० ३ ॥

तीर्थंकर आदिना समीपमां जेजे वायुकायनु स्वरूप समझ लीपुं से, ते आ
 प्रभावे विचार करे से—'से सं' इत्यादि ।

मूलार्थ—अत्रवान् पासेषी अथवा तेभता अन्तगारो पासेषी सांशणी-समल
 ने जेजे अथम धारण कर्तुं से ते अजे से से—आ वायुकायनो अग्ररंभ इय से
 जेज मोह से जेज मार से जेज नरक से जेज दोहो शुद्ध यर्ष रक्षा से तेभके
 नाना प्रकारना शक्तोषी वायुकायना अमारंभद्वारा वायुकायनो आरंभ इत्यादि वा
 अन्य अनेक प्रकारना प्राणियोनी हिंसा करे से ॥ सू० ४ ॥

छाया—

स तत् संबुध्यमान आदानीयं समुत्थाय श्रुत्वा खलु भगवतः अनगाराणां वा अन्तिके इहैकेषां ज्ञातं भवति—एष खलु ग्रन्थः, एष खलु मोहः, एष खलु मारः, एष खलु नरकः, इत्यर्थं गृद्धो लोकः, यदिम विरूपरूपैः शस्त्रैः वायुकर्मसमारम्भेण वायुशस्त्रं समारम्भमाणः अन्यान् अनेकरूपान् प्राणान् विहिनस्ति ॥ सू० ४ ॥

टीका—

यः खलु भगवतः=तीर्जङ्करस्य, अनगाराणां=तदीयश्रमणनिर्ग्रन्थानां वा अन्तिके श्रुत्वा आदानीयम्=उपादेयं सर्वसावद्ययोगविरतिरूप चारित्रं समुत्थाय=अङ्गीकृत्य, विहरति, स तत्=वायुकाय समारम्भणं संबुध्यमानः=अहितावोधिजनकत्वेन विज्ञाता सन्नेवं विभावयति—

इह=मनुष्यलोके, एकेषां=श्रमणनिर्ग्रन्थोपदेशसंजातसम्यगवबोधवैराग्याणामात्मार्थिनामेव, ज्ञातं=विदितं भवति । किं ज्ञातं भवतीत्याकाङ्क्षायामाह—‘एष खलु ग्रन्थः’ इत्यादि ।

एषः वायुशस्त्रसमारम्भः खलु=निश्चयेन ग्रन्थः=कर्मबन्धः, कारणे

टीकार्थ—जिस पुरुषने तीर्थकर भगवान् या उनके अनुयायी श्रमण निर्ग्रन्थो के मुखारविन्द से सुनकर सर्व सावद्य का त्यागरूप सयम अगीकर किया है वह वायुकाय के समारम्भ को अहितकर और अवोधिजनक समझता हुआ इस प्रकार विचारता है—

इस लोक में श्रमण निर्ग्रन्थों के उपदेश से सम्यग्ज्ञान और वैराग्य प्राप्त करने वाले आत्मार्थी जनों को ही यह विदित होता है कि—

वायुशस्त्र का यह समारम्भ निश्चितरूप से कर्मबन्ध का कारण है । कारण में

टीकार्थ—जे पुरुषे तीर्थ कर भगवान् अथवा तेभना अनुयायी श्रमण-निर्ग्रन्थोना मुभारविन्दही सावणीने सर्व सावधना त्यागरूप सयम अगीकार कथीं छे, ते वायुकायना समारम्भने अहितकर अने अवोधिजनक समझता थका आ प्रमाझे विचारे छे—

आ लोकमा श्रमण निर्ग्रन्थोना उपदेशथी सम्यग्ज्ञान अने वैराग्य प्राप्त करवा-वाणा आत्मार्थी एवोनेजे जे नक्षुवामा छे के—

वायुशस्त्र आने। समारम्भ निश्चितरूपथी कर्मबन्धुं कारण छे कारणम्भ

कार्योपचारात् । एवमग्नेऽपि बोध्यम् । तथा-एषः वायुश्चक्षुसमारम्भा, मोहः=विपर्ययः
 =भ्रान्तम् । तथा एष एष मारुः=मरण निगोदादिमरणरूपः । तथा एष एव मरुः=
 नारकजीवानां वसतिप्रयातनास्थानम् ।

इत्यु-एतदर्थं ग्रन्थमोहमरणनरकरूप धोरदुःस्वफलं प्राप्यापि पुनः पुनरेतदर्थं
 मेव, लोकाः=भ्रान्तनरसवर्ती जीवः गृहः=लिप्सुरस्ति । यद्वा गृहः=मोगामिच्छापी,
 लोकाः=संसारी जीवः, इत्यर्थ-एतदर्थमेव=ग्रन्थमोहमरणनरकार्यमेव प्रवर्तत इति शेषः ।

लोक पुन पुनः कर्मबन्धाद्यर्थमेव प्रवर्तत इति यदुक्त, तत् क्वं ज्ञापते ? इति
 जिज्ञासायामाह—'यदिमम्' इत्यादि ।

यद्=यस्माद् विरूपरूपैः=नालादिषुः क्लेशैः पूर्वोक्तप्रकारैः वायुकर्म

कार्यं च उपचार करके कर्मबंध के कारण को मूल में कमबध कहा है । आगे भी इसी
 प्रकार समझ लेना चाहिए । तथा यह वायुकाय का समारंभ भ्रान्तरूप है, यह निगोद
 आदि में मृत्यु का कारण है, और नरक है अर्थात् नारकीय यातनाओं का स्थान है ।

बंध, मोह मरण और नरकरूप धोर दुःस्वमय फल पाकर भी भ्रान्ताजी जीव बार-बार
 इसी की लस्रसा करते हैं । अथवा मोगों के लस्रसापी संसारी जीव इस बंध, मोह, मरण
 और नरकरूप फल के लिए ही प्रवृत्ति करते हैं ।

लोग कर्मबंध के लिए ही पुनः पुनः प्रवृत्ति करते हैं, यह जो कहा है सो किस प्रकार
 जाना जाय ? ऐसी जिज्ञासा होने पर कहते हैं—'यदिमम्' इत्यादि ।

क्यों कि माना प्रकार के, वायुकाय की विरूपण करने वाले सावय व्यापार

कार्योपचारात् इति कर्मबंधना कारणेन भूतमं कर्मबंध कहेल छे । आगत यद्य
 च प्रकारे समल लेनु लेछेले । तथा जे वायुकायने समारंभ अस्थानरूप छे जे
 निगोद आदिमां भूतनुं कारण छे (अर्थात् निगोदमां लक्षं लक्षणायां छे) जने नरक
 छे अर्थात् नारकीय यातनायोनुं स्थान छे

बंध, मोह, मरण जने नरकरूप धोर दुःस्वमय इल प्राप्त करीने पण भ्रान्ताजी
 एव बार बार जेनी लस्रसा करे छे अथवा मोगोना लस्रसापी संसारी एव आ
 बंध, मोह, मरण जने नरकरूप इल भाटेल प्रवृत्ति करे छे

लोक कर्मबंध भाटेल पुनः पुनः प्रवृत्ति करे छे जे प्रभवे जे कहुं छे ते
 केवी रीते जळी शक्य ? जेवी लस्रसा यतां कहे छे—'यदिमम्' इत्यादि

कैसे नाना प्रकारधी वायुकायनी विशधना करवावाग्य सावयव्यापारद्वारा ते
 प्र व्या-८८

સમારમ્ભેણ=વાયુક્રાયાપમર્દનરૂપસાવધવ્યાપારેણ, ઇમં=વાયુક્રાયં વિહિનસ્તિ । તથા-
વાયુશક્ત્વં સમારમ્ભમાણઃ-વ્યાપારયન્, અન્યાન્=પૃથિવીકાયાદીન્, અનેકરૂપાન્
સ્થાવરાંસ્ત્રસાંશ્ચ, પ્રાણાન્=પ્રાણિનઃ વિહિનસ્તિ=ઉપમર્દયતિ ॥ સૂ૦ ૪ ॥

વાયુશક્ત્વ સમારમ્ભમાણા અનેકવિધાન્ જીવાન્ કથ વિહિંસન્તિ, તત્ ચ પ્રતિ-
બોધયિતું શ્રીસુધર્મા સ્વામી પ્રાહ—‘ સે વેમિ. ’ ઇત્યાદિ ।

મૂલમ્—

સે વેમિ-સતિ સંપાઙ્મા પાણા આહચ્ચ સંપયંતિ ય, ફરિસં ચ ચ્ચલુ પુઢ્ઠા ઇગે
સંઘાયમાવજ્જતિ । જે તત્થ સઘાયમાવજ્જંતિ, તે તત્થ પરિયાવજ્જંતિ । જે તત્થ
પરિયાવજ્જંતિ તે તત્થ ઉદ્ઘાયતિ ॥ સૂ૦ ૫ ॥

છાયા—

તદ્ બ્રવીમિ-સંતિ સંપાતિમાઃ પ્રાણાઃ, આહત્ય સંપતન્તિ ચ, સ્પર્શં ચ ચ્ચલુ
સ્પૃષ્ટા ઇકે સંઘાતમાપઘન્તે । યે તત્ર સઘાતમાપઘન્તે, તે તત્ર પર્યાપઘન્તે । યે તત્ર
પર્યાપઘન્તે તે તત્રાપદ્રાવન્તિ ॥ ૫ ॥

દ્વારા વે વાયુકાય કા ઘાત કરતે હૈં । તથા વાયુકાય કે શક્તિ કા પ્રયોગ કરતે હુપ પૃથ્વીકાય
આદિ અનેક પ્રકાર કે સ્થાવરો કા, તથા ત્રસ જીવો કા ઉપમર્દન કરતે હૈં ॥સૂ ૪॥

વાયુકાય કે શક્તિ કા પ્રયોગ કરને વાલે નાના પ્રકાર કે જીવો કી હિંસા કૈસે કરતે
હૈં ? યહ વતલોને કે હિપ શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહતે હૈં —‘સે વેમિ.’ ઇત્યાદિ ।

મૂલાર્થ—વહ મૈં કહતા હૂં—ઇકાઇક ઉડકર પડને વાલે જીવ હૈં જો અચાનક
આપડતે હૈં, ઝોર વાયુકાય સે સ્પૃષ્ટ હોકર કોઈ—કોઈ સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં । જો
સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈં ઉનકા શરીર સિકુઢ જાતા હૈ, મૂર્છિત હો જાતે હૈં, વે મર મી
જાતે હૈં ॥ સૂ૦ ૫ ॥

વાયુકાયનો ઘાત કરે છે તથા વાયુકાયના શક્તિનો પ્રયોગ કરતા થકા પૃથ્વીકાય
આદિ અનેક પ્રકારના સ્થાવરો તથા ત્રસજીવોનું ઉપમર્દન (નાશ) કરે છે ॥સૂ ૪॥

વાયુકાયના શક્તિનો પ્રયોગ કરવાવાળા નાના પ્રકારના જીવોની હિંસા કેવી રીતે
કરે છે ? એ બતાવવા માટે શ્રી સુધર્મા સ્વામી કહે છે —‘ સે વેમિ ’ ઇત્યાદિ

મૂલાર્થ—હું તે કહું છું—એકાએક (એકથિતા) ઉડીને પડવાવાળા જીવ છે
તે અચાનક આવી પડે છે, અને વાયુકાયથી સ્પૃષ્ટ થઈને કોઈ-કોઈ જથ્થારૂપે થાય
છે જે સઘાત-સમુદાય-જથ્થારૂપમા પ્રાપ્ત થાય છે, તેનું શરીર સ કોચાર્થ જાય છે,
મૂર્છિત થઈ જાય છે, અને તે મરી પશુ જાય છે ॥ સૂ. ૫ ॥

टीका—

सत् प्रथमि=वायुकायहिंसया यथा बहुविधाः प्राणिनः प्रवश्यन्ति, सत्
 क्षययामि=संपातिमा=उत्पत्योत्पत्यपतनशीलाः, प्राणाः=प्राणिनः सन्ति=वायु
 क्षयमाभित्व विद्यन्ते । एते संपातिमाः आहत्य=व्यमनताबहुन्तरसादिभिः मोक्षा
 वितवायुकायादापातं प्राप्य, संपतन्ति=वायुभेगसमाकृष्टाः प्राणापगमायोद्भिन्नास्तत्रैव
 वायुकाये संविद्यन्ति, संश्लिष्यन्तीत्यर्थः ।

स्यसं चेति । स्यसं=स्यास्तीति स्यसं=स्यसंवान्, सं स्यसं=वायुकार्यं, स्पृष्टा
 =स्यसंकारः आर्पत्वात् कर्तरि कः । पक्के=वायुभेगसमाहताः प्राणिनाः, संपातमाप
 यन्त=परस्परसंपर्केण गात्रसंयोगेण प्राप्नुवन्ति ।

ये सप्र=वायुकाये संपातिता संपातमापयन्ते, ते सप्र=वायुकाये

टीकार्थ—वायु की हिंसा से अनेक प्रकार के प्राणियों का पात किस प्रकार होता
 है सो कहता है । संपातिम अर्थात् उड़-ऊड़कर पड़ने वाले अनेक जीव वायुकाय के अभित
 रहते हैं । ये संपातिम जीव पला साकृन्त-पला कि एक आति, बल आदि से ऊरीरणा को हुई
 वायुकायद्वारा आघात पाकर गिर पड़ते हैं, अर्थात् वायु के वेग से सिक्कर पतराये हुए
 वायुकाय के साथ हो जुड़-से जाते हैं ।

यहाँ स्यसं का अर्थ है स्यसंवान् अर्थात् वायु । कोई-कोई वायु के वेग से आहत
 हुए जीव संपात को प्राप्त होते हैं अर्थात् परस्पर रगड़ साकर सिक्कर जाते हैं ।

वायुकाय में पड़े हुए जो जीव सिक्कर जाते हैं वे वायुकाय के आघात से

टीकार्थ—वायुकायकी हिंसाથી अनेक प्रकारના પ્રાણીઓને ઘાત કેવી રીતે
 થાય છે તે કું કું કું કું :-સ પાતિમ-ઉડી-ઉડીને પડવાવાળા અનેક જીવ વાયુકાયના
 આઘાતે રહે છે તે સ પાતિમ જીવ, પલા, વાકર, વચ્ચે આદિથી ઉડીરવા
 કરાએલા વાયુકાયદ્વારા આઘાત પાતીને પડી જાય છે અર્થાત્ વાયુના વેગથી
 એવાઈને અસહ્યેલા વાયુકાયની સાથે જોડાઈ જાય છે

અહીં સ્યસંનો અર્થ છે-સ્યસંવાન્-અર્થાત્ વાયુ કેઈ-કેઈ જીવના વગથી
 આઘાત-વાકર કરાએલા જીવ સ પાત-જવાપણને પ્રાપ્ત થાય છે અર્થાત્ પરસ્પર
 ઘસઘસીને સંઘોચાઈ જાય છે.

વાયુકાયમાં પડેલા જે જીવે સંઘોચાઈ જાય છે તે વાયુકાયના આઘાતથી મૂર્છિત

संश्लिष्टा पर्यापद्यन्ते=वायुकायाघातेन मूर्छांप्राप्नुवन्ति-प्रणष्टचेतना भवन्तीत्यर्थः ।
ये तत्र=पर्यापद्यन्ते, ते तत्र=वायुकाये, अपद्रावन्ति=प्राणैर्वियुज्यन्ते ।

वायुशस्त्रसमारम्भेण न केवलं वायुजीवविराधना जायते, किन्तु सर्वदिक्-
संचारिणां संपातिमजीवानामन्येषां च बहुविधाना हिंसाऽपि दुर्निवारा भवतीति
भावः ॥ सू० ५ ॥

एवं वायुकायस्य सच्चित्तत्वं विदित्वा मुनित्वप्राप्तये त्रिकरण-त्रियोगैस्तत्समा-
रम्भो वर्जनीय इत्याशयेनाह—‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थ सत्थं समारम्भमाणस्त इच्चेते आरंभा अपरिण्णया भवंति ।

मूर्छित हो जाते हैं—उनकी चेतना नष्ट हो जाती है, और जो मूर्छित हो जाते हैं वे प्राणों से
रहित हो जाते हैं अर्थात् मर जाते हैं ।

वायुकाय के शस्त्र का आरम्भ करने से अकेले वायुकाय की ही विराधना नहीं होती
वरन् सभी दिशाओ में फिरने वाले सपातिम जीवों की तथा अन्य अनेक प्रकार के जीवों की
हिंसा होना भी अनिवार्य है ॥ सू० ५ ॥

इस प्रकार वायुकाय की सच्चित्ता समझकर साधुता प्राप्त करने के लिए तीन करण
तीन योग से वायुकाय का समारम्भ त्यागने योग्य है । इस आशय से सूत्रकार कहते हैं—
‘एत्थ सत्थं.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में शस्त्र का व्यापार करने वाला इन व्यापारों

थर्ध नय छे—तेनी चेतना नाश पाभी नय छे अने ने मूर्छित थर्ध नय छे ते
प्राणोत्थी रडित पणु थर्ध नय छे अर्थात् भरषु पात्रे छे

वायुकायना शस्त्रेना आरभ करवाथी, अकेला वायुकायना एवोनीज विराधना
थाय छे अटलुज नडि परन्तु सर्व दिशाओमा इरवावाणा सपातिम एवोनी तथा
अन्य अनेक प्रकारना एवोनी घात थवी ते पणु अनिवार्य छे ॥सू० ५॥

आ प्रभाणु वायुकायनी सच्चित्ता समञ्जने साधुता प्राप्त करवा भाटे त्रषु
करणु त्रषु योगथी वायुकायने समारभ त्याग करवा योग्य छे. अये आशयथी
सूत्रकार कडे छे—‘एत्थ सत्थं’ इत्यादि.

मूलार्थ—वायुकायना विषयमा शस्त्रेना व्यापार करवावाणाओ अये व्यापाराने

एतत्त्वं सत्यं असमारममात्मस्य इत्येते आरम्भा परिष्णाया भवन्ति । त परिष्णाय मेधावी षेव सत्यं वाठसत्यं समारमेन्द्रा, षेवऽप्येहि वाडसत्य समारमावेन्द्रा, षेवऽप्ये वाठसत्यं समारमते समणुजावेन्द्रा, अस्सेते वाठसत्यसमारमा परिष्णाया भवन्ति, से इ ह्युपी परिष्णायकम्मे—ति वेमि ॥ सू० ६ ॥

छाया—

अथ अस्मिन् समारममात्मस्य इत्येते आरम्भाः अपरिष्णाता भवन्ति । अथ अस्मिन्समारममात्मस्य इत्येते आरम्भाः परिष्णाता भवन्ति । त परिष्णाय मेधावी नैव स्वयं वायुश्च समारमेत, नैवान्यैर्वायुश्च समारम्मयेत्, नैवान्यान् वायुश्च समारममात्मान् समनुजानीयात् । यस्येते वायुश्चसमारम्भाः परिष्णाता भवन्ति, स खलु मुनिः परिष्णातकर्मा, इति व्रवीमि ॥ सू० ६ ॥

टीका—

अथ—अस्मिन् वायुकाये, अस्मिन्—पूर्वोक्तप्रकारं समारममात्मस्य—न्यायापयता, इत्येते—पूर्वोक्ताः भिन्नप्रभियोगैः कृता आरम्भाः—वायुश्चयोपमर्दनरूपाः

को कर्मबंध का कारण नहीं समझता । वायुकाय में शक्तों का व्यापार न करने बाह्य इन व्यापारों को कर्मबंध का कारण समझता है । उसे जानकर विवेकी पुरुष स्वयं वायु शक्त का आत्म न करे, दूसरों से वायुशक्त का आत्म न करवे और वायुशक्त का आत्म करने बाह्य का अनुमान न करे । जो वायुकाय के शक्तों के व्यापार को जानता है वही मुनि है, वही सावध व्यापार का त्यागी है । ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ६ ॥

टीका—वायुशक्त के विषय में पूर्वोक्त शक्तों का उपयोग करने बाह्य तीन क्रम तीन योग से किये जाने वाले और वायुशक्त के वातक सावध व्यापारों को कर्मबंध

कर्मबंध का कारण समझता नहीं, वायुशक्त शक्तों के व्यापार नहीं करवावाला ते व्यापारने कर्मबंध का कारण समझे छे तेने जान्येने विवेकी पुरुष चोते वायुशक्तों के व्यापार करे नकि, जीना पासे वायुशक्तों के व्यापार कराने नकि, अने वायुशक्तों के व्यापार करवावावाने अनुमान न करे नकि, के वायुशक्त शक्तों के व्यापारने लखे छे तेने मुनि छे तेने सावध व्यापारना त्यागी छे अर्थात्—(आ प्रभाषे) इहं कर्तुं ॥ सू० ६ ॥

टीका—वायुशक्त विषय में पूर्वोक्त शक्तों के उपयोग करवावाला तब करण तब योग्य करवावा व्यापार अने वायुशक्त वातक सावध व्यापारने कर्मबंध का कारण

सावद्यव्यापाराः, अपरिज्ञाताः=कर्मबन्धकारणत्वेनानवगताः भवन्ति ।

अत्र=अस्मिन्नेव वायुकाये, शस्त्रं=प्रायुक्तप्रकारम्, असमारभमाणस्य=अप्रयु-
ञ्जानस्य, इत्येते=पूर्वोक्ताः, आरम्भाः=सावद्यव्यापाराः, परिज्ञाता भवन्ति=ज्ञपरि-
ज्ञया परिज्ञाताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया परिवर्जिता भवन्तीत्यर्थः ।

ज्ञपरिज्ञापूर्विका प्रत्याख्यानपरिज्ञा यथा भवति, तं प्रकारं दर्शयति—‘तद्
परिज्ञाय’ इत्यादि । तद्=वायुकायारम्भणं, परिज्ञाय=‘कर्मबन्धस्य कारणं भवती’
त्यवगत्य, मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः स्वयं वायुशस्त्रं नैव समारभेत=नैव
व्यापारयेत्, अन्यैर्वायुशस्त्रं नैव समारम्भयेत्, वायुशस्त्रं समारभमाणान् अन्यान्
नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते

वायुशस्त्रसमारम्भाः=वायुकायमृद्दिश्य

शस्त्रैस्तदुपमर्दनरूपाः

का कारण नहीं समझता । अर्थात् उसे यह ज्ञान नहीं होता कि—‘इन पाप-कृत्यों से मुझे
कर्म का बंध होगा’

लेकिन इसी वायुकाय के विषय में शस्त्रों का आरम्भ न करने वाला सावद्य व्यापारों
को ज्ञपरिज्ञा से जानता है और प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है ।

ज्ञपरिज्ञापूर्वक प्रत्याख्यानपरिज्ञा जिस प्रकार होती है सो दिखलाते हैं—वायुकाय के
आरम्भ को कर्मबन्ध का कारण जानकर हेयोपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष स्वयं वायुशस्त्र
का आरम्भ न करे, दूसरों से वायुशस्त्र का आरम्भ न करावे और वायुशस्त्र का आरम्भ करनेवालों
का अनुमोदन न करे ।

जिसने वायुकायसबधी इन आरम्भों का अर्थात् सावद्य व्यापारों को ज्ञपरिज्ञा से

समझता नहीं अर्थात् तेमने ये ज्ञान थयुं नहीं के—‘आ पापकृत्येथी मने कर्मने
बन्ध थशे’ परतु आ वायुकायना विषयमा शस्त्रेणे आरल नहि करवावाणा सावद्य
व्यापाराने ज्ञपरिज्ञाथी नाले छे, अने प्रत्याख्यानपरिज्ञाथी त्यल हे छे ज्ञपरिज्ञापूर्वक
प्रत्याख्यानपरिज्ञा ने प्रभाले छेय छे. ते भतावे छे—वायुकायना आरलने कर्मबन्ध
कारण नालीने छेय—उपादेयने विवेक राखवावाणा पुरुष योतेन वायुशस्त्रेणे आरल
करे नहि जीन पास वायुशस्त्रेणे आरल करावे नहि. अने वायुशस्त्रेणे आरल
करवावाणाने अनुमोदन आपे नहि.

ने वायुकायसंभधी ये आरलाने अर्थात् सावद्य व्यापाराने ज्ञपरिज्ञाथी ‘कर्म-

सावधभ्यापाराः, परिहाता'—इ-परिहया बन्धकारणतया विदिता प्रत्यास्थान-
परिहया च परिवर्जिता भवन्ति, स एव परिहातकर्मा=त्रिकरणप्रियोगैः परिवर्जित
सकृत्सावधभ्यापाराः, मुनिमवति ।

न्तु त्रिकरणप्रियोगैर्वायुकायविराभनापरिहारेण यस्तु परिहातकर्मा स एव
मुनिर्भवतीत्युक्तं तत्कथमुपपद्यते ? यतो हि गच्छता तिष्ठता आसीनेन स्वपता
बुद्ध्यानेन मापमायेन वायुकायविराभना दुष्परिहारा कथं तर्हि मुनिभरेत् तिष्ठेत्
व्यासीव क्षयीत बुद्धमीत भावेत ? इति । अप्रोच्यते—मुनिनां तर्षं स्पर्शकर्म्यं यतनपैव
सपादनीयम्, अत एवोक्तं भगवता—

कर्मवश का कारण जान किया और प्रत्यास्थानपरिहारा से त्याग दिया है वही तीन करण
और तीन योग से त्याग करने वाला मुनि होता है ।

शंका—'तीन करण और तीन योग से वायुकाय की विराभना का त्याग
करने वाले ही मुनि होते हैं' यह कथन किस प्रकार सही हो सकता है ? पढ़ने,
ठहरने, बैठने सेने आहार करने और मापण करने में वायुकाय की विराभना से बच नहीं
सकते । ऐसी वस्था में मुनि कैसे बने, कैसे ठहरे कैसे बैठे, कैसे सोए, कैसे मोहन करे
और कैसे बने ?

समाधान—मुनि को अपनी सब क्रियाएँ यतनापूर्वक ही करनी चाहिए ।
भगवान्ने कहा है—

अन्धनुं कश्चि उ ज्येभ जलषी बीषु उ जने प्रत्यास्थानपरिहायी तेने त्वलु बीषा
उ ते त्रसु कश्चु जने त्रसुयोजधी त्याज कश्चावाणा मुनि बोय उ

शंका— त्रसु कश्चु जने त्रसुयोजधी वायुकायनी विराभनाने त्याज कश्चावाणा
ए मुनि बोय उ आ पवन देवी रीते सासु कोर्ष शके उ ? आसतां विसतां,
शेकातां, सुतां बोधन कश्चां जने ज्ञापण कश्चां वायुकायनी विराभनाकी जन्वी शकारु
नकी ज्येवी इशाभां मुनि देवी रीते आबे देवी रीते विसे, देवी रीते शकाय, देवी
रीते सुवे, देवी रीते सोधन करे जने देवी रीते विहा ?

समाधान—मुनिजे पेटानी सब क्रियाओं यतनापूर्वक करनी ज्येधजे, ज्ञापने
कथं उ—

“ જય ચરે જયં ચિદ્દે, જયમાસે જયં સપ્ ।

જયં ધુંજતો ભાસંતો, પાવકર્મ્મં ન વંધર્દ્ ” ॥ ૧ ॥

નનુ ગમનાગમનાદૌ યતનાયાઃ સુસપાઘત્વેઽપિ ભાષણયતના કથ વિધેયા ? કથમપિ ભાષણે દિ વાયુકાયવિરાધના પરિદર્ત્તુ ન શક્યતે, કથં મુનિર્યતનયા ભાષેત ? ભાષણે વાયુકાયવિરાધનયા સાદ્દં સૂક્ષ્મવ્યાપિસપાતિમજીવાનામપિ વિરાધના-ઽવશ્યમ્ભાવિની, તેપાં વાયુવેગસમાક્રાંટાનામાહત્ય સંપતનેન, વાયુસંસ્પર્શેન ચ સંઘાત પર્યાપચ્ચ-પદ્રાવણાન્ત ભવતીત્યત્રૈવોદ્દેશેઽભિદિતત્વાત્ ? ઇતિ ચેદુચ્યતે—

મુલ્કવલ્લિકાવધનં ભાષણયતના ભગવતા પ્રતિવોધિતા, એપ વાયુકાય-

“યતનાપૂર્વક ચલે, યતનાપૂર્વક સ્વહા રહે, યતનાપૂર્વક વેઠે, યતનાપૂર્વક સોળે, યતનાપૂર્વક મોજન કરે ઓર યતનાપૂર્વક વોલે તો (સાધુ) પાપકર્મ કા વધ નહીં કરતા હૈ ” ॥૧॥

શઙ્કા—જાને—આને મેં યતના સરલતા સે હો સકતી હૈ મગર વોલને કી યતના કિસ પ્રકાર કરની ચાહિણ ? વોલને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કીસી મી પ્રકાર નહીં ટલ સકતી તો મુનિ કિસ પ્રકાર ભાષણ કરે ? ભાષણ કરને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કે સાથ સર્વત્ર વ્યાપ્ત ઓટે—ઓટે સપાતિમ જીવોં કી વિરાધના મી અવશ્ય હોતી હૈ । હસી ઉદેશ મેં વતલાયા ગયા હૈ કિ—સપાતિમ જીવ વાયુ કે વેગ સે સ્વિચકર ઓ પડતે હૈ ઓર વાયુ કે સ્પર્ગ સે સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ, મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈ ઓર મર મી જાતે હૈ ।

સમાધાન—મગવાનુ ને મુલ્કવલ્લિકા વાધના ભાષણી કી યતના વતલાઈ હૈ ।

‘યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક મેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ લોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક યોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનેા બધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ યોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી બોધ્યે ? યોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે લાષણ કરે ? લાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના—નાના સપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે—સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી જે આઈને આવી પડે છે, અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત—(સમુદાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન—મગવાને મુખવલ્લિકા બાધવી તે લાષણની યતના બતાવી છે આ વાયુકાયને

समारम्भः अन्यमोहमारनरकरूपस्तस्मादरितोऽयमिति मत्वा वायुकायविरापनया
 धान्तिमागायलम्बिनः संयमिनः प्राधान् धारयितुमपि नात्रकाञ्चन्तीत्यप्रैवोरेष्टे
 समुपदिशता मगधता मापनयतनारूपं सुखसन्निकाबन्धनमिति सूचितम् । उक्तञ्च
 समुत्थानसूत्रे—

“ तत्रो पञ्चा गोयमा ! सन्निगे सुहपत्तिं सुहेन सदिं बंधे ॥ १ ॥

सुहपत्तीः नं मंते ! किंपमाणा ? गोयमा ! सुहप्यमाणा सुहपत्ती । सुहपत्ती नं
 मंते ! कस्त बत्वस्त क्ते ? गोयमा ! एगस्तपि सेयबत्वस्त नं अष्टपुडलाप
 सुहपत्तिं करेह ॥ २ ॥

कस्तइं सुहपत्तीए नं अष्ट पुडलाई ? गोयमा ! अष्टकम्मदइमइ ॥

सुहपत्ती पं मंते !, कइं बंधे !, गोयमा ! एगकमेम दुबकमप्यमाणेम दोरेण
 सदिं सुहे बंधेह । सुहपत्तीएनं मंते ! के अहे ?, गोयमा ! नणं सुहअते सइ वट्टति
 से सेयहेण सुहपत्ती । कस्तइमंते ! सुहपत्तिं सुहेनसदिं बंधे ?, गोयमा ! सन्निगावाठ
 जीवरकत्वणइ ॥ ३ ॥

अइ नं मंते ! सुहपत्ती वाठजीवरकत्वणइए तो किं सुहुमपाठकायजीवरकत्वण-
 इए वा वायरवाठकायजीवरकत्वणइए वा ? गोयमा ! गोति सुहुमपाठकायजीव
 रकत्वणइए वायरवाठकायजीवरकत्वणइए । मो-ति अविसेसं, एवं ते सम्भेदि
 धरिंता पवुण्णंति ॥ ४ ॥” इति ।

यह वायुकाय का समारंभ प्रथम है, मोह है, मार है, मरक है और इस कारण
 पश्चित्तकारी है, अतः एव धान्ति—मोक्षमार्ग का अन्वेषण करने वाले समयी वायुकाय की
 निराकना करके अपने प्राणों की भी रक्षण नहीं करते । इसी उद्देश में महात्मान् ने
 उपदेश दिये हुए था। यतनारूप सुखसन्निका का बंधना सूचित किया है । समुत्थान सूत्र
 में कहा भी है—

समारंभ उ अथ उ मोक्ष उ मार उ नरक उ जने ते कायजे अहितकारी उ जेटला
 भाटे शांति—मोक्ष मात्रं उपलब्धन करवावाण्य सद्यसी वायुकायपी विरापनया करीने
 पीतान्ना प्राणानी पवु उण्ण करवा नणी । अ उदेशभां जजवाने उपदेश आपत्ता यडा
 भाया यतनाइए सुखसन्निका बंधवानी सूचना करी छे.

समुत्थानसूत्रभां अष्टुं पञ्च उः—

“ જયં ચરે જયં ચિદ્વે, જયમાસે જયં સપ ।

જયં ઘુંજંતો ભાસંતો, પાવકમ્મં ન વંધઈ ” ॥ ૧ ॥

નનુ ગમનાગમનાદૌ યતનાયાઃ સુસંપાઘત્વેઽપિ ભાષણયતના કથં વિધેયા ? કથમપિ ભાષણે હિ વાયુકાયવિરાધના પરિહર્તું ન શક્યતે, કથં મુનિર્યતનયા ભાષેત ? ભાષણે વાયુકાયવિરાધનયા સાર્દ્ધં સૂક્ષ્મવ્યાપિસપાતિમજીવાનામપિ વિરાધના-ઽવશ્યમ્ભાવિની, તેષાં વાયુવેગસમાક્રુષ્ટાનામાહત્ય સંપતનેન, વાયુસંસ્પર્શેન ચ સંઘાત પર્યાપચ્ચ-પદ્રાવણાન્ત ભવતીત્યત્રૈવોદ્દેશેઽભિહિતત્વાત્ ? इति चेदुच्यते—

મુખવસ્ત્રિકાવધનં ભાષણયતના ભગવતા પ્રતિવોધિતા, एष वायुकाय-

“યતનાપૂર્વક ચલે, યતનાપૂર્વક સ્થલા રહે, યતનાપૂર્વક બેઠે, યતનાપૂર્વક સોણ, યતનાપૂર્વક ભોજન કરે ઓર યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપકર્મ કા વધ નહીં કરતા હૈ ” ॥૧॥

શંકા—જાને-આને મેં યતના સરલતા સે હો સકતી હૈ મગર બોલને કી યતના કિસ પ્રકાર કરની ચાહિણ ? બોલને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કીસી મી પ્રકાર નહીં ટલ સકતી તો મુનિ કિસ પ્રકાર ભાષણ કરે ? ભાષણ કરને મેં વાયુકાય કી વિરાધના કે સાથ સર્વત્ર વ્યાપ્ત છોટે-છોટે સપાતિમ જીવો કી વિરાધના મી અવશ્ય હોતી હૈ । ઇસી ઉદ્દેશ મેં વતલાયા ગયા હૈ કિ-સપાતિમ જીવ વાયુ કે વેગ સે ઝિંચકર આ પઢતે હૈ ઓર વાયુ કે સ્પર્શ સે સઘાત કો પ્રાપ્ત હોતે હૈ, મૂર્છિત્ત હો જાતે હૈ ઓર મર મી જાતે હૈ ।

સમાધાન—ભગવાન્ ને મુખવસ્ત્રિકા વાંધના ભાષણી કી યતના વતલાઈ હૈ ।

‘યતનાપૂર્વક ચાલે, યતનાપૂર્વક બેસે, યતનાપૂર્વક રોકાય, યતનાપૂર્વક સુવે, યતનાપૂર્વ ભોજન કરે, અને યતનાપૂર્વક બોલે તો (સાધુ) પાપ કર્મનો અધ કરતા નથી ॥૧॥

શંકા—જવા આવવામાં યતના સરલતાપૂર્વક થઈ શકે છે, પરંતુ બોલવાની યતના કેવી રીતે કરવી ભેદિએ ? બોલવામાં વાયુકાયની વિરાધના કોઈ પણ પ્રકારથી ટળી શકતી નથી, તો મુનિ કેવી રીતે ભાષણ કરે ? ભાષણ કરવામાં વાયુકાયની વિરાધનાની સાથે સર્વત્ર વ્યાપ્ત નાના-નાના સંપાતિમ જીવોની વિરાધના પણ અવશ્ય થાય છે આ ઉદ્દેશમાં બતાવવામાં આવ્યું છે કે-સંપાતિમ જીવ વાયુના વેગથી ખેંચાઈને આવી પડે છે, અને વાયુના સ્પર્શથી સંઘાત-(અસુહાય)ને પામે છે, મૂર્છિત થઈ જાય છે અને મરણ પણ પામે છે

સમાધાન—ભગવાને મુખવસ્ત્રિકા વાંધવી તે ભાષણની યતના બતાવી છે આ વાયુકાયનો

प्रमादद्वारकेषु सर्वे सुस्वे बन्धीयात् सुस्वपश्या मदन्त ! कोऽर्थ ?, गौतम ! यस्तु सुस्वान्ते सदा वर्षते तेनार्येण सुस्वपश्री । कस्मै अर्थाय मदन्त ! सुस्वपश्री सुस्वेन सदा बन्धीयात् ?, गौतम ! स्वस्तिवायुजीवरक्षणार्थाय ॥ ३ ॥

यदि स्तु मदन्त ! सुस्वपश्री वायुजीवरक्षणार्थाय तर्हि सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय वा वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय ? गौतम ! नो इति सूक्ष्मवायुकायजीवरक्षणार्थाय, (किन्तु) वादरवायुकायजीवरक्षणार्थाय, नो इति अविज्ञेयम्, एवं ते सर्वेऽपि अर्हन्तः द्युपन्ति ॥ ४ ॥ इति ।

संपत्ति के बिन्मुनिमन्या सुस्वसिकाबन्धनं प्रतिपेक्षयन्ति तेषामाचार्यास्तु

प्रश्न—भगवान् ! सुहृत्पती का अर्थ क्या है ?

उत्तर—यह सर्वत्र सुहृत् पर बंधी रहती है इस लिए वह सुहृत्पती कहलती है ।

प्रश्न—किन्तु प्रयोजन से सुहृत्पती सुहृत् पर बंधनी चाहिए ?

उत्तर—सुहृत्पती वायुकाय साधु का स्वस्ति है इस लिए, तथा वायुकाय के बीजों की रक्षा के लिए सुहृत्पती बंधनी जाती है ॥३॥

प्रश्न—भगवान् अगर वायुकाय की रक्षा के लिए सुहृत्पती है तो सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए है या वादर वायुकाय की रक्षा के लिए ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकाय की रक्षा के लिए नहीं किन्तु वादर वायुकाय के बीजों की रक्षा के लिए है । सभी अर्हन्त देसा ही कहते हैं ॥४॥

आयकक अपने को मुनि मानने वाले कोई-कोई सुस्वसिका के बंधने का

प्रश्न—अत्रवन् ! सुहृत्पतीना अर्थ तुं ?

उत्तर—गौतम ! ते कर्मशां सुहृत्पर बंधी रहे छ तेथी ते सुहृत्पती कहेवाच छ

प्रश्न—तुं प्रयोजनशी सुहृत्पती सुहृत्पर बंधनी क्यों ?

उत्तर—सुहृत्पती वायुकाय ते साधुनु स्वस्ति छ के भाटे, तथा वायुकायना लोवनी रक्षा भाटे सुहृत्पती वाधि. (३)

प्रश्न—अत्रवन् ! अत्र वायुकायनी रक्षा भाटे, सुहृत्पती छ ते तु सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे छ अथवा वादर वायुकायनी रक्षा भाटे छ ?

उत्तर—सूक्ष्म वायुकायनी रक्षा भाटे नहीं परन्तु वादर वायुकायना लोवनी रक्षा भाटे छ सर्व अर्हन्त के प्रभावेण कहे छ (४)

अथ काय पीतने मुनि भजनावाला कोई-कोई सुस्वसिका बंधवाने निरुध

मुखवस्त्रिकावन्धन स्वीकुर्वन्त्येव । उक्तञ्च जिनमतिशिष्यपूर्णभद्रगणिकृतातिमुक्तक-
चरित्रे (श्लोकेषु ८०-८१-८२)—

“अधानन्यमुखस्तिष्ठन्, पुरतो निश्चलासनः ।
प्राञ्जलिर्वदनद्वारे, दधानो मुखवस्त्रिकाम् ॥ ८० ॥
इत्यादि यावत्—

श्रुश्रावासौ श्रुतस्यार्थ, -मतिमुक्तमुनिर्मुदा ” ॥ २ ॥ इति

विक्रमसवत्सरे द्वयशीत्यधिकद्वादशशत (१२८२) परिमिते पूर्णभद्रगणिना
विरचितोऽयमतिमुक्तकचरित्रनाथेयो ग्रन्थः, यस्यास्मिन् विक्रमसवत्सरे द्वयधिकद्वि-
सहस्र (२००२) परिमिते विंशत्यधिकसप्तशत (७२०) वर्षाणि व्यतीतानि, इतश्च
स्फुटमेतदवगम्यते मुखवस्त्रिकावन्धन—सादर परिगृहीतं तेषामाचार्यैस्तदनुयायिभिश्च ।

निषेध करते हैं । परन्तु उनके आचार्य मुखवस्त्रिका बाधना स्वीकार करते हैं । जिनपति के
शिष्यपूर्णभद्रगणिविरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’ (श्लोक ८०-८१-८२) में कहा है—

“पर-पदार्थों में मुख न मानने वाला, निश्चल आसन से सामने हाथ जोड़कर मुख
पर मुँहपती धारण किये हुआ अतिमुक्तक मुनिने श्रुतका अर्थ सुना ॥८०-८२॥

विक्रम सवत् १२८२ में पूर्णभद्र गणिने यह अतिमुक्तकचरित्र नामक ग्रंथ
लिखा है । इस सवत् २००२ तक उसे ७२० वर्ष हो चुके हैं । इस से स्पष्ट ज्ञात होता
है कि उनके आचार्योंने और उनके अनुयायियोंने मुखवस्त्रिका का बाधना आदरपूर्वक
अंगीकार किया है ।

करे छे परन्तु तेमना आचार्य मुखवस्त्रिका बाधवानु स्वीकार करे छे जिनपतिना शिष्य
पूर्णभद्रगणिविरचित ‘अतिमुक्तकचरित्र’मा श्लोक ८०-८१-८२मा कहुँ छे—

पर पदार्थोमा मुख नहि मानवावाणा निश्चल आसनथी सामे हाथ जोडीने
मुखपर मुँहपती धारण करेला ‘अतिमुक्तक’ मुनिछे श्रुतना अर्थ सासुये ॥८०-८२॥

विक्रम सवत् १२८२मा पूर्णभद्र गणिवे आ अतिमुक्तकचरित्र नामना ग्रंथ
लिखे छे आ सवत् २००२ सुधीमा तेने ७२० वर्ष व्यतीत थरुं बुक्या छे अथी स्पष्ट
जलुमा आवे छे के—तेमना आचार्योञ्जे अने तेमना अनुयायियोञ्जे मुखवस्त्रिका
बाधवानु आदरपूर्वक अंगीकार करुं छे

अपरञ्च विनपतिक्षिप्य क्व विरचिते सनत्कुमारचरित्रे सनत्कुमार^पक्षीय-पूर्व-
मक्षि- 'विक्रमयज्ञो' - नृपवर्णनेऽभिहितम्—

“ मुखेन्दुराजन्मुखवक्षिक्रम,
क्याप्तु लेमे विरवा द्विबीपैः ।

निपेषितः प्रान्तनिषिष्टराज,—

इसीच विभ्राञ्चि सरः भियं यः ॥ १ ॥ ”

सनत्कुमारः, तृतीयपूर्वमन्मनि विक्रमयज्ञो नाम नृपोऽमवत् । स च परिपदि
धर्मकथाभयकार्यं ययोपविष्टस्तद्राजं कृष्याह—

“ मुखेन्दुराजन्मुखवक्षिक्रम ” इत्यादि । व्याख्या—इन्द्रुरिय मुलं मुखेन्दुः,
मुखेन्दौ राजन्ती मुखवक्षिका यस्य स मुखेन्दुराजन्मुखवक्षिकः, मुखोपरिनिव
द्रातिभ्रुवस्यक्लबिनिर्मितवेदीप्यमानमुखवक्षिकः । विरमाः=निर्मलान्तः करणः,

इसके अतिरिक्त विनपति के शिष्य क्वद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्र में सनत्कुमार के
वीर्ये पूर्वमवधर्तौ विक्रमयज्ञ नामक राजा का वर्णन करते हुए कहा है—

सनत्कुमार अपने तृतीय पूर्वमवध में विक्रमयज्ञ नामक राजा का । वह परिष्क में
धर्मकथा सुनने के लिए मिस प्रकार बैठा था उसका वर्णन करते हुए करते हैं—‘मुखेन्दु’
इत्यादि । इसकी व्याख्या इस प्रकार है—

विसके मुखवक्ष पर मुखवक्षिका सुशोभित थी अर्थात् मुख के ऊपर बेंची
हुई, सकेद बक्ष की बनी हुई मुखवक्षिका से विसका मुख शोभायमान हो रहा था,
विसका अन्त-करण निर्मल था और जो द्विबा के समूह से सेवित था ऐसा विक्रमयज्ञ—

वे विवाच विनपतिनाशिष्य क्वद्वारा रचित सनत्कुमारचरित्रमा सनत्कुमारना
श्रीव्य पूर्वमवधवर्तौ 'विक्रमयज्ञ' नामना शब्दनु वर्णन करता यका कहे छे के—

सनत्कुमार पीताना श्रीव्य पूर्वमवधौ विक्रमयज्ञ नामना शब्द क्त्वा, ते परिष्कमां
(सलाभो) धर्मकथा सोलजया भाटे वे प्रभाक्षे जेठा क्त्वा तेषु पञ्चन करता यका कहे
छे के—मुखेन्दु इत्यादि. जेनी व्याख्या का प्रभाक्षे छे—

जेना मुखवक्ष पर मुखवक्षिका सुशोभित क्त्वी अर्थात् मुख केपर नापित्री
कहेद पञ्चनी जनेवी मुखवक्षिकावी जेनुं मुख शोभायमान यक्षरक्षुं कर्तुं जेनुं अन्तःकरण
निर्मल कर्तुं, जने वे द्विलेना समूहवी सेवित क्त्वा, जेवा विक्रमयज्ञ नामना शब्द

द्विजैर्वैः=द्विजसमूहैर्निपेक्षितः, यः=विक्रमयशो नृपः कथासु=धर्मकथापरिपत्तु
श्रियं=शोभा छेमे=प्राप्तवान् । किमिव ? प्रान्ते निविष्टा राजहंसी यस्य तद् प्रान्त-
निविष्टराजहंसि, विभ्राजि=देदीप्यमानं सर इव ।

यथा प्रान्तनिविष्टया राजहस्या विभ्राजमानं सरः श्रियं लभते तथा मुखो-
परिनिवद्धदं दीप्यमानमुखवस्त्रिकाया विक्रमयशो नृपः सदसि श्रियं लब्धवानित्यर्थः ।

करणे मुखवस्त्रिकाधारणे तु करतलव्यावृत्तमुखवस्त्रिकाया दीप्तिः समाच्छादिता
स्यात्, कथं तर्हि ' राजन्मुखवस्त्रिकः '—इत्यत्र 'राजन्'—पदप्रयोगसंसूचितमुख-
वस्त्रिकागतप्रभायाः प्रकाशमानता तिरोहिता भवेत्, तर्हि राजहंसीप्रभया ' विभ्राजी '
—ति सरोत्रिशेषणेन साम्यमपि न सिद्धयेत् ।

नामक राजा धर्मकथा की परिषद् में शोभा को प्राप्त हुआ । कैसी शोभा को प्राप्त हुआ ?
जैसे जिसके किनारे राजहंसों बैठी हो वह तालाव सुशोभित होता है ।

जिसके किनारे राजहंसों बैठी हो वह तालाव जैसे शोभित होता है उसी प्रकार मुख
पर बधी हुई और देदीप्यमान मुखवस्त्रिका से विक्रमयश राजा व्याख्यानपरिषद् में
शोभित हुआ ।

अगर हाथ से मुखवस्त्रिका पकड़ी होती तो मुखवस्त्रिका की दीप्ति हथेली से
छिप जाती । ऐसी स्थिति में ' राजन्मुखवस्त्रिकः ' इस पद में 'राजन्' शब्द के प्रयोग से
मुखवस्त्रिका की जो प्रभा सूचित की है वह प्रकाशमान कैसी होती ? फिर तो वह छिपी हुई
प्रभा रहजाती ! और फिर सरोवर के किनारे बैठी हुई राजहंसिनी की उरमा भी ठीक नहीं
बैठ सकती ।

धर्मकथानी सलामा शोभाने पाभ्या छे केवी शोभाने पाभ्या छे ? जेभडे—जेना
किनारे राजहंसी जेहा छे ते तणाव सुशोभित थाय छे

जेना किनारे राजहंसी जेहा छे ते तणाव जेवी रीते सुशोभित छे ते
प्रभाछे सुथ पर पाधेली अने अगमगाट शोभायमान सुभवस्त्रिकाथी विक्रमयश राज
व्याख्यापरिषद्—(सलामा) शोभता छे

अथवा हाथथी सुभवस्त्रिका पकडी छेते तो ते सुभवस्त्रिकानी दीप्ति—प्रकाश
हथेलीथी छेकथं जात. जेवी स्थितिमा ' राजन्मुखवस्त्रिक ' आ पठमा ' राजन् '
शब्दना प्रयोगथी सुभवस्त्रिकानी जे प्रभा—(प्रकाश) सूचित करी छे, ते प्रकाशमान
केवी रीते थात ? यही तो ते छेकथं जेवी प्रभा रही जात अने यही सरोवरना
किनारे जेहेवा राजहंसीनी उपमा परापर घटी शकत नहि.

अपरञ्च सरसि राजहसी यथा सदयाऽनावृता सती सरःशोभा मनयति तथा
मुसबस्त्रिका नृपस्य श्रिय करोतीति तात्पर्यं करतलेन मुसबस्त्रिकाधारणे कथमपि
नोपपद्यते ।

सस्मादेतत्सन्स्कुमारपरिश्रमय विप्रमयज्ञानृपस्य सदोरङ्गमुसबस्त्रिकाधारेण
मासीदिति सुस्पष्टमावेदयति ।

अहो ! महोयान् मोहमहिमा यत्सकीयगुरुवराणां सप्रदायशक्यमपिसमुद्गृह्यन्तो
महीमा न कथयित्प्रपन्ते ।

विस्तारतस्तु मिश्रामुमिदल्लैकास्त्रिकसुप्रस्य मरुताचारमणिमठजूपाटीपाया
मयमाभ्ययने बिलोकनीयम् ।

इसके अतिरिक्त—जैसे राजहंसिनी बिलकुल उपाड़ी होकर ही सरोवर की शोभा
बढ़ाती है उसी प्रकार मुसबस्त्रिका राजा की शोभा बढ़ाती है । यह तापय हाथ से मुस
बस्त्रिका धारण करने में किसी भी प्रकार महो घट सकता ।

अतः सनसुकारपरिश्रम का यह पत्र स्पष्टरूप से प्रकट करता है कि—विप्रम यथा राजा
के मुस पर होनासहित मुसबस्त्रिका बंधी थी ।

अहो ! मोह की महिमा महान है जिस के प्रभाव से व्यापुनिक लोग अपने गुरुओं
के परम्परा श्रावण का उल्लंघन करते हुए भी मग्निष्ठ मही होने ।

विस्तार से समझने की इच्छा रखने वाले मेरी रची हुई इतिहासिक गूथ की
'आचारमन्त्रामणिया'—टीका के अन्दर पढ़ें अभ्ययन में देख सकते हैं ।

जो शिवाय—जैसी शीते राजहंसिनी जोहम उपाड़ी यथनेत्र शोभासती शोभा
बढ़ाते है तेवोच शीते मुसबस्त्रिका राजनी शोभा बढ़ावती हैनी, आ तापय दावधी
मुसबस्त्रिका धारण करे तो—अथवा इस्वाधी कोई पत्र प्रहारे जनी शके नदि

जो श्रावणी सनसुभारपरिश्रम जो पद स्पष्टरूपी जनापी आपे है -
चिक्रमयश राजनी मुसबस्त्रिका दोससदिन मुसबस्त्रिका बांधी हैनी.

अहो ! मोहनेो महिमा महान है जेना प्रभावधी व्यापुनिक लोक पेलाना
सुमुजाना परम्परा श्रावण उल्लंघन करता पत्र शरभावा नधी.

विस्तारधी समझवानी उभ्या राजवाचजा भी समेती व्यवेशाविशुवनरी
आचारमन्त्रामणिया—टीकानी अदर पदेवा अभ्ययनमा जेध शके है

इति ब्रवीमि, इति=एतत्सर्वं ब्रवीमि=भगवतः समीपे यथा श्रुतं तथा कथयामीत्यर्थः ॥ सू० ६ ॥

अथ पद्मजीवनिकायारम्भकरणेन कर्मबन्धो भवतीत्याह—‘एत्थंपि. इत्यादि ।

मूलम्—

एत्थंपि जाण उवादीयमाणा, जे आयारे ण रमंति, आरंभमाणाविणयं वयंति, छन्दोवणीया अज्झोववण्ण आरंभसत्ता परंरंति संगं ॥ सू० ७ ॥

छाया—

अवापि जानीहि उपादीयमानाः, ये आचारो न रमन्ते, आत्ममाणा विनय वदन्ति, छन्दोपनीता अध्युपपन्नाः, आरम्भसवताः प्रकुर्वन्ति सङ्गम् ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी कहते हैं—यह सब भगवान् के समीप जैसा सुना है वैसा कहता हूँ ॥ सू० ३ ॥

एव यह कहते हैं कि—पद्मजीवनिकाय का आरम्भ करने से कर्मबन्ध होता है—‘एत्थंपि.’ इत्यादि ।

मूलार्थ—वायुकाय के विषय में भी आरम्भ करने वाले, कर्मों से बद्ध होते हैं, ऐसा समझो । जो आचार में रमण नहीं करते आरम्भ करते हुए भी अपने को विनय (चारित्र) वाले मानते हैं, इच्छानुसार चलते हैं, गृह्य हैं और आरम्भ में आसक्त हैं वे कर्मों उपार्जन करते हैं ॥ सू० ७ ॥

सुधर्मा स्वामी કહે છે —આ સર્વ લગવાનની સમીપમાં જેવું સાલવ્યુ છે તેવુંજ કહું છું. ॥ ૬ ॥

હવે એ કહે છે કે—પદ્મજીવનિકાયના આરંભ કરવાથી કર્મબંધ થાય છે—‘एत्थंपि’ इत्यादि

मूलार्थ—वायुकायना विषयमा पणु आरंभ करवावाणा, कर्मोधि बद्ध थाय छे ए प्रमाणे समझे जे आचारमा रमणु करता नथी, आरंभ करता थका पणु पोताने विनय (चारित्र) वाणा माने छे, इच्छानुसार चाले छे, गृह्य छे, अने आरंभमा आसक्त छे, ते कर्मोनु उपार्जन करे छे ॥ सू० ७ ॥

टीका—

अप्रापि=एतरिमन् वायुकायेऽपि, अपिश्चब्दात् अवशिष्टे पृथिव्याविचलुत्के स्वादरे प्रसकाये च ये भोगसोसुपाः स्वार्थवशगाः आरम्भ कुर्वन्ति, ते उपादीयमानाः ज्ञानापरधीयादिकर्मिर्भव्यमाना मन्तीत्येव ज्ञानीहि ।

एकधीवारम्ममहत्तः श्रेपधीमिकायारम्मन्नितकर्ममिषद्वो मपतीत्येवं विद्दी स्पर्षः । के पुनः पृथिव्याधारम्मकरणेन श्रेपधीवारम्ममन्यकर्ममिरपि षय्यमाना मन्तीति जिज्ञासायामाह—'ये आचारे न रमन्ते' इति ।

ये आचारे=ज्ञानदक्षनादिपठषविधाचारे न रमन्ते=न पूर्ति कुर्वन्ति, तान् कर्ममिर्भव्यमानान् ज्ञानीहि । के पुनराचारे न रमन्ते ? दण्डिभाषयादयः ।

कथमेतद्विज्ञायते ? इति जिज्ञासायामाह—'आरममाणा विनयं वदन्ति'

टीकार्यं—इस वायुकाय के विषय में भी—(अपि) शब्द से पृथ्वी आदि अन्य स्थानों में तथा प्रसकाय में जो भोगों के लक्षण और स्वार्थपरायण होकर आरम्भ करते हैं वे ज्ञानावरण आदि कर्मों से बन्ध होते हैं, ऐसा समझो ।

तात्पर्य यह है कि—एक जीव के आरम्भ में प्रवृत्ति करने बाह्य शेष जीविकायोंके आरम्भ से उत्पन्न होने वाले कर्मों से भी बन्ध होता है ।

ऐसे कौन हैं जो पृथ्वी आदि एक कायका आरम्भ करके शेष जीविकायों के आरम्भ से होने वाले कर्मोंद्वारा बन्ध होते हैं ? इस का समाधान करने के लिए कहते हैं—

जो ज्ञानाचार दर्शनाचार आदि पाँच आचारों में स्थिर नहीं होते उन्हें कर्मबन्ध होता है, ऐसा जानो । आचार में कौन स्थिर नहीं होते ? दण्डी तथा शाक्य आदि ।

यह कैसे ज्ञात हुआ ? इसके उत्तर में कहते हैं—ये पृथ्वीकाय आदि की विरायण

टीकार्थ—आ वायुकायना विषयमां पञ्च अपि शब्दधी पृथ्वी आदि अन्य स्थानेषु तथा प्रसकायमां ने कोशेना वातसु जने स्वार्थपरायण्ये जने आरभ्यते उ ते ज्ञानावरण्य आदि कर्मिधी बन्ध बाधे उ जे प्रभास्ये समझे ।

तात्पर्य जे उ हे—जेके लुचन्य आरभमां प्रवृत्ति करवावाण्य जाक्षिना लुचनिकायेना आरभधी उत्पल वषवाण्य कर्मिधी पञ्च बन्ध बाधे उ ।

जेवा हेव उ हे ने पृथ्वी आदि जेके बाधेना आरभ करिने जाक्षिना लुचनिकायेना आरभधी यनास कर्मिद्वारा बाधे उ । तेनु समाधान कस्था भागे कहे उ—

ने ज्ञानाचार-दर्शनाचार आदि पाँच आचारोंमां स्थिर नहीं बत्वा तेने कर्म बन्ध बाधे उ जे प्रभास्ये जेहे ।

आव्यवस्थां हेव स्थिर नहीं रहता ? इही जने शाक्य आदि ।

जे इनी रीते बन्धु ? तेना उत्तरमां कहे उ—ते पृथ्वीकाय आदिनी विरायण

इति । आरम्भमाणाः, पृथिव्यादीन् पीडयन्तोऽपि विनय=कर्मणां विनयाद् विनयः सयमस्तं, वदन्ति=‘वयमेव संयमिसेवनपराः’ इति निश्चङ्कं निगदन्तीत्यर्थः ।

ननु स्वात्मानं सयमिन मन्यमानास्ते कस्मात्पृथिव्यादिजीवहिंसनपराः ? इति जिज्ञासायां हेतुगर्भविशेषणपदद्वयमाह—‘छन्दोपनीताः’ ‘अध्युपपन्नाः’ इति । ‘छन्दोपनीताः’=छन्दः=स्वामिप्रायः, तेनोपनीताः स्वतन्त्राः शास्त्रविरुद्धविचारशीला इत्यर्थः ।

यद्वा छन्दः-अभिप्रायः=इच्छा, विषयाभिलाषस्तेनोपनीताः, तथा ‘अध्युपपन्नाः,’ अधि=अधिकम् अतिशयेन उपपन्नाः=तद्गतचित्ताः विषयसंनि-विष्टचित्ताः विषयभोगार्थमातुरा इत्यर्थः । यतश्छन्दोपनीता अध्युपपन्नाश्च तस्मात्ते पृथिव्यादीन् विहिंसन्तीति भावः । एवं पृथिव्यादिहिंसनेन पुनः कर्मबन्धं प्राप्नोतीत्याह—‘आरम्भसक्ताः’ इत्यादि । आरम्भः=सावधव्यापारः,

करते हुए भी अपने आपको निश्चक होकर सयमी कहते हैं । वे यह मानते हैं कि हम ही सयम का सेवन करने में तत्पर हैं ।

वे लोग अपने आपको संयमी मानते हुए भी पृथ्वीकाय आदि के जीवों की हिंसा में तत्पर क्यों होते हैं ? ऐसी जिज्ञासा होने पर दो विशेषण कहते हैं, जिन में हेतु छिपा है—‘छन्दोपनीत’ और ‘अध्युपपन्न’

छन्द का अर्थ है—अपना अभिप्राय, उससे स्वतंत्र अर्थात् शास्त्र से विरुद्ध विचार करने वाले । अथवा छन्द का अर्थ इच्छा है । फहाँ विषयभोगों की अभिलाषा को छन्द कहा है, उस में जो स्वतंत्र हो । तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयों में अत्यन्त आसक्त—विषयभोगों के लिए आतुर । तात्पर्य यह है कि—छन्दोपनीत और अध्युपपन्न होने के कारण वे पृथ्वी आदि की हिंसा करते हैं और कर्मों का बंध करते हैं । आरम्भ

करवा छत्ताय पशु पोते-पोताने नि शक थईने सयमी कडे छे ते अेषु माने छे के -अमे पशु संयमर्तु सेवन करवाभा तत्पर छीअे

ते दोक पोते-पोताने सयमी मानता थका पशु पृथ्वीकाय आदिना एवोनी हिंसामा तत्पर शा माटे डोय छे ? अेवी एसासा थता मे विशेषषु कडे छे नेमा डेतु छुपाअेले छे ‘छन्दोपनीत’ अने ‘अध्युपपन्न’ ‘छन्द’ने अर्थ छे पोताने अभिप्राय तेनाथी स्वतंत्र अर्थात् शास्त्री विरुद्ध विचार करवावाणा अथवा छन्दने अर्थ ध्ये छे, अहिं विषयभोगोनी अभिलाषाने छन्द कडेले छे तेमा ने स्वतंत्र डोय तथा अध्युपपन्न अर्थात् विषयमां अत्यन्त आसक्त—विषयभोगो माटे आतुर तात्पर्य अे छे के छन्दोपनीत अने अध्युपपन्न होवाना कारणे ते पृथ्वी आदिनी हिंसा करे छे अने कर्मोने बंध करे छे आरम्भ अर्थात्—सावध व्यापारमा प्रवृत्त पुरुष ज्ञानावरणीय

तत्र सत्का-प्रवृत्ताः, सत्क-सन्वयन्ते-स्मिष्य ते बीषा भवेनेति सत्क-ज्ञानावरणी
यादिकं कर्म, तं सत्कप्रकुर्वन्ति-समुत्पादयन्ति ।

एवं पद्मनीवनिकापारम्भकारिणः तल्लु कर्मबन्धनपराधीनतां समुपेत्य बन्ध
नरामरपेष्टविपोगानिःसयोगेऽसिद्धिद्विविधव्यापिनितदुःख सङ्कुलेपोरतर
संसारदाबानछे पुनः पुनः स्वात्मानमिन्धनीकुर्वन्तीति भाव ॥ सू० ७ ॥

अथ यस्तु पृथिव्यादिपद्मनीवनिकापारम्भकाराद्विनिवृत्तः स एव मुनिर्मवती
त्युपेक्षार्यमुपसंहरन्नाह— 'से वसुम ' इत्यादि ।

मूलम्—

से वसुमं सव्यसमन्वागतप्रज्ञानेन अप्यापेन अकरविज्जं पापं कर्म गो
कण्ठेसि ॥ सू० ८ ॥

छाया—

स वसुमान् सर्वसमन्वागतप्रज्ञानेन आत्मना अकरवीय पापं कर्म नो बन्धेपवेत्
॥ सू० ८ ॥

अर्थात् सावय म्यापार में प्रवृत्त ज्ञानावरणीय भादि कर्मों को उपासक करते हैं ।

इस प्रकार पद्मनीवनिकाय का आरम्भ करने वाले कर्मबन्धन के बंधन होकर
कर्म मरण, इष्टविशेष अनिष्टसंयोग इष्ट की असिद्धि तथा विविध प्रकार की व्यापियों से
छस्म होने वाले दुःखों से म्याप्त, पोस्तरसंसाररूपी दाबानछ में अपने आत्मा को ईकन
कगते हैं ॥ सू० ७ ॥

जो पृथ्वी भादि पद्मनीवनिकाय के आरम्भ से निवृत्त है वही मुनि होता है, इस उद्देश
के अर्थ का उपसंहार करते हुए सावकार करते हैं— 'से वसुमं ' इत्यादि ।

मूलार्थ—वही वसुमान् है (सम्यक्त्व-चारित्रवान्-सम्यग्धि है) जो बंधार्य पदार्थों को
बधनेवाले ज्ञानरत्ना से पाप को अकरणीय समझकर मही करता है ॥ सू० ८ ॥

आदि कर्मोनु उपासक करे छे

आ प्रभावे पद्मनीवनिकायने आरम्भ कस्वावाणा कर्मबन्धने आधीन बधने
बन्ध, अथ मरुज ऊदविशेष, अनिष्टसंयोग, छ-छेवी वस्तुनी व्यापित, तथा
विविध प्रकारनी व्यापिकोशी उत्पन्न बनारां दु जोशी व्याप्त, पोस्तर संसाररूपी
दाबानछमां पीतव्या आत्माने छधन-(लगतवृत्त) बनावे छे ॥ सू० ७ ॥

ने पृथ्वी भादि पद्मनीवनिकायना आरम्भशी निवृत्त छे तेव मुनि होय छे
आ उद्देशना अर्थने उपसंहार करीने सावकार कहे छे— से वसुमं इत्यादि

मूलार्थ—तेव वसुमान् छे (सम्यक्त्व-चारित्रवान् सम्यग्धि छे) ने बंधार्य
पदार्थोने बधुपावाणा संन्यातमाशी अपने अकरणीय (करवा योग्य नहीं कोव)
समझने कस्वा नहीं ॥ सू० ८ ॥

ટીકા—

યસ્તુ પદ્મજીવનિકાયારમ્ભનિવૃત્ત્યા સંયમપાલનપરાયણઃ, સ વસુમાન્, દ્વિવિધાનિ હિ વસુનિ સન્તિ દ્રવ્યભાવભેદાત્, તત્ર દ્રવ્યવમૃત્નિ-મુવર્ણાદોનિ, ભાવવસુનિ-સમ્યક્ત્વાદીનિ, અત્ર ભાવવસુતાત્પર્યકો વસુશબ્દઃ, તાનિ વસુનિ યસ્ય યસ્મિન્ વા સન્તિ સ વસુમાનિત્યર્થઃ, સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનેન=સર્વાણિ સમન્વાગતાનિ પ્રજ્ઞાનાનિ યસ્યાત્મનઃ સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ=યથાવસ્થિતવિપયગ્રાહિસર્વવિપયકજ્ઞાનવાન્, તેન ।

યદ્વા-સર્વેષુ દ્રવ્યપર્યાયેષુ સમન્વાગતં=સમ્યક્પ્રાપ્ત તત્તદ્વિપયમાકલ્પ્ય સર્વ-દ્રવ્યપર્યાયગતં પ્રજ્ઞાનં યસ્ય સ સર્વસમન્વાગતપ્રજ્ઞાનઃ, તેન, આત્મના, અકરણીયમ્=અકર્તવ્યમ્, ऐहिकपारलौकिकसुखविधातरुत्वादनाचरणीयम्, इति मत्वा, पापं कर्म=प्राणातिपात-मृषावादा-दत्तादान-मैथुन-परिग्रह-क्रोध-मान-माया-लोभ-राग-द्वेष

ટીકાર્થ—જો પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસવધી આરમ્ભ કા ત્યાગ કરકે સયમ કે પાલન મેં તત્પર હોતા હૈ વહી વસુમાન્ હૈ । વસુ કે દો ભેદ હૈ—(૧) દ્રવ્યવસુ ઓર (૨) ભાવવસુ । સ્વર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહલાતા હૈ, ઓર તપ સયમાદિરૂપ ઋદ્ધિ કો ભાવવસુ કહતે હૈ । યહાં ‘વસુ’ શબ્દ સે ભાવવસુ હી સમજના ચાહિૈ । વસુ જિસે પ્રાપ્ત હો વહ વસુમાન્ હૈ, અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિ સે યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહલાતા હૈ ।

જો વસ્તુ જૈસી હૈં ઉસે ઉસી રૂપ મેં જાનને વાલા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહલાતા હૈ । અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો ઓર પર્યાયો કો યથાર્થરૂપ સે જાનને વાલા જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહલાતા હૈ । ઈસે જ્ઞાનરૂપ આત્મા સે પાપ કો ઈસ લોક તથા પરલોકસવધી સુખો કા ઘાતક હોને સે અકર્તવ્ય સમજકર (૧) પ્રાણાતિપાત (૨) મૃષાવાદ (૩) અદત્તાદાન (૪) મૈથુન । (૫) પરિગ્રહ (૬) ક્રોધ, (૭) માન (૮) માયા (૯) લોભ

ટીકાર્થ—જે પુરુષ પદ્મજીવનિકાયસવધી આરભને ત્યાગ કરીને સયમના પાલનમા તત્પર થાય છે તેજ વસુમાન્ (સમ્યક્દષ્ટિ) છે વસુના બે ભેદ છે. (૧) દ્રવ્ય-વસુ અને (૨) ભાવવસુ, સુવર્ણ આદિ ધન દ્રવ્યવસુ કહેવાય છે અને સમ્યક્ત્વ આદિ રૂપ ઋદ્ધિને ભાવવસુ કહે છે અહિં ‘વસુ’ શબ્દથી ભાવવસુ જ સમજવું જોઈએ વસુ જેને પ્રાપ્ત હોય તે વસુમાન્ છે અર્થાત્ સમ્યક્ત્વ આદિથી યુક્ત પુરુષ વસુમાન્ કહેવાય છે

જે વસ્તુ જેવી છે તેને તેવા રૂપમા જાણવાવાળા સર્વગ્રાહી જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’, કહેવાય છે અથવા સમસ્ત દ્રવ્યો અને પર્યાયોને યથાર્થ રૂપથી જાણવા વાળું જ્ઞાન ‘સર્વસમન્વાગત પ્રજ્ઞાન’ કહેવાય છે એવા જ્ઞાનરૂપ આત્માથી પાપને આ લોક તથા પરલોક—સવધી સુખોતુ ઘાતક હોવાથી અકર્તવ્ય સમજીને (૧) પ્રાણાતિપાત, (૨) મૃષાવાદ, (૩) અદત્તાદાન, (૪) મૈથુન, (૫) પરિગ્રહ, (૬) ક્રોધ, (૭) માન,

—कर्मशास्त्र्याख्यान-वैशुन्य-परपरिवाद-रत्परति-मायामृषा-मिथ्या-दक्षेनश्चर्या
मिधानमष्टादशमकारं नावपयेत्—न स्वयं कुर्यात्, न धान्यैः कारयेत्, न धान्यं
कुर्यात् ननुमादयेदित्यर्थः ।

योज्यमात्मा स्वकीयमद्धानेन सर्वद्रव्यपर्यायसमाकलनयोग्यतां धारयति, येन
ष मोक्षमार्गावस्म्बन्तः क्षिप्रपदमपि क्षनयते गन्तुम्, तस्यात्मनः पुनरप्यपतन
कारिस्वात् पापं कर्म सर्वथा परित्याग्यमिति विभाव्य पद्मीवनिकापारम्भकरणा
सर्वथा विनिवृत्तव्यमिति भावः ॥ सू० ८ ॥

पद्मीवनिकापारम्भस्य सर्वथा परिहार एव मुनित्वं प्रापयतीत्याह—‘तं
परिष्णाय’ इत्यादि ।

मूलम्—

तं परिष्णाय मेहावी जेष सयं छज्जीवनिकापसत्यं समारंभेन्मा
प्येषज्ज्योर्हि छज्जीवनिकापसत्यं समारंभावेन्मा, प्येषज्जणे छज्जीवनिकापसत्यं
(१०) राग (११) द्वेष (१२) क्रोध (१३) अम्याख्यान (१४) वैशुन्य (१५) परपरिवाद
(१६) रति-भरति (१७) माया-मृषा और (१८) मिथ्यादर्शनरूप अद्वय प्रकार का पाप
को स्वयं नहीं करता है, दूसरा से नहीं करता है और दूसरे करत बाँक का अनुमोदन नहीं
करता है बही पुरुष बभुमान् है ।

तत्पर्यं यह है कि—जो अत्मा अपने प्रज्ञान से समस्त द्रव्यों और पर्यायों को
मैत्री भाँति जानने की योग्यता धारण करता है और जो मोक्ष-मार्ग का आश्रय लेकर
मुक्तिपद भी प्राप्त कर सकता है उसको अत्मा का अवपतन करत बाँक पापहृत् सर्वथा
त्याग्य है ऐसा विचार करके पद्मीवनिकाप के अरंभ से विरत हो जाना चाहिए ॥ सू० ८ ॥

पद्मकाय के अरंभ का त्याग ही साधुता प्राप्त करवाता है, यह बात समझे रहते
हैं—‘तं परिष्णाय’ इत्यादि ।

(८) माया (९) द्वेष (१०) राग, (११) द्वेष, (१२) क्रोध (१३) अम्याख्यान,
(१४) वैशुन्य (१५) परपरिवाद, (१६) रति-भरति, (१७) माया-मृषा अने (१८)
मिथ्यादर्शनरूप अद्वय प्रकारों ने पाप देने पीते करवा नहीं, पीकर पाये करवाता
नहीं अने पीकर करवावाजाने अनुमीदन आपत्ता नहीं. तेज पुरुष बभुमान् ते
तत्पर्यं को है—जो अत्मा पीताना प्रज्ञानभी समस्त द्रव्यों अने पर्यायों ने
द्वैती रीते आपत्तानी योग्यता धारण करे है अने ने मोक्षमार्गने आश्रय लेने मुक्तिपद
पहुँच प्राप्त करी सके है तेने, आत्मानु अद्वय करतारों आपत्त सर्वथा त्याग्य है
कोवे। विचार करीने पद्मीवनिकापना आरंभभी निवृत्त कर्ष कर्षुं ले ले. ॥ सू० ८ ॥
पद्मीवनिका आरंभने त्याग साधुता प्राप्त करवाते है को बात आगत करे है—
‘तं परिष्णाय’ इत्यादि.

समारंभंते समणुजाणेज्जा । जस्सेते छज्जीवनिकायसत्यसमारंभा परिण्णाया भवंति,
से हु मुणी परिण्णायकम्मै-त्ति वेमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सत्तमो उद्देशो समत्तो ॥ १ । ७ ॥

॥ आचारसूत्रे पदमज्जयण समत्तं ॥ १ ॥

छाया—

तत् परिज्ञाय मेधावी नैव स्वयं पड्जीवनिकायशस्त्रं समारभेत, नैवान्यैः
पड्जीवनिकायशस्त्रं समारम्भयेत्, नैवान्यान् पड्जीवनिकायशस्त्रं समारभमाणान्
समनुजानीयात् । यस्यैते पड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः परिज्ञाता भवन्ति स खलु
मुनिः परिज्ञातकर्मा, इति ब्रवीमि ॥ सू० ९ ॥

॥ सप्तम उद्देशः समाप्तः ॥१-७॥

॥ आचारसूत्रे प्रथमाध्ययनं समाप्तम् ॥

टीका—

तत्=पड्जीवनिकायारम्भणं, परिज्ञाय=ज्ञपरिज्ञया 'कर्मबन्धस्य
कारणं भवती'ति बुद्ध्वा मेधावी=हेयोपादेयविवेकनिपुणः, नैव स्वयं पड्जीवनिकाय-
शस्त्रं समारभेत । अन्यैर्नैव समारम्भयेत्=नैव प्रयोजयेत् । अन्यान् पड्जीवनिकाय-
शस्त्रं समारभमाणान् नैव समनुजानीयात्=नैवानुमोदयेत् ।

यस्यैते पड्जीवनिकायशस्त्रसमारम्भाः—पड्जीवनिकायानां शस्त्रैः=

मूलार्थ—यह बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष पड्जीवनिकायसवधी शस्त्र का
समारभ न करे, दूसरों से पड्जीवनिकायसवधी शस्त्र का समारभ न करावे, और पड्-
जीवनिकायसवधी शस्त्र का समारभ करने वालों का अनुमोदन न करे । पड्जीवनिकाय-
सवधी आरम्भ को जो बध का कारण जान लेता है, वही मुनि है और वही परिज्ञातकर्मा है ।
ऐसा मैं कहता हूँ ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—पड्जीवनिकाय के आरम्भ को ज्ञपरिज्ञा से कर्मबन्ध का कारण जानकर
हेय-उपादेय का विवेक रखने वाला पुरुष पड्जीवनिकाय के शस्त्र का स्वयं आरम्भ न करे,
दूसरों से न करावे और आरम्भ करने वालों की अनुमोदना न करे ।

पड्जीवनिकायसवधी जो शस्त्र पहले बतलाये जा चुके हैं उनके द्वारा पड्जीवनिकाय को

मूलार्थ—ये बात जानकर बुद्धिमान् पुरुष पड्जीवनिकायसवधी शस्त्रों
समारभ करे नहि, भीन पासे पड्जीवनिकायसवधी शस्त्रों समारभ करावे नहि, अने
पड्जीवनिकायसवधी शस्त्रों समारभ करवावाजाने अनुमोदन आपे नहि
पड्जीवनिकायसवधी आरम्भने के अधुं कारखु नाली दे छे तेज मुनि छे, अने
तेज परिज्ञातकर्मा छे अबु हु कहु छु ॥ सू० ८ ॥

टीकार्थ—पड्जीवनिकायना आरम्भने ज्ञपरिज्ञाथी कर्मबन्धुं कारखु नालीने हेय-
उपादेयने विवेक राभवावाजा पुरुष पड्जीवनिकायना शस्त्रों पोते आरम्भ करे नहि,
भीन पासे करावे नहि, अने आरम्भ करनारने अनुमोदन आपे नहि.

पड्जीवनिकायसवधी के शस्त्र प्रथम अतावी आया छे पड्जीवनिकायने

स्वस्वधर्मैः समारम्भाः=पीडाकरसाधन्यापाराः परिज्ञाताः=अपरिज्ञया बन्धकारण
त्वेन विदिताः, प्रत्याख्यानपरिज्ञया च परिज्ञता भवन्ति स एष परिज्ञातकर्मा-
त्रिकरणत्रियोगैः परिबर्जितसकलसाधन्यापाराः, मुनिर्भवति । इति=एतत् सर्वम्,
प्रवीणि-मगवतः समीपे यथा भूतं तथा कथयामि ॥ सू० ९ ॥

॥ इत्याचाराङ्गसूत्रे आचारचिन्तामणिटीकायां आख्यपरिज्ञाख्ये
प्रथमाध्ययने सप्तमोद्देशः सम्पूर्णः ॥ १-७ ॥

पीडा पहुँचाने वाले साधन न्यापारों को अपरिज्ञ से कर्मबंध का कारण मानकर
प्रत्याख्यानपरिज्ञा से त्याग देता है वही पुरुष तीन करण बौध तीन योग से साधन न्यापारों
का त्यागी मुनि होता है । यह सब भगवान् के मुक्तारम्भ से ज्ञेया हैं साक्षात् सुना है
कहाही करता हूँ ॥ सू० ९ ॥

॥ इति श्री आचाराङ्गसूत्रकी आचारचिन्तामणिटीका के हिन्दी-अनुवादमें
प्रथम अध्यायनका सातवाँ उद्देश सम्पूर्ण ॥ १ ॥

पीडा पहुँचानेवाला साधन न्यापारों को अपरिज्ञाही कर्मबंध का कारण मानकर
प्रत्याख्यान परिज्ञाही त्यज दे छे ते पुरुष त्रय करण बने त्रय योगही साधन
न्यापारों को त्यागी मुनि होत छे आ सर्वे भगवानना मुक्तारम्भही जेहु से साक्षात्
कहाव्यु छे तेहुँ कहूँ छ ॥ सू० ९ ॥

इति श्रीआचारसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना गुजराती अनुवादभा
प्रथम अध्यायनको सातवो उद्देश सम्पूर्ण ॥ १-७ ॥

आद्ये चाध्ययने प्ररूपितमिदं संसारचक्रेऽनिशं,
भ्राम्यन् दिक्षु विदिक्षु गच्छति ततश्चात्मा समागच्छति ।

इत्येव कथितं मही-जल-शिखि-प्राण-द्रुमाणां तथा,
जीवत्वं त्रस-कायिकस्यचतदारम्भे परिज्ञाऽपि च ॥ १ ॥

इति श्री-विश्वविख्यात-जगद्ब्रह्म-प्रसिद्धवाचक-पञ्चदशभाषाकलित-
ललितकलापालापक-प्रविशुद्भगद्यपद्यनैकग्रन्थनिर्मायक-वादिमानमर्दक-
श्रीशाहूच्छत्रपति-कोल्हापुरराजप्रदत्त-'जैनशास्त्राचार्य' पदभूषित-
कोल्हापुरराजशुरू-वालब्रह्मचारि-जैनाचार्य-जैनधर्मदिवाकर-पूज्यश्री-
घासीलालव्रति विरचितायाम् आचाराङ्गसूत्रस्याऽऽचारचिन्ता
मणिटीकायां शस्त्रपरिज्ञाख्यं प्रथममध्ययन संपूर्णम् ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययन में यह निरूपण किया गया है कि-आत्मा संसार चक्र में पडकर
नाना दिशाओं में और नाना विदिशाओं में निरन्तर भ्रमण करता रहता है । साथ ही पृथ्वी,
अप, तेज, वायु वनस्पति और, त्रस की सच्चितता भी सिद्ध की गई है, और उनका
आरम्भ करने में परिज्ञा भी प्रदर्शित की गई है ॥ १ ॥

॥ इति श्री-आचाराङ्गसूत्रकी 'आचारचिन्तामणि' टीका के
हिन्दी अनुवाद में 'शस्त्रपरिज्ञा' नामक प्रथम अध्ययन
सम्पूर्ण ॥ १ ॥

प्रथम अध्ययनमा अत्र निरूपणं करवामा आब्यु छे के-आत्मा संसारचक्रं
पडीने अनेक दिशाओमा अने अनेक विदिशाओमा निरन्तर भ्रमणं करतो रहे छे
साथेच पृथ्वी, अप, तेज, वायु, वनस्पति अने त्रसनी सच्चितता पण सिद्ध करी
छे, अने तेनी आरंभ करवामा परिज्ञा-विवेकं पण प्रदर्शित करेव छे ॥ १ ॥

॥ इति श्री आचारांगसूत्रनी 'आचारचिन्तामणि' टीकाना गुजराती
अनुवादमां 'शस्त्रपरिज्ञा' नामनुं प्रथम अध्ययन सम्पूर्णं ॥ १ ॥

दाताओनी नामावली

आद्य मुरब्बीभी, मुरब्बीभी, सहायक मेम्बरो
तथा
मेम्बरोनी याही

आभवार ठक्कावारी वीए

ता १८-१०-४४ थी ता २८-२-५८ सुधीमा
हापस वज्जेस मेम्बरो.

(२५० थी कोळी रकमो व्हा माहीमां सामेस ठरी नथी)

श्री अणिल भारत प्रेस्था जैन शास्त्रोद्धार समिति

जदेहीया जुवा रोड - धीन बोण पासे

राजकोट

આધમુરખીશ્રીઓ-૪

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૫૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

નંબર	નામ	ગામ	રૂપિયા
૧	શેઠ શાન્તીલાલ મંગળદાસભાઈ જાણીતા મીલમાલીક અમદાવાદ		૧૦૦૦૦
૨	શેઠ હરખચંદ કાલીદાસભાઈ વારીયા હા. શેઠ લાલચ દભાઈ, જેચ દભાઈ નગીનભાઈ, વૃજલાલભાઈ, તથા વલ્લભદાસભાઈ ભાણુવડ		૬૦૦૦
૩	કેઠારી જેચંદભાઈ અજરામર હા હરગોવી દભાઈ જેચંદભાઈ	રાજકોટ	૫૨૫૧
૪	શેઠ ધારશીભાઈ જીવનભાઈ	ઝોલાપુર	૫૦૦૧

મુરખીશ્રીઓ-૨૨

(ઓછામાં ઓછી રૂ. ૧૦૦૦ ની રકમ આપનાર)

૧	વકીલ જીવરાજભાઈ વર્ધમાન કેઠારી હા કહાનદાસભાઈ તથા વેણીલાલભાઈ	જેતપુર	૩૬૦૫
૨	દોશી પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	રાજકોટ	૩૬૦૪
૩	મહેતા ગુલાબચંદ પાનાચંદ	,,	૩૨૮૯૧૧-૧૧
૪	સ્વ. પિતાશ્રી છગનલાલ શામળદાસના સ્મરણાર્થે હ ભાવસાર લોગીલાલ છગનલાલ	અમદાવાદ	૩૨૫૧
૫	મહેતા માણેકલાલ અમુલખરાય	ઘાટકોપર	૩૨૫૦
૬	સંઘવી પીતામ્બરદાસ ગુલાબચંદ	જામનગર	૩૧૦૧
૭	શેઠ શામજીભાઈ વેલજીભાઈ વીરાણી	રાજકોટ	૨૫૦૦
૮	નામદાર ઠાકોર સાહેબ લખધીરસિંહજી ખહાહુર	મોરબી	૨૦૦૦
૯	શેઠ દહેરચંદ કુંવરજી હા. શેઠ ન્યાલચંદ દહેરચંદ	સિદ્ધપુર	૨૦૦૦
૧૦	શાહ છગનલાલ હેમચંદ વસા હા. મોહનલાલભાઈ તથા મોતીલાલભાઈ	સુબઈ	૨૦૦૦
૧૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	મોરબી	૧૯૬૩
૧૨	મહેતા સોમચંદ તુલસીદાસ તથા તેમના ધર્મપત્નિ અ સૌ મણીગૌરી મગનલાલ	રતલામ	૧૫૦૦
૧૩	મહેતા પોપટલાલ માવજીભાઈ	જામજોધપુર	૧૩૦૧
૧૪	દોશી કપુરચંદ અમરશી હા દલપતરામભાઈ	,,	૧૦૦૨
૧૫	ખગડીઆ જગજીવનદાસ રતનશી	જામનગર	૧૦૦૨

16	शेठ आत्माराम भायेंकवाळ	जमदावाड	१००१
17	शेठ भायेंकवाळ बाबाळभाळ	पोरजडर	१००१
18	श्रीमान अ. क्रसिंकल भेंटेवा (रेहवे भेनेकर साहेल) कलकत्ता		१००१
19	भेंटेवा सोमबाळ नेवुसीभाळ (कशाबीवाळा)	भोरणी	१००१
20	शाळ करीवाळ जनोपजडभाळ	जळाव	१००१
21	डेवारी छणीवडास करजजडभाळ	मुण्ळ	१०००
22	डेवारी रजीवडास करजजडभाळ	सिडोर	१०००

सहायक मेम्बरो-86

(कोष्टमा कोष्टी इ. ५०० नी रकम व्यापनाए)

1	शाळ रजळभाळ मोहनवाळ	जमदावाड	७५१
2	मोदी केशववाळ करीवक्र	साजरमटी	७५०
3	श्री स्थानकवासी जैन सव		
	का शेठ लुवाभाळ वलसीभाळ	वडवाळु शंहेर	७५०
4	शेठ नरोत्तमडास कोषडभाळ	जेसवरनजर	७००
5	शेठ रतनशी हीरळभाळ का जोरधनडासभाळ	जमजोधपुर	५५५
6	गाटवीमा जीरधर प्रभाळुड का जमीनडभाळ	भाणीजणीमा	५२७
7	भोरणीवाळा सवणी देवजड नेवुसीभाळ तथा तेमना धर्मपति ज. सी. मण्डीभाळ तरुंधी का मुण्णजड देवजड (कशाबीवाळ)	मळाड	५११
8	वोरा मण्डीवाळ पोपटवाळ	जमदावाड	५०२
9	मोसजीवा करीवाळ बाळसड तथा ज. सी. ज. पागेन मोसजीवा	जमदावाड	५०२
10	शेठ प्रेमबाळ भायेंकवाळ तथा ज. सी. समस्तनेन (राजसीतापुरवाणा)	जमदावाड	५२
11	शेठ धरुवाळ पुत्रोत्तमडास	जमदावाड	५०१
12	शेठ ज. डुवाळ छजनवाळ	जमदावाड	५१
13	शाळ शान्तीवाळ भायेंकवाळ	जमदावाड	५०१
14	शेठ शीववाळ डभरभाळ (कशाबीवाळा)	सीजरी	५०१
15	डामडार ताराजड पोपटवाळ पोपटवाणा	राजडोट	५००
16	भेंटेवा मोहनवाळ कपुण्णजड	राजडोट	५०
17	शेठ जोनीडल पोपटभाळ	राजडोट	५०
18	शेठ रामळभाळ शामल बीरणी	राजडोट	५०१

૧૯	સ્વ. પિતાશ્રી નંદાજીના સ્મરણાર્થે		
	હા વેણીચંદ શાન્તીલાલ (જાણુઆવાળા)	મેઘનગર	૫૦૧
૨૦	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ હા શેઠ ઠાકરશી કરસનજી થાનગઢ		૫૦૦
૨૧	શેઠ તારાચંદજી પુખરાજજી	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
૨૨	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	ઔરંગાબાદ	૫૦૦
	૧૫૦ શેઠ શેષમજી જીવરાજજી		
	૧૨૫ „ અનરાજજી લાલચંદજી		
	૧૨૫ ધુકડચંદજી રૂપચંદજી		
	૧૦૦ ઠગડુમલજી ચાદમલજી		
	૫૦૦		
૨૩	મહેતા મૂળચંદ રાઘવજી હા. મગનલાલભાઈ તથા દુર્લભજીભાઈ દ્રાક્ષા		૫૦૦
૨૪	શેઠ હરખચંદ પુરૂષોત્તમ હા ઈન્દુકુમારભાઈ	ચૌરવાડ	૫૦૧
૨૫	શેઠ કેસરીમલજી વસતીમલજી ગુગલીયા	રાણાવાસ	૫૦૧
૨૬	સ્થા. જૈનસંઘ હા ખાટવીયા અમીચંદ ગીરધરભાઈ આખીજાળીઆ		૫૦૧
૨૭	શેઠ ખીમજીભાઈ ખાવાભાઈ		
	હા કુલચંદભાઈ, નાગરદાસભાઈ તથા જમનાદાસભાઈ સુખઈ		૫૦૧
૨૮	શેઠ મણીલાલ મોહનલાલ ડગલી હા. સુખજીભાઈ મણીલાલ સુખઈ		૫૦૧
૨૯	સ્વ. કાતીલાલભાઈના સ્મરણાર્થે હા. શેઠ ખાલચંદ સાકરચંદ સુખઈ		૫૦૧
૩૦	કામદાર રતીલાલ દુર્લભજી (જેતપુરવાળા)	સુખઈ	૫૦૧
૩૧	શાહ જયતીલાલ અમૃતલાલ	શીવ	૫૦૧
૩૨	વોરા મણીલાલ લક્ષ્મીચંદ	શીવ	૫૦૧
૩૩	શેઠ ગુલાબચંદ ભુદરભાઈ	ખારરોડ	૫૦૧
૩૪	મહાન ત્યાગી બેન ધીરજીકુવર સુનીલાલ મહેતા	ભાણુવડ	૫૦૧
૩૫	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈનસંઘ.	દ્રાક્ષા	૫૦૧
૩૬	શ્રી મગનલાલ છગનલાલ શેઠ	રાજકોટ	૫૦૧

*

૩૧૬ મેમ્બરોનું ગામવાર લીસ્ટ

અમદાવાદ તથા પરાંઓ

૧	શેઠ ગીરધરલાલ કરમચંદ	૨૫૧
૨	શેઠ છોટાલાલ વખતચંદ હસ્તે ફકીરચંદભાઈ	૨૫૧
૩	શાહ કાન્તીલાલ ત્રીલોખનદાસ	૨૫૧
૪	શાહ પોચાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૫	શાહ પોપટલાલ મોહનલાલ	૧

૬	ચેક પ્રેમજીવ સાકરજીવ	૨૫૦
૭	ચાક રતીલાલ વામીલાલ	૨૫૧
૮	ચેક લાલભાઈ મજબાસ	૨૫૧
૯	સ્વ. જમુતલાલ વર્ધમાનના સ્મરણાર્થે હસ્તે ઠાનજીભાઈ જમુતલાલ હેરાઈ	૨૫૧
૧૦	ભાવસાર ભોળીલાલ જમનાદાસ (વાટજીવાળા)	૨૫૧
૧૧	ચાક નટવરલાલ જહુલાલ	૨૫૧
૧૨	ચાક નરસિંહદાસ ત્રીસોવનદાસ	૨૫૧
૧૩	શ્રી ચાકપુર હરીવાપુરી જાકોટી સ્થા. જૈન ઉપાસક હા. વ્હીવટકાંતી ચેક ઈશ્વરલાલ પુરોતમદાસ	૨૫૧
૧૪	શ્રી ઈપાપોળ હરીવાપુરી જાકોટી સ્થા. જૈનસભ હા. જહુલાલ જમુતલાલ	૨૫૧
૧૫	ચાક શ્રીનુભાઈ બાલાભાઈ C/o ચાક બાલાભાઈ મહામુખરામ	૨૫૧
૧૬	ચાક ભાઈલાલ ઉબમરી	૨૫૧
૧૭	શ્રી મુખલાલ ડી. ચેક હા. ડી. કુ સરસ્વતીબેન ચેક	૨૫૧
૧૮	શ્રી સૌરાષ્ટ્ર સ્થા. જૈનસભ હા. ચાક ઠાન્તીલાલ જીજીલાલ	૨૫૧
૧૯	મોઠી નાથાલાલ મહાદેવદાસ	૨૫૧
૨૦	ચાક મોકનલાલ ત્રીકમદાસ	૨૫૧
૨૧	શ્રી ઇકોટી સ્થા. જૈનસભ હા. ચાક પોલાલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨૨	ચેક પાપટલાલ હંસરાવના સ્મરણાર્થે હા. ચેક બાલુલાલ પાપટલાલ	૨૫૧
૨૩	હેરાઈ જમુતલાલ વર્ધમાન બાપીદરાવાળા હા. ભાઈલાલ જમુતલાલ હેરાઈ	૨૫૧
૨૪	ચાક નવનીતલાલ જમુલખરામ	૨૫૧
૨૫	ચાક મણીલાલ આશાસમ	૨૫૧
૨૬	ચાક શ્રીનુભાઈ સાકરજીવ	૨૫૧
૨૭	ચાક વરજીવનદાસ ઉમેદજીવ	૨૫૧
૨૮	ચાક વજનીકાન્ત હસ્તુસ્જીવ	૨૫૧
૨૯	સુધની જીજીલાલ ઇચનલાલ (સ્થા. જૈન)	૨૫૧
૩૦	ચાક ઝાવિલાલ મોકનલાલ ધાંવદ્રાવળા	૨૫૧
૩૧	જી. સી. બેન સ્તનભાઈ નારોવા હા. ચાક મુલાઈ વપોલાલજી	૨૫૧
૩૨	ચાક હરિલાલ જોડાલાલ ભાદલાવાળા	૨૫૧
૩૩	શ્રી સરસપુર હરીવાપુરી જાકોટી સ્થા. જૈન ઉપાસક હા. ભાવસાર ભોળીલાલ ઇચનલાલ	૨૫૧
૩૪	ચેક પુખરાજી સમ્પતીરામજી સાહીવળા	૨૫૧
૩૫	ચેક લાલજીવ મીઠીલાલ	૨૫૧

૩૬	સ્વ. પિતાશ્રી જવાહીરલાલજી તથા પૂત્ન્ય ત્રાચાણ હનરીમલજી બરડીયાના સ્મરણાર્થે હા. મૂળચંદ જવાહરલાલ	૨૫૧
૩૭	સ્વ ભાવસાર બળાભાઈ (મગળદામ) પાનાચંદના સ્મરણાર્થે હા તેમના ધર્મપત્નિ પુરીબેન	૨૫૧
૩૮	સ્વ પિતાશ્રી રવજીભાઈ તથા સ્વ માતૃશ્રી મૂળીબાઈના સ્મરણાર્થે હ. કંકલભાઈ કોઠારી	૩૦૧
૩૯	ભાવસાર કેશવલાલ મગનલાલ	૨૫૧
૪૦	શાહ કેશવલાલ નાનચંદ જખડાવાળા હા. પાર્વતીબેન	૨૫૧
૪૧	શાહ જીતેન્દ્રકુમાર વાડીલાલ માણેકચંદ ગજસીતાપુરવાળા (સાબરમતી)	૨૫૧
૪૨	શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ (સાબરમતી)	૨૫૦
૪૩	ખીપીનચંદ્ર તથા ઉમાકાત ચુનીલાલ ગોપાણી (રાણપુરવાળા)	૩૦૧

અમલનેર

૧	શાહ નાગરદાસ વાઘજીભાઈ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હા. શાહ ગાંડાલાલ લીખાલાલ	૨૫૧

આણંદ

૧	રમણીકલાલ એ. કપાસી હા મનસુખલાલભાઈ	૨૫૧
---	----------------------------------	-----

આસનસોલ

૧	ખાવીસી મણીલાલ ચત્રબુજના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ મણીબાઈ તરફથી હા. રસીકલાલ, અનીલકાત, વિનોદરાય	૨૫૧
---	---	-----

આટકોટ

૧	શાહ ચુનીલાલ નારણજી	૩૦૧
---	--------------------	-----

ઉદેપુર

૧	શેઠ મોતીલાલજી રણજીતલાલજી હીંગડ	૨૫૧
૨	શેઠ મગનલાલજી બાગચેયા	૨૫૧
૩	અ સૌ ખંડેન ચંદ્રાવતી તે શ્રીમાન બહોતલાલજી નાહરના ધર્મપત્નિ હા શેઠ રણજીતલાલજી હીંગડ	૨૫૧
૪	સ્વ શેઠ કાળુલાલજી લોઠાના સ્મરણાર્થે હા શેઠ દોલતસિંહજી લોઠા	૨૫૧
૫	સ્વ શેઠ પ્રતાપમલજી સાબલાના સ્મરણાર્થે હા. પ્રાણલાલ હીરાલાલ સાબલા	૨૫૦

- ૬ પૂજ્ય પિતાશી માતીલાલજી મહેતાના સ્મરણાર્થે
 ૬. રજુલવલાલજી માતીલાલજી મહેતા ૨૫૧
- ૭ જનનલાલજી બાગરેખા
 ઉમરગાવરોઠે ૨૫૧
- ૧ શાહ મોહનલાલ પોપટલાલ પાનેશીવાળા
 ઉપસૈયા ૨૫૧
- ૧ શેઠ જ્ઞેશલાલ યોશ્વનદાસ ૨૫૧
- ૨ સ્વ. બેન સંતોકબેન કચરા હા. સ્ત્રીવમજદલાઈ, ઠોટાલાલભાઈ
 વશા જમ્બુવલાલભાઈ વાલજી (કન્યાગુણાળ) ૨૫૧
- ૩ શેઠ જુલાલચંદ કાનજીભાઈ હા. શેઠ પ્રતાપભાઈ ૨૫૧
- ૪ સ. ઘાળી મૂળશંકર હરજીવનભાઈના સ્મરણાર્થે
 ૬ તેમના પુત્રો જ્ઞાતીલાલભાઈ વશા રમણીલાલ
 સોકન કેમ્પ ૨૫૧
- ૧ શાહ યોજનદાસ ચામજી ઉચ્છવી
 ઠસોલ ૨૫૧
- ૧ શેઠ મોહનલાલ જ્ઞેશભાઈના સ્મરણાર્થે
 ૬. શેઠ જ્ઞાદમારામ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૨ ડો. મધાચંદ જનનલાલ શેઠ હા. ડો. રત્નચંદ મધાચંદ ૨૫૧
- ૩ સ્વ. નાથાલાલ ઉમેશચંદના સ્મરણાર્થે હા. શાહ સ્ત્રીલાલ નાથાલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ વલજીચંદના સ્મરણાર્થે
 ૬. મારકુટીયા ચંદુલાલ મણીલાલ ૨૫૧
- કઠી
- ૧ શ્રી સ્વા. હરીયાપુરી જૈનસંઘ હા. જાવચાર હામીદજીસંઘ ધંધરજી ૨૫૧
- કોલકી
- ૧ પટેલ યોવીદલાલ જનવાનજી ૨૫૧
- ૨ પટેલ ખીમજી જ્ઞેશભાઈ વાલજી (તેમના સ્વ. સુપુત્ર
 રામજીભાઈના સ્મરણાર્થે) ૩ ૨
- ખીચન
- ૧ શેઠ કીચનલાલ પૂજ્યીશાવ ૨૫૧
- જલાલ
- ૧ શેઠ માણેજીલાલ જનવાનદાસ ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્વા. જૈનચંદ હા. પટેલ કાન્તીલાલ જલાલાલ ૨૫૧
- ૩ શાહ સાકરચંદ મોહનલાલ ૨૫૧
- ૪ શાહ જડુલાલ હરીલાલ ૨૫૧

ગુંદા

- ૧ સ્વ. મહેતા પુનમચદ ભવાનભાઈના સ્મરણાર્થે
હા. તેમનાં ધર્મપત્નિ દીવાળીબેન લીલાધર ૨૫૧

ગોંડલ

- ૧ સ્વ. બાબડ વચ્છરાજ તુલસીદાસનાં ધર્મપત્નિ કમળબાઈ તરફથી
હા. માણેકચ દલાઈ તથા કપુરચ દલાઈ ૨૫૧
- ૨ ખીપળીઆ લીલાધર દામોદર તરફથી તેમના ધર્મપત્નિ અ. મૌ
લીલાવતી સાકરચંદ કોઠારીના બીજા વરસીતપની ખુશાલીમા ૩૦૧
- ૩ કામદાર જુઠાલાલ કેશવજીના સ્મરણાર્થે હા. હરીલાલ જુઠાભાઈ ૩૦૧

ગોધરા

- ૧ શાહ ત્રીભોવનદાસ છગનલાલ ૩૦૧

ઘટકુણ

- ૧ શાહ ચંદુલાલ કેશવલાલ ૨૫૧

ઘોલવાડ (યાણા)

- ૧ મહેતા ગુલાબચદ ગંભીરમલજી ૩૦૦

ચુડા (આલાવાડ)

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ હં. રતીલાલ ગાધી પ્રમુખ ૨૫૧

જલેસર (ખાલાસોર)

- ૧ સંઘવી નાનચદ પોપટભાઈ થાનગઢવાળા ૨૫૧

ભમજેધપુર

- ૧ શ્રી સ્થા. જૈનસંઘ ૩૮૭
- ૨ શાહ ત્રીભોવનદાસ ભગવાનજી પાનેલીવાળા ૨૫૧

ભમનગર

- ૧ શેઠ છોટાલાલ કેશવજી ૨૫૧
- ૨ શેઠ ચતુરદાસ ઠાકરશી ૨૫૧
- ૩ વોરા ચીમનલાલ દેવજીભાઈ ૨૫૧

ભમખંસાળીઆ

- ૧ શેઠ વસનજી નારજીજી ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થા. જૈન. સંઘ હા. મહેતા રજીછોડદાસ પરમાજીદ ૨૫૧
- ૩ સંઘવી પ્રાણલાલ લવજીભાઈ ૨૫૧

सुनामठ

शा.क. मण्डीवाल भीखनाथ डा. करीवालनाथ (काटीना भाणीबावाणा) २५१

सुनारहेव (मध्यप्रंत)

देवाधी त्रीकमल बाबाभाथ २५१

बेतपुर

शे.क. जसुतवाल हीरलाल डा. नरसेरामनाथ (जसापुरवाणा) २५१

देवाधी जेठावाल वनेवड २५१

देवाधी ठावरकुमार वेणीवाल २५१

बेतलसर

शा.क. लक्ष्मीवड कपुरवड २५१

कामदार लीवालधर लवराजना स्मरणार्थ तेमना धर्मपति जणकजिन
वरक्षी डा. शान्तीवालनाथ वेठलवाणा २५१

कवास

स्व. सुरभीबा लडेवड भाजेकवडना स्मरणार्थ तेमना धर्मपति
लजतीनाथ वरक्षी डा. जवतीनाथ २५१

देवाधीवा

श्री स्वा. जैन सब डा. शे.क. म. पावाल मारवे २५०

जानजड

शा.क. मकरशीनाथ करसनल २५१

शे.क. जेठवाल भीसोवनडास २५१

शा.क. धारशी पाशवीर डा. मुजलावलनाथ २५१

दंडाण्डु शे.क. (बावा)

शा.क. करलजनडास जोसड जंधार (कराणीबाणा) २५१

दिल्ली

वाला पूज्यवडल जैन (सिन्डल विकवाणा) ३५१

धार (मध्यप्रंत)

शे.क. सावरमल पनावालल २५१

ધાંગધા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા. શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચ્છરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ. સૌ. ખચીબેન ખાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઝોઈલિ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. ગુલાબચંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વોરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નંદુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સઘ હા. શેઠ ત્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	---	-----

પાણુસાણા

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

પાલણુપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગમ્થ સ્થા. જૈન યુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	---	-----

ખરવાળા (ઘેલાશા)

૧	સ્વ મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્નિ સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
---	---	-----

બગસરા (ભાગ્યણી)

- ૧ સ્વ. પૂજ્ય માતૃશ્રી જીજ્ઞાસામ્બિકા સ્મરણાર્થે
ક. દેશાઈ વજીરલાલ ઠાણીદાસ ૨૫૧
- ૨ શેઠ પીરદલાલ રાવજી રાવજીવાળા કા. શેઠ માનસભ પ્રેમજીદ
જેરાલ (કચ્છ) ૨૫૧

- ૧ શેઠ યાજ્ઞી કેશવજી (શાનજીદાર માટે)
બોટાદ ૨૫૧

- ૧ સ્વ. વસાણી હરજોનીદલાલ છબનલાલના સ્મરણાર્થે
કા. તેમનાં પ્રતિપત્નિ છબલબેન ૨૫૧
- ૨ શ્રી સ્થાનવાસી જૈનસભ (૨૫૦ જાગી) ૨૫૧

બોટેલી

- ૧ શાહ પ્રવીણજીદ નરસિંહદાસ (લાલુદવાળા) ૨૫૧
- ૨ શાહ બીરખરલાલ સાહરજીદ ૨૫૧

લાલુજીદ

- ૧ શેઠ જ્યેષ્ઠભાઈ માણેજીદ ૩૦૧
- ૨ સુવર્ણી માણેજીદ મધવજી ૨૫૧
- ૩ શેઠ લાલજીભાઈ માણેજીદ (લાલપુરવાળા) ૨૫૧
- ૪ શેઠ રામજી લુણાભાઈ ૨૫૧
- ૫ શેઠ પરમશી સીમજી શેઠ્ઠરીયા ૨૫૧
- ૬ શેઠ્ઠરીયા બાંધાલાલ કાનજીભાઈ કા. જી. સી. ચાંતાબેન વસનજી ૨૫૧

મદ્રાસ

- ૧ શેઠ ઘેવરાજી દેવીજીદ ૨૫૧

મનોર (સાવા)

- ૧ શાહ શેરમજી દેવીજીદજી સવતમજીવાળા
ક. પૂનમજીદ શેરમજી બોલ્યા ૨૫૧
- માનકુવા (કચ્છ)

- ૧ સ્વ. મહેતા કુવરજી નાધાલાલના સ્મરણાર્થે
કા. તેમનાં પ્રતિપત્નિ કુવરબાઈ હરજીદ
(માનકુવા સ્થાનવાસી જૈનસભ માટે) ૨૫૧

ધાંગધા

૧	શ્રી સ્થા. જૈન મોટા સંઘ હા શેઠ માવજીભાઈ જીવરાજ	૨૫૧
૨	સંઘવી નારણદાસ વખતચંદ	૩૦૧
૩	ઠક્કર નારણદાસ હરગોવીંદદાસ	૨૫૧

ધોરાજી

૧	મહેતા પ્રભુદાસ મૂળજીભાઈ	૩૫૧
૨	સ્વ. પિતાશ્રી ભગવાનજી કચરાભાઈ સ્મરણાર્થે હા. પટેલ દલીચંદ ભગવાનજી	૨૫૧
૩	અ સૌ. ખચીબેન ખાણુભાઈ	૨૫૧
૪	ધી નવ સૌરાષ્ટ્ર ઓઈલ મીલ પ્રા. લીમીટેડ	૨૫૧
૫	સ્વ. રાયચંદ પાનાચંદ શાહના સ્મરણાર્થે હા. ચીમનલાલ રાયચંદ	૩૦૧
૬	ગાંધી પોપટલાલ જેચંદ	૨૫૦

ધંધુકા

૧	ભાવસાર ખોડીદાસ ગણેશભાઈ	૨૫૧
૨	શેઠ પોપટલાલ ધારશી	૨૫૧
૩	સ્વ. શુભાભયંદભાઈના સ્મરણાર્થે હા. વેરા પોપટલાલ નાનચંદ	૨૫૧
૪	વસાણી ચત્રભુજ વાઘજીભાઈ	૨૫૧

નંદુરખાર

૧	શ્રી સ્થાનવાસી જૈન સંઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ ભગવાનલાલ	૨૫૦
---	--	-----

પાણુસાણુ

૧	શ્રી સ્થાનકવાસી જૈન સંઘ	૨૫૧
---	-------------------------	-----

પાલણુપુર

૧	લક્ષ્મીબેન હા. મહેતા હરીલાલ પીતામ્બરદાસ	૨૫૧
૨	શ્રી લોકાગચ્છ સ્થા જૈન પુસ્તકાલય	૨૫૧

પાલેજ

૧	સ્વ. મનસુખલાલ મોહનલાલ સંઘવીના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ ધીરજીલાલ મનસુખલાલ	૩૦૧
---	---	-----

બરવાળા (ઘેલાથા)

૧	સ્વ. મોહનલાલ નરસીદાસના સ્મરણાર્થે હા. તેમના ધર્મપત્ની સુરજબેન મોરારજી	૨૫૧
---	--	-----

१६	स्व. कानल भूजलना स्मरणाथे तथा मातुकी द्विवाणीजाधना	१६
	उपवासना पारव्या प्रसवे द. ज्यतीलाव कानल कणावडवाणा (मलाड)	२५१
१७	शेड छुशावलाथ जेजारलाथ	२५०
२८	शाड प्रेमल भालशी जजर (मलाड)	२५१
२६	स्व. पितामी पतुलाथ मोनालाधना स्मरणाथे द. कानल पतुलाथ	२५१
३०	शाड वेवल जेशी जलाथ छत्रावाणा तरक्षी तेमनी भमपति म. सौ. स्व. नानलाधना स्मरणाथे	३०१
३१	स्व पितामी रामशी वेवलना स्मरणाथे द. शाड कामल रामशी (मलाड)	३०१
३२	शेड त्रणकलाव कस्तुरवड वीजवीवाणा तरक्षी श्री ज्यजामर शाक लदार वीजवी माठे (भाटुजा)	२५१
३३	स्व. पितामी वीमशी डोरशी तथा मातुकी पाताजाधना स्मरणाथे द. शाड उजमशीलाथ वीमशीलाथ कथपतरीवाणा (मलाड)	३०१
३४	शेड सुनीलाव नरसेसम वेक्षीवाणा	२५१
३५	शाड वृजजलाथ शीवल (मलाड)	२५१
३६	स्तीलाव लायवड भेटा	२५१
३७	शाड जीमल भूजल पूव (मलाड)	२५१
३८	मिसर् सबाथी दूनसपिड कपनी द. शेड भावेकलाव वाडीलाव	२५१
३९	वेवाथी वललल नरसेसम द. नरसीलाथ वललल	२५१
४	म.सौ. समतामेन शान्तीलाव C/o शान्तीलाव उजमशी शाड (मलाड)	२५१
४१	वेवाथी कुनिशस पानायड	२५१
४२	कपासी मोहनलाव शीवलाव	२५१
४३	स्व. पितामी केशवलाव जठराव केडारीना स्मरणाथे सुरसनेन तरक्षी द. कमजुणलावलाथ (मलाड)	२५१
४४	दवीवा जमूवलाव मोतीवड (वाटकोपर)	२५१
४५	शेड सरवारमलल देवीवडल ठावेदीवा (सादडीवाणा)	२५१
४६	दोशी जत्रकुज सुडरल (वाटकोपर)	२५१
४७	दोशी जुगलकीशोर जत्रकुज (वाटकोपर)	२५१
४८	दोशी प्रचीवुजड जत्रकुज (वाटकोपर)	२५१
४९	शाड त्रीसोवनडास मानसिज दोडीवाणा स्मरणाथे द. शाड करमवड त्रीसोवनडास	२५१
५०	शाड देडलाव कामरशी भांजभावाणा द. शाड वाडीलाव नेडावाव	२५०
५१	शाड कडुलाव केशवलाव	२५१

મુંબઈ તથા પરાંચો

૧	શેઠ ઇગનલાલ નાનજીભાઈ	૨૫૧
૨	શાહ હરજીવન કેશવજી	૨૫૧
૩	ઘેલાણી પ્રભુલાલ ત્રીકમજી (ઝોરીવલી)	૨૫૨
૪	શેઠ છોટુભાઈ હરગોવિંદદાસ કટોરીવાલા	૨૫૧
૫	શ્રીવર્ધમાન સ્થા.જૈનસ ઘ હા કેસરીમલજી અનોપચ દજી ગુગળીયા(મલાડ)	૨૫૧
૬	શેઠ હુ ગરશી હ સરાજ વીસરીયા	૨૫૧
૭	શાહ રમણીકલાલ કાળીદાસ તથા અ. સૌ કાન્તાબેન રમણીકલાલ	૨૫૧
૮	શાહ હિ મતલાલ હરજીવનદાસ	૨૫૧
૯	શાહ રતનશી મોણુશીની કુ પની	૨૫૧
૧૦	શાહ શીવજી માણેક કચ્છ (ઘેરાબવાળા)	૨૫૧
૧૧	વોરા પાનાચ દ સ ઘજીના સ્મરણુથે હા ત્ર ળકલાલ પાનાચ દ વોરા બ્રધર્સ	૨૫૧
૧૨	સ્વ પૂ પિતાશ્રી વીરચ દ જેસીગભાઈ લખતરવાળાના સ્મરણુથે હા. કેશવલાલ વીરચ દ શેઠ	૨૫૧
૧૩	શાહ કુવરજી હ સરાજ	૨૫૧
૧૪	સ્વ માતુશ્રી માણેકબેનના સ્મરણુથે હા. શેઠ વલ્લભદાસ નાનજી (પોરબ દરવાળા)	૩૦૧
૧૫	શેઠ દેવરાજજી જીતમલજી પૂનમીયા સાહડીવાળા	૨૫૧
૧૬	એક સદ્ગૃહસ્થ હા શેઠ સુ દરલાલ માણેકચ દ	૨૫૧
૧૭	અ સૌ. પાનબાઈ હા શેઠ પદમશી નરસિ હભાઈ (મલાડ)	૨૫૧
૧૮	શ્રી અમૃતલાલ વર્ધમાન બાપોદરાવાળા હા દલીચ દ અમૃતલાલ	૨૫૧
૧૯	સ્વ શાહ નાગશી સેજપાળ ગુ ઠાળાવાળાના સ્મરણુથે હા રામજી નાગશી (મલાડ)	૩૦૧
૨૦	શાહ રામજી કરશનજી થાનગઢવાળા	૨૫૧
૨૧	શાહ નગીનદાસ કલ્યાણજી વેરાવળવાળા	૨૫૧
૨૨	શીવલાલ ગુલાબચ દ શેઠ મેવાવાળા	૨૫૧
૨૩	સ્વ. જટાશ કર દેવજી દોશીના સ્મરણુથે હા રણુછોડદાસ (બાબુલાલ) જટાશ કર દોશી	૩૦૧
૨૪	સ્વ ગોડા વણારશી ત્રીલોવન સરસઘવાળાના સ્મરણુથે હા જગજીવન વણારશી ગોડા (મલાડ)	૨૫૧
૨૫	સ્વ ત્રીલોવનદાસ મજપાળ વીંછીયાવાળાના સ્મરણુથે હા. હરગોવિંદદાસ ત્રીલોવનદાસ સજમેરા	૨૫૧

भांडवी (६५)

१ श्री. रमा छ डोटी केन ख व डा. भडेटा सुनीलाव वेवळ २७७
 भेसाणा

१ शाह पदमशी मुख इना स्मरणाबे डा. शीवलाव पदमशी वीरमजाभवाणा २५१
 भोन्नासा

१ शाह देवराव पवराव २५०
 २ श्रीभुव नावालाव वी. भडेटा २५१

बाहरीरी

१ शेड जाडमलल सुरजमलल जेन्डर २५०
 राणपुर (कावावाड)

१ श्रीमती भातुमी कसूतभाडिना स्मरणाबे डा. ये. नरीचमडास सुनीलाव २५१
 राणाबास (भास्वाड)

१ शेड कवानमलल नेमीबडल डा. जाणुरीजजडल ३०१
 राजकोट

- १ भी वाडीलाव सजि जेन्ड मिन्टी ज वड'ख ४००
- २ शेड रतीलाव न्वाडखड २५१
- ३ जाणु परशुसम छजनलाव शेड (उडेपुरवाणा) २५०
- ४ शेड मनुभाड मुणखड (जेन्डनीकर साडेज) २५१
- ५ शेड शान्तीलाव प्रमखड तेमना धर्मपतिना वरसीतप प्रसवि २५१
- ६ उदाषी न्वाडखड दाडेमखड वडोड २५१
- ७ शेड प्रनराम वीडुलल २५१
- ८ शेड दडमीखड दीपखड (विडलवाणा) स्टेशनभास्तर २५१
- ९ जेन सुर्ववाणा नौतमलाव कसाषी (वरसीतपनी सुयावी) २५१
- १० भोटी सौलाज्यखड भोटीखड २५१
- ११ कसाषी भीमल वेडल तशुषी तेमना धर्मपति
 ज. सौ समस्तमेनना वरसीतपनी सुयावी २५१
- १२ दोशी भोटीखड धारशीलाड (रीटाखड) छिलनीकर साडेज २५१
- १३ कामदार पडुलाव लपराव २५०
- १४ डेभाषी घेडुभाड सवखड २५१

૫૨	સ્વ. પિતાશ્રી શામળજી કલ્યાણજી ગોડલવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. વૃજલાલ શામળજી બાવીશી	૩૦૧
૫૩	શાહ પ્રેમજી હીરજી ગાલા	૨૫૧
૫૪	સ્વ પિતાશ્રી ભગવાનજી હીરાચંદ જસાણીના સ્મરણાર્થે હા. લક્ષ્મીચંદ તથા કેશવલાલભાઈ	૩૦૧
૫૫	સ્વ. પિતાશ્રી હંસરાજ હીરાના સ્મરણાર્થે હા. દેવશી હંસરાજ કચ્છ બીડાલાવાળા (મલાડ)	૨૫૧
૫૬	સ્વ માતૃશ્રી ગોમતીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શાહ પોપટલાલ પાનાચંદ	૨૫૧
૫૭	શેઠ નેમચંદ સ્વરૂપચંદ બલાતવાળા હા. ભાઈ જેઠલાલ નેમચંદ	૨૫૧
૫૮	સ્વ પિતાશ્રી શાહ અબાલાલ પરસોતમ પાણુશણ્ણાવાળાના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરફથી હા. બાપાલાલભાઈ	૨૫૧
૫૯	બેન કેસરબાઈ ચંદુલાલ જેસીગલાલ શાહ	૨૫૧
૬૦	દડીયા જેસીગલાલ ત્રીકમજી	૨૫૧
૬૧	શાહ કાન્તીલાલ મગનલાલ (ઘાટકૈાપર)	૨૫૧
૬૨	કોઠારી સુખલાલજી પૂનમચંદજી (ખાર)	૨૫૧
૬૩	સ્વ માતૃશ્રી કડવી બાઈના સ્મરણાર્થે હા. તેમના પૌત્ર હકમીચંદ તારાચંદ દોશી (કાઠીવલી)	૨૫૧
૬૪	શેઠ સારાભાઈ ચીમનલાલ	૨૫૧
૬૫	શાહ કોરશીભાઈ હીમજીભાઈ	૩૦૧
૬૬	પિતાશ્રી કુદનમલજી મોતીલાલજીના સ્મરણાર્થે હા. મોતીલાલ જીબરમલ (અહમદનગરવાળા)	૨૫૧
૬૭	શ્રી વર્ધમાન શ્રવેતામ્બર સ્થા. જૈનસંઘ હા. શેઠ રૂપચંદ શીવલાલ કામદાર (અધેરી)	૨૫૧
૬૮	અ. સૌ કમળાબેન કામદાર હા. રૂપચંદ શીવલાલ (અધેરી)	૨૫૧
૬૯	ધી મરીના મોડન હાઈસ્કુલ ટ્રસ્ટ ફંડ હા. શાહ મણીલાલ ઠાકરસી	૨૫૧
૭૦	સ્વ માતૃશ્રી જીવીબાઈના સ્મરણાર્થે હા. શામજી શીવજી કચ્છ ગુદાળાવાળા (ગોરેગાવ)	૨૫૧
૭૧	શાહ રવજીભાઈ તથા ભાઈલાલભાઈની ક પની (કાંડીવલી)	૨૫૧
૭૨	અ. સૌ લાજુ બેન હા. રવજી શામજી (કાંડીવલી)	૨૫૧
૭૩	અ. સૌ. બેન કુદનગૌરી મનહરલાલ સઘવી (ખારરોડ)	૨૫૧
૭૪	શાહ કરશનભાઈ લઘુભાઈ (દાદર)	૩૦૧
૭૫	અ. સૌ. રજનગૌરી ચંદુલાલ શાહ C/O ચંદુલાલ લક્ષ્મીચંદ (માઠુ ગા)	૨૫૧
૭૬	મહેતા મોટર સ્ટોર્સ હા. અનોપચંદ ડી. મહેતા (સુખઈ)	૨૫૧

મહિલી (૪૨૭)

૧	શ્રી. સ્વા. છ ઠોટી ઢેન સ ઢ મહેતા મુનીલાલ વેલલ	૨૭૭
	મેસાણા	
૧	શાહ પદમશી મુસ્લ દના સમરણાઈ ઢા. શીવલાલ પદમશી વીરમજામજાળા	૨૫૧
	મોમ્બાયા	
૧	શાહ દેવસજ પેવરાજ	૨૫૦
૨	શ્રીમુત નાલાલાલ ઢી. મહેતા	૨૫૧
	માદગીરી	
૧	શેઠ જાદમલલ સૂરજમલલ બે ઠઈ	૨૫૦
	રાણપુર (ઝલાવાડ)	
૧	શ્રીમતી માતુશી અમૃતબાઈના સમરણાઈ ઢા. ડો. નરૌતમદાસ મુનીલાલ	૨૫૧
	રાણાવાસ (મારવાડ)	
૧	શેઠ જ્વાનમલલ નેમીચંદલ ઢા. જાનુરીજબજ ઢલ	૩૦૧
	રાજકોટ	
૧	ખી વાડીલાલ ઠઈચ બે ઢ પ્રિન્ડી મ વકેજ	૪૦૦
૨	શેઠ રવીલાલ ન્યાલજદ	૨૫૧
૩	જાલુ પરશુરામ હમનલાલ શેઠ (ઉદિપુરવાળા)	૨૫૦
૪	શેઠ મનુભાઈ મુળજદ (બેનલનીબર સાહેબ)	૨૫૧
૫	શેઠ શાન્તીલાલ પ્રેમજદ તેમનાં ખમીપતિના વરસીતપ પ્રસબે	૨૫૧
૬	જાણી ન્યાલજદ ઢાકેમજદ વકીલ	૨૫૧
૭	શેઠ પ્રભરામ વીઠલ	૨૫૧
૮	શેઠ હકમીજદ ઢીપજદ (બોંડલવાળા) સ્ટેશનમાસ્તર	૨૫૧
૯	બેન મુર્ડવાળા નૌતમલાલ જ્વાણી (વરસીતપની જુલાલી)	૨૫૧
૧૦	મોઢી સૌભાજજદ મોટીજદ	૨૫૧
૧૧	જાણી શીમલ વેલલ તરૂશી તેમનાં ખમીપતિ જ. સૌ. સમસ્તબેનના વરસીતપની જુલાલી	૨૫૧
૧૨	ઠોશી મોટીજદ ખારશીભાઈ (રીટાઈ ઢનલનીબર સાહેબ)	૨૫૧
૧૩	કામદાર વડુલાલ ઇવરાજ	૨૫૦
૧૪	જેમણી મેઠુભાઈ સવજદ	૨૫૧

રંગુન

- ૧ કામદાર ગોરધનદાસ મગનલાલનાં ધર્મપત્નિ અ. સૌ. કમળાબેન ૨૫૧

લખતર

- ૧ શાહ રાયચંદ ઠાકરશીના સ્મરણાર્થે હા. શાહ. શાન્તિલાલ રાયચંદ ૨૫૧
 ૨ ભાવસાર હરજીવનદાસ પ્રજુદાસના સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ ત્રીલોવનદાસ હરજીવનદાસ ૨૫૧
 ૩ શાહ તલકશી હીરાચ દના સ્મરણાર્થે હા. ભાઈ અમૃતલાલ તલકશી ૨૫૧
 ૪ શાહ ચુનીલાલ માણેકચંદ ૨૫૧
 ૫ શાહ બદવજી એઘડભાઈ સદાદવાળાના સ્મરણાર્થે
 હા ભાઈ શાન્તીલાલ બદવજી ૨૫૧
 ૬ દોશી ઠાકરશી ગુલાબચંદના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ સમરતબેન
 મજલાલ તરફથી હા જય તીલાલ ઠાકરશી ૨૫૧

લાલપુર

- ૧ શેઠ નેમચંદ સવજીભાઈ મોદી હા મગનલાલભાઈ ૨૫૧
 ૨ શેઠ મૂળચંદ પોપટલાલ હા મણીલાલભાઈ તથા જેસીગલાલભાઈ ૨૫૧

લાખેરી (રાજસ્થાન)

- ૧ માસ્તર જેઠાલાલ મોનજીભાઈ હા મહેતા અમૃતલાલ જેઠાલાલ
 (સીવીલ એન્જીનીઅર સાહેબ) ૨૫૧

લીમડી (પંચમહાલ)

- ૧ શાહ કુવરજી ગુલાબચંદ ૨૫૧
 ૨ છાજેડ ઘાસીરામ ગુલાબચંદ ૨૫૧

લોનાવલા

- ૧ શેઠ ઘનરાજજી મૂળચંદજી મૂથા ૨૫૧

વઢવાણુ શહેર

- ૧ શાહ દીલીપકુમાર સવાઈલાલ હા સવાઈલાલ ત્રબકલાલ શાહ ૨૫૧
 ૨ શાહ મગનલાલ ગોઠજીદાસ હા રતીલાલ મગનલાલ કામદાર ૨૫૧
 ૩ સુઘવી મૂળચંદ બેચરભાઈ હા જીવણુલાલ ગફલદાસ ૨૫૧
 ૪ શેઠ વૃજલાલ સુખલાલ ૨૫૧
 ૫ શેઠ કાન્તીલાલ નાગરદાસ ૨૫૧

६	बोरा अत्रबुध भजनलाळ	२५१
७	सबनी शीवलाळ श्रीमल्लार्थ	२५१
८	शाळ देवशी देवकरवृ	२५१
९	बोरा बोसावार्थलाळवृदस्था केनस व डा. बोरा नानवृद शीवलाळ	२५१
१०	बोरा धनल्लार्थलाळवृदस्था केनस व डा. बोरा नानवृद जोवरवाळ	२५१
११	दोशी वीरवृद मुस्वद डा. दोशी नानवृद उल्मशी	२५१
१२	स्व. बोस मणीवाळ भजनलाळ डा. बोरा अत्रबुध भजनलाळ	२५१

वटाभयु

१	श्री वटाभयु स्था. केनस व डा. श्री दादावार्थ वल्लार्थ पटेल	२५१
---	---	-----

वडासाई

१	शाळ श्रीमवृद मूलल्लार्थ	२५१
---	-------------------------	-----

वणी

१	भेट्या नानालाळ छत्रनवाळनां धर्मपति स्व. वळणजेन वसा पुरीजिनता रमरुवावें डा. वार्थ मनकरवाळ नानालाळ	२५१
---	--	-----

वडोदरा

१	डामडार देशवलाळ दिभतराम प्रदेसर साडेन (वेडलवाणा)	२५१
२	वडीळ मणीवाळ देशवलाळ शाळ	२५१
३	स्व. पिताश्री शाळ इरीरवृद पुनल्लार्थना रमरुवावें डा. शाळ रमवृवाळ इरीरवृद	२५१

वडीवा

१	पवमीवा लवानल्लार्थ काणावार्थ (नेवपुरवाणा)	२५१
---	---	-----

वांकिनेर

१	भास्तर वान्तीवाळ वळकवाळ पंढरीवा	२५१
२	श्री स्था. केनस व (इ. २५० जाडी)	२५१
३	ध्वरी मुनीवाळ पापटवार्थ गिरणीवाजा डा. भायुवाळ मुनीवाळ	२५१

वींठीवा

१	श्री. स्था. केनस व डा. वाळमीरा राववृद वळवाजा	२५१
---	--	-----

વીરમગામ

- ૧ શાહ વાડીલાલ નેમચદ વડીલ ૨૫૦
- ૨ શાહ વિકૃતભાઈ મોદી માસ્તર ૨૫૧
- ૩ શાહ નાગરદાસ માલ્હેકચદ ૨૫૧
- ૪ શાહ મણીલાલ જીવણલાલ (શાહપુરવાળા) ૨૫૧
- ૫ શાહ અમુખલ (મચુભાઈ) નાગરદાસના ધર્મપત્નિ અ. સૌ બેન લીલા-
વતીના વરસીતપના પારણ્યાની ખુશાલીમા હા ભાઈ ઠાન્તીલાલ નાગરદાસ ૩૦૦
- ૬ સ્વ શેઠ ઉજમશી નાનચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરકૃથી
હા શેઠ ચુનીલાલ નાનચદ ૨૫૧
- ૭ સ્વ મણીલાલ લક્ષ્મીચદના સ્મરણાર્થે તેમના પુત્રો તરકૃથી
હા ખીમચદભાઈ (ખારાઘોડાવાળા) ૨૫૧
- ૮ સ્વ શેઠ હરીલાલ પ્રભુદાસના સ્મરણાર્થે હા શેઠ અનુભાઈ હરીલાલ ૨૫૧
- ૯ સ્વ ઘવી જેચદભાઈ નારણદાસ ૨૫૧
- ૧૦ સ્વ શાહવેલશીભાઈ સાકરચદભાઈના સ્મરણાર્થે
હા ચીમનલાલ વેલશી (કત્રાસવાળા) ૨૫૧
- ૧૧ પારેખ મણીલાલ ટોકરશી લાતીવાળા તરકૃથી (મોટીબેનના સ્મરણાર્થે) ૨૫૧
- ૧૨ શાહ નારણદાસ નાનજીભાઈના સુપુત્ર વાડીલાલભાઈના ધર્મપત્નિ અ. સૌ,
નારગીબેનના વરસીતપ નીમીત્તે હા શાન્તીભાઈ ૨૫૧
- ૧૩ સ્વ છખીલદાસ ગોકળદાસના સ્મરણાર્થે તેમના ધર્મપત્નિ
કમળાબેન તરકૃથી હા મળુલાકુમારી ૨૫૧
- ૧૪ શ્રી સ્થા જૈન શ્રાવિકાસંઘ હા પ્રમુખ અ. સૌ રબાબેન વાડીલાલ ૨૫૧
- ૧૫ સ્વ ત્રીલોવનદાસ દેવચદ તથા સ્વ અ. સૌ ચચળબેનના
સ્મરણાર્થે હા ડોક્ટર હિંમતલાલ સુખલાલ ૨૫૧
- ૧૬ શાહ મૂળચદ ઠાનજીભાઈ તરકૃથી હા શાહ નાગરદાસ ઓઘઠભાઈ ૨૫૧
- ૧૭ શેઠ મોહનલાલ પીતાખરદાસ હા. ભાઈ કેશવલાલ તથા મનસુખલાલ ૨૫૧
- ૧૮ શ્રીમતી હીરાબેન નથુભાઈના વરસીતપ નીમિત્તે
હા નથુભાઈ નાનચદ શાહ ૩૦૧
- ૧૯ સ્વ મણીયાર પરસોત્તમ સુદરજીના સ્મરણાર્થે
હા શેઠ સાકરચદ પરસોત્તમદાસ ૨૫૧
- ૨૦ શેઠ મણીલાલ શીવલાલ ૨૫૧

વેરાવળ

- ૧ શાહ કેશવલાલ જેચદભાઈ ૨૫૧
- ૨ શાહ ખીમચદ સૌભાગ્યચદ વસનજી ૨૫૧

સતારા

- ૧ સ્વ. મદનલાલજી કુદનલાલજી કોઠારીના સ્મરણાર્થે
 ડા. તેમના ધર્મપત્નિ શાસ્ત્રીવરણ્યકું મદનલાલજી ૨૫૧

આલજની (જાગણ)

- ૧ ડોશી મુનીલાલ કુલચંદ મોરબીવાળા ૨૫૦

સામુદ

- ૧ શાહ હીરાચંદ કમનલાલ ડા. શાહ શીમનલાલ હીરાચંદ ૩૦૧
 ૨ જી. સી. જાપાનિન ડા. ડોશી જીવસજી લાલચંદ ૨૫૧
 ૩ પટેલ મહામુખલાલ ડોસાભાઈ ૨૫૧
 ૪ શાહ સાંકરચંદ કાનજીભાઈ ૨૫૧
 ૫ પુરીબેન શીમનલાલ કસ્તાબજી સઘવી લીંબડીવાળાના સ્મરણાર્થે
 ડા. વાઠીલાલ મોહનલાલ કોઠારી ૨૫૧
 ૬ ખરેખ નેમચંદ મોતીચંદ મૂળીવાળાના સ્મરણાર્થે
 ડા. ખરેખ શીખાલાલ નેમચંદ ૨૫૧
 ૭ સઘવી નારણલાલ ધરમશીના સ્મરણાર્થે ડા. જીવડીલાલ નારણલાલ ૨૫૧

મુરત

- ૧ શ્રી. સ્વા. જૈનસઘ ડા. શાહ હિટુભાઈ જાસેચંદ ૨૫૧

મુવઈ (કચ્છ)

- ૧ સાબજી શામજી હીરજી તરફથી સઘનદી જીન મુનીશ્રી કિયાલાલજી
 મહારાજના ઉપદેશથી મુવઈ સ્વા. જૈનસઘ જ્ઞાનસઘરને સેટ ૨૫૧

મુરે પ્રનગર

- ૧ શેઠ જાંવરીભાઈ મુખલાલ ૨૫૧
 ૨ જાવસાર મુનીલાલ પ્રેમચંદ ૨૫૧
 ૩ સ્વ. કેસવલાલ મૂલજીભાઈના ધર્મપત્નિ જામુતજીબેન સ્મરણાર્થે
 ડા. જાઈલાલ કેસવલાલ (વાનગઢવાળા) ૨૫૧
 ૪ શાહ જ્વાલચંદ હરજીચંદ ૨૫૧

સંજ્ઞેલી (પંચમહાલ)

૧	શાહ લુણાણ ગુલાબચંદ	૨૫૧
૨	શ્રી સ્થા. જૈનસઘ હા. શેઠ પ્રેમચંદ દલીચંદ	૨૫૧

હાટીનામાળીયા

૧	શેઠ ગોપાલજી મીઠાભાઈ	૨૫૦
---	---------------------	-----

હારીજ

૧	શાહ અમુલખભાઈ મૂળજી હા. પ્રકાશચંદ અમુલખ	૩૦૧
૨	સ્વ ઝેન ચંદ્રકાન્તાનાં સ્મરણાર્થે હા. અમુલખ મૂળજીભાઈ	૩૦૧

હુબલી

૧	શેઠ હીરાચંદ વનેચંદજી કટારીઆ	૨૫૧
---	-----------------------------	-----



કુલ્લ મેમ્બરોની સંખ્યા તા. ૨૮-૨-૫૮ સુધી

૪ આઘ સુરખીશ્રીઓ	૩૧૬ પ્રથમ વર્ગના મેમ્બરો
૨૨ સુરખીશ્રીઓ	૮૩ બીજા વર્ગના મેમ્બરો
૩૬ સહાયક મેમ્બરો	૪૬૧ કુલ મેમ્બરો

(બીજા વર્ગને સહતર બધ કરવામા આવેલ છે)

રાજકોટ, તા. ૧-૩-૫૮

સાંકરચંદ ભાઈચંદ શેઠ

મંત્રી,

શ્રી અ. ભા. ઝવે. સ્થા. જૈન શા. સં.

